प्रयोगात्मक-मनोविज्ञान

प्रयोगात्मक-मनोविज्ञान

(प्रथम संस्करण)

श्री जगदानन्द पाण्डेय, एम० ए० (द्वय)

मनोविज्ञान विभाग,

लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर

(बिहार विश्वविद्यालय)

तारा पब्लिकेशन्स

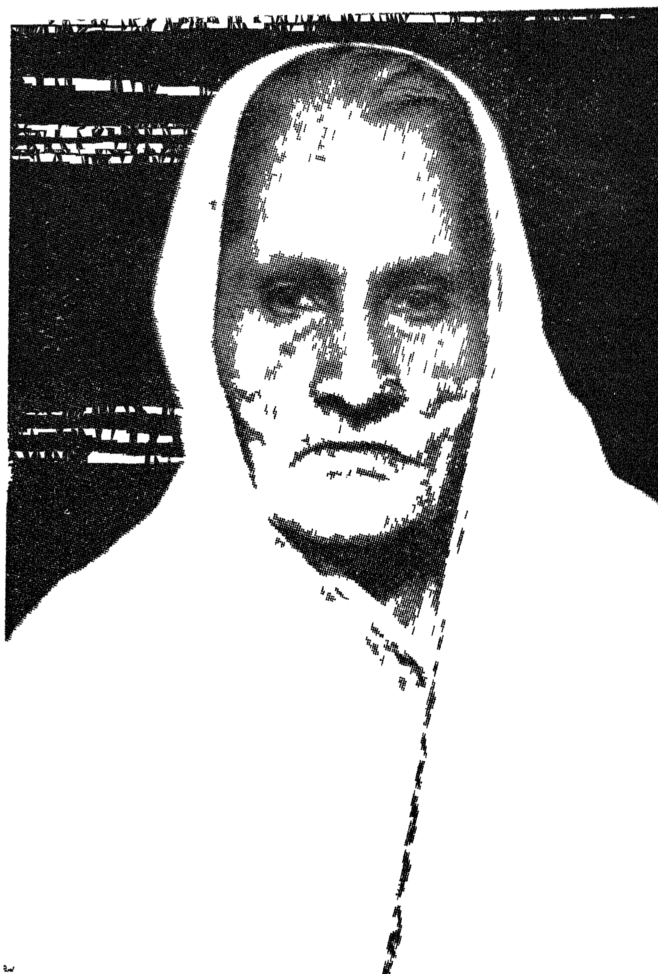
कमच्छा, वाराणसी—१

प्रकाशक

तारा पब्लिकेशन्स,

कमच्छा, वाराणसी—१

मूल्य : १७)५०



ग्रन्थकार की पूजनीया माताजी

परम आदरणीया एवं पूजनीया

माता जी के चरण-

कमलों मे सादर

समर्पित

—जगदानद पाण्डेय

लेखक की रचनाएँ

	रु० नये पैसे	
१—प्रयोगात्मक मनोविज्ञान	१७)५०	तारा पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी १
२—मनोविज्ञान परिचय (तृ स)	५)५०	
३—शिक्षा मनोविज्ञान	५)५०	
४—सामाजिक मनोविज्ञान (प्रेसमें)।		
५—मनोवैज्ञानिक प्रयोग	१०)	ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, ४
६—असामान्य मनोविज्ञान	८)	
७—बाल मनोविज्ञान (तृ स)	५)५०	ज्ञानपीठ लिमिटेड पटना, ४
८—मनोविज्ञान (द्वि स)	१०)	पुस्तक भंडार पटना, ४
९—औद्योगिक मनोविज्ञान		दिल्ली पुस्तक सदन, १२६, कमला मार्केट, नयी दिल्ली
१०—खेल	५०	उषा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर।
११—व्यक्तित्त्व	५०	

[illegible] प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पाठकों के हाथ में देते हुए मुझे अपार हर्ष [illegible] प्रस्तुत [illegible] श्रेय पाठकों को ही है। मुझे वह दिन आज [illegible] कठिनाइयों को दूर करने के लिए मुझसे सन् १९४९ ई० [illegible] पुस्तक लिखने का आग्रह किया था। मुझे उनका सुझाव अच्छा लगा और [illegible] शुरू कर दिया। फलत पुस्तक की रचना का कार्य सन् १९५२ [illegible] उस समय इसके लिखने में श्रीराम सच्चिदानन्द शरण, बी० ए०, [illegible] (डिपार्टमेण्ट आफ कामर्शियल [illegible], गवर्नमेण्ट आफ बिहार, पटना), पुरुषोत्तम लाल [illegible] (आनर्स) और प्रो० काशीनाथ झा, एम० ए० (अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग, [illegible]) ने [illegible] से मदद की। अत इसकी रचना का प्रधान श्रेय मेरे [illegible] है।

[illegible] नहीं दिनों तक सतोष की साँस न ले सका, क्योंकि उसके बाद [illegible] डाक्टर [illegible] प्रसाद सिंह, एम० ए०, एम० एस सी०, पी एच० डी० ([illegible] संस्थान, पटना विश्वविद्यालय, पटना) के चरणों में मनोविज्ञान [illegible] अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फलत मैंने पाण्डुलिपि [illegible] संशोधन कर डाला। इधर इस विषय पर विदेशों में नित्य नयी नयी पुस्तकें प्रकाशित होती रहीं। इसलिये मेरा अपना दूसरा संशोधन भी मुझे संतुष्ट न कर सका और तीसरी बार पाण्डुलिपि में मुझे आवश्यक संशोधन करना पड़ा। उस संशोधन में मुझे एम० ए० [illegible] अधिक सहायता मिली। अत इसके निर्माण में श्री योगेन्द्र ठाकुर, एम० ए० और रघुनाथ प्रसाद सिंह, एम० ए० की सेवाएँ भी कम महत्त्व की नहीं रहीं। जब पाण्डुलिपि का तीसरा संशोधन भी मुझे संतोषप्रद न लगा तब मैं चौथी बार पाण्डुलिपि में काट-छाँट करने लगा। उस संशोधन में मुझे अपने सहकर्मी प्रो० अजिमुर्रहमान, एम० ए० से पर्याप्त सहायता मिली [illegible] काफी लाभान्वित हुआ। अत इसकी रचना में उनका भी [illegible]। [illegible], न जाने क्या इतना करने के बाद भी मैं इसे किसी प्रकाशक को नहीं दे सका [illegible] पाँचवाँ बार [illegible] संशोधन सन् १९५७ ई० में शुरू किया। उस समय ऑसगुड (Osgood) और स्टीवेन्स (Stevens) की पुस्तकें भी प्रकाश में आ गई थीं। इसलिए [illegible] मेरा प्रयास बराबर यही रहा है कि पाठकों की जानकारी के लिये मैं अद्यतन (Up-to-date) सामग्री दे सकूँ। प्रो० काशीनाथ झा की सेवा इसके प्रूफ संशोधन में भी प्राप्त हुई है। जून की भीषण गर्मी में वाराणसी में रहकर उन्होंने पृष्ठ ८१ से पृष्ठ २१५ तक का प्रूफ संशोधन कर जिस आत्मीयता का परिचय दिया है, वह श्लाघ्य और किसी के लिये भी [illegible] है। कुछ अध्यायों के अन्तिम संशोधन और प्रो० झा के साथ प्रूफ संशोधन में मेरे एक आत्मीय का इतना त्यागमय सहयोग रहा है कि उसके सम्बन्ध में कुछ लिखकर उसके महत्त्व को सीमाबद्ध करना उचित नहीं समझता।

संशोधन की पाण्डुलिपि को फिर से लिखने, ग्राफ और चित्र तैयार करने तथा सामग्री एकत्र करने

विषय-सूची

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

लेखक की रचनाएँ

	रु० नये पैसे	
१—प्रयोगात्मक मनोविज्ञान	१७)५०	तारा पब्लिकेशन्स
२—मनोविज्ञान परिचय (तृ स)	५)५०	
३—शिक्षा मनोविज्ञान	५)५०	कमच्छा, वाराणसी १
४—सामाजिक मनोविज्ञान (प्रेस में)।		
५—मनोवैज्ञानिक प्रयोग	१०)	ग्रन्थमाला कार्यालय,
६—असामान्य मनोविज्ञान	८)	पटना, ४
७—बाल मनोविज्ञान (तृ स)	५)५०	ज्ञानपीठ लिमिटेड पटना, ४
८—मनोविज्ञान (द्वि स)	१०)	पुस्तक भंडार पटना, ४
९—औद्योगिक मनोविज्ञान		हिन्दी पुस्तकसदन, १२६, कमला मार्केट नयी दिल्ली
१०—खेल	५०	उषा प्रकाशन, मुज-
११—व्यक्तित्व	५०	फ्फरपुर।

'अपनी बात'

ग्यारह वर्षों के बाद प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पाठकों के हाथ में देते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। वस्तुतः इसके प्रकाशन और रचना का श्रेय पाठकों को ही है। मुझे वह दिन आज भी याद है, जब मेरे तीन विद्यार्थियों ने अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिए मुझसे सन् १९४९ ई० में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पर एक पुस्तक लिखने का आग्रह किया था। मुझे उनका सुझाव अच्छा लगा और मैं इस दिशा में कार्य करना शुरू कर दिया। फलतः पुस्तक की रचना का कार्य सन् १९५२ ई० में समाप्त हो गया। उस समय इसके लिखने में श्रीराम सच्चिदानन्द शरण, बी० ए०, साहित्यभूषण (डिपार्टमेण्ट आफ कामर्शियल टैक्सेज, गवर्नमेण्ट आफ बिहार, पटना), पुरुषोत्तम लाल शर्मा, बी० ए० (आनर्स) और प्रो० काशीनाथ झा, एम० ए० (अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग, बी० एन० कालेज, पटना) ने मेरी हर तरह से मदद की। अतः इसकी रचना का प्रधान श्रेय मेरे इन्हीं तीन विद्यार्थियों को ही है।

पुस्तक की रचना समाप्त कर मैं बहुत दिनों तक संतोष की साँस न ले सका, क्योंकि उसके बाद ही मुझे अपने श्रद्धेय गुरुवर डाक्टर अवध किशोर प्रसाद सिंह, एम० ए०, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (वर्त्तमान निदेशक मनोवैज्ञानिक अनुसंधान, पटना विश्वविद्यालय, पटना) के चरणों में मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं का विशद रूप से अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फलतः मैंने पाण्डुलिपि के रूप में ही इसका प्रथम संशोधन कर डाला। इधर इस विषय पर विदेशों में नित्य नयी नयी पुस्तकें प्रकाशित होती रहीं। इसलिये मेरा अपना दूसरा संशोधन भी मुझे संतुष्ट न कर सका और तीसरी बार पाण्डुलिपि में मुझे आवश्यक संशोधन करना पड़ा। उस संशोधन में मुझे एम० ए० के छात्रों विद्यार्थियों से अधिक सहायता मिली। अतः इसके निर्माण में श्री योगेन्द्र ठाकुर, एम० ए० और रघुनाथ प्रसाद सिंह, एम० ए० की सेवाएँ भी कम महत्त्व की नहीं रहीं। जब पाण्डुलिपि का तीसरा संशोधन भी मुझे संतोषप्रद न लगा तब मैं पुनः चौथी बार पाण्डुलिपि में काट-छाँट करने लगा। उस संशोधन में मुझे अपने सहकर्मी प्रो० अनिसुर्रहमान, एम० ए० से पर्याप्त सहायता मिली और मैं उनसे काफी लाभान्वित हुआ। अतः इसकी रचना में उनका भी सहयोग कम नहीं है। लेकिन न जाने क्या इतना करने के बाद भी मैं इसे किसी प्रकाशक को नहीं दे सका और मैंने पाँचवाँ और अन्तिम संशोधन सन् १९५८ ई० में शुरू किया। उस समय ऑसगुड (Osgood) और स्टीवन्स (Stevens) की पुस्तकें भी प्रकाश में आ गई थीं। इसलिए इस संशोधन में मेरा प्रयास बराबर यही रहा है कि पाठकों की जानकारी के लिये मैं आद्यतन (Up-to-date) सामग्री दे सकूँ। प्रो० काशीनाथ झा की सेवा इसके प्रूफ संशोधन में भी प्राप्त हुई है। जून की भीषण गर्मी में वाराणसी में रहकर उन्होंने पृष्ठ ८१ से पृष्ठ २१६ तक का प्रूफ संशोधन कर जिस आत्मीयता का परिचय दिया है, वह श्लाघ्य और किसी के लिये भी अनुकरणीय है। कुछ अध्यायों के अन्तिम प्रूफ संशोधन में मेरे एक आत्मीय का इतना त्यागमय सहयोग रहा है कि उसके सम्बन्ध में कुछ लिखकर उसके महत्त्व को सीमाबद्ध करना उचित नहीं समझता।

संशोधन की पाण्डुलिपि को फिर से लिखने, ग्राफ और चित्र तैयार करने तथा सामग्री एकत्र करने में इतने छात्रों की सेवाएँ प्राप्त हुई हैं कि उन सबका उल्लेख करना संभव नहीं है। लेकिन इस सिल

लेखक की रचनाएँ

	रु० नये पैसे	
१—प्रयोगात्मक मनोविज्ञान	१७)५०	तारा पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी १
२—मनोविज्ञान परिचय (तृ स)	५)५०	
३—शिक्षा मनोविज्ञान	५)५०	
४—सामाजिक मनोविज्ञान (प्रेसमें)।		
५—मनोवैज्ञानिक प्रयोग	१०)	ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, ४
६—असामान्य मनोविज्ञान	८)	
७—बाल मनोविज्ञान (तृ स)	५)५०	ज्ञानपीठ लिमिटेड पटना, ४
८—मनोविज्ञान (द्वि स)	१०)	पुस्तक भंडार पटना ४
९—औद्योगिक मनोविज्ञान		दिल्ली पुस्तक सदन, १२६, कमला मार्केट, नयी दिल्ली
१०—खेल	५०	उषा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर।
११—व्यक्तित्त्व	५०	

'अपनी बात'

प्यारे पाठकों के हाथ में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पाठकों के हाथ में देते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। वस्तुतः इसकी रचना का श्रेय पाठकों को ही है। मुझे वह दिन आज भी याद है जब मेरे तात विद्यार्थियों ने अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिए मुझसे सन् १९४९ ई० में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पर एक पुस्तक लिखने का आग्रह किया था। मुझे उनका सुझाव अच्छा लगा और मैंने इस दिशा में कार्य करना शुरू कर दिया। फलतः पुस्तक की रचना का कार्य सन् १९५२ ई० में समाप्त हो गया। उस समय इसके लिखने में श्रीराम सच्चिदानन्द शरण, बी० ए०, साहित्यभूषण, (डिपार्टमेण्ट आफ कामर्शियल टैक्सेज गवर्नमेण्ट आफ बिहार, पटना), पुरुषोत्तम लाल शर्मा, बी० ए० (आनर्स) और प्रो० काशीनाथ झा, एम० ए० (अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग, बी० आर० जे० कालेज, ...) ने बहुत हद तक मदद की। अतः इसकी रचना का प्रधान श्रेय मेरे उन्हीं तीन विद्यार्थियों को ही है।

पुस्तक की रचना समाप्त कर मैं बहुत दिनों तक सतोष की साँस न ले सका, क्योंकि उसके बाद ही मुझे अपने श्रद्धेय गुरुवर डाक्टर जगदीश प्रसाद सिंह, एम० ए०, एम० एस सी०, पी-एच० डी० (वर्तमान निदेशक मनोवैज्ञानिक ब्यूरो, पटना विश्वविद्यालय, पटना) के चरणों में मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं का विशेष रूप से अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फलतः मैंने पाण्डुलिपि के रूप में ही इसका दूसरा संशोधन कर डाला। इधर इस विषय पर विदेशों में नित्य नयी नयी पुस्तकें प्रकाशित होती रहीं। इसलिये मेरा अपना दूसरा सशोधन भी मुझे सतुष्ट न कर सका और तीसरी बार पाण्डुलिपि में मुझे आवश्यक संशोधन करना पड़ा। उस सशोधन में मुझे एम० ए० के मेरे विद्यार्थियों से अधिक सहायता मिली। अतः इसके निर्माण में श्री योगेन्द्र ठाकुर, एम० ए० और रघुनाथ प्रसाद सिंह, एम० ए० की सेवाएँ भी कम महत्त्व की नहीं रहीं। जब पाण्डुलिपि का तीसरा संशोधन भी मुझे सतोषप्रद न लगा तब मैं चौथी बार पाण्डुलिपि में काट छाँट करने लगा। उस सशोधन में मुझे अपने सहकर्मी प्रो० अनिमुर्रहमान, एम० ए० से पर्याप्त सहायता मिली और मैं उनसे काफी लाभान्वित हुआ। अतः इसकी रचना में उनका भी सहयोग कम नहीं है। लेकिन, न जाने क्यों इतना करने के बाद भी मैं इसे किसी प्रकाशक को नहीं दे सका और मैंने पाँचवीं बार इसका सशोधन सन् १९५४ ई० में शुरू किया। उस समय ऑसगुड (Osgood) और स्टेवन्स (Stevens) की पुस्तकें भी प्रकाश में आ गई थीं। इसलिए इस संशोधन में मेरा प्रयास बराबर यही रहा है कि पाठकों की जानकारी के लिये मैं अद्यतन (Up-to-date) सामग्री दे सकूँ। प्रो० काशीनाथ झा की सेवा इसके प्रूफ सशोधन में भी प्राप्त हुई है। जून की भीषण गर्मी में वाराणसी में रहकर उन्होंने पृष्ठ ८१ से पृष्ठ २१६ तक का प्रूफ देखा। ... जिस आत्मीयता का परिचय दिया है, वह श्लाघ्य और किसी के लिये भी अनुकरणीय है। कुछ अध्यायों के अन्तिम सशोधन और प्रो० झा के साथ प्रूफ-सशोधन में मेरे एक आत्मीय का इतना त्यागमय सहयोग रहा है कि उसके सम्बन्ध में कुछ लिखकर उसके महत्त्व को सीमाबद्ध करना उचित नहीं समझता।

सशोधन की पाण्डुलिपि को फिर से लिखने, ग्राफ और चित्र तैयार करने तथा सामग्री एकत्र करने में इतने छात्रों की सेवाएँ प्राप्त हुई हैं कि उन सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं है। लेकिन इस सिल

लेखक की रचनाएँ

पुस्तक	रु० नये पैसे	प्रकाशक
१—प्रयोगात्मक मनोविज्ञान	१७)५०	तारा पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी १
२—मनोविज्ञान-परिचय (तृ स)	५)५०	
३—शिक्षा मनोविज्ञान	५)५०	
४—सामाजिक मनोविज्ञान (प्रेस में)।		
५—मनोवैज्ञानिक प्रयोग	१०)	ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, ४
६—असामान्य मनोविज्ञान	८)	
७—बाल मनोविज्ञान (तृ स)	५)५०	ज्ञानपीठ लिमिटेड पटना, ४
८—मनोविज्ञान (द्वि स)	१०)	पुस्तक भंडार पटना, ४
९—औद्योगिक मनोविज्ञान		दिल्ली पुस्तकसदन, १२६, कमला मार्केट, नयी दिल्ली
१०—खेल	५०	उषा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर।
११—व्यक्तित्व	५०	

'अपनी बात'

ग्यारह वर्षों के बाद प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पाठकों के हाथ में देते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। वस्तुतः इसके प्रकाशन और रचना का श्रेय पाठकों को ही है। मुझे वह दिन आज भी याद है, जब मेरे तीन विद्यार्थियों ने अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिए मुझसे सन् १९४९ ई० में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पर एक पुस्तक लिखने का आग्रह किया था। मुझे उनका सुझाव अच्छा लगा और मैंने इस दिशा में कार्य करना शुरू कर दिया। फलतः पुस्तक की रचना का कार्य सन् १९५२ ई० में समाप्त हो गया। उस समय इसके लिखने में श्रीराम सच्चिदानन्द शरण, बी० ए०, [illegible] (डिपार्टमेण्ट आफ [illegible], गवर्नमेण्ट आफ बिहार, पटना), पुरुषोत्तम लाल शर्मा, बी० ए० (आनर्स) और प्रो० काशीनाथ झा, एम० ए० (अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग, [illegible] कालेज [illegible]) ने मेरी बहुत सहायता की। अतः इसकी रचना का प्रधान श्रेय मेरे इन्हीं तीन विद्यार्थियों को है।

पुस्तक की रचना समाप्त कर मैं अन्त दिनों तक सन्तोष की साँस न ले सका, क्योंकि उसके बाद ही मुझे अपने श्रद्धेय गुरुवर डाक्टर [illegible] किशोर प्रसाद सिंह, एम० ए०, एम० एस सी०, पी एच० डी० (वर्तमान निदेशक, मनोवैज्ञानिक संस्थान, पटना विश्वविद्यालय, पटना) के चरणों में मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं का विशेष रूप से अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फलतः मैंने पाण्डुलिपि के रूप में ही इसका दूसरा संशोधन कर डाला। इधर इस विषय पर विदेशों में नित्य नयी नयी पुस्तकें प्रकाशित होती रहीं। इसलिये मेरा अपना दूसरा संशोधन भी मुझे सन्तुष्ट न कर सका और तीसरी बार पाण्डुलिपि में मुझे आवश्यक संशोधन करना पड़ा। उस संशोधन में मुझे एम० ए० के दो विद्यार्थियों से अधिक सहायता मिली। अतः इसके निर्माण में श्री योगेन्द्र ठाकुर, एम० ए० और रघुनाथ प्रसाद सिंह, एम० ए० की सेवाएँ भी कम महत्त्व की नहीं रहीं। जब पाण्डुलिपि का तीसरा संशोधन भी मुझे सन्तोषप्रद न लगा तब मैं पुनः चौथी बार पाण्डुलिपि में काट-छाँट करने लगा। उस संशोधन में मुझे अपने सहकर्मी प्रो० अजिजुर्रहमान, एम० ए० से पर्याप्त सहायता मिली और मैं उनसे काफी लाभान्वित हुआ। अतः इसकी रचना में उनका भी सहयोग कम नहीं है। लेकिन, न जाने क्यों इतना करने के बाद भी मैं इसे किसी प्रकाशक को नहीं दे सका और फिर पाँचवीं बार इसका संशोधन सन् १९५८ ई० में शुरू किया। उस समय आसगुड (Osgood) और स्टीवेन्स (Stevens) की पुस्तकें भी प्रकाश में आ गई थीं। इसलिए इस संशोधन में मेरा प्रयास बराबर यही रहा है कि पाठकों की जानकारी के लिये मैं आधुनिकतम (Up-to-date) सामग्री दे सकूँ। प्रो० काशीनाथ झा की सेवा इसके प्रूफ संशोधन में भी प्राप्त हुई है। जून की भीषण गर्मी में वाराणसी में रहकर उन्होंने पृष्ठ ८१ से पृष्ठ २१९ तक का प्रूफ संशोधन कर जिस आत्मीयता का परिचय दिया है, वह श्लाघ्य और किसी के लिये भी अनुकरणीय है। कुछ अध्यायों के अन्तिम संशोधन और प्रो० झा के साथ प्रूफ संशोधन में मेरे एक आत्मीय का इतना त्यागमय सहयोग रहा है कि उसके सम्बन्ध में कुछ लिखकर उसके महत्त्व को सीमाबद्ध करना उचित नहीं समझता।

संशोधन की पाण्डुलिपि को फिर से लिखने, प्रूफ और चित्र तैयार करने तथा सामग्री एकत्र करने में इतने छात्रों की सेवाएँ प्राप्त हुई हैं कि उन सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं है। लेकिन, इस सिल

बी० कॉम, कामेश्वर प्रसाद मिश्र (आयर कोठी), प्रमोदकुमार शर्मा, तारकेश्वर सती प्रसाद, भगवती प्रसाद अग्रवाल [तीनों छात्र एम० ए० परीक्षार्थी], विजय चन्द्र सिंह कपूर, शशि भूषण 'अमल' (एम० ए० छात्र) तथा श्री नित्यानन्द पाण्डेय, तालिमपुर की सेवाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मेरे पूज्य भैया (साहित्याचार्य प० यदुनन्दनशर्मा, बी० ए० (हिन्दी) और मातातुल्या भाभी का स्नेह छाया, धर्मपत्नी की त्यागमय सेवाएँ और पुलपुल (शशि भूषण) के सुकुमारी मनोरंजन का मूल्यांकन करना सम्भव नहीं। मेरे जीवन की सक्रियता और सरसता का सम्पूर्ण श्रेय इन्हीं को है। विषय-सूची तैयार करने में श्री कृष्ण प्रसाद मिश्र, एम कॉम (अन्तिम) और श्री राजेन्द्र पाण्डेय (डुमराँव) की सेवाएँ भी उल्लेखनीय हैं।

इसकी रचना में जिन विद्वानों की रचनाओं एवं जिन सहकर्मियों, शुभार्थियों तथा विद्यार्थियों से जिस तरह का भी सहयोग और प्रोत्साहन मिला है उनके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

मेरे प्रकाशक श्री रमाकान्तजी तथा गिरजाशंकरजी, तारा पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी-१, कम धन्यवाद के पात्र नहीं हैं। इन दोनों सज्जनों ने इसके प्रकाशन में जिस तत्परता और हृदय विशालता का परिचय दिया है, उसके लिए मैं इनका हृदय से आभारी हूँ।

पुस्तक कैसी है, इसका मूल्यांकन पाठक ही कर सकेंगे, लेकिन मेरी कोशिश बराबर यही रही है कि यह पुस्तक विशद अध्ययन करनेवाले पाठकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ हो। इसी को ध्यान में रखकर मनोविज्ञान के प्रमुख विषयों के विभिन्न पहलुओं का विवेचनात्मक उल्लेख किया गया है। किसी भी पहलू का उल्लेख प्रयोगात्मक प्रमाणों के आधार पर किया गया है और यथासंभव प्रयोगों की गति विधियों की भी चर्चा की गई है। पुस्तक के सभी चित्र स्वयं बनवाए गए हैं जिनको बनाने का एक मात्र श्रेय मेरे छात्र मोहन प्रसाद कलाकार, बी० ए० को है। पुस्तक में अपने प्रयोगों के ही ग्राफ, चित्र, आदि दिये गए हैं। जहाँ ऐसा सम्भव नहीं था, वहाँ शास्त्रीय चित्रों की रूप रेखा दे दी गई है। इन चित्रों और उदाहरणों से विषय को समझना आसान हो गया है। जहाँ तक हो सका है वहाँ तक मैंने भाषा की सरलता, वैज्ञानिकता और स्पष्टता पर अधिक ध्यान दिया है, किन्तु इतना करने पर भी कुछ पारिभाषिक शब्दों की कठिनता दूर नहीं हो सकी है। मैं उन्हें सरल बनाने के पक्ष में भी न था, क्योंकि वैसा करने में उनकी ध्वनि की सार्थकता नहीं रह जाती जैसा कि भारतीय पारिभाषिक शब्दों के साथ लागू होता है।

मैं इस पुस्तक में अपनी मौलिकता का दावा नहीं करता, लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि वर्षों के अध्ययन और अध्यापन से मैंने किसी विषय को जिस रूप में समझा है, उसी को अपने शब्दों में अपने ढंग से भाषा बद्ध करने की कोशिश की है। यह तो पाठक ही कह सकेंगे कि मुझे अपने इस प्रयत्न में कितनी सफलता मिली है। जिन स्थलों पर किसी विषय के सम्बन्ध में मैं सहमत नहीं था, उसके बारे में मैंने स्वतन्त्रतापूर्वक स्पष्ट शब्दों में अपने विचार को व्यक्त कर दिया है। इस तरह, मैंने हर तरह से इस पुस्तक को पाठकों की सेवा योग्य बनाने की कोशिश की है और विश्वास है, जिनके लिये इसकी रचना की गई है, वे इससे लाभान्वित होंगे। तभी मैं अपने प्रयास को भी सफल समझूँगा।

अपनी इस तुच्छ रचना का समर्पण मैंने अपनी पूजनीया माताजी के चरण-कमलों में किया है और पूर्ण विश्वास है, वे अपने बेटे की इस तुच्छ भेंट को सहर्ष स्वीकार करेंगी।

मनोविज्ञान मंदिर

विषय-सूची

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मनोविज्ञान के विकास की एक लम्बी कहानी है और प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिये मनोविज्ञान की विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं का संक्षिप्त ज्ञान आवश्यक है। वैज्ञानिक प्रगति के पूर्व मनोविज्ञान का इतिहास दर्शनशास्त्र मे अन्तर्निहित था। सत्रहवी शताब्दि के प्रारभ में भौतिकविज्ञान (Physics) में प्रगति की नवचतना आई और इसका सम्यक् प्रभाव मनोविज्ञान के ऊपर भी पड़ा। फलत जैसे जैसे विज्ञान प्रगतिशील हुआ वैसे वैसे मनोविज्ञान भी वैज्ञानिक रूप ग्रहण करता गया।

यो तो यूनानी विद्वानो ने मनोविज्ञान के विभिन्न तथ्यो का उद्घाटन ईसा से कई शताब्दि पूर्व ही किया था, पर उनका आधार मात्र उनकी कल्पना था। अतएव उन विषयों की चर्चा केवल शास्त्र का विषय बन कर ही रह गई।

आधुनिक मनोविज्ञान का मूलस्रोत डेकार्टे (Descartes) के दार्शनिक सिद्धान्तों से प्रारम्भ होता है। उस समय भौतिकविज्ञान मे प्रगति हो रही थी। गैलेलियो (Galileo) ने गति तथा निश्चलता (Motion and Inertia) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इन्ही दो तथ्यों के आधार पर उसने सभी प्रकार की भौतिक क्रियाओं की व्याख्या करने की कोशिश की। पुन हार्वे (Harvey) ने रक्त-सचार (Circulation of blood) का अनुसन्धान कर यह व्यक्त किया कि सभी प्रकार की शारीरिक क्रियाओ की व्याख्या भौतिक तथ्यों (Physical facts) के माध्यम से सभव है। डेकार्टे पर इन अनुसन्धानो का विशेष असर पड़ा। उसने पशु एव मनुष्य के व्यवहार के अध्ययन मे भौतिकविज्ञान का सहारा लिया तथा शरीर और मन को एक दूसरे से भिन्न माना। आगे चल कर यह द्वैतवाद (Dualism) के सिद्धान्त के रूप मे हमारे सामने आया। बाद मे इस द्वैतवाद की प्रतिक्रिया (Reaction) के स्वरूप मनोविज्ञान मे एकवाद (Monism) का आविर्भाव हुआ जिसके अनुसार मन और शरीर एक ही तत्त्व के दो पहलू माने गए। इन विभिन्न वादो से भावी मनोविज्ञान को अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन मे यथेष्ट सहायता मिली। डेकार्टे के अनुसार जीव (Organism) के व्यवहार साधारणत सहजक्रियाओं (Reflex actions) पर आधारित रहते है। उसने मनुष्य के जीवन में जन्मजात प्रत्ययों (Innate Ideas) का महत्त्वपूर्ण स्थान बताया।

इसके बाद लॉक (Locke) नामक दार्शनिक का नाम उल्लेखनीय है। उसने डेकार्टे के जन्मजात प्रत्ययों का खण्डन करते हुए यह व्यक्त किया कि जन्म के समय बालक के मन मे किसी प्रकार का भाव अथवा प्रत्यय नही होता। आयुवृद्धि के साथ अनुभव एव शिक्षण (Learning) के कारण ही उसमे विभिन्न सस्कारों का आविर्भाव होता है

विशेष रूप से प्रभावित हुआ। डार्विन की सहायता से गाल्टन (Galton) ने बताया कि व्यक्ति की मानसिक योग्यताएँ एक दूसरे से भिन्न हुआ करती हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के शीलगुण (Traits) को अपने वंशानुक्रम (Heredity) से प्राप्त करता है। उसने इस प्रकार ने मानसिक प्रक्रियाओं के गुणात्मक (Qualitative) अध्ययन पर जोर दिया। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पर गाल्टन के इस अध्ययन का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा और वैयक्तिक भिन्नता (Individual difference) मनोविज्ञान का प्रमुख विषय बन गया जो आज भी मनोविज्ञान का एक प्रमुख और सबसे आवश्यक अंग माना जाता है। उस समय इङ्गलैंड तथा अमेरिका के मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक योग्यताओं (Mental abilities)—खासकर, शिक्षण (Learning) तथा बुद्धि (Intelligence) के अध्ययन में विशेष अभिरुचि दिखलाई। थॉर्नडाइक (Thorndike) ने पशु-शिक्षण (Animal learning) के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया जिसके फलस्वरूप मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अन्य विद्वान प्रयोग करने को प्रोत्साहित हुए। जहाँ पहले प्रयोगात्मक अध्ययन सम्भव नहीं था वहाँ भी प्रयोग होने लगे। विभिन्न प्रक्रियाओं के दैहिक आधार (Physiological basis) को समझनेमें इससे काफी मदद मिली। आज भी शिक्षण, चिन्तन (Thinking), आदि के क्षेत्र में जानवरों पर महत्त्वपूर्ण प्रयोग हो रहे हैं। इस तरह प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है।

मनोविज्ञान में 'वाद'

उंट की प्रयोगशाला में जिन विद्वानों ने प्रयोग किया उनमें उंट के अतिरिक्त टिचनर (Titchener), हेल्महोल्टज, आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उन सभी लोगों ने जीव के अध्ययन के लिए अन्तर्निरीक्षण (Introspection) को मनोवैज्ञानिक विधि मानी। इसी कारण आगे चलकर वे अन्तर्निरीक्षणवादी मनोवैज्ञानिक (Introspectionist Psychologists) कहलाए। इस वाद के माननेवाले मनोवैज्ञानिक अन्तर्निरीक्षण के सहारे चेतना (Consciousness) का अध्ययन करते थे, क्योंकि इसके अनुसार मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय चेतना ही था। सन् १९१० ई० तक चेतना मनोविज्ञान के अध्ययन का एकमात्र विषय बनी रही।

इसी समय जेम्स (James), डिवी (Dewey), एंजिल (Angell), आदि मनोवैज्ञानिकों का ध्यान जीव की विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं (Mental processes) पर गया। उन लोगों ने मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन को ही मनोविज्ञान का प्रमुख विषय माना और फलस्वरूप उन्होंने मानसिक परीक्षण (Mental tests) तथा पशुमनोविज्ञान पर विशेष जोर दिया। किन्तु, व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों (Behaviourist Psychologists) के चलते उनका प्रभाव लुप्त हो गया। एंजिल की अध्यक्षता में वाट्सन (Watson) शिकागो में चूहों की शिक्षण योग्यता का अध्ययन कर रहा था। उसने अपने अनुसंधान के आधार पर सन् १९१३ ई० में व्यवहारवाद की नींव डाली जिसके अनुसार जीव के व्यवहार को ही मनोविज्ञान का प्रधान एवं एकमात्र अध्ययन-विषय माना गया। उसने मनोविज्ञान के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये चेतना (Consciousness) को मनोविज्ञान का अध्ययन-विषय मानने में आपत्ति की और उसी तरह अन्तर्निरीक्षण को भी आत्मगत (Subjective) एवं अवैज्ञानिक बतलाया। उसके अनुसार हमारा कोई भी व्यवहार किसी

उत्तेजना की प्रतिक्रिया (Response) है। हमारे शरीर मे सूई (उत्तेजना) चुभाई जाती है और हम 'ओह' प्रतिक्रिया कर उठते हैं, क्योंकि प्रत्येक प्रतिक्रिया का निश्चित सम्बन्ध उसकी उत्तेजना (बाह्य या आन्तरिक) से रहता है। अत हम जीव की प्रतिक्रिया अथवा व्यवहार के आधार पर उसकी मानसिक अवस्थाओं का अध्ययन कर सकते हैं। ऊपर के उदाहरण मे 'ओह' शब्द से ही कोई यह समझ सकता है कि हम पीडा की अनुभूति हुई है, क्योंकि इस 'ओह' का सबध 'सूई' से है जिसके चुभने से पीडा होती है। इस तरह वाटसन ने उत्तेजना प्रतिक्रिया-सम्बन्ध के आधार पर जीव का अध्ययन शुरू किया। उसका उत्तेजना प्रतिक्रिया सूत्र (S—R—Formula) मनोविज्ञान मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आगे हम लोग देखेंगे कि आधुनिक मनोविज्ञान किस प्रकार और कहा तक इस सूत्र के सहारे जीव की मानसिक अवस्थाओं का अध्ययन करता है।

व्यवहारवाद के प्रादुर्भाव के समकालीन ही जर्मनी मे जेस्टाल्टवाद (Gestalt school) का आविर्भाव हुआ जिसका प्रभाव अमरीकी मनोवैज्ञानिकों पर भी पडा। इस वाद के अनुसार सम्पूर्ण जीव (Whole organism) मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय माना गया। जेस्टाल्टवादियों का मत है कि जीव के अश-विशेष के अध्ययन से उसकी सम्पूर्ण इकाई (Unit) का अध्ययन असम्भव है। अत सम्पूर्ण जीव का अध्ययन ही श्रेयस्कर है। इस सिद्धान्त के प्रवर्त्तकों मे वर्दाइमर (Wertheimer), कोफ्का (Koffka), कोहलर (Kohler), आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मनोविज्ञान पर इसका काफी प्रभाव पडा और सन् १९३० ई० तक इसका काफी बोलबाला रहा और आज भी मनोविज्ञान के कई क्षेत्रों मे जेस्टाल्ट-सिद्धान्त काफी अशों मे मान्य है। लेविन (Lewin) के प्रसिद्ध क्षेत्र-सिद्धान्त (Field Theory) ने अपने अधिकाश रूपों मे जेस्टाल्टवाद को अपनाया है।

आधुनिक मनोविज्ञान का पृष्ठाधार कौन सा 'वाद' विशेष है, यह कहना बहुत कठिन है। हमने देखा अन्तर्निरीक्षणवाद आया और उसने चेतन जीव के अध्ययन का तरीका बताया। व्यवहारवाद ने प्रयोगात्मक मनोविज्ञान को विधेयात्मक (Objective) और वैज्ञानिक बनाया। उसी समय सम्पूर्ण के सहारे अश का अध्ययन करनेवाले जेस्टाल्टवादियों का अभ्युदय हुआ और मनोविज्ञान का साहित्य प्रौढ हो चला। इसके बाद उन सभी का नवीन रूप हुआ और सभी ने प्रयोगात्मक मनोविज्ञान को प्रगति के पथ पर सबल रूप मे आगे बढाने में योगदान दिया। किन्तु, आज ये 'वाद,' 'वाद' के रूपमें समाप्त हो चुके हैं। किसी आधुनिक मनोवैज्ञानिक को पूर्णत आज किसी वाद–विशेषका प्रपोषक नहीं कहा जा सकता। आज भी प्रत्येक वाद का प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु किसी की एकाकी सत्ता नहीं है। मनोविज्ञान का वैज्ञानिक क्षेत्र अधिक प्रशस्त हो चुका है और यह खुशी की बात है कि मनोवैज्ञानिक आज 'वाद' की कारा से मुक्त हो तटस्थ और वैज्ञानिक नीतिका अनुसरण कर रहे हैं।

सच तो यह है कि आज मनोविज्ञान का सम्पूर्ण दृष्टिकोण ही बदला हुआ है। जीव पर वातावरण (Environment) का काफी असर पडता है और उसके समक्ष जीने की समस्या है। इसी समस्या–समाधान (Problem solving) के लिये जीव विभिन्न प्रतिक्रियाएँ करता है। इस तरह वातावरण के प्रति जीव की प्रतिक्रियाएँ, जैव नियम (Biological Principles) के आधार पर होती हैं। मानव व्यवहार के इन आधारभूत अगों का अध्ययन करना ही आधुनिक मनोविज्ञान का विषय है। पुन इस अर्जित ज्ञान के

आधार पर मानव की विभिन्न क्रियाओं तथा घटनाओं की गतिविधि का नियन्त्रण (Control) एवं भविष्यवाणी (Prediction) करना इसका अन्तिम उद्देश्य है। अतः वर्त्तमान मनोविज्ञान की अभिरुचि किसी 'वाद' विशेष में न होकर अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये पूर्ण तटस्थ रहकर अपने अनुसन्धान-कार्य में है।

परिभाषा और विषय-विस्तार
(Definition and Scope)

मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ होता है, मन का विज्ञान। शताब्दियों पूर्व, यूनानी दार्शनिकों ने मन का अर्थ आत्मा (Soul) से लिया, जिसके कारण मनोविज्ञान को आत्मा का विशेष ज्ञान माना गया। किन्तु, इस शाब्दिक अर्थ से मनोविज्ञान के आलोच्य-विषय (Subject matter) पर कोई प्रकाश नहीं पड़ सका। साथ ही, मन अथवा आत्मा का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नहीं था। अतः यह मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय नहीं बन सका। उन्होंने चेतना को मनोविज्ञान का अध्ययन-विषय माना। उन्नीसवीं शताब्दि तक मनोविज्ञान चेतना का विज्ञान माना जाता रहा और जीव की चेतन अनुभूतियाँ (Conscious experiences) उसके अध्ययन का विषय।

बीसवीं शताब्दि के प्रारम्भ में मनोविज्ञान जीव के व्यवहार का विज्ञान बना, जीव के व्यवहार उसके अध्ययन के विषय हुए। इसके प्रवर्तकों ने चेतन अनुभूति को व्यक्तिगत (Personal) एवं आत्मगत (Subjective) माना। फलतः मनोविज्ञान के अध्ययन-क्षेत्र में बाह्यनिरीक्षण (Objective observation) एवं प्रयोगात्मक विधि (Experimental method) का समावेश हुआ।

इसके बाद उपर्युक्त दोनों विचारों के समन्वय से मनोविज्ञान अनुभूति एवं व्यवहार का समर्थक विज्ञान (Positive science) माना गया। मनोवैज्ञानिकों ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा—"मनोविज्ञान अनुभूति एवं व्यवहार का वह समर्थक विज्ञान है जिसकी अभिव्यक्ति अनुभूति के माध्यम से होती है"[१]। आज भी चाहे जिस रूप में भी हो, मनोविज्ञान अनुभूति एवं व्यवहार का अध्ययन करता है। ऐसी अवस्था में यह परिभाषा अन्य परिभाषाओं की अपेक्षा अधिक माननीय थी। किन्तु, लोगों की आपत्ति इस परिभाषा के अन्तिम पाठ पर हुई। उनका कहना था कि जब अनुभूति ही मनोविज्ञान की अभिव्यक्ति का माध्यम है तब तो अन्तर्निरीक्षण ही इसके अध्ययन की एक मात्र विधि हो सकता है, जिसे प्रयोगात्मक कसौटी पर वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। अतः कतिपय यथार्थता के बावजूद भी आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इस परिभाषा को नहीं माना।

अन्तर्निरीक्षणवादियों तथा व्यवहारवादियों के कथन में आंशिक सत्यता पाकर मनोवैज्ञानिकों ने बीच की ही राह अपनायी और वे जीव की अभियोजनशीलता पर जोर देने लगे। उन्होंने पाया कि प्रत्येक जीव के समक्ष वातावरण में अपने को अभियोजित (Adjust)

१ "Psychology is the Positive science of experience and behaviour interpreted in terms of experience"

करने की समस्या है और निस्सन्देह मनोविज्ञान का यही आलोच्य विषय है। अत [illegible] लोगों ने मनोविज्ञान की परिभाषा देते हुए कहा कि 'मनोविज्ञान वातावरण [illegible] अन्तर्प्रतिक्रियाओं से समुत्पन्न क्रियाओं (मानसिक एवं शारीरिक) के [illegible] विज्ञान है"[1]। संक्षेप में, इन दिनों मनोविज्ञान की यही परिभाषा दी जाती है। [illegible] परिमार्जन में जो विभिन्न अवस्थाएँ आईं उनकी विवेचना यहाँ जान बूझ कर [illegible] गई है। इसके दो कारण हैं, पहला कारण तो यह है कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में [illegible] में कुछ बातें लिखी जा चुकी हैं जिनकी पुनरावृत्ति उचित नहीं है। दूसरा कारण यह है कि [illegible] विवाद सामान्य मनोविज्ञान का है, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का नहीं। अत जिज्ञासु पाठक इसके लिये सामान्य मनोविज्ञान की पुस्तक देख सकते हैं।

हमारे इस तरह के कथन से ऐसा नहीं समझना चाहिये कि प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का सम्बन्ध सामान्य मनोविज्ञान से एकदम नहीं है। वस्तुत प्रयोगात्मक मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान का एक अनिवार्य अंग है। एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी दोनों के आलोच्य-विषय (Subject matter) एक ही है—जीव की क्रियाएँ (मानसिक एवं शारीरिक)। [illegible] प्रयोगात्मक मनोविज्ञान भी उपर्युक्त परिभाषा को ही मानता है। लेकिन, दोनों में [illegible] अन्तर अध्ययनविधि के सम्बन्ध में है। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के अन्तर्गत किसी भी मानसिक प्रक्रिया का अध्ययन प्रयोगों के सहारे होता है। अत विभिन्न मनोवैज्ञानिक समस्याओं का प्रयोगात्मक विवेचन ही इसका विषय है। यह जीव की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन प्रयोगशाला (Laboratory) की नियन्त्रित अवस्था में करता है। प्रयोगशाला के अन्तर्गत अपने वैज्ञानिक नियन्त्रण के आधार पर यह एक सामान्य वातावरण का निर्माण करता है। उस वातावरण में जीव विशेष (प्रयोज्य) को स्वाभाविक रूप से अभियोजित कराया जाता है। प्रयोक्ता (Experimenter) वैसी अवस्था में सामान्य ढंग से अपने प्रयोज्य (Subject) को उत्तेजित करता है तथा उससे समुत्पन्न प्रतिक्रियाओं (Reactions) का अध्ययन करता है। अपने प्रयोगात्मक निष्कर्ष की यथार्थता (Accuracy) एवं विश्वसनीयता (Reliability) की जाँच के लिये वह प्रयोगशाला के सामान्य एवं एकरूप (Uniform) वातावरण में कई प्रयोज्यों पर अपने प्रयोग को बार बार दुहराता है और अन्त में प्रयोग-प्राप्तांक (Score) के आधार पर सामान्य नियम का प्रतिपादन करता है। इस तरह, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के लिये प्रयोज्य (Subject), प्रयोक्ता (Experimenter) एवं प्रयोगशाला अत्यन्त आवश्यक अंग हैं। प्रयोगशाला में वैज्ञानिक यन्त्रों का सर्वदा प्रयोग होता है। प्रयोज्य और प्रयोक्ता के सुन्दर एवं सरस सम्बन्ध पर ही प्रयोग की सफलता निर्भर करती है।

प्रयोगों के समावेश से मनोविज्ञान सीमित हो गया है। विषय में गम्भीरता एवं ठोसत्व आ गया है। आज मनोविज्ञान जीव की प्रतिक्रियाओं का वर्णन मात्र नहीं करता, बल्कि अपनी वैज्ञानिक कसौटी पर कस कर नपे तुले शब्दों में उनकी संयत एवं व्यवस्थित व्याख्या करता है। प्रयोगों के आधार पर निस्सन्देह यह जीव की क्रियाओं का एक समर्थक विज्ञान हो गया है। इसके प्रयोग परिणाम संख्यात्मक (Quantitative) एवं गुणात्मक (Qualitative) दोनों प्रकार के होते हैं। संख्यात्मक आधार पर हम जीव की

१ "Psychology is the positive science of the activities produced by the interactions between the Organism and the Environment"

प्रतिक्रियाओं की वैयक्तिक भिन्नता (Individual difference) के संबंध में अधिक यथार्थ तथा निश्चय रूप से कुछ कहने में समर्थ होते है। मनोविज्ञान प्रयोग के बल पर ही विशुद्ध विज्ञान होने का दावा करता है। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान जीव की मानसिक प्रक्रियाओं के विभिन्न पहलुओं पर प्रयोग कर स्पष्ट, सरल और प्रत्यक्ष प्रदत्त (Data) उपस्थित कर रहा है। जीव की संवेदना, इच्छा, प्रत्यक्षीकरण, चिंतन, भाव, संवेग, शिक्षण, [illegible], ध्यान, प्रतिमा, कल्पना, बुद्धि, व्यक्तित्व, वैयक्तिक भिन्नता, आदि सभी इसके अध्ययन-विषय है। इस तरह इसका विषय-विस्तार काफी विस्तृत हो गया है। जीव का सम्पूर्ण जीवन, उसकी विभिन्न शारीरिक (Physiological) और मानसिक (Mental) क्रियाएँ सभी इसके अध्ययन के विषय है। किन्तु, यहा पर उल्लेखनीय है कि यद्यपि यह सम्पूर्ण जीव का अध्ययन करता है, किन्तु इन सभी अध्ययनों का सम्बन्ध जीव के मानसिक पहलू से रहता है और यहा यह जीवविज्ञान (Biology) से अलग हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोग

कोई भी विज्ञान किसी निश्चित विधि (Method) के सहारे ही अपने आलोच्य-विषय (Subject matter) का अध्ययन करता है। अत किसी भी विषय-निरूपण का वैज्ञानिक या अवैज्ञानिक होना उसकी अध्ययन विधि पर निर्भर करता है। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की अध्ययन-विधि भी इस बात का प्रमाण है। इसकी विधि पर अच्छी तरह विचार करना इसलिये भी जरूरी हो जाता है, जैसा कि हम जानते है, कि यही इसे मुख्य रूप से सामान्य मनोविज्ञान से अलग करती है। यह अध्ययन-विधि प्रयोग (Experiment) की है। यह मनोविज्ञान जीव की किसी भी क्रिया का अध्ययन प्रयोगों के सहारे करता है।

किसी भी विज्ञान की तरह प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का आधार भी निरीक्षण है। किन्तु, अन्य विज्ञानों से भिन्न इसका निरीक्षण दो तरह से होता है, प्रथम तो प्रयोज्य (Subject) अपनी अनुभूति एवं मानसिक प्रक्रियाओं का स्वयं निरीक्षण करता है जिसे आत्म-निरीक्षण या अन्तर्निरीक्षण (Introspection) कहते है, तथा द्वितीय, प्रयोक्ता (Experimenter) ध्यानपूर्वक प्रयोज्य की क्रियाओं का निरीक्षण करता है जिसे बाह्य-निरीक्षण (Objective observation) कहते है। इन दोनो निरीक्षणों के आधार पर ही व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं को समझा जा सकता है। आत्म-निरीक्षण (Self-observation) से प्राप्त तथ्य को सबल बनाने के लिये ही बाह्य निरीक्षण (Objective observation) किया जाता है। इसके अभाव मे परीक्षाफल का वैज्ञानिक महत्त्व काफी कम हो जाता है। प्रयोज्य के अन्तर्निरीक्षण मे विभिन्न व्यक्तिगत अंग—पक्षपात, ईर्ष्या, द्वेष, वगैरह का काफी प्रभाव रहता है जिसे बाह्य निरीक्षण द्वारा जाचकर संतुलित और तथ्यपूर्ण बनाया जाता है। इसी तरह बाह्य निरीक्षण से प्राप्त फल की व्याख्या के लिए वैयक्तिक अनुभूति का आधार आवश्यक है जो अन्तर्निरीक्षण द्वारा प्राप्त होता है।

आत्मनिरीक्षण अथवा अन्तर्निरीक्षण (Self observation or Introspection) एक प्रकार का मानसिक व्यायाम है। प्रयोग करते समय प्रत्येक प्रयोज्य के सामने यह समस्या उपस्थित होती है, किन्तु वस्तुत यह कोई कठिन कार्य नही है। सच पूछिये तो हम लोग प्रति दिन प्रत्येक समय अन्तर्निरीक्षण करते रहते है। आप कहते है "मुझे भूख लगी है।

मेरी यहाँ रहने की इच्छा नहीं है," आदि। आपके ये कथन अपनी अनुभूति के ही परिचायक हैं। निश्चय ही ऐसा कहने के पूर्व (इसे जानने के लिये) आपने अन्तर्निरीक्षण किया है। किन्तु, इसे हम वैज्ञानिक अन्तर्निरीक्षण नहीं कह सकते। वैज्ञानिक विधि से अन्तर्निरीक्षण करने के लिए प्रयोज्य को अपनी मानसिक प्रक्रियाओं के प्रति सतर्क, सचेष्ट, निश्चित, एवं सावधान होने की आवश्यकता है, क्योंकि प्रयोग करते समय प्रयोज्य का अन्तर्निरीक्षण एक खास अवस्था में होता है। उस समय उसको अपने विचार, भाव, संवेग, आदि पर नियन्त्रण कर दिशा विशेष में अपनी मानसिक स्थिति पर ध्यान लगाना होता है, उसका अध्ययन करना पड़ता है। इस तरह, प्रयोग की समस्या के आधार पर दिशा विशेष में नियन्त्रित एवं परिमार्जित ढंग से मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना ही अन्तर्निरीक्षण (Introspection) है। अन्तर्निरीक्षण व्यवस्थित हो सकता है या नहीं, यह एक दूसरा प्रश्न है। यदि इस पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि जैसे ही हम किसी मानसिक प्रक्रिया या मन का अवलोकन स्वयं अध्ययन करने लगते हैं वह (प्रक्रिया) समाप्त हो जाती है, क्योंकि ऐसा करने में मन को ही मन की प्रक्रिया का अध्ययन करना होता है। इसी से मनोवैज्ञानिकों ने अन्तर्निरीक्षण को पुनर्निरीक्षण (Retrospection) माना है। फिर भी, अभ्यास के सहारे इस विधि को व्यवस्थित बनाने में काफी सहायता मिलती है। साथ ही, यदि मानसिक प्रक्रिया अधिक जटिल (Complex) अथवा क्षणिक (Transitory) न हो तो अन्तर्निरीक्षण करने के लिए अपने ध्यान, विचार, आदि को उस पर नियंत्रित रूप से लगाना आसान और सम्भव होता है और ऐसी अवस्था में व्यवस्थित अन्तर्निरीक्षण भी सम्भव है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में प्रयोग समाप्त होने पर प्रयोज्य (Subject) से अन्तर्निरीक्षणात्मक सूचना (Introspective report) ली जाती है। इस तरह के अन्तर्निरीक्षण पर हम मूलतः विश्वास नहीं करते। इसका कारण यह है कि इसमें व्यक्ति जो कुछ भी कहता है वह उसके स्मरण पर ही आधारित रहता है जिसमें पुनर्निरीक्षण (Retrospection) का ही अधिक हाथ रहता है। किन्तु, मनोवैज्ञानिकों का ऐसा अनुभव है कि प्रयोग करते समय प्रशिक्षित प्रयोज्य (Trained Subject) स्वयं अन्तर्निरीक्षण करते रहता है। अतः प्रयोग के अन्त में वह जो सूचना देता है वह पूर्व के अन्तर्निरीक्षण से ही प्रभावित रहती है। इस तरह अन्तर्निरीक्षण और पुनर्निरीक्षण परस्पर सम्बद्ध हो जाते हैं।

किसी किसी प्रयोग का मुख्य उद्देश्य संख्यात्मक परिणाम (Quantitative result) प्राप्त करना होता है। ऐसी अवस्था में अन्तर्निरीक्षण अथवा पुनर्निरीक्षण का स्थान गौण हो जाता है। प्रयोक्ता (Experimenter) अपना ध्यान सिर्फ सम्भव संख्यात्मक प्रदत्त (Quantitative data) को सुन्दर और व्यवस्थित रूप में इकट्ठा करने पर रखता है। फिर भी, प्रयोज्य के आत्मगत पहलू (Subjective aspect) को वह पूर्णतया त्याग नहीं देता है। कारण, कभी कभी निरीक्षण (observation) के आधार पर जो प्रदत्त प्राप्त होता है वह किसी तरह की कमीबेशी के कारण ऐसा प्रयोग-परिणाम (Experimental result) देता है जो निरर्थक मालूम होता है। ऐसी अवस्था में प्रयोज्य की अन्तर्निरीक्षणात्मक सूचना प्रयोग परिणाम को सार्थक बनाती है। अतः नियमतः प्रत्येक प्रयोग में प्रयोक्ता (Experimenter) को प्रयोज्य की अनुभूति को जानना आवश्यक होता है। साथ ही, प्रयोगफल का विश्लेषण करते समय बाह्य निरीक्षण और प्रयोज्य की अन्तर्निरीक्षणात्मक सूचना दोनों का उसे यथेष्ट सदुपयोग भी करना होता है।

इसी प्रकार प्रयोगकाल मे प्रयोज्य के व्यवहार प्रयोक्ता के लिये बहुत महत्त्व के होते है। प्रधानत व्यक्तित्व-परीक्षण, यथा, शब्द साहचर्य परीक्षण (Word Association Test), इत्यादि मे इसका महत्त्व और अधिक होता है। व्यक्ति की आन्तरिक अवस्थाओ और उनके परिवर्तनो का प्रभाव उसके व्यवहार पर काफी पडता है। बहुत सी बाते न तो विधेयात्मक वक्तव्य मे आ पाती है और न किसी कारणवश प्रयोज्य अपनी अन्तर्निरीक्षणात्मक सूचना मे ही बताता है, परन्तु उनका पता बाह्य निरीक्षण से लग जाता है। मान ले, प्रयोज्य ने किसी व्यक्ति को जान से मार दिया है। ऐसी स्थिति मे हम आशा कर सकते है कि स्वतन्त्र साहचर्य परीक्षण (Free Association Test) मे जैसे ही उसके समक्ष 'लाश' शब्द आयगा उसमे विचित्र प्रकार के असामान्य व्यवहार होंगे जो सरलतापूर्वक बाह्य निरीक्षण द्वारा अंकित किये जा सकते है। इसी तरह, जैसा कि हम जानते है, हमारे मौखिक व्यवहार और आंगिक प्रतिक्रियाओ से विभिन्न संवेगों (Emotions) की अभिव्यक्ति होती है। किन्तु, निरीक्षण लिखते और उसकी व्याख्या करते समय काफी सावधानी से काम लेने की जरूरत होती है, क्योंकि निरीक्षण अवैज्ञानिक होने से कभी कभी अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है।

प्रयोग (Experiment) का स्थान पशु मनोविज्ञान (Animal Psychology) मे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। चूहे, बिल्ली, मछली, कुत्ते, आदि छोटे छोटे जीवों के अध्ययन के आधार पर हमलोगो ने मानव मन की विभिन्न प्रक्रियाओ की काफी जानकारी प्राप्त की है। सामान्य एव प्राकृतिक वातावरण मे मनुष्य की अपेक्षा पशुओं पर प्रयोग करना अधिक संभव एव व्यावहारिक है। इसके मुख्य दो कारण है—एक तो यह कि जानवरो का अध्ययन हम पूर्ण नियन्त्रित अवस्था मे सफलतापूर्वक कर सकते है और दूसरे कुछ मानवीय समस्याओं (Human problems) की व्याख्या सिर्फ पशु अध्ययन से ही संभव है, जैसे, शिक्षण मे मस्तिष्क का क्या हाथ है? या मस्तिष्क किस प्रकार कार्य करता है? आदि। कोई भी व्यक्ति प्रयोग के लिये अपने मस्तिष्क को बर्बाद करना नही चाहेगा।

इसके अतिरिक्त, मनोवैज्ञानिक प्रयोग के लिए कुछ साधारण बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। प्रत्येक प्रयोग मे प्रयोक्ता एव प्रयोज्य की आवश्यकता होती है। प्रयोग प्रारंभ होने के पहले प्रयोज्य को होने वाले प्रयोग के सम्बन्ध मे कोई भाव नही रखना होता है। अपनी अनुभूति के प्रति वह सच्चा, तर्क एव भेद भाव रहित होता है। मनोवैज्ञानिक निरूपण मे अच्छा या बुरा कुछ नहीं होता, इसमे जो होता है वह सत्य और तथ्य होता है। अत किसी अनुभूति को अच्छी या बुरी मानकर तथा उससे सम्बन्धित किसी अज्ञात भय से डरकर प्रयोज्य को कदापि हिचकिचाने की जरूरत नही होती। दूसरी ओर, प्रयोक्ता के ऊपर प्रयोग की सारी जवाबदेही होती है। अत उसे प्रयोग मे पूरी रुचि और सावधानी रखनी पड़ती है। सबसे पहले वह प्रयोग की आवश्यक चीजों को इकट्ठा कर लेता है। तत्पश्चात् प्रयोज्य को यथास्थान बैठाकर उस प्रयोग विशेष मे उसे क्या करना होगा, इसका निर्देश (Instructions) देता है। उस प्रयोग मे व्यवहृत यन्त्रों का व्यवस्थापन (Adjustment) और उसका संचालन अच्छी तरह जानना आवश्यक होता है। प्रयोग की गतिविधि (Procedure) का भी उसे स्पष्ट ज्ञान रहता है और सबसे आवश्यक बात यह है कि प्रयोगकाल मे वह एक वैज्ञानिक की तरह पूर्ण सक्रिय होते हुए तटस्थ तथा निष्पक्ष रहता है, यानी, वह प्रयोग मे प्राप्त प्रदत्त को ज्यों का त्यों अंकित करते जाता है। प्रयोग

प्रारम्भ करने के पूर्व प्रयोज्य को सभी आवश्यक सूचनाएँ दे दी जाती है तथा प्रयोगकाल में उसकी भाव भंगिमा तथा अन्य व्यवहार, आदि का निरीक्षण कर उन्हें भी अंकित कर लिया जाता है। यह काम इतनी बारीकी से होता है कि प्रयोज्य को उसका अंदाज भी नहीं लगता।

प्रयोग चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, परन्तु वस्तुतः वह किसी न किसी अनुसंधान का अङ्ग होता है। अतः प्रयोग करते समय प्रयोक्ता को उस सम्बन्ध का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक होता है, क्योंकि इसके अभाव मे उसके प्रयोग का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

प्रयोग आरम्भ करने के पहले उसमे अपनाइ जाने वाली विधि पर पूर्णरूप से विचार कर लेना भी आवश्यक होता है। प्रयोग जब एक विधि से आरम्भ कर दिया जाता है तो उसे समाप्त होने तक बीच मे उसे कभी भी बदला नहीं जाता। उसमे किसी प्रकार का संशोधन अथवा परिवर्द्धन किसी हालत मे नहीं होता। ऐसा करने से प्रयोज्य भ्रम में पड़ जाता है। उसका मानसिक सतुलन (Mental equilibrium) विगड़ जाता है और प्राप्त प्रदत्त का महत्त्व कम हो जाता है। इस तरह प्रयोग की सार्थकता काफी अंश में प्रयोक्ता की सतर्कता, सचेष्टता एव कार्यपटुता पर निर्भर करती है।

यहा यह भी उल्लेख कर देना अच्छा होगा कि गुणात्मक (Qualitative) प्रयोगों मे प्रयोक्ता साधारणतः मानसिक प्रक्रियाओं की खोज करता है, किन्तु सख्यात्मक प्रयोगों मे उसका ध्यान उन प्रक्रियाओं के माप की ओर अधिक लगा रहता है। टिचनर के अनुसार "गुणात्मक प्रयोग का उद्देश्य व्याख्या करना है तथा सख्यात्मक का मापना"[१]। इस तरह गुणात्मक प्रयोग मुख्यतः अन्तर्निरीक्षण पर निर्भर करता है। दूसरी ओर, सख्यात्मक प्रयोग के लिए सम्पूर्ण प्रयोग को इस प्रकार व्यवस्थित एव नियन्त्रित रखने की आवश्यकता होती है जिससे उन प्रक्रियाओं का माप हो सके। इस प्रकार पहले प्रकार के प्रयोग मे प्रयोज्य का पूर्ण सचेष्ट एव सावधान रहना होता है तथा दूसरे प्रकार के प्रयोग मे अनुपात्ता प्रयोक्ता को अधिक सावधान होने की आवश्यकता होती है। सख्यात्मक प्रयोग के लिए विशिष्ट योग्यता एव परिपक्व अनुभव अनिवार्य है।

मनोशारीरिक विधियाँ

(Psychophysical methods)

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान मे सख्यात्मक प्रयोगो (Quantitative experiment) का बहुत अधिक महत्त्व है। ऐसे प्रयोगों के समुचित विकास के लिए विभिन्न विधियों का अनुसधान किया गया है। मनोशारीरिक विधियाँ उनमे सर्वाधिक मानी जाती हैं। इनका प्रणयन फेक्नर ने किया था। ये विधियाँ विशेषत संवेदना सम्बन्धी प्रयोगो के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है। परन्तु, इनके बहुतेरे सिद्धान्त साधारणत सभी प्रकार के सख्यात्मक प्रयोगों मे काम आते है।

१. 'The object of the qualitative experiment is to describe and the object of the quantitative experiment is to measure" —[illegible]

संवेदना की मुख्य तीन विशेषताएँ (Attributes) हैं—गुण या प्रकार (Quality), तीव्रता (Intensity) एवं स्थायित्व (Duration)। कुछ संवेदनाओं में एक चौथी विशेषता भी पाई जाती है जिसे व्याप्ति (Extensity) कहते हैं। संवेदनाओं की ये विशेषताएँ उनके गुणात्मक अङ्ग हैं और इन्हीं अंगों का अनुसन्धान मनोशारीरिक विधि द्वारा किया जाता है। मनोशारीरिक प्रयोगों के सहारे प्रधानतः दो बातों का जानने का प्रयत्न किया जाता है। पहली बात यह कि संवेदना की तीव्रता (Intensity) की वह कौनसी सबसे छोटी इकाई है जिससे मात्र संवेदना (Just sensation) की उत्पत्ति होती है। दूसरी बात यह कि दो संवेदनाओं में कम से कम कितने परिमाण (Amount) में अन्तर होना चाहिये जिससे दोनों संवेदनाओं की पारस्परिक भिन्नता (Difference) का ज्ञान हो। इस तरह की समस्याएँ सीमान्त समस्याएँ (Problems of threshold) कहलाती हैं जो व्यावहारिक दृष्टि से काफी महत्त्व की होती हैं।

मनोशारीरिक विधियों में मुख्यतः तीन प्रामाणिक विधियाँ हैं—(अ) सीमाविधि (Method of limits), (ब) शुद्धाशुद्ध विधि (Method of right and wrong cases) तथा (स) मध्यमान त्रुटि-विधि (Method of mean error)। इनमें से प्रथम दो विधियों से प्रारम्भिक सीमान्त (Reiz limen) या निरपेक्ष सीमान्त (Absolute limen or threshold) का पता लगाया जाता है तथा दूसरी और तीसरी विधि से सीमान्त भिन्नता (Differential limen) की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। निरपेक्ष सीमान्त, उत्तेजना की वह छोटी से छोटी राशि है जो यथार्थ (Just) संवेदना देती है। साधारण तौर से निरपेक्ष सीमान्त उस उत्तेजना को कहा जाता है जिसकी संवेदना ५० प्रतिशत प्रयासों में प्रयोज्य को होती है। इसी तरह सीमान्त भिन्नता, दो उत्तेजनाओं के बीच, वह कम से कम अन्तर है जिसका ७५ प्रतिशत प्रयासों में प्रयोज्य को ज्ञान हो। स्पष्ट है, शुद्धाशुद्ध-विधि की उपयोगिता इन तीन विधियों में सबसे अधिक है साथ ही, यह सरल भी है। किन्तु, सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से यह जितनी सार्थक और लाभप्रद मालूम होती है, व्यावहारिक दृष्टिकोण से उतनी ही कठिन भी है। इस पर आगे विशेष रूप से प्रकाश डाला जायगा।

(१) सीमा-विधि (Method of limits)

सीमाविधि अत्यन्त सरल है। अतः प्रयोक्ता इस विधि का उपयोग साधारणतः अधिक करते हैं। कम से कम संवेदनात्मक सीमान्त निर्धारण (Determination of Sensory threshold) संबंधी प्रयोगों में इस विधि का व्यवहार बड़ी सफलतापूर्वक होता है।

इस विधि द्वारा निम्नलिखित ढंग से प्रयोग किया जाता है। सबसे पहले प्रयोगशाला की उन विभिन्न अवस्थाओं को नियन्त्रित किया जाता है जिन्हें नियन्त्रित करना आवश्यक है। तब प्रयोक्ता (Experimenter) प्रयोज्य (Subject) को सुविधानुसार अपने बगल में एक आरामदेह स्थान पर बैठाता है। यह स्थान टेबुल की ऊँचाई के अनुपात में होना आवश्यक है। प्रयोज्य एवं प्रयोक्ता के बीच एक पर्दा (Screen) रख दिया जाता है। तत्पश्चात् प्रयोक्ता प्रयोग के लिये आवश्यक चीजों को टेबुल पर रखकर अपनी जगह पर बैठ जाता है।

(अ) निरपेक्ष सीमान्त मापन (Measurement of absolute thresh- -यदि त्वक् संवेदना (Cutaneous sensation) के सहारे निरपेक्ष सीमा [illegible] तो इसके लिये प्रयोक्ता निम्नलिखित निर्देशन (Instruction) [illegible] आरम्भ करता है—"तुम्हारे त्वक् प्रदेश (अङ्क) पर एक ([illegible]) [illegible] या जायेगा। तुम जब उसका स्पर्श अनुभव करो तो 'हाँ' [illegible] भव नही करो तो 'नही' कहोगे।" तत्पश्चात् प्रयोज्य के उस [illegible] का स्पर्श कराया जाता है जो अत्यधिक तीव्र होती है और जिसकी [illegible] ती है। फिर प्रत्येक बार उत्तेजना की तीव्रता मे क्रमिक एवं नियन्त्रित (Controll- कमी की जाती है, किन्तु जिस प्रयास (Trial) मे प्रयोज्य का [illegible] प्रयास बन्द कर दिये जाते है। इस बात पर सदा [illegible] या" (Response) मे कही आदत व्यतिकरण (Habit Interference) [illegible] इस कथन का स्पष्टीकरण निम्नांकित उदाहरण से हो जायगा जिसमे क [illegible] ना है जिसकी सवेदना प्रयोज्य को अवश्य होती है।

उत्तेजना	प्रतिक्रिया (प्रयोज्य का उत्तर)
क	हाँ
क–१	हाँ
क–२	हा
क–(अ–१) म	हा
क–अम	नही

इस तालिका के आधार पर हम कह सकते है कि उस उत्तेजना की सीमा, जिसकी सवेदना प्रयोज्य को कम से कम ७८ प्रतिशत प्रयासो मे हो, क–(अ-१) म और क–अ म [illegible] कही है। अब हम इन दोनो मापो का मध्यमान (Mean) लेकर करीब करीब उस सीमान्त (Threshold) का निधारण कर सकते है जिससे प्रयोज्य का यथार्थ सवेदना (Just sensation) मिलती है। ऊपर जिस श्रृङ्खला (Series) मे प्रास [illegible] उस अवरोहक श्रृखला (Descending series) कहते है, क्योंकि इसमे उच्चतम सीमा (Highest limit) की उत्तेजना मे क्रमिक एव नियत्रित ह्रास होता गया है। [illegible], प्रयोग परिणाम को और भी प्रतिपन्न बनाने के लिये एक और श्रृङ्खला बनाई जाती है जिसे आरोहक श्रृङ्खला (Ascending series) कहते है। इसमे निम्नतम सीमा (Lowest limit) की उत्तेजना मे क्रमिक और नियन्त्रित वृद्धि तबतक की जाती है जबतक प्रयोज्य को उत्तेजना की सवेदना प्राप्त नही होती। जैसे मान ले, उत्तेजना की निम्नतम सीमा 'ख' है जिसकी सवेदना प्रयोज्य को कभी प्राप्त नही होती।

उत्तेजना	प्रतिक्रिया
ख + अ म	'हाँ'
ख + (अ–१) म	'नही'
ख + २	'नहीं'
ख + १	'नही'
ख	'नही'

इस क्रमानुसार निरपेक्ष सीमान्त (Absolute threshold) स+(अ−१) म और स+अ म के बीच है जिसे मध्यमान के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। प्रयोग-परिणाम की अधिक विश्वसनीयता (Reliability) एवं प्रतिपन्नता के लिए इस तरह की कई आरोहक एवं अवरोहक श्रेणियाँ ली जाती हैं तथा प्रत्येक में इसी तरह सीमान्त (Threshold) निकाल कर सभी सीमान्तों का मध्यमान निकाला जाता है जो अधिक विश्वसनीय निरपेक्ष सीमान्त समझा जाता है।

(ब) सीमान्त भिन्नता (Differential threshold) का मापन—हमें उत्तेजना की सीमान्त भिन्नता (Differential threshold or D L) निर्धारित करने के लिये दो उत्तेजनाओं का व्यवहार करना होता है—एक प्रामाणिक (Standard) तथा दूसरी परिवर्त्तनशील (Variable)। इसके अतिरिक्त अन्य सभी रीतिविधियाँ पहली समस्या की तरह ही होती हैं। पूर्व की तरह उस अवस्था में परिवर्त्तनशील उत्तेजना की मात्रा में क्रमिक ह्रास करते हुए प्रामाणिक उत्तेजना को उसके साथ ही प्रयोज्य के समक्ष उपस्थित करते हैं। प्रत्येक बार प्रयोज्य यह निर्णय देता है कि परिवर्त्तनशील उत्तेजना (Variable), प्रामाणिक उत्तेजना (Standard) से बड़ा है या छोटा। प्रयोक्ता को यहाँ एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि कहीं ऐसा न हो कि प्रयोज्य उत्तेजना के गुण को अच्छी तरह समझ ले अथवा उसकी आदत का प्रभाव उसके परिणाम पर पड़े। इसके लिए यह सावधानी रखनी चाहिये कि (पूर्ववत्) एक श्रृङ्खला (Series) में उत्तेजना की तीव्रता में क्रमिक ह्रास करते हुए उसे प्रामाणिक उत्तेजना के साथ उपस्थित किया जाये तथा दूसरी श्रृङ्खला में परिवर्त्तनशील उत्तेजना की तीव्रता में क्रमिक वृद्धि (Increase) करते हुए उसे प्रामाणिक उत्तेजना के साथ प्रस्तुत किया जाये। ऐसा करने से प्रयोज्य उत्तेजना के प्रति कोई निश्चित धारणा नहीं बना पायेगा। प्रयोज्य के उत्तर में परिवर्त्तन (बड़ा से छोटा अथवा छोटा से बड़ा) होने पर श्रृङ्खला (प्रयास) में परिवर्त्तन लाना चाहिये।

इस तरह, सीमाविधि (Method of limits) एक सरल एवं उपयुक्त विधि है, किन्तु स्वभावतः इस विधि में कई प्रकार की अशुद्धियाँ होती हैं जिनका निराकरण करना सर्वथा कठिन है। इस विधि में तीन तरह की अशुद्धियाँ पाई जाती हैं (जिन पर आगे विचार किया जायेगा), यथा, आकस्मिक अशुद्धि (Accidental error), नित्य अशुद्धि (Constant error) तथा परिवर्त्तनशील अशुद्धि (Variable error)। खास कर इस विधि में 'आदत' एवं 'प्रत्याशा' की अशुद्धियाँ (Errors of habituation and expectation) बहुत अधिक होती हैं। इन अशुद्धियों को रोकने के लिए प्रत्येक प्रयास (Trial) में विभिन्न तीव्रता की उत्तेजना के साथ प्रयोग प्रारम्भ करना होता है।

(२) शुद्धाशुद्ध-विधि (Method of right and wrong cases)

इस विधि को नित्य उत्तेजना विधि (Method of constant stimuli) के नाम से भी पुकारा जाता है, बल्कि इन दिनों तो यह नित्य उत्तेजना विधि के ही नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इस विधि के द्वारा निरपेक्ष सीमान्त (Absolute threshold) तथा सीमान्त भिन्नता (Differential threshold) दोनों ही मापी जाती हैं। साथ ही, यह विधि आसान भी है, अतः इसकी उपयोगिता बहुत अधिक है। नित्य उत्तेजना-विधि में आदत एवं प्रत्याशा की अशुद्धियों (Errors of habituation and expectation) की भी गुंजाइश कम रहती है जिससे इसकी वैज्ञानिकता अधिक हो जाती है।

(अ) निरपेक्ष सीमान्त (Absolute threshold) का मापन — [illegible] हमारे जब निरपेक्ष सीमान्त निकाला जाता है तब चन्द निश्चित उत्तेजनाओं को [illegible] के समक्ष बार बार उपस्थित किया जाता है। प्रत्येक बार उत्तेजना उपस्थित करने पर प्रयोज्य से इसके सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है। आदत [illegible] हटाने के लिए उत्तेजनाओं को अनियमित रूप से (Randomly) प्रस्तुत किया जाता है। इसके लिए एक अनियमित योजना (Randomized plan) बना ली जाती है जिससे प्रत्येक उत्तेजना बराबर उपस्थित की जा सके।

मान लें, स्पर्शानुभावक यन्त्र (Aesthesiometer) के सहारे यह पता [illegible] कि उसके दो नोकों (Points) के बीच कम से कम कितनी दूरी हो कि [illegible] नोकों की संवेदना मिले। इसके लिए प्रयोज्य को निम्नांकित निर्देश (Instructions) दिये जाते हैं—"तुम्हारे त्वक् प्रदेश (अमुक) पर पेंसिल की नोक की तरह का [illegible] जायेगी। जब तुम दो नोकों का अनुभव करो तो 'दो' कहोगे और जब एक का अनुभव करो तो 'एक'।" सर्वप्रथम कुछ अभ्यास प्रयास (Practice trials) देकर संवेदना की उच्च-सीमा (Upper limit) और निम्न सीमा (Lower limit) का पता लगाया जाता है। फिर उच्च सीमा से कुछ अधिक और निम्न सीमा से कुछ कम की दूरी से उत्तेजना [illegible] बार प्रयोज्य के समक्ष अव्यवस्थित (Randomised) [illegible]। जब प्रयोज्य दो नोकों की संवेदना प्राप्त करता है तो सही समझा जाता है और यदि एक नोक की ही संवेदना अनुभव करता है तो गलत, क्योंकि वस्तुतः प्रत्येक प्रयास में दो नोकों से ही उसके त्वक् प्रदेश स्पर्श किये जाते हैं। पुनः यह देखते हुए कि कौन सी उत्तेजना कितनी बार सही (दो नोकों वाली) समझी गई और कितनी बार गलत, एक तालिका (Table) बनाई जाती है जिसके सहारे निरपेक्ष सीमान्त (Absolute threshold) आसानी से निकाला जाता है। स्पष्टीकरण के लिए नीचे की तालिका (Table) में एक उदाहरण दिया गया है जिसमें चन्द निश्चित उत्तेजनाएँ १० बार आई हैं।

	उत्तेजना का माप यहाँ (दो नोकों के बीच की दूरी)	सही उत्तर (दो नोकों का निर्णय)	गलत उत्तर (एक नोक का निर्णय)
	३१ मि० मि०	१०	०
	३० ,, ,,	८	२
	२१ ,, ,,	८	२
निरपेक्ष सीमान्त	२० ,, ,,	६	४
	१९ ,, ,,	४	६
	१० ,, ,,	०	१०

हम जानते हैं कि निरपेक्ष सीमान्त उत्तेजना की वह तीव्रता है जिसकी संवेदना प्रयोज्य को ५०% प्रयासों में होती है। अतः यहाँ प्रयोज्य के इस निर्णय के अनुसार उसका निरपेक्ष सीमान्त (Absolute threshold) १९ मि० मि० (५०% से कम सही उत्तर) और २० मि० मि० (५०% से अधिक सही उत्तर) के बीच में १९.५ मि० मि० होगा।

(ब) सीमान्त भिन्नता का मापन—नित्य उत्तेजना विधि (Method of constant stimuli) के सहारे सीमान्त भिन्नता (Differential limen) निकालने की प्रविधि

अभिप्राय उपर्युक्त ही है। अन्तर यही है कि यहाँ प्रयोज्य के समक्ष एक उत्तेजना नहीं, बल्कि दो उत्तेजनाएँ रखती है और उन दोनों में कोई अन्तर है या नहीं, यही बताना होता है। इन दो उत्तेजनाओं में एक को प्रामाणिक (Standard) और दूसरे को 'परिवर्त्तनशील' (Variable) उत्तेजना कहा जाता है। एक प्रामाणिक उत्तेजना को कुछ निश्चित परिवर्तनशील उत्तेजनाओं के साथ अनेक बार अनियन्त्रित रूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा प्रत्येक बार प्रयोज्य से पूछा जाता है कि परिवर्त्तनशील उत्तेजना प्रामाणिक उत्तेजना से बड़ी है अथवा छोटी। कभी-कभी यह भी पूछा जाता है कि दोनों में कोई बड़ी है, छोटी है, या बराबर है। किन्तु, अच्छा हो 'बड़ी' या 'छोटी' इन दो विभागों में ही प्रयोज्य का निर्णय लिया जाय, क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रयोज्य जिसे साधारणतः 'बराबर' समझता है उस पर और भी अधिक गौर करता है तथा उन्हें छोटी या बड़ी के विभाग में रखता है। मान लें, सरल रेखाओं के सहारे किए गए एक प्रयोग में ५० मि० मि० की एक प्रामाणिक सरल रेखा को ५५, ५४, ५३, ५२, ५१, ५०, ४९, ४८, ४७, ४६, और ४५ मि० मि० की परिवर्त्तनशील रेखाओं (उत्तेजनाओं) के साथ अनियमित रूप में दस दस बार प्रयोज्य के समक्ष उपस्थित किया गया। प्रयोग के प्रारम्भ में प्रयोज्य को निम्नांकित निर्देशन दिया गया—"तुम्हारे सामने दो रेखायें एक साथ उपस्थित की जायेंगी। तुम उन दोनों को देखने के बाद यह बताओगे कि उन दोनों में कौन बड़ी और कौन छोटी है।" प्रयोग-परिणाम इस प्रकार आया—

उत्तेजना का माप (परिवर्त्तनशील रेखाओं की लम्बाई)	निर्णय प० रे० बड़ी	निर्णय प० रे० छोटी
५५ मि० मि०	१०	०
५४	८	२
५३	७	३
५२	५	५
५१	४	६
५०	५	५
४९	४	६
४८	४	६
४७	२	८
४६	१	९
४५	०	१०

ऊपर की तालिका में दिए गये प्रयोग-परिणामों के बारम्बारता विभाजन (Frequency distribution) के सहारे सर्वप्रथम उच्च सीमान्त (Upper threshold), निम्न सीमान्त (Lower threshold) और सीमान्त भिन्नता (Differential threshold) मालूम की जाती है। उच्च सीमान्त वह मूल्य (Value) है जो ७५% प्रयासों में प्रयोज्य द्वारा 'बड़ा' कहा जाता है और निम्न सीमान्त वह मूल्य है जो ७५% प्रयासों में प्रयोज्य द्वारा 'छोटा' समझा जाता है। ऊपर के उदाहरण में उच्च सीमान्त (Lu) = ५२.५ मि० मि० तथा प्रामाणिक उत्तेजना (S) = ५० मि० मि०, अतः उच्च सीमान्त भिन्नता (D L u) = ५२.५ − ५० = २.५ मि० मि०। इसी प्रकार निम्न

सीमान्त (LL) = ४७ + ९ $\left(\frac{१}{२०}\right)$ = ४७ + .२९ = ४७.२९ मि० मि०। अत भिन्नता
सीमान्त भिन्नता (LL) ५० − ४७.२९ = २.७१ मि० मि०। अतएव सीमान्त भिन्नता
= $\frac{२.७८ + ३.०}{२}$ = २.८९ मि० मि०। इस तरह इस उदाहरण के परिणाम के आधार
पर कहा जा सकता है कि ५० मि० मि० की सरल रेखा को, जब उससे २.८९ मि० मि०
बड़ी या छोटी सरल रेखाओं के साथ प्रस्तुत किया जाय तो साधारणत प्रयोज्य [illegible]
अन्तर बताएगा।

(३) मध्यमान अशुद्धि-विधि (Method of mean or average error)

ऊपर जिन दो विधियों की चर्चा की गई है उनमें परिवर्त्तनशील (Variable) उत्तेजना को नियन्त्रित करने का पूरा काम प्रयोक्ता के ही हाथ में रहता है। किन्तु, 'मध्यमान अशुद्धि-विधि' से प्रयोग करने पर परिवर्त्तनशील उत्तेजना को घटाने बढ़ाने का काम (जिसमें वह प्रामाणिक उत्तेजना के बराबर दीख पड़े) पूर्णत प्रयोज्य पर निर्भर करता है। इसमें प्रयोज्य को निर्देश दिया जाता है कि "इस दी हुई सरल रेखा (अथवा अन्य कोई उत्तेजना) के बराबर अपने अन्दाज से एक दूसरी रेखा बनाओ। इसमें किसी मापदण्ड (Scale) का व्यवहार न करोगे।" इस तरह अपने अन्दाज से प्रयोज्य परिवर्तनशील उत्तेजना को निश्चित प्रामाणिक उत्तेजना (Fixed standard stimulus) के बराबर करता है। किन्तु, किसी भी व्यक्ति का अंदाज प्रामाणिक उत्तेजना के ठीक बराबर नहीं होता। उसके अंदाज और प्रामाणिक उत्तेजना के माप में कुछ अंतर रह जाता है। जैसे मान लें, ५० मि० मि० की एक प्रामाणिक रेखा है। प्रयोज्य अपने अंदाज से उसके बराबर परिवर्त्तनशील रेखा जो बनाता है जिसकी लम्बाई ४८ मि० मि० है। इस २ मि० मि० का अन्तर निश्चय ही प्रयोज्य के अन्दाज की गलती है। इस परिणाम की सत्यता और निश्चितता [illegible] लिये यह आवश्यक हो जाता है कि प्रयोज्य कई बार प्रामाणिक उत्तेजना [illegible] के बराबर परिवर्त्तनशील उत्तेजना को बनाये। ऐसे प्रयासों में देखा जाता है कि प्राय प्रत्येक प्रयास में प्रयोज्य के अन्दाज में अन्तर होता है। साथ ही, कभी वह प्रामाणिक उत्तेजना का न्यूनांकन (Under estimation) और कभी अत्यांकन (Over estimation) करता है, अर्थात् उसकी अनुमानित परिवर्त्तनशील उत्तेजना कभी प्रामाणिक उत्तेजना से बड़ी हो जाती है तो कभी छोटी (उदाहरण के लिये पृष्ठ १७ की तालिका देखें)। इन विभिन्न प्रयासों में [illegible] विभिन्न अन्तरों के आधार पर प्रयोज्य की अनुमान अशुद्धि (Error of estimation) के संबंध में कुछ निश्चित रूप से कहना कठिन हो जाता है। फलस्वरूप इन विभिन्न [illegible] का औसत अथवा मध्यमान (Mean) निकाल लिया जाता है और तब साधारण रूप से उस औसत-अशुद्धि (Average error) के आधार पर प्रयोज्य के अन्दाज की अशुद्धि का पता लगता है। किन्तु, इस विधि से प्रयोग करने में चंद बातों के सम्बन्ध में सावधानी बरतनी जरूरी है। आदत की अशुद्धि (Errors of habituation) और स्थान-अशुद्धियों (Space errors) को जहाँ तक संभव हो हटाना होता है। इसके लिए कभी तो परिवर्त्तनशील उत्तेजना को प्रामाणिक उत्तेजना से बहुत अधिक मूल्य का (Value) बना कर दोनों को बराबर करने के लिये प्रयोज्य को दिया जाता है तथा कभी बहुत कम मूल्य का बना कर। स्थान अशुद्धियों को कम करने के लिये कभी परिवर्त्तनशील उत्तेजना को

प्रामाणिक उत्तेजना की बाईं ओर रखा जाता है तथा कभी उसकी दाईं ओर। एक उदाहरण से यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी। मान लें, एक ६० मि० मि० की प्रामाणिक रेखा है जिसके सम्बन्ध में प्रयोज्य का अन्दाज विभिन्न प्रयासों में निम्नांकित प्रकार है।

प्रयाससंख्या	दाईं ओर	बाईं ओर	प्रयाससंख्या	दाईं ओर	बाईं ओर
१	६१	५८	६	५९	६२
२	६२	५७	७	५८	६०
३	५८	५९	८	६१	५८
४	६०	५६	९	६२	५९
५	५७	६१	१०	५७	६१

बाईं ओर का औसत $= \frac{५९१}{१०} =$ ५९ १ मि० मि०

दाईं ओर का औसत $= \frac{५९५}{१०} =$ ५९ ५ मि० मि०

स्थान-अशुद्धि = ४ मि० मि०

पूरे अन्दाज का औसत $= \frac{५९ १ + ५९ ५}{२} =$ ५९ ३ मि० मि०

मध्यमान अशुद्धि = ६० − ५९ ३ = ० ७ मि० मि०

यह मध्यमान अशुद्धि (Average error) बहुत ही कम है और सम्भव है प्रयोगशाला के प्रयोग-परिणाम में इससे अधिक गलती हो। अन्दाज की गलती तो प्रयोज्य एवं अवस्था (Condition) विशेष द्वारा बहुत अधिक प्रभावित होती है। स्थान-अशुद्धि नियन्त्रित थी फिर भी चूंकि इसे पूर्णत बहिष्कृत नहीं किया जा सकता, अत ४ मि० मि० की अशुद्धि हो गई है। इस परिणाम के आधार पर कहा जा सकता है कि यह प्रयोज्य ५०% या उससे अधिक अवसरों पर ६० मि० मि० की रेखा को ६० + ७ मि० मि० की रेखा से भिन्न समझेगा। इस तरह मुख्यत इस विधि का उपयोग दो संवेदनाओं की भिन्नता का पता लगानेवाले प्रयोगों में होता है।

मनोशारीरिक विधि में अशुद्धियाँ (Errors)

यहाँ अशुद्धियों से अर्थ उन अन्तरों से है जो प्रयोज्य के उत्तेजना अनुमान और उसके माप में रहते हैं। जैसे मान लें, दो बराबर उत्तेजनाएँ 'अ' और 'ब' प्रयोज्य के समक्ष प्रस्तुत की जाती हैं। प्रयोज्य चाहे तो दोनों में किसी को बड़ी या छोटी कहेगा या बराबर। इन दोनों उत्तेजनाओं में जब भी वह किसी को बड़ी या छोटी कहता है तब निश्चय ही अशुद्धि करता है। इस तरह मनोशारीरिक विधि यद्यपि आज के प्रयोगात्मक मनोविज्ञान एवं संख्यात्मक परिणाम ((Quantitative results) के सिलसिले में काफी महत्त्वपूर्ण है, तथापि इसमें कई प्रकार की अशुद्धियाँ होती हैं। सभी अशुद्धियों का प्रभाव प्रयोज्य के परिणाम अथवा निर्णय से स्पष्ट होता है। मुख्यत इन अशुद्धियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(१) आकस्मिक अशुद्धियाँ (Accidental errors) (२) नित्य अशुद्धियाँ (Constant errors) तथा (३) परिवर्त्तनशील अशुद्धियाँ (Variable errors)। संक्षेप में प्रत्येक की व्याख्या आवश्यक है।

(१) आकस्मिक अशुद्धियाँ (Accidental errors) —आकस्मिक अशुद्धियाँ उन्हे कहते है जो प्रयोग के अन्तर्गत विभिन्न अज्ञात कारणो से होती है। इस कारण अनेक तरह के हो सकते हैं। इनकी जवाबदेही प्रयोक्ता, प्रयोज्य और प्रयोगशाला की दशा या तीनो पर निर्भर करती है। प्रयोक्ता यदि निरीक्षण करने अथवा प्रयोज्य को प्रश्न करने मे कुशल नही है अथवा प्रयोज्य की मनोस्थिति या शारीरिक स्थिति प्रयोग के अनुकूल नही है तो तरह तरह की अशुद्धियो के लिये प्रशस्त मार्ग खुल जाता है। साथ ही, प्रत्येक प्रयोग मे (जो साधारण प्रयोगशाला मे होता है) सामान्यत ऐसी अशुद्धियाँ होती ही है। उन्हे कम करने अथवा उनके प्रभाव को जानने के लिये किसी भी प्रयोग मे अधिक से अधिक प्रयास (Trials) लिये जाते है। सीमाविधि मे आरोहक एव अवरोहक श्रेणियाँ (Ascending and Descending series) निकाल कर प्राय कम से कम बीस प्रयास लिये जाते है।

(२) नित्य अशुद्धियाँ (Constant errors) —कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि प्रयोज्य दो समान उत्तेजनाओं मे किसी का चाहे तो सदा अत्यांकन (Over estimation) करता है अथवा न्यूनांकन (Under estimation)। इस तरह की अशुद्धियों को नित्य अशुद्धि (Constant errors) के नाम से पुकारा गया है। इन अशुद्धियों के कारण सीमित है तथा उनका ज्ञान भी प्राय सभी को रहता है। फिर भी इन अशुद्धियों को पूर्णत हटाया नही जा सकता। यो तो नित्य अशुद्धियाँ भी कई प्रकार की है, लेकिन इनमे दो बहुत प्रमुख है—(क) काल अशुद्धि (Time error) एव (ख) स्थान-अशुद्धि (Space error)।

(क) काल अशुद्धि —दो उत्तेजनाओं को जब प्रयोज्य के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है तब प्राय ये दोनो उत्तेजनाएँ एक ही साथ प्रस्तुत नही होती, बल्कि उनके बीच कुछ समय का व्यवधान हो जाता है। काल अशुद्धि इसी व्यवधान पर निर्भर करती है, क्योंकि इससे प्रयोज्य का निर्णय कुछ अशो तक प्रभावित होता है। जैसे मान लें, एक सरल रेखा को प्रस्तुत करने के सात या आठ सेकण्ड बाद दूसरी सरल रेखा प्रस्तुत की जाती हो तो सम्भवत वह दूसरी रेखा को बडी कहेगा।

(ख) स्थान-अशुद्धि (Space error) —यह नित्य अशुद्धि का दूसरा उदाहरण है। प्रयोज्य का निर्णय कुछ अशो तक परिवर्त्तनशील उत्तेजना के बाई या दाई ओर होने पर भी निर्भर करता है। उत्तेजना के इस स्थान के कारण जो अशुद्धि होती है उसे स्थान अशुद्धि कहते है। इन अशुद्धिओ को हटाने के लिए यह प्रयत्न किया जाता है कि दो उत्तेजनाओ को जहाँ तक हो सके कम से कम काल व्यवधान पर उपस्थित किया जाय तथा कभी परिवर्त्तनशील उत्तेजना को प्रामाणिक उत्तेजना की बाई ओर प्रस्तुत किया जाय तो कभी दाई ओर। फिर भी इनका पूर्णत बहिष्कार नही हो पाता।

(३) परिवर्त्तनशील अशुद्धियाँ (Variable errors) —परिवर्त्तनशील अशुद्धियाँ मुख्यत प्रयोज्य के अभ्यास और थकावट (Practice and fatigue) पर निर्भर करती है। कुछ प्रयासों के बाद यह देखा जाता है कि प्रयोज्य का अनुमान (Estimation) उत्तेजना विशेष के सिलसिले मे अधिक ठीक होने लगता है। ऐसा अभ्यास के कारण होता है। किन्तु, कुछ अधिक प्रयासो तक उसी काम को करते करते जब प्रयोज्य थक जाता है तब उसका अदाज (Estimation) पुन अधिक गलत होने

लगता है। ये दोनो एक दूसरे के विपरीत है। किंतु, कार्यअवधि को घटा-बढा कर आवश्यकता के अनुसार अभ्यास एव थकावट के प्रभावो को रोका जाता है, यद्यपि ऐसा करना आसान नहीं है। परिवर्त्तनशील अशुद्धि व्यक्ति विशेष पर अधिक निर्भर करती है। यही कारण है कि हर प्रयोज्य का निर्णय एक दूसरे से भिन्न होता है। कोई जल्द थकता है तो कोई देर से, इसी प्रकार कोई जल्द अभ्यस्त होता है और कोई अधिक समय मे।

इन अशुद्धियो के आधार पर मनोशारीरिक विधियों (Psychophysical methods) की वैज्ञानिकता मे सदेह नही किया जा सकता। सच तो यह है कि इन अशुद्धियों की खोज वैज्ञानिकता को बनाए रखने के लिए ही हुई है। मन एव शरीर के व्यापारों के सम्बन्ध मे प्रयोग करते समय प्रत्येक प्रयोक्ता यथासम्भव इन अशुद्धियो को कम करने की चेष्टा करता है। साथ ही, इनका रूप कुछ ऐसा स्पष्ट और निश्चित किया गया है कि गणित के सहारे प्रयोग-परिणाम की सत्यता का स्पष्ट पता चल जाता है और अशुद्धियो का भी अन्दाज लग जाता है। गणित सबसे पूर्ण (Perfect) विज्ञान है। अत जो भी विज्ञान पूर्ण बनना चाहता है उसे पहले गणित के सूत्रो (Formulas) द्वारा अपने प्रयोग-परिणाम की सत्यता जाचनी होती है। दूसरे शब्दो मे, गणित के रूप मे उसे अपने आप को ढाल कर ठोस बनना होता है। मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं का विज्ञान है, अत इसके अध्ययन के अधिक अङ्ग गुणात्मक स्वरूप के है, किंतु धीरे-धीरे गुणात्मक स्वरूप को सख्यात्मक रूप मे बदलने की कोशिश हो रही है और इस कोशिश मे मनोशारीरिक विधिया अधिक सहायता कर रही है। इस तरह मनोविज्ञान को वैज्ञानिक रूप मे आगे बढाने का काफी श्रेय मनोशारीरिक विधियो को है। अस्तु इनका महत्त्व बहुत अधिक है।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध

मनोविज्ञान का आविर्भाव अन्य विज्ञानो की अपक्षा बहुत बाद मे हुआ। फलत किसी न किसी अश मे प्राय प्रत्येक विज्ञान का प्रभाव इस पर पडा है। यहा पर हम सभी विज्ञानो के साथ इसका सम्बन्ध न रख दैहिकविज्ञान (Physiology) एव जीवविज्ञान (Biology) के सम्बन्ध तक ही अपने विचार को सीमित रखेगे। इन दोनो विज्ञानो का बहुत अधिक योगदान मनोविज्ञान को आज की स्थिति मे पहुचने मे मिला है।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान ओर दैहिकविज्ञान—प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की नींव देने वालों मे प्रमुख स्थान दैहिकमनोवैज्ञानिकों का है। शिक्षण (Learning) तथा स्मरण (Remembering) के सिलसिले मे फ्रैंज (Franz) और लैश्ले (Lashley) जैसे दैहिकमनोवैज्ञानिकों का प्रयोग सचमुच ही मनोविज्ञान को एक देन है। सवेदना (Sensation) के क्षेत्र मे वेबर (Weber) ने मानसिक और शारीरिक क्रियाओं का जो सम्बन्ध बताया उसका महत्त्व आज के किसी भी मनोवैज्ञानिक से छिपा नहीं है। वेबर एक दैहिकवैज्ञानिक ही था। दैहिकविज्ञान जीव के शरीर के विभिन्न भागों एव उनकी क्रियाओं का अध्ययन करता है। दूसरी ओर, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान जीव के विभिन्न अगो की क्रियाओ (Functions) को अपने अध्ययन का विषय नही मानता, प्रत्युत इसके अध्ययन का विषय पूरा जीव है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत हम यह देखते है कि जीव की विभिन्न क्रियाओ का जीव अथवा जीव के अभियोजन (Adjustment) पर क्या

प्रभाव पडता है। मन और शरीर दोनों ही जीव के दो प्रमुख पहलू है। किसी को एक दूसरे से बिल्कुल अलग नही किया जा सकता। इनमे से एक मे भी कोई खराबी आ जाने पर दूसरा स्वत ही उससे प्रभावित हो जाता है। इस तरह दैहिकविज्ञान जहाँ अवयव विशेष का अलग-अलग अध्ययन करता है, वहाँ प्रयोगात्मक मनोविज्ञान सभी अवयवों को एक इकाई मान कर पूरे जीव का अध्ययन करता है। फलत मनोविज्ञान के अन्तर्गत जहाँ अङ्ग विशेष की क्रियाओ अथवा जीव के आन्तरिक परिवर्तनो का (Internal changes) अध्ययन करना होता है तो वहाँ दैहिकविज्ञान का सहारा लेना होता है। सच तो यह है कि जीव के विभिन्न अङ्गो की कार्यवाही को जाने बिना यह कहना बहुत कठिन है कि जीव क्या क्या करता है? अन्तस्रावी ग्रंथियों (Endocrine glands) तथा नाडीमण्डल (Nervous system) का बिना ज्ञान रहे व्यक्तित्व निर्माण (Personality formation) अथवा बुद्धिविकास (Development of intelligence) की व्याख्या प्राय अधूरी ही होगी। कान के अन्दर कौन कौन से अङ्ग है और उनके क्या कार्य (Function) है जिनसे हम सुनते है, यह दैहिकविज्ञान का विषय है। किन्तु, कान के कार्य का जीव के व्यवहार अथवा अभियोजन मे क्या योगदान है, इसका अध्ययन प्रयोगात्मक मनोविज्ञान करता है। इस तरह जीव की मानसिक अनुभूतियो एवं व्यवहारो का अध्ययन करने के लिए दैहिकविज्ञान का ज्ञान अपेक्षित है। अत हम कह सकते है कि इन दोनो मे भिन्नता होते हुए भी दोनो का सम्बन्ध घनिष्ठ है।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान और जीवविज्ञान (Biology) —ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा करते समय इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि डार्विन (Darwin) का विकासवाद किस प्रकार प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के आविर्भाव मे सहायक हुआ। मनोविज्ञान के अन्तर्गत वैयक्तिक भिन्नता (Individual difference) का बहुत अधिक महत्त्व है। गाल्टन (Galton) प्रभृति वैज्ञानिको ने इसकी व्याख्या वंशानुक्रम (Heredity) के आधार पर करते हुए जीवविज्ञान (Biology) के नियमो से सहायता ली है। चेतन (Conscious) और अचेतन (Unconscious) मन के इन दो पहलुओ की व्याख्या भी बहुत कुछ जीववैज्ञानिकों द्वारा दी गई है। जटिल मानसिक प्रक्रियाओ का अध्ययन जानवरो (चूहे, बिल्ली, कुत्ते, बन्दर, आदि) पर करना जीवविज्ञान की ही देन है, अन्यथा सम्भवत फ्रैन्ज, लैश्ले, हल (Hull) एवं टॉलमैन, (Tolman) आदि विद्वानो के नाम आज प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र मे नही आ पाते। जीवविज्ञान के सहारे हम यह जान पाते है कि मनुष्य अथवा जीव विभिन्न विषमताओं (Complexities) के बीच कैसे जीता है। दूसरी ओर, मनोविज्ञान बताता है कि किस प्रकार जटिल परिस्थितियो मे जीव अपने को अभियोजित करता है। दोनों बाते प्राय एक ही है। यही कारण है कि प्रयोगात्मक मनोविज्ञान को जैवविज्ञान (Biological Science) भी कहा जाता है। पर दोनों मे मुख्य अन्तर यह है कि मनोविज्ञान जहाँ मन के विभिन्न पहलुओं (संवेग, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, भाव, आदि) पर जोर देता है, और उनके सहारे ही व्यवहार का अध्ययन करता है वहाँ जीवविज्ञान शरीर के विभिन्न पहलुओं पर जोर देता है। इस तरह ये दोनों विज्ञान यद्यपि एक दूसरे से भिन्न है, तथापि इनमे घनिष्ट सम्बन्ध है।

इसी प्रकार प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का सम्बन्ध अन्य विज्ञानों से भी है, लेकिन उन सब का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक प्रतीत नही होता।

दूसरा अध्याय

वैयक्तिक भिन्नता

(Individual difference)

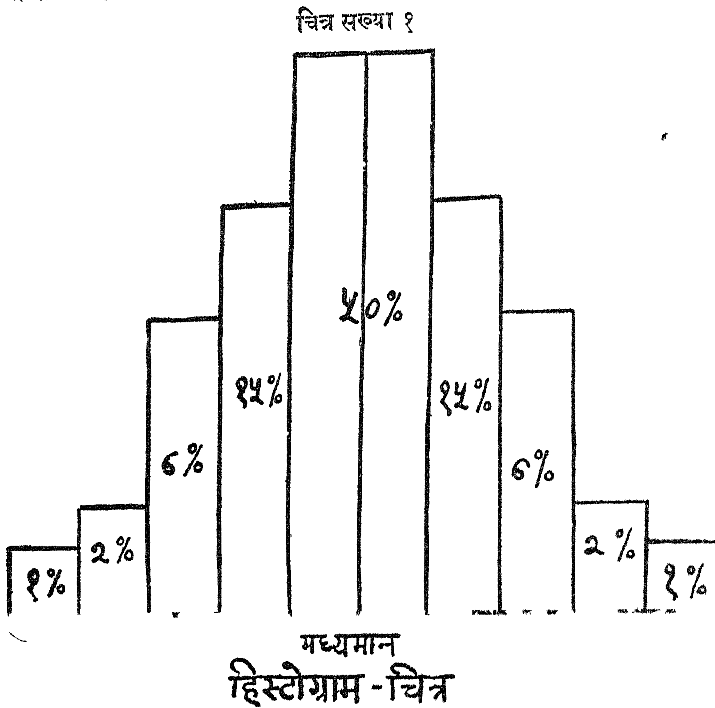
स्वरूप (Nature)

मनुष्य शारीरिक रचना और आकार प्रकार मे एक दूसरे से भिन्न होता है। यह भिन्नता शारीरिक ही नही, मानसिक भी होती है। प्राय सभी अध्यायो मे यत्र-तत्र इसका सकेत है कि मानसिक प्रक्रियाओ और योग्यताओं मे वैयक्तिक भिन्नताएँ होती है। पहले कुछ विद्वानो का ऐसा विश्वास था कि इन भिन्नताओं को अभ्यास द्वारा निर्मूल किया जा सकता है, किन्तु उनका यह दृष्टिकोण वर्तमान युग मे दोषपूर्ण प्रमाणित हो चुका है। हम नित्य-प्रति के जीवन मे दो मनुष्यो की शारीरिक भिन्नता के साथ साथ जो भिन्नताएँ उनकी मानसिक योग्यताओ मे या एक ही मनुष्य की योग्यता मे विभिन्न अवसरो पर देखते है, उसकी उपेक्षा नही कर सकते।

प्राय सभी मनुष्यों को तरह-तरह के आधारो पर विभिन्न प्रकारों या श्रेणियों मे बाँटने का प्रयास बहुत पहले से ही होता आया है। आज से बहुत पहले लोगों की यह धारणा थी कि सभी मनुष्यो को दो श्रेणियो मे रखा जा सकता है। किन्तु, गाल्टन (Galton) प्रभृति विद्वानों ने अपने अन्वेषणो से यह प्रमाणित कर दिया कि किसी शीलगुण या योग्यता के आधार पर हम व्यक्तियो को दो आन्तिक (Extreme) श्रेणियो मे विभाजित नही कर सकते, क्योंकि उन दो आन्तिक श्रेणियो के बीच कुछ और तीसरी या चौथी श्रेणी भी हो सकती है। विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने बहुसख्यक लोगो की बौद्धिक या शारीरिक योग्यता तथा शीलगुणो को मापकर उन्हे ग्राफ चित्र द्वारा प्रदर्शित किया है। उन विभिन्न पहलुओ के ग्राफ चित्रो का अध्ययन करने से यह सिद्ध होता है कि किसी जनसख्या मे व्यक्तियो की किसी योग्यता का विभाजन एक खास तरह होता है। अभिप्राय यह कि हम किसी जनसख्या के व्यक्तियो के किसी भी पहलू का (लम्बाई, भार, बुद्धि, स्मरण या हस्तशक्ति, आदि) माप क्यों न करे, किन्तु सब की विभाजन-शैली सामान्यत एक ही प्रकार की होती है। प्राय यह देखा जाता है कि किसी भी योग्यता की परीक्षा मे आधे से भी अधिक व्यक्ति औसत योग्यता के करीब के होते है तथा औसत से योग्यता जितनी ही घटती या बढती जाती है, व्यक्तियों की सख्या भी कमती जाती है। यही कारण है कि किसी भी समाज मे बहुत अधिक योग्य और बिल्कुल अयोग्य (इन दो तरह के) व्यक्तियो की सख्या बहुत ही कम होती है। इस प्रकार की बारम्बारता (Frequency) का जो वक्र (Curve) तैयार किया जाता है उसे सामान्य सभावित वक्र (Normal Probability curve) या सामान्य विभाजन-वक्र (Normal distribution curve) कहते है।

हिस्टोग्राम (Hystogram) के रूप में इस वक्र को निम्नांकित प्रकार से उपस्थित किया जा सकता है।

चित्र संख्या १

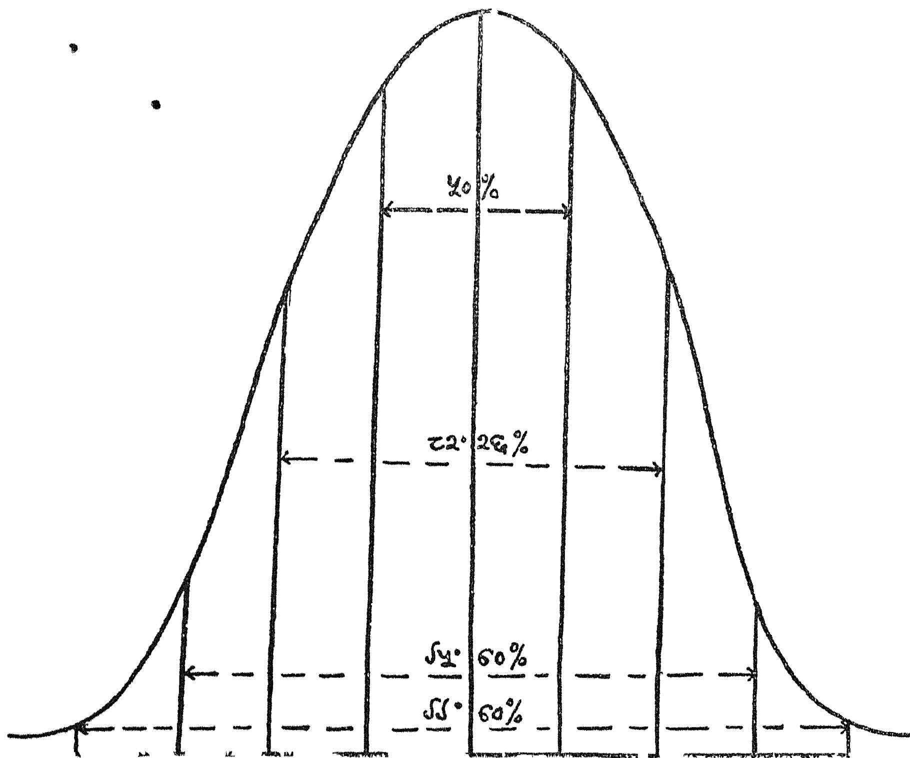


हिस्टोग्राम-चित्र

अगर हम उपर्युक्त हिस्टोग्राम का, किसी अन्य योग्यता या शीलगुण का विभाजन-चित्र (Distribution) मानकर (जिसका सामान्य रूप से विभाजन सम्भव है), अध्ययन करे तो देखेगे कि आधे के लगभग व्यक्ति ऐसे है जो औसत योग्यता के करीब हैं। फिर ज्यों ज्यों हम औसत से दोनो छोरो की ओर बढते है व्यक्तियो की संख्या कम होती जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि किसी जनसंख्या (Population) के व्यक्तियों के शीलगुणों या अन्य योग्यताओं का सामान्य विभाजन (Normal distribution) इस प्रकार होता है कि आधे से अधिक व्यक्ति सामान्य कोटि मे आते है और इस सामान्यता से अधिक या कम की योग्यता वाले व्यक्तियो की संख्या क्रमश कम होती जाती है। फलस्वरूप आन्तिक व्यक्तियों (Extreme Individuals) की संख्या एक या तीन प्रतिशत के ही लगभग होती है। इस विभाजन को हम निम्नांकित ग्राफ चित्र द्वारा भी, जिसे बहुभुज (Polygon) कहते है, प्रदर्शित कर सकते है। इस वक्र (Curve) की ऊचाई जनसंख्या के व्यक्तियों की संख्या को व्यक्त करती है और ग्राफ का आधार उस योग्यता की विभिन्न अवस्थाओ को। यह ग्राफ-चित्र भी बताता है कि किसी भी योग्यता के सिलसिले में सभी व्यक्ति एक तरह के नही होते, बल्कि उनमे भिन्नता होती है। उस भिन्नता का भी एक स्वरूप (Nature) है जिसके अनुसार औसत योग्यता के ही अधिकांश लोग होते है। अत केन्द्र की प्रतिसाम्यता (Symmetry) सामान्य विभाजन वक्र की सबसे बडी विशेषता है। किसी भी शीलगुण का विभाजन इसी प्रकार छ भागो म प्रदर्शित किया जा सकता है।

किन्तु, यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि सभी प्रकार की योग्यता या शीलगुण के विभाजन या सभी समय सभी के द्वारा ऐसा सामान्य विभाजन आए, यह आवश्यक नहीं है।

चित्र संख्या



शीलगुण या योग्यता विभाजन वक्र

बल्कि, सच तो यह है कि न्यादर्श (Sample) द्वारा प्राप्त प्राथमिक विभाजन सम्भवत कभी भी सामान्य प्रकार का नही होता। इसके कई कारण हैं जिनमे निम्नांकित प्रमुख हैं।

किसी जनसंख्या के अधिक व्यक्तियों के शीलगुण का माप करने पर विभाजन क्रम सामान्य होता है। किन्तु, परीक्षण (Test) बहुत सरल या कठिन रहने पर यह विभाजन-क्रम नहीं रहता है। परीक्षण बहुत कठिन रहने पर बहुत कम व्यक्ति योग्य सिद्ध होते हैं। अधिकांश उस परीक्षण मे असफल हो जाते हैं। अत विभाजन वक्र की शक्ल ही कुछ दूसरी हो जाती है। दूसरी ओर, जब परीक्षण काफी सरल होता है तो दशा ठीक उल्टी हो जाती है। यानी, अधिक लोग अधिक योग्यता के प्राप्तांक पाते हैं तथा बहुत कम ही व्यक्ति सामान्य से कम योग्यता के सिद्ध होते हैं। लेकिन, सामान्य विभाजन के अनुसार तो सामान्य या मध्यमान योग्यता से अधिक और कम दोनों प्रकार की संख्या बराबर होती है।

प्राप्तांकों (Score) के विस्तार (Range) मे परिवर्त्तन के कारण भी सामान्य विभाजन-वक्र मे परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होता है। कभी कभी उच्चतम प्राप्तांक

शीलगुणों में भिन्नता (Difference in traits)

हम ऊपर यह व्यक्त कर चुके हैं कि सभी दृष्टिकोणों से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है और एक ही व्यक्ति के विभिन्न शीलगुणों और योग्यताओं में भी समयानुसार भिन्नता होती है। अतएव स्वभावत यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है कि ये विभिन्नताएँ किस प्रकार की होती हैं।

व्यक्ति विशेष के शीलगुणों के पारस्परिक सबध के विषय में सामान्य विचारधारा यह है कि उनमे किसी प्रकार का धनात्मक सबध (Positive relation) नही होता है। दूसरे शब्दों मे, यदि कोई व्यक्ति किसी शीलगुण मे अपने अन्य साथियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है तो वह अन्य शीलगुणों म भी उतना श्रेष्ठ हो, यह आवश्यक नही है। हम अपने व्यावहारिक जीवन मे प्राय ही ऐसा देखते है कि कोई व्यक्ति बौद्धिक कार्यों मे सामान्य लोगो की अपेक्षा बहुत ही श्रेष्ठ होता है, किन्तु, सामाजिकता (Sociability), व्यावहारिकता (Practicability), आदि गुणो का उसमे सर्वथा अभाव रहता है या वे गुण बहुत ही नाम-मात्र के रहते है। लेकिन, सभी मनोवैज्ञानिक इस सबध मे एक मत नही है।

टरमन (Terman) ने बहुत अधिक बालको पर बुद्धि परीक्षणों (Intelligence tests) का व्यवहार कर यह प्रमाणित किया कि जो बालक अन्य बालको की अपेक्षा बुद्धि मे श्रेष्ठ होता है वह अन्य शीलगुणो (सगीत, चित्रकारी, आदि) मे भी सामान्य बालको से श्रेष्ठ होता है और शारीरिक दृष्टिकोण से भी वह बढा-चढा होता है। टरमन के ये प्रामाणिक कथन थार्नडाइक (Thorndike) के मत का प्रतिपादन करते हैं। इस सबध मे थार्नडाइक का कहना है कि सभी अध्ययन यही प्रमाणित करते है कि जो व्यक्ति एक शीलगुण मे अच्छा होता है वह उसी तरह अन्य शीलगुणों मे भी दूसरों से अच्छा होता है। इसका अभिप्राय यह कि यदि कोई बुद्धिमान है तो वह व्यवहारकुशल और सामाजिक भी होगा। यदि किसी खास विधि से कोई व्यक्ति किसी विषय को अपने साथियो की अपेक्षा शीघ्र याद कर लेता है तो दूसरी विधि से भी वह अपने अन्य साथियो की अपेक्षा शीघ्र ही याद करने मे समर्थ होगा। जो कुशल वैज्ञानिक है वह कुशल चित्रकार और सगीतज्ञ भी हो सकता है। इसी प्रकार और भी कितने अन्वेषण उपर्युक्त दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते है।

लेकिन, कई मनोवैज्ञानिकों के प्रयोग-परिणाम उपर्युक्त कथन का खण्डन करते है। अर्ल (Earle) और गा (Gaw) ने एक हजार बालकों पर प्रयोग करके यह प्रमाणित किया कि किसी व्यक्ति के विभिन्न शीलगुण एक दूसरे से पूर्णत स्वतन्त्र होते है। अतएव कोई भी व्यक्ति एक शीलगुण मे श्रेष्ठ और दूसरे म निकृष्ट या म यम हो सकता है। परिन (Perrin) ने ९१ विद्यार्थियों पर १० क्रियात्मक परीक्षणों (Motor tests) के साथ जो प्रयोग किया वह भी इसी बात का साक्षी है कि किसी भी विद्यार्थी के विभिन्न निर्माण परीक्षणों (Performance Tests) के परिणाम एक समान नही थे। किसी परीक्षण का प्राप्तांक (Score) अधिक था तो किसी का प्राप्तांक कम। अतएव स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति विशेष के विभिन्न शीलगुणों मे किसी प्रकार का धनात्मक सबध नही रहता। म्यूसियो (Muscio) का भी अपने प्रयोग-परिणाम के आधार पर कहना है कि किसी मनुष्य की विभिन्न क्रियात्मक योग्यताओं मे अन्तर रहता है, इसलिए उसकी किसी एक क्रियात्मक योग्यता

उससे यह स्पष्ट है कि आदिवासी दृष्टि, श्रवण, स्पर्श, आदि योग्यताओं में अन्य जातियों से कम नहीं होते। यद्यपि मानसिक योग्यता में भी सांस्कृतिक तथा कम सांस्कृतिक जातियों में कोई भेद नहीं पाया गया, किन्तु हब्शी और बौने (Pigmies) व्यक्ति इसमें अन्य सांस्कृतिक जातियों की अपेक्षा बहुत ही पिछड़े थे। अतः वुडवर्थ (Woodworth) के अनुसार भी आदिवासी अन्य आधुनिक जातियों की अपेक्षा बौद्धिक दृष्टिकोण से भिन्न होते हैं। इसी तरह अमेरिका में और भी इसी तरह के प्रयोग हुए हैं, पर उन सबका उल्लेख करना आवश्यक अथवा अपेक्षित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि प्रायः उन सभी प्रयोगों में यही पाया गया कि हब्शियों की बौद्धिक योग्यता अन्य सुसंस्कृत अमरीकनों से कम होती है। भारत में इस दिशा में जो कार्य हुए हैं उनसे यही मालूम होता है कि आदिवासी लोग सुसंस्कृत जातियों की अपेक्षा बुद्धि में कम होते हैं। यद्यपि अन्य देशों की तरह यहाँ की जातियों में भी बहुत कम विभिन्नता देखने में आती है और सम्भव है कि यह थोड़ा अन्तर वातावरण की भिन्नता के फलस्वरूप हो। अतः यह कहना कठिन है कि इस तरह की भिन्नता में कहाँ तक जातीय अंगों का हाथ रहता है और कहाँ तक वातावरण का।

हब्शी और अंग्रेजों की भिन्नता को प्रमाणित करने के लिए विद्वानों ने उनके अन्य पहलुओं का भी अध्ययन किया है। लेकिन, अध्ययन परिणामों में साम्य नहीं है। उदाहरण के लिए एक दो पहलुओं का उल्लेख करना अच्छा होगा। स्वभाव (Temperament) सम्बन्धी जो प्रयोग उपर्युक्त जातियों पर किए गए हैं उनमें कुछ विद्वानों को बहुत ही कम या नहीं के बराबर जातीय भिन्नता उपर्युक्त जातियों में दृष्टिगोचर हुई है, किंतु क्रेन (Crane) ने जो प्रयोग भयात्मक प्रतिक्रिया (Fear reaction) के सम्बन्ध में प्रयोगशाला के वातावरण में किया उसका अध्ययन करने से यह विदित होता है कि हब्शी प्रयोगावस्था में अंग्रेजों की अपेक्षा हर तरह से सावधान करने पर भी अधिक डरते थे। इसी तरह के परिणाम कुछ अन्य प्रयोगों में भी मिले हैं। यद्यपि उन सबके परिणामों में समरसता नहीं है तथापि इतना निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि विभिन्न शीलगुणों के सम्बन्ध में जातीय भिन्नता होती है, भले ही वह भिन्नता मात्रा में बहुत कम हो। अतएव हम कह सकते हैं कि वैयक्तिक भिन्नता के समान जातीय भिन्नता भी होती है।

यौन-भिन्नता (Sex difference)

विभिन्न गुणों और योग्यताओं के सम्बन्ध में जिस तरह वैयक्तिक और जातीय भिन्नता होती है उसी तरह यौन भिन्नता भी होती है, ऐसा कुछ लोगों का विचार है। इस कथन में कितनी सत्यता है इसे जाँचने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने स्त्री-पुरुषों के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन प्रयोगात्मक विधि से किया है, जिनमें कुछ प्रमुख की चर्चा यहाँ पर्याप्त होगी।

शिकागो विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में यौन-भिन्नता का अध्ययन करने के लिए आज से करीब ५९ वर्ष पहले सन् १९०३ ई० में हेलेन थाम्पसन (Helen Thompson) ने २५ पुरुष और २५ स्त्रियों पर, जिनकी अवस्था २० से २५ वर्ष के बीच थी, विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का व्यवहार किया। इन परीक्षण-परिणामों से पता चला कि क्रियात्मक परीक्षणों में केवल रंग के अनुसार कार्ड छाँटने के अतिरिक्त, पुरुष, स्त्रियों की अपेक्षा कुछ श्रेष्ठ थे। ज्ञानात्मक परीक्षणों (Sensory tests) के परिणामों में किसी प्रकार की यौन-भिन्नता नहीं पायी गयी, साथ ही, याद करने के परीक्षणों में स्त्रियाँ और अन्य समस्याओं को हल करने में

अक्षर-निराकरण परीक्षणों मे (Letter Cancellation tests) स्त्रियाँ पुरुषों से श्रेष्ठ पायी गई है। पर हस्तक्रियाओं (Manipulations) मे बालकों की ही श्रेष्ठता प्रमाणित हुई है। यान्त्रिक कार्यों (Mechanical works) एवं योग्यताओं मे भी उन्हीं की श्रेष्ठता रही है। लेकिन, कुछ विद्वान इस प्रकार की भिन्नताओं को निर्मूल करने का प्रयास करते हुए यह व्यक्त करते है कि प्रारम्भ से ही लड़के और लड़कियों को ऐसे खिलौने दिये जाते है जिनसे उनमे इस प्रकार की भिन्नता का होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार विपरीत यौन (Opposite sex) का प्रभाव ज्ञानात्मक योग्यता पर जानने के लिए जो परीक्षण किए गय है उनसे यह विदित होता है कि इस दृष्टिकोण से भी यौन भिन्नता होती है, क्योंकि किसी परीक्षण मे बालक और किसी मे बालिकाएं श्रेष्ठ प्रमाणित हुई है। इस तरह उपर्युक्त प्रयोग-परिणाम इस बात के प्रमाण है कि व्यक्ति की योग्यताएँ उसके उत्पन्न स्त्री होने पर भी निर्भर करती है। अत वैयक्तिक भिन्नता यौन-भिन्नता से भी प्रभावित होती है।

वैयक्तिक भिन्नता में वंशानुक्रम एवं वातावरण का महत्त्व

(Importance of Heredity and Environment in Individual differences)

वैयक्तिक भिन्नता निर्धारित करने मे वशानुक्रम (Heredity) का हाथ रहता है या वातावरण (Environment) का, यह प्रश्न बहुत ही विवादग्रस्त है और आज भी इस पर मनोवैज्ञानिको मे मतैक्य नही है। यद्यपि यह निर्विवाद प्रमाणित हो चुका है कि वैयक्तिक भिन्नताएँ होती है, परन्तु यह प्रमाण भी किसी प्रश्न का समाधान करने मे असमर्थ है। वैयक्तिक भिन्नता के प्रश्न को हल करने का प्रयास बहुत दिनों से चला आ रहा है पर अभी तक इस प्रयास मे किसी को पूरी सफलता नही मिल सकी है। इसी कारण आज भी मनोवैज्ञानिको मे दो दल है। एक दल जो वशानुक्रम को ही वैयक्तिक भिन्नता का एकमात्र प्रधान कारण मानता है उसे हम नियतिवादी (Hereditarian) दल कह सकते है। नियतिवादियो के अनुसार, मनुष्य अपनी मानसिक एव शारीरिक योग्यताओ को अपने वशानुक्रम से प्राप्त करता है। इसलिए वह दूसरे वशानुक्रमवाले व्यक्तियो से सभी प्रकार के शीलगुणो मे भिन्न होता है। दूसरे दल, जो वातावरण को वैयक्तिक भिन्नता का प्रधान कारण मानता है, को हम वातावरणवादी (Environmentalist) दल कह सकते है। इनका कहना है कि वैयक्तिक भिन्नता वातावरण की भिन्नता के फलस्वरूप होती है, वशानुक्रम की भिन्नता के कारण नही। सभी विद्वान किसी न किसी पक्ष का प्रतिपादन करते है। एक ओर पिंटर (Pinter) वशानुक्रम के महत्त्व को व्यक्त करते हुए यह कहता है कि सभी योग्यताएँ एवं शीलगुण बच्चो को वंशानुक्रम से ही प्राप्त होते है, वातावरण से नही। दूसरी ओर, वाटसन (Watson) वातावरण के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए यह कहता है "मुझे स्वस्थ नवजात शिशु दो। मै उसे तुम्हारी इच्छानुसार वैज्ञानिक, साहित्यिक, लुटेरा या भिखारी बना दूँगा।" इस कथन मे कितनी सत्यता है, यह सहसा व्यक्त कर देना कठिन है, इसलिए इसके पहले कि किसी सम्बन्ध में हम अपना विचार व्यक्त करें, दोनो पक्षों द्वारा दिये गए प्रमाणो का विवेचनात्मक उल्लेख कर देना आवश्यक होगा।

वशानुक्रम (Heredity) —वैयक्तिक भिन्नता मे वंशानुक्रम के महत्त्व को प्रदर्शित करनेवाले विद्वानों में फ्रांसिस गाल्टन (Francis Galton) का नाम सर्वप्रथम आता

है। प्रतिमा प्रकार (Image type) का अ ययन करते समय उसे जा [illegible] भिन्नता मिली उसके आधार पर उसका कहना है कि प्रतिमा की योग्यता म [illegible] प्राप्त होती है। इसलिए, जिस वंश मे किसी प्रकार की प्रतिमा का [illegible] उसी का प्राधान्य उसके वंशजो मे भी रहता है। इस [illegible] किया और उन सभी अध्ययनो मे उसे वंशानुक्रम के पक्ष मे प्रमाण मिले।

अपने दूसरे अ ययन के आधार पर गाल्टन (Galton) का कहना है कि जिस प्रकार मनुष्य के आकार प्रकार एवं अन्य शारीरिक विशेषताओं का [illegible] उसके माता पिता [illegible] वंशानुक्रम का है, उसी प्रकार वह अपनी बौद्धिक योग्यताओं को भी [illegible] द्वारा प्राप्त करता है। अपने इस कथन का प्रतिपादन उसने ९७७ [illegible] करके किया, जो न्यायाधीश, वकील, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, साहित्यिक, [illegible] दार्शनिक, आदि थे। उसने अपनी खोजो से यह प्रमाणित किया कि उपर्युक्त [illegible] व्यक्तियो के संबंधी उसी संख्या के अन्य व्यक्तियो के संबंधियो की [illegible] गुना अधिक बुद्धिमान थे। अभिप्राय यह कि गाल्टन (Galton) ने जिन चुने हुए ९७७ प्रतिभाशाली व्यक्तियो के वंशानुक्रम का अ ययन किया उसमे उसे यही मिला कि उन [illegible] पूर्वज भी वैसे ही प्रतिभाशाली थे। दूसरी ओर, जब उसने उतने ही सामान्य लोगो का अध्ययन किया तो उसे उनके पूर्वजो म प्रतिभाशाली व्यक्तियो का [illegible] के बराबर मिली। इसी प्रकार जब दूसरे अन्वेषण मे उसने कलात्मक योग्यता (Artistic ability) का अ ययन किया तो देखने मे आया कि तीस परिवारो म, जिनम माता-पिता दोनों ही कलाकार थे, ६४ प्रतिशत वंशज कलाकार थे, किन्तु १५० परिवारो म, जिनमे माता पिता मे से कोई भी कलाकार नही था, सिर्फ २१ प्रतिशत बालक ही कलात्मक योग्यता को प्रदर्शित कर सके। और भी जितनी खोज विभिन्न शीलगुणो के सम्बन्ध म गाल्टन (Galton) ने की उन सब मे उसने वंशानुक्रम का ही प्रभाव पाया। अपने उपर्युक्त अध्ययनो के आधार पर उसका कहना है कि किसी योग्यता मे प्रधानता, मनुष्य के वातावरण, समृद्धि, शिक्षण, आदि अगो के कारण नही, अपितु वंशानुक्रम के कारण होती है। कोई सुन्दर से सुन्दर वातावरण मे ही क्यो न रख दिया जाए, किन्तु जिस शीलगुण (Trait) का उसमे सर्वथा अभाव है उसका उसमे विकास कदापि नही हो सकता।

गाल्टन (Galton) की खोजो से प्रोत्साहित होकर कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) ने भी दो हजार भाई बहनो की शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओ की समानता का अध्ययन उनके शिक्षको के मूल्यांकन (Ratings) के आधार पर किया। उनकी विभिन्न विशेषताओं मे उसे इतनी अधिक समानता मिली कि वह भी गाल्टन के मत का प्रतिपादन करने लगा। इसलिए उसका कहना है कि मनुष्य अपनी शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं को अपने वंशानुक्रम से ही प्राप्त करता है।

इस दिशा मे डग्डेल (Dugdale) तथा एस्टाब्रुक्स (Estabrooks) ने जो अध्ययन अमरीकी ज्यूक्स (Jukes) परिवार का किया वह भी कम महत्त्व का नहीं है। इस परिवार का जन्मदाता ज्यूक्स (Jukes) था, जो स्वयं मानसिक रूप से कमजोर होने के कारण, अपने परिवार का पालन पोषण शिकार करके अथवा मछलियाँ मारकर करता था। इस परिवार के १००० व्यक्तियो के जीवन-इतिहास से यह स्पष्ट है कि इस परिवार के प्राय सभी व्यक्ति मानसिक दुर्बलता से पीडित थे, जिसके फलस्वरूप ३००

व्यक्ति बचपन मे ही मर गए, ३१० ने भिक्षावृत्ति की शरण ली, ४० जीवन पर्यन्त व्याधि पीड़ित रहे और १३० व्यक्तियोंको विभिन्न अपराधों मे कारागार वासका दण्ड मिला जिनमे कुछ व्यक्ति हत्यारे भी थे। ... ० ही एसे व्यक्ति थे जो अपना जीवन निर्वाह छोटे मोटे व्यवसाय द्वारा कर सके। जब ४० वर्ष बाद उसी परिवार का अध्ययन एस्टाब्रुक्स ने किया तो मानसिक योग्यता की दृष्टि से उसमे किसी प्रकार की उन्नति दृष्टिगोचर नही हुई।

इसी प्रकार गोडार्ड (Goddard) ने भी कालीकाक (Kallikak) परिवार का अध्ययन किया। कालीकाक (Kallikak) ने जिस मदमती (Feeble minded) महिला से अपना पहला विवाह किया उसके ४८० वशधरो मे केवल ४६ व्यक्ति सामान्य बुद्धि के थे, अवशेष सभी मानसिक दुर्बलता के शिकार थे। किन्तु, दूसरी महिलाके, जो बुद्धिमती थी, परिवार के ४९६ व्यक्तियो मे सभी सामान्य थे। उसमे प्राय सभी लब्ध-प्रतिष्ठ, डाक्टर, शिक्षक, वकील तथा उच्च राजकीय पदाधिकारी थे। अतएव अपने इस अध्ययन के आधार पर गोडार्ड (Goddard) का निर्णय है कि मानसिक योग्यता या दोष वशानुक्रम से प्राप्त होता है। इसी तथ्य का प्रतिपादन विंशिप (Winship) ने एडवर्ड (Edward) परिवार तथा मेकडुगल (McDougall) ने विन जाति के अध्ययनों के आधार पर किया है।

विसकन्सिन (Wisconsin) विश्वविद्यालय के १८ जोड़े भाई-बहनो के, जिनकी अवस्था १९ से ३२ वर्ष थी, विभिन्न शीलगुणो के परीक्षणो का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद स्टार्च (Starch) का कहना है कि जो शीलगुण पाठशालीय वातावरण के प्रभाव से प्रभावित नही होते, उन शीलगुणो की समानता भाई-बहनो मे अत्यधिक मात्रा मे पायी जाती है। किन्तु, उस वातावरण से प्रभावित होने वाले शीलगुणों मे उस कोटि की समानता नही होती। अभिप्राय यह कि एक ही माता पिता की सन्तानो के मानसिक शील गुणों मे समानता वशानुक्रम के कारण होती है, वातावरण के कारण नही। यदि इस समानता का कारण वातावरण होता तो उन शीलगुणो मे भी मात्रा की समानता दृष्टिगोचर होती जो पाठशालीय वातावरण से प्रभावित होते है। थार्नडाइक (Thorndike) भी कई पाठशालीय विद्यार्थियो के शीलगुणो का विश्लेषणात्मक अध्ययन करके उपर्युक्त कथन का प्रतिपादन करते हुए यही व्यक्त करता है कि भाई-बहनो के मानसिक गुणों की समानता का एकमात्र कारण वशानुक्रम ही होता है।

एच० ई० जोन्स (H E Jones) ने न्यू इङ्गलैंड के १०९ परिवारों के ३१७ बच्चो की मानसिक योग्यताओं का अध्ययन किया। उन सभी बच्चो का वातावरण समान ही था, क्योकि वे ग्रामीण वातावरण मे पालित पोषित हो रहे थे। माता-पिता तथा बडे बच्चो की बुद्धि की जाँच "आर्मी अल्फा" (Army Alpha) परीक्षण द्वारा की गयी तथा छोटे बच्चो की जाँच स्टैनफोर्ड सशोधित (Stanford revised Binet test) बिने-परीक्षण द्वारा की गई। इन परीक्षणो के प्राप्ताको (Scores) का अध्ययन करने से यह स्पष्ट है कि भाई-बहन के प्राप्ताको का अनुबध (Correlation), ४९, पिता-सन्तान का ५१ और माता सन्तान का ५५ था। इससे प्रमाणित है कि मानसिक योग्यता, माता-पिता अथवा वशानुक्रम से प्रभावित होती है। फ्री मेन (Free Man), होलजिंगर (H... ...) ... ... के अध्ययन भी वशानुक्रम के पक्ष को पुष्ट करते है।

मे (May) तथा हार्टशोर्न (Hart Shorne) ने ७३४ जोड़े भाई-बहनों पर वंचकता परीक्षण (Cheating test) का व्यवहार करके यह प्रमाणित कर दिया कि भाई बहन वंचकता मे समान होते है। उन्होने यह व्यक्त भी किया है कि यह प्रवृत्ति वंशानुक्रम से प्राप्त होती है। इसलिए किसी प्रकार का वातावरण इसे निर्मूल तथा प्रभावित करने मे समर्थ नही होता।

माता पिता तथा संतान और भाई बहनो के विभिन्न शीलगुणो की समानता का अनुमोदन जुडवे (Twins) बच्चों के अध्ययन द्वारा भी किया गया है। इस दिशा मे भी सर्वप्रथम गाल्टन (Galton) का ही नाम उल्लेखनीय है। उसने ८० जुडवे बच्चों के शीलगुणो का अध्ययन प्रश्नावली तथा व्यक्ति इतिहास (Case history) विधि का प्रयोग करके यह प्रमाणित किया कि जुडवे बच्चे सभी शीलगुणो मे समान होते है। यद्यपि कुछ विद्वानो ने उसकी अध्ययन विधियो की कटु आलोचनाए की है, तथापि उसका यह कार्य इस दिशा मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

थार्नडाइक (Thorndike) ने ५० जुडवे बच्चो की मानसिक योग्यता का अध्ययन ६ प्रकार के बुद्धिपरीक्षणों द्वारा किया। फिर उसने उतने ही भाई बहनो पर भी उन्ही परीक्षणों का व्यवहार किया। लेकिन, जुडवे बच्चो की मानसिक योग्यता का अनुबंध भाई-बहनों की मानसिक योग्यता के अनुबंध से बहुत ही अधिक था। फिर जुडवे बच्चो का विभाजन उसने दो श्रेणियों मे किया और तब छोटे तथा बड़े जुडवे बच्चो के अनुबंधों का अध्ययन किया जिसके आधार पर उसने मानसिक योग्यता की समानता का कारण वंशानुक्रम को व्यक्त किया। उसका कहना है कि जुडवे बच्चे सभी प्रकार के अभ्यस्त तथा अनभ्यस्त शीलगुणो मे समान थे। यदि यह समानता वातावरण के फलस्वरूप होती तो अवश्य ही अधिक उम्रवाले जुडवे बच्चों के शीलगुणो मे, छोटे जुडवे बच्चो की अपेक्षा, अधिक समानता होती, किन्तु दोनो प्रकार के बच्चो की समानताओ मे किसी प्रकार का विशेष अन्तर नही था। अतएव यह निर्विवाद है कि जुडवे बच्चो की समानता वंशानुक्रम के कारण होती है। इसी प्रकार न्यूमन (Newman), म्युलर (Muller), काक (Koch), आदि विद्वानों के अध्ययन भी वंशानुक्रम के पक्ष का प्रतिपादन करते हैं।

टरमन (Terman), गुड एनफ (Good enough), जोन्स (Jones), कार साण्डर्स (Carr Saunders), प्रभृति मनोवैज्ञानिकों ने जो अध्ययन विभिन्न व्यवसायो के बच्चों की बुद्धि के संबंध मे किया उससे यह सिद्ध है कि बौद्धिक व्यवसाय के बच्चो की बुद्धि साधारण व्यवसाय करनेवाले व्यक्तियो की सन्तानो से अधिक होती है। इस प्रकार के अध्ययन से यह प्रमाणित है कि माता-पिता का प्रभाव बालको के शीलगुणो पर पडता है, अतएव वैयक्तिक भिन्नता वंशानुक्रम से प्रभावित होती है, वातावरण से नही।

इस प्रकार हम देखते है कि उपर्युक्त जितने अन्वेषणो का उल्लेख किया गया है वे सभी वैयक्तिक भिन्नता मे वंशानुक्रम को महत्त्व देते है, वातावरण को नही। लेकिन, उपर्युक्त अध्ययनों के आधार पर ही वंशानुक्रम के महत्त्व को स्वीकार कर लेना समुचित नही है। जिस वातावरण मे व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक रहता है उसकी उपेक्षा नही की जा सकती।

वातावरण (Environment)—वैयक्तिक भिन्नता को निर्धारित करने मे वातावरण के महत्त्व का उल्लेख करने के लिए यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि इसे

विद्वानो की कमी नही है जो एकमात्र वातावरण को ही प्रधान मानते है। ऐसे विद्वानों म लॉक (Locke) नामक दार्शनिक का नाम उल्लेखनीय है। उसका सिद्धान्त है कि जन्मकाल के समय बच्चे का मन कोरे कागज की तरह होता है, इसलिए वह जिस प्रकार के सस्कार म प्रभावित होता है उसी के अनुरूप उसमे शीलगुणो का विकास होता है। यही कारण है कि वा विभिन्न वातावरण मे रहनेवाले व्यक्तियों के शीलगुण और योग्यता मे भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। लॉक (Locke) के दृष्टिकोण का प्रतिपादन वर्त्तमान युग म वाटसन (Watson) भी करता है।

वातावरण के पक्ष को सबल बताते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने गाल्टन और पियर्सन के अध्ययनो को अवैज्ञानिक बताया है। जहा तक पियर्सन के अध्ययन का प्रश्न है, उसके सबध म उनका कहना है कि जिन शिक्षको ने भाई-बहनो का मूल्याकन किया वे इस बात से अवगत थे कि भाई-बहनो की समानता का अध्ययन हो रहा है। इसके अतिरिक्त मूल्याकन प्रश्नावली (Questionnaire) की विधि द्वारा किया गया। अत उसमे उन सभी दोषो का होना स्वाभाविक है जो प्रश्नावली की विधि में पाये जाते है। इसी तरह गाल्टन के निर्णय का खण्डन करते हुए उन विद्वानो का कहना है कि गाल्टन ने जिन प्रतिभाशाली व्यक्तियो के अध्ययन के आधार पर वशानुक्रम के महत्त्व को व्यक्त किया उनका आर्थिक एव सास्कृतिक वातावरण इतना समृद्ध था कि वशानुक्रम को ही एकमात्र श्रेय देना अनुचित है। इतना ही नही, उसका अध्ययन पूर्णत आत्मगत (Subjective) एव पक्षपातपूर्ण (Biased) है।

वातावरण के पक्ष को पुष्ट करने के लिए गाल्टन (Galton) की तरह 'कैण्डोल' ने ५७२ धुरन्धर विद्वानो के जीवन-इतिहास का अध्ययन किया। उसने पाया कि वे इतने महान् पुरुष इसलिए हुए, चूकि उनका जन्म और पालन पोपण समृद्ध और सस्कृत परिवार मे हुआ था। उनके अध्ययन मे किसी चीज की कमी नही हुई। सभी आवश्यक सामग्रियाँ मौजूद थी, जिसके फलस्वरूप वे उन्नति की उच्च शिखर तक पहुँच सके। इस अध्ययन-परिणाम को उपस्थित करते हुए कैण्डोल (Kendall) ने भी वातावरण के महत्त्व को स्वीकार किया है।

वातावरण वैयक्तिक भिन्नता को निर्धारित करता है, इसे प्रमाणित करने के लिए विद्वानो ने मूरे द्वीप की बर्बर जातियो का उदाहरण दिया है। पहले उनकी भाषा मे छ से अधिक शब्द नही थे, किन्तु जब उनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया तो उनमे से कितने ही विश्वविख्यात गणितज्ञ निकले। इसी तथ्य का प्रतिपादन कुछ अशो मे भारतवर्ष की पिछडी जातियो की शिक्षा व्यवस्था भी करती है। ऐसे प्रमाणों को अधिक महत्त्व न देकर दो-एक प्रयोगात्मक प्रमाणो का उल्लेख करके, इन दोनो मे कहाँ तक वास्तविकता है, इस पर विचार करना विशेष उपयोगी है।

शिकागो विश्वविद्यालय के विद्वानो ने बुद्धि और पोष्यपुत्रों (Foster children) के व्यवहार और निर्माण-क्षमता (Capacity of performance) पर वातावरण के असर का अध्ययन करने के लिए जो प्रयोग किया वह इस क्षेत्र मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उनके अध्ययन मे यह प्रमाणित होता है कि पोष्यपुत्रों की बौद्धिक योग्यता पर वातावरण का प्रभाव पडता है और जिस पोष्यपुत्र का पालन पोषण अच्छे वातावरण मे होता है वह मानसिक योग्यता मे साधारण वातावरण मे पले हुए पोष्यपुत्र से श्रेष्ठ होता है। विभिन्न वातावरण म रहने वाले भाई-बहनों मे उतनी समानता नही होती जितनी एक ही वातावरण मे रहने वाले भाई-बहनो मे होती है। दरिद्र वातावरण मे रहने वाले भाई-

बहनों की बुद्धि, समृद्ध वातावरण मे रहने वाले भाई बहनो की अपेक्षा कम पाती है। दूसरी ओर, असम्बद्ध बच्चो को भी एक ही वातावरण म पालने पर उनकी बौद्धिक योग्यता म समानता दीखती है। ये सभी प्रमाण वातावरण के महत्त्व को सिद्ध करते है। इसी तरह स्टैफोर्ड विश्वविद्यालय के अन्वेषणो से भी यह पता चलता है कि मनुष्य की बौद्धिक योग्यता एव अन्य प्रकार के शीलगुण वातावरण से प्रभावित होते है। इस सम्बन्ध मे यह स्मरणीय है कि स्टैफोर्ड विश्वविद्यालय का अन्वेषण वातावरण के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी वशानुक्रम की अवहेलना नही करता।

वातावरण के प्रभाव को यान्त्रिक योग्यता (Mechanical ability) पर देखने के लिए एन्डरसन (Anderson) ने सात प्रकार के परीक्षणो का व्यवहार किया, किन्तु उसका अध्ययन वातावरण के पक्ष को पुष्ट न करके वशानुक्रम को ही पुष्ट करता है। कुछ विद्वानो ने सगीत को अर्जित गुण प्रमाणित करने का प्रयास किया है, किन्तु यह शीलगुण जन्मजात है या अर्जित, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है, क्योकि दोनो पक्षो मे पर्याप्त अन्वेषणात्मक प्रमाण उपस्थित है।

प्रशिक्षण (Training) का प्रभाव विभिन्न योग्यताओ पर क्या पडता है, इस प्रश्न का उत्तर प्रयोगात्मक प्रमाणो के आधार पर दिया गया है जिसमे यह स्पष्ट है कि प्रशिक्षण से मानसिक योग्यता अथवा अन्य कार्य-शक्तियो म वृद्धि होता है। लेकिन यह स्पष्टता भी निर्विवाद नही है, क्योकि कुछ विद्वानो का कहना है कि यह वृद्धि अभ्यास के कारण होती है तो अन्य विद्वानो का कहना है कि विधि और कौशल्य (Technique) में सुधार होने के फलस्वरूप यह वृद्धि होती है। इस प्रकार हम देखते है कि ह्विपुल (Whipple), ओबर्ला (Oberly), डेलेनबाक (Dellenbach), गेट्स (Gates), आदि विद्वानों के प्रयोग परिणामो मे काफी भिन्नता है। इस सबध म थार्नडाइक (Thorndike) का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति किसी परीक्षण म बुरा करे तो उस समूह के सभी व्यक्तियो को अभ्यास का अवसर देने पर भी वह उससे अच्छा कदापि नहीं कर सकता। अतएव वातावरण का महत्त्व वैयक्तिक भिन्नता मे नगण्य है। इसी तरह कुछ विद्वानो ने शीलगुण की समानता पर वातावरण के असर को प्रदर्शित किया है।

अब दोनों पक्षों के प्रयोगात्मक प्रमाणो का उल्लेख कर देने के बाद स्पष्टतया वशानुक्रम और वातावरण मे से किसी एक को प्रधान और दूसरे को गौण कहना कठिन प्रतीत होता है। लेकिन, इससे इतना तो कहा ही जा सकता है कि कोई भी पक्ष सर्वाङ्ग से दृढ नहीं है। सच्ची बात यह है कि वैयक्तिक भिन्नता मे दोनो का प्रभाव अलग अलग नही पडता। दोनों एक साथ ही व्यक्ति की योग्यताओ के विकास और प्रस्फुटन म योग देते है। इसलिए किसी एक अधार पर वैयक्तिक भिन्नता की सतोषप्रद व्याख्या करना गलत है। यदि वशानुक्रम (Heredity) वैयक्तिक भिन्नता (Individual difference) का बीज बोता है तो वातावरण उसे विकसित करता है। भिन्नता का कैसा भी प्रबल बीज व्यक्ति मे क्यों न रहे, किंतु उसके विकास के लिए यदि समुचित वातावरण न मिले तो वह भिन्नता कदापि विकसित न होगी। वस्तुत कई स्थलों पर वातावरण वैयक्तिक भिन्नता को विकास की अन्तिम चोटी पर पहुँचाता है, पर सभी स्थलो पर यह नियम लागू नहीं होता। इसी प्रकार अभ्यास से वैयक्तिक भिन्नता निर्मूल नहीं होती और न तो जिस योग्यता का पूर्ण अभाव रहता है उसका विकास ही होता है। अतएव वैयक्तिक भिन्नता में वशानुक्रम एव वातावरण दोनों ही समान महत्त्व के है।

तीसरा अध्याय

संवेदना (Sensation)

संवेदना क्या है ?

(What is sensation ?)

विद्वानों का ऐसा मत है कि किसी वस्तु मे कोई सुगध या रग नही होता। हम किसी खास कारण से उसे रगीन देखते या उसमे सुगन्ध का अनुभव करते है। पेड के पत्तों को देख कर हमारी आँखों के अन्दर एक तरह का रासायनिक परिवर्त्तन (Chemical change) होता है, इसके परिणामस्वरूप वे हरे दिखाई पडते है। इसी तरह फूल मे कोई सुगध नही होता, बल्कि किसी फूल से नाक मे एक तरह का रासायनिक परिवर्त्तन होता है और फलत हमे एक तरह के सुगध की अनुभूति होती है। आख, कान, नाक, जीभ, त्वचा, आदि शरीर के अगो को, जिन पर किसी उत्तेजना (Stimulus) का प्रभाव पडता है, ज्ञानेन्द्रिय (Sense organs) कहते है। ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तेजनाओं के प्रभाव को ग्रहण करती है, इसी से इन्हे ग्राहेन्द्रिय (Receptor organs) या ग्राहक (Receptors) भी कहते है। ज्ञानेन्द्रियों के सहारे ही ससार की तरह तरह की चीजों के सम्बन्ध मे हम ज्ञान प्राप्त करते है। आँख से देख कर, कान से सुनकर, जीभ से स्वाद लेकर, नाक से सूँघकर और त्वचा के सहारे स्पर्श कर हम विभिन्न चीजों की जानकारी हासिल करते है। सवेदना इस जानकारी या ज्ञान प्राप्त करनेकी प्रारभिक प्रक्रिया है। हमे इस प्रक्रिया से किसी उत्तेजना का ज्ञान नही होता, उसका मात्र आभास या चेतना होती है। जब भी कोई उत्तेजना किसी उपयुक्त ज्ञानेन्द्रिय को प्रभावित करती है तो उस ज्ञानेन्द्रिय मे (जैसा पहले कहा गया) एक रासायनिक परिवर्त्तन होता है जिसे स्नायु प्रवाह (Nerve impulse) कहते है। यह स्नायु-प्रवाह ज्ञानवाही स्नायुओं (Sensory nerves) के सहारे मस्तिष्क (Brain) के किसी खास भाग मे जाता है और तब एक ज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया (Cognitive mental process) का आविर्भाव होता है। इस मानसिक प्रक्रिया को ही सवेदना (sensation) कहते है जो अत्यन्त सरल और अर्थहीन होती है।

अब प्रश्न है, क्या सचमुच कोई सवेदना ऐसी हो सकती है जिसमे अर्थ का बिल्कुल ही अभाव हो ? सभवत इसका उत्तर 'नही' मे ही होगा। वस्तुत जब हमे किसी उत्तेजना का आभास (Awareness) होता है तो उसके साथ ही हम उसका कुछ अर्थ भी लगाते है। अर्थ गलत हो या सही, यह दूसरी बात है, लेकिन हम उस प्रथम परिचय को निरर्थक नही कह सकते। किसी बच्चे के सामने जब पहली बार अमरूद रखा जाता है तो वह उसे खाने की चीज नही समझ कर उससे खेलने लगता है। क्या ऐसी स्थिति में आप कहेगे कि बच्चे को अर्थहीन सवेदना हुई ? ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसने यह अर्थ तो लगाया ही कि वह खेलने की चीज है, भले ही उसका यह अर्थ गलत हो। इसी तरह हमारी ज्ञानेन्द्रिय जब भी किसी उत्तेजना के सम्पर्क मे आती है तो हम उसका कुछ न कुछ अर्थ लगा ही लेते है। इसलिये यदि सवेदना किसी उत्तेजना की मात्र चेतना है तो हमे मानना पड़ेगा

कि यह चेतना भी अर्थपूर्ण (Meaningful) होती है। वस्तुत किसी को शुद्ध सवेदना (Pure sensation) नही होती। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने शुद्ध सवेदना के दो गुण बतलाये है—(१) उत्तेजना की नवीनता एव (२) उत्तेजना के सम्बन्ध मे अनभिज्ञता। इन दोनों गुणों मे बात एक ही है। किसी उत्तेजना के सम्बन्ध मे जब हमे जानकारी नहीं रहती तो व [illegible] रहती है। लेकिन, यह 'जानकारी' शब्द 'अर्थपूर्ण' से बहुत अधिक भिन्न नहीं है। यदि हम यह कहे कि सवेदना अर्थहीन ज्ञानात्मक प्रक्रिया है या यह जानकारी विहीन ज्ञानात्मक प्रक्रिया है तो इन दोनों मे कोई स्पष्ट अन्तर प्रतीत नहीं होता। अत इस [illegible] भी बच्चे या सयाने मे शुद्ध सवेदना होती है, यह कहना कठिन है। यह एक मनोवैज्ञानिक कल्पना (Psychological myth) है जिसे हम एक सैद्धान्तिक सरचना (Theoretical construct) कह सकते है। लेकिन, यह होते हुए भी सवेदना का अध्ययन, प्रत्यक्षीकरण (Perception), चितन (Thinking), तर्क (Reasoning), आदि ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं (Cognitive processes) को समझने के लिये आवश्यक है, क्योंकि इन सभी का प्रारभ सवेदना से ही होता है। वस्तुत सवेदना सभी ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का मूल है। जिस तरह बिन्दु की परिभाषा के अनुसार उसका कोई अस्तित्व नहीं है तथापि वह रेखागणित का आधार है, क्योंकि तरह तरह की ज्यामितिक समस्याओं (Geometrical problems) का समाधान (Solution) बिन्दु की कल्पना करने से हो जाता है, उसी तरह यद्यपि शुद्ध सवेदना का कोई बाह्य प्रमाण नहीं दिया जा सकता तब भी उसकी उपेक्षा नही की जा सकती, क्योंकि वह विभिन्न ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की व्याख्या का आधार है।

स्पष्ट है, हम शुद्ध सवेदना का उदाहरण अपने जीवन से नही दे सकते, फिर भी इस पुस्तक मे रग की सवेदना, स्पर्श की सवेदना, खट्टे मीठे की सवेदना जैसी बात लिखी मिलेगी। हमारा मतलब इनकी अनुभूति से नही, बल्कि अनुभूति के प्रारंभिक रूप से है। लाल रग के अनुभव को लाल रग की सवेदना नही कह सकते। लेकिन, लाल रग उपस्थित होने पर जब तक उसमे किसी तरह का अर्थ नही लगता तब तक हमे उसकी सवेदना होती है। इस अर्थ मे किसी भी ज्ञानात्मक अनुभव का उदाहरण सवेदना के सम्बन्ध मे दिया जा सकता है, क्योंकि सवेदना होने के बाद ही हमे किसी तरह का ज्ञान होता है।

संवेदना के गुण

(Attributes of Sensation)

प्रत्येक वस्तु मे कुछ गुण हुआ करते है। गुण (Attributes) का अर्थ वस्तु की उन विशेषताओं से है जिनके अभाव मे वस्तु का अस्तित्व कायम नहीं रह पाता। जैसे, बर्फ का गुण है, उसका ठढापन, हवा का गुण है, उसकी गति। बर्फ से यदि ठढापन हटा दिया जाय तो बर्फ का अस्तित्व समाप्त हो जायगा, यानी, बर्फ नहीं रह जायगा। इसी तरह, बिना गति के हवा नही हो सकती। हर वस्तु का गुण दूसरी वस्तुओं से भिन्न होता है। दो वस्तुओं मे अन्तर उनके विभिन्न गुणों के ही कारण होता है। सवेदना के भी कुछ ऐसे गुण है जिनके अभाव मे सवेदना नही हो सकती। टिचनर (Titchener) ने सवेदना मे ऐसे चार गुणों की चर्चा की है। वे है—प्रकार (Quality), तीव्रता

(Intensity), सत्ताकाल (Duration), तथा स्पष्टता (Clearness)। स्टाउट (Stout) ने इनके अतिरिक्त दो अन्य विशेषताओं को भी संवेदना का गुण माना है जिन्हें वह विस्तार (Extensity) और स्थानीय चिन्ह (Local Sign) के नाम से अभिव्यक्त करता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इन दो विशेषताओं को संवेदना का गुण मानने में आपत्ति प्रकट की है, क्योंकि सभी तरह की संवेदनाओं में ये विशेषताएँ अनिवार्य रूप से नहीं हुआ करतीं। हम यहाँ क्रमशः इन छः गुणों पर संक्षेप में विचार करेंगे।

१ *प्रकार* (Quality) —संवेदना कई प्रकार की होती है, जैसे, दृष्टि संवेदना, श्रवण संवेदना, घ्राण संवेदना, आदि। इस तरह संवेदना अनिवार्य रूप से किसी खास प्रकार की होती है। वह देखने की, सुनने की, स्पर्श की या अन्य किसी प्रकार की संवेदना हो सकती है। लेकिन, जब भी होगी एक खास प्रकार की संवेदना होगी। इस गुण के कारण दो संवेदनाओं में अन्तर होता है। यह अन्तर दो तरह का होता है—(१) जातीय अन्तर (Generic difference) तथा (ख) विशिष्ट अन्तर (Specific difference)।

(क) जातीय अन्तर (Generic difference) —जब दो संवेदनाओं की उत्पत्ति दो ज्ञानेन्द्रियों (Sense organs) के सहारे होती है तब उन संवेदनाओं में अन्तर होता है। इस अन्तर को जातीय प्रकार का अन्तर कहते हैं। जैसे, आवाज की संवेदना कान के उत्तेजित होने से होती है, छवि की संवेदना आँख के उत्तेजित होने से होती है। इस तरह, श्रवण संवेदना और दृष्टि संवेदना में दो ज्ञानेन्द्रियाँ (कान और आँख) कार्य करती हैं, इसलिए इन दोनों प्रकार की संवेदनाओं में जो अन्तर है उसे जातीय अन्तर कहेंगे।

(ख) विशिष्ट अन्तर (Specific difference) —कभी कभी एक ही ज्ञानेन्द्रिय से दो प्रकार की संवेदनाएँ हुआ करती हैं। इन दो प्रकार की संवेदनाओं में जो अन्तर होता है उसे विशिष्ट अन्तर कहते हैं। जैसे, आँख के उत्तेजित होने से ही हमें लाल, पीले, हरे, आदि तरह तरह के रंगों की संवेदनाएँ होती हैं। इन रंग-संवेदनाओं के अन्तर को विशिष्ट अन्तर कहेंगे।

२ *तीव्रता* (Intensity) —प्रत्येक संवेदना में उसकी तीव्रता का गुण अनिवार्यतः होता है। इस अर्थ में भी एक संवेदना दूसरे से भिन्न होती है। मन्द स्वर से गाये गाने और उच्च स्वर से गाये गाने की संवेदनाएँ एक प्रकार (श्रवण संवेदना) की होती हुई भी एक दूसरे से भिन्न हैं—एक अधिक तीव्र है और दूसरी कम तीव्र। इस तरह की भिन्नता के उदाहरण दृष्टि, स्वाद, स्पर्श, घ्राण, आदि की संवेदनाओं से भी लिए जा सकते हैं। संवेदना का यह गुण ज्ञानेन्द्रिय की विशिष्टता पर नहीं, उसके उत्तेजित होने की मात्रा पर निर्भर करता है। कोई ज्ञानेन्द्रि जितनी ही अधिक मात्रा में उत्तेजित होती है उससे उत्पन्न संवेदना उतनी ही अधिक तीव्र होती है। वेबर तथा फेकनर (Weber & Fechner) ने इस संबन्ध में महत्त्वपूर्ण प्रयोग कर कुछ नियमों (Laws) का प्रतिपादन किया है।[1]

१ इसपर विशेष प्रकाश 'वेबर-नियम' के अन्तर्गत इस अध्याय के अन्त में डाला जायगा।

३ *सत्ताकाल* (Duration) —प्रत्येक सवेदना कुछ खास समय तक होती है। किसी उत्तेजना की सवेदना जितनी देर तक होती है उसे सवेदना का सत्ताकाल (Duration) कहते है। या कह सकते है कि जितनी देर तक कोई ज्ञानेन्द्रिय (Sense organ) उत्तेजित रहती है उसी पर सवेदना का सत्ताकाल निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, यदि एक बार कोई आकृति दो सेकण्ड तक दिखलाई जाय और दूसरी बार दस पाच सेकण्ड तक दिखलाई जाय तो इन दोनो बार की सवेदनाओ मे अतर होगा। दोनो सवेदनाओ का यह अतर उनके सत्ताकाल मे अतर के कारण होगा।

४ *स्पष्टता* (Clearness) —सवेदना के साथ स्पष्टता का भी गुण जुटा रहता है। कोई सवेदना अधिक स्पष्ट होती है और कोई कम। वस्तुत यह स्पष्टता उत्तेजना की तीव्रता (Intensity) और सत्ताकाल (Duration) पर निर्भर करती है। जो उत्तेजना जितनी ही तीव्र और अधिक समय तक ज्ञानेन्द्रिय को प्रभावित करेगी वह उतनी ही अधिक स्पष्ट भी होगी। जब किसी चीज से हाथ के किसी भाग को १० सेकण्ड तक जोर से दबाया जाता है तो उसकी सवेदना, उसी चीज से हाथ को दो सेकण्ड तक मात्र स्पर्श करने की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होती है। इसी तरह, तीव्र आवाज मे कुछ अधिक समय तक जब कुछ कहा जाता है तो उसकी सवेदना धीमी आवाज मे शीघ्रता से कही गयी बात की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होती है।

५ *विस्तार* (Extensity) —किसी ज्ञानेन्द्रियसे सबन्धित विभिन्न उत्तेजनाए उस ज्ञानेन्द्रिय के समान (Equal) भाग को उत्तेजित नही करती। किसी उत्तेजना से ज्ञानेन्द्रिय का अधिक भाग उत्तेजित हो जाता है और किसी उत्तेजना से उसका बहुत ही कम भाग उत्तेजित होता है। इन दोनों अवस्थाओ मे उत्पन्न सवेदनाओं मे अन्तर होता है। मानले, किसी चीज से शरीर पर के एक सेण्टीमीटर की दूरी को स्पर्श किया जाता है। पुन शरीर के उसी भाग पर दस सेण्टीमीटर की दूरी को उतने ही दबाव से स्पर्श किया जाता है। इन दो स्पर्श सवेदनाओ मे अन्तर होगा और इसका कारण दोनों के विस्तार का अन्तर होगा।

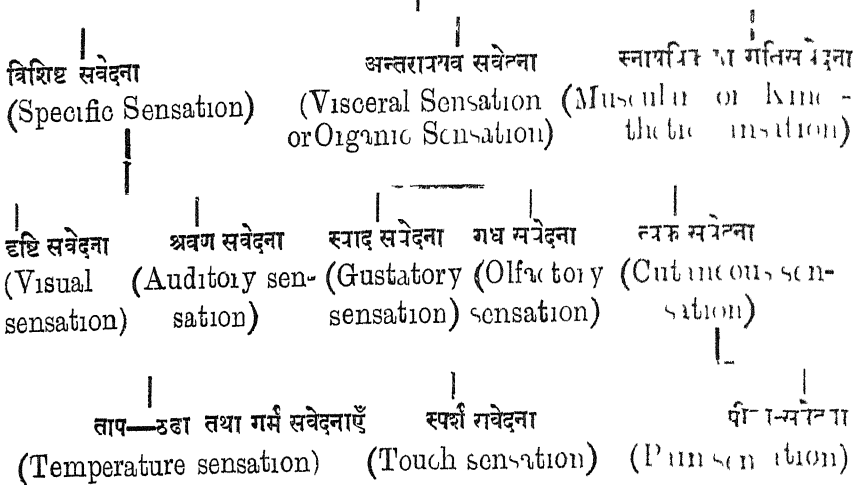
६ *स्थानीय चिन्ह* (Local sign) —प्रत्येक सवेदना का कुछ स्थानीय चिन्ह होता है जिसके सहारे शरीर के किसी भाग मे उसका स्थान-निरूपण (Localisation) किया जाता है। जैसे, यदि प्रयोज्य की आँखे बन्द कर के एक खास जगह से आवाज दें तब भी प्रयोज्य कह देगा कि अमुक दिशा या स्थान से यह आवाज आ रही है। इस तरह न केवल उसे श्रवण सवेदना होती है, बल्कि उसके साथ ही उसके स्थान का भी अदाज उसे लगता है। इसी तरह, यदि किसी के शरीर के किसी भाग को स्पर्श करने पर बिना देखे हुए भी वह बता देता है कि शरीर के अमुक भाग को अभी स्पर्श किया गया था तो ऐसा सवेदना के स्थानीय चिन्ह के ही परिणाम स्वरूप सभव हो पाता है। सवेदना के इन गुणों के अतिरिक्त, कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भावात्मक अनुभव (Feeling tone) का भी सवेदना का गुण माना है। लेकिन, अधिकाश सवेदनाएँ भावविहीन या विरक्त (Indifferent) स्वरूप की होती है। वस्तुत सवेदना इतनी प्रारम्भिक और सरल मानसिक प्रक्रिया है कि उसके साथ सुख या दुःख की अनुभूति का होना सभव नही मालूम होता। साथ ही, हम यह भी जानते है कि भाव स्वय एक स्वतन्त्र मानसिक अवस्था (Independent mental

state) है। इसके अतिरिक्त, संवेदना के साथ कुछ स्थानीय चिन्ह होते हैं जिनके सहारे संवेदना का स्थान निरूपण करते हैं। स्पर्श की संवेदना शरीर के अमुक स्थान पर हुई है, हम ऐसा कह लेते हैं, लेकिन भाव या संवेग का स्थान-निरूपण (Localization) संभव नहीं है। जब हम खुश, दुखी, चिन्तित या भयभीत होते हैं तो उस समय हमारा पूरा शरीर प्रभावित हो जाता है। हम ऐसा नहीं कह सकते कि इनका अनुभव हमें पैर में हो रहा है या हाथ में हो रहा है। इस तरह, भाव तथा संवेग को संवेदना का गुण नहीं कहा जा सकता।

संवेदना-प्रकार
(Kinds of Sensation)

संवेदना का वर्गीकरण कई आधारों पर किया गया है, लेकिन ज्ञानेन्द्रियों (Sense organs) के आधार पर किया गया विभाजन ही अधिक मान्य है। हम विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों को तीन वर्गों में रख सकते हैं—(क) बाह्य ज्ञानेन्द्रिय या ग्राहक (Exteroceptors), (ख) आन्तरिक ग्राहक (Interoceptors) और (ग) मध्य ग्राहक (Proprioceptors)। उन ज्ञानेन्द्रियों को, जो शरीर के बाहरी भाग में रहती हैं (जिन्हें हम देखते हैं) और बाह्य विश्व की भौतिक उत्तेजनाओं को ग्रहण करती हैं, बाह्य ग्राहक कहते हैं, जैसे, आँख, कान, नाक, जिह्वा तथा त्वचा। कुछ ऐसे ग्राहक हैं जो शरीर के भीतर होते हैं और आन्तरिक उत्तेजनाओं (Internal Stimuli) से ही उत्तेजित होते हैं, उन्हें आन्तरिक ग्राहक (Interoceptors) कहते हैं, जैसे अँतड़ी, हृदय, आदि। उनसे भिन्न कुछ ग्राहक ऐसे हैं जो माँसपेशियों (Muscles) तथा जोड़ों (Tendons) में पाये जाते हैं, उन्हें मध्यग्राहक (Proprioceptors) कहते हैं। इन तीन तरह की ज्ञानेन्द्रियों से हमें मुख्य तीन तरह की संवेदनाएँ होती हैं जिन्हें क्रमश विशिष्ट संवेदना (Specific Sensation), अन्तरावयव संवेदना (Organic or Visceral sensation) तथा स्नायविक या गति—संवेदना (Muscular or Kinesthetic Sensation) कहते हैं। विशिष्ट संवेदना का संबंध बाह्य ग्राहकों (External Receptors) से है जिनके अन्तर्गत कई ग्राहकों का बोध होता है। फलत हमें इन सभी से सम्बन्धित विभिन्न संवेदनाएँ होती हैं। आँख से सम्बन्धित संवेदना को दृष्टि संवेदना (Visual Sensation) कहते हैं, कान से सम्बन्धित संवेदना को श्रवण संवेदना (Auditory Sensation) तथा इसी तरह जीभ, नाक और त्वचा (Skin) से सम्बन्धित संवेदनाओं को क्रमश स्वाद संवेदना (Gustatory Sensation), गंध संवेदना (Olfactory Sensation), तथा त्वक् संवेदना (Cutaneous Sensation) कहते हैं। त्वक् संवेदना में ताप (Temperature), स्पर्श (Touch) तथा पीड़ा (Pain) की संवेदनाएं होती हैं। संवेदनाओं का विभाजन निम्नांकित तालिका में स्पष्ट हो जायगा।

संवेदना (Sensation)



विशिष्ट-संवेदनाएँ
(Specific Sensations)

विशिष्ट संवेदनाओं के अन्तर्गत किन संवेदनाओं की गणना होती है, यह बताया जा चुका है। उन सभी को विशिष्ट संवेदना के एक वर्ग मे, इसलिए रखा गया है, चूंकि प्रत्येक मे एक खास या विशिष्ट ग्राहक (Receptor) और विशिष्ट उत्तेजना (Stimulus) की आवश्यकता होती है। जैसे, दृष्टि संवेदना (visual sensation) के लिए, ग्राहक आँख है और उत्तेजना प्रकाश। दृष्टि संवेदना जब होगी तो प्रकाश की और आँख के सहारे होगी, किसी दूसरे ग्राहक के सहारे नही। इसी तरह, श्रवण संवेदना के लिए ग्राहक कान है और उत्तेजना, ध्वनि। इस संवेदना के लिए इन दोनों का होना आवश्यक है। इसी तरह जीभ, नाक और त्वचा भी विशिष्ट प्रकार की उत्तेजनाओं से ही उत्तेजित होती हैं और तब परिणामस्वरूप हमे विशिष्ट प्रकार की संवेदनाएँ—स्वाद, गंध और त्वचा संबन्धी होती है। आँख और कान के द्वारा उत्पन्न संवेदनाएँ अधिक प्रमुख स्थान रखती हैं। अतः हम दृष्टि और श्रवण संवेदनाओं पर विशेष रूप मे प्रकाश डालेंगे और अन्य संवेदनाओं की चर्चा संक्षेप मे करेंगे।

दृष्टि-संवेदना
(Visual Sensation)

दृष्टि संवेदना के लिए ग्राहक आँखें है और उत्तेजना प्रकाश तरंग (Light wave)। जब कोई वस्तु हमारे सामने आती है तो उससे एक तरह की प्रकाश—तरंगें निकल कर हमारी आँखों पर पडती है। आँख प्रकाश को ग्रहण करती है। इसके बाद कुछ रासायनिक (Chemical) और दैहिक (Physiological) क्रियाएँ होती है जिनके परिणामस्वरूप हमे उस चीज की दृष्टि-संवेदना होती है। उत्तेजना के उपस्थित होने से लेकर संवेदना होने तक की अवस्था को तीन पहलुओं मे बांटा जा सकता है। दृष्टि-संवेदना के वे पहलू (Aspects) निम्नांकित है।

(१) भौतिक पहलू (Physical aspect),
(२) दैहिक पहलू (Physiological aspect) तथा
(३) मनोवैज्ञानिक पहलू (Psychological aspect) ।

(१) भौतिक पहलू —कोई भी वस्तु, जिसे हम देखते हैं, कुछ मात्रा में प्रकाश प्रतिबिम्बित (Reflect) करती है। भौतिकविज्ञान (Physics) के अनुसार कोई भी वस्तु किसी खास रूप, रंग या चमक की इसलिए मालूम होती है, चूँकि वह एक खास मात्रा में खास तरह का प्रकाश प्रतिबिम्बित करती है। इस तरह, दृष्टि संवेदना के भौतिक पहलू का अर्थ दृष्टि-उत्तेजना (Visual stimuli) या प्रकाश तरंगों (Light waves) से है।

(२) दैहिक पहलू —किसी वस्तु को देखते समय उसका एक चित्र आँख के भीतरी भाग (अक्षिपट) में आ जाता है जिससे वहाँ कुछ रासायनिक परिवर्तन (Chemical changes) होते हैं। उस परिवर्तन की सूचना दैहिक आधारों पर मस्तिष्क के विशेष भाग में पहुँचती है। इस तरह, दृष्टि संवेदना में आँख से मस्तिष्क तक दैहिक क्रियाएँ (Physiological activities) होती हैं जिनके अभाव में दृष्टि-संवेदना असम्भव है। इन क्रियाओं को ही दृष्टि संवेदना का दैहिक पहलू कहते हैं।

(३) मनोवैज्ञानिक पहलू —मस्तिष्क (Brain) में दैहिक परिवर्तनों के उपरान्त एक सरलतम मानसिक प्रक्रिया का आविर्भाव होता है। संवेदना की पूर्णता इसी पहलू में होती है। इसी से इसे भौतिक और दैहिक पहलुओं का परिणाम (Product) भी कहा जाता है। लेकिन, ऐसा कहना बिल्कुल सही नहीं है। कभी कभी दो उत्तेजनाओं से समान मात्रा में प्रकाश निकलने पर भी उन दोनों की संवेदनाएँ दो तरह की होती हैं। इसी तरह कभी कभी दो तरह के चित्र आँख के अन्दर पड़ने पर भी दोनों की अनुभूति एक ही रूप में होती है। मनोवैज्ञानिक आधार की चर्चा करते समय इस पर विशेष रूप में आगे विचार करेंगे। यहाँ हमारा मतलब इतने ही से है कि दृष्टि संवेदना में तीन पहलू होते हैं और ये तीनों हमारी संवेदना को निर्धारित करते हैं। यहाँ हम इन तीनों का उल्लेख करेंगे। सर्व प्रथम हम दैहिक पहलू (Physiological aspect) पर विचार करेंगे और मुख्य रूप से इसमें आँख और दृष्टि संवेदना के लिए निर्धारित मस्तिष्क खंड की कार्यवाहियों की चर्चा करेंगे। तत्पश्चात् भौतिक पहलू (Physical aspect) के अन्तर्गत प्रकाश तरंगों (Light waves) और उनके प्रभाव पर प्रकाश डालेंगे। अन्त में मनोवैज्ञानिक पहलू (Psychological aspect) के अन्तर्गत विभिन्न दृष्टि-व्यापारों (Visual Phenomena) तथा दृष्टि सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे।

आँख की रचना और कार्यवाही

(Structure & functions of eye)

मनुष्य की आँख की बनावट गोलाकार है जिसका अगला भाग उभरा हुआ घड़ी के गोल शीशे की तरह है। आँख के अन्दर का हिस्सा पूर्णत खोखला है। उसमें जेली की तरह एक प्रकार का तरल पदार्थ (Liquid Substance) भरा हुआ

है जिसे काचद्रव (Vitreous humor) कहते हैं। इसका काम नेत्रगोलक (Eye ball) की दिवाल को फुलाए रखना है। यदि इसकी [illegible] तो हम तीन निम्नांकित तह मिलेगी।

(१) श्वेतपटल (Sclera),
(२) मध्यपटल (Choroid) और,
(३) अक्षिपट (Retina)।

(१) श्वेतपटल (Sclera) –सबसे ऊपरी तह को, जिसे हम [illegible] पटल (Sclera) कहते हैं। यह कड़ा और उजले रंग का होता है। इसका कार्य नेत्रगोलक (Eye ball) की रक्षा करना है। चूँकि इसकी बनावट कड़ी (Tough) है, इसलिए इससे बाहर की चोट से आँख की रक्षा होती है। यह पूर्णतः अपारदर्शी (Opaque) है, जिससे प्रकाश प्रवेश नही करता। लेकिन, इसका आगे की ओर उभरा हुआ भाग है जिसे हम कनीनिका (Cornea) कहते हैं। श्वेत पटल का यही भाग केवल पारदर्शी (Transparent) है। यहा से प्रकाश अन्दर प्रवेश करता है। कनीनिका का मुख्य कार्य लेंस और उपतारा (जो इसके नीचे है) की रक्षा करना है।

(२) मध्यपटल (Choroid) –श्वेत पटल के नीचे नेत्रगोलक की दिवाल की एक दूसरी सतह है जिसे मध्यपटल (Choroid) कहते हैं। मध्यपटल गहरे भूरे या काले रंग का होता है। यह अत्यधिक अपारदर्शक है, अतएव इसके कारण बाहर का प्रकाश न तो भीतर और न अन्दर का प्रकाश बाहर आ पाता है। इस पटल के बीच बहुत सी रक्त वाहिनियाँ (Blood Vessels) रहती हैं जिनके द्वारा आँख में रक्त की आवश्यकता पूरी होती है। जिस प्रकार श्वेतपटल (Sclera) आगे की ओर आकर उभरा हुआ बन जाता है और जिसे कनीनिका (Cornea) कहते हैं, उसी प्रकार मध्यपटल (Choroid) भी आगे आकर माँस पेशियों का एक समूह (Bundle of muscles) बन जाता है जिसे पाक्ष्मिक माँसपेशियाँ (Ciliary musles) कहते हैं। ये माँसपेशियाँ दो भागों मे बँटी है। इसका एक भाग लेंस (Lens) के ऊपर फैला हुआ है जिसे उपतारा (Iris) कहते है। इसका दूसरा भाग लेंस (Lens) के नीचे की झिल्ली से मिल जाता है। इसे विपक्ष बन्ध या 'सस्पेन्सरी लिगामेण्ट' (Suspensary Ligament) कहते हैं। यद्यपि उपतारा (Iris) और सस्पेन्सरी लिगामेण्ट दोनों पाक्ष्मिक माँसपेशियों (Ciliary muscles) के ही दो भाग हैं, तथापि इन दोनों की रचना और कार्यवाही (Structure & functions) में अन्तर है।

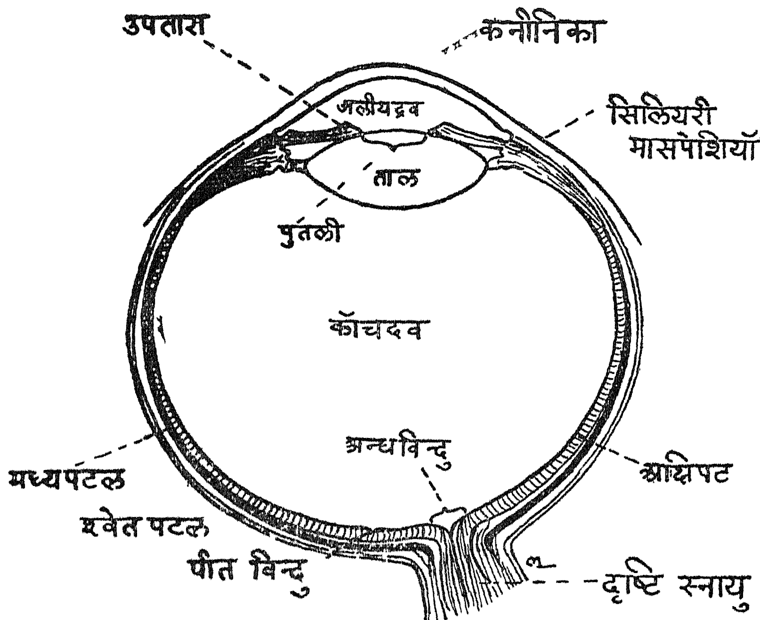
सस्पेन्सरी लिगामेण्ट (Suspensary Ligaments) लेंस के आकार को बडा या छोटा बनाया करता है। लेंस एक पारदर्शक झिल्ली से बना हुआ है जिसके बीच का भाग थोडा उठा हुआ है और किनारे पतले हैं। इसके ऊपर की झिल्ली पारदर्शक होती है। इसके अन्दर भी एक प्रकार का अर्द्ध तरल पदार्थ (Semi-liquid Substance) भरा रहता है। दूर की चीजों को देखते समय लेंस बडा हो जाता है और नजदीक की चीज देखते समय यह छोटा हो जाता है। ठीक से प्रकाश को ग्रहण करने के लिए लेंस के आकार में यह परिवर्त्तन आवश्यक है। लेंस का यह छोटा या बडा होना सस्पेन्सरी लिगामेण्ट की

कार्यवाही पर निर्भर करता है। इस तरह, सिलियरी माँसपेशियों का यह भाग लेंस को सतुलित (Balanced) बनाए रखने मे मदद करता है।

उपतारा (Iris) की कार्यवाही इससे बिल्कुल ही भिन्न है। उपतारा के बीच मे पुतली (Pupil) है जिससे होकर प्रकाश आँख के अन्दर प्रवेश करता है। पुतली का आकार प्रकाश की तीव्रता के अनुसार परिवर्तित हुआ करता है। जब तीव्र प्रकाश आखों पर पड़ता है तो पुतली छोटी हो जाती है। मद प्रकाश को ग्रहण करते समय पुतली बडी हो जाती है। पुतली का छोटा या बडा होना उपतारा पर निर्भर करता है। इसे पुतली की सहज क्रिया (Reflex action) कहते है। इस तरह त्रिपक्ष-बन्ध या सस्पेन्सरी लिगामेण्ट जहाँ एक ओर लेंस के आकार को नियन्त्रित करता है, वहाँ दूसरी ओर उपतारा (Iris) पुतली के बडा या छोटा होने का नियन्त्रण करता है।

लेंस और कनीनिका (Cornea) के बीच एक प्रकार का तरल पदार्थ (Liquid substance) पाया जाता है जिसे जल या जलीय द्रव (Aqueous humor) कहते है। कनीनिका इसी द्रव के कारण उभरी हुई मालूम होती है। इसका मुख्य कार्य लेंस (ताल) की सफाई करना है। आँख की रचना को समझने के लिए नीचे का चित्र देखे।

चित्र सख्या—४



आँख की रचना का चित्र

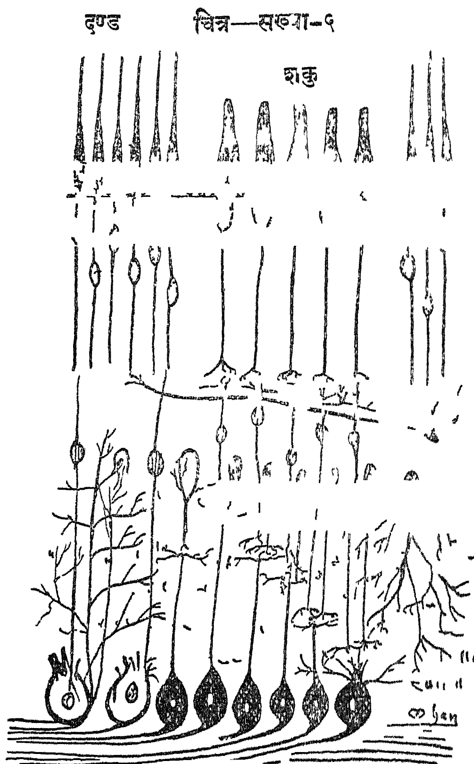
(३) अक्षिपट (Retina) —अक्षिपट नेत्रगोलक (Eye ball) की तीसरी और अन्तिम सतह है। दृष्टि सवेदना के लिए आँख की इसी सतह का सबसे अधिक महत्त्व है। अक्षिपट मे ही दृष्टि-सवेदना के ग्राहक कोष (Receptor cells) रहते है ... रहते है। ये ग्राहक दो तरह के है। एक को दण्ड

(Rods) कहते है और दूसरे को शकु (Cones)। [illegible],
परन्तु इनमे अन्तर है। यह अन्तर [illegible] तरह का है।

(क) बना[illegible] या र[illegible] का अन्तर ([illegible]),
(ख) कार्यवाही का अन्तर (Func[illegible]) और
(ग) वितरण का अन्तर (Di[illegible]tribut[illegible])।

(क) बनावट का अन्तर (Structural difference)—(१) [illegible] (Cones) देखने मे छोटे और मोटे होते है। दण्ड (Rod) [illegible]। दोनों की बनावट के अन्तर को नीचे के चि[illegible] मे [illegible] जा सकता है।

चित्र—संख्या-९



दण्ड और शकु का चित्र

(२) [illegible] (Visual purple) [illegible] (Sul[illegible]ne) [illegible] है। [illegible] यह पदार्थ दण्डो म एकत्रित होता है जिसके फलस्वरूप [illegible] अधकार म [illegible] का[illegible] करते है। [illegible], [illegible] तरह का कोई पदार्थ [illegible]।

(३) [illegible] का बनावट म एक अन्तर [illegible] है कि अधिकाश शकुओं का अपने [illegible] स्नायुतन्तु (Nerve fibre) होते है। लेकिन, प्रत्येक दण्ड का [illegible] स्नायुतन्तु नही होते, क्योंकि दण्ड समूह म पाए जाते है।

(ख) कार्यवाही का अन्तर (Functional difference)—सर्व प्रथम वॉन क्राइज (Vonkries) ने इस रहस्य का उद्घाटन किया कि दण्ड और शकुओं की कार्यवाही मे भी अन्तर होता है। उसने द्विधाभाव-सिद्धात (Duplicity theory) प्रतिपादित कर बतलाया कि शकुओं (Cones) को उत्तेजित करने के लिए अधिक लम्बी प्रकाश-तरंग (Light wave) की जरूरत होती है। दूसरी ओर, छोटी प्रकाश तरगे जब आँखो को प्रभावित करती है तो दण्ड क्रियाशील होते है। दूसरे शब्दों मे, तीव्र प्रकाश मे शकु कार्य करते है और मद प्रकाश या अधकार म दण्ड कार्य करते है। चमगादर, उल्लू, आदि मे शकु नही पाये जाते। यही कारण है कि उन्हें दिन मे नजर नही आता। इसी तरह, जिन व्यक्तियों के दण्ड बहुत कमजोर हो जाते है उन्हें रात में कुछ नजर नही आता।

• संवेदना दो तरह की होती है—रंगीन संवेदना (Chromatic sensation) और रंगविहीन संवेदना (Achromatic sensation)। रंगीन संवेदना से अर्थ लाल, हरे, पीले, नीले, गुलाबी, आदि तरह तरह के रंगों की संवेदनाओं से है। दूसरी ओर, रंग-विहीन संवेदना का अर्थ उजले, काले तथा भूरे की संवेदनाओं से है। द्विधाभाव सिद्धांत (Duplicity theory) के अनुसार विभिन्न रंगों की संवेदना शंकुओं के उत्तेजित होने के फलस्वरूप होती है। लेकिन, रंगविहिन संवेदना दण्डों के क्रियाशील होने से होती है। इस तरह, दण्ड और शंकु के कार्य अलग अलग है।

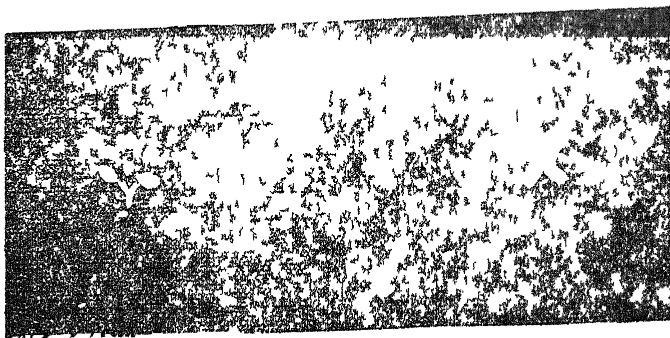
(ग) वितरण का अन्तर (Distributional difference)—बनावट और कार्यवाही के अतिरिक्त दण्ड और शंकु मे एक तीसरा अन्तर वितरण (Distribution) का भी है। दोनों का वितरण अक्षिपट में एक तरह नहीं है। अक्षिपट (Retina) मे केन्द्र की ओर शंकुओं की संख्या अधिक है और दण्डों की संख्या कम। अक्षिपट के केन्द्र-स्थान को पीत बिन्दु (Yellow spot) कहते है। इसके बीच मे एक धॅसी हुई जगह है जिसे फोविया (Fovea) कहते है। इस स्थान मे केवल शंकु पाये जाते है। यहाँ पर किसी वस्तु की प्रतिमा (Image) बहुत स्पष्ट पड़ती है। इसी से इसे 'स्पष्टतम दृष्टि-बिन्दु' (Point of clearest vision) कहते है। लेकिन, पीत बिन्दु से बाहर दण्ड और शंकु दोनों पाए जाते है। पीत बिन्दु से ज्यों ज्यों हम अक्षिपट की बाहरी सीमा की ओर चलते है शंकुओं की संख्या घटती जाती है और दण्डों की संख्या बढ़ती जाती है। अन्त में, पार्श्विक मांसपेशियों (Ciliary muscles) के नजदीक दण्डों की संख्या इतनी बढ जाती है कि वहाँ शंकु नगण्य सा रह जाते है।

दण्ड और शंकुओं के वितरण के सिलसिले में अंधबिन्दु (Blind spot) की चर्चा उल्लेखनीय है। अक्षिपट के भागों मे छोटे-छोटे स्नायुतंतु (Nerve fibres) है जिनके सहारे स्नायु-प्रवाह (Nerve impulse) आँख से बाहर निकल कर मस्तिष्क की ओर जाता है। इन्हें दृष्टि-स्नायु (Optic nerve) कहते है। अक्षिपट की वह जगह, जहाँ से दृष्टि-स्नायु निकल कर मस्तिष्क को जाते है अन्धबिन्दु (Blind spot) कहलाती है। इस स्थान पर न संवेदना का एक भी ग्राहक नहीं है—न दण्ड होता है और न शंकु, केवल तंतु ही तंतु होते है। इस स्थान पर टकराने वाले प्रकाश की कोई संवेदना नहीं होती। इसी कारण इसे अन्धबिन्दु (Blind spot) कहा जाता है। कुछ समय पहले तक विद्वानों का ऐसा दृष्टिकोण था कि इस पर किसी भी वस्तु की कोई प्रतिमा नहीं पड़ती। लेकिन, आधुनिक प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि अन्धबिन्दु पर भी तीव्र प्रकाश से प्रतिक्रिया होती है। अतएव इस स्थल पर भी दण्ड और शंकुओं की संभावना है जो अत्यल्प संख्या में है। अन्धबिन्दु सभी सामान्य व्यक्तियों में पाया जाता है। कागज पर अन्धबिन्दु क्षेत्र (Area of blind spot) का निर्धारण किया जाता है। इस क्षेत्र में कोई चीज रखने पर नजर नहीं आती। बाईं आँख का अन्धबिन्दु बाईं ओर पड़ता है और दाहिनी आँख का अन्धबिन्दु-क्षेत्र दाहिनी ओर।[1] नीचे के चित्र-६ (क) के उस बिन्दु को जहाँ दो रेखाएँ एक दूसरे को काटती हैं लगभग ६ इंच ऊँचाई से बाँई आँख से ३० सेकण्ड तक गौर से देखें। देखते समय दाहिनी आँख को बन्द कर ले। शुरू में बिन्दु की बाईं ओर जो फूल बना है वह नजर आएगा, परन्तु कुछ

१ अन्धबिन्दु क्षेत्र को निर्धारित करने की विधि लेखक द्वारा रचित 'मनोवैज्ञानिक प्रयोग', (प्र० ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना—४) मे देखें।

ही क्षणों में वह विलीन हो जाएगा। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि फूल का चित्र बाईं आँख के अंधविन्दु क्षेत्र मे पड़ता है। नीचे इस क्षेत्र को निकालते समय का प्रयोग चित्र ६ (ग) दिया गया है।

चित्र संख्या–६ (क)



चित्र संख्या–६ (ख)



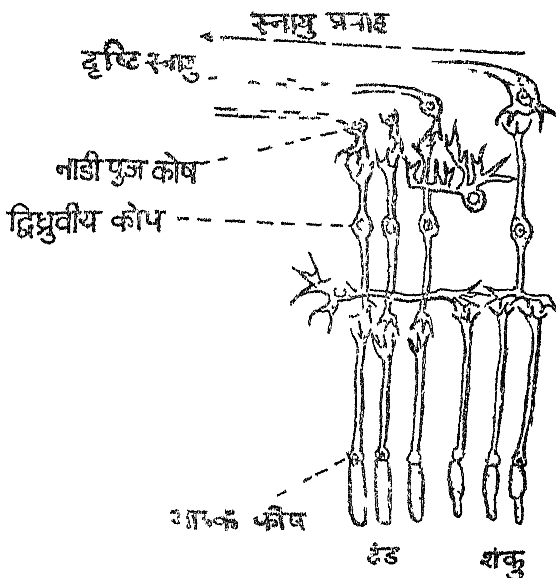
अन्धविन्दु का प्रयोग—चित्र

अब अपनी सुविधा के लिए आँख की पूरी कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण आसानी से दिया जा सकता है। प्रकाश—तरग सबसे पहले कनीनिका (Cornea) और जल द्रव (Aqueous humor) से होती पुतली के द्वारा आँख के अन्दर प्रवेश करती है। पुतली से आया प्रकाश लेंस पर पड़ता है और लेंस उसे आँख के भीतरी भाग अक्षिपट (Retina) को भेज देता है। अक्षिपट पर जब प्रकाश पहुँचता है तो आँख के ग्राहक दण्ड या शंकु उत्तेजित हो जाते है जिसके परिणामस्वरूप वहाँ एक स्नायुप्रवाह (Neural impulse) उत्पन्न होता है। यह स्नायुप्रवाह दृष्टि स्नायु के सहारे आँख से बाहर निकल कर मस्तिष्क के एक विशेष

स्नायुप्रवाह मस्तिष्क मे कैसे पहुँचता है ?
(How neural impulse reaches the brain) ?

मनुष्य का मस्तिष्क काफी विकसित है। अत प्राय सभी सरल मानसिक प्रक्रियाओं को सचालित करने के लिए प्रमस्तिष्क (Cerebral cortex) मे अलग अलग स्थान बने है। कोई खास स्थान किसी खास तरह की सवेदना को नियत्रित और सचालित करता है। मस्तिष्क का जो भाग दृष्टि-सवेदना को सचालित करता है उसे पृष्ठ खण्ड (Occipital lobe) कहते है। आँख मे उत्पन्न स्नायुप्रवाह [जिसे अक्षिपटीय प्रवाह (Retinal impulse) भी कहते है] जब विभिन्न स्नायुओं (Nerves) के सहारे मस्तिष्क के इस भाग मे पहुचता है तब हमे दृष्टि सवेदना होती है। लेकिन, अक्षिपट (Retina) से पृष्ठ खण्ड (Occipital lobe) तक का यह स्नायु पथ बहुत सरल नही है। हम जानते है कि दड (Rods) तथा शकु (Cones) आँख के ग्राहक कोष (Receptor cells) है। ये आँख पर प्रकाश पडने से उत्तेजित हो जाते है और इनमे स्नायुप्रवाह (Nerve Impulse) उत्पन्न हो जाता है। एक खास तरह के कोष (Cell or neuron) इस स्नायुप्रवाह को ग्रहण कर अक्षिपट से चलते है जिन्हे द्विध्रुवीय (Bipolar cells) कहते है। लेकिन, स्नायुप्रवाह इन्ही कोषो के सहारे आख से बाहर नही निकल पाता, बल्कि आँख से बाहर होने के पहले एक दूसरे तरह के कोष स्नायुप्रवाह को द्विध्रुवीय कोष (Bipolar cells) से ग्रहण कर लेते है। इन कोषों को नाडीपुज कोष (Ganglion cells) कहते है। अक्षिपट का स्नायुप्रवाह इन्ही कोषों के सहारे आँख से बाहर निकलता है। नाडीपुज कोष (Ganglion cells) के मुख्यतंतु (Axon) से ही दृष्टि-स्नायु (optic nerve) का निर्माण होता है। तीन तरह के कोषों की रचना को निम्नाकित चित्र म देखें।

चित्र सख्या—७



स्नायुप्रवाह का अक्षिपट से बाहर निकलना

इस तरह स्नायुप्रवाह जब दृष्टि स्नायु तक पहुँच जाता है तब यह कई दूसरे कोषों (Neurons) की सहायता से थैलेमस (Thalamus) मे पहुँचता है। थेलेमस मे कई तरह के स्नायु सम्बन्ध (Connections) है, देखते समय इन्हीं सम्बन्धों के कारण कुछ क्रियात्मक (Motor) व्यापार भी होते है, जैसे, पार्श्विक मांसपेशियों (Ciliary muscles) का सचालन, या आँख अथवा सिर वगैरह का घुमाना फिराना, यह सब थेलेमस के द्वारा ही नियन्त्रित होता है। थेलेमस का सम्बन्ध अनेक स्नायुतन्तु (Nerve fibres) के सहारे पृष्ठ खड (Occipital lobe) से है। इसके द्वारा स्नायुप्रवाह पृष्ठ खड मे पहुँच जाता है और तब हमे दृष्टि सवेदना (Visual Sensation) होती है। इस तरह हम आँख के स्नायुप्रवाह के मस्तिष्क तक पहुँचने की दैहिकप्रक्रिया (Physiological process) को चार अवस्थाओं मे रख सकते है,

(१) स्नायुप्रवाह की उत्पत्ति--इसमे दण्ड और शकु कार्य करते है।

(२) स्नायुप्रवाह का आख से बाहर निकलना—इसमे द्विध्रुवीय (Bipolar) तथा नाडीपुज कोष (Ganglion Cells) कार्य करते है।

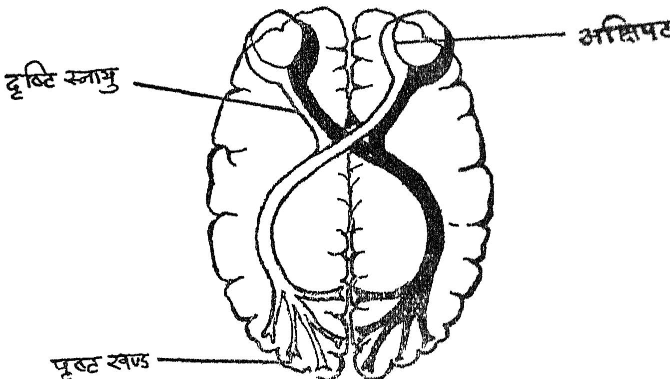
(३) स्नायुप्रवाह का थेलेमस मे पहुँचना—इसमे दृष्टिस्नायु और थेलेमस के बीच कई कोष (Neurons) कार्य करते है।

(४) स्नायुप्रवाह का पृष्ठ खड (Occipital lobe) मे पहुँचना—इसमे थेलेमस और पृष्ठखड के बीच कई स्नायुतंतु कार्य करते है।

पृष्ठ खड दृष्टि-सवेदना को कैसे नियन्त्रित करता है ?
(How Occipital lobe Controls Vision) ?

पृष्ठ खड (Occipital lobe) दो भागों मे बटा है, एक को दाहिना भाग (Right hemisphere) कह सकते है और दूसरे को बाँया भाग (Left hemisphere)। दोनों आँख के बाएँ तरफ के अक्षिपट से उत्पन्न स्नायुप्रवाह पृष्ठ खड के बाएँ भाग मे जाते है। इसी तरह, दोनों आँख के दाहिने भाग से उत्पन्न स्नायुप्रवाह पृष्ठ खड के दाहिने भाग मे जाते है। इसे निम्नांकित चित्र मे दिखलाया गया है।

चित्र-सख्या—८



पृष्ठ खण्ड द्वारा दृष्टि-सवेदना का नियन्त्रण

• ऊपर के चित्र से स्पष्ट है कि यदि मस्तिष्क खड (पृष्ठखड) के बाँए भाग में आनेवाले दृष्टि स्नायु पथ (Optic pathway) को विन्दु अ और पृष्ठ खड के बीच काट दिया जाय तो स्नायुप्रवाह पृष्ठ खड के बाए भाग मे नही पहुँच सकेंगे। फलत व्यक्ति बाएँ हिस्से की दोनो आख की आधा दृष्टि खो देगा। इसी तरह, बाएँ तरफ के दृष्टिस्नायु पथ को बर्बाद कर देने पर दोनो आखो के बाएँ हिस्से की दृष्टि समाप्त हो जायगी। लेकिन, व्यक्ति पूर्णत अधा तभी होगा जब या तो उसके पृष्ठ खड के दोनों भाग बर्बाद कर दिए जाएँ या उपर्युक्त बतलाए गए दाहिने और बाएँ दोनों दृष्टिस्नायु-पथ विनष्ट कर दिए जायँ। लेकिन, यदि विन्दु अ पर (जहा दोनो दृष्टिस्नायु-पथ एक दूसरे से मिलते है) काट दिया जाय तो व्यक्ति को दाहिनी आँख के बाए भाग और बाँई आख के दाहिने भाग की दृष्टि समाप्त हो जायगी यानी, किसी भी आँख से नाक से सटे हिस्से से वह कुछ भी नही देख सकेगा।

दृष्टि-संवेदना की उत्तेजना

(Stimulus for visual sensation)

दृष्टि-सवेदना का आविर्भाव प्रकाश तरगो (Light waves) से होता है जिनमे हमारे अक्षिपट के ग्राहकों को उत्तेजित करने की क्षमता होती है। इसलिए प्रकाश तरग दृष्टि-सवेदना की समुचित उत्तेजना है। प्रकाश की उत्पत्ति दो तरह के स्रोतों से होती है — एक को गर्म स्रोत (Incandescent or hot source) कहते है तथा दूसरे को शीत स्रोत (Luminescent or cold source)। इसे उदाहरण के सहारे आसानी से समझा जा सकता है। अँधेरे कमरे मे एक पेट्रोमेक्स जलाने से हुआ प्रकाश गर्म स्रोत (पेट्रोमेक्स) से उत्पन्न प्रकाश कहा जायेगा, लेकिन यदि अँधेरे कमरे मे फासफोरस (Phosphorus) चमकता और प्रकाश देता है तो इस प्रकाश को शीत स्रोत से उत्पन्न प्रकाश कहेंगे। लेकिन, प्रकाश के स्वरूप का विशद विवेचन भौतिकविज्ञान का विषय है, अत हम अपना काम चलाने के लिये कह सकते है कि प्रकाश एक ऐसी भौतिक शक्ति (Physical energy) है जो प्रत्येक वस्तु मे (किसी स्रोत द्वारा) विभिन्न मात्रा मे मौजूद रहती है। किसी उत्तेजना को देखते समय यह प्रकाश-शक्ति उस से निकल कर ईथर (Ether) मे होती हुई हमारी आँखों से टकराती है और इसके फलस्वरूप हमारे नेत्र-ग्राहक क्रियाशील हो जाते है और हमे उस उत्तेजना की सवेदना होती है। यों तो प्रकाश की गति सीधी हुआ करती है, लेकिन जब किसी वस्तु का प्रकाश आँख तक पहुचने के पहले ईथर से होकर गुजरता है तब वक्रीभवन (Refraction) के कारण उस प्रकाश शक्ति मे एक प्रकार का कम्पन (Vibration) उत्पन्न हो जाता है जिससे वह सरल रेखा के समान न रहकर तरग का रूप धारण कर लेता है। इसी से हम प्रकाश न कह कर प्रकाश तरग को दृष्टि-सवेदना की उत्तेजना कहते है। प्रकाश तरग की यह व्याख्या तरग-सिद्धान्त (Undulatory theory) द्वारा दी गई है जो मनोवैज्ञानिक व्याख्या के लिये अन्य सिद्धान्तों से अधिक उपयुक्त है।

प्रकाश-तरग की चर्चा करते समय यह जान लेना भी आवश्यक है कि सभी प्रकाश तरगें एक प्रकार की नही होती, बल्कि उनमे कई तरह की भिन्नताएँ होती है। हम उन भिन्नताओं या अन्तरों को तीन वर्गों मे रख सकते है,

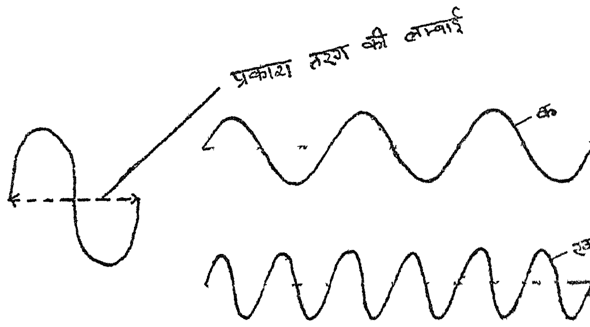
(१) प्रकाश तरग की लम्बाई मे अन्तर,

(२) प्रकाश तरग की ऊचाई मे अन्तर तथा

(३) प्रकाश तरग की शुद्धता मे अन्तर।

(१) **प्रकाश तरग की लम्बाई** —सभी तरग की लम्बाई बराबर नही होती। उदाहरणार्थ, यदि एक फुट की प्रकाश—दूरी मे दस तरग और दूसरी एक फुट की प्रकाश दूरी मे सौ तरगे हों तो निश्चय ही पहली प्रकाश दूरी की प्रत्येक तरग लम्बाई मे दूसरी प्रकाश दूरी की प्रत्येक तरग से बडी होगी। इस तरह, प्रकाश तरग की लम्बाई बारबारता (Frequency) पर निर्भर करती है। अधिक स्पष्टीकरण के लिए नीचे का चित्र [illegible]।

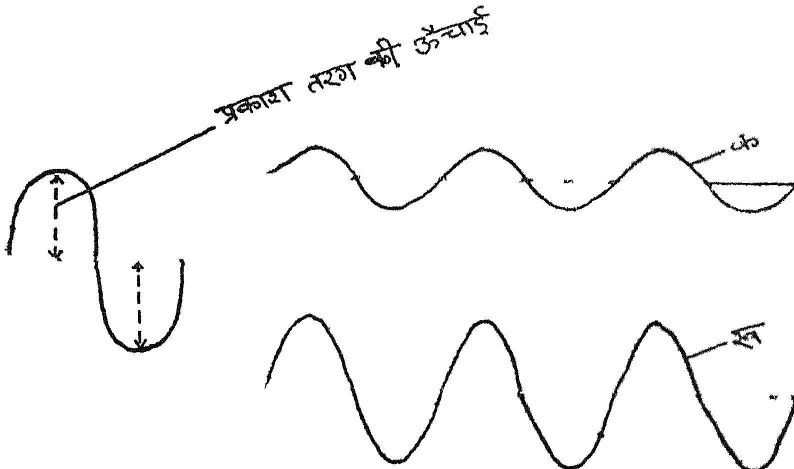
चित्र सख्या—९



प्रकाश तरग की बारबारता का चित्र

चित्र मे 'क' की तरग लम्बाई 'ख' की एक तरग की लम्बाई से बडी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि एक निश्चित दूरी तक प्रकाश के जाने मे 'ख' की कुल प्रकाश तरगो की सख्या क की तरगो की अपेक्षा अधिक है। प्रकाश तरगों की लम्बाई को फोटोमीटर (Photometer) नामक यत्र से मापा जाता है जिसकी माप-इकाई (Unit of measurement) मीलीमाइक्रोन (Millimicrone) है। एक मीलीमाइक्रोन (m m) एक मीलीमीटर का दसलाखवा भाग होता है। हमारी आखे सामान्यत ३८० m m से ७८० m m तक की प्रकाश तरगों से प्रभावित होती है।

चित्र सख्या—१०



प्रकाश तरग की ऊँचाई का चित्र।

(२) प्रकाश तरंग की ऊँचाई —प्रकाश तरंगो मे दूसरी भिन्नता उनकी ऊँचाई (Amplitude) की होती है। कुछ तरंगो की ऊँचाई अधिक होती है और कुछ तरगें अपेक्षाकृत कम ऊँचा होती है। दो तरगे लम्बाई मे समान रहने पर भी ऊँचाई मे एक दूसरे से भिन्न हो सकती है।

ऊपर के चित्र मे पृष्ठ संख्या ६० पर क और ख समान लम्बाई की प्रकाश तरगे है। लेकिन, ख की प्रत्येक तरग की ऊँचाई क की अपेक्षा अधिक है।

(३) प्रकाश तरग की शुद्धता —प्रकाश तरगो मे तीसरा अन्तर शुद्धता (Purity) का होता है। कभी कभी दो या दो से अधिक विभिन्न लबाई और ऊचाई की तरगे आपस मे मिल जाती हैं और इस तरह एक तीसरी तरग उत्पन्न हो जाती है। इसे मिश्रित तरग कहते है। जैसे, ऊपर के किसी चित्र क या ख मे किसी एक लहरी को देखे तो पायेंगे कि क लहरी की प्रत्येक तरग आपस मे एक सी है और उसी तरह ख लहरी की प्रत्येक तरग आपस मे समान है। इसे समजातीय (Homogenous) तरग या शुद्ध तरग कहते हैं। लेकिन, एक ही प्रकाश तरग के अन्तर्गत जब विभिन्न लम्बाई और ऊचाई की प्रकाश तरगे मिली रहती है तो ऐसी तरगो को विषम जातीय (Hetrogenous) या अशुद्ध तरगें कहते है। स्पष्टीकरण के लिए नीचे का चित्र देखे।

चित्र-संख्या-११



अशुद्ध प्रकाश-तरग

इस तरह, हम देखते है कि प्रकाश तरगों मे तीन तरह की भिन्नता होती है—लम्बाई, उँचाई और शुद्धता की। इन भिन्नताओं के आधार पर हम कह सकते है कि प्रत्येक प्रकाश-तरग मे तीन प्रकार की विशेषताएँ पायी जाती है जो निम्नाङ्कित है—

(१) गुण (Quality),
(२) तीव्रता (Intensity) और
(३) विषमता (Complexity)

गुण का अर्थ प्रकाश तरग की लम्बाई से है। प्रत्येक तरग की कुछ लम्बाई होती है। तरग की तीव्रता का परिचायक उसकी उँचाई है। प्रत्येक तरग कम या अधिक ऊँची होती है और उसी के अनुपात म उसमे तीव्रता भी होती है। इसी तरह, विषमता का अर्थ विभिन्न तरह की तरगो का मिश्रण है।

दृष्टि-संवेदना की विशेषताएँ

(Features of visual sensation)

दृष्टि-संवेदना दो प्रकार की होती है—रङ्गीन (Chromatic) दृष्टि-संवेदना और रङ्ग-विहीन (Achromatic) दृष्टि-संवेदना। हम अपने अनुभव से अच्छी तरह

जानते है कि चाहे तो कोई वस्तु किसी खास रङ्ग की मालूम होती है या बिना रङ्ग की। आम का पत्ता हरा मालूम होता है, लेकिन स्वच्छ पानी का कोई रङ्ग नहीं होता। किन्तु, यहाँ रङ्ग विहीन सवेदना का अर्थ कुछ भिन्न है। मनोवैज्ञानिक काले, उजले और काले तथा उजले के बीच की विभिन्न छायाओं (Shades) की सवेदना को रङ्गविहीन सवेदना मानते है।

हमे तरह तरह की प्रकाश सवेदनाएँ विभिन्न लम्बाई की प्रकाश तरङ्गों के कारण होती है। अब सवाल है, कोई उत्तेजना रङ्गीन और कोई रङ्गविहीन क्यों मालूम होता है? वस्तुत यदि रङ्गो की विशेषता और उनके कारण पर विचार किया जाय तो सभी व्याख्या स्वय समझ मे आ जायेगी कि कोई उत्तेजना रङ्गविहीन क्यो मालूम होती है।

रङ्गो की विशेषता और कारण

भौतिक दृष्टिकोण से रङ्गों की तीन विशेषताएँ है –(१) प्रकार (Kind of hue), (२) चमक (Brightness) और (३) शुद्धता (Saturation)।

(१) रग-प्रकार (Kinds of Colour) – हमे तरह तरह के रगो की सवेदना होती है जैसे, लाल, हरा, नीला, पीला, इत्यादि। यानी, प्रत्येक रग का एक खास प्रकार है (जिसे Hue कहते है) और मुख्यत इसी से ये एक दूसरे से भिन्न है। भौतिक दृष्टि (Physical viewpoint) से हमे किसी वस्तु के रग की सवेदना उस वस्तु द्वारा प्रतिबिम्बित (Reflected) प्रकाश के अनुपात मे होती है। विभिन्न उत्तेजनाएँ विभिन्न लम्बाई की प्रकाश तरगे प्रतिबिम्बित (Reflect) करती है और यही कारण है कि वे विभिन्न रग की मालूम होती है। इस तरह, किसी भी चीज का कोई रग नहीं है, बल्कि रग उसके द्वारा प्रतिबिम्बित (Reflected) प्रकाश मे है जो देखनेवाली आँख को प्रभावित करता है। एक खास ऊँचाई (Amplitude) के साथ जब ३९० m m से ७६० m m के बीच की किसी लम्बाई की प्रकाश तरग हमारी आँख को प्रभावित करती है तब हम कोई रग देखते है। न केवल रगों की, बल्कि सच तो यह है कि किसी तरह की दृष्टि-सवेदना भी हमे ३९०-७६० m m की प्रकाश तरग से ही होती है। ७६० m m से अधिक लम्बी प्रकाश तरग को इन्फ्रा लाल किरण (Infra red rays) कहते है। इतनी लम्बी तरगों से आँख को उत्तेजित करने पर प्रकाश की सवेदना न होकर ताप (Heat) की सवेदना होती है। इसी तरह ३९० m m से कम लम्बी प्रकाश-तरगो मे भी, जिन्हे अल्ट्रा बैगनी किरण (Ultra violet rays) कहते है, दृष्टि-सवेदना नहीं होती, केवल एक तरह की रासायनिक क्रिया (Chemical activity) उत्पन्न होती है। कितनी लम्बाई की प्रकाश तरग से किस रग की सवेदना होगी, यह नीचे दी गयी तालिका से स्पष्ट होगा।

प्रकाश तरग की लम्बाई	रग की सवेदना
लगभग ३९० से ४३० m m	बैगनी (Violet)
,, ४३० ,, ५२५ m m	नीला (Blue)
,, ५२५ ,, ५९० m m	हरा (Green)
,, ५९० ,, ६५० m m	पीला (Yellow)
,, ६५० ,, ७६० m m	लाल (Red)

इस तरह, हम देखते हैं कि हमें विभिन्न रंगों (Hues) की संवेदना विभिन्न लम्बाई की प्रकाश तरंगों के कारण होती है। सूर्य के प्रकाश में सभी लम्बाई की प्रकाश तरंग मौजूद रहती है। इसीलिए जब यन्त्र द्वारा इस प्रकाश का विश्लेषण किया जाता है तो हम उसमें रंग विहीन के साथ सभी रंगों को पाते हैं।

(२) रंग की चमक (Brightness) —प्रत्येक रंग में उसकी रंगीनी के साथ चमक भी होती है। यह चमक प्रत्येक रंग की अलग अलग होती है। यानी, कोई रंग अधिक चमकीला होता है, कोई कम। जैसे, नीले (Blue) रंग की अपेक्षा लाल (Red) रंग अधिक चमकीला होता है। रंगों में पीला सबसे अधिक चमकीला है और बैंगनी सबसे कम चमकीला। चमक की दृष्टि से अन्य रंगों का स्थान इन दोनों के बीच है। इसी तरह, सभी लाल या हरा रंग भी समान रूप से चमकीला नहीं होते, बल्कि एक ही रंग में कोई अधिक चमकीला होता है और कोई कम। भौतिकविज्ञान (Physics) के अनुसार रंग की चमक (Brigtness) प्रकाश-तरंग की ऊँचाई (Amplitude) पर निर्भर करती है। जब किसी रंग से अधिक ऊँची प्रकाश-तरंगें निकलती हैं तब वह अधिक चमकीला मालूम होता है। इसी तरह जिस रंग से कम ऊँचाई की प्रकाश तरंगें निकलती हैं वह कम चमकीला मालूम होता है।

किसी वस्तु का रंगविहीन (उजला, भूरा या काला) दीख पड़ना भी प्रकाश-तरंगों की ऊँचाई के कारण होता है। जब प्रकाश तरंग की लम्बाई को निश्चित रखते हुए हम उसकी ऊंचाई को बढ़ाते जायें तो उत्तेजना की चमक बढ़ती जायेगी और अन्त में उजले की संवेदना होने लगेगी। इसी तरह, प्रकाश-तरंग की ऊँचाई को कम करने पर चमक कम होती जाती है और अन्त में उत्तेजना अपना रंग खो देती है और काली मालूम पड़ने लगती है। जैसे, मान लें, हमें कोई वस्तु लाल दीख रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि लाल रंग मालूम पड़ने के लिए जितनी लम्बाई की प्रकाश-तरङ्ग चाहिए (६९० से ७६० m μ के बीच की) वह मेरी आँखों पर उस वस्तु द्वारा पड़ रही है। अब यदि प्रकाश तरङ्गों की लम्बाई को इतना निश्चित या नित्य (Constant) रखते हुए हम उसकी ऊंचाई बढ़ावें तो लाल रङ्ग की चमक धीरे धीरे बढ़ती जायगी और अन्त में एक स्थिति ऐसी आयेगी जब उस लाल रङ्ग की लालिमा भी समाप्त हो जायेगी और वह उजला मालूम पड़ने लगेगा। इसी तरह, यदि प्रकाश तरङ्गों की ऊँचाई को कम करते जायं तो लाल रङ्ग की चमक भी कम होती जायगी और अन्ततोगत्वा वह लाल रङ्ग समाप्त होकर हमें भूरा और काला मालूम पड़ने लगेगा। इस तरह, किसी वस्तु का रङ्ग-विहीन मालूम पड़ना प्रकाश तरङ्ग की ऊँचाई पर निर्भर करता है।

(३) रंग की शुद्धता (Saturation of Colour) —रंग की शुद्धता का अर्थ उसके गाढ़पन या फीकेपन से है। जो रंग शुद्ध नहीं होता, वह कम गाढ़ा मालूम होता है। रंग की शुद्धता के कारण प्रकाश तरंग की विषमता (Complexity) है। यानी, जब विभिन्न लम्बाई और ऊंचाई की प्रकाश तरंगें किसी वस्तु से निकलने लगती हैं तो हमें अशुद्ध रंग की संवेदना होती है। जब लाल और नीले रंग को मिला दिया जाता है तो उनके मिश्रण के कारण उनसे विभिन्न लम्बाई और ऊँचाई की प्रकाश तरंगे निकलने लगती हैं जिसके फलस्वरूप हमें एक तीसरे रंग की संवेदना होती है। हम इस

तीसरे रग को अशुद्ध रग कहेगे। जो रग जितना ही अशुद्ध रहता है वह उतना ही फीका मालूम होता है। कभी कभी बहुत प्रकार की तरग मिश्रित रूप मे किसी वस्तु से निकलती है। फलत उनकी सवेदना किसी रग की भी न होकर मिश्रित रग की होती है। हमे अपने दैनिक जीवन मे शुद्ध रग शायद ही कभी देखने को मिलता है। इसका कारण यह है कि किसी वस्तु को देखते समय कोई एक प्रकाश तरग नही मिलती। उनकी सख्या अधिक होती है और फलत सभी का एक समान होना सम्भव नहीं है। इस तरह हम देखते है कि रगों की तीन विशेषताए है—रग-प्रकार (Hue), चमक (Brightness), और शुद्धता (Saturation)। ये विशेषताए क्रमश प्रकाश तरगों की तीन विशेषताओं पर निर्भर करती है। यानी, रग प्रकार, प्रकाश तरग की लम्बाई पर निर्भर करता है, चमक प्रकाश तरग की ऊँचाई पर, और रग की शुद्धता या अशुद्धता का निर्धारण प्रकाश तरग की विषमता (Complexity) के द्वारा होता है।

रंग-प्रकार (Kinds of Colour)

विभिन्न रगों को दो श्रेणियों मे बाँटा गया हे- प्रधान रग (Primary Colours) तथा गौण रग (Secondary Colours)। लेकिन, किन रगो को प्रधान रग की श्रेणी मे रखा जाय, इस पर मनोवैज्ञानिको मे मतैक्य नही है। यग हेल्महोल्टज (Young-Helmholtz) के अनुसार तीन ही प्रधान रग है लाल (Red), हरा (Green) और नीला (Blue)। वह पीला को लाल और हरा के मिश्रण के फलस्वरूप मानता है और फलत इसे प्रधान रगों की श्रेणी मे नही रखता। हेल्महोल्टज के अनुसार विभिन्न प्रकार के रगों की सवेदना का अनुभव इन तीन प्रधान रगों के विभिन्न मिश्रणों के फलस्वरूप होता है। कुछ दूसरे विद्वान यग हेल्महोल्टज के प्रधान रगो के सिद्धान्त को नही मानते।

हेरिंग (Hering) ने अपने दृष्टि सिद्धान्त (Theory of vision) मे छ प्रधान रगों का नामकरण किया है। उसके अनुसार लाल, हरा, पीला, नीला, उजला (White) तथा काला प्रधान रग है। लेकिन, अधिकाश विद्वान हेरिंग की इस विचारधारा से पूर्णत सहमत नही है। वे उजले और काले को रग नहीं मानते और न तो वे उनसे उत्पन्न सवेदनाओं की परिगणना रग-सवेदना के अन्तर्गत करते है। वस्तुत उजला तथा काला स्वतन्त्र एव मौलिक रग नही, बल्कि किसी रग की चमक (Brightness) के ही दो विरोधी और अन्तिम मात्राएँ (Degrees) है। जब किसी रग की चमक बिल्कुल कम या समाप्त हो जाती है तब हमे उस रग की जगह काले की सवेदना होती है। इसी तरह, जब किसी रग की चमक को बहुत अधिक बढा दिया जाता है तब उससे हमें उजले की सवेदना होने लगती है। दूसरे शब्दो में, ये भूरे (Grey) के, जिसकी परिगणना रगों के अन्तर्गत नहीं होती, विभिन्न अशों (Degrees) के परिचायक है। विद्वानों ने इस तर्क से हेरिंग द्वारा प्रतिपादित प्रधान रगों की सूची स्वीकार नहीं की।

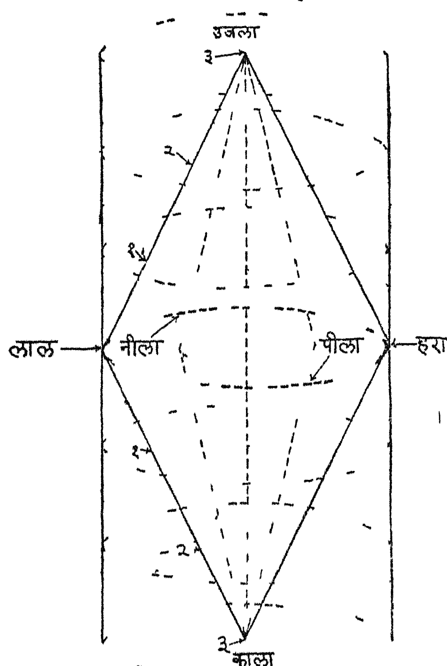
प्रधान रगों के सम्बन्ध मे लैड फ्रैंकलिन (Ladd Franklin) का विचार उपर्युक्त दोनों विचारों के बीच एक समझौता मालूम होता है। उसके अनुसार नीला, पीला, लाल और हरा ये चार प्रधान रग है। यह विचारधारा यङ्ग हेल्महोल्टज से भिन्न है, क्योंकि यह पीला को भी एक स्वतन्त्र रङ्ग मानती है। इस तरह, लैड-फ्रैंकलिन ने यङ्ग हेल्महोल्टज के अनुसार प्रधान रङ्गो की सख्या न तो तीन मानी और न हेरिंग की तरह छ, बल्कि

इनके बीच में उसने चार रङ्गों को प्रधान रङ्ग माना है। इन दिनों लेड फ्रेंकलिन का विचार ही मान्य है। तएव हम कह सकते है कि लाल, पीला, हरा और नीला ही प्रधान रङ्ग है। अन्य रङ्गो का आविर्भाव इनके मिश्रण (Mixture) के फलस्वरूप होता है। उजले और काले प्रधान रङ्ग नहीं, अपितु चमक (Brightness) या धूसर (Grey) के ही प्रकार है।

इन चारो रङ्गो की संवेदना को निम्नांकित चित्र के द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता है, जिसे रङ्ग-पीरामिड (Colour Pyramid) कहते है।

इस चित्र के वृत्त के चार बिन्दुओं पर लाल, हरे, पीले और नीले रङ्गों को रखा गया है। उजले से काले तक जो रेखा खीची गई है वह चमक को व्यक्त करती है। लाल और उजले का मिलान वाली रेखा पर जैसे जैसे लाल से उजले की ओर बढ़ते है वैसे वैसे रङ्ग तो लाल ही रहता है, किन्तु उसकी चमक बढ़ती जाती है। इसी प्रकार, जैसे जैसे लाल और काले के बीच की रेखा पर काले की ओर आते है वैसे वैसे उसकी चमक घटती जाती है।—३ बिन्दु पर सभी रङ्गो की चमक बहुत कम हो जाती है। किसी भी रङ्ग की रेखा को यदि उजले बिन्दु से और ऊपर या काले बिन्दु से और नीचे कर दें तो रङ्ग की संवेदना का अभाव हो जायेगा। इससे यह स्पष्ट है कि किसी रङ्ग की चमक घटाने या बढ़ाने से रङ्ग की संवेदना में क्या परिवर्त्तन होता है। इसी प्रकार एक ही वृत्त के विभिन्न बिन्दु विभिन्न लम्बाई की प्रकाश-तरङ्गों को व्यक्त करते है। इस चित्र में प्रकाश तरङ्गों की सबसे कम लम्बाई नीले रङ्ग के स्थान पर है। उसी वृत्त की रेखा पर जैसे जैसे हम दाहिनी ओर बढ़ते है वैसे वैसे

चित्र-संख्या—१२



रंग पीरामिड

प्रकाश तरङ्गों की लम्बाई बढ़ती जाती है और नीले रङ्ग मे हरापन बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि आगे बिल्कुल हरा हो जाता है। हरा से आगे बढ़ने पर पुनः तरङ्ग की लम्बाई अधिक हो जाती है और हमें पीले रङ्ग की संवेदना होती है तथा इसी तरह अन्त मे लाल की संवेदना होती है। प्रधान रङ्गों और उनकी विशेषताओं का उल्लेख कर देने के बाद दृष्टि-संवेदना और उससे आबद्ध रङ्ग-संवेदना के प्रमुख विभिन्न पहलुओं का संक्षेप में उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

संयोजन और परकिंजे व्यापार

(Adaptation and Purkinje Phenomena)

सयोजन दो तरह का होता है—(१) अधकार सयोजन (Dark Adaptation), तथा (२) प्रकाश-सयोजन (Light Adaptation)।

(१) **अधकार सयोजन** (Dark Adaptation) —हमलोगो का यह अनुभव है कि तेज रोशनी से होकर जब हम बिल्कुल अन्धेरे कमरे मे जाते है तो क्षणमात्र के लिए हमे कुछ भी दिखलाई नही पडता। जब हम सिनेमा घर मे खेल प्रारम्भ होने के बाद जाते है तो पहले वहाँ बैठे हुए लोग, कुर्सियाँ या हॉल की कोई दूसरी चीज दिखलाई नही पडती। किन्तु, धीरे धीरे दृष्टि स्पष्ट होने लगती है और हम सभी चीजो को ठीक से देखने लगते है। तात्पर्य यह कि जब हम प्रकाश से अधकार मे जाते है तो हमारी आँख के ग्राहकों (Receptors) मे एक विशेष प्रकार की क्रिया उत्पन्न होती है जिससे हम अन्धेरे की चीज भी साफ साफ देखने लगते है। इसी क्रिया को अधकार-सयोजन (Dark Adaptation) कहते है।

आँखों को अधकार मे सयोजित (Adapted) होने मे समय लगता है। इसका कारण यह है कि जब हम प्रकाश मे रहते है तो हमारे शकु (Cones) क्रियाशील रहते है। उस समय दण्ड (Rods) निष्क्रिय रहते है और तीव्र प्रकाश के कारण उनके अन्दर पायी जानेवाली वस्तु जिसे दृष्टि-धूमिल या विजुअल पर्पुल (Visual Purple) कहते है, नष्ट हुई रहती है। लेकिन, जैसे ही हम अधकार मे आते है शकु निष्क्रिय हो जाते है, क्योंकि हम पहले देख चुके है कि अधकार मे दण्ड कार्य करते है, शकु नही। लेकिन, दण्ड के क्रियाशील होते ही विजुअल पर्पुल उनमे नही आ जाता, बल्कि उस वस्तु के इकट्ठा होने मे कुछ समय लगता है। यही कारण है कि कुछ देर तक हमे कुछ भी दिखलाई नही पडता। फिर, जैसे जैसे दण्डों मे विजुअल पर्पुल की मात्रा बढ़ती जाती है, हमे अधकार मे अधिक दिखलाई पडने लगता है यानी, अधकार सयोजन अधिक होता जाता है।

(२) **प्रकाश-सयोजन** (Light Adaptation) —बिल्कुल अन्धेरे कमरे से प्रकाश मे एकाएक आने पर भी आँखें चकाचोध हो जाती हैं। लेकिन, धीरे धीरे यह चकाचौंध समाप्त हो जाती है और सभी वस्तुएँ ठीक मालूम पडने लगती है। आँख या अक्षिपट की इस क्रिया को, जिसके फलस्वरूप अधकार से प्रकाश मे आने पर चीजें ठीक मालूम पडने लगती है, प्रकाश सयोजन कहते है। प्रारम्भ मे आँखों के चकाचौंध होने का कारण यह है कि अधकार मे रहने से आँखे अधकार सयोजित हो जाती है, शकु उस समय निष्क्रिय रहते है। परन्तु, जैसे ही हम प्रकाश मे आते है, दण्डों (Rods) का दृष्टि धूमिल अथवा विजुअल पर्पुल (Visual purple) छिन्न-भिन्न होने लगता है। फलत आँखें चकाचौंध मे पड जाती है। किंतु, कुछ ही क्षण मे शकु क्रियाशील हो जाते है और हम सभी चीजें ठीक से देखने लगते है।

प्रकाश-सयोजन मे जितना समय लगता है उससे अधिक समय अधकार सयोजन में लगता है। पूर्णत अधकार-सयोजित (Dark Adapted) होने के लिए बहुत अधिक

समय तक अन्धेरे मे रहना पडता है। लेकिन, पूर्ण अधकार सयोजित हो जाने पर एक विचित्र चीज देखने मे आती है, वह यह कि वर्णपट्टि (Spectrum) के सभी रगों मे से व्यक्ति को हरा रग सबसे अधिक चमकदार मालूम होता है और पीला रग सबसे कम चमकीला या कह मन्द मालूम होता है। लेकिन, तीव्र प्रकाश मे बात ठीक उल्टी हो जाती है, यानी, पीला रग सर्वाधिक चमकीला मालूम होता है और हरा रग सबसे मद मालूम होता है। इसी प्रकार प्रकाश मे लाल रग की चमक नीले रग से अधिक रहती है, परन्तु अधकार मे नीला रग ही लाल की अपेक्षा अधिक चमकीला मालूम होता है। इस प्रकार हम देखते है कि जब आखे प्रकाश से योजित से अधकार सयोजित हो जाती है तो न केवल शकु और दड की कार्यवाही बदलती है, बल्कि रगो की चमक सवेदना भी बदल जाती है या वह ठीक उल्टी हो जाती है। इस परिवर्तन का पता सबसे पहले पर्किजे (Purkinje) नामक एक व्यक्ति ने लगाया। इसीलिये इसे पर्किजे-व्यापार (Purkinje Phenomena) भी कहते है।

रंग-मिश्रण

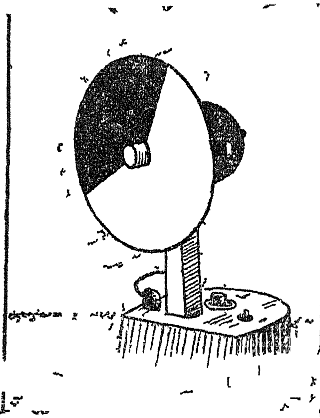
(Colour-mixing)

हम पीछे विचार कर चुके है कि किसी वस्तु का रग (Hue) प्रकाश तरग की लम्बाई (Wave length) पर निर्भर करता है, निश्चित तरग की लम्बाई से निश्चित रग दिखलाई पडता है। लेकिन, प्रयोगों से पता चला है कि किसी रग की सवेदना के लिए जरूरी नही कि उससे निकली सभी प्रकाश तरग बराबर लम्बाई की हों। जैसे, यदि मान लें, ९०० m m की लम्बाई की प्रकाश तरग से नीले रग की सवेदना होती है तो इस रग की सवेदना के लिए यह आवश्यक नही है कि उस वस्तु से निकली सभी तरगे ९०० m m की ही हों। हम इस रग का अनुभव ऐसी तरगों के सम्मिश्रण से भी कर सकते है जिनकी औसत तरग-लम्बाई ९०० m m हो। उन सभी तरग-लम्बाइयों से अक्षिपट या रेटिना को एक साथ उत्तेजित करने या जल्दी-जल्दी क्रमश उत्तेजित करने पर हमे नीले रग की ही सवेदना होगी। इस तरह, चाहे तो सभी प्रकाश तरगों की लम्बाई ९०० m m अथवा सभी की औसत लम्बाई ९०० m m हो, इन दोनों हालतों मे हमे नीले रग की सवेदना होगी। लेकिन, रग की समानता होने पर भी दोनों चमक और शुद्धता मे एक दूसरे से भिन्न होगी। इसे रग-मिश्रण के सहारे स्पष्ट किया जाता है। जब दो रग मिलते है तो एक तीसरे रग की उत्पत्ति हो जाती है।

प्रयोगशाला मे रगों का मिश्रण, रग मिश्रण-यन्त्र (Colour-mixing apparatus) की सहायता से किया जाता है। इस यत्र मे दो या दो से अधिक रग की तख्तियाँ (Discs) को मिला कर लगा दिया जाता है। इसके बाद यन्त्र को चला दिया जाता है। उसके चालू होते ही यन्त्र की धूरी घूमने लगती है। धूरी के घूमने से विभिन्न रगों की तख्तियाँ, जो यन्त्र की धूरी मे कसी रहती है, घूमने लगती है। जब धूरी धीमी गति से घूमती है तब विभिन्न रग की तख्तियाँ भिन्न-भिन्न तरह की मालूम पडती है। गति कुछ तीव्र होने पर उन रगों मे झिलमिलाहट मालूम पडने लगती है। गति जब थोडी और बढ जाती है तब यह झिलमिलाहट भी समाप्त हो जाती है और उन रगों से भिन्न

हमें एक तीसरे रंग की संवेदना होने लगती है। कभी कभी विभिन्न रंगों के मिलने से रंग-विहीन संवेदना भी होती है। इस तरह, दो रंगों के मिलने से तीसरे रंग का आभास का कारण यह है कि गति के कारण प्रथम दोनों रंग अक्षिपट को अलग अलग उत्तेजित करते हैं। दोनों रङ्गों से अलग-अलग लम्बाई की प्रकाश तरंग निकलती रहती है। अतः, यदि दोनों लम्बाई की तरंगे एक साथ अक्षिपट को उत्तेजित करती हैं, तो अक्षिपट पर दोनों तरङ्गों की लम्बाई के औसत का आभास होता है और परिणामतः उस औसत लम्बाई की तरङ्ग से जिस रङ्ग की संवेदना होनी चाहिये हमें वही रङ्ग दिखलाई पड़ता है। रङ्ग मिश्रण-यन्त्र कैसा होता है, इस पर कैसे प्रयोग किया जाता है तथा रङ्गीन तश्तरियों को कैसे मिलाया जाता है, इनकी जानकारी के लिए नीचे की चित्र संख्या १३ (क तथा ख) देखें।

चित्र संख्या १३ (क)



चित्र संख्या १३ (ख)



रङ्ग मिश्रण यन्त्र और रङ्गीन तश्तरियों का मिलान।

रंग मिश्रण के नियम (Laws of colour mixing) —हम जितने तरह के रङ्ग (Hues) देखते हैं वे सभी छः रङ्गों के विभिन्न मात्रा में मिलने से बनते हैं। ये रङ्ग हैं, लाल, हरा, पीला, नीला, नारंगी और बैंगनी। रङ्ग मिश्रण के नियमों से पता चलता है कि इनमें से दो या दो से अधिक रङ्गों को विभिन्न मात्रा में मिलाने से किस रङ्ग की संवेदना होती है। दूसरे शब्दों में, ये नियम बतलाते हैं कि दो या दो से अधिक रङ्गों को मिलाने से अक्षिपट पर क्या असर पड़ता है। किन्तु, पूर्व इसके कि हम रङ्ग मिश्रण के नियमों की चर्चा करें, यह बता देना सुविधाजनक होगा कि मनोवैज्ञानिकों ने रङ्गों को दो भागों में रखा है। एक को पूरक रङ्ग (Complementary colours) कहते हैं और दूसरे को अनपूरक रङ्ग (Non complementary colours)। लाल और हरा एक दूसरे के पूरक रङ्ग हैं, वैसे ही, पीला और नीला एक दूसरे के पूरक रङ्ग हैं। उजला और काला भी एक दूसरे के पूरक रङ्ग माने जाते हैं। लेकिन, प्रत्येक जोड़ का एक रङ्ग दूसरे रङ्गों के अनपूरक रङ्ग (Non complementary colour) है। जैसे, लाल के लिए पीला, या नीला अनपूरक रङ्ग है। रङ्ग-मिश्रण के तीन नियमों का उल्लेख करना अपेक्षित है।

पहला नियम —पूरक रङ्गों (Complementary colours) को जब एक विशेष अनुपात में मिश्रित किया जाता है तो इससे भूरे (Grey) की संवेदना होती है।

भूरे की संवेदना में जो चमक होती है वह दोनों रङ्गों की चमक का औसत (Mean) होती है। यदि रङ्ग मिश्रण यन्त्र पर लाल और हरे रङ्ग की तश्तिया को एक खास अनुपात में लगाकर घुमाये तो तश्तिया के नाचने पर लाल और हरा मिलकर भूरा दीखने लगेंगे। यही हाल नीले पीले या काले उजले तश्तिया के मिलाने पर भी होगा। लेकिन, इन तीनों अवस्थाओं में हमें संवेदना भूरे की होगी, तथापि इन तीन भूरे की चमक अलग अलग होगी, क्योंकि लाल हरे की औसत चमक पीले या नीले या उजले काले की औसत चमक से भिन्न है।

दूसरा नियम —दो अनपूरक रङ्गो (Non-complementary colours) को एक विशेष अनुपात में मिलाने से दोनों रङ्गों के बीच का रङ्ग दिखाई देता है। यदि लाल रङ्ग की तश्ती के साथ नीले रङ्ग की तश्ती का एक छोटा हिस्सा मिला कर रङ्ग मिश्रण-यन्त्र पर घुमाया जाय तो हमें नीलापन लिए लाल रङ्ग (Bluish red) की संवेदना होगी। फिर, जैसे जैसे नीले रङ्ग का भाग बढ़ाते जायगे मिश्रित रंग का नीलापन बढ़ता जायगा। एक निश्चित अनुपात में लाल और नीला रंग के होने से बैगनी रङ्ग की संवेदना होगी और यदि इसी तरह नीले रंग की मात्रा काफी बढ़ा दी जाय तो हमें लाली लिए नीले (Redish blue) रङ्ग की संवेदना होगी। इस तरह हर हालत में दो अनपूरक रङ्गों के मिलाने से रङ्ग की ही संवेदना होती है और इस मिश्रित रङ्ग में दोनों का असर रहता है। इस मिले हुए रङ्ग की चमक भी अनपूरक रङ्गो की चमक की औसत होती है।

तीसरा नियम —सभी पूरक रंगों को (Complementary colours) एक साथ एक विशेष अनुपात में मिलाने से भी भूरे की संवेदना होती है। कहने का अर्थ यह कि यदि लाल, हरा, नीला और पीला इन चारों रंगों को एक विशेष अनुपात में मिलाया जाय तो इस मिश्रण के फलस्वरूप भी भूरा रंग दिखलाई पड़ेगा। प्रयोग द्वारा इस नियम की सत्यता जाँचने में तीन कार्य करना होता है। सबसे पहले तो रंग-मिश्रण-यन्त्र के सहारे लाल और हरा के मिश्रण का वह अनुपात मालूम किया जाता है जब ये दोनों रंग समाप्त हो भूरे की संवेदना देते हैं। इसी तरह नीले और पीले का भी वह अनुपात मालूम किया जाता है जब दोनों रंग एक दूसरे की संवेदना समाप्त करते हैं। इसके बाद, प्रयोग का तीसरा भाग वह होता है जब चारों रंगों में प्रत्येक के उपर्युक्त अनुपात को आधा करके मिलाया जाता है और यन्त्र पर घुमाया जाता है। इस अनुपात में जब ये पूरक रंग मिलते है तो हमें इनसे भूरे की संवेदना होती है।

रंगों की झिलमिलाहट तथा मिलन
(Flicker and Fusion)

रङ्ग-मिश्रण के सम्बन्ध में रङ्गों की झिलमिलाहट तथा मिलन की व्याख्या भी आवश्यक है। रङ्ग मिश्रण-यन्त्र के रङ्ग-चक्र (Colour Wheel) पर जब दो रङ्गों की तश्तियों (Colour Discs) को घुमाया जाता है तो उस समय तक वे दोनों रङ्ग एक दूसरे से नहीं मिल पाते जबतक कि चक्र की गति तीव्र नहीं कर दी जाती है। गति कम रहने पर दोनों रङ्ग अक्षिपट को अलग अलग उत्तेजित करते हैं। अतः दोनों की संवेदना जल्दी-जल्दी अलग अलग होती है। इस स्थिति को हम रङ्गों की झिलमिलाहट (Flicker) की अवस्था कहते हैं। लेकिन, हम जब रङ्ग-चक्र की गति को बढ़ाते जाते हैं तो गति की एक ऐसी सीमा आती है जब दोनों रङ्ग अपना स्वतन्त्र रङ्ग खोकर एक नया रङ्ग उत्पन्न

कर देते है, जिसकी चमक दोनों रङ्गों की चमक का औसत होती है। इस रङ्गों का मिलन (Fusion) कहते है। दो अनपूरक रङ्गों के मिलने से रङ्ग मिश्रण के दूसरे नियम के अनुसार किसी बीच के रङ्ग की सवेदना होती है। लेकिन, दो पूरक रङ्गों का मिलन जब एक विशेष अनुपात मे होता है तब रङ्ग मिश्रण के प्रथम नियम के अनुसार भूरे की संवेदना होती है। इस प्रकार जबतक दोनो रङ्गों की सवेदनाएँ अलग अलग आती है तब तक की अवस्था को झिलमिलाहट कहते है। लेकिन, जब दोनो रङ्ग मिलकर किसी एक भिन्न रङ्ग की सवेदना उत्पन्न करते है तो इस स्थिति का मिलन (Fusion) कहते है। रङ्गों का मिलन विन्दु निकालने के लिए प्रायः सीमाविधि (Method of Limit)[1] का व्यवहार करते है। रङ्ग-मिश्रण यन्त्र की गति को धीरे धीरे बढ़ा कर और बार बार घटाकर एक ऐसा विन्दु मालूम किया जाता है जहाँ रङ्गों का मिलन होता है। रङ्ग चक्र या यन्त्र की इस गति को निर्णायक मिलन बारम्बारता (Critical Fusion Frequency or C F F) कहते है। इससे गति कम करने पर झिलमिलाहट और बढ़ाने पर मिलन की स्थिति दृष्टिगोचर होती है।

दृष्टि-विरोध (Visual Contrast)

किसी एक रङ्ग को बहुत देर तक देखते रहने पर हमारी आँखें उस रङ्ग के प्रति समायोजित (Adapted) हो जाती है। यदि आँखों के सामने से उस रङ्ग को हटा कर एक रङ्गविहीन पट (Board) रख दिया जाय तो उस पट पर पहले रङ्ग वाले आकार की छाया दीख पड़ेगी, किन्तु उसका रङ्ग मौलिक (Original) न हो कर उसका पूरक (Complementary) रङ्ग होगा। इसी व्यापार को दृष्टिविरोध कहते है। यह दो प्रकार का होता है—समकालीन (Simultaneous) तथा उत्तरोत्तर (Successive)। इनमे से प्रत्येक के दो प्रकार होते है—रङ्गीन विरोध (Chromatic Contrast) तथा रङ्ग विहीन विरोध (Achromatic contrast)। इस तरह, दृष्टि विरोध चार प्रकार का होता है। इसे निम्नाङ्कित तरह से स्पष्ट किया जा सकता है,

दृष्टि-विरोध
(Visual contrast)

- समकालीन विरोध (Simultaneous Contrast)
  - समकालीन रङ्गीन विरोध (Simultaneous Chromatic Contrast)
  - समकालीन रङ्ग-विहीन विरोध (Simultaneous Achromatic Contrast)
- उत्तरोत्तर विरोध (Successive Contrast)
  - उत्तरोत्तर रङ्गीन विरोध (Successive Chromatic Contrast)
  - उत्तरोत्तर रङ्गविहीन विरोध (Successive Achromatic Contrast)

१—सीमा-विधि के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी के लिए 'विषय-प्रवेश' की मनोशारीरिक विधियाँ देखें।

(क) समकालीन दृष्टि-विरोध (Simultaneous visual contrast)

समकालीन दृष्टि-विरोध मे किसी उत्तेजना के विरोध का आभास उत्तेजना की उपस्थिति म उसके साथ साथ होता है। हम यहा रगीन और रगविहीन दोनो तरह का उत्तेजनाओं का उदाहरण लेकर इसे समझेगे। सबसे पहले रगीन विरोध (Chromatic Contrast) को देखे।

(१) समकालीन रगीन दृष्टि-विरोध —जब लाल और हरा (कोई दो पूरक रगों) को एक दूसरे से सटाकर रख दिया जाता है तो लाल अपनी वास्तविकता से अधिक लाल और हरा अधिक हरा मालूम होता है। इसे समकालीन रगीन दृष्टिविरोध कहते है। ऐसा मालूम पडने का कारण यह है कि प्रत्येक रग अपने चारों ओर के धरातल मे पूरक रग मिलाता है। यानी, लाल रग अपने चारो ओर हरा रग (पूरक) बिखेरता है। अब ऊपर के उदाहरण मे, चूँकि हरा रङ्ग लाल के ठीक बगल मे (धरातल मे) है, इसलिए हरा रङ्ग (लाल से बिखरे पूरक रङ्ग को पाकर) ज्यादा हरा मालूम होता है। यही कारण लाल के ज्यादा लाल मालूम पडने के साथ भी है।

इसी तरह, जब दो अनपूरक (Non-complementary) रङ्गों को साथ साथ रखा जाता है तो दोनो रङ्ग अपने बगल के रङ्ग के पूरक रङ्गो से प्रभावित होते है। जैसे, मान ल, लाल और नीले रग के दो बराबर टुकडे एक साथ रखे गये है। ऐसी स्थिति मे लाल का पूरक हरा रङ्ग नीला रङ्ग मे मिलेगा और नीले का पूरक पीला रङ्ग लाल को प्रभावित करेगा। फलत नीला हरापन लिए (Greenish) मालूम होगा और लाल पीलापन लिए।

(२) समकालीन रङ्गविहीन दृष्टि विरोध (Simultaneous Achromatic Visual Contrast) —यदि दो समान भूरे वृत्तों (Grey circles) मे से एक को किसी उजले कागज की आधारभूमि पर और दूसरे को काले कागज की आधारभूमि पर रखा जाय तो देखने मे काले पर रखा गया भूरा वृत्त उजले पर रखे गए हुये भूरे वृत्त की अपेक्षा अधिक उजला या चमकीला मालूम होगा। जहाँ तक चमक (Brightness) का प्रश्न है, आधारभूमि की उल्टी चमक उस पर रखी गयी वस्तु मे आ जाती है। काली आधारभूमि की चमक अधिक मालूम होती है। इसी प्रकार उजली आधारभूमि की चमक अधिक होने के कारण उस पर रखे हुए भूरे वृत्त की चमक कम मालूम पडती है।

इन सभी समकालीन दृष्टि-विरोधों (Simutaneous Visual Contrasts) की उत्पत्ति क्यों होती है, इस प्रश्न पर भी मनोवैज्ञानिकों ने विचार किया है। उनका कहना है कि जब कई उत्तेजनाएँ आँख को प्रभावित करती है तो उन विभिन्न सवेदनाओं मे एक साथ अन्तर्प्रक्रियाएँ (Interactions) होने लगती है। इन अन्तर्प्रक्रियाओ के फलस्वरूप ही इस प्रकार के समकालीन विरोध-व्यापार का आविर्भाव होता है। लेकिन, अभी तक निश्चयात्मक रूप मे पता नहीं चल सका है कि ये अन्तर्प्रक्रियाएँ अक्षिपट (Retina) मे होती है या मस्तिष्क मे, फिर भी अधिकाश लोगो का विचार है कि ऐसी क्रियाएँ मस्तिष्क के ही किसी भाग मे होती है।

(ख) उत्तरोत्तर दृष्टि-विरोध (Successive visual Contrast)

या

निषेधात्मक अनुप्रतिमा (Negative After-image)

उत्तरोत्तर दृष्टि विरोध को ही निषेधात्मक अनुप्रतिमा (Negative After Image) या निषेधात्मक अनुसवेदना (After Sensation) कहते हैं। यह विरोध भी रङ्गीन और रङ्गविहीन होता है।

(१) उत्तरोत्तर रङ्गीन दृष्टि-विरोध (Successive chromatic visual contrast)—जब हम किसी उत्तेजना को आँख के सामने कुछ काल के लिए उपस्थित कर उसे हटा लेते हैं तो हमारे अक्षिपट पर उस उत्तेजना का प्रभाव उसकी अनुपस्थिति मे भी कुछ देर तक बना रहता है, फलस्वरूप उत्तेजना हटा लेने पर भी हम कुछ क्षण के लिए उसकी सवेदना होती है। उत्तेजना की अनुपस्थिति मे हुई सवेदना को अनुसवेदना (After Sensation) कहते हैं। कुछ देर तक यदि किसी रङ्ग को देखने के बाद हम रङ्गविहीन पट पर अपनी आखों को स्थिर करे तो उस पट पर हम पहली उत्तेजना के आकार की ही वस्तु (छाया) दृष्टिगोचर होगी, लेकिन इस रङ्गीन छाया का रङ्ग देखी गयी वस्तु (मौलिक वस्तु) का रङ्ग नही होता, बल्कि मौलिक वस्तु के रङ्ग का पूरक रङ्ग होता है। लाल, पीले, नीले या हरे रङ्ग को कुछ देर तक देखने के बाद आँख को रङ्गहीन पट पर स्थिर करे तो हमे क्रमश हरा, नीला, पीला या लाल रङ्ग की अनुभूति उस रङ्गविहीन पट पर होगी। इसी व्यापार को विद्वानो ने उत्तरोत्तर रङ्ग-विरोध या निषधात्मक अनुप्रतिमा की सज्ञा दी है।

अगर हम किसी रङ्ग के पदार्थ को कुछ देर तक देखने के बाद रगीन पट पर अपनी आँखे स्थिर करे तब भी हमे अनुसवेदना होगी। लेकिन, इस अनुसवेदना की छाया का रङ्ग मौलिक उत्तेजना का पूरक रङ्ग नही होता, बलिक मौलिक रङ्ग के पूरक और आधारभूमि (पट) के रङ्गों की अन्तर्प्रक्रिया (Interaction) के फलस्वरूप मिश्रण होता है। जैसे, लाल रङ्ग को देखने के बाद यदि हम लाल रङ्ग की आधारभूमि पर अपनी आँख स्थिर करे तो भूरे की ही अनुसवेदना होगी, क्योंकि लाल का पूरक रङ्ग हरा है जो आधारभूमि के लाल रङ्ग के साथ मिलकर भूरा हो जाता है। इसी प्रकार लाल रङ्ग देखकर यदि हम हरे पट पर आँखे स्थिर करे तो अनुसवेदना का रग अत्यधिक हरा होगा। इसी तरह, लाल रङ्ग को कुछ देर देखने के बाद यदि क्रमश हम पीले और नीले पट पर आँखे स्थिर करे तो हम हरापन लिए पीले (Greenish yellow), हरापन लिए नीले (Greenish blue) रङ्ग की अनुसवेदना होगी। इसी प्रकार अन्य रङ्गों के साथ भी होता है।

(२) उत्तरोत्तर रङ्गविहीन दृष्टि विरोध (Successive Achromatic Visual Contrast) —रङ्गविहीन सवेदना मे भी इसी प्रकार का व्यापार दृष्टिगोचर होता है। उजले रङ्ग को देखने के बाद उजले धरातल पर आँख स्थिर करने पर अनुप्रतिमा का रङ्ग भूरा होगा। काले को देखकर काले धरातल पर आँख स्थिर करने पर भी अनुसवेदना भूरे की ही होगी। लेकिन, काले या सफद उत्तेजना को देखने के बाद यदि हम भूरे पट (आधारभूमि) पर अपनी आँख स्थिर करें तो अनुप्रतिमा का रङ्ग क्रमश अत्यधिक चमकीला उजला (Dazzling White) या काला होगा। ऐसा क्यो होता है, इसकी पुन व्याख्या करने की कोई जरूरत नही मालूम होती। इसकी व्याख्या रङ्गीन अनुसवेदना की तरह ही की जायेगी।

इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि उत्तरोत्तर दृष्टि-विरोध या निषेधात्मक अनुप्रतिमा निरन्तर (Continuous) न होकर थोड़ी थोड़ी देर पर रह रह कर आविर्भूत और विलीन होती है। कभी कभी ऐसा दृष्टि व्यापार तीस तीस बार भी देखने मे आता है। इस सम्बन्ध म कुछ विद्वानो का कहना है कि आंख को अचेतन गति (Unconscious movement) के कारण ऐसा व्यापार देखने म आता है। किंतु, यह विचारधारा सर्वमान्य नहा है, क्योकि अन्य विद्वानो ने इसकी व्याख्या मस्तिष्क तरग (Brain waves) के आधार पर करने की कोशिश की है। इस स्थल पर यह भी स्मरणीय है कि निषेधात्मक अनुप्रतिमा कितनी देर तक रहेगी, यह उत्तेजना और उस पर आख लगाए रखने की अवधि से निर्धारित होता है। अभी इस दिशा मे निर्णायक अध्ययन की आवश्यकता है।

धनात्मक अनुप्रतिमा (Positive After Image)

धनात्मक अनुप्रतिमा को एक सरल प्रयोग के सहारे आसानी से समझ सकते हैं। प्राय किसी तीव्र रङ्ग (Intense Colour) को कुछ ही क्षण के लिए देखें और बाद मे अपनी आँखें बन्द करले या किसी रङ्गविहीन धरातल पर देखें तो आप रङ्गविहीन धरातल पर उसी रङ्ग और आकार की वस्तु की छाया पायेंगे। इसी अनुभूति को मनोवैज्ञानिक भाषा मे धनात्मक अनुप्रतिमा या धनात्मक अनुसवेदना (Positive after sensation) कहते है। इस प्रकार की अनुभूति क्षणिक होती है, क्योंकि यह तुरन्त निषेधात्मक अनुप्रतिमा (Negative after Image) मे परिवर्त्तित हो जाती है। प्रयोग करने पर ऐसा भी देखने मे आता है कि रह-रह कर एक के बाद दूसरे प्रकार (Postive and Negative) की अनुप्रतिमा की अनुभूति होती रहती है।

इस स्थल पर यह उल्लेखनीय है कि धनात्मक अनुप्रतिमा की सवेदना अक्षिपट के उत्तेजित होने का पश्चात् परिणाम (After effect) है। कहने का अर्थ यह कि कोई भी रङ्ग अक्षिपट को प्रभावित करता है तो यह प्रभाव तुरत समाप्त नही होता, बल्कि कुछ समय तक अक्षिपट पर रहता है। उत्तेजना हटा लेने पर भी अक्षिपट पर प्रभाव कुछ समय तक बना रहता है जिसके फलस्वरूप धनात्मक अनुप्रतिमा होती है। कुछ विद्वानों का कहना है कि यह पश्चात् परिणाम सदा धनात्मक (Positive) ही होता है, लेकिन इसका रूप धनात्मक अनुप्रतिमा और निषेधात्मक अनुप्रतिमा दोनों ही हो सकता है।

धनात्मक अनुप्रतिमा का अनुभव करना सभी के लिए सम्भव नही है, क्योंकि यह बहुत क्षणिक होती है। इसकी अनुभूति के लिए अभ्यास करना आवश्यक है। पाठक स्वय किसी तीव्र प्रकाश पर अपनी आँखे गडाकर इस व्यापार (Phenomenon) की परीक्षा कर सकते है। अभ्यास करने पर उन्हे प्रकाश के अनुरूप ही अनुप्रतिमा की अनुभूति होगी।

अक्षिपट के रग-क्षेत्र (Retinal Colour Zones)

प्रत्येक आँख के अक्षिपट मे हम जितना क्षेत्र (Area) देखते है उसे दृष्टि-क्षेत्र (Visual Field) कहा जाता है। यह क्षेत्र बाह्य विश्व मे (Outwards) अक्षिपट के उन सभी बिन्दुओं (Points) का प्रक्षेपण (Projections) है जो दृष्टि-सवेदना को आविर्भूत करते हैं। दृष्टिक्षेत्र को यदि बताना चाहे तो कह सकते है कि लम्ब रूप मे

(Vertically) लगभग १००° और भूमि के समानान्तर दिशा मे (Horizontally) १४५° के बीच का विस्तार ही ऐसा है जिसके अन्दर की चीजो का हमारे रेटिना पर चित्र बनता है। अक्षिपट का रङ्ग क्षेत्र (Area of Retinal Colour Zones) इससे छोटा है, क्योंकि अक्षिपट (Retina) के सभी भागो मे सभी रङ्ग दृष्टिगोचर नही होते है, बल्कि उनके लिए कुछ विशेष भाग निश्चित है। उन्ही भागो की क्रियाशीलता से सभी या कुछ निश्चित रङ्ग दिखाई देते है। इस दृष्टिकोण से इसके तीन भाग है जिन्हे क्रमश केन्द्रीय (Central), मध्य (Middle) और बाह्य (Peripheral) भाग कहते है। रेटिना के केन्द्रीय भाग मे सभी रङ्गों के अतिरिक्त भूरे (Grey) और चमक (Brightness) की भी संवेदना होती है। इस केन्द्रविन्दु को पीत विन्दु (Fovea) कहते है और इसी को हम पीत विन्दु का दृष्टि क्षेत्र (Field of foveal vision) भी कहते है। अक्षिपट के बाह्य भाग मे भूरे या उजले, आदि रङ्गविहीन चीजो की सवेदना होती है। अक्षिपट का बाह्य भाग काफी बडा है। इसी से हम कह सकते है कि रङ्गहीन सवेदना का अक्षिपटीय क्षेत्र रङ्गो के अक्षिपटीय क्षेत्र से बहुत बडा है। रेटिना के मध्य भाग के उत्तेजित होने से नीले तथा पीले (Blue and yellow) रङ्गों की सवेदना होती है, किन्तु लाल और हरे रङ्गो की सवेदना इससे नही होती। अतएव हम इस क्षेत्र को लाल हरा रङ्गो के लिए अन्धा क्षेत्र कह सकते है। इस प्रकार हम देखते है कि अक्षिपट के बाह्य भाग से रङ्ग की सवेदना बिल्कुल नही होती, केवल चमक का आभास मिलता है। इसके मध्य भाग से केवल पीले और नीले रङ्ग की सवेदना होती है। केवल केन्द्रीय भाग से ही हम सभी रङ्गो का ज्ञान पाते है।

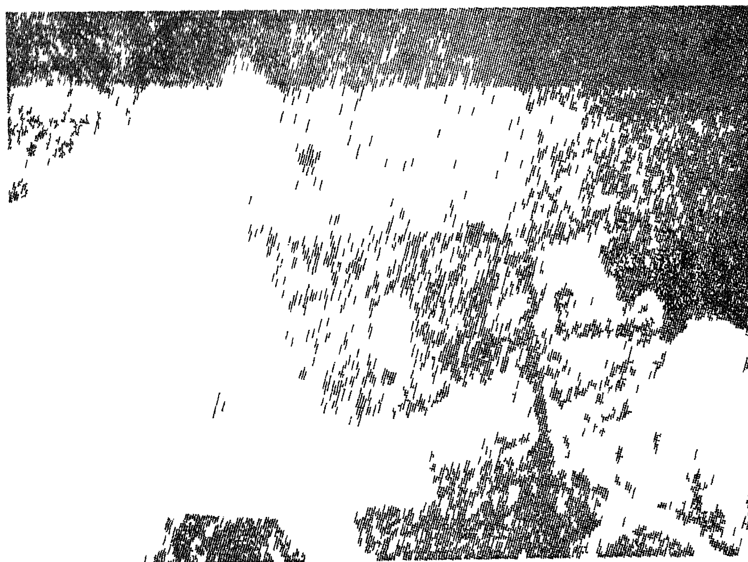
इस स्थल पर यह भी उल्लेखनीय है कि एक ही रङ्ग अक्षिपट के विभिन्न भागो मे विभिन्न तरह का मालूम होता है जैसे, लाल रङ्ग इसके बाह्य भाग मे भूरा मालूम होता है, मध्य भाग मे यह पीला लगता है। इसके बाद नारङ्गी और अन्त मे केन्द्रीय भाग मे यह लाल दीख पडता है। इस दिशा मे बेयर्ड (Baird) का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है जिसने बाह्य भाग से केन्द्रीय भाग के बीच विभिन्न रङ्गों के विभिन्न व्यापारो का उल्लेख किया है। लाल बाह्य भाग से केन्द्र की ओर आते समय कई अवस्थाओ से गुजरता है। सबसे पहले पीलापन लिए (Yellowish), तब पीला, तब नारङ्गी पीला (Orange yellow), तब पीलापन लिए नारङ्गी (Yellowish orange), तब नारङ्गी लाल (Orange red) और अन्त मे लाल दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार पीला पहले पीलापन लिए हुये दृष्टिगोचर होता है, तब क्रमश इसकी शुद्धता (Saturation) बढती जाती है और अन्त मे केन्द्रीय भाग मे असली रङ्ग मे दृष्टिगोचर होता है। यही हाल हरे, नीले तथा अन्य रङ्गों की सवेदना के साथ भी है। सभी का अभिप्राय इतना ही है कि अक्षिपट के बाह्यभाग मे सभी रङ्ग पहले भूरे ही दिखलाई पडते है। ज्यो-ज्यो वे केन्द्र की ओर बढते है त्यों त्यों विभिन्न रङ्ग के दीख पडते है। केन्द्र मे आकर वे अपना वास्तविक रङ्ग मे पूर्ण शुद्धता (Saturation) के साथ दीख पडते है।

इतनी चर्चा से यह तो स्पष्ट हो गया कि प्रत्येक रङ्ग का कुछ अपना दृष्टिक्षेत्र है। लेकिन, विभिन्न रङ्गो के क्षेत्रों को एक दूसरे से पूर्णत अलग नहीं किया जा सकता। इन रङ्गक्षेत्रों मे वैयक्तिक भिन्नता तो होती ही है, साथ-साथ इन्हे और भी कई अङ्ग (Factors)

प्रभावित करते हैं। इनमें रङ्ग-उत्तेजना का आकार (Size of the colour stimulus), शुद्धता, चमक, प्रकारान्तर, ताजगी, आदि प्रमुख हैं।

रङ्गाञ्चलों का निर्धारित करने के लिए कैम्पीमीटर (Campimeter) तथा दृष्टिक्षेत्र-मापक यन्त्र (Perimeter) का व्यवहार किया जाता है। एक केन्द्रीय वृत्त (Concentric circles) और दृष्टिमापक यंत्र के साथ किये गए प्रयोग का चित्र-संख्या १४ (क) और १४ (ख) पाठकों के लिए विशेष लाभप्रद होगा।[1]

चित्र संख्या—१४ (क)



परीमीटर के साथ प्रयोग का चित्र

दृष्टि-नित्यता
(Visual Constancy)

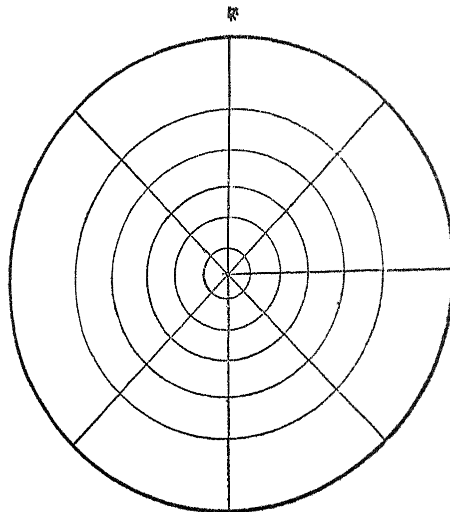
दृष्टि-नित्यता का व्यापार (Phenomenon) दृष्टि-संवेदना के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह नित्यता मुख्य तौर से तीन प्रकार की होती है—(१) आकार की नित्यता (Size Constancy), (२) रंग या चमक की नित्यता (Colour or Brightness Constancy) तथा (३) रूप की नित्यता (Shape Constancy)।

(१) आकार की नित्यता (Size Constancy)—यह हमारा दैनिक अनुभव है कि यदि एक फुट की दूरी पर रखी हुई चीज को उठाकर पाँच फुट की दूरी पर रख दी जाय तब भी उस वस्तु के आकार में कोई परिवर्त्तन नजर नहीं आयेगा। लेकिन, जहाँतक अक्षिपट (Retina) की क्रियाशीलता का प्रश्न है, विभिन्न अध्ययनों से मालूम होता है कि आँख से किसी वस्तु की दूरी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसकी प्रतिमा हमारे

---

१ इस प्रयोग की विधि के लिए लेखक का 'मनोवैज्ञानिक प्रयोग' (ग्र० ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना) देखें।

चित्र-सख्या—१४ (ख)



एक केन्द्रीय वृत्त

अक्षिपट पर छोटी होती जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि किसी वस्तु की वास्तविक अनुभूति और उसकी वास्तविक प्रतिमा (अक्षिपट के चित्र) के बीच कोई सीधा सम्बन्ध नही है। यद्यपि वस्तु-विशेष की प्रतिमा का आकार घटता बढ़ता रहता है तथापि एक निश्चित सीमा तक उसके आकार की अनुभूति नित्य (Constant) रहती है। इस सीमा का अतिक्रमण करने पर वस्तु छोटी दिखलाई पड़ने लगती है, लेकिन उसकी प्रतिमा अक्षिपट पर जितनी छोटी पडती है उसकी अपेक्षा वह सदा बड़ी ही मालूम होती है। बहुत ऊँचाई पर उडती हुई चील की प्रतिमा हमारे अक्षिपट पर बिन्दुमात्र हो पड़ती है, लेकिन देखने मे (यद्यपि वास्तविक आकार से छोटी मालूम पड़ती है तथापि) वह बिन्दु से बहुत अधिक बड़ी मालूम होती है। किसी वस्तु की अक्षिपटीय प्रतिमा (Retinal Image) में परिवर्त्तन होते हुए भी उसे समान आकार का देखने की क्रिया या व्यापार (Phenomenon) को आकार नित्यता (Size Constancy) कहते हैं।

(२) चमक की नित्यता (Brightness Constancy)—किसी वस्तु की चमक का अर्थ उस उजले प्रकाश से है जो वस्तु के द्वारा प्रतिबिम्बित होता है। जिस वस्तु से जितना ही अधिक उजला प्रकाश प्रतिबिम्बित होगा वह उतनी ही अधिक चमकदार मालूम होगी। इस नियम के अनुसार यदि कोई भी चीज धूप मे रखी हो तो उसे अधकार में रखी किसी भी चीज से अधिक चमकीली मालूम होनी चाहिए, क्योंकि अधकार में रखी चीज की अपेक्षा धूप में रखी चीज से अधिक प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है। लेकिन, हमें ऐसा सदा देखने को नही मिलता। अँधेरे मे बैठे हुए हस की अपेक्षा धूप में बैठे हुये कौवे से अधिक उजला प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है, फिर भी कौवा देखने मे काला मालूम होता है और अधेरे मे बैठा हुआ हस उजला ही मालूम पड़ता है। यदि हस जब धूप मे आ जाता है तो उससे श्वेत प्रकाश अधिक प्रतिबिम्बित होता है, लेकिन उसकी चमक मे किसी तरह की वृद्धि दृष्टिगोचर नहीं होती है। इसी तरह, कौवा धूप में रह

अथवा छाया में उसकी चमक एक समान (नित्य) ही रहती है। इस व्यापार (Phenomenon) को मनोवैज्ञानिक भाषा मे चमक की नित्यता (Brightness Constancy) कहते है।

(३) रूप की नित्यता (Shape Constancy) —उपर्युक्त प्रकार का व्यापार हमे रूप (Shape) के सम्बन्ध मे भी देखने मे आता है। जब हम विभिन्न वृत्ताकार (Circular) टुकड़ो को जमीन पर विभिन्न दूरी पर रखते है तो उनकी प्रतिमा हमारे अक्षिपट पर पूर्णत वृत्ताकार नही पडती। दूरी ज्यो-ज्यो बढती जाती है त्यो त्यों टुकड़े की प्रतिमाएँ अडाकार होती जाती है। लेकिन, अक्षिपट की प्रतिमाएँ भले ही रूप मे परिवर्त्तित होती जायँ, हमे देखने मे वे वृत्ताकार टुकड़े वृत्ताकार ही मालूम पडते है, अडाकार नहीं, चाहे दूरी भले ही बढ जाय। इसी प्रकार, यदि एक ही तरह के कई टेबुलों को विभिन्न दूरी पर रखा जाय तो उनके रूप की अक्षिपटीय प्रतिमाओं मे भिन्नता होगी। लेकिन, इस भिन्नता के उपरान्त भी हम सभी टेबुलो को एक ही रूप का देखते है। वस्तु के रूप की इस समानता के व्यापार को रूप-नित्यता (Shape Constancy) कहते है।

प्रयोग —दृष्टि नित्यता के सम्बन्ध मे थुलेस (Thouless) नामक विद्वान ने कई महत्त्वपूर्ण प्रयोगो को किया है। उसने आकार नित्यता का प्रयोग कई वृत्ताकार टुकडों के साथ किया। सभी वृत्ताकार टुकड़े आकार म बराबर थे। उनकी चमक भी समान थी। उसने सभी टुकडो को विभिन्न दूरी पर खडा किया। इसके फलस्वरूप उनकी प्रतिमाए अक्षिपट पर विभिन्न आकार मे पडती थी। इसके बाद उसने प्रयोज्यों (Subjects) को विभिन्न आकार के वृत्ताकार टुकड़े दिये और उनकी तुलना सामने खड़े टुकडो से करने को कहा। इस प्रयोग-परिणाम के आधार पर उसने बतलाया कि सभी प्रयोज्यो ने प्रत्येक वृत्ताकार टुकड़े की तुलना वैसे टुकड़े (खडा किए गये) से की जिसकी प्रतिमा वृत्ताकार टुकड़े की प्रतिमा के आकार से काफी छोटी थी। ऐसे ही अन्य प्रयोगों के आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वस्तु की दूरी के बढने के साथ साथ जिस मात्रा म उसकी प्रतिमा अक्षिपट पर छोटी होती जाती है उसके आकार की अनुभूति (Size experience) उसी अनुपात मे छोटी नही होती है। इस प्रकार की आकार-अनुभूति आकार की नित्यता (Size Constancy) को सिद्ध करती है।

दृष्टि नित्यता के कारण —तीनो तरह की नित्यता के कुछ कारण देने की चेष्टा की गयी है। आकार की नित्यता के सम्बन्ध मे थुलेस (Thouless) का कहना है कि हमारी स्मृति मे किसी भी पदार्थ का एक निश्चित चित्र रहता है। प्रतिमा के छोटा होने पर भी वस्तु विशेष का वह स्मृति चित्र (Memory Image) उस वस्तु के अनुभव को उतना छोटा नही होने देता। इसी कारण आकार की नित्यता का व्यापार देखने में आता है। आकार की नित्यता के सम्बन्ध म कुछ लोगो का कहना है कि यह बहुत अशों मे दूरी निर्णय (Distance Judgement) पर निर्भर करती है। जिस स्थिति मे प्रयोज्य को वास्तविक दूरी का ज्ञान नहीं होता उस स्थिति मे आकार की नित्यता का व्यापार बहुत ही कम दिखलाई पड़ता है। इस कथन की पुष्टि विभिन्न प्रयोगों द्वारा हो चुकी है।

जिस तरह कोई पदार्थ किसी स्थान के तृतीय विस्तार (Third Dimension) मे झुका रहता है उसी के ठीक प्रत्यक्षीकरण (Accurate Perception) के आधार पर विद्वानो

ने रूप की नित्यता (Shape Constancy) की भी व्याख्या की है। लेकिन, अभी तक यह निश्चयात्मक दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस सम्बन्ध में अभी विवाद प्रस्तुत होता है।

जहाँ तक चमक की नित्यता (Brightness Constancy) का प्रश्न है, विद्वानों ने उसकी व्याख्या अलबिडो (Albedo) के आधार पर की है। इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि वस्तु विशेष की चमक उससे प्रतिबिम्बित (Reflected) प्रकाश द्वारा निर्धारित होती है। वस्तु पर पड़ने वाले प्रकाश को आनुसंगिक प्रकाश (Incidental light) कहते है। उस आनुसंगिक प्रकाश मे से कुछ तो पदार्थ मे रह जाता है और शेष प्रतिबिम्बित हो जाता है जिसे प्रतिबिम्बित प्रकाश (Reflected light) कहते है। ... वस्तुएँ कम मात्रा मे प्रकाश ग्रहण करती हैं और अधिक प्रतिबिम्बित करती हैं और ... इसके उल्टा अधिक प्रकाश ग्रहण करती है और कम प्रतिबिम्बित करती है। उजले पदार्थ से लगभग ९० प्रतिशत प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है, लेकिन काला पदार्थ केवल प्रतिशत प्रकाश ही प्रतिबिम्बित करता है। अलबिडो (Albedo) का अर्थ प्रतिबिम्बित और आनुसंगिक प्रकाश (Reflected light and Incidental light) के अनुपात से है। यह अनुपात (आलबिडो) उजले पदार्थ मे $\frac{9}{10}$ और काले मे $\frac{1}{10}$ है जो सदा नित्य (Constant) रहता है, वह चाहे प्रकाश मे हो या अंधकार मे हो। इसी से कोयला चाहे प्रकाश मे हो या अन्धकार मे वह काला ही नजर आता है, क्योंकि प्रकाश मे भी यह अनुपात $\frac{1}{10}$ का रहता है और अन्धकार मे भी इतना ही रहता है।

रंग का अंधापन

(Colour Blindness)

रंग संवेदना के जिन प्रमुख पहलुओं की चर्चा अबतक की गई है वे सभी सामान्य व्यक्तियों मे पाए जाते है। लेकिन, रंग का अंधापन केवल असामान्य व्यक्तियों मे ही पाया जाता है, सभी मे नहीं। कुछ ऐसे व्यक्ति भी पाते है जिन्हे रंग की संवेदना कुछ भी नहीं होती या उन्हे कुछ ही रंगों की अनुभूति होती है। इस दोष को रंग का अंधापन (Colour Blindness) कहते है। इस दोष का पता पहले पहल सन् ... ई० में हुआ। इसके २० २२ वर्ष बाद डाल्टन (Dalton) ने, जो इसका स्वयं शिकार था, इस पर काफी प्रकाश डाला।

रंग का अंधापन सच पूछिये तो कोई रोग नहीं, बल्कि एक दैहिक अवस्था (Physiological Condition) है जिसे हम मात्र दैहिक दोष कह सकते है। अध्ययनों से पता चलता है कि अधिकांश यह दोष आनुवंशिक (Hereditary) या जन्मजात होता है। इसलिए इसका उपचार सरल नहीं है। कुछ अवस्था पर यह अंधापन अर्जित भी देखने में आता है जो तम्बाकू तथा अन्य मादक द्रव्यों के सेवन के फलस्वरूप होता है। जब रंग अंधापन अर्जित रहता है तब इसे दूर किया जा सकता है। कभी कभी ऐसा रंग अंधापन (अर्जित) केवल पीतविन्दु (Fovea) मे ही पाया जाता है, अक्षिपट के अन्य अंचलों में नहीं और कभी-कभी इससे सम्पूर्ण अक्षिपट ही प्रभावित हो जाता है जो बिना उचित उपचार के ठीक नहीं होता।

स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों मे यह दोष अधिक पाया जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जहाँ ऐसे पुरुषो की संख्या ३ ९ से ४ प्रतिशत है वहाँ हजार में एक ही स्त्री इस रोग का शिकार पाई जाती है।

रग-अधापन और रग-अज्ञान (Colour Ignorance) को एक नही समझना चाहिए, इनमे अन्तर है। रग अधापन मे व्यक्ति को सभी या कुछ रगो की सवेदना नही होती, लेकिन रग अज्ञान की अवस्था मे व्यक्ति को रगो का अनुभव तो होता है, किन्तु उसे उनकी जानकारी नही रहती है। उसका यह अज्ञान उचित शिक्षा से दूर हो जाता है, लेकिन शिक्षा रग अधापन को दूर करने म सफल नही होती।

रग का अधापन तीन तरह का होता है—(१) लाल हरे रग का अधापन (Red-Green Colour Blindness), (२) नीले पीले रग का अधापन (Blue-Yellow Colour Blindness) और (३) पूर्ण रग अधापन (Total Colour Blindness)।

(१ लाल हरे रग का अधापन (Red-Green Colour Blindness) —तीनों रग-अधापन मे लाल हरे रग का अधापन अधिक पाया जाता है। यानी, रगान्धों मे सबसे अधिक सख्या उनकी है जो लाल-हरा नही देखते। जिसम यह दोष वर्त्तमान रहता है वह वर्णावलि (Spectrum) मे सिर्फ नीले और पीले रगों की ही अनुभूति करता है। उसे लाल और हरा रगो के मेल से बने विभिन्न रगो की भी अनुभूति नही होती है। इसीसे वह नारगी, बादामी या फालसई-रग भी नही देख पाता। ऐसा व्यक्ति तरह तरह के रगों को पीला की ही विभिन्न आभाओं (Shades) के रूप मे देखता है। लाल रग बहुत ही गहरा पीला दिखलाई देता है, लकिन सभी रगान्ध व्यक्तियो मे यह बात सत्य रूप मे नही पाई जाती। कोलिन्स तथा ड्रेवर (Collins and Drever) ने एक ऐसे व्यक्ति की चर्चा की है जिसे लाल तथा नारगी रग की अनुभूति गहरे भूरा (Dark-grey) के रूप मे होती थी। इसी तरह नीला तथा नीलापन लिए हरा भी उसे भूरा ही मालूम होता था। बैगनी (Violet) की भी यही अवस्था थी। इस तरह उसे नीला और पीला को छोड कर अन्य सभी रग भूरा प्रतीत होते थे। अत, इसमें वैयक्तिक भिन्नता होती है। कुछ ऐसे व्यक्ति भी देखने मे आते है जिन्हें लाल हरे रग का अधापन रहने पर भी ये दोनों रग कुछ मात्रा में दिखलाई पडते है।

लाल हरा रग का अधापन दो प्रकार का होता है–हरा रग-अधापन (Deuternopia) और आंशिक रग-अधापन (Protanopia)। दोनो ही मे लाल और हरा रग पीला दिखलाई पडते है। फिर भी, इन दोनो म कुछ भिन्नता पाई जाती है। आंशिक रग अधापन (Protanopia) की अपेक्षा हरा रग अधापन (Deuternopia) अधिक लोगो मे पाया जाता है। जिन लोगो को हरा रग अधापन (Deuternopia) हो जाता है उन्हें केवल नीले और पीले रगो की सवेदना होती है। आंशिक रग-अधापन (Protanopia) मे भी नीले और पीले रगों का अनुभव तो होता है, लेकिन इसमे वर्णावलि (Spectrum) छोटी दीख पडती है, क्योंकि लाल छोर (Red end) दृष्टिगोचर नहीं होता है। लेकिन, किसी भी हालत मे इस रग के अधापन का पता लगाना अत्यावश्यक है, अन्यथा भूल मे ऐसे व्यक्तियों की बहाली गार्ड या ड्राइवर के काम पर हो जाने से अनर्थ हो जायेगा।

(२) नीले-पीले रग का अधापन (Blue yellow colour blindness) —यह रग-अधापन लाल हरे की रगान्धता की अपेक्षा बहुत कम व्यक्तियों मे पाया जाता है। इस सम्बन्ध में विद्वानों का ऐसा मत है कि यह जन्मजात न होकर अर्जित होता है।

जब अक्षिपट मे कोई खराबी आ जाती है तभी किसी व्यक्ति मे इस प्रकार का दोष [illegible] होता है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, जिस व्यक्ति मे यह रग [illegible] होता है वह नीले और पीले रगो को नही देख पाता। वह [illegible] देखता है या उसके बदले कोई दूसरे रग को देखता है। रिचार्डसन (Richardson) ने [illegible] ऐसे व्यक्ति का उल्लेख किया है जो इस दोष का शिकार था। उसे नीला रग [illegible] चमकीला (Dazzling) उजला प्रतीत होता था।

(३) पूर्ण रग अधापन (Total Colour Blindness) —जिस व्यक्ति मे पूर्ण रग अधापन पाया जाता है उसे किसी भी रग की सवेदना नही होती। [illegible] के सभी रगों को उजला, काला या भूरा ही देखता है। [illegible] पूर्ण रगान्ध (Total Colour Blind) कहते है। लेकिन, ऐसा बहुत कम लोगो मे पाया जाता है। फिर भी, इस दोष का सर्वथा अभाव नही है। विद्वानो ने ऐसे कई व्यक्तियो का अध्ययन किया है जो पूर्ण रगान्ध थे।

रग अधापन और रग निर्बलता —कुछ ऐसे व्यक्ति भी पाते है जो रगान्ध (Colour Blind) नही होते, परन्तु फिर भी व सभी तरह के रगो की अनुभूति नही कर पाते। उनमे रग सवेदनाओं की शक्ति बहुत कम होती है। इसका कारण यह है कि उनमे रग की सवेदना प्राप्त करने की शक्ति कमजोर रहती है। इस निर्बल शक्ति के ही कारण वे सामान्य व्यक्ति की तरह सभी रगो को नही देख पाते। इस प्रकार के दोष को रग निर्बलता (Colour Weakness) कहते है। जिस रग की सवेदना नही होती यदि वह तीव्र रूप मे उपस्थित किया जाय तो सामान्य व्यक्ति की तरह रग निर्बल व्यक्ति को भी उस रग की सवेदना हो जाती है।

रग अधापन के परीक्षण (Tests of Colour Blindness) —रग के अधापन का अध्ययन करने के लिए विद्वानो ने कई परीक्षणो (Tests) का निर्माण किया है। वर्णावलि मापक यत्र (Spectrometer) मे वर्णावलि विश्लेषण (Spectral analysis) करके इस दोष का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। अधिकाश विद्वान रग-अधापन के अध्ययन के लिए इस विधि को काम मे लाते है। यद्यपि रग समीकरण (Colour equation) की उपयोगिता व्यावहारिक न होकर सैद्धान्तिक ही है, किन्तु कुछ विद्वान इसका भी उपयोग करते है। इस परीक्षण मे वस्तुगत्मक (Objective) परिणाम न मिल कर आत्मगत (Subjective) परिणाम मिलता है, क्योंकि इसमे प्रयोज्य की सूचना पर ही निर्भर करना पडता है। इसी प्रकार एडरिज ग्रीन (Edridge-Green lantern) तथा नेगेलकार्ड परीक्षणों (Nagel Card Test) का व्यवहार भी रग-अन्धता का अध्ययन करने मे किया जाता है। विरोध प्रयोगो (Contrast experiments) के व्यवहार से भी इसका अध्ययन करना सरल है।

इस दिशा मे होमग्रेन ऊन-परीक्षण (Holmgren's Wool test) का उपयोग अधिक लाभप्रद प्रमाणित हुआ है। इस परीक्षण मे विभिन्न रग के ऊन के सौ से अधिक लच्छे रहते है। प्रयोज्य (Subject) के सामने उन लच्छों का दिन के प्रकाश में टेबुल पर छितरा दिया जाता है। तब उसके हाथ मे एक लच्छा (Test-skein) देकर टेबुल पर से उससे मिलते-जुलते लच्छों को चुनने को कहा जाता है। उसके हाथ मे जिस लच्छा को

दिया जाता है उसका रंग उसे नहीं बताया जाता। इस विधि से प्रयोज्य के रंग अन्धापन का अध्ययन किया जाता है। आज इस परीक्षण में कई प्रकार के परिमार्जन और संशोधन हुए हैं। इस परीक्षण की अपनी विशेषताएँ हैं। पहली बात तो यह है कि यह परीक्षण बहुत ही सरल है। आवश्यकतानुसार इसका व्यवहार किसी स्थल पर भी किया जा सकता है, क्योंकि ऊन के लच्छों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है। इस परीक्षण की दूसरी विशेषता यह है कि यह परीक्षण ऊन के लच्छों का ही उपयोग करता है और ऊन सभी दिशाओं में समान प्रकाश छोड़ते हैं, इसलिए उनके मौलिक रंग में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। इससे इसमें किसी प्रकार के दोष की गुंजाइश नहीं रह जाती।

रंग अंधापन की जानकारी प्राप्त करने के लिए इशिहारा-परीक्षण (Ishihara-test) कम महत्त्व का नहीं है। इस परीक्षण में विभिन्न रंगों के विन्दुओं से कुछ अंक बनाए जाते हैं। जिस रंग विशेष से किसी अंक का निर्माण होता है उसके चारों ओर दूसरे रंग के विन्दु विखरे रहते हैं। अंक यदि हरे रंग के विन्दुओं से बना रहता है तो उसके चारों ओर हरे रंग के छोटे या बड़े विन्दु बिखरे रहते हैं। जो व्यक्ति हरा रंग के लिए अंधा (Green blind) होता है, वह उस हरे विन्दुओं से बने अंक को न देखकर दूसरे प्रकार के रंग से बने विन्दुओं को ही देखता है। कोई भी व्यक्ति इस परीक्षण का व्यवहार आसानी से कर लेता है और इससे रंग अंधापन का पता सरलतया हो जाता है। इस दिशा में यह परीक्षण बहुत ही उपयोगी प्रमाणित हुआ है।

रंग-संवेदना के सिद्धान्त

(Theories of colour vision)

रंग-संवेदना के कई सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं। ये सिद्धान्त विभिन्न दृष्टि-संबंधी क्रियाओं और व्यापारों (Phenomena) तथा दैहिक प्रक्रियाओं (Physiological processes) की व्याख्या करने का प्रयास करते हैं। लेकिन, अभी तक रंग-संवेदना के विभिन्न पहलुओं की समुचित व्याख्या करने में एक भी सिद्धान्त सफल सिद्ध नहीं हो सका है। फिर भी, इतना सही है कि इन सिद्धान्तों के फलस्वरूप लोगों का वैज्ञानिक ज्ञान काफी समृद्ध एवं विकसित हुआ है और लोग अनुसंधान करने को प्रोत्साहित हुए हैं। यहाँ हम संक्षेप में तीन सिद्धान्तों का उल्लेख करेंगे, जो रंग-संवेदना के प्रमुख सिद्धान्त माने जाते हैं। वे हैं—(१) यंग हेल्महोज सिद्धान्त (२) हेरिंग सिद्धान्त, और (३) लैंड फ्रैंकलिन सिद्धान्त।

यंग हेल्महोज-सिद्धान्त (Young-Helmholtz theory)

सर्वप्रथम थॉमस यंग (Thomas Young) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् १८०१ ई० में किया और इसका पुनर्स्थापन हेल्महोज (Helmholtz) ने सन् १८६० ई० में किया, तभी से इसका नाम यंग हेल्महोज सिद्धान्त पड़ा। इस सिद्धान्त के अनुसार लाल (Red), हरा (Green) तथा नीला (Blue) ये ही तीन प्रधान रंग (Primary Colours) हैं। हम इतना जानते हैं कि हमें रंगों की संवेदना शंकुओं (Cones) के सहारे होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार इन तीन रंगों को ग्रहण करने के लिए रेटिना में

शकु भी तीन तरह के है जिन्हे लाल शंकु (R Cones), हरा शकु (G Cones) तथा नीला शकु (B-Cones) कहते है। ये तीनों प्रकार के शकु (Cones) किसी भी लम्बाई की तरग (Wave length) से उत्तेजित हो सकते है। लेकिन, किसी खास लम्बाई की प्रकाश तरग से कोई खास शकु सर्वाधिक उत्तेजित होता है। लगभग ८०० mm (Millimicrons) लम्बी प्रकाश तरग मे लाल शकु (R Cone) मे सबसे अधिक उत्तेजना होती है और अन्य दो प्रकार के शकुओं मे कम। ६०० mm के लगभग लम्बी प्रकाश तरग से हरा शकु (G Cone) सर्वाधिक उत्तेजित होता है। इसी तरह, ४०० mm के करीब की प्रकाश तरग जब आँखों पर पडती है तो नीला शकु (B-Cone) सबसे अधिक उत्तेजित होता है, लाल और हरा शकु कम उत्तेजित होते है। जहाँ तक रग-सवेदना का प्रश्न है, इस सिद्वान्त के अनुसार जिस लम्बाई की तरग से (Wave Length) जो शकु तीनो मे से सबसे अधिक उत्तेजित होता है उसी के अनुकूल लाल, हरा या नीला की सवेदना होती हे। ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट हे कि सबसे अधिक लम्बी प्रकाश तरग से लाल शकु सबसे अधिक उत्तेजित होता है। इसीसे जब बहुत अधिक लम्बी तरग हमारी आँखों पर पडती है तब हमे लाल की सवेदना होती है। इसी तरह सबसे छोटी तरग से नीले रग की सवेदना होगी, क्योंकि उससे नीला शकु सर्वाधिक उत्तेजित होता है।

रग विहीन तथा विभिन्न रगों की सवेदनाओं की व्याख्या भी यग-महाशय ने इन तीन शकुओं की उत्तेजना के ही आधार पर की है। उनका कहना है कि अगर किसी खास लम्बाई की तरग से तीनों प्रकार के शकु समान अनुपात (Ratio) मे हो उत्तेजित हो जाये तो ऐसी परिस्थिति मे हम उजले या भूरे (Grey) की सवेदना होगी। जब किसी प्रकाश तरग से कोई भी शकु किसी भी अश मे उत्तेजित नही होता तो हम काले (Black) की सवेदना होती है।

विभिन्न रगों की सवेदना के सम्बन्ध मे इस सिद्धान्त का मत है कि जब लाल, हरा और नीला शकु विभिन्न अनुपात मे उत्तेजित होते है तब हम विभिन्न रगों की सवेदना होती है। मान ले, कुछ प्रकाश तरगों से लाल, हरा और नीले शकु क्रमश ८, ७ और ११ के अनुपात मे उत्तेजित होते है। यानी, सर्वाधिक नीला शकु उत्तेजित होता है, तब हरा और सबसे कम लाल। इस सिद्धान्त के अनुसार (जेसा ऊपर कहा गया) ऐसी तरग से नीले रग की सवेदना होगी, क्योंकि नीला शकु सबसे अधिक उत्तेजित है। लेकिन, नीले के बाद ही हरा शकु के उत्तेजित होने की मात्रा है। इसलिए सवेदना हरापन लिए नीले की होगी। इसी तरह, जैसे जेसे हरे शकु की उत्तेजना की मात्रा बढती जायगी रग की सवेदना नीला से हरा की ओर अधिक होती जायगी। जब हरा शंकु नीले शकु की अपेक्षा अधिक उत्तेजित हो जायगा और लाल शकु ज्यों का त्यों उत्तेजित रह जायगा तब हमे वैसे रग की सवेदना होगी जिसे हम नीलापन लिए हरा कहेंगे। इस तरह, जो भी शंकु सबसे अधिक उत्तेजित रहता है उसी रग की सवेदना होती है, लेकिन उस पर उस रग की भी छाप रहती है जिसके शकु मध्यम रूप मे उत्तेजित रहते है। सबसे कम मात्रा या अनुपात मे जिस रग का शकु उत्तेजित रहता हे उस रग का कोई असर रग-सवेदना पर नहीं पडता। इस सिद्धान्त के अनुसार पीला रग कोई स्वतन्त्र या प्रमुख रग नहीं है। इसके लिए अक्षिपट मे विशेष तरह के शकु नहीं है। हमें इसकी सवेदना

तब होती है जब लाल या हरा शंकु समान मात्रा में उत्तेजित होते हैं और नीले शंकु बहुत कम अनुपात में।

विभिन्न दृष्टि व्यापारों (Visual phenomena) की व्याख्या —यंग-हेल्महोज-सिद्धान्त की मूल बातों को समझ लेने के बाद यह देखना भी आवश्यक है कि यह सिद्धान्त रंगमिश्रण (Colour mixture) अनुसंवेदना, (After Sensation), रंग-विरोध (Colour Contrast) तथा रंग अन्धापन (Colour Blindness), आदि विभिन्न दृष्टि-व्यापारों (जिनकी चर्चा पीछे हो चुकी है) की व्याख्या कैसे करता है। यहाँ हम एक एक कर प्रत्येक की चर्चा करेंगे और देखेंगे कि इस सिद्धान्त के द्वारा कहाँ तक इनकी व्याख्या युक्तिपूर्ण और सही ढंग से हुई है। इस सिद्धान्त की आलोचना का समावेश भी इन विभिन्न व्याख्याओं में ही हो जायगा।

(१) रंग-मिश्रण (Colour mixture) की व्याख्या —यह सिद्धान्त रंग संवेदना (Hue) और रंग मिश्रण की व्याख्या मस्तिष्क की क्रियाओं के आधार पर करता है। इसी से इसे केन्द्रीय सिद्धान्त (Central theory) भी कहते हैं। तीन तरह के शंकुओं (Cones) को मानते हुए भी यह सिद्धान्त यह नहीं मानता कि इनसे उत्पन्न स्नायुप्रवाह (Impulses) आपस में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। सभी शंकुओं से एक ही तरह का स्नायुप्रवाह उत्पन्न होता है। अतः अक्षिपटीय क्रियाओं (Retinal processes) में अन्तर के कारण रंगों की संवेदना नहीं होती। एक ही तरह के स्नायुप्रवाह उत्पन्न होते और मस्तिष्क को जाते हैं। मस्तिष्क ही विभिन्न शंकुओं से आये स्नायु-प्रवाह को एक दूसरे से अलग करता है। फलतः हमें किसी खास रंग की संवेदना होती है। रंगमिश्रण के इस सिद्धान्त की पुष्टि अप्रत्यक्ष (Indirect) रूप में द्विनेत्रीय रंग मिश्रण (Binocular colour mixture) के द्वारा भी होती है। स्टिरीयस्कोप की सहायता से एक ही साथ दोनों आँखों के सामने दो रंगों को एक साथ उपस्थित करने पर दोनों रंगों में प्रतिद्वन्द्विता (Rivalry) देखने में आती है। साथ-साथ उन दोनों में मिलन-व्यापार (Phenomenon of Fusion) भी देखा जाता है। इस यंत्र के साथ लाल और हरे रंगों को जब एक साथ उपस्थित किया जाता है तो ये दोनों रंग मिल जाते हैं और इससे पीले रंग की संवेदना होती है। यह प्रयोग इस तथ्य को भी प्रमाणित करता है कि रंगमिश्रण मस्तिष्क या केन्द्रीय नाड़ीमण्डल (Central Nervous System) में होना सम्भव है, क्योंकि इसका मिश्रण अन्यत्र होना सम्भव नहीं। इसी प्रकार जब हम दो पूरक रंगों (Complementary colours) को स्टिरीयस्कोप के सहारे उपस्थित करते हैं तो भूरे (Grey) की संवेदना होती है। यह संवेदना भी केन्द्रीय नाड़ीमंडल की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होती है। इस प्रकार यह सिद्धान्त रंगमिश्रण (Colour mixture) की व्याख्या संतोषप्रद करता है।

(२) पीला और उजला की व्याख्या —इस सिद्धान्त के अनुसार पीला की संवेदना लाल और हरा शंकुओं के समान रूप में उत्तेजित होने से होती है। लेकिन, यह व्याख्या ठीक नहीं जान पड़ती। जिस तरह अन्य रंगों की व्याख्या की गयी है उसके अनुसार पीला को हरापन लिए लाल (Greenish Red) या लाली लिए हरा (Redish Green) दिखलाई पड़ना चाहिए था, लेकिन वह ऐसा नहीं दीखता।

इसी तरह, यदि उजले की सवेदना तीन प्रकार के शकुओं के समान रूप में सक्रिय होने से होती है तो ऐसी स्थिति मे वस्तुत उजला उजला न मालूम पड ऐसा रग मालूम होना चाहिए था जिसमें लाली, हरापन और नीलापन तीनो हों। लेकिन, ऐसा न हो एक बिल्कुल भिन्न तरह की सवेदना क्यों होती है? इस सिद्धान्त ने इसकी व्याख्या मस्तिष्क के कार्य के आधार पर की है कि विभिन्न शकुओं से उत्पन्न स्नायुप्रवाह मस्तिष्क में जाकर एक खास क्रिया से आपस मे मिल जाते है और हमे उजले की सवेदना होती है। लेकिन, मस्तिष्क के अज्ञात कार्य के आधार पर यह व्याख्या सतोषप्रद नही मालूम होती।

(३) रग अचलो की व्याख्या —इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्रकार के शकु (Cones) किसी भी लम्बाई की तरग से कम या अधिक उत्तेजित होते है। यदि यह बात सत्य होती तो अक्षिपट के सभी अचलों से सभी रग दिखाई पडना चाहिए था, किन्तु ऐसा नही होता। अक्षिपट (Retina) के मध्य अचल (Middle Zone) से सिर्फ नीला तथा पीला (Blue and Yellow) रग ही दृष्टिगोचर होते है। इस सिद्धान्त के अनुसार पीला कोई स्वतत्र रग नही होता, इसलिए इसके लिए कोई खास शकु भी नहीं होता। लेकिन, यदि यह दृष्टिकोण वस्तुत ठीक होता तो अक्षिपट के मध्य भाग में पीला रग की उत्तेजना से कोई प्रतिक्रिया नही होती। इस तरह इस सिद्धान्त के द्वारा हम विभिन्न अक्षिपटीय रग अचलों (Retinal Colour Zones) की व्याख्या सतोषप्रद नही कर सकते।

(४) धनात्मक अनुसवेदना (Positive After Sensation) की व्याख्या — यग-हेल्महोज का यह सिद्धान्त धनात्मक अनुसवेदना (Positive After Sensation) की व्याख्या उत्तेजना के प्रभाव की स्थिरता (Persistence of the effect of stimulation) के आधार पर करता है। इसका अर्थ यह है कि जब किसी उत्तेजना से रेटिना का कोई खास प्रकार का शकु (लाल, हरा या नीला) सर्वाधिक उत्तेजित होता है तब उत्तेजना के हटा लेने पर शकु की उत्तेजित अवस्था तुरत समाप्त नही हो जाती, बल्कि कुछ समय के लिए बनी रहती है। इसीसे उत्तेजना के अभाव मे भी उस रग की सवेदना होती है जिसे धनात्मक अनुसवेदना कहते है। उत्तेजना के प्रभाव की इस स्थिरता को अक्षिपटीय स्थिरता (Retinal inertia) कहते है। जैसे, लाल शंकु के उत्तेजित होने पर यदि उत्तेजना (Stimulus) को हटा लिया जाय तब भी वह शकु कुछ काल तक उसी अवस्था में उत्तेजित रहता है। इसलिए उत्तेजना के हटा लेने पर भी हमें लाल का अनुभव होता है। किंतु, इस व्यापार की यह व्याख्या पूर्णत सतोषप्रद नहीं है, क्योंकि धनात्मक अनुसवेदना के लिए उत्तेजना क्षणमात्र के लिए ही उपस्थित की जाती है।

(५) निषेधात्मक अनुसवेदना (Negative After Sensation) की व्याख्या —निषेधात्मक अनुसवेदना के सम्बन्ध में हम विचार कर चुके है कि जब किसी रग को कुछ देर देखने के बाद हम भूरी या उजली पृष्ठभूमि (Background) पर अपनी नजर स्थिर करते है तो उस पृष्ठभूमि पर हमें उक्त रग के पूरक (Complementary) रग की सवेदना होती है। यानी, लाल रग देखने पर हरे की और पीला रग देखने पर नीले रग की सवेदना रग-विहीन पृष्ठभूमि पर होती है। इसकी व्याख्या करते हुए इस सिद्धान्त का कहना है कि जब किसी प्रकाश तरग से कोई शकु (Cone) उत्तेजित होता है और उसे कुछ समय तक उत्तेजित रहना पडता है तब उसकी शक्ति कमजोर हो जाती है। ऐसी स्थिति में अवशेष शकु अधिक क्रियाशील हो जाते है और फलत उन्हीं की रग-सवेदना

होती है। जैसे, जब अधिक लम्बी प्रकाश-तरंग आँखों को अधिक समय तक प्रभावित करती है तब लाल शंकु थक जाते हैं। फलतः हरा और नीला शंकु रंग-संवेदना को प्रभावित करते हैं और उत्तेजना के हरा होने से हम नीलापन लिए हरा (Bluish green) की संवेदना होती है। नीले शंकु सबसे कम प्रकाश में उत्तेजित होते हैं इसी से जिस लम्बी तरंग से लाल की संवेदना होती हो उससे इस शंकु में सबसे कम उत्तेजना होती है। यही कारण है कि ... में नीला का असर कम रहता है हरा ही विशेष लगता है और हम कहते हैं कि ... की अनुसंवेदना हरी होती है। इसी तरह, जब नीला शंकु किसी तरंग से ... तक प्रभावित होने से थक जाते हैं तो उत्तेजना की अनुपस्थिति में हम लाल और हरे के मिश्रण से उत्पन्न पीले रंग की संवेदना होती है। लेकिन ... के आधार पर यह व्याख्या सन्तोषप्रद नहीं मालूम होती। कुछ क्षणों तक ही उत्तेजना का अनुभव करने के बाद निषेधात्मक अनुसंवेदना का यह व्यापार देखा जाता है। इतने कम समय में ही अक्षिपट के शंकु थक जाते हैं, इसकी आशा नहीं की जा सकती।

(६) समकालीन दृष्टि-विरोध (Simultaneous visual contrast) की व्याख्या —इस सिद्धान्त के अनुसार समकालीन विरोध (Simultaneous contrast) कुछ व्यक्तिगत कारणों से उत्पन्न भ्रम के कारण होता है। इस दृष्टि-विरोध के अनुसार हम जानते हैं कि पीला और नीला जब एक दूसरे के अगल बगल में रहते हैं तो पीला रंग अधिक पीला और नीला अधिक नीला प्रतीत होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह समकालीन विरोध (Simultaneous contrast) व्यक्ति की गत अनुभूति (Past experience) से होता है। व्यक्ति की यह गत अनुभूति अचेतनतया (Unconsciously) ही कार्य करती है, चेतनतया नहीं। लेकिन, समकालीन विरोध की यह व्याख्या युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि गत अनुभूति से अनुभूति में रुकावट (Inhibition) होती है न कि अनुभूति तीव्र होती है।

(७) रंग-अंधापन (Colour Blindness) की व्याख्या —पूर्ण रंग अंधापन (Complete colour blindness) की व्याख्या करते हुए यह सिद्धान्त बताता है कि जब तीनों तरह के शंकु (Cones) निर्बल या अनुपस्थित हो जाते हैं तो व्यक्ति को किसी रंग की संवेदना नहीं होती है। किसी एक शंकु की निर्बलता या अनुपस्थिति के कारण व्यक्ति आंशिक रूप में रंगान्ध (Partial colour blind) हो जाता है। जैसे, लाल शंकु की कमजोरी या अनुपस्थिति (Absence) के कारण व्यक्ति लाल देखने में असमर्थ होता है और उसे लाल रंग के लिए अंधा कहते हैं। हरा शंकु के अभाव (Lack of G-cones) में हरा अंधापन (Green blindness) और नीले शंकु के निर्बल या अनुपस्थित होने पर नीला-अंधापन (Blue blindness) का व्यापार दृष्टिगोचर होता है।

कुछ दिनों तक सभी विद्वानों ने इस व्याख्या को स्वीकार किया, लेकिन यह व्याख्या बहुत दिनों तक नहीं टिक सकी। इस अस्वीकृति का कारण यह था कि किसी रंग का अंधापन अकेले नहीं होता। जब व्यक्ति एक रंग नहीं देखता तो उसे उसका पूरक रंग भी दिखलाई नहीं पड़ता। यानी, जिसे लाल रंग का अंधापन होता है उसे हरा भी दिखलाई नहीं देता और जिसे नीले रंग का अंधापन रहता है उसे पीला रंग भी दिखलाई नहीं पड़ता। डा० पोल (Pole) ने इस पर काफी प्रकाश डाला है, वह स्वयं भी पीले

नीले रगो के लिए अधा था। इस सिद्धान्त से इस बात की व्याख्या नही हो पाती कि जब हम एक रग के लिए अधा होते है तो उसके पूरक रग का भी ज्ञापन क्यो हो जाता है ? वस्तुत यदि लाल शकु की कमजोरी या निष्क्रियता के कारण लाल रग का ज्ञापन होता, तो हरा रग दीखना चाहिए था, लेकिन ऐसा नही होता। जो व्यक्ति पूर्ण रूप से भी रगान्ध होता है उसे भी उजले का अनुभव होता है। लेकिन इस सिद्धान्त के अनुसार, हमे उजले की सवेदना तब होती है जब लाल, हरा और नीला शकु समान अनुपात मे उत्तेजित होते है। यदि ऐसी बात होती तो रगान्ध (Completely colour blind) व्यक्ति को, जिसके सभी शकु कमजोर या अनुपस्थित है, उजले की सवेदना नहीं होती। इस तरह, हम देखते है कि इस सिद्धान्त द्वारा रग ज्ञापन की सतोषप्रद व्याख्या नही हो पायी है।

इस तरह यग हेल्महोज सिद्धान्त रग की सवेदना मे मस्तिष्क के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए भी विभिन्न दृष्टि व्यापारो (Visual phenomena) की सतोषप्रद व्याख्या नही कर पाता। इसकी त्रुटियो को दूर करने के लिए इस सिद्धान्त मे कई सशोधन किए गये है। शकु (Cone) के सहारे व्याख्या करने मे इस सिद्धान्त मे कई त्रुटियाँ आ गयी थी, इसलिए शकुओ की जगह रासायनिक द्रव्य (Chemical substance) का प्रतिपादन किया गया और बतलाया गया कि हम विभिन्न रगो का अनुभव लाल, हरा और नीले शकुओ की क्रियाशीलता से नहीं, बल्कि लाल, हरे और नीले रासायनिक द्रव्यों की क्रिया से होता है। इसी तरह, मेकडुगल (McDougall) ने भी तीन रगो को प्रधान माना, लेकिन उजले की व्याख्या एक स्वतत्र क्रिया (Independent mechanism) के आधार पर की जो दण्डो (Rods) के बीच कार्य करती है। इसके सहारे रग-अन्धता, आदि की काफी अशों तक समुचित व्याख्या हो पाती है। फिर भी, जहाँ तक यग हेल्महोज सिद्धान्त का प्रश्न है यह अभी तक विभिन्न दृष्टि व्यापारों की युक्तिसगत व्याख्या करने मे असमर्थ रहा है, इसीसे इस क्षेत्र मे अन्य सिद्धान्तो का प्रतिपादन हुआ है।

हेरिंग-सिद्धान्त (The Hering theory)

यग-हेल्महोज सिद्धान्त की त्रुटियों को देखकर हेरिंग ने दृष्टि सवेदना (Visual sensation) का एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसे उसी के नाम पर हेरिंग सिद्धान्त कहते है। इस सिद्धान्त ने छ रगो को प्रधान रग माना है, वे है— लाल (Red), हरा (Green), पीला (Yellow), नीला (Blue), उजला (White), और काला (Black)। उसने इन छ रगो को तीन जोडों मे रखा है— (१) लाल हरा जोडा, (२) पीला-नीला जोडा और (३) उजला काला जोडा। प्रत्येक जोड़े का एक रग दूसरे का पूरक (Complementary) और विरोधी (Antagonistic) है। इसके अनुसार अक्षिपट (Retina) मे तीन प्रकार के रासायनिक द्रव्य (Chemical substances) विद्यमान है और प्रत्येक रासायनिक द्रव्य का सम्बन्ध दो प्रकार की रग सवेदनाओ (Colour sensations) से है। इस प्रकार पहले द्रव्य (Substance) का सबध लाल हरा की सवेदना से है, दूसरे का पीला नीला रगों से तथा तीसरे प्रकार के द्रव्य का सबध उजला काला के अनुभवो से है। इस तरह रेटिना के तीन विभिन्न द्रव्यों से तीन जोड़े रग की सवेदना होती है।

प्रत्येक रासायनिक द्रव्य में दो तरह की क्रियाएँ होती हैं, एक को निर्माण-जीवन-क्रिया (Anabolic Process) और दूसरे को विनाशक जीवन क्रिया (Katabolic Process) कहते हैं। इन्हीं क्रियाओं के फलस्वरूप ही प्रत्येक द्रव्य से दो रगों की संवेदना होती है। जब 'लाल-हरे द्रव्य' (Red Green Substance) मे कैटाबोलिक क्रिया चलती है तब हमें लाल की संवेदना होती है और जब इस द्रव्य मे एनाबोलिक क्रिया चलती है तब हरे की संवेदना होती है। इसी तरह 'नीले पीले द्रव्य' (Blue-Yellow Substance) में कैटाबोलिक क्रिया होने से पीले रग की संवेदना होती है और एनाबोलिक क्रिया होने से नीले रग की संवेदना होती है। इसी तरह 'उजले काले द्रव्य' मे जब कैटाबोलिक क्रिया होती है तो उजले और एनाबोलिक क्रिया के होने पर काले का आविर्भाव होता है।

हेरिंग सिद्धान्त के अनुसार सभी प्रकार की प्रकाश तरंगो से तीनो द्रव्य क्रियाशील होते हैं, किन्तु विभिन्न लम्बाई की तरगों से तीनो द्रव्य विभिन्न मात्रा मे क्रियाशील होते हैं। फलतः जो तरग (Light wave) लाल-हरे द्रव्य को जिस मात्रा मे प्रभावित करती है वह उसी रूप से नीले पीले द्रव्य को प्रभावित नही करती। यही हालत अन्य द्रव्यों की भी है। हेरिंग ने काले को एक स्वतत्र संवेदना माना है जिसे उसने अक्षिपट (Retina) का स्वाभाविक (Intrinsic) प्रकाश कहा है। उसका कहना है कि जब कुछ क्षणों के लिए अक्षिपट किसी उत्तेजना से प्रभावित या उत्तेजित नहीं होता तो उस अवस्था मे काले की अनुभूति होती है। रंगो की चमक के सम्बन्ध मे (Brightness) उसका कहना है कि किसी रग की चमक कुछ अंशों में उस रग विशेष की चमक के परिणामस्वरूप और कुछ अंशों में काले-उजले द्रव्य की क्रियाशीलता के फलस्वरूप होती है। उसने लाल तथा पीला को उष्ण रग (Warm colours) की संज्ञा दी है। उसके अनुसार उष्ण रगों मे स्वाभाविक चमक होती है और शीत रगों में कालिमा स्वाभाविक रूप से होती है।

विभिन्न दृष्टि व्यापारो की व्याख्या —हेरिंग ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन यंग-हेल्महोज के सिद्धान्त की त्रुटियों को दूर करने के लिए किया था। इसीसे यह सिद्धान्त विभिन्न दृष्टि-व्यापारों (Visual Phenomena) की व्याख्या काफी अंशों मे संतोषप्रद ढंग से करता है। यहाँ हम उन पर एक एक कर विचार करेंगे और देखेंगे कि कहाँ तक हेरिंग की व्याख्या युक्तिपूर्ण है।

(१) रग-मिश्रण (Colour mixing) की व्याख्या —हेरिंग ने पूरक (Complementary) और अनपूरक (Non-Complementary) रगों के मिश्रण की व्याख्या अलग-अलग की है। प्रत्येक रासायनिक द्रव्य का सम्बन्ध जिन दो रगों से है वे दोनों पूरक रग हैं। जब किसी द्रव्य में एक ही साथ कैटाबोलिक और एनाबोलिक दोनों क्रियाएँ चलने लगती हैं तो हम दोनों में किसी रग की संवेदना न हो भूरे (Grey) की सवेदना होती है। जब लाल और हरा रग एक खास अनुपात में मिलकर भूरे की सवेदना उत्पन्न करते हैं तो इसका कारण लाल-हरे द्रव्य (Red-Green Substance) मे एक ही साथ एनाबोलिक और कैटाबोलिक क्रियाओं का होना है।

इसी तरह जब दो अनपूरक रग मिलाए जाते हैं तो दोनों अपने-अपने आबद्ध द्रव्यों में खास तरह की क्रिया उत्पन्न करते हैं और फलतः हमे इन दोनों के बीच के रग की सवेदना

होती है। जैसे, लाल और पीले रगो को जब मिलाया जाता है तो लाल हरे तथा पीले-नीले दोनों द्रव्यों मे कैटाबोलिक क्रिया शुरू हो जाती है और परिणामस्वरूप म . . . के बीच के रग (नारगी) की सवेदना होती है। हेरिग, इस तरह रगमिश्रण की व्याख्या अधिक समुचित ढग से करता है।

(२) निषेधात्मक अनुसवेदना (Negative After Sensation) की व्याख्या —हेरिग के अनुसार अक्षिपट (Retina) मे सतुलन (Equilibrium) बनाए रखने की एक प्रवृत्ति (Tendency) होती है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप हमें निषेधात्मक अनुसवेदना की अनुभूति होती है। लाल हरे द्रव्य मे कैटाबोलिक क्रिया के कारण लाल की अनुभूति होती है। लेकिन, जैसे ही हम अपनी आँख लाल रग से हटाकर भूरे धरातल (Grey surface) पर ले जाते है, यह कैटाबोलिक क्रिया समाप्त हो जाती है और सतुलन बनाने की प्रवृत्ति के अनुसार उस द्रव्य मे एनाबोलिक क्रिया शुरू हो जाती है। इससे हमें भूरे धरातल पर हरे की सवेदना होती है। इसी तरह अन्य निषेधात्मक अनुसवेदनाओं की भी व्याख्या की जा सकती है।

(३) धनात्मक अनुसवेदना (Positive After Sensation) की व्याख्या — आँखों को जब किसी चीज पर कुछ देर के लिए स्थिर किया जाता है तो देखते समय जो समन्वय (Integration) की क्रिया चलती रहती है, वह क्षीण हो जाती है। उस समय की क्रिया को समन्वय की कमजोर प्रक्रिया (Feeble process of assimilation) कहते है। इसी समन्वय (Assimilation) की क्रिया के कारण किसी उजली या भूरी पृष्ठभूमि पर ध्यान देने पर हमे धनात्मक अनुसवेदना का अनुभव होता है। लेकिन, धनात्मक अनुसवेदना की यह व्याख्या युक्तिसगत नहीं है। प्राय ऐसा भी देखने मे आता है कि यदि अनुसवेदना से आधारभूमि अधिक चमकीली (Brighter) हो तो धनात्मक अनुसवेदना निषेधात्मक अनुसवेदना मे बदल जाती है। इस सम्बन्ध में हेरिंग की उपर्युक्त व्याख्या मान्य है।

(४) समकालीन रग-विरोध (Simultaneous Colour Contrast) की व्याख्या —हेरिंग सिद्धान्त समकालीन विरोध (Simultaneous contrast) की व्याख्या यग-हेल्महोल्ज-सिद्धान्त की तरह मनोवैज्ञानिक आधार पर नहीं, बल्कि दैहिक आधार (Physiological basis) पर करता है। इसके अनुसार जब अक्षिपट के सन्निकट भागों में विरोधी क्रिया उत्पन्न हो जाती है तब इस विरोधी क्रिया के फलस्वरूप समकालीन रंग-विरोध की अनुभूति होती है। जब लाल और हरा रगों के दो टुकड़ों को आसपास रखकर देखते है तो लाल मौलिक से अधिक लाल और हरा मौलिक से अधिक हरा दृष्टिगोचर होता है। इसका कारण यह है कि जब हम लाल को देखते हैं तो लाल-हरे द्रव्य में कैटाबोलिक क्रिया चलती है जबकि उसी के बगल में हरा रग को देखने में एनाबोलिक क्रिया चलती है। इस तरह की विरोधी क्रिया के कारण रग-विरोध नजर आता है और हम लाल को अधिक लाल तथा हरा को अधिक हरा देखते हैं। लेकिन, द्विनेत्रीय विरोध (Binocular contrast) के तथ्य को दृष्टिकोण में रखते हुए रग-विरोध की यह व्याख्या भी सतोषप्रद नही कही जा सकती है।

(५) रंग-अधापन (Colour Blindness) की व्याख्या —रग अधापन के सम्बन्ध में हेरिंग का कहना है कि जब अक्षिपट में एक या एक से अधिक दृष्टिद्रव्यों (Visual

substances) का अभाव रहता है तो रग-अधापन देखने में आता है। जैसे, जब लाल हरा द्रव्य (Red Green substances) का अभाव होता है तब लाल-हरा अधापन (Red-green blindness) दृष्टिगोचर होता है, नीले पीले द्रव्य के अभाव में नीले पीले रगों के प्रति अधापन रहता है। पूर्ण रगान्ध व्यक्ति के अक्षिपट मे उपर्युक्त दोनों ही द्रव्य अनुपस्थित रहते हैं।

(६) दृष्टि-रग अचल (Visual colour zones) की व्याख्या —दृष्टि-रग अचल की व्याख्या करते हुए हेरिंग का कहना है कि अक्षिपट के बाहरी अचल (Perepheral zone) मे केवल उजले काले द्रव्य होते हैं, इसलिए यहाँ से केवल उजले काले या भूरे की ही अनुभूति होती है। अक्षिपट के मध्य अचल (Middle zone) में उजले काले तथा पीले-नीले द्रव्य पाये जाते हैं, इसलिए यहाँ से पीले और नीले रगों की सवेदना भी होती है। केन्द्रीय अचल (Central zone) मे तीनो प्रकार के रासायनिक द्रव्य पाये जाते हैं, इसलिए हमें इस अचल से सभी रगों और चमक (Brightness) की अनुभूति होती है।

हेरिंग-सिद्धान्त के दोष —उपर्युक्त व्याख्याओं से स्पष्ट है कि हेरिंग का यह सिद्धान्त हेल्महोज-सिद्धान्त की अपेक्षा विभिन्न दृष्टि व्यापारों (Visual phenomena) की व्याख्या अधिक सतोषप्रद ढग से करता है। लेकिन, इस गुण के होते हुए भी इसमें कुछ ऐसी त्रुटियाँ हैं जिनकी उपेक्षा नही की जा सकती।

पहली आपत्ति —हेरिंग-सिद्धान्त विभिन्न दृष्टि-व्यापारों की व्याख्या अक्षिपट में तीन तरह के रासायनिक द्रव्यों (Chemical substances) को मानकर उन्ही के आधार पर करता है। इससे स्पष्ट है कि विभिन्न रगों की सवेदना के लिए भिन्न भिन्न तरह के स्नायुप्रवाह (Retinal impulses—the chemical substances) उत्पन्न होते हैं। लेकिन, दैहिक विज्ञानवेत्ता (Physiologists) ऐसा नही मानते। उनके अनुसार अक्षिपट में उत्पन्न स्नायुप्रवाहों मे कोई अन्तर नही होता। एक ही स्नायुप्रवाह विभिन्न स्नायुओं के सहारे मस्तिष्क मे पहुँचता है। इस तरह, यह मौलिक आपत्ति इस सिद्धान्त के विरुद्ध है जिससे हेरिंग सिद्धान्त की नीव ही कमजोर जान पडती है।

दूसरी आपत्ति —इस सिद्धान्त के प्रति दूसरी मुख्य आपत्ति यह है कि जब भी किसी उत्तेजना से कोई ग्राहक कोष (Receptor cell) उत्तेजित होता है तो कोष-शरीर विघातन (Decomposition) की अवस्था मे आ जाता है। अत उस समय के कोष की क्रिया को विघातन क्रिया (Decomposition process) कह सकते है। लेकिन, हेरिंग के अनुसार प्रत्येक द्रव्य में दो तरह की उत्तेजन क्रिया होती है—एक जीवन निर्माण की, जिसे वह एनाबोलिक क्रिया (Anabolic process) कहता है और दूसरी विघातन की, जिसे कैटाबोलिक क्रिया (Katabolic process) कहता है। परन्तु उत्तेजना की हालत मे जब कोष की शक्ति क्षीण हो जाती है तो निर्माण-क्रिया कैसे हो सकती है? एक ही द्रव्य मे उत्तेजना की अवस्था मे इन दो विरोधी क्रियाओ का होना युक्तिसगत नही मालूम होता। यह चमक की व्याख्या भी दो क्रियाओं के सहारे करता है जो परिकल्पना मितव्ययिता के नियम (Principle of economy of hypothesis) के प्रतिकूल है।

तीसरी आपत्ति—हेरिंग सिद्धान्त रंग अंधापन की व्याख्या तीनों रासायनिक द्रव्यों (जिनमें उजला-काला द्रव्य भी एक है) की व्याख्या अनुपस्थिति के आधार पर करता है। यहाँ तब स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि जब द्रव्यों का अभाव ही रंग अंधापन का कारण है तो कोई व्यक्ति उजले काले के प्रति अंधा क्यों नहीं होता? जैसे अन्य रंगों के द्रव्यों की अनुपस्थिति से अन्य रंगों के अंधापन का व्यापार दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही इस सिद्धान्त के अनुसार उजले काले रंगों का अंधापन भी होना चाहिए था, लेकिन ऐसा नहीं होता। हेरिंग-सिद्धान्त इसकी समुचित व्याख्या करने में असमर्थ है।

इस सिद्धान्त के विरुद्ध इसी प्रकार कुछ और भी आपत्तियाँ की गयी हैं। लेकिन, उनके उपरान्त भी इतना निर्विवाद है कि हेरिंग सिद्धान्त दृष्टि व्यापार की व्याख्या यंग हेल्महोज सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक अंशों में संतोषप्रद करता है।

लैडफ्रैंकलिन सिद्धान्त (Ladd Franklin theory)

लैडफ्रैंकलिन सिद्धान्त को कभी कभी लैडफ्रैंकलिन, विकासात्मक सिद्धान्त (Ladd-Franklin's Genetic Theory) भी कहते हैं। यह सिद्धान्त उपर्युक्त दोनों के बहुत दिनों बाद प्रतिपादित किया गया है और इसमें दोनों की अच्छाइयों का समन्वित करने की कोशिश की गई है। यह सिद्धान्त विभिन्न रंग संवेदनाओं की व्याख्या पूर्णतः विकासात्मक दृष्टिकोण से करता है।

डा० लैडफ्रैंकलिन का कहना है कि अक्षिपट के ग्राहकों (Retinal receptors—rods and cones) का विकास धीरे धीरे हुआ है। प्रारम्भिक अवस्था में अक्षिपट में सिर्फ उजले और काले के ही ग्राहक थे, अन्य रंगों के ग्राहकों का सर्वथा अभाव था। विकास की दूसरी अवस्था तब आई जब उजले काले ग्राहकों के अतिरिक्त अक्षिपट में नीले और पीले रंगों के भी ग्राहकों का आविर्भाव हुआ। इसके बाद तृतीय अवस्था में अक्षिपट के लाल हरे (Red Green) ग्राहकों का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार आज हमारी आँख में जो तीन तरह के ग्राहक कोष हैं उनका विकास क्रमशः हुआ और इस विकास के क्रम में सबसे पहले हमें रंग विहीन संवेदना हुई और तब रंगीन संवेदना का अनुभव हुआ।

विभिन्न दृष्टि व्यापारों (Visual phenomena) की व्याख्या—एक एक कर हम देखेंगे कि किस प्रकार लैडफ्रैंकलिन ने दृष्टि व्यापारों की व्याख्या की है और ये व्याख्यायें कहाँ तक पूर्व में की गयी व्याख्याओं से भिन्न तथा संतोषप्रद हैं।

(१) अक्षिपट के रंग-अंचल की व्याख्या—अगर हम अक्षिपट की रंग-संवेदना के अंचलों (Colour zones) का अध्ययन करें तो मालूम होगा कि उसके विभाजन में उपर्युक्त विकास क्रम की तीनों अवस्थाओं का प्रमाण मिलता है। अक्षिपट का बाहरी अंचल (Peripheral zone) विकास क्रम की पहली अवस्था का द्योतक है। यहाँ दण्डों का ही साम्राज्य होने से रंगों की संवेदना नहीं होती। अक्षिपट का मध्य अंचल (Middle zone) विकास क्रम की दूसरी अवस्था का द्योतक है। इस अंचल में दण्डों की अधिकता के साथ साथ प्रारम्भिक अवस्था के कुछ शंकु (Cone) भी पाये जाते हैं जिनके फलस्वरूप हमें नीले और पीले की संवेदना होती है। शंकुओं का विकसित रूप पीतविन्दु (Fovea) और केन्द्रीय अंचल (Central zone) के आसपास पाया जाता

है। यह अचल विकास क्रम की तीसरी अवस्था का द्योतक है और यहाँ सभी प्रकार की रंग संवेदनाओं की अनुभूति होता है।

(२) रंग संवेदना की व्याख्या —यह सिद्धान्त इस विकासात्मक दृष्टिकोण से सभी [illegible] की व्याख्या करने का प्रयास करता है। इसके अनुसार चार प्रधान रंग हैं—लाल, हरा, पीला और नीला। अक्षिपट में इन चारों रंगों के लिए अलग अलग [illegible] (Colour [illegible]) हैं।

जब कोई रंग ([illegible]) हमारी आँख के सामने उपस्थित किया जाता है तब उसमें [illegible] ([illegible]) में एक तरह की रासायनिक प्रतिक्रिया (Photo-chemical reaction) होती है जिसके फलस्वरूप उस रंग (लाल) की संवेदना होती है। जब लाल और हरे [illegible] उत्तेजित किया जाता है तब वे दोनों पुर्नसंगठित होकर पीला रूप धारण कर लेते हैं और उसके फलस्वरूप पीले की संवेदना होती है। इसी प्रकार लाल, हरा और नीला मिलकर [illegible] अनुभूति देते हैं। इस स्थल पर यह स्मरणीय है कि [illegible] लाल और हरा मिलकर पीला उत्पन्न करते हैं तब पीला और नीला मिलकर भूरे को जन्म देते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार उजले और पीले की कूटस्थ विशेषता (Elementary character) की व्याख्या प्रारम्भिक यांत्रिकता (Primary Mechanism) के आधार पर की गई है। यह सिद्धान्त काले का संवेदनात्मक अनुभूति (Sensory [illegible]) मानता है [illegible] कि किसी प्रकाश-उत्तेजना के अभाव में हमें काले की अनुभूति होती है, लेकिन काले की यह व्याख्या युक्तिसंगत और संतोषप्रद नहीं कही जा सकती।

यह सिद्धान्त [illegible] विरोध (Binocular Contrast) तथा रंग-मिश्रण (Colour [illegible]) की समुचित व्याख्या नहीं कर सका है, क्योंकि इसके अनुसार ये दोनों दृष्टि व्यापार (Visual phenomenon) केन्द्रीय (Central) नहीं, अपितु अक्षिपटीय (Retinal) हैं। इसके अनुसार जब व्यक्ति दो रंगों का अन्तर नहीं बता पाता तब उसकी रंग [illegible] विकास की पूर्व अवस्था में चली जाती है। यही कारण है कि जब दो पूरक रंगों को [illegible] अनुपात में मिलाया जाता है तब हमें रंगविहीन संवेदना होती है। लेकिन, यह व्याख्या [illegible] है।

(३) [illegible] की व्याख्या —यह सिद्धान्त रंग-अधापन की व्याख्या यह [illegible] करता है कि [illegible] पूर्णत: विकसित नहीं रहता उससे आबद्ध रंगों का अधापन [illegible] जाता है। [illegible] लाल हरा (Red Green) रंगों के ग्राहक विकास की अन्तिम [illegible], इसलिए उनके पूर्णत: विकसित न होने की संभावना अधिक हो जाती है। यही कारण है कि [illegible] रंगों की अपेक्षा लाल हरे रंगों का अधापन (Red-Green blindness) अधिक दृष्टिगोचर होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार पूर्ण रंग-अधापन का कारण सभी तरह के तत्त्वों का अविकसित रह जाना है, लेकिन किसी प्रमाण के अभाव में [illegible] मान्य नहीं हो सकती।

(४) [illegible] और [illegible] की व्याख्या —इस सिद्धान्त द्वारा संयोजन (Adaptation) और [illegible] (After Sensations) की जो व्याख्या की गई है वह [illegible] मौलिक रूप में [illegible] की व्याख्या से भिन्न नहीं है। अत: उसकी विशेष चर्चा करना

आवश्यक प्रतीत नही होता। इस प्रकार लैड फ्रैंकलिन ने अपने सिद्धान्त मे यद्यपि उपर्युक्त सिद्धान्तों के बीच राह अपनाई है, तथापि विभिन्न दृष्टि-व्यापारो की व्याख्या मे यह काफी कमजोर दीखता है।

तीना सिद्धान्तों की विवेचना के बाद इतना स्पष्ट हो जाता है कि सभी सिद्धान्तो मे कुछ त्रुटियाँ है, लेकिन इन त्रुटियो के रहते हुए भी यग हेल्महोल्ज सिद्धान्त को अधिक मान्यता दी जाती है। इसका पहला कारण यह है कि यग हेल्महोल्ज सिद्धान्त अन्य दो सिद्धान्तो की अपेक्षा बहुत ही कम और सरल धारणाओं (Assumptions) पर आधारित है और उन्ही के द्वारा अधिकाश दृष्टि-व्यापारो की व्याख्या भी करता है। स्नायु कार्यो और ग्राहकों के स्वरूप के सम्बन्ध मे वैद्युतिक [illegible] (Electro-phy siological research) से जो कुछ भी ज्ञात हो सका है और प्रकाश रासायनिक सिद्धान्त (Photo chemical theory of Vision) ने जो कुछ भी स्पष्ट किया है, [illegible] दोनों के सर्वाधिक अनुकूल यही सिद्धान्त है। इसीलिए यद्यपि यह सिद्धान्त सभी सामान्य तथा असामान्य दृष्टि व्यापारों की समुचित व्याख्या नही कर पाता तथापि [illegible] संशोधन (Revision) एव परिमार्जन (Modification) का विषय बना हुआ है। [illegible] सिद्धान्त दृष्टि व्यापारों की व्याख्या तो कुछ अधिक सतोषप्रद ढग से करता है, लेकिन [illegible] के आधार (तीन तरह के रासायनिक द्रव्य) ही मान्य नही है, इसलिए यह सिद्धान्त कमजोर पड जाता है। लैड फ्रैंकलिन सिद्धान्त की अनुपयोगिता तो स्पष्ट की ही जा चुकी है। [illegible] वर्त्तमान स्थिति मे हम सबसे अधिक कामचलाऊ यग हेल्महोल्ज सिद्धान्त को ही मानेगे।

श्रवण-संवेदना

(Auditory Sensation)

दृष्टि-सवेदना की तरह श्रवण सवेदना का भी महत्त्व मानव जीवन मे अत्यधिक है। जिस प्रकार दृष्टि सवेदना के ग्राहक (आँख) को दूरस्थ ग्राहक (Distant receptor) कहा जाता है उसी प्रकार इस सवेदना के ग्राहक (कान) की भी गणना दूरस्थ ग्राहकों मे होती है। यहाँ श्रवण सवेदना की सम्यक् जानकारी के लिए सर्वप्रथम हम कान की रचना (Structure of the ear) और उसकी कार्यवाहियों का सक्षिप्त वर्णन करेगे।

कान की रचना और कार्यवाही

(Structure & functions of ear)

रचनात्मक दृष्टि से कान को तीन भागों मे बाँटा गया है—(१) बाह्य कर्ण (Outer ear), (२) मध्य कर्ण (Middle ear) और (३) अन्त कर्ण (Inner ear)।

इन तीनों भागो की सक्षिप्त कार्यवाही (Functions) के सबध मे एक पक्ति मे हम कह सकते है कि कान के बाह्य एव मध्य भाग आवाज को इकट्ठा कर उसे कुछ हड्डियों के सहारे अन्त कर्ण मे भेजते है, और अन्त कर्ण आवाज का विश्लेषण कर स्नायु प्रवाह को मस्तिष्क के श्रवण क्षेत्र (Auditory area) मे भेज देता है जिससे हमे उस आवाज की सवेदना होती है। इसी से इन बाह्य, मध्य, एव अन्त कर्ण को क्रमश आवाज सग्रहकर्त्ता (Sound collector), प्रेषक (Transmitter) और विश्लेषक (Analyzer) कहा जाता है। अब हम एक एक कर इन तीनो भागों की चर्चा करेगे।

(१) बाह्य कर्ण (Outer ear) —बाह्य कर्ण के दो मुख्य भाग है। (क) कर्णशष्कुली या पिना (Pinna) और (ख) कान की नली (Auditory meatus)। कर्णशष्कुली या पिना (Pinna) पूर्णत कूर्चा या कर्टिलेज (Cartilage) से बनी हुई है। यह कान का वह भाग है जिसे हम बाहर से देखते है। जानवरो मे कान का यह भाग मनुष्य की अपेक्षा साधारणत बहुत बडा होता है। इसके अतिरिक्त, अधिकाश पशु अपनी पिना को आवश्यकतानुसार विभिन्न दिशाओ मे मोड सकते है। इस भाग का महत्त्व जानवरों के लिये बहुत अधिक है। वे इसी के सहारे आवाज को इकट्ठा कर पाते है। इसके अभाव मे उनकी श्रवण क्षमता मे कुछ कमी पाई जाती है। जहा तक मनुष्य का सम्बन्ध है, कान का यह भाग श्रवण-सवेदना के लिए कुछ विशेष उपयोगी नही है। इसके अभाव मे भी सुनने मे कोई कमी नही आती, सौन्दर्य मे कमी भले ही आ जाय।

(ख) कान की नली (Meatus) लगभग पचीस मी मी लम्बी होती है जिसका व्यास (Diameter) सात मी मी होता है जो आगे चल कर एक पतली झिल्ली से बन्द हो जाती है। यह टेढीमेढी है। इसके अन्दर चारों ओर से छोटे छोटे केश निकले रहते है। इसमें एक प्रकार का कडवा (Sstrava ecretion) निकलते रहता है जिसे कर्णमूल (Bitter wax) कहते है। कान की नली की वक्रता, इसके केश तथा स्राव

तीनों ही बाहर से आने वाले कीडे मकोड़े तथा अन्य घातक पदार्थों को अन्दर जाने से रोकते है।

कान की झिल्ली या कर्णढोल (Tympanic membrane or ear drum) मध्य कर्ण से वाह्य कर्ण को अलग करता है। कान की नली जहाँ समाप्त करता है वही यह झिल्ली होती है। यह बहुत कोमल तथा सवेदनशील है। कान की नली मे जो भी आवाज आती है वह इस झिल्ली से टकराती है और फलत इसके प्रकपित होने से ध्वनि-तरगों की तीव्रता छ सात गुना अधिक हो जाती है।

चित्र सख्या १९



कान की रचना

१ कान की नली, २ कर्णढोल, ३ मुद्गर ४ निहाई, ५ रकाब ६ गोल खिड़की, ७ अडाकार खिडकी, ८ अर्द्ध चक्रनली, ९ कोक्लिया, १० श्रवण स्नायु

(२) मध्य कर्ण (Middle ear) —कान की झिल्ली के बाद मध्य कर्ण का भाग है। इसके अन्दर मुख्य तौर से दो अग होते है—कान की हड्डियाँ (Bony ossicles) और कण्ठ कर्ण-नली (Eustachion Tube)। जहाँ तक कान की हड्डियों का सवाल है, मध्य कर्ण मे तीन छोटी छोटी हड्डियाँ है, जिन्हे क्रमश मुद्गर (Hammer), निहाई (Anvil or Incus) और रकाव (Stirrup or Stapes) कहते है। कान की झिल्ली (Tympanic membrane) से सटे मुद्गर है। मुद्गर और निहाई हड्डियाँ आपस मे मिली हुई है। निहाई से लगे रकाब (Stirrup) है। इस तरह ये तीनो हड्डियाँ एक दूसरे से मिली हुई है। अत जैसे ही कान की झिल्ली मे ध्वनि के कारण प्रकम्पन होता है इसका प्रभाव मुद्गर (Hammer) पर पडता है और तब उसके बाद ही इससे तीनों हड्डियाँ प्रभावित हो जाती है। इन हड्डियों मे कपन होने से आवाज लगभग तीस गुनी बढ जाती है। इस तरह वाह्य कर्ण जहाँ आवाज का ग्रहण करता है, मध्य कर्ण उसकी तीव्रता को बढा कर पर्याप्त रूप से उत्तेजित कर देता है। मध्य कर्ण की दूसरी सीमा पर दो तरह

की खिडकियाँ हे, जिन्हे लबगोल्खिर या अडाकार खिडकी (Oval window) तथा गोल खिडकी (Round window) कहते है। इन खिडकियों से ही अन्त कर्ण शुरू होता है। रकाब (Stirrup) अडाकार खिडकी से लगा है। इसलिए मध्य कर्ण मे आया ध्वनि कपन रकाब के सहारे अडाकार खिडकी तक पहुच कर फिर अन्त कर्ण मे चला जाता है। मुग्दर (Hammer) मे मिला हुआ कुछ मासपशियो का एक समूह है जिसे मध्य कर्ण प्रसारकपशी (Tensor Tympani) कहते है। ये मासपशियाँ मुद्गर के कम्पन को नियत्रित करती है। बहुत सी ध्वनि तरग (Sound waves) अत्यधिक तीव्र होने के कारण कान की झिल्ली को इतना प्रकम्पित कर देती है कि इसमे क्षति की सभावना हो जाती है। ऐसी स्थिति मे यह मासपशी (Tensor tympani) मुद्गर (Hammer) को इस तरह कस देती है कि झिल्ली मे अधिक कम्पन नही हो पाता। इस प्रकार तीव्र ध्वनि-तरगो से कान की झिल्ली बर्बाद होने से बच जाती है।

मध्य कर्ण का दूसरा भाग कण्ठकर्ण-नली (Eustachion tube) है। यह नली मध्य कर्ण से प्रारभ होकर कण्ठ कोष्ठ (Cavity of the throat) तक जाती है। इसके अन्दर सदा हवा भरी रहती है। इस नली की हवा से कान की झिल्ली को अन्दर से एक सहारा मिलता है और इससे भी बाहर की तीव्र ध्वनि तरग झिल्ली को अन्दर की ओर अधिक नही दबा पाती। इस तरह कान की कोमल झिल्ली की रक्षा तीन तरह से होती है—

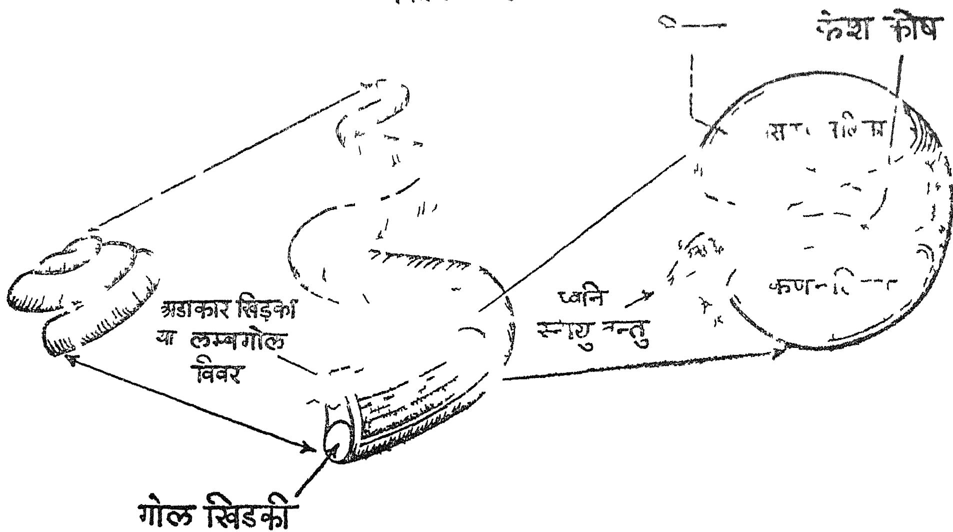
(क) कान की नली वक्र होने के कारण। (ख) मध्य कर्ण की प्रसारक मासपशी (Tensor Tympani) के कारण और (ग) कण्ठ कर्ण नली के कारण।

(३) अन्त कर्ण (Inner ear) —अन्त कर्ण कनपट्टी की हड्डी के अन्दर अवस्थित है। कान का यही भाग ध्वनि को ग्रहण करने का कार्य करता है। इसकी रचना कुछ जटिल है। सुविधा के लिए इसे दो भागों मे बाँट कर समझा जा सकता है, वे है- अर्द्ध चक्र नली (Semi Circular Canal) और शख या कोक्लिया (Cochlea)। अर्द्ध चक्र नली का कार्य श्रवण-सवेदना मे कोई महत्त्वपूर्ण नही है। लेकिन, सुनते समय शरीर के विभिन्न अगों का सतुलन आवश्यक है। अर्द्ध चक्र नली ही शरीर का यह सतुलन बनाए रखती है। यह नली जलद्रव से भरी रहती है। इस जलद्रव मे किसी प्रकार की गति उत्पन्न करने पर हमारा शारीरिक सतुलन अधिकाश नष्ट हो जाता है। नाचने पर हम लोगों को चक्कर मालूम होता है, इसका कारण जलद्रव की गति ही है।

शख या कोक्लिया अन्त कर्ण का सबसे महत्त्वपूर्ण अग है जिसके अन्दर श्रवण-सवेदना के वास्तविक ग्राहक है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, यह शख की तरह है जिसके अन्दर ढाई लपटे (Folds) होती है। इसका जड चौडा और सिरा पतला होता है। सीधा कर देने पर यह निम्नाकित प्रकार का हो जाता है (पृष्ठ ८९ की चित्र स० १६ देखें)।

शख के अन्दर तीन नलिकाए है—(१) वास कर्ण नलिका (Vestibular Canal), (२) कर्ण नलिका (Tympanic canal) तथा (३) शख नलिका (Cochlear Canal)। इन तीनो मे एक विशेष प्रकार का जलद्रव भरा रहता है जिसे शख द्रव या पेरीलिम्फ (Perilymph) कहते है। पृष्ठ १, की चित्र स० १६ से स्पष्ट है कि वासकर्ण नलिका अडाकार खिडकी (Oval window) से शुरू होती है। अडाकार खिडकी एक सवेदनशील

चित्र संख्या १६



शंख का चित्र

झिल्ली मात्र है। ध्वनि तरंग इसी झिल्ली से बासकर्णनलिका (Vestibular Canal) मे प्रवेश करती है। ये तरंगे पुन कर्ण नलिका (Tympanic canal) में वापिस आती है। कर्ण नलिका का अंतिम छोर गोल खिड़की (Round window) में लगा है। गोल खिडकी भी एक पतली झिल्ली है। कर्ण नलिका के द्वारा तरंगो के वापस आने से गोल खिडकी बाहर की ओर उभड आती है। इन दो नलिकाओ के बीच दो पतली झिल्लियां होती है। इन झिल्लियो से एक तीसरी नलिका (Canal) का निर्माण हो जाता है जिसे शंख नलिका (Cochlear canal) कहते है। इसी नलिका में श्रवण संवेदना के ग्राहक कोष रहते है।

शंख नलिका को जो झिल्ली बासकर्ण नलिका (Vestibular canal) से अलग करती है उसे रिजनर पत्र (Reissener's membrane) कहते हैं। इसी तरह जो झिल्ली शंख नलिका को कर्ण नलिका (Tympanic Canal) से अलग करती उसे तलपत्र (Basilar membrane) कहते है।

इस तलपत्र के ऊपर शंख नलिका (Cochlear Canal) की ओर शंख का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है जिसे कोर्टेन्द्रिय (Organ of Corti) कहते हैं। यह कोर्टेन्द्रिय सम्पूर्ण तलपत्र पर फैली हुई है। जैसा कि पहले व्यक्त किया जा चुका है, शंख मूल में चौडा और ऊपर की ओर पतला होता गया है, अत तलपत्र भी मूल में चौड़ा और सिरे की ओर पतला है। इसलिये कोर्टेन्द्रिय भी मूल मे चौडी और ऊपर की ओर पतली है। इसमे बहुत केश कोष (Hair cell) है जिनके छोटे छोटे बाल शंख नलिका (Cochlear Canal) के द्रव मे सेवार की तरह फैले हुए है। ये ही केशकोष श्रवण संवेदना के वास्तविक ग्राहक है। जब रकाब (Stirrup) हड्डी के कंपन से बास कर्ण नलिका (Vestibular Canal) के द्रव में उद्वेग उत्पन्न होता है तो उसके फलस्वरूप कर्ण नलिका

(Tympanic canal) के द्रव मे भी गति आ जाती है। तत्पश्चात् तलपत्र (Basilar membrane) प्रकम्पित हो केशकोषों को प्रकम्पित कर देता है।

केश कोष म उत्तेजना के कारण स्नायु प्रवाह (Nerve impulse) उत्पन्न हो जाता है। इन केश कोषा के समीप ही स्नायु कोष (Neurons) के शिखातंतु (Dendrites) रहते है। इनके द्वारा सभी तंतु प्रवाह गग्रहीत होकर श्रवण स्नायु (Auditory nerves) के सहारे कान से बाहर निकलते है। पुन ये प्रवाह थेलेमस (Thalamus) से होते मस्तिष्क के श्रवण-क्षेत्र म पहुचते है। तत्पश्चात् हमे श्रवण-संवेदना होती है।

श्रवण संवेदना की पूरी गतिविधि और कान की कार्यवाही को यहाँ सक्षेप मे व्यक्त करना अच्छा होगा। सबसे पहले ध्वनि-तरंग (Sound wave) कर्णनली (Meatus) के द्वारा चलकर कर्णढोल (Ear drum) से टकराती है। इससे कर्णढोल प्रकपित हो जाता है। कर्णढोल से सटे मुद्गर (Hammer), निहाई (Anvil) तथा रकाब (Stirrup) तीन हड्डियाँ है। कर्णढोल के प्रकपित होने से ये तीनो हड्डियाँ भी आगे पीछे होने लगती है। ध्वनि की तीव्रता इससे बढ जाती है। रकाब अडाकार खिडकी (Oval window) से लगा है। अत रकाब की गति के कारण अडाकार खिडकी की झिल्ली भी प्रकपित होने लगती है जिससे शङ्ख (Cochlea) की विभिन्न नलिकाओ के द्रव मे गति उत्पन्न होती है। इस गति से तलपत्र (Basilar membrane) प्रकपित हो जाता है जिसके फलस्वरूप कार्टेन्द्रिय में हलचल हो जाती है। इस हलचल से इसके केशकोष उत्तेजित हो स्नायु प्रवाह उत्पन्न करते है। यही स्नायु प्रवाह श्रवण स्नायु के द्वारा मस्तिष्क के निश्चित भाग शखीय खण्ड (Temporal lobe) में पहुँचता है जिससे श्रवण संवेदना होती है।

श्रवण-संवेदना की उत्तेजना

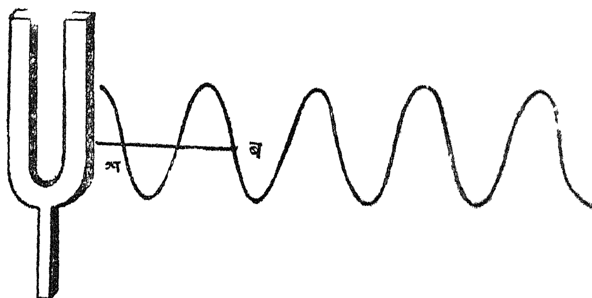
(Stimulus for auditory sensation)

श्रवण-संवेदना की समुचित उत्तेजना ध्वनि-तरंगे (Sound waves) है। ध्वनि का आविर्भाव प्रकम्पनशील (Vibrating) पदार्थो से होता है। बहुत सी ऐसी वस्तुएँ है जिनमें यदि कुछ शक्ति लगाई जाय तो कम्पन (Vibration) पैदा हो जाता है जो कुछ समय तक चलता रहता है। उदाहरणार्थ, साफ तने हुए सूत या सितार के तार को उँगली से खींचें तो पायेंगे कि वह सूत या तार उँगली हटा लेने के बाद भी प्रकपित होता रहता है। जब वस्तु इस तरह प्रकपित होती है तो इसका असर उसके चारों ओर (की हवा, पानी, आदि) के कणो (Particles) पर भी पडता है और वे भी उसी प्रकार प्रकपित होने लगते है। इस प्रकार हवा की तरङ्गों के सहारे कम्पन एक स्थान से दूसरे स्थान तक चला जाता है। यह प्रकपक गति (Vibratory Motion) ही श्रवण संवेदना की समुचित उत्तेजना है। यह एक यांत्रिक शक्ति (Mechanical energy) है। जब कोई बोलता है तो हवा मे एक प्रकपन (Vibration) आ जाता है जिसे हमारे कान ग्रहण करते है और फलस्वरूप हम उसकी बोली को सुनते है। यह कपन जितना ही जोरों का या तीव्र होगा, आवाज भी उतनी ही अधिक होगी और फलत अधिक दूर तक जायगी। यद्यपि आवाज को एक जगह से दूसरी जगह तक पहुँचाने का बहुत ही सामान्य और सर्वविदित माध्यम (Medium)

हवा है, तथापि पानी, लोहा, गैस आदि कुछ अन्य माध्यमों के द्वारा भी ध्वनि प्रेषित होती है। आवाज की गति (Speed) माध्यम पर निर्भर करती है। पता चला है कि हवा में आवाज की गति ११२० फीट प्रति सेकण्ड है या पाँच सेकण्ड में लगभग एक मील तक हवा के सहारे आवाज जाती है, लेकिन पानी में इसकी गति प्रति सेकण्ड एक मील और लोहा में प्रति सेकण्ड पाँच मील है। माध्यम कुछ भी हो, हवा की अनुपस्थिति में आवाज का एक जगह से दूसरी जगह पहुँचना असभव है। इसे एक साधारण प्रयोग द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। एक शीशा की सुराही में घंटी को रखकर बजाएँ तो उसकी आवाज उसी समय तक सुनाई देगी जब तक कि उसमें हवा है। यदि किसी यत्र से सुराही की पूरी हवा निकाल ली जाए तो हमें घंटी की आवाज सुनाई नहीं पड़ेगी।

ऊपर हम देख चुके हैं कि जिस चीज से आवाज उत्पन्न होती है वह प्रकम्पित होता है या उसके कणों (Particles) में फैलने तथा सिकुड़ने की क्रिया होती रहती है। इस क्रिया को स्वर द्विशूल (Tuning fork) के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। द्विशूल में जब ठोकर मारी जाती है तो उसके काँटे फैलने और सिकुड़ने लगते हैं जिससे वायु तरंग की ध्वनि तरङ्गे निकलती है, जैसा कि नीचे के चित्र में दिखलाया गया है। यही ध्वनि तरङ्ग हमारे कान के ग्राहकों को प्रकम्पित करती है। स्वर द्विशूल की गति का सरल अनुरूपक गति (Simple harmonic motion) कहते हैं। इसे अनुरूपक इसलिए कहते हैं चूँकि किसी वस्तु से ठोकर मारने पर द्विशूल द्वारा उत्पन्न सभी ध्वनि-तरंगे एक दूसरे के अनुरूप होती हैं। यानी, प्रत्येक तरग जितना नीचे जाती है उतना ही ऊपर आती है। अनुरूपक गति का एक प्रसिद्ध उदाहरण दोलक (Pendulum) की गति है। किसी दोलक को यदि हिला दिया जाय तो वह केन्द्र की दोनों ओर बराबर दूरी की यात्रा करता रहेगा।

चित्र संख्या १७



द्विशूल और ध्वनि तरग का चित्र

ध्वनि तरग (Sound waves) के सम्बन्ध में दो एक नामों का परिचय आवश्यक है। केन्द्र छोडकर दोनों ओर की यात्रा करने के पश्चात् जब दोलक फिर अपने मौलिक स्थान पर आ जाता है तो हम कहते हैं कि इसने एक चक्र (Cycle) बनाया। इस तरह ऊपर के चित्र में अ से ब तक के वक्र को एक चक्र कहेंगे। एक चक्र तक आवाज को जाने में जितना समय लगता है उसे चक्र सत्ताकाल (Duration of cycle) कहते हैं। एक सेकण्ड में कितने चक्र (Cycles) बनेंगे यह विभिन्न द्विशूलों (Tuning forks) की क्षमता पर निर्भर करता है। एक सेकण्ड में बननेवाले चक्रों की संख्या को चक्र बारम्बारता

(Frequency of cycles) कहते हैं जिसके लिए एक खास संकेत (~) प्रयोग किया जाता है। इसे द्विप्रकम्पन (Double Vibration) कहते हैं। यद्यपि धीरे धीरे द्विशूल का कम्पन घटते जाता है फिर भी एक चक्र पूरा होने में समय उतना ही लगता है। ध्वनि-तरंगें कितनी ऊँची नीची होंगी, यह प्रकम्पित करनेवाली उत्तेजना की तीव्रता पर निर्भर करता है। किसी स्वर से बननेवाली ध्वनितरंगों को आसिलाग्राफ (Oscillograph) के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

ध्वनि तरंगों की विशेषतायें

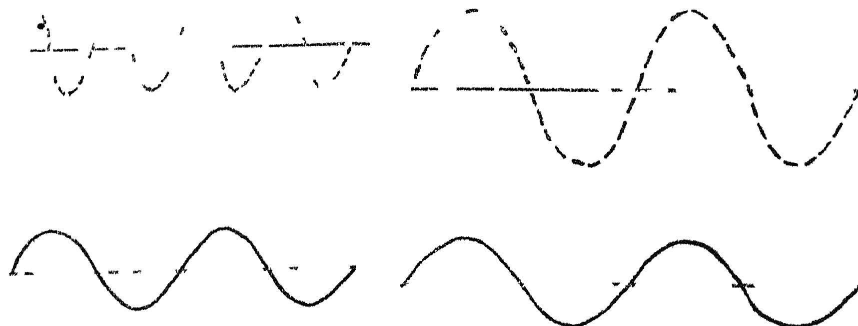
(Characteristics of sound waves)

प्रकाश तरंगों की तरह ध्वनि तरंगों की भी तीन विशेषतायें हैं—(१) बारम्बारता (Frequency) (२) ऊँचाई (Amplitude) तथा (३) अवस्था (Phase)। किसी भी ध्वनि-तरंग में उपर्युक्त तीनों विशेषतायें रहती हैं।

(१) बारम्बारता (Frequency) —प्रति सेकण्ड जितने ध्वनि-चक्र (Cycles) बनते हैं उन्हें ध्वनि तरंग की बारम्बारता कहते हैं। यह बारम्बारता ध्वनि तरंग की लम्बाई पर निर्भर करती है। ध्वनि तरंग की लम्बाई वह दूरी है जो एक चक्र में लगती है। यदि ध्वनि तरंग की लम्बाई कम होगी तो स्वाभाविक रूप से प्रति सेकण्ड चक्र सख्या अधिक होगी। इसी तरह तरंग की लम्बाई अधिक रहने पर चक्र सख्या या चक्रों की बारम्बारता कम होगी। इस तरह तरंग की लम्बाई और बारम्बारता में विपरीत समानुपातिक (Inversely proportional) सम्बन्ध है। नीचे की चित्र सख्या १८ (क) में स्पष्ट है कि दोनों तरंग की ऊँचाई एक रहने पर भी दोनों की लम्बाई में अन्तर है। टूटी रेखा से बनी ध्वनि तरंगों में प्रत्येक तरंग की लम्बाई ठीक रेखा की अपेक्षा कम है। इसी से एक निश्चित समय में टूटी रेखा के द्वारा अधिक तरंगें बनी हैं।

(२) ऊँचाई (Amplitude) —ध्वनि तरंग की ऊँचाई का अर्थ उस दूरी से है जितना कोई कम्पन (Vibration) आधार से ऊपर या नीचे जाता है। ध्वनि-तरंगों की ऊँचाई बहुत ही कम होती है। आवाज की तीव्रता (Intensity) मुख्यत ध्वनि तरंग की

चित्र-सख्या १८ (क) चित्र सख्या १८ (ख)

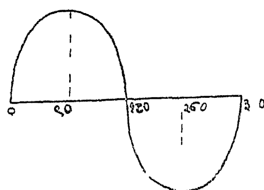


ऊँचाई पर निर्भर करती है। लेकिन, बहुत तीव्र आवाज में भी ध्वनि-तरंग की ऊँचाई एक

इंच का दस हजारवाँ भाग ही होती है। पृष्ठ ८९ के चित्र नं० १८ के "ख" में दोनों तरंग लम्बाई तथा अवस्था मे एक दूसरे के समान है। परन्तु, दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं और यह भिन्नता ऊँचाई के कारण है। बिन्दुरेखा (Dotted line) से बनी तरंगों की ऊँचाई बद्धरेखासे बनी तरंगों की अपेक्षा अधिक है।

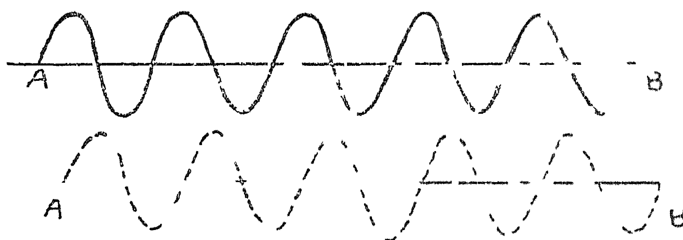
(३) अवस्था (Phase) — ध्वनि तरंग की अवस्था ... (Pendulum) के सहारे आसानी से समझा जा सकता है। कोई दोलक अपनी स्थिर अवस्था में 0° पर रहता है। परन्तु जब किसी उत्तेजना के प्रभाव से हिलने लगता है तो ... ९० तक जाता है। दोनों ओर ... गति का ... ऊपर और नीचे दिखलाया जाता है। ... ध्वनि तरंग की विभिन्न स्थितियों को अंशों (Degree) में ... जा सकता है। इन विभिन्न स्थितियों ... ध्वनि तरंग की अवस्थायें (Phase) कहा जाता है। चित्र १९ 'क' में एक ... की विभिन्न अवस्थायें दिखलाई गई हैं।

चित्र संख्या १९ (क)



जब एक तरंग दूसरी तरंग के कुछ देर बाद शुरू होती है तो उन दोनों में अवस्था का अन्तर पड जाता है। यह चित्र १९ (ख) मे दिखलाया गया है।

चित्र संख्या १९ (ख)



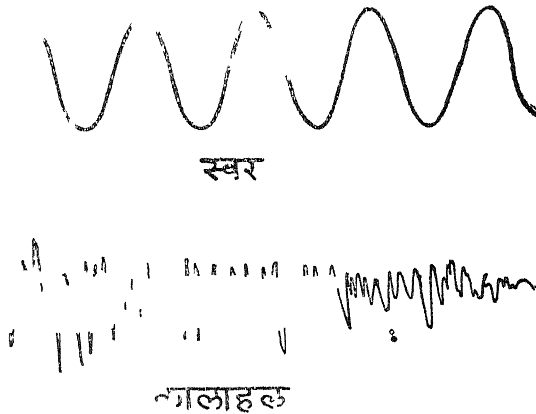
ध्वनि तरंग की इन विशेषताओं को एक उदाहरण द्वारा और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता है। एक छोटा और एक बड़ा द्विशूल (Tuning fork) ले। यदि दोनों द्विशूलों को बराबर शक्ति से उत्तेजित करें तो भिन्नता के कारण छोटा द्विशूल अधिक प्रकम्पित होगा। ... चक्र-बारबारता बडे की अपेक्षा अधिक होगी। दोनों को बराबर शक्ति से उत्तेजित किया गया है। इसलिये दोनो द्विशूलों के काटे बराबर दूरी ... करेंगे। ... चक्रों की ऊँचाई (Amplitude) बराबर होगी। यदि दोनों को असमान शक्ति से प्रकम्पित किया जाता तो उस द्विशूल की चक्र ऊँचाई अधिक होती जिस पर अधिक शक्ति लगती। यदि दो समान (Identical) द्विशूलों को बराबर शक्ति से ... उत्तेजित किया जाय तो दोनों के चक्रों की बारबारता एवं ऊँचाई एक ही होगी ..., अवस्था मे भिन्नता होगी। यदि विभिन्न क्षमता के द्विशूलों को विभिन्न मात्रा की शक्तियों से प्रकम्पित किया जाय तो उनसे बननेवाले चक्रों की बारबारता, ऊचाई और अवस्था सभी एक दूसरे से भिन्न होंगी।

श्रवण संवेदना के व्यापार

(Phenomena of hearing)

ध्वनि तरग दो तरह की होती है—सामयिक (Periodic) और असामयिक। सामयिक तरगो का रूप एक समान होता है। लेकिन, असामयिक तरगो मे ठीक अवस्था नही होती और फलत उनका रूप एक सा नही होता। दोलक की गति से बनी तरगे सामयिक है, जब कि शोर या हल्ला आवाज से उत्पन्न तरगे असामयिक। सामयिक तरग दो तरह की होती है—सरल और विषम (Complex)। दोलक (Pendulum) की तरगे सरल है परन्तु, बाँसुरी की ध्वनि से बनी तरगे विषम कही जायेगी। विषम तरगों के सम्बन्ध में आगे विशद रूप से श्रवण सबन्धी क्रियाओ या व्यापारों की चर्चा करते समय विचार किया जायगा। ये व्यापार स्वर (Tone) से सम्बन्धित है। इसलिये यहाँ हम ध्वनि या आवाज का प्रयोग न कर उसकी जगह स्वर का ही प्रयोग करेगे। स्वर सामयिक तरगों से बनते है। नीचे स्वर और कोलाहल की तरगो का चित्र है।

चित्र-सख्या २०



स्वर और कोलाहल की तरगों का चित्र

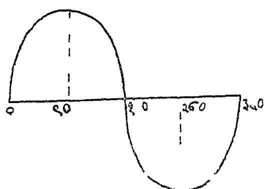
स्वर-मान (Pitch)

प्रत्येक स्वर का एक विशेष स्वरमान (Pitch) होता है। स्वरमान ध्वनि की ऊचाई को कहते है। यह काफी अशों म ध्वनि-तरगों की बारबारता (Frequency) पर निर्भर करता हे। जिस तरग की बारबारता कम होती है उसका स्वरमान भी कम होता है। किन्तु, ध्वनि बारबारता और स्वरमान के बीच पूर्ण अनुरूपता (Correspondence) नही पायी जाती। ध्वनि तरगो की तीव्रता (Intensity or amplitude) का प्रभाव भी स्वरमान पर पडता है। देखा गया है कि बारबारता को कम कर देने से स्वरमान मे कमी आती है। परन्तु, यदि इस अवस्था मे तीव्रता बढा दी जाय तो स्वरमान पुन ज्यो का त्यो हो जाता है, उसम कमी नही आती। पृष्ठ ९२ की चित्र सख्या—२१ से यह और स्पष्ट हो जायगा।

इँच का दस हजारवाँ भाग ही होती है। पृष्ठ ८९ के चित्र नं० १८ के "ख" में दोनों तरंग लम्बाई तथा अवस्था मे एक दूसरे के समान है। परन्तु, दोनो एक दूसरे से भिन्न हैं और यह भिन्नता ऊँचाई के कारण है। बिन्दुरेखा (Dotted line) से बनी तरंगों की ऊँचाई बड़ुरेखासे बनी तरंगो की अपेक्षा अधिक है।

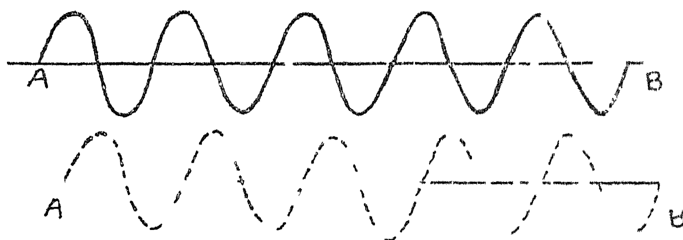
(३) अवस्था (Phase) — ध्वनि तरंग की अवस्था को लंगर (Pendulum) के सहारे आसानी से समझा जा सकता है। कोई दोलक अपनी स्थिर अवस्था में (०) पर रहता है। परन्तु जब किसी उत्तेजना के प्रभाव से हिलने लगता है तो वह ... ९०° तक जाता है। दोनों ओर की गति को ध्वनि तरंग में ऊपर और नीचे दिखलाया जाता है। ध्वनि तरंग की विभिन्न स्थितियों को अंश (Degree) कहा जाता है। इन विभिन्न स्थितियों और ... को ध्वनि तरंग की अवस्थाएँ (Phase) कहा जाता है। चित्र १९ 'क' मे एक ध्वनिचक्र की विभिन्न अवस्थाएँ दिखलाई गई है।

चित्र संख्या १९ (क)



जब एक तरंग दूसरी तरंग के कुछ देर बाद शुरू होती है तो उन दोनों में अवस्था का अन्तर पड जाता है। यह चित्र १९ (ख) मे दिखलाया गया है।

चित्र संख्या १९ (ख)



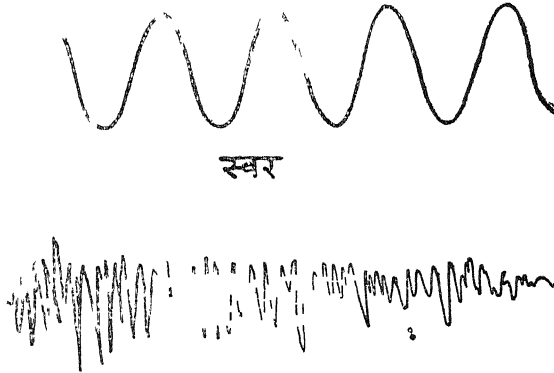
ध्वनि तरंग की इन विशेषताओं को एक उदाहरण द्वारा और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता है। एक छोटा और एक बड़ा द्विशूल (Tuning fork) ले। यदि दोनों द्विशूलों को बराबर शक्ति से उत्तेजित करें तो भिन्नता के कारण छोटा द्विशूल अधिक प्रकम्पित होगा। अभिप्राय यह कि छोटे द्विशूल की बारबारता बडे की अपेक्षा अधिक होगी। दोनों को बराबर शक्ति से उत्तेजित किया गया है। इसलिये दोनों द्विशूलों के काँटे बराबर दूरी तक जायँगे। अतः ध्वनिचक्रों की ऊँचाई (Amplitude) बराबर होगी। यदि दोनों को असमान शक्तियों से प्रकम्पित किया जाता तो उस द्विशूल की चक्र ऊँचाई अधिक होती जिस पर अधिक शक्ति लगती। यदि दो समान (Identical) द्विशूलों को बराबर शक्ति से ... में उत्तेजित किया जाय तो दोनों के चक्रों की बारबारता एवं ऊँचाई एक ही होगी किन्तु, अवस्था मे भिन्नता होगी। यदि विभिन्न क्षमता के द्विशूलों को विभिन्न मात्रा की शक्तियों से प्रकम्पित किया जाय तो उनसे बननेवाले चक्रों की बारबारता, ऊँचाई और अवस्था सभी एक दूसरे से भिन्न होंगी।

श्रवण संवेदना के व्यापार

(Phenomena of hearing)

ध्वनि तरंगे दो तरह की होती हैं—सामयिक (Periodic) और असामयिक। सामयिक तरंगों का रूप एक समान होता है। लेकिन, असामयिक तरंगों मे ठीक अवस्था नही होती और फलत उनका रूप एक सा नही होता। दोलक की गति से बनी तरंगे सामयिक है, जब कि शोर या हल्ला गुल्ला इत्यादि से उत्पन्न तरंगे असामयिक। सामयिक तरंग दो तरह की होती है—सरल और विषम (Complex)। दोलक (Pendulum) की तरंगे सरल है परन्तु, बाँसुरी की ध्वनि से बनी तरंगे विषम कही जायेंगी। विषम तरंगों के सम्बन्ध में आगे विशद रूप से श्रवण सम्बन्धी क्रियाओं या व्यापारों की चर्चा करते समय विचार किया जायगा। ये व्यापार स्वर (Tone) से सम्बन्धित है। इसलिये यहाँ हम ध्वनि या आवाज का प्रयोग न कर उसकी जगह स्वर का ही प्रयोग करेंगे। स्वर सामयिक तरंगों से बनते हैं। नीचे स्वर और कोलाहल की तरंगो का चित्र है।

चित्र-संख्या २०



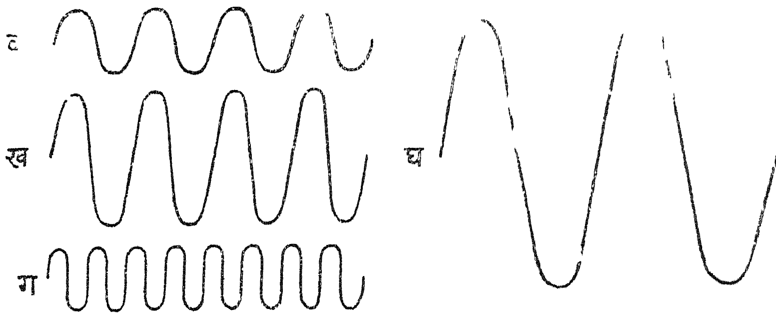
कोलाहल

स्वर और कोलाहल की तरंगों का चित्र

स्वर-मान (Pitch)

प्रत्येक स्वर का एक विशेष स्वरमान (Pitch) होता है। स्वरमान ध्वनि की ऊंचाई को कहते हैं। यह काफी अंशों मे ध्वनि-तरंगों की बारबारता (Frequency) पर निर्भर करता है। जिस तरंग की बारबारता कम होती है उसका स्वरमान भी कम होता है। किन्तु, ध्वनि बारबारता और स्वरमान के बीच पूर्ण अनुरूपता (Correspondence) नही पायी जाती। ध्वनि तरंगो की तीव्रता (Intensity or amplitude) का प्रभाव भी स्वरमान पर पड़ता है। देखा गया है कि बारबारता को कम कर देने से स्वरमान मे कमी आती है। परन्तु, यदि इस अवस्था मे तीव्रता बढा दी जाय तो स्वरमान पुन ज्यों का त्यों हो जाता है, उनमें कमी नही आती। पृष्ठ ९२ की चित्र संख्या—२१ से यह और स्पष्ट हो जायगा।

चित्र सख्या २१



ध्वनि बारबारता और स्वरमान के बीच अनुरूपता का चित्र

क और ख दोनों तरगों की बारबारता एक ही है फिर भी ख की तरगो मे उत्पन्न होनेवाले स्वर का स्वरमान क तरगो के स्वरमान से अधिक होगा, क्योंकि ख की तीव्रता अधिक है। ग तरगों की बारबारता क की अपेक्षा बहुत अधिक है, इसलिये उसका स्वरमान क से बहुत अधिक होगा। घ तरगो की बारबारता ख की बारबारता से आधी है, किन्तु तीव्रता दूनी है। इसलिये ख ओर घ इन दोनो तरगो के स्वरमान (Pitch) प्राय समान ही होगे। लेकिन स्वर की तरग बारबारता अधिक रहने पर ही तीव्रता (Intensity) का प्रभाव स्वरमान पर पडता है, कम बारबारता के स्वर के स्वरमान को तरगों की तीव्रता नही बढा सकती।

स्वर की तीव्रता (Loudness)

स्वर की तीव्रता का सबन्ध तरगों की लम्बाई (Amplitude) से है। तीव्र उत्तेजना से कान को उत्तेजित करनेवाली शक्ति की मात्रा बहुत बढ जाती है और परिणाम स्वरूप हमे जोर की आवाज की सवेदना होती है। यदि द्विशूल को जोर से ठोकर मारा जाय तो वह बहुत जोरों से प्रकपित होने लगेगा और फलत हम तीव्र ध्वनि की सवेदना होगी।

किन्तु, यहाँ भी स्वरमान (Pitch) की भाँति स्वर तीव्रता और तरगों की लबाई के बीच पूर्ण अनुरूपता (Correspondence) नही पायी जाती, बल्कि ध्वनि तीव्रता (Loudness) पर तरगो की बारबारता (Frequency) का भी प्रभाव देखने मे आता है। यदि ध्वनि-शक्ति को निश्चित रख कर बारबारता को घटाया या बढाया जाय तो इस घटने और बढने के साथ स्वर की तीव्रता (Loudness) भी घटती और बढती जाती है। प्रयोग से पता चलता है कि कान को उत्तेजित करने के लिये ध्वनि तरगो को कुछ खास मात्रा म तीव्र होना आवश्यक है। स्वर की शक्ति (Energy) या तीव्रता को मापने की इकाई घटी (Bell) है। कोइ स्वर तभी हमे सुनाइ पडता है जब उसकी तीव्रता कम से कम एक घण्टी का दसवाँ भाग (Decibell) हो।

स्वर की विषमता (Complexity)

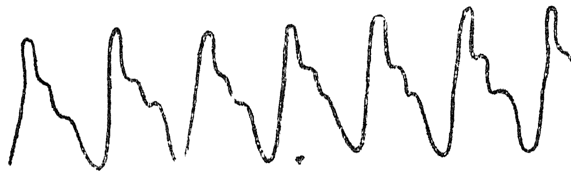
पहले लिखा जा चुका है कि स्वर द्विशूलों (Tuning forks) की क्षमताएँ अलग अलग होती हैं जिसके कारण एक ही उत्तेजना से विभिन्न बारबारता की तरगे उत्पन्न होती हैं। यदि दो असमान द्विशूलो को एक ही समय प्रकम्पित किया जाय तो दोनों की

तरगे मिल कर एक मिश्रित तरग उत्पन्न करेगी। मान ले, एक द्विशूल एक सेकण्ड मे ५१२ और दूसरा एक सेकण्ड मे २५६ तरग बनाते है। अब, यदि इन दोनो को एक साथ उत्तेजित किया जाय तो इन द्विशूलो से अलग अलग कोई स्वर उत्पन्न नही होगा, बल्कि दोनो मिल कर एक तीसरे स्वर को उत्पन्न करेगे। यह स्वर ऐसा होगा जिसका स्वरमान (Pitch) ५१२ और २५६ के बीच होगा। यद्यपि, ये दोनों स्वर मिल जाते है, फिर भी कैथोड रे ओसिलोस्कोप (Cothod ray Oscilloscope) की सहायता से उन दोनों को अलग अलग किया जा सकता है जिससे दो स्वरमान (Pitches) की अनुभूति होगी। इस तरह, किसी भी मिश्रित तथा विषम ध्वनि तरग मे विभिन्न बारबारता (Frequency), ऊँचाई (Height) तथा अवस्था (Phase) की सरल अनुरूपक गतियो (Simple harmonic motion) का सयोग पाया जाता है। इन विभिन्न सरल तरगों की बारबारता मे १ २ ३ ४—आदि का एक सख्यात्मक अनुपात (Ratio) रहता है। इनमे जिस तरग की बारबारता सबसे कम रहती है उसे मौलिक (Fundamental) तरग कहते है। उस तरग से अधिक बारबारता की तरगो को जो उस मिश्रित स्वर मे सम्मिलित रहती है, अतिस्वर (Over tone) अथवा अपूर्ण स्वर (Partial tone) कहते है। अभ्यास के बाद कोई भी व्यक्ति दिए हुये स्वर के मौलिक (Fundmental) एव अति स्वरो (Over tones) को अच्छी तरह समझ लेता है। प्रत्येक स्वर मे केवल एक मौलिक स्वर होता है और अन्य अति स्वर। मौलिक और विभिन्न अति स्वरो के बीच एक खास तरह का सम्बन्ध रहता है जिसके आधार पर एक नियम बनाया गया है। इस नियम को फूरियर-नियम (Fourier's Law) कहते है। स्वर की पूरी शक्ति का अधिक भाग मौलिक स्वर मे ही व्यय होता है। यही कारण है कि अति स्वरों की ध्वनि-तीव्रता (Loudness) घटती जाती है।

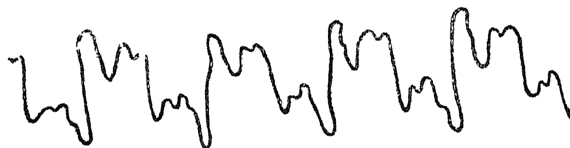
स्वर-विशेषत्व (Timbre)

हर तरह के स्वर की अपनी एक खास विशेषता होती है। विभिन्न, वाद्ययन्त्रों के स्वर विभिन्न तरह के होते है। इसका कारण यह है कि उनसे निकले अति स्वरो

चित्र-सख्या २२



बाँसुरी



क्लारनेट

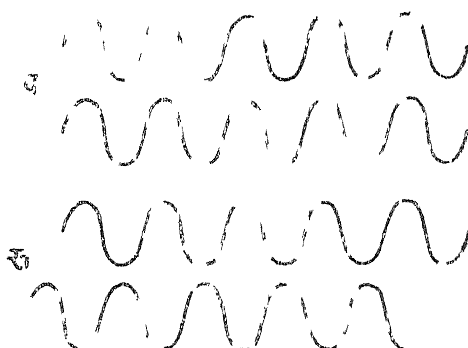
बाँसुरी और क्लारनेट की स्वर तरगों का चित्र

(Over tones) का अनुपात एक ही तरह का नहीं रहता। इस तरह स्वर [illegible] के सम्बन्ध मे हम कह सकते हैं कि यह [illegible] विशेषता है जिसके द्वारा [illegible] को पहचान पाते है। [illegible] यह जान पाते हैं कि [illegible] स्वर बाँसुरी, [illegible] या सारंगी का है। उदाहरणार्थ बाँसुरी और [illegible] की स्वरतरंग [illegible]।

स्वरकम्प (Beat)

यदि दो समसमर्थ द्विशूलों को एक साथ उत्तेजित करें तो उनसे उत्पन्न होने वाली ध्वनि तरंगों के बीच स्वर (Tone) का [illegible]। यदि दोनों को [illegible] समान रूप से प्रकम्पित किया जाय तो दोनों की तरंगों में अवस्था (Phase) का अन्तर होगा और वह अन्तर हमेशा एक ही तरह का [illegible]।

चित्र संख्या ४३



ऊपर के दोनों चित्रों मे दो द्विशूलों की तरंग बारम्बारता बराबर है, लेकिन 'क' में दोनों एक साथ प्रकम्पित हुए हैं और 'ख' मे बारी बारी से। यही कारण है कि 'ख' की तरंगों मे अवस्था का भेद बना हुआ है। यदि दो या अधिक समान द्विशूल एक ही अवस्था में प्रकम्पित हों तो उत्पन्न होने वाला स्वर वही रहेगा जो उनका मौलिक स्वर (Fundamental tone) है, किन्तु तीव्रता अधिक हो जायगी। यदि दोनों एक दूसरे के विपरीत अवस्था मे हैं तो स्वर वही रहेगा, किन्तु तीव्रता कम हो जायगी।

अवस्था (Phase) के कारण हुई ध्वनि-तीव्रता (Loudness) के इस सामयिक उतार चढाव (Periodic fluctuation) को ही स्वरकम्प कहते हैं। दो स्वरों (Tones) की बारम्बारता (Frequency) मे जितना अन्तर रहता है उतना ही स्वरकम्प (Beat) होता है। उदाहरणार्थ २५९ और २५७ बारम्बारता के दो स्वर यदि एक साथ निकलें तब भी अनुभूति एक ही स्वर की होगी, किन्तु उसमे प्रति सेकण्ड दो (२५७—२५९) स्वरकम्प (Beat) का अनुभव होगा। इसी प्रकार २५६ और २६४ के स्वरों मे भी स्वरानुभूति एक ही की होगी, लेकिन प्रति सेकेण्ड आठ स्वरकम्प (Beats) का अनुभव होगा। जब दो स्वरों की बारम्बारता मे प्रति सेकेण्ड कम से कम २८ [illegible] का अन्तर होता है तो दो स्वरों की अनुभूति होने लगती है और स्वरकम्प [illegible] समाप्त हो जाता है।

वियोजित स्वर (Difference tone)

जब दो स्वरों (Tone) के बीच लगभग ५० या उससे अधिक चक्र प्रति सेकेण्ड का अन्तर हो तो दोनों स्वर निश्चित रूप से अलग-अलग सुनाई पड़ते हैं। साथ ही, एक तीसरा स्वर भी सुनने में आता है, जिसका स्वरमान (Pitch) दोनों मौलिक स्वरों के अन्तर के बराबर होता है। यदि दो द्विशूलों की कम्पन-गति क्रमशः २९० और ३८० हो तो हमें तीन स्वरमानों की अनुभूति होगी—पहला २९० का, दूसरा ३८० का और तीसरा ९० का। इस तीसरे स्वरमान को वियोजित स्वर (Difference Tone) कहते हैं जिसका कोई मौलिक आधार नहीं होता। यह पूर्णतः वैयक्तिक और आत्मगत अनुभूति होती है।

यदि बारबारता (Frequency) का भेद बहुत अधिक हो (यथा ७०० और १२००) तो ऐसी परिस्थिति में दो मौलिक स्वर और तीसरा वियोजित स्वर ही सुनाई नहीं देगा, बल्कि एक चौथा स्वर भी सुनने में आएगा जिसका स्वरमान दोनों मौलिक स्वरों के योगफल के बराबर (१९००) होगा। इस चौथे स्वर को मिश्र स्वर (Combination tone) कहते हैं। इस तरह इस स्थिति में केवल दो मौलिक स्वरों से चार स्वरमानों (Pitch) की अनुभूति होती है।

आच्छादन ([illegible])

एक धीमे और एक तीव्र स्वर से एक साथ यदि किसी व्यक्ति के एक कान को उत्तेजित किया जाय तो वह धीमे स्वर को नहीं सुनेगा, उसे केवल तीव्र स्वर सुनाई पड़ेगा। सुनने की इस क्रिया को आच्छादन (Masking) कहते हैं, जिसमें तीव्र स्वर मंद स्वर को आच्छादित कर लेता है। उदाहरणस्वरूप, रेडियो सुनते समय यह देखने में आता है कि स्टेशन ठीक से नहीं पकड़ने के कारण उस स्टेशन के करीब कुछ और भी मंद स्वर सुनाई पड़ता है। तीव्र स्वर के कारण व्यक्ति उसे नहीं सुन पाता और वह आच्छादित हो जाता है। किन्तु, जब दोनों स्वरों की तीव्रता में अन्तर कम रहता है तो एक स्वर दूसरे को ठीक से आच्छादित नहीं कर पाता। इसी तरह दोनों स्वरों की बारबारता (Frequency) में अन्तर अधिक रहने पर भी आच्छादन ठीक नहीं हो पाता। आच्छादन सबसे अधिक तब होता है जब दोनों स्वर प्रायः एक ही बारबारता के हों लेकिन उनमें एक स्वर दूसरे से बहुत अधिक तीव्र हो। अब प्रश्न होना स्वाभाविक है कि आच्छादन कान (Cochlea) के कारण होता है या मस्तिष्क के कारण? देखा गया है कि किसी एक स्वर से एक कान को और दूसरे स्वर से दूसरे कान को उत्तेजित करने पर भी आच्छादन हो जाता है। इससे ऐसा मालूम होता है कि आच्छादन पर मस्तिष्क का भी असर पड़ता है। लेकिन, यदि उन दो स्वरों से एक ही कान को उत्तेजित किया जाय तो आच्छादन का असर बहुत बढ़ जाता है। अतएव विद्वानों का दृष्टिकोण है कि आच्छादन प्रधानतः कान सम्बन्धी क्रियाओं के फलस्वरूप होता है।

[illegible] -सिद्धान्त

(Theory of hearing)

श्रवण संवेदना के विभिन्न व्यापारों की व्याख्या के लिये विद्वानों ने विभिन्न श्रवण-संवेदना सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इन सिद्धान्तों को मुख्यतः दो भागों में बाँट

सकते है—स्थान सिद्धान्त (Place theorie,) तथा बारबारता सिद्धान्त (Frequency theories)। यहाँ हम इन शीर्षकों के अन्तर्गत कुछ प्रमुख सिद्धान्तो की विवेचना करेंगे।

स्थान सिद्धान्त (Place theories)

सबसे पहले हेल्महोज ने स्थान सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इन्होंने श्रवण-सवेदना व्यापारो की व्याख्या तलपत्र (Basilar membrane) की रचना और उसकी कार्यवाही के आधार पर प्रस्तुत की है। तलपत्र की चर्चा शम्बूक (Cochlea) के सम्बन्ध मे की जा चुकी है और बतलाया जा चुका है कि यह एक झिल्ली है जो शम्बूक (Cochlea) की कर्णनलिका (Tympanic Canal) एवं शम्बूक नलिका (Cochlear canal) को अलग करती है। इस तरह यह दोनो के बीच सीमा का काम करती है।

तलपत्र के ततु जैसे जैसे आधार से शीर्ष की ओर बढ़ते हैं क्रम-क्रमसे उनकी लम्बाई बडी होती जाती है। शीर्ष के ततुओ की लम्बाई आधार के ततुओ की लम्बाई से लगभग तीन गुनी होती है। इसके अतिरिक्त आधार की ओर शीर्ष की अपेक्षा स्नायुकोषो (Neurons) की सख्या कम है। फलत तलपत्र के इस भाग पर शीर्ष की अपेक्षा दबाव कम रहता है। साथ ही, आधार की ओर तनाव (Tension) भी अन्य भागों से अधिक रहता है। इस रचनात्मक भेद (Structural difference) के कारण स्थान सिद्धान्त को माननेवाले विद्वानो का ऐसा विचार है कि तलपत्र के सभी स्थान के ततु सभी तरह की बारबारता (Frequency) की ध्वनि तरगो से प्रभावित नहीं होते बल्कि तलपत्र के खास स्थान के ततु कुछ निश्चित बारबारता की तरगो से ही प्रभावित होते है। इसके अनुसार तलपत्र का प्रत्येक स्थान एक खास तरह का स्वरमान (Pitch) उत्पन्न करता है। इसीलिए इसे स्थान सिद्धान्त कहते हैं। विद्वानों ने तलपत्र और उसके ततुओ की तुलना पियानो (Piano) और उसके तारो से की है। पियानो के तार भी विभिन्न लम्बाई के होते है और इसी कारण प्रत्येक तार एक विशेष स्वरमान उत्पन्न करता है। इसी को ध्यान मे रखते हुए कुछ विद्वानो ने इसे पियानो सिद्धान्त (Piano theory) के नाम से भी पुकारा है।

स्वर की तीव्रता के सम्बन्ध मे स्थान सिद्धान्त का कहना है कि यह इस बात पर निर्भर करता है कि तलपत्र का कितना हिस्सा उत्तेजित हुआ है। जिस ध्वनि तरग से तलपत्र का जितना अधिक हिस्सा उत्तेजित होता है उसमे उतनी ही तीव्र ध्वनि की सवेदना होती है। इस तरह, इस सिद्धान्त के अनुसार स्वर का स्वरमान (Pitch) तलपत्र के किसी भाग के अत्यधिक उत्तेजित होने पर निर्भर करता है और स्वर की तीव्रता (Loudness) तलपत्र के अधिक से अधिक हिस्से के उत्तेजित होने पर निर्भर करती है।

स्थान सिद्धान्त की आलोचना—इस सिद्धान्त में सबसे प्रधान दोष यह व्यक्त किया गया है कि तलपत्र का कोई ततु स्वतत्र रूप मे प्रकम्पित हो और दूसरा ततु निष्क्रिय रहे, ऐसा असभव है। सभी ततुओं के बीच घनिष्ठ रचनात्मक (Structural) सम्बन्ध है। इसलिए किसी खास आवाज या स्वर का प्रभाव किसी खास ततु तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि चारों ओर फैल जाता है। हेल्महोज ने इस तथ्य की उपेक्षा की थी, किन्तु ए० ए० ग्रे० (A A Gray) ने इस आपत्ति का उत्तर

सुन्दर रूप से दिया। इसका उत्तर देते हुए उसने यह व्यक्त किया कि किसी ध्वनि से प्रकम्पित तो बहुत से ततु होते है, लेकिन कुछ ततुओं मे दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रतिक्रिया होती है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते है कि कुछ ही ततु सर्वाधिक प्रकम्पित होते है। स्वरमान उन्ही ततुओ पर निर्भर करता है जो कि सर्वाधिक उत्तेजित होते है।

इसी के लगभग सन् १९१२ ई० मे स्नायविक कार्यवाही (Neural function) के सम्बन्ध मे 'पूर्ण या बिल्कुल नही' सिद्धान्त (All or none theory) का पता लगा। लूकस (Lucas) तथा एड्रीयन (Adrian) ने सिद्ध किया कि समुचित उत्तेजना पाकर स्नायुकोष अपनी पूरी शक्ति से क्रियाशील होते है। इस पर लोगों ने यह आपत्ति की कि यदि स्नायुकोष 'पूर्ण या बिल्कुल नही' के नियम पर काम करता है तो ततुओं के अधिक या कम प्रकम्पित होने का प्रश्न निरर्थक है। यदि कोई ततु प्रतिक्रिया करता है तो वह अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रतिक्रिया करता है, अन्यथा वह प्रतिक्रिया करता ही नही। इस सिद्धान्त को मानने वालो के लिए इस आलोचना का उत्तर देना कठिन था। लेकिन सन् १९१६ ई० के लगभग फोरबेस (Forbes) और ग्रेग (Gregg) ने यह पता लगाया कि उत्तेजना की तीव्रता के साथ साथ प्रतिक्रिया की बारबारता (Frequency) भी घटती बढती रहती है। दूसरे शब्दों में, किसी ततु को अधिक प्रकम्पित होने का तात्पर्य यह है कि प्रति क्षण उन ततुओं ने अधिक बार स्नायुप्रवाह बनाकर मस्तिष्क को भेजा, ऐसा नही कि कभी कम स्नायु प्रवाह भेजा और कभी अधिक। अत इस सिद्धान्त ने बतलाया कि स्वरमान (Pitch) का निर्णय उस स्थान के ततुओं के द्वारा होता है जो उपस्थित उत्तेजना से प्रभावित हो सबसे अधिक बार स्नायुप्रवाह मस्तिष्क को भेजते है। इस सिद्धान्त के द्वारा अतिस्वर (Over tones), स्वरकम्प (Beats), मिश्रित स्वर (Combination), अच्छादन, आदि की व्याख्या अतिव्याप्ति उत्तेजना (Overlapping stimulation) के आधार पर की गई है। कहने का अर्थ यह है कि जब दो या अधिक प्रकार की ध्वनि तरगे (Sound waves) एक साथ एक ही समय में तलपत्र (Basilar membrane) को प्रभावित करती है तो उन सबके बीच के सामयिक सम्बन्ध (Temporal relationship) मे अतिक्रमण (Overlapping) होने लगता है, इस अतिक्रमण के ही कारण हमे उपर्युक्त व्यापार (Phenomenon) की अनुभूति होती है।

बहुत से प्रयोग स्थान-सिद्धान्त को ठीक सिद्ध करते है। कुछ प्रयोगों मे देखा गया है कि जिस जानवर के कान को बहुत देर तक अधिक बारबारता (High frequency) की ध्वनि-तरगों से उत्तेजित किया गया उसके तलपत्र (Basilar membrane) के आधार में (जिसके तन्तु छोटे और अधिक तनाव वाले होते है) क्षति पहुँचने लगती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अधिक बारबारता की तरगों से तलपत्र के आधार-क्षेत्र के तन्तु सर्वाधिक प्रकपित होते है। लेकिन, प्रयोगों से यह सिद्ध नहीं होता कि कम बारबारता की तरगों से तलपत्र को बहुत देर तक उत्तेजित करने पर शीर्ष (Apex) के तन्तुओं को भी क्षति पहुँचती है। इसीलिए विद्वानों का कहना है कि ध्वनि-बारबारता और तलपत्र के स्थान (Place of basilar membrane) मे सम्बन्ध तो अवश्य है, किन्तु यह सम्बन्ध पूर्ण नही है।

अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि सामान्यत बहरे लोगों में तलपत्र के सभी स्थान शक्तिहीन रहते है। जिन लोगों मे स्वरमान का बहरापन (Pitch deafness)

रहता है उनके तलपत्र के कुछ ही भाग शक्तिहीन रहते है। जिन्हे उच्च स्वरमान की संवेदना नही होती है (High pitch deaf) उनके तलपत्र के आधार-क्षेत्र खराब रहते है और निम्न स्वरमान के लिये जो बहरे है उनके शीर्ष क्षेत्रा मे खराबी रहता है।

जब ध्वनि तरग शख को उत्तेजित करती है तो उसमे एक प्रकार की वैद्युतिक प्रतिक्रिया (Electric response) होती है जिसे काक्लियर माइक्रोफोनिक (Cochlear microphonic) कहते है। इसे इलेक्ट्रोड (Electrode) के द्वारा अंकित किया जाता है। इस विधि के द्वारा देखा गया है कि अधिक बारबारता की तरगो मे काक्लियर माइक्रोफोनिक (Cochlear microphonic) आधार-क्षेत्रो मे उत्पन्न होता है और कम बारबारता से शीर्षक्षेत्र मे उत्पन्न होता है। इन सभी अध्ययनो से यह सिद्ध होता है कि तलपत्र के विभिन्न स्थान और ध्वनि तरगो की बारबारता मे सम्बन्ध है। इस तरह कतिपय आलोचनाओं और त्रुटियों के उपरान्त भी स्थान सिद्धान्त श्रवण संवेदना की काफी अंशो तक समुचित व्याख्या करता है।

बारबारता सिद्धान्त (Frequency Theory)

कई विद्वानों ने बारबारता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। सबसे पहले इसे रदरफोर्ड (Rutherford) ने सन् १८८६ ई० मे प्रतिपादित किया, लेकिन इसकी विस्तृत व्याख्या सन् १९१८ ई० मे रिटसन (Wrightson) ने की और वस्तुत इसके बाद ही इस सिद्धान्त मे वैज्ञानिकता भी आई। यह सिद्धान्त भी स्वर की तीव्रता (Loudness) और स्वरमान (Pitch) की मुख्य तौर से व्याख्या करता है। परन्तु, इसकी यह व्याख्या स्थान-सिद्धान्त (Place theory) से सर्वथा भिन्न है। स्थान सिद्धान्त की तरह यह सिद्धान्त स्वर तीव्रता की व्याख्या तलपत्र (Basilar membrane) के अधिक हिस्से की प्रतिक्रिया के आधार पर नहीं करता। इसके अनुसार ध्वनि तरगो से तलपत्र का केवल कोई खास हिस्सा प्रकम्पित नहीं होता, बल्कि सम्पूर्ण तलपत्र प्रकम्पित हो जाता है। तलपत्र के प्रकम्पित हो जाने से इसके बहुत से तन्तु (Fibres) क्रियाशील हो जाते है जिसके फलस्वरूप स्नायुप्रवाह उत्पन्न होकर मस्तिष्क को जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार स्वरमान (Pitch) स्नायुप्रवाह की बारबारता (Frequency) पर निर्भर करता है। जब किसी स्वर से अधिक बार स्नायु-प्रवाह उत्पन्न होता है तो उसका स्वरमान अधिक होता है। दूसरी ओर, जब किसी स्वर से कम स्नायुप्रवाह श्रवण स्नायु के द्वारा जाते है तो स्वरमान भी कम होता है। स्नायुप्रवाह की बारबारता ध्वनि तरग की चक्र सख्या (Number of cycles) पर निर्भर करता है। जब कान को अधिक बारबारता (चक्र सख्या) की ध्वनि-तरग प्रभावित करती है तो उसमे तलपत्र पर स्नायु प्रवाह भी अधिक उत्पन्न होता है। जिस टेलीफोन में जितनी जोर से कहा जाता है उतनी ही अधिक आवाज सुनाई पड़ती है, वैसे ही प्रति सेकण्ड जितने चक्र की ध्वनि कान को प्रभावित करती है उतने ही स्नायुप्रवाह प्रति सेकण्ड श्रवण स्नायु के द्वारा मस्तिष्क मे पहुँचते है। जैसे, यदि प्रति सेकण्ड ध्वनि-चक्र की सख्या ६०० है तो श्रवण-स्नायु द्वारा ६०० स्नायु प्रवाह प्रति सेकण्ड मस्तिष्क में पहुँचेगे। शख (Cochlea) केवल टेलीफोन के इक्सचेन्ज की तरह सम्बध स्थापित करने का काम करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार तलपत्र के जितने तन्तु सक्रिय होते है उसी के अनुपात मे ध्वनि की तीव्रता (Loudness of sound) की संवेदना होती है।

जब तीव्र ध्वनि तरग कान को प्रभावित करती है तो तलपत्र (Basilar membrane) के अधिक ततु सक्रिय हो जाते है और फलत हमे तीव्र स्वर की अनुभूति होती है। इसी तरह जिन ध्वनि तरगो से कम ततु (Fibres) उत्तेजित होते है उनकी स्वर तीव्रता का अनुभव भी कम होता है।

यह सिद्धान्त स्वरमान (Pitch) और स्वर की तीव्रता (Loudness) के अतिरिक्त अति स्वर (Over tone), मूलस्वर (Fundamental tones), स्वर-कम्प (Beats) आदि विभिन्न श्रवण व्यापारों की व्याख्या मस्तिष्क की कार्यवाही के आधार पर करता है। स्थान सिद्धान्त ने इनकी व्याख्या तलपत्र के विभिन्न स्थानो के आधार पर की है। लेकिन, इस सिद्धान्त के अनुसार शख (Cohlea) का कार्य मात्र एक्सचेन्ज या रिलेयिग स्टेशन (Relaying Station) की तरह है। फलत जितनी बारबारता की तरग इसे प्रभावित करती है वह उतनी ही बारबारता के स्नायुप्रवाह श्रवण स्नायु के द्वारा मस्तिष्क को भेजता है। अत हमे विभिन्न श्रवण व्यापारों का जो अनुभव होता है वह मस्तिष्क की विभिन्न कार्यवाहियों के कारण होता है।

बारबारता सिद्धान्त की आलोचना—इस सिद्धान्त की विवेचना करते समय यह याद रखना आवश्यक है कि सामान्यत मनुष्य का कान प्रति सेकण्ड २०००० चक्र तक की ध्वनि तरगो को सुन सकता है। अब इस सिद्धान्त के अनुसार हम जानते है कि प्रत्येक ततु प्रति चक्र (Cycle) से प्रवाहित हो स्नायुप्रवाह उत्पन्न कर मस्तिष्क को भेजता है। यदि इसे सही माना जाए तो हमे यह भी मानना पड़ेगा कि श्रवण-स्नायु ततु (Auditory nerves) प्रति सेकेण्ड २०००० बार उत्तेजित हो स्नायुप्रवाह उत्पन्न कर सकते है और इसका अविधेय काल (Refractory period) ०५ मी० सेकण्ड (M Sec) भी हो सकता है। लेकिन, इस दिशा म जो भी प्रयोग हुए है, उनसे यह सिद्ध हो चुका है कि छोटा से छोटा अविधेय काल भी लगभग १ मी० सकेण्ड (1m sec) का होता है। यानी, कोई भी ततु अधिक से अधिक एक हजार बार प्रति सकण्ड क्रियाशील हो सकता है। इस तरह कुछ अशो मे सतोषप्रद होते हुए भी बारबारता सिद्धान्त मे यह एक मौलिक त्रुटि रह गयी है। अत हम इसे मान्य सिद्धान्त नही कह सकते।

वॉली-सिद्धान्त (Volley theory)

यह सिद्धान्त वस्तुत बारबारता-सिद्धान्त का ही एक सशोधित रूप है। इसका प्रतिपादन वेवर तथा ब्रे (Wever & Bray) ने किया। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रति सेकण्ड जितने ध्वनिचक्र तलपत्र (Basilar membrane) को उत्तेजित करते है, उतनी ही सख्या मे वहाँ के ततु हमेशा क्रियाशील नही होते। यानी प्रत्येक ध्वनिचक्र से एक ततु सक्रिय हो, यह आवश्यक नही है। ऐसा तभी होता है जब ध्वनिचक्रों की बारबारता कम रहती है। जब ध्वनिचक्रो की बारबारता बढ जाती है तब प्रति सेकण्ड हर तीसरे या चौथे तरग से एक ततु सक्रिय होता है। वस्तुत अधिक बारबारता की ध्वनितरगे जब कान को प्रभावित करती है, तब उस समय तलपत्र के सभी ततु एक ही साथ स्नायुप्रवाह (Nerve impulse) नही उत्पन्न करते है, बल्कि विभिन्न समूहों मे स्नायुप्रवाह उत्पन्न करते है। कितने ततु समूह स्नायुप्रवाह उत्पन्न करने के लिए बनेगे यह ध्वनि-चक्रों की बारबारता से निर्धारित होता है। प्राय ८०० प्रति

सेकण्ड तक के स्वर-चक्रों से सभी ततु एक साथ सक्रिय होते है, परन्तु इससे अधिक की चक्र-बारबारता (Frequency of cycle) रहने पर ततु समूह मे बटकर कार्य करते है। परन्तु समूह मे भी कुछ ततु अन्य ततुओ की अपेक्षा अधिक सक्रिय रहते है और फलत वे अधिक स्नायुप्रवाह भेजते है। इस तरह, श्रवण स्नायु (Auditory nerve) में विभिन्न ततुओं की क्रियाशीलता मे अन्तर पडता है। इसके अतिरिक्त, श्रवण-स्नायु के स्नायुप्रवाह में उत्ताप (Spurts) भी होते है।

इस सिद्धान्त के अनुसार कोई स्वर (Tone) या स्वरमान (Pitch) विभिन्न ततुओं की सक्रियता या प्रत्येक ततु द्वारा जितनी बारबारता (Frequency) ले जाई जाती है इस पर निर्भर नही करता, बल्कि वॉली की बारबारता (Frequency of volley) पर निर्भर करता है। इसी तरह किसी स्वर की तीव्रता (Loudness) के सबन्ध मे इस सिद्धान्त का कहना है कि जोरों की आवाज जब हमारे श्रवण ग्राहक को प्रभावित करती है तो स्नायु प्रवाह की प्रत्येक उत्ताप म अधिक स्नायु प्रवाह आ जाते है। इसीसे हमे ध्वनि की तीव्रता की सवेदना होती है।

श्रवण सम्बन्धी उन सिद्धान्तों के सबध म हम निष्कर्ष रूप कह सकते है कि स्थान-सिद्धान्त और वॉली सिद्धान्त (Volley theory) दोनो ही मे आंशिक सत्यता है। अधिक बारबारता की ध्वनि तरगों को सुनने की व्याख्या वॉली सिद्धान्त (Volley theory) अच्छी तरह देता है। परन्तु तीव्र ध्वनि की सवेदना की व्याख्या स्थान सिद्धान्त के द्वारा अधिक सफलतापूर्वक होती है।

इन तीन सिद्धान्तो के अतिरिक्त विभिन्न ध्वनि-व्यापारों की व्याख्या के लिये विद्वानों ने और कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उनका यहाँ उल्लेख न कर इस स्थान पर हम इतना ही कहना उचित समझते है कि वाट (Watt) ने विभिन्न सिद्धान्तो की त्रुटियों को देख कर एक पूर्णत मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उसने अपने सिद्धान्त मे भौतिक (Physical) और दैहिक (Physiological) दृष्टिकोणो को कोई स्थान नहीं दिया है। इस सम्बन्ध मे उसका कहना है कि यद्यपि यह सिद्धान्त पूर्णत मनोवैज्ञानिक है, किन्तु किसी भी भौतिक और दैहिक तथ्य (Fact) के प्रतिकूल नही है। यह ध्वनि मे आयतन (Volume) के गुण को स्वीकार करता है और प्रयुक्त हो तात्विक दृष्टिकोण से उसका पृष्ठपोषण करता है। अभी यह सिद्धान्त पूर्ण विकसित नही हो सका है और इसमे अधिक अध्ययन एव अन्वेषण की आवश्यकता है। लेकिन, इतना अवश्य है कि इस सिद्धान्त के प्रतिपादन द्वारा वाट ने सगीत को भी अन्य कलाओ के समकक्ष स्तर पर लाने का प्रयास किया है और उसे अपने प्रयत्न मे काफी सफलता भी मिली है।

गंध-संवेदना

(Olfactory sensation)

दृष्टि तथा श्रवण सवेदना के बाद ही गध-सवेदना का स्थान आता है। छोटे छोटे जीवों में तो इसका महत्त्व सबसे अधिक है। उनकी घ्राण-शक्ति बडी तेज होती है। वे सूँघ कर ही काफी चीजों को समझ लेते है अथवा अदाज लगा लेते है। मनुष्यों के लिए

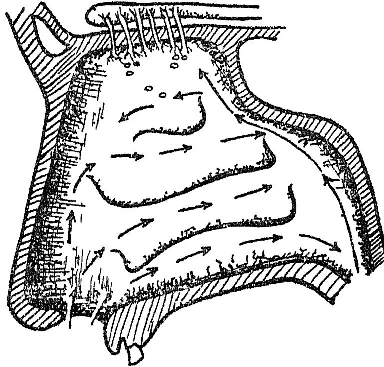
भी इसका महत्त्व कम नही है। खाद्य पदार्थों के चुनाव मे इसका काफी हाथ रहता है। जो पदार्थ सुगन्धित रहता हे उसे हम खाकर खुश होते है, किन्तु दुर्गन्ध पदार्थों को तिरस्कृत कर देते है। बच्चे भी खाने वाली चीजा की उपयुक्तता अथवा अनुपयुक्तता का निर्णय गध के ही आधार पर करते है। कितने ऐसे जीव है जो वातावरण मे अभियोजित करने के लिए घ्राण सवेदना पर ही पूर्णत निर्भर करते है।

गध के ग्राहक और उत्तेजना (Olfactory receptors and stimulus)

जिस तरह प्रकाश और ध्वनि के ग्राहक (Receptors) आँख और कान मे क्रमश पाये जाते है उसी तरह गध क ग्राहक नाक मे पाये जाते है।

गध के ग्राहकों की बनावट लम्बे धागे के समान है जो गध-गोल (Olfactory bulb) से नासिका रध्र (Nose cavities) की आखिरी छोर तक रहते है। इनके निचले भाग मे जहाँ

चित्र सख्या २४



नाक के भीतर का चित्र

कि छोटे छोटे केशों की भरमार रहती हे गध कोष (Olfactory cells), गध घटक (Olfactory Epith eleum) मे जकड़े हुए है। गध के ग्राहकों (Olfactory receptors) के ऊपरी सिरे से गध गोल तक स्नायुतत (Nerve fibres) फैले हुए हे जिनका सबध कुछ स्नायुकोषों (Neurones) से है। ये स्नायुकोष अन्य ततुओ के द्वारा वृहत्मस्तिष्क (Cerebrum) तथा मस्तिष्क (Brain) के अन्य भागो से मिले है। स्मरणीय है कि हम जो भी सूँघते है उसे हमारे नासिकारध्र (Nosal cavitics) के ऊपरी भाग मे स्थित कोष ही ग्रहण करते है। गध क्षेत्र (Olfactory area) का सबध दो प्रकार के स्नायुततुओं (Nerve fibres) से है। लेकिन, इन दोनों प्रकार के ततुओं की क्रियाओं में अन्तर है। पहले प्रकार के ततुओ का सबध गध सवेदना से बिल्कुल नहीं है, क्योंकि जब इन तन्तुओं को उत्तेजित किया जाता है तब गध सवेदना का अनुभव न हो कर खुजलाहट (Tickling), या सक्षुब्धता (Irritation) का अनुभव होता है। किन्तु दूसरे प्रकार के ततुओं से गध-सवेदना का अनुभव होता है। पदार्थों का सूक्ष्मकण (Minute particles) वाष्प या गैस के रूप मे गध-सवेदना के लिए उत्तेजना का काम करते है। सास के द्वारा यह नासिका-रध्र (Nosal cavities) में पहुँच कर गंध-कोष

(Olfactory cell) को उत्तेजित करते है और इस प्रकार गध सवेदना होती है। यद्यपि इस दिशा मे हुए सभी प्रयोगों के परिणाम एक नही है, किन्तु मनोवैज्ञानिका का सामान्य दृष्टिकोण है कि सवेदना के लिए सूक्ष्मकणा का श्लेष्मपत्र (Mucous Membrane) तक पहुँचना आवश्यक है। इसके अभाव मे इस सवेदना का अनुभव करना असम्भव है। वेबर (Weber) ने भी प्रयोग द्वारा इस कथन की पुष्टि की है।

गध प्रकार (Kinds of olfaction)

रगों की तरह गध के मुख्य प्रकारो को भी निश्चित करने का प्रयास काफी पहले से किया गया है। किन्तु अभीतक इसका निश्चय नही हो पाया है। इसका निर्णय करने के लिए विद्वानों ने कई प्रकार के प्रयोगो का आश्रय लिया है। लेकिन गध का प्रत्यक्ष ज्ञान (Direct Knowledge) तो अन्तर्निरीक्षण के ही द्वारा सभव है किंतु गधो का अन्तर्निरीक्षण के द्वारा विश्लेषण करना भी सभव काम नही है।

एरनसन (Arensohn) ने थकावट विधि से गध-प्रकार को निश्चित करने का प्रयास किया था, किन्तु उसकी विधि अप्रामाणिक मानी गई, क्योंकि उसके आधार पर ठीक तरह से गध प्रकार को व्यक्त नही किया जा सकता था। कुछ विद्वानो ने गधो की खराबी के आधार पर भी गध का वर्गीकरण किया है, लेकिन इन आधारो पर सभी गधो का वर्गीकरण नही हो सका और उनका वर्गीकरण अधूरा रह गया।

सर्वप्रथम दैहिकविज्ञानवेत्ता (Physiologist) ज्वार मेकर (Zwaardemaker) ने सभी गधों को ९ प्रकार मे बाँटा। उसने प्रत्येक प्रकार के गध का सबन्ध गधयत्र के एक खास केश कोशाणु (Hair cell) से बतलाया। उसका यह वर्गीकरण बहुत दिनो तक मान्य रहा लेकिन बाद मे विद्वानो ने उसके वर्गीकरण मे भी कई त्रुटियाँ व्यक्त की। इन विद्वानों मे हेनिंग (Henning) का कार्य और वर्गीकरण विशेष महत्व रखता है। हेनिंग ने बहुत से दक्ष और निपुण व्यक्तियो की सूचनाओ के आधार पर ७ प्रधान गधो (Primary smells) का नाम व्यक्त किया है। उसके अनुसार ये प्रधान गध निम्नाकित है। मसालेदार गध (Spice odour)—सभी प्रकार के मसालों (spices) की गध, पुष्प की गध (Flower odour)—मेहदी प्रभृति के तेल तथा फूलों की गध, फल की गंध (Fruit odour)—फलों तथा कुछ तेलो की गध, राल की गध (Resinous odour)—राल, तारपीन, यूकिलीप्टस आदि की गध, दूषित गध (Foul odour)—अफीम, खटमल, मच्छर, खट्टा पनीर आदि, भस्म गध (Burning odour)—तम्बाकू, धूआ, कौफी आदि की गध।

औद्योगिक रासायनिक (Industrial chemist) कोकर ने सभी गधों को चार प्रधान श्रेणियों में बाँटा है और बतलाया है कि उन्ही चार गंधों के विभिन्न सम्मिश्रण से अन्य गधों की संवेदना होती है। उसके अनुसार सुगंधित गध, अम्ल गध (Acid odour) भस्म गध, धमा गध (caprylic odour) ही प्रधान गध है। किन्तु अभी तक जितने भी गधों के विभाजन किये गये है इन सबमे हेनिंग का वर्गीकरण विशेष सतापप्रद होने के कारण सर्वमान्य है।

गध की तीक्ष्णता
(Olfactory acuity)

किसी पदार्थ की गध की सवेदनशीलता (Sensitivity) की योग्यता सभी व्यक्तियों में समान नही होती है, इसमे वैयक्तिक भिन्नता (Individual differnce) होती है। कुछ व्यक्तियों को तो किसी भी गध की सवेदना नही होती है। सवेदनशीलता (Sensitivity) के इस अभाव को घ्राणशक्ति हीनता (Anosmia) के नाम से व्यक्त किया गया है। व्यक्ति के साथ साथ विभिन्न वस्तुओ की गधों की तीक्ष्णता (Olfactory Acuily) भी तरह तरह की होती है। उदाहरणार्थ, हम जानते है कि कस्तूरी का एक छोटा से छोटा कण भी गध सवेदना उत्पन्न करने मे समर्थ होता है लेकिन उससे कई गुना बडा आलू का टुकडा कोई गध नही देता। गध की तीक्ष्णता की परीक्षा करने के लिए घ्राणयन्त्र (Olfactometer) का व्यवहार किया जाता है। यह यत्र भी दो प्रकार का होता है। द्विघ्राणयन्त्र (Double olfactometer) की उपादेयता अधिक है, क्योंकि गध तीक्ष्णता की परीक्षा के लिए सभी गध ग्राहकों (Olfactory receptors) को एक ही साथ इस यत्र के द्वारा दो विभिन्न गधो से उत्तेजित किया जाता है। ऐसा करने पर देखा जाता है कि कभी तो प्रयोज्य (Subject) दोनों गधो का अनुभव क्रमश करता है और कभी दोनो मिलकर एक तीसरे नये गध की ही सवेदना उत्पन्न कर देते है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि एक गध दूसरे गध की शक्ति को नष्ट कर देती है। फलत उसकी सवेदना हमे नही होती है। गध तीक्ष्णता की जाच करने के लिए इधर कुछ नई विधियों का भी व्यवहार किया जाता है। कुछ विद्वानो ने तो उत्तेजना का आयतन (Volume), दबाव (Pressure) और उसकी गध तीक्ष्णता में सबध स्थापित करने का प्रयास भी किया है।

गध सयोजन
(Olfacfory adaptation)

एक ही गध का अनुभव हमेशा होता रहे तो कुछ समय के बाद नाक उस गध के प्रति सयोजित (Adapted) हो जाती है। इसके कारण उस गध का अनुभव उस समय हमे नही होता। कभी कभी ऐसा थकावट के कारण भी होता है। इसी सयोजन (Adaptation) का परिणाम है कि खाद के कारखाने के असहनीय गधमय वातावरण मे सैकडों और हजारों की सख्या मे मनुष्य काम करते है, जहा हमलोग जाने पर नाक भौह सिकोडने लगते हे। डाक्टरी पढनेवाले छात्र चीड फाड (Surgery) के स्थान मे बिना किसी झिझक के अपना काम करते है, किंतु जब वहाँ हमलोग जाते है तो दम घुटने लगता है।

इस सबंध मे यह स्मरणीय है कि सयोजन (Adaptation) उत्तेजना के स्वरूप (Nature) और उसकी तीव्रता (Intensity) पर निर्भर करता है। इसलिए गध जितनी ही अधिक तीव्र रहती हे उतनी ही तीव्रता से उसका सयोजन (Adaptation) होता है। प्रयोग करने पर देखा गया है कि कपूर की गध का सयोजन ५ से मिनट मे होता है किंतु राख की गध (Resinous odour) के सयोजन मे ३-४ मिनट ही लगते है।

कई प्रयोगो के परिणाम से यह भी स्पष्ट है कि जिस गध के प्रति हम सयोजित होते है उससे सबन्धित गधों की तीव्रता की अनुभूति मे भी कमी आ जाता है। किन्तु यह कोई जरूरी नही कि इस सयोजन का असर अन्य गन्धो पर भी पड़। अन्य गधों की सवेदना पूर्ववत् रह जाती है। जिस गध के प्रति हमारी नाक सयोजित हो जाती है उससे भी छुटकारा होना कठिन नहीं है। लगभग ६ मिनट उस गध को हटा देने पर उसकी सवेदना पुन होने लगती है। सयोजना समाप्त होने म जो समय लगता है वह दो बातों पर निर्भर करता है—एक उत्तेजना की तीव्रता और दूसरा सयोजित रहने का समय। थकावट के कारण गध तीक्ष्णता (Olfactory acuity) म जो कमी आती ह वह ता घटों बनी रह सकती है।

गंध सयोजन का प्रदर्शन करने के लिए प्रयोक्ता (Experimenter) दो विभिन्न गंध के द्रवों (Liquids) को इस प्रकार मिलाता है कि उनकी भिन्नता का ज्ञान सूघने पर नही होता है। तब वह प्रयोज्य (Subject) को विभिन्न गधो क बोतलों को सूघने के लिए देता है। उन बोतलों मे दो बोतल मिश्रित गधो क भी रहते है। प्रयोज्य को बोतल सूघकर यह व्यक्त करना होता है कि किन किन गधों को मिलाने से मिश्रित गध का निर्माण हुआ है। पहले एक बोतल को उस समय तक सूघा जाता है जबतक कि उसकी गध विलीन नही हो जाती है। तब मिश्रित गधवाले बोतल को सूघा जाता है। अगर सयोजन वाला गध मिश्रित गध मे विद्यमान रहता है तब तो मिश्रित गध सयोजन के बाद या पहले विभिन्न रूप का प्रतीत होता हे और इस प्रकार दूसरे मिश्रण का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। लेकिन मिश्रित गध म जब सयोजित गध मौजूद नही रहता है तब पहले और बाद के गधो मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही पड़ता है। कभी कभी मिश्रण के दोनों अशो के सयोजन मे कमी होने क कारण भी सूघने पर मिश्रित गध मे परिवर्तन मालूम होता है।

स्वाद-संवेदना

(Gustatory sensation)

स्वाद-सवेदना का सम्बन्ध गध सवेदना से बहुत ही घनिष्ट है। इसीलिए कुछ विद्वानों का एसा दृष्टिकोण है कि इन दोनों सवेदनाओं को उत्पन्न करनेवाली इन्द्रियां (Organs) का विकास एक ही रासायनिक इन्द्रिय स हुआ है। इन दोनों म कितना अधिक सबन्ध है, यह इसी से जाना जा सकता है कि जब नाक को बन्द करके किसी मनुष्य को कई प्रकार की चीजे क्रमश जीभ पर रखने को दी जाती है तो वह उन्हें पहचानने में असमर्थ होता है। नाक बन्द करके सेब (Apple) और प्याज के छोटे टुकड़ों को क्रमश चखकर व्यक्त करना असम्भव है, किन्तु नाक न बन्द करके उनको चखने पर उनकी भिन्नता का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है।

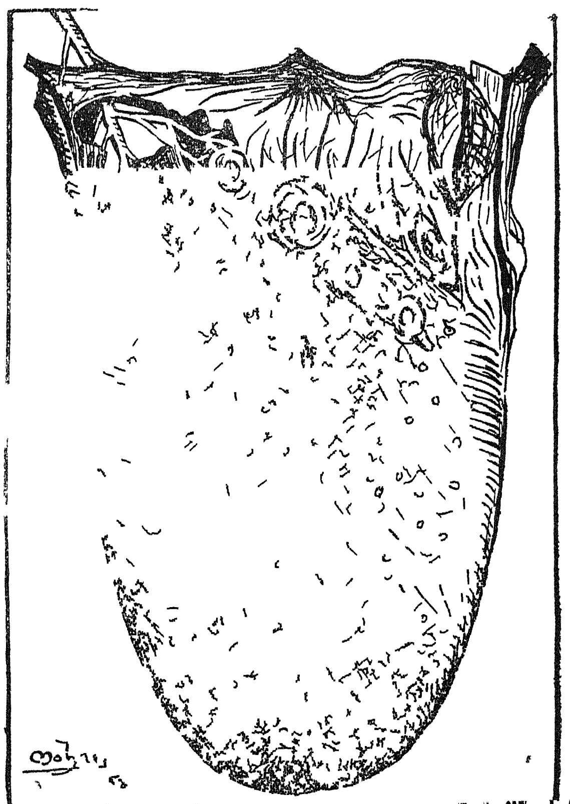
स्वाद सवेदना के ग्राहक तथा उत्तेजना

(Gustatory receptor and stimulus)

अब यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि हमे विभिन्न रसो या स्वादों (Tastes) की सवेदना कैसे होती है? हम तरह तरह के स्वाद का अनुभव जीभ के द्वारा करते है।

और साधारणत लोग यही समझते है कि हमें किसी पदार्थ के स्वाद का ज्ञान सम्पूर्ण जीभ के द्वारा होता है, परन्तु वस्तुत बात ऐसी नही है। स्वाद के ग्राहक को स्वाद की कली (Taste bud) कहते हैं। यह केवल जिह्वा पर ही नही पाई जाती बल्कि गला और कपोल के कुछ हिस्सो मे भी पाई जाती है। प्रयोग से मालूम हुआ है कि सयानों की अपेक्षा बालकों मे स्वाद कली (Taste bud) अधिक रहती है। प्रत्येक जिह्वांकुर (Papillar) मे कई स्वाद कलियाँ (Tastes buds) होती है और प्रत्येक स्वाद कली में कई स्वाद कोषाणु (Taste cells) होते हैं। इसलिए स्वाद के ग्राहक (Gustatory receptor) को उत्तेजित करने के लिए रासायनिक द्रव्य (Chemical saubstances) ही उत्तेजना होती है अन्य पदार्थ नही। इन्ही रासायनिक द्रव्यों से स्वाद कली जब उत्तेजित होती है तब हमे स्वाद की सवेदना होती है।

चित्र सख्या २६



मनुष्य की जीभ का चित्र

अब एक दूसरा प्रश्न भी यहाँ विचारणीय है कि स्वादकली (Taste bud) से एक ही प्रकार की रस-सवेदना (Gu tatory sensation) होती है या कई प्रकार की? ओहवाल तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगों के आधार पर बतलाया है कि विभिन्न स्वाद-सवेदनाओं के लिए विभिन्न जिह्वांकुर (Papilla) निश्चित नहीं है, किंतु जिन विद्वानों

ने स्वाद की विशिष्ट स्नायुशक्ति सिद्धांत का प्रतिपादन किया है, उनका कहना है कि एक जिह्वाकुर मे विभिन्न स्वाद कलियाँ होती है जिनको अलग अलग उत्तेजित करना असम्भव है। इसलिए एक ही जिह्वाकुर से विभिन्न स्वादो की सवेदना का अनुभव करना सम्भव है। उनके इस कथन की पुष्टि भी कई प्रमाणो द्वारा अप्रत्यक्षत होती है। विभिन्न प्रयोगों से यह निर्विवाद है कि मीठे स्वाद की सवेदना (Sensation of sweet) जीभ के अगले भाग से, खट्टा-स्वादसवेदना (Sour taste sensation) पिछले भाग मे, नमकीन की सवेदना (Saline sensation) केन्द्र को छोडकर अन्य सभी भागो से, और तीते स्वाद की सवेदना (Bitter taste sensation) जीभ के पिछले भाग से होती है। जिह्वा के अगले केन्द्रिय भाग से किसी प्रकार के रस (Taste) की भी सवेदना नही होती है। यहा यह बात स्मरणीय है कि यद्यपि इस रस सवेदना मे भी वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है, किन्तु अधिकाश व्यक्तियों में उपर्युक्त वितरण ही पाया जाता है। इतना ही नही, प्रयोगात्मक प्रमाण इस बात के भी साक्षी है कि एक ही पदार्थ जीभ के विभिन्न भागों मे विभिन्न प्रकार की सवेदनाये उत्पन्न करता है। इस प्रकार ये तथ्य प्रतिपादन करते है कि विभिन्न स्वादों के लिए विभिन्न ग्राहक (Receptors) होते है। इसके अतिरिक्त बिल्ली पर जो कुछ प्रयोग इस दिशा मे हुए है उनसे यही पता चलता है कि यद्यपि विभिन्न रसो के लिए विभिन्न ग्राहक होते है, किंतु यह आवश्यक नही है कि वे अनुविधायक स्वादो (Correspon-ding tastes) की ही प्रतिक्रिया क्रमश करे।

स्वाद के प्रकार

(Kinds of taste)

स्वाद कितने प्रकार के होते है, इस सबध मे विद्वानों म मतभेद रहा है। सामान्यत लोग बहुत स्वादों या रसों की सख्या मे विश्वास करते है। किन्तु यह ठीक नही है। आज से डेढ सौ वर्ष पहले तक विद्वानो ने बहुसख्यक रसो की सत्ता म विश्वास किया है। जब रसों की सख्या को निर्धारित करने के लिए विद्वानो ने शुरू म प्रयोग किये तब उन्होने छ रसो को माना। इसे बहुत दिनों तक वैज्ञानिक और सही माना जाता रहा। सन् १८२४ ईस्वी में चेभरुएल (Chevruel) ने अपने कई प्रयोगो द्वारा इनमें कई रसों को मौलिक नहीं पाया, क्योंकि नासिका रध्रो (Nasal cavities) को बन्द करके चखने पर उनके स्वाद में किसी प्रकार की विचित्रता ज्ञात नही हुई। कुछ दिन पूर्व तक नमकीन (Saline), मीठा (Sweet), खट्टा (Sour), तीता (Bitter), धातव (Matallic) तथा छारीय (Alkaline) स्वादों को विद्वान लोग स्वतत्र स्वाद मानते थे। परन्तु उनका वह विश्वास भी विभिन्न प्रयोगों द्वारा वर्त्तमान युग में भ्रामक माना गया है। भानब्रे (Vonbray) तथा अन्य विद्वानों ने अपने प्रयोगो द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वस्तुत छारीय एव धातव रसों की अपनी कोई स्वतत्र सत्ता नहीं है। इनकी अनुभूति कई प्रकार की सवेदनाओं के मिलने से होती है। इसलिए अब सभी मनोवैज्ञानिक केवल नमकीन, मीठा, खट्टा, तथा तीता के स्वाद को ही प्रधान या मौलिक स्वाद मानते है। अन्य स्वाद इन चार रसों के विभिन्न मिश्रण के परिणाम है।

स्वाद की सवेदनशीलता
(Taste sensitivity)

उपर्युक्त सभी प्रधान स्वादों की तीक्ष्णता (Acquity) समान नहीं होती है, क्योंकि प्रयोग करने पर देखा गया है कि तीता की सवेदनशीलता (Sensitivity) अन्य सभी रसों से अधिक होती है। उसके बाद मीठे की सवेदनशीलता की शक्ति देखी जाती है। खट्टे और नमकीन की तीक्ष्णता उपर्युक्त रसों की तुलना मे बहुत ही कम होती है। सबसे कम सवेदनशीलता की शक्ति नमकीन स्वाद मे ही होती है।

प्रयोगात्मक प्रमाणो से यह सिद्ध है कि सभी रसो की शक्ति सभी मनुष्यों में समान नही होती है। एक ही पदार्थ किसी को एक स्वाद का मालूम होता है तो दूसरे को दूसरे स्वाद का या बिल्कुल बेस्वाद प्रतीत होता है। जिस व्यक्ति मे रस का अधापन (Taste blindness) का दोष रहता है उसे सभी पदार्थ बेस्वाद ही मालूम होते है। यह दोष पूर्ण और आशिक दोनो तरह का होता है। रस की सवेदनशीलता आयु पर भी निर्भर करता है, क्योकि बच्चों मे इसकी मात्रा सयानो या वृद्धो से अधिक पायी जाती है। यही कारण है कि बच्चों के रस की सीमात मात्रा (Differential limen) बूढों से बहुत ही कम होती है। ऐसा भी देखने मे आता है कि तम्बाकू पीने से स्वाद की सवेदनशीलता मे कमी आ जाती है। किंतु यह कभी स्थायी नही बल्कि क्षणिक होती है। जो पदार्थ बहुत अधिक या बहुत कम गर्म रहता है उसका स्वाद भी आसानी से पता नही चलता, क्योंकि उसकी सवेदनशीलता कम हो जाती है। उदाहरणार्थ, गर्म चाय में चीनी कम मालूम होती है, किंतु जब वही चाय कुछ ठढो हो जाती है तो उसकी मिठास में वृद्धि हो जाती है।

स्वाद सयोजन
(Taste adaptation)

हमलोगों का यह साधारण अनुभव है कि जब हम किसी एक ही मीठे पदार्थ को निरतर खाते रहते है तो क्रमश उसके मीठास में कमी आने लगती है और कभी-२ तो उसकी मीठास का अनुभव ही नही होता है। इसी व्यापार (Phenomenon) को स्वाद या रस सयोजन (Taste adaptation) कहते है। ऐसे ही अनुभवों के आधार पर मेयर (Mayer) ने अपने प्रयोज्यो (Subjects) पर रस-सयोजन का प्रयोग किया। उसके प्रयोग का अध्ययन करने से विदित होता है कि मीठे स्वाद के प्रति सयोजित हो जाने पर मीठे की सवेदना की अनुभूति के लिए सामान्य अवस्था से दस गुने मात्रा में चीनी की घोल की आवश्यकता हुई। इस प्रकार स्वाद सयोजन (Taste adaptation) के कारण मीठे की सवेदना के सीमाधिक परिभाग में दस गुने की वृद्धि हुई। उसने इस प्रयोग को कई विधियों और कई रसों (Tastes) के साथ किया। यह सयोजन व्यापार मीठे के लिए सबसे अधिक, तीतों के लिए उससे कम, और नमकीन के लिए इन सबसे भी कम था।

अब प्रश्न यह है कि स्वाद-सयोजन का असर दूसरे स्वाद की सवेदनशीलता पर क्या पडता है? इस प्रश्न का उत्तर भी मेयर (Mayer) ने अपने प्रयोग परिणाम के ही

आधार पर दिया है। इसके प्रयोग का अध्ययन करने से मालूम होता है कि मीठे स्वाद के सयोजन (Sweet taste adaptation) से नमकीन या अन्य स्वादों की सवेदनशीलता (Sensitivity) बढ जाती है। यानी, वैसी हालत मे नमकीन तीता या खट्टा सामान्य तौर से अधिक नमकीन, तीता या खट्टा लगता है। इस प्रयोग से यह भी पता लगा कि यद्यपि अन्य स्वादों की सवेदनशीलता मे भी वृद्धि दृष्टिगोचर हुई, किन्तु उनकी मात्रा नमकीन से कम ही थी। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि कई प्रयोगात्मक और औपचारिक (Clinical) प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया गया है कि दैहिक अवस्था (Physiological condition) का भी प्रभाव स्वाद की सवेदनशीलता (Sensitivity) एवं सयोजन (Adpatation) पर पडता है। स्वाद का सयोजन १० से १५ मिनट मे समाप्त हो जाता है, ऐसा विभिन्न प्रयोगात्मक परिमाणो के आधार पर माना गया है।

गंध तथा स्वाद की संवेदनाओ की तुलना

(Comparison between olfactory & gustatory sensations)

हम ऊपर देख चुके है कि गध और स्वाद सवेदनाओ की ज्ञानेन्द्रियों मे भिन्नता है और उनकी उत्तेजनाये भी एक दूसरे से भिन्न है। ऊपर यह भी व्यक्त किया जा चुका है कि इन दोनों सवेदनाओ मे घनिष्टता भी कम नही है, क्योंकि स्वाद सवेदना मे गध सवेदना का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। वस्तुत ये दोनो कई पहलुओ मे एक दूसरे से इतनी मिलती-जुलती है कि कभी कभी भ्रम उत्पन्न हो जाता है कि गध सवेदना की अनुभूति हो रही है या स्वाद सवेदना की। यदि हम इन दोनो सवेदनाओ का तुलनात्मक अध्ययन करें तो देखेंगे कि इन दोनों प्रकार की सवेदनाओ मे सयोजन (Adaptation) होता है। जैसे, हम ऊपर देख चुके है कि एक ही पदार्थ कुछ समय तक खाते रहने पर उसके स्वाद में कमी आने लगती है और कुछ क्षणो मे वह स्वाद ही विलीन हो जाता है। इसी प्रकार निरतर किसी गध को सूँघते रहने से कुछ काल पश्चात् उस गध की सवेदना नहीं होती है। इतना ही नही, विरोध-व्यापार (Contrast phenomenon) भी इन दोनो सवेदनाओं में परिलक्षित होता है। नमकीन पदार्थ खाने के बाद मीठे पदार्थ की मिठास और भी बढ़ जाती है, इसी प्रकार दुर्गंध के बाद सुगध की मात्रा मे वृद्धि मालूम होती है। इसके अतिरिक्त अनुसवेदना (Phenomenon of after sensation) भी दोनो प्रकार की सवेदनाओं में देखा जाता है। किसी पदार्थ को जीभ पर रखने के बाद उसे हटा लेने पर भी ऐसा कभी कभी मालूम होता है कि उसका स्वाद हमें मिल रहा है। इसी प्रकार किसी गध को सूँघने के बाद भी कभी कभी उस गध की अनुभूति होती है। ये अनुसवेदना (After sensation) के ही उदाहरण है।

त्वक् सवेदना

(Cutaneous sensation)

त्वक् सवेदना के ग्राहक और उत्तेजना

(Receptor and stimulus for cutaneous sensation)

त्वक् संवेदना के अन्तर्गत मुख्य तीन प्रकार की सवेदनाओ की गणना होती है — स्पर्श (Touch) सवेदना, वेदना (Pain) सवेदना तथा ताप (Temperature) सवेदना।

ताप के अन्तर्गत दो का बोध होता है—शीत (Cold) संवेदना तथा उष्ण (Warm) संवेदना। प्राचीन काल मे हमे इन सभी त्वक् संवेदनाओ का ज्ञान नही था और जब लोगों को इनके बारे मे मालूम हुआ तब सर्वसाधारण का यही दृष्टिकोण था कि त्वचा के किसी भी भाग मे इन संवेदनाओ की अनुभूति होती है। किन्तु, दैहिक विज्ञान-वेत्ताओं (Physiologist) तथा मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगो के आधार पर बतलाया है कि वस्तुत विभिन्न त्वक् संवेदनाओं के लिए विभिन्न भाग निश्चित है। अतएव यह आवश्यक नही कि जिस स्थान पर स्पर्श संवेदना (Touch sensation) की अनुभूति हो वही वेदना (Pain), शीत (Cold) और उष्ण (Warm) की भी संवेदनाये हो। इसके पहले कि हम इन संवेदनाओ का उल्लेख अलग अलग क्रमश करे विभिन्न त्वक् संवेदनाओं के ग्राहकों (Receptors) तथा उनकी उत्तेजनाओ (Stimuli) पर संक्षिप्त प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। विभिन्न संवेदनाओ के लिए जिन ग्राहकों का उल्लेख विद्वानों ने किया है उनके सम्बन्ध मे किसी प्रकार का निश्चयात्मक निर्णय देना कुछ कठिन है। लेकिन, अभी तक की खोजों से जो मालूम हो सका है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि केश प्रदेशों मे स्पर्श संवेदना के ग्राहक टोकरी सिराएँ (Basket endings) है, क्योंकि केश की जड़ों मे स्पर्श संवेदना का बाहुल्य है। किंतु, शरीर के जिन भागो मे केशो की कमी रहती है उनमे भानफ्रे (Vonfrey) के अनुसार, मसनर रक्तकण, ज्ञानग्राहक नाडी सिराएँ (Sensary nerve endings) स्पर्श संवेदना के ग्राहक का कार्य करती है। फिर भी, कुछ ठोस प्रमाण के बिना इन्ही ग्राहकों को हमेशा के लिए सही नही माना जा सकता।

वेदना-बिन्दुओं (Pain spots) की शरीर के सभी भागों मे इतनी अधिकता है कि विद्वानों ने स्वतन्त्र नाडी शिरा (Free nerve ending) को ही वेदना संवेदना (Pain sensation) का ग्राहक माना है। विभिन्न खोजो से पता चला है कि जिन त्वचा प्रदेशों मे इसके अतिरिक्त किसी प्रकार की नाडियाँ नही है वहाँ भी यह संवेदना आविर्भूत होती है। इसीलिए स्वतन्त्र नाडी शिरा (Free nerve ending) को ही वेदना-ग्राहक (Pain-receptor) माना जाता है। लेकिन, इस स्थलपर यह भूलना नहीं होगा कि इसी को हम अन्तिम निष्कर्ष नही कह सकते, क्योंकि वहाँ भी किसी विशिष्ट ग्राहक का होना सभव है जिसे कि हमलोग अभी तक नही जान सके है।

तापमान (Temperature) की संवेदना के ग्राहको के सम्बन्ध मे तो विद्वान और भी अनिश्चित है, क्योकि कुछ विद्वानो ने ठढा और गर्म दोनो संवेदनाओ के लिए एक ही ग्राहक माना है और अपने इस विचार की पुष्टि भी की है। लेकिन, कुछ विद्वानों ने दोनों संवेदनाओं के लिए अलग अलग ग्राहक माने है। एक पक्ष का कहना है कि बाह्य चर्म (Corium) के लघु-रक्तनलिकाओ (Small blood vesels) की नाडी सिराये (Nerve-ending) और धमनिकाये दोनो प्रकार की संवेदनाओं के ग्राहक है। यह विचार कई स्थलों पर लाभ प्रद सिद्ध होता है, क्योकि इसके आधार पर कई गर्म ठण्ढी संवेदनाओं के व्यापारों की व्याख्या संतोषप्रद होती है। लेकिन, शास्त्रीय विचारधारा के अनुसार ठढा तथा गर्म संवेदनाओ के ग्राहक अलग अलग है। इसके अनुसार बाह्य चर्म के ऊपरी भाग में अवस्थित विशिष्ट-नाडी-सिराये, जिन्हे क्रासेगोलान्त (Kraune End Bulb) कहते है, ठढे की संवेदना के ग्राहक है और ज्ञान ग्राहक नाडीसिराये (Sansory nerve endings), जो कि राफिनिरभ (Ruffini-cylinders) के नाम से प्रख्यात है और जो बाह्य चर्म

एव त्वचा ततुओं के भीतरी भाग मे अवस्थित है वे, गर्म की सवेदना के ग्राहक हैं। यह विचारधारा इस तथ्य की अच्छी तरह व्याख्या करती है कि ठडे की सवेदना गर्म की सवेदना की अपेक्षा शीघ्र कैसे होती है और क्यों कुछ अचलो मे एक ही प्रकार की सवेदना पाई जाती है, दूसरी प्रकार की नही और कोई उत्तेजक क्यों एक सवेदना उत्पन्न करती है और दूसरी नही। लेकिन, तापमान की सवेदना के ग्राहकों के सम्बन्ध मे यह निर्णय भी अकाट्य नही कहा जा सकता है, क्योंकि अन्वेषण करने पर यह देखा गया है कि जिन त्वचा प्रदेशों मे सिर्फ स्वतत्र नाडी सिराये ही विद्यमान है वहाँ भी इन दोनों प्रकार की सवेदनाओं की अनुभूति होती है। अब जहाँ तक त्वचा सवेदना की उत्तेजनाओं का प्रश्न है उनके सम्बन्ध मे थोडे शब्दों मे यही कहना पर्याप्त है कि इनके लिए यान्त्रिक (Mechanical), वैद्युतिक (Electrical), रासायनिक (Chemical) एव तापीय (Thermal) उत्तेजनाये ही समोत्तेजनाये (Adequate Stimuli) है। इन समोत्तेजनाओं की सार्थकता के पक्ष मे पर्याप्त अन्वेषणात्मक प्रमाण उपस्थित है।

स्पर्श-संवेदना

(Touch Sensation)

विभिन्न खोजों और प्रयोगो के आधार पर यह सिद्ध है कि त्वचा (Skin) के सभी विन्दु (Spots) नही, बल्कि कुछ ही विन्दु स्पर्श सवेदना के आधार होते हैं। इन स्पर्श विन्दुओं की सख्या त्वचा प्रदेश पर बहुत है, किन्तु अन्य विद्वानो ने इसकी अपेक्षा बहुत ही कम स्पर्श विन्दुओ को प्रदर्शित किया है। इस सम्बन्ध मे भान फ्रे (Van fray) का प्रयोग परिणाम उल्लेखनीय है जिसके अनुसार स्पर्श-विन्दुओ की सख्या त्वचा प्रदेश पर प्रत्यक वर्ग सेन्टीमीटर ० से लेकर ३०० तक है। मस्तक को छोडकर (जहाँ ये अत्यधिक सख्या मे पाये जाते है) शरीर के स्पर्श विन्दुओ की सख्या उसके अनुसार ६ लाख के लगभग है। यद्यपि उसके अन्वेषण मे इनकी सख्या केशमूलों मे अधिक थी किन्तु उन अंचलों मे भी इन विन्दुओ का अभाव नही था जहाँ केशमूलों का पूर्णत अभाव था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि स्पर्श विन्दुओ का सम्बन्ध केशमूलो से घनिष्ट है। इसलिये जहाँ इनका अभाव है वहाँ इनकी सख्या कम है। लेकिन, इससे यह समझना दोषपूर्ण होगा कि जिन स्थलों पर स्पर्शविन्दु कम सख्या मे होते है उनकी सवेदनशीलता (Sensitivity) भी कम होती है। इस दिशा मे जितने प्रयोग हुए है उनके अध्ययन से यह स्पष्ट है कि केशयुक्त स्पर्श विन्दु उतने ही सवेदनशील होते है जितने कि केशरहित स्थल के स्पर्श विन्दु। हाँ इतना अवश्य है कि कुछ विन्दुओ की स्पर्श-सवेदनशीलता (Touch sensitivity) अधिक और कुछ की कम होती है। विभिन्न प्रयोगों से यह भी स्पष्ट है कि स्पर्श विन्दुओ की सख्या उत्तेजना की तीव्रता (Intensity) पर भी निर्भर करती है। स्पर्श विन्दु का पता लगाने के लिए निर्बल उत्तेजना (Weak stimulus) का व्यवहार करने पर कम और सबल या तीव्र उत्तेजना का व्यवहार करने पर इसी भाग मे अधिक स्पर्श विन्दु प्राप्त होते है। प्रयोगात्मक प्रमाण इस बात के साक्षी है कि उगली के सिरे (Ending), ओष्ट, खोपडी और गुप्तेन्द्रिय प्रदेश अन्य त्वचा प्रदेशों की अपेक्षा अधिक सवेदनशील (Sensitive) होते है। स्पर्शसवेदना के गुणात्मक पहलू (Qualitative aspect) पर विचार करने से मालूम होता है कि

प्रत्यय स्पर्श सवेदनाओं में गुदगुदी की गन्ध सन्निहित रहती है। किन्तु, ऐसी स्पर्श-सवेदनाये भी प्राप्त होती है जो पूर्णत विरक्त स्वरूप की होती है।

स्पर्श-सयोजन (Touch Adaptation)

स्पर्श सवेदना मे सयोजन भी देखने मे आता है। जिन वस्त्रों या चीजों को हमलोग हमेशा धारण करते है उनकी स्पर्श सवेदना हमे नही होती है। अगूठी या चश्मा हमारी उँगली या नाक पर पडा रहता है, किन्तु उसकी हमे कुछ भी चेतना नही रहती। इससे यह स्पष्ट है कि निरन्तर उत्तेजनाओं से सयोजित होने के कारण उनसे समुत्पन्न संवेदनाओं का हम अनुभव नही करते है। कई प्रयोगो से यह प्रमाणित है कि किसी स्पर्श सवेदना का सयोजन (Adaptation) त्वचा प्रदेश, व्यक्ति, उत्तेजना तथा उसकी तीव्रता पर निर्भर करता है। प्रयोग-परिणामो से यह स्पष्ट है कि मन्द उत्तेजना का सयोजन त्वचा प्रदेश से दो सेकेण्ड मे भी हो जाता है। एड्रियन केटिल (Cattell) आदि विद्वानो का कहना है कि जहाँ सयोजन देर से होता है वहा यह समझना चाहिये कि त्वचा के उस भाग का रासायनिक सयोजन (Chemical adaptation) उस उत्तेजना के साथ धीरे-धीरे हो रहा है। उसे हमलोग कागज के छोटे टुकड़े को अपने त्वचा पर रखकर देख सकते है। उस सवेदना मे अनुसवेदना (After sensation) का व्यापार भी देखने मे आता है।

वेदना-संवेदना

(Pain sensation)

वेदना सवेदना बहुत दिनों तक विद्वानो के बीच मे विवादग्रस्त विषय बनी रही, क्योंकि कुछ विद्वानों ने इसकी गणना दु खद भाव के अन्तर्गत की। जिन्होंने इसे एक सवेदना के रूप में माना वे भी इसकी स्वतन्त्र सत्ता के पक्ष मे नही थे। उनका कहना था कि जब स्पर्श विन्दुओं पर ही अधिक दबाव पडता है तब वेदना का अनुभव होता है। अत इसके लिये एक स्वतन्त्र एव विशिष्ट ग्राहक (Receptor) आवश्यक नही है। किन्तु गोल्डशीडर (Gold scheider) ने इस विचारधारा मे कुछ परिमार्जन करते हुए यह व्यक्त किया है कि सुषुम्ना (Spinal cord) तक स्पर्श और वेदना सवेदनाओं का एक ही रास्ता रहता है, पर आगे चलकर ये दोनो सवेदनाओं के स्नायुप्रवाह अपने मस्तिष्क-प्रदेशों में विभिन्न पथों से पहुँचते है। उसने स्पर्श एव वेदना सवेदनाओं के प्रतिक्रिया कालों (Reaction time) को भी १२ से २ सेकेण्ड और ६ से ८ सेकेण्ड क्रमश अभिव्यक्त किया। किन्तु, गोल्डशीडर (Gold scheider) के इस दृष्टिकोण को बाद मे लोगों ने गलत माना।

भान फ्रे (Van fray) ने घोड़े के केश (Horse hair) और विशाल दर्पण (Magnifying glass) की सहायता से त्वचा के विभिन्न भागों पर प्रयोग करके यह प्रमाणित किया कि स्पर्श-सवेदना विन्दु एक दूसरे से पूर्णत भिन्न है। उसके ही प्रयोगों से यह भी निर्विवाद है कि वेदना-विन्दु स्पर्शविन्दुओं की अपेक्षा अधिक सवेदनशील होते है। इतना ही नहीं, वेदना विन्दुओं को उत्तेजित करने मे स्पर्श विन्दुओं की अपेक्षा अधिक समय लगता है और इनकी सख्या भी स्पर्शविन्दुओं की अपेक्षा ज्यादा होती है। २० से ४०

लाख के अन्तर्गत वेदना विन्दुओं का अनुमान त्वचा प्रदेश पर मनोवैज्ञानिकों ने लगाया है। प्रयोग परिणाम इसके साक्षी है कि नेत्राभिष्पन्द (Eye-conjunctive) म वेदना विन्दु ही है स्पर्श विन्दु नही। इसी तरह कपोल (Cheek) के निचले भाग म स्पर्श विन्दुओं का ही बाहुल्य है, किन्तु वेदना विन्दुओ का पूर्णत अभाव है। इस प्रकार वर्तमान युग में वेदना विन्दुओं की स्वतत्र सत्ता विद्वानो ने स्वीकार की है।

इस सम्बन्ध मे यह भी स्मरणीय है कि सभी वेदना सवेदना गुण म समान नही होती। जब उत्तेजना कुछ मन्द (Faint) रहती है तो वेदना सवेदना के साथ खुजलाहट का भी अनुभव कुछ अशों मे होता है। तीव्र उत्तेजना स्पष्ट वेदना सवेदना उत्पन्न करती है। ये सवेदनाएँ पूर्णत अरुचिकर नही होती, लेकिन तीव्र उत्तेजना म समुत्पन्न सवेदना निस्सदेह अरुचिकर, असह्य एव स्पष्ट होती है। कुछ सवेदनाये प्रिय और मन्द भी होती है। निश्चित भागों मे असह्य, स्पष्ट एव तीक्ष्णवेदना सवेदना की भी अनुभूति होती है। ध्यान भग (Distraction) या सन्निकट प्रदेश मे आघात वेदना सवेदना की तीव्रता को कम कर देता है। इस कथन की पुष्टि हम अपने नित्यप्रति के अनुभवों से कर सकते है।

जहाँतक वेदना विन्दुओं के मालूम करने की प्रयोग विधि का प्रश्न है उसके सम्बन्ध मे उतना ही कहना पर्याप्त है कि जिस प्रकार स्पर्श विन्दुओं की खोज की जाती है उसी प्रकार वेदना विन्दुओं की भी जानकारी की जाती है। लेकिन, वेदना विन्दु का मालूम करने के लिये केश धर (Hair holder) को त्वचा पर इस तरह व्यवस्थित किया जाता है कि केश कुछ मुड जाता है और मुडकर वेदना।सवेदना उत्पन्न करता है।

वेदना सयोजन (Pain adaptation)

साधारणत हम सोचते है कि वेदना का सयोजन (Adaptation) नही होता है, किन्तु मनोवैज्ञानिक प्रयोग इस तथ्य का प्रतिपादन करते है कि यदि उत्तेजना निरन्तर बनी रहे तो वेदना का भी सयोजन होता है। यदि हम किसी सूई को समान शक्ति से कुछ दूर तक किसी त्वचा प्रदेश मे चुभाये तो प्रारभ मे वेदना सवेदना की अनुभूति होगी किन्तु कुछ काल में ही उसमे कमी आने लगेगी और अन्त मे हमे वेदना की अनुभूति न होकर स्पर्श मात्र की ही सवेदना होगी। इसी प्रकार किसी भी उत्तेजना से वेदना-सवेदना उत्पन्न करके सयोजन व्यापार दिखलाया जा सकता है। दस मिनट के अन्तर्गत ही वेदना का सयोजन देखने में आता है। स्टोन (Stone) तथा डलेनबाच (Dallenbach) ने अपने प्रयोगों द्वारा प्रदर्शित किया है कि यदि १० मिलीमीटर के क्षेत्र मे कई सूइयाँ एक साथ चुभोई जाएँ तो पाँच मिनट मे ही सयोजन होता है। यहाँ यह व्यक्त कर देना अप्रासगिक नही होगा कि वेल्स (Wells), हाईसिंगटन (Hoisington) आदि विद्वानों के प्रयोगों से यह भी स्पष्ट है कि उत्तेजना को हटा देने पर जो अनुसवेदना (After sensation) होती है वह बहुत ही तीव्र एव प्रभावशाली होती है। जब एक प्रयोज्य पर सयोजन-व्यापार का प्रयोग किया गया तो पहले उसने तीक्ष्ण एव तीव्र वेदना की सवेदना को व्यक्त किया। उसके बाद वह सवेदना क्रमश तीक्ष्ण वेदना, वेदना, मन्दवेदना, निर्बलवेदना, स्पर्श, निर्बल स्पर्श, खुजलाहट मे परिणत होकर अन्त मे पूर्णत विलीन हो गई। उस अन्तनिरीक्षण से वेदना सयोजन क्रम का ज्ञान स्पष्ट रूप मे हो जाता है।

ताप-संवेदना

(Temperature sensation)

ताप से अर्थ ठढा और गर्म की सवेदना से है। अत यहा हम ठढा या शीत-सवेदना और गर्म या उष्ण-सवेदना की चचा इसके अन्तर्गत करेगे।

(क) शीत-संवेदना

(Cold sensation)

शीत सवेदना के सबध मे पहले-पहल ब्लिक्स (Blix), गोल्डशेडर तथा डोनाल्डसन (Donaldson) ने एक दूसरे से स्वतन्त्र होकर अध्ययन किया। अपने अध्ययनों के फलस्वरूप उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि शीत-बिन्दु त्वचा मे सभी जगह समान सख्या में नही पाए जाते, बल्कि कही अधिक और कही कम पाए जाते है। किसी-किसी स्थान पर तो शीत-बिन्दु होते ही नही। गोल्डशेडर ने बतलाया कि शीतबिन्दु एक दूसरे से काफी सटे रहते है। उदाहरणार्थ उसने बतलाया कि हाथ के पृष्ठ भाग के एक वर्ग सेण्टीमीटर मे ६८ शीत-बिन्दु होते है। किन्तु अन्य विद्वानों ने इन बिन्दुओं को इतना सटा नही माना है। सोमर ने एक वर्ग सेण्टीमीटर मे ६ से २४ शीत बिन्दुओं की सख्या के पक्ष मे अपना विचार व्यक्त किया है। इसके अनुसार सम्पूर्ण शरीर पर शीत बिन्दुओं की सख्या २५०००० के लगभग है। प्रारभ मे विद्वानो का ऐसा दृष्टिकोण था कि कोई शीत-बिन्दु बराबर ठढे की सवेदना ही उत्पन्न करता है, किन्तु बाद के प्रयोगों ने इस दृष्टिकोण का खण्डन किया है। प्रयोग करने पर प्राय ऐसा देखा गया है कि शीतबिन्दुओं की सख्या मे कमी बेशी होती रहती है और साथ ही उनके स्थान मे भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। एक प्रयोग से पता चलता है कि शीत-बिन्दुओ की सख्या उत्तेजना की तीव्रता (ठढापन) पर भी निर्भर करती है।

भानफ्रे (Van fray) के प्रयोगो से यह स्पष्ट है कि कनीनिका (Cornea) के सीमान्त प्रदेश पर भी शीतबिन्दु (Cold spot) पाए जाते है। इतना ही नहीं शीतबिन्दु, उष्णबिन्दुओ की अपेक्षा त्वचा के ऊपरी धरातल पर होते है। ये बिन्दु तीक्ष्ण-सवेदना बहुत ही कम देते है। ये समूह रूप मे भी पाए जाते है और यत्र तत्र बिखरे हुए भी। कीसो (Kiesow) ने अपने प्रयोगो द्वारा यह प्रदर्शित कर दिया है कि शीत सवेदनाएँ बहुत शीघ्र आविर्भूत और विलीन होती है। भानफ्रे ने प्रयोग द्वारा विरोधाभासी शीतबिन्दुओ (Paradoxical cold spot) की भी सत्ता को प्रतिपादित किया है। कहने का अभिप्राय यह है कि शीत बिन्दुओ को उष्ण उत्तेजना से उत्तेजित करने पर भी कही कही शीत-सवेदना की प्राप्ति होती है जिसे मनोवैज्ञानिक भाषा में विरोधाभासी शीत बिन्दु कहते है। लेकिन इस सबध मे यह स्मरणीय है कि विरोधाभासी शीत बिन्दुओं का पता लगाने के लिए पतली उष्ण उत्तेजना का व्यवहार करना आवश्यक है, क्योकि अधिक चौडी उष्ण उत्तेजना शीत-बिन्दुओ के प्रभाव को समाप्त कर देती है।[1]

१ शीत-बिन्दुओ का पता प्रयोग द्वारा कैसे लगाया जाता है इसकी विधि 'मनोवैज्ञानिक प्रयोग' (प्र० ग्रन्थमाला कार्यालय पटना–४) में देखें।

(ख) उष्ण-संवेदना
(Warm sensation)

जिन विद्वानों ने शीत संवेदना का अध्ययन किया है उन्होंने ही उसके साथ साथ उष्ण संवेदना का भी अध्ययन किया है। शीत बिन्दुओं की तरह उष्ण बिन्दुओं (Warm spots) के भी सम्बन्ध मे उन्होंने यही व्यक्त किया है कि सभी स्थल पर उष्ण बिन्दु समान मात्रा और संख्या मे नही प्राप्त होते। शरीर के कुछ ऐसे स्थल भी हैं जहा कि इन बिन्दुओं का सर्वथा अभाव रहता है। सोमर ने प्रत्येक वर्ग सेन्टीमीटर मे ० से ३ उष्णबिन्दुओं की संख्या व्यक्त की है और सम्पूर्ण शरीर पर इनकी संख्या ३०,००० के लगभग प्रमाणित किया है। इस प्रकार हम देखते है कि शीत बिन्दुओं से उष्ण बिन्दु ही त्वचा प्रदेश मे कम संख्या मे पाए जाते है। जिस तरह शीत बिन्दुओं की संख्या उत्तेजना की प्रबलता पर निर्भर करती है, उसी प्रकार उष्ण बिन्दुओ की संख्या भी उत्तेजना की प्रबलता पर निर्भर करती है। त्वचा प्रदेश के समान ही उष्ण उत्तेजना से अधिक उष्ण बिन्दुओं की प्राप्ति नहीं होती है, किन्तु तापमान बढा देने से उनकी संख्या मे वृद्धि हो जाती है। डलेनबाच (Dallenbach) ने इसकी प्रयोगात्मक विधि को व्यक्त किया है। भानके और हागर (Hagar) ने सभी पुरुषों के गुप्तांगों के उष्ण बिन्दुओं का भी अध्ययन किया है। इसमे पता चलता है कि इन अंगो पर यह बिन्दु शीत बिन्दु की तरह पूर्ण विकसित नही रहता। विभिन्न प्रयोगों से यह प्रमाणित है कि उष्ण बिन्दु शीत बिन्दु की अपेक्षा त्वचाप्रदेश के भीतरी स्तर मे स्थित रहता है, इसलिये इसका प्रतिक्रियाकाल (Reaction time) लगभग १८ सेकण्ड और शीत का १५ सेकण्ड के लगभग होता है। ये बिन्दु शीत बिन्दुओं की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण होते है। उष्ण संवेदना कुछ अधिक काल तक टिकाऊ (Durable) भी होती है। भानके तथा आलरुज (Alrutz) ने विरोधाभासी उष्ण बिन्दु (Paradoxical warm spot) की सत्ता को भी प्रमाणित किया है, किन्तु ऐसे बिन्दुओं का अन्वेषण करना सरल कार्य नहीं है। अत्यधिक सबल उष्ण उत्तेजना वेदना संवेदना को भी उत्पन्न करती है जिसके फलस्वरूप उष्ण के साथ-साथ वेदना संवेदना का भी अनुभव होता है। यहाँ पर उष्ण बिन्दु की जानकारी के लिए भी उसी प्रयोग-विधि का उपयोग किया जाता है जिससे शीतबिन्दु का पता चलता है।

दैहिक शून्य तथा ताप-संवेदना का संयोजन
(Physiological zero & thermal adaptation)

जब कोई शीत या उष्ण उत्तेजना किसी त्वचा प्रदेश मे शीत या उष्ण की संवेदना उत्पन्न नही करती तब उसे दैहिक शून्य (Physiological zero) कहते है। जैसे यदि उतने गर्म पानी मे उँगली डाली जाय जितनी गर्म (तापमान) उंगली है तो गर्म न तो गर्म की ही संवेदना होगी और न ठंडे की। लेकिन यदि उंगली की त्वचा के तापमान से कम तापमान के पानी मे उँगली डाले तो शीत और अधिक तापमान के पानी मे डाले तो उष्ण-संवेदना का अनुभव होगा। इस सम्बन्ध मे यह स्मरणीय है कि दैहिक शून्य बराबर निश्चित नही रहता, क्योंकि एक भाग से दूसरे भाग मे और एक ही भाग मे विभिन्न समयों

मे यह परिवर्तित होता रहता है। उदाहरण, यदि उँगली की त्वचा का तापमान ३२° सेण्टीग्रेट है तो उसी तापमान का जल ठंडा या गर्म किसी तरह की भी सवेदना उँगली के त्वचाप्रदेश पर उत्पन्न नहीं करेगा और उससे अधिक तापमान के जल मे उस अगुली को डालने पर उष्ण सवेदना मालूम होगी। लेकिन कुछ देर के बाद उष्ण की यह सवेदना गायब हो जाएगी। फलत यदि उसी उँगली को ३२° तापमान के पानी मे फिर डाले तो पहले शीत सवेदना होगी, बाद उत्तेजना तटस्थ नही मालूम होगी। इस प्रकार हम देखते है कि दैहिक शून्य (Physiological zero) घटता बढ़ता रहता है।

कभी-कभी हम ऐसा अनुभव करते है कि एक ही चीज एक हाथ मे गर्म और दूसरे हाथ मे ठढा की सवेदना उत्पन्न करती है। इसका कारण यह रहता है कि किसी वजह से एक हाथ ठढा रहता है और दूसरा गर्म हो जाता है। इसे ही हम ताप सयोजन (Thermal adaptation) कहते है। लेकिन इस सयोजन की भी एक सीमा है। अधिक उष्ण और अधिक शीत उत्तेजनाओं से त्वचा प्रदेश सयोजित नहीं होता है। यानी, किसी भी अवस्था मे जब काफी गर्म या ठढी चीज त्वचा पर रखी जाती है तो उसकी सवेदना होती ही है। इस सबन्ध मे एबाट (Abbott) ने जो प्रयाग अपने प्रयोज्यों पर किया उसका अवलोकन करने से यह स्पष्ट है कि उसके सभी प्रयोज्यो पर १७ ९° से ४९° सेण्टीग्रेड के अन्तर्गत तापमान मे ताप सयोजन देखा गया। गर्ट्ज (Gertz) तथा होल्म (Holm) ने प्रयोगो द्वारा यह भी दर्शित किया है कि त्वचा और उत्तेजना के तापमान मे जितना अधिक अतर रहता है उतना ही अधिक सयोजन मे समय भी लगता है। अत सयोजन का कोई निश्चित समय नही बतलाया जा सकता।

अन्तरावयव संवेदना

(Organic sensation)

आज से कुछ दिन पहले तक प्राय सभी मनोवैज्ञानिक अन्तरावयव (Organic) सवेदना की स्वतत्र सत्ता स्वीकार नही करते थे, क्योकि इन सवेदनाओ की ज्ञानेन्द्रियाँ ऐसी नही है जिन्हे सबलोग सफलतया पा सके और न इन पर प्रयोग ही हुए है। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार की सवेदनाएँ कुछ ऐसी अस्पष्ट होती है कि पहले तो इनका सामान्य अवस्था मे ज्ञान ही नही होता है और यदि ज्ञान होता भी है तो इनकी विशेषताएँ कुछ ऐसी विचित्र है कि कुछ लोगो ने इन्हे त्वक् सवेदनाओ के अन्तर्गत रक्खा है। कुछ दूसरे विद्वानों ने इन्हे भाव का ही एक रूप माना है और कुछ लोगो ने इसे सवेगात्मक अनुभव (Emotional experience) समझा है। यद्यपि इस दिशा मे अभी तक प्रयोगात्मक प्रमाणो की कमी है लेकिन अब सबो ने इसका स्वतन्त्र महत्व स्वीकार कर लिया है। वस्तुत हमारे मानस जीवन की स्वस्थता अधिकाशत इसी सवेदना समूह पर निर्भर करती है। हमारी शारीरिक स्वस्थता और उमग (Mood), भाव, आदि को भी इस सवेदना का कम श्रेय प्राप्त नहीं है।

अन्तरावयव सवेदना वह सवेदना है जिसकी अनुभूति हमे आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन के कारण होती है यथा, भूख, प्यास, वमनेच्छा (Nausea), मूत्राशय एव आँत का तनाव, कपकपी, कामेच्छा, दम घुटना आदि। उपर्युक्त सभी अनुभवों का ज्ञान

अन्तरावयव सवेदना के ही बाद होता है। इस प्रकार अन्तरावयव सवेदना म एक ही प्रकार की सवेदना नही बल्कि कई प्रकार की सवेदनाएँ होती हैं। इन्हें अन्तरावयव सवेदना इसीलिए कहा जाता है कि इनको उत्पन्न करने के लिए न तो बाहरी उत्तेजना की और न बाहरी ज्ञानेन्द्रिय की जरूरत पड़ती है। इन सवेदनाओं के लिए ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर के आतरिक जगत् मे ही रहते है और उनको उत्तेजनाएँ भी आतरिक जगत के परिवर्तन म ही प्राप्त होती है। अधिक स्पष्टीकरण के लिए कह सकते हैं कि पेट, आँत, आतरिक वैयक्तिक रचना, तिल्ली, गला, फेफड़ा, तथा हृदय की परिस्थिति म परिवर्तन से जो सवेदना उत्पन्न होती है उसी को अन्तरावयव सवेदना कहते है। इन आन्तरिक अगो (Internal organs) की क्रियाओ से स्वत सचालित स्नायु मडल (Autonomic Nervous System) से आबद्ध ज्ञानवाही ततुएँ (Sensory fibres) उत्तेजित होती है और हम सवेदना की अनुभूति होती है।

प्यास और भूख की सवेदना साधारणत सभी जीव नित्यप्रति क जीवन म करते हैं। इसलिए यहाँ हम इन दोनों सवेदनाओं का सक्षेप मे उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं। कार्ल्सन (Karlson) तथा कैनन (Cannon) ने इस सम्बन्धी जो प्रयोग कुत्ते और आदमियों पर किया है उसका अध्ययन करने से यह पता चलता है कि पेट की दीवाल के सकुचन के कारण भूख की सवेदना होती है। जब भोजन जीव को नहीं मिलता है तब कुछ काल तक उसे भूख की सवेदना प्रतीत होती है, किंतु यदि उपवास के दिनों तक किया जाए तो तीन चार रोज तक भूख की मन्द सवेदना होती है और बाद म इसका पूर्णत समाप्त हो जाती है। लेकिन भोजन का दृश्य या विचारमात्र उस सवेदना को पुन उत्पन्न करने म समर्थ होता है। हाँ प्रयोगात्मक प्रमाण इस बात के साक्षी हैं कि भूख की जितनी ही तीव्र मात्रा होती है उतना ही अधिक पेट की दिवालो म सकुचन भी रहता है। प्यास की सवेदना कठ (Throat) के आवरण सूखने के कारण होती है। यदि उस आवरण को किसी प्रकार से द्रव द्वारा गीला कर दिया जाए तो प्यास भी बुझ जाती है। इस प्रकार जो प्यास के सम्बन्ध मे प्रयोगात्मक प्रमाण उपस्थित है उनसे यह स्पष्ट है कि जब स्नावग्रंथि की क्रिया रुकने के कारण कठ सूखता है तभी प्यास मालूम होती है। इसके अतिरिक्त अन्य कृत्रिम उपायों से भी मनोवैज्ञानिकों ने प्यास सवेदना को उत्पन्न करने का प्रयास किया है, पर उनसे भी प्यास के लिए गला आवरण सूखने की ही प्रधानता प्रतिपादित हुई है।

गति संवेदना

(Kinesthetic Sensation)

गति सवेदना को स्नायविक सवेदना (Muscular sensation) भी कहते है। गति सवेदना की भी अपनी स्वतत्र सत्ता है और इसको विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न नाम से अभिव्यक्त किया है। इसके द्वारा हमलोगों को अपने शारीरिक अगों की स्थिति, गति और पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान होता है। हमारे हाथ, पैर, उगली आवश्यकतानुसार सचालित होते रहते है और साधारणत हमे इनकी चेतना भी नहीं रहती है। किंतु, जब हम कुछ सावधान होते हैं तो हम किसी अग की गति (Movement)

गह स्थिति का ज्ञान गतिसंवेदना के ही द्वारा सरलतया हो जाता है। कुछ व्यक्ति ऐसा भी सोच सकते हैं कि हमे, हाथ, पैर आदि अंग की गति और स्थिति का ज्ञान दृष्टि के द्वारा होता है। लेकिन उनका सा सोचना उचित नही होगा। यदि हम अपनी दोनो आँखो को बन्दकर अपने हाथ को घुमाव तो हम किस दिशा मे हाथ घुमा रहे है इसका ज्ञान हमे हो जाता है। इतना ही नही, हाथ घुमाए जाने पर हम यह भी जान जाते है कि हमारा हाथ घूम रहा है। इस प्रकार हमे यह मालूम होता है कि शरीर के विभिन्न अंगों की गति, स्थिति और उनके पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान हमे गति या स्नायविक संवेदना (Muscular sensation) के ही आधार पर होता है।

गोल्डशेडर (Goldscheder) ने अपने प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित किया कि मांस-पेशियों (Muscles) की अपेक्षा संधि (Joint) के द्वारा हमे किसी अंग विशेष की गति की संवेदना अधिक होती है। संधि की शून्यता की अवस्था मे गति का ज्ञान बहुत ही कम या बिल्कुल ही नही होता। गति संवेदना के आधार साधारणत वे त्वचा, मांसपेशी (Muscls) और टेण्डन (Tendons) है जिनमे ज्ञानवाही स्नायुशिराओं (Sensory nerve endings) और संधियो (Joints) की भरमार है। गोल्डशेडर ने अपने प्रयोगो मे यह भी पाया है कि यद्यपि संधियो मे ज्ञानवाही स्नायुओ की शिराएँ नही है, किन्तु गतिसंवेदना की अनुभूति उन्ही के द्वारा होती है। उन्ही प्रयोगों से इस बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि संधि आवरण और स्नायविक झिल्ली (Synovial membrane) मे संवेदनशीलता (Sensitivity) बहुत ही कम मात्रा मे है। प्रयोग करने पर देखा गया है कि बाहु पर आधे अंश की गति का भी ज्ञान हमलोगो को होता है। त्वचा को शून्य कर देने पर इस संवेदना मे किसी प्रकार की कमी नही पडती, अतएव इसमे त्वचा का हाथ नही रहता है। गोल्डशेडर ने, जैसा कि पहले ही व्यक्त किया जा चुका है, संधि के ही पक्ष मे अपने प्रमाणो को उपस्थित किया। लेकिन पिल्सबरी (Pillsbury) ने जो प्रयोग इस दिशा मे किया है उससे यह प्रमाणित है कि मांसपेशी (Muscle) को शून्य कर देने पर भी गति की संवेदना मे कमी पडती है। और जब दोनो को शून्य कर दिया जाता है तब इसकी संवेदना मे बहुत ही कमी पड जाती है। इससे मालूम होता है कि गतिसंवेदना के लिए मांसपेशी (Muscle) और टेण्डन (Tendon) और इनमे सन्निहित ज्ञानवाही नाडी शिराएँ (Sensory nerve endings) आवश्यक है।

जब हम इस संवेदना की विशेषताओं पर ध्यान देते है तो देखते है कि इसमें कई विशेषताएँ है। अगर हम अपनी बाहु को कुछ दूर घुमाते है और फिर उसे उससे अधिक देर घुमाते है तो दोनों गतिसंवेदनाओ मे फैलाव (Extension) के कारण भिन्नता पडती है। इसलिए फैलाव इसकी एक विशेषता हुई। इस संवेदना मे सत्ताकाल (Duration) की भी विशेषता पाई जाती है, क्योंकि मन्द गति से किसी अंग को संचालित करने पर देर तक और तीव्र गति से संचालित करने पर थोड़े काल तक हम इसका अनुभव करते है। एक अंग को संचालित करने पर जिस गति की अनुभूति होती है उसी प्रकार की अनुभूति दूसरे अंग के संचालन मे नही होती। अतएव प्रकार (Kind) भी इसकी एक अपनी विशेषता है। कुछ स्नायविक संवेदना मे तीव्रता (Intensity) की भी विशेषता विद्यमान रहती है, किंतु यह सभी स्थलों पर लागू नही होता है।

गति सवेदना के द्वारा शारीरिक अगो की गति और स्थिति (Position) का ज्ञान तो होता है, इसके साथ साथ वजन (Weight) और भार (Resistance) का भी ज्ञान होता है। वजन के उठाने पर जो ज्ञान और शक्ति लगानी पड़ती है उसी के आधार पर हम उस वजन का अदाज करते है। ये ज्ञान भी स्नायविक सवेदना सम्बन्धी हुए है उन्हे हम कार्ल सीशोर (Carl Discovery) के अनुसार तीन श्रेणियों मे विभक्त कर सकते है। पहिली श्रेणी मे हम प्रयोग करते है जो कि अवयवों की गति (Movements of the limbs) और गति विस्तार (Extent of movement) के अदाज को प्रभावित करनेवाले अगो की जानकारी के लिए किए जाते है। दूसरी श्रेणी मे वजन के अदाज (Estimation of weight) और तीसरी मे चक्कर व्यापार (Rotation of the body) के प्रयोगो की परिगणना की जा सकती है।

गति विस्तार (Extent of movement) को सवेदना मे हम कोन से अग काम करते है इसकी जानकारी के लिए हम साधारण प्रयोगो का आश्रय ले सकते है। प्रयोज्य को सामने बैठकर अपने दोनो हाथो की अगुलियो का एक दूसरे के किनारे पास मे रखना। तब प्रयोक्ता के आदेश पर अपनी दोना अगुलियो को प्रतिकूल दिशा मे समान गति से सचालित करे और उसके समाप्ति-सकेत पर अगुलियो का घुमाना स्थगित कर दे। प्रयोग के समय आँखे बन्द रहेगी। गति विस्तार (Extent of movement) की माप करने पर पता चलेगा कि जिसमे दाहिने हाथ की प्रधानता रहती है वह बायी अगुली को अधिक दूर तक उतने ही काल मे घुमा देता है और जिसमे बाएँ हाथ की प्रधानता रहती है वह बाएँ हाथ की अगुली को दाहिने हाथ की अगुली की अपेक्षा अधिक घुमाता है। अगुलियो के क्रमश घुमाने पर भी ऐसा ही देखने मे आता है। लेकिन उनकी गति मे अन्तर पड़ने से इसमे कमी बेशी भी होती है।

वजन आगणन (Estimation of weights) मे सन्निहित विभिन्न अगो का अध्ययन करने के लिए वजन उत्तोलन (Weight lifting) का प्रयोग दार्शनिकों के बीच बहुत प्रसिद्ध है। इसमे विभिन्न वजनो की उत्तेजनाओ को हाथ से उठाकर अदाज करना पड़ता है। कभी तो दो उत्तेजनाओ के वजनों की तुलना करवाई जाती है और कभी एक ही वजन का अदाज करवाया जाता है। इस प्रकार के प्रयोग मे वजन आगणन कई अगों पर निर्भर करता है। यद्यपि दबाव सवेदना का भी इसमे हाथ कुछ अशो मे रहता है, किन्तु स्नायविक सवेदना का महत्व इसमे इतना अधिक है कि उसके सामने भार सवेदना का महत्व फीका पड जाता है। मासपेशी (Muscles) एव टेण्डनो (Tendons) से उत्पन्न सवेदनाओं का हाथ इसमे अत्यधिक रहता है। जिस गति से भार उठाया जाता है उस गति का असर भी वजन के अदाज पर पड़ता है। जब हम वजन आगणन मे प्रयोगात्मक अध्ययन करते है तब ऐसी अवस्था मे भार उठाने मे लगी शक्ति, सरलता, भार उठाने की ऊँचाई एव बाद मे उठाये जानेवाले भार के अग हमारे वजन आगणन को प्रभावित करते है। जब हम आँखों को बन्द किए बिना दो भारो को क्रमश उठाते है तो जो भार आकार प्रकार में बडा मालूम होता है उसे अधिक शक्ति के साथ और जो छोटा मालूम होता है उसे कम शक्ति के साथ उठाते है जिसके फलस्वरूप बडा भार हल्का (Lighter) और छोटा भार भारी (Heavier) मालूम होता है। ऐसी स्थिति मे वजन के अदाज

पर दृष्टि प्रत्यक्षीकरण (Visual perception) का भी प्रभाव पडता है। इस तथ्य की पुष्टि आकार भार विपर्यय (Size weight illusion) द्वारा होती है जिसमें समान आकार और वजन के दो भारो मे से बडे आकार प्रकार के भार को हलका और छोटे आकार प्रकार के भार को भारी अनुगणित किया जाता है। आखे बन्द करने पर भी यदि प्रयोज्य को आकार-प्रकार का ज्ञान हो जाता है तो भी वह बडे आकार प्रकार के भार को हल्का ही आकता है। किन्तु, यदि उस किसी प्रकार का सकेत आकार प्रकार सबधी नही मिलता है तब उसमे यह विपर्यय नही देखा जाता है। प्रयोगात्मक विधि से विपर्यय-परिमाण का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। प्रयोगो से यह स्पष्ट है कि इस प्रकार का विपर्यय परिमाण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति मे परिवर्तित होता रहता है। बहुत छोटे बच्चो मे इस प्रकार का दोष बहुत कम देखने मे आता है, लेकिन प्रौढ व्यक्तियों मे इसकी मात्रा बच्चो से अधिक पाई जाती है।

इस स्थल पर यह व्यक्त कर देना अप्रासगिक नही होगा कि यदि दाऍ हाथ से भारी और बाऍ हाथ से हल्के, लेकिन समान आकार प्रकार के, दो भारो का क्रमश बीस और तीस बार उठाया जाय तो [illegible] (Adaptation) भी देखने मे आता है। इसके फलस्वरूप प्रयोज्य को दोनो भार बराबर मालूम होने लगते है और पूछने पर वह भारी भार को हल्के भार के बराबर व्यक्त करता है।

स्थिर की संवेदना (Static sensation)

स्थिर की सवेदना और गति सवेदना मे इतनी अधिक समानता है कि हम इसे गति सवेदना के अन्तर्गत रखना विशेष उचित और सुविधाजनक समझते है। इसके पहले कि हम दोनों सवेदनाओ की समानता पर प्रकाश डाले यह व्यक्त कर दे [illegible] आवश्यक है कि यह वह सवेदना है जिसके कारण हम शरीर की स्थिति, मस्तक सचालन (Head movement) एव शरीर सतुलन (Balance) का ज्ञान होता है।

उपर्युक्त दोनो सवेदनाए शरीर गति और उसकी स्थिति से ही आबद्ध है। जिन दृष्टिकोणो को ध्यान मे रखकर हम गति सवेदना को गति या स्नायविक सवेदना कहते है उन्ही को ध्यान मे रखकर हम इसे भी गति [illegible] के नाम से अभिव्यक्त कर सकते है, क्योकि इसमे भी गति सम्बन्धी ही कार्य होते है। दोनो ही सवेदनाओ का सबध हमारे चेतन मानस जीवन से बहुत ही कम रहता है और दोनो ही बहुत अस्पष्ट स्वरूप की है। गतियों की अचेतन सहव्यवस्था (Co ordination) एव स्नायविक स्तर के सहज सतुलन के लिए इन दोनो की ज्ञानेन्द्रियाँ समान रूप से कार्य करती है। इसी प्रकार इन दोनों मे और भी कई समानताएँ दिखाई जा सकती है जिनमे उपर्युक्त समानताएँ प्रमुख है।

स्थिर की सवेदना की ज्ञानेन्द्रिय को विद्वानो ने अपने अन्वेषणो द्वारा अन्त कर्ण (Internal ear) मे माना है। कुहर (Vestibules) और अर्द्धचन्द्राकार नलियाँ (Semicircular canals) इसके दो विभाग है जो निरतर द्रवपदार्थ से परिपूर्ण रहते है। इनके आवरण के निश्चित स्थानो पर केश लोमाणु (Hair cells) रहते है जो द्रव पदार्थ की गति से उत्तेजित होते है। अभिप्राय यह है कि किसी प्रकार की मस्तक गति से इसमे उत्तेजना होती है।

यह इन्द्रिय, शारीरिक सतुलन का आधार है इसको प्रमाणित करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रकार के प्रयोगों का आश्रय लिया है। पशुओं पर प्रयोग करके यह प्रदर्शित कर दिया गया है कि अर्धवृत्ताकार नली (Semicircular canal) को निकाल देने से वह अपने शरीर का सतुलन करने में असमर्थ होता है और गर्दन झुकाने पर अपनी गर्दन को एक ओर झुकाकर रखता है। विद्युतिक धारा (Electric current) का प्रवेश दोनों कानों मे कराकर यह भी दिखला दिया गया है कि ऐसा करने पर मस्तक झुक जाता है। कुटीर इन्द्रिय की व्याधि से ग्रस्त रोगियों का निरीक्षण करने पर भी ऐसा ही देखने में मिलता है। बहुत से बहरे व्यक्ति भी अपने शारीरिक सतुलन को ठीक रखने में असमर्थ पाए जाते है।

सर घूमने की संवेदना का भी आधार कुटीर (Vestibules) ही है। यह किसी प्रकार की गति से क्योंकर उत्तेजित होती है इसको प्रमाणित करने के लिए किसी प्रयोज्य को घुमाया जा सकता है और यह भी देखा जा सकता है कि इस प्रकार के घुमाने मे उसे किस प्रकार की अनुभूति होती है। जब किसी प्रयोज्य को समान गति और समान धरातल मे घुमाया जाता है तब उसे किसी प्रकार की भी चेतना (Consciousness) नहीं रहती है। हाँ, आरम्भ और अन्त में उसकी चेतना अवश्य उत्पन्न होनी चाहिए। लेकिन मस्तक के घुमाने या हिलाने की गति को तीव्र करने पर उसे इस व्यापार का ज्ञान हो जाता है। घुमाने की चाल धीमी होने पर उसे प्रतिकूल दिशा में घूमने का विपर्यय (Illusion) होता है। आँख खुली रहने की अवस्था में दूसरे प्रकार के व्यापारों की अनुभूति होती है। घुमाने के द्वारा सर घूमने का भी आधार होता है। किन्तु, इसके अतिरिक्त और कई कारणों से भी सर में चक्कर आने लगता है। इस स्थल पर यह उल्लेखनीय है कि यदि प्रयोज्य को न घुमाकर उसकी परिस्थिति को ही उसके चारों ओर घुमाया जाए तो भी उसे उपर्युक्त प्रकार की ही अनुभूति होगी। इस अवस्था में अर्धवृत्ताकार नलियाँ अप्रत्यक्षतया दृष्टि के द्वारा उत्तेजित होती हैं। इस संवेदना पर भी मनोवैज्ञानिक प्रयोग करने के लिए विज्ञानों ने कई विधियाँ प्रस्तुत की है। जिस प्रकार अन्य संवेदनाओं में सयोजन व्यापार परिलक्षित होता है उसी प्रकार इस संवेदना में भी सयोजन होता है। नटों और नृत्यकारों के जीवन में ऐसे प्रमाणों का बाहुल्य है जो इस सयोजन व्यापार का प्रतिपादन करते है।

वेबर-नियम

(Weber's law)

वेबर नियम का प्रतिपादन लिपजिग विश्वविद्यालय के शरीर रचना शास्त्र (Anatomy) के अध्यापक वेबर ने किया। वेबर का यह नियम मनो-भौतिक-विज्ञान (Psychophysics) पर आधारित है। मनो-भौतिक-विज्ञान यह बतलाता है कि उत्तेजना के बाह्य रूप और उसके प्रत्यक्षीकरण में अन्तर होता है। ४० सेर के वजन को हम कभी ४१ सेर और कभी ३९ या ४० सेर का अन्दाज कर लेते है। इसी प्रकार, दो उत्तेजनाएँ भिन्न हो सकती है, परन्तु सम्भव है उनका प्रत्यक्षीकरण एक ही जैसा हो। जैसे, यदि २०१ मी० मी० की रेखा को २०० मी० मी० की एक दूसरी रेखा के साथ उपस्थित किया

जायँ तो संभव है दोनों रेखाएँ लम्बाई मे एक दूसरे के बराबर ही दिखलाई पडे। लेकिन, यदि पहली रेखा की लम्बाई धीरे धीरे कुछ और बढाई जाय तो एक विन्दु ऐसा आएगा जब वह रेखा २०० मी० मी० की रेखा से निश्चित रूप से बडी मालूम पडने लगेगी। वेबर के अनुसार उस कम से कम अन्तर (Difference) को जिसे किसी निश्चित उत्तेजना मे जोडने या घटाने से उसका मात्र प्रत्यक्षीकरण (Just perception) हो, सीमान्त भिन्नता (Differential limen or D L) कहते हैं। ऊपर के उदाहरण मे यदि २०० मी० मी० की रेखा कम से कम २०२ मी० मी० की रेखा से छोटी लगे तो यह (२०२–२००=) २ मी० मी० का अन्तर सीमान्त भिन्नता कहलायेगा। यानी, २०० मी० मी० की रेखा को जब कम से कम २०२ मी० मी० या १९८ मी० मी० की रेखा के साथ उपस्थित किया जाय तभी प्रयोज्य भिन्नता को समझ सकेगा। लेकिन, जब २०० मी० मी० की रेखा को २०१ मी० या १९९ मी० मी० की रेखा के साथ उपस्थित किया जायगा तो प्रयोज्य इन्हे २०० मी० मी० से निश्चित रूप से भिन्न नही समझ सकेगा, क्योंकि यहाँ दोनों रेखाओं में अन्तर २ मी० मी० (सीमान्त भिन्नता या D L) से कम है।

वेबर ने त्वक् सवेदना (Cutaneous sensation) और गति सवेदना (Kinesthetic sensation) सबन्धी कई प्रयोग विभिन्न साधनो (Materials) के साथ किया। उन प्रयोगों के आधार पर उसने यही पाया कि प्रयोज्य दो विभिन्न उत्तेजनाओं मे अन्तर तभी अनुभव करते है जब उनमे वास्तविक अन्तर सीमान्त भिन्नता (D L) के बराबर रहता है। सीमान्त-भिन्नता के सबन्ध मे वेबर ने पुन व्याख्या करते हुए कहा कि यह वह अन्तर है जिसे यदि वास्तविक या प्रामाणिक उत्तेजना (Standard stimulus) मे जोडा या घटाया जाय तो ७५% प्रयासों मे प्रयोज्य इस अन्तर को अनुभव करेगा। यानी, यदि २०२ मी० मी० की रेखा को ७५% बार प्रयोज्य २०० मी० मी० की रेखा से बडी कहता है और उसी तरह १९८ मी० मी० की रेखा मे ७५% बार २०० मी०मी० की रेखा से छोटी कहता है तो हम कहेंगे कि सीमान्त-भिन्नता २ मी०मी० है।

सीमान्त-भिन्नता को समझ लेने के बाद वेबर-नियम को समझना आसान हो जाता है। वेबर-नियम के अनुसार, सीमान्त भिन्नता (D L) और प्रामाणिक उत्तेजना (Standard stimulus) मे हमेशा एक निश्चित या नित्य अनुपात (Constant ratio) रहता है। इसी को सूत्र (Formula) मे व्यक्त करना चाहे तो निम्नाङ्कित तरह से लिख सकते है,

$$\frac{D\ L}{S} = K \text{ या } \frac{\text{सी० भि०}}{\text{प्रा० उ०}} = \text{नि०},$$

जिसमें D L का अर्थ सीमान्त भिन्नता, S का प्रमाणित उत्तेजना और K का नित्य (Constant) से है। इस नियम को पुन उदाहरण से समझे। ऊपर के उदाहरण मे सीमान्त भिन्नता २ मी० मी० है और प्रामाणिक उत्तेजना २०० मी० मी०, इसलिए वेबर-अनुपात (Weber ratio) $\frac{२}{२००}$ या $\frac{१}{१००}$ होगा। वेबर-नियम के अनुसार, उत्तेजना चाहे जितनी छोटी या बडी रहे, यह अनुपात हमेशा यही रहेगा, केवल सीमान्त भिन्नता (D L) परिवर्तित होगी। जैसे, यदि (प्रामाणिक उत्तेजना) रेखा की लम्बाई १०० मी०मी० हो तब भी वेबर अनुपात $\frac{१}{१००}$ ही रहेगा। यहाँ सीमान्त-भिन्नता १ मी० मी०

होगी। यानी, ७५% प्रयासों में प्रयोज्य १०० मी० मी० की रेखा को १०१ या ९९ मी० मी० की रेखा से भिन्न समझेगा। इसी तरह, प्रामाणिक रेखा की लम्बाई ३००, ४००, और ५०० मी० मी० होने पर सीमान्त भिन्नता (D L) ३, ४, और ५ मी० मी० क्रमश हो जायगी। लेकिन, प्रत्येक अवस्था में अनुपात (सीमान्त भिन्नता और प्रामाणिक उत्तेजना के बीच का सम्बन्ध) एक ही ($\frac{1}{100}$) रहेगा। प्रयोगों के आधार पर वेबर ने यह भी बतलाया कि हाथ द्वारा उठाए गए वजन के लिए वेबर अनुपात $\frac{1}{10}$ और रेखाओं के लिए $\frac{1}{100}$ है।

फेक्नर (Fechner) का संशोधन

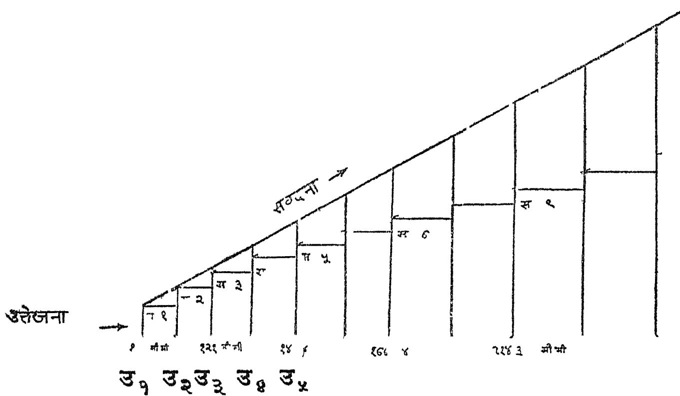
फेक्नर ने वेबर नियम को मूल रूप मे सत्य मानकर उसमें कुछ सुधार लाया जिससे यह नियम अधिक उपयोगी हो गया है। फेक्नर ने प्रयोगों के आधार पर पाया कि सीमान्त भिन्नता और प्रामाणिक उत्तेजना में तो एक नित्य सम्बन्ध है ही, इसके साथ एक बात और है। वह यह, कि जब उत्तेजना के मूल्य में एक निश्चित (नित्य) अनुपात मे वृद्धि होती है तो उससे उत्पन्न संवेदना की भी वृद्धि समान मात्रा में ही होती है।[1] मानले, कोई १०० मी मी, की रेखा प्रयोज्य के सामने उपस्थित की जाती है जिसकी संवेदना की मात्रा 'एक' है। यदि वेबर अनुपात $\frac{1}{10}$ हो तो १०० मी० मी० की रेखा (१०० + १०० × $\frac{1}{10}$ =) ११० मी मी की रेखा से भिन्न प्रतीत होगी। इस तरह प्रयोज्य को ११० मी मी की रेखा की एक दूसरी संवेदना होगी। फेक्नर सीमान्त भिन्नता को मात्र अनुभव-भेद (Just noticeable difference or j n d) कहता है और इस (j n d या मा अ भे को) ही संवेदना परिवर्तन की इकाई (Unit) मानता है। अत उत्तेजना मे जितने j n d की वृद्धि होगी, उसकी संवेदना मे भी उतनी ही मात्रा की वृद्धि होगी। इस हिसाब से यदि १०० मी मी की संवेदना मात्रा 'एक' हो तो ११० मी मी की संवेदना मात्रा (१ + १ =)२ हो जायगी। इसी तरह, जब ११० मी मी की उत्तेजना मे पुन एक j n d (११०×$\frac{1}{10}$ = ११ मी मी) जोड दिया जाय तो १२१ मी मी की संवेदना मात्रा (१ + १ + १ =) ३ होगी। इस तरह हम देखते है कि उत्तेजना के मूल्य (Value) मे जब एक निश्चित अनुपात में वृद्धि होती है तो संवेदना की मात्रा भी क्रमश बढ़ती जाती है। इसे पृष्ठ १२५ की रेखाचित्र संख्या ७ द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

ऊपर के चित्र मे उ१ (R_1) उत्तेजना से स० १ (S_1) (एक मात्रा की) संवेदना होती है। किन्तु, जब उत्तेजना में एक j n d की वृद्धि होती है तब उसकी संवेदना मे भी एक मात्रा की वृद्धि हो जाती है। फलत ऊपर हम देखते है—

उ१ (R_1) = १०० मी मी + ० j n d —स० १ (S_1) (एक मात्रा की संवेदना)
उ२ (R_2) = उ१ R_1 + 1 j n d —स० २ (S_2) (दो मात्रा की संवेदना)
उ३ (R_3) = उ१ R_1 + 2 j n d —स० ३ (S_3) (तीन " ")
उ४ (R_4) = उ१ R_1 + 3 j. n. d —स० ४ (S_4) (चार " ")
उ५ (R_5) = उ१ R_1 + 4 j n d —स० ५ (S_5) (पाँच " ")

1 'Where stimuli increase by a constant ratio, the sensations aroused by them increase by equal increments or stages'

चित्र-सख्या २७



विभिन्न मात्रा की उत्तेजनाएँ और उनकी सवेदना का चित्र

इसमे ध्यान देने की बात यह है कि प्रत्येक अवस्था मे उत्तेजना मे ज्यामितिक वृद्धि (Geometrical progression) होती है, परन्तु सवेदना की मात्रा मे गणितात्मक वृद्धि (Arithmetical progression) होती है। गणित के अनुसार, जब दो श्रेणी की वस्तुओ मे परस्पर ज्यामितिक और गणितात्मक सबन्ध हो तो वह सबंध लघुगणकीय (Logarithmic) माना जाता है। अत हम कह सकते है कि यहाँ सवेदना की प्रत्येक मात्रा अपने अनुरूप उत्तेजना का लघुगणक (Logarithm) है। दो वस्तुओ का लघुगणकीय सबध निम्नाङ्कित ढग से बतलाया जाता है—

लॉग १ = ०
१,० = १
१,०० = २
१,००० = ३
१,०००० = ४
१,००००० = ५

इसमे जब बाईं ओर की सख्या में एक नित्य गुणक (Constant coefficient) १० की वृद्धि होती है तब दाहिनी ओर लघुगणक (Logarithm) मे १ (मात्रा) की वृद्धि होती है। यदि ऊपर के उदाहरण पर ध्यान दे तो मालूम होगा कि वहाँ भी उत्तेजना मे एक निश्चित गुणक (Constant coefficient) $\frac{1}{10}$ की वृद्धि होती है पर उसकी सवेदना मे १ (मात्रा) की ही वृद्धि होती है। इस तरह फेक्नर ने उत्तेजना और उसकी सवेदना मे एक लघुगणकीय सबन्ध (Logarithmic relation) स्थापित किया और इसके आधार पर उसने वेबर-नियम मे एक और सशोधन किया। उसने बतलाया कि, 'सवेदना अपनी वर्तमान उत्तेजना के लघुगणक के अनुरूप होती है।' इसे निम्नाकित सूत्र (Formula) द्वारा अभिव्यक्त कर सकते है,

स० $S = C \operatorname{Log} R$

जिसमे S का अर्थ सवेदना, R का उत्तेजना तथा C का अर्थ नित्य (Constant)

है। वेलर ने भी मेढकों पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि उत्तेजना और सवेदना की वृद्धि मे लघुगणकीय सबन्ध है।

वेबर-नियम की आलोचना

वेबर नियम मनोवैज्ञानिक प्रयोगो और मनोदैहिक विज्ञान (Psychophysics) दोनों के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हुआ। हमारा अनुभव भी कहता है कि उत्तेजना का मूल्य जितना अधिक हो जाता है उसके लिए सीमान्त भिन्नता (D L) का मूल्य भी उतना ही बढ जाता है। जैसे, १ सेर और १ सेर ४ छटाक के दो वजनो को उठाकर अदाज से अन्तर बतलाया जा सकता है। लेकिन, १ मन के साथ १ मन ४ छटाक तथा १ मन ८ छटाक के वजन मे भी अन्तर बतलाना कठिन है। लेकिन, मात्र इतना ही से वेबर नियम की सत्यता प्रमाणित नही हो जाती।

कुछ विद्वानो ने बतलाया है कि वेबर नियम केवल औसत तीव्रता की उत्तेजना के लिए ही ठीक है। अत्यधिक तीव्र या धीमी उत्तेजना के साथ प्रयोग करने से वेबर नियम प्रमाणित नही होता। कॉनिग (Konig) और ब्रॉथन (Brothen) ने अपने प्रयोगो मे देखा कि प्रकाश जब बहुत धीमा रहता है और जब बहुत तीव्र रहता है तो इन दोनो अवस्थाओं मे सीमान्त भिन्नता (D L) अलग अलग हुआ करती है। सम्भवत इसका कारण अभियोजन मे तरह तरह की कठिनाइयाँ है। जो भी हो, यह वेबर नियम की एक त्रुटि रह जाती है।

वेबर नियम की सत्यता सामान्य प्रयोगशाला मे और सामान्य प्रयोज्या (Subject) पर प्रमाणित नही होती। इसके लिए पूर्णत नियत्रित और वैज्ञानिक प्रयोगशाला के अतिरिक्त सैकडो अभ्यस्त प्रयोज्यो की आवश्यकता होती है। इतना होने पर भी, यह नियम सिद्ध होता है या नही, यह अनिश्चित ही है। इसी से उण्ट (Wundt) ने वेबर-नियम को अवास्तविक और मन का फितूर माना है।

फेक्नर ने अपने सशोधन मे बडी या तीव्र सवेदना को छोटी छोटी सवेदनाओं मे बाँटा है (देख चित्र-२७)। मनोवैज्ञानिक इसकी आलोचना करते हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक सवेदना स्वतन्त्र और अपने आप मे एक अनुभव होती है, अत उसे विभिन्न सवेदनाओं मे बाँटना गलत है। इसी तरह, फेक्नर द्वारा मात्र अनुभव भेद (J n d) को नित्य (Constant) मानना भी ठीक नही है। वस्तुत यह प्रयोज्य और अवस्था (Condition) के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

इन आलोचनाओ को ध्यान मे रखते हुए हम मानना होगा कि वेबर नियम पूर्ण, सर्वमान्य तथा विश्वसनीय नही है। फिर भी, इसे कुछ अशा मे समुचित और उपयोगी तो मानना ही होगा। फेक्नर ने उत्तेजना और सवेदना के बीच जो लघुगणकीय सम्बन्ध (Logarithmic relation) बतलाया है, वह शरीर विज्ञान (Physiology), जीव-विज्ञान (Biology) तथा इजिनीयरिंग मे काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है। मनोविज्ञान के लिए भी वेबर नियम बहुत ही महत्व का है, क्योंकि मनोवैज्ञानिक तथ्यों का यह पहला सख्यात्मक अनुसधान है।

•

चौथा अध्याय

प्रत्यक्षीकरण

(Perception)

प्रत्यक्षीकरण किसे कहते है ?

लोग कभी कभी प्रत्यक्षीकरण का व्यवहार ज्ञान के अर्थ मे किया करते है। लेकिन, प्रत्यक्षीकरण कोई ज्ञान (Knowledge) नही, बल्कि एक मानसिक प्रक्रिया है। हाँ, यह सही है कि हमे इस प्रक्रिया के द्वारा किसी उत्तेजना का सही ज्ञान प्राप्त होता है। हम किसी वर्त्तमान वस्तु या स्थिति को किसी ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा ग्रहण करते है जिसके फलस्वरूप उस ज्ञानेन्द्रिय (Sense organ) मे स्नायु प्रवाह (Nerve impulse) उत्पन्न हो जाता है। यह स्नायु प्रवाह ज्ञानवाही स्नायुओं के सहारे मस्तिष्क के विशेष भाग मे पहुँचता है। वहाँ पहुँचते ही उसका अर्थ लग जाता है और फलत हमे उस वस्तु का ज्ञान हो जाता है। स्नायु-प्रवाह के मस्तिष्क तक पहुचने और अर्थ समझने मे कुछ भी समय नही लगता। इस प्रकार, प्रत्यक्षीकरण की परिभाषा के सबन्ध मे हम कह सकते है कि प्रत्यक्षीकरण वह ज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी उपस्थित उत्तेजना (Stimulus) का तात्कालिक ज्ञान या बोध (Immediate knowledge) होता है। इस परिभाषा का विश्लेषण करने पर इसमे निम्नाकित बाते पाएँगे,

(१) प्रत्यक्षीकरण एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया है,

(२) प्रत्यक्षीकरण के द्वारा उपस्थित उत्तेजना का ज्ञान होता है, और

(३) प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त ज्ञान तात्कालिक होता है।

यदि उपर्युक्त तीनों बातो या प्रमुख विशेषताओं पर ध्यान दे तो मालूम होगा कि इनसे क्रमश प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप स्पष्ट होता जाता है। पहली बात तो यह है कि प्रत्यक्षीकरण एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिससे हमे किसी उत्तेजना के सबन्ध मे ज्ञान मिलता है। जैसे हम कोई किताब देखते है और हमे यह ज्ञान हो जाता है कि यह किताब है। लेकिन, मात्र ज्ञानात्मक प्रक्रिया कहने से प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप स्पष्ट नही होता, चिंतन स्मरण तथा कल्पना, आदि भी ज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रियाएँ है। प्रत्यक्षीकरण की दूसरी विशेषता इसे इनसे भिन्न करती है। उपर्युक्त दूसरी विशेषता के अनुसार हमे उपस्थित वस्तु या स्थिति का ही प्रत्यक्षीकरण होता है, भूत या भविष्य की उत्तेजनाओं का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। दूसरे शब्दो मे, प्रत्यक्षीकरण के लिये उत्तेजना का उपस्थित रहना आवश्यक है। यदि ध्यान दें तो पाएँगे कि स्मरण और कल्पना मे उत्तेजना उपस्थित नही रहती है, चिंतन या तर्क के लिए भी उत्तेजना का उपस्थित रहना आवश्यक नही है, हम ऐसे विषय या वस्तु के सम्बन्ध में भी चिंतन करते है जो हमारे सामने नही रहती। प्रत्यक्षीकरण की तीसरी विशेषता इसे चिंतन तथा तर्क से भिन्न करती है। चिंतन तथा तर्क में भी

उत्तेजना कभी कभी वर्तमान रहती है। किसी कलाकृति को देखकर उसके गुण दोष के विश्लेषण मे हम तर्क और चिंतन का सहारा लेते है। फिर आप कह सकते है, [illegible] से भिन्न कैसे है? प्रत्यक्षीकरण कि तीसरी विशेषता से इसका उत्तर मिल जाता। जिसके अनुसार उपस्थित उत्तेजना का तत्काल ज्ञान (Immediate knowledge) [illegible] के द्वारा मिलता है, बाद मे उसके सम्बन्ध मे [illegible] विश्लेषण कर [illegible] प्राप्त करना प्रत्यक्षीकरण नही है। इस तरह हम देखते है कि प्रत्यक्षीकरण की उपर्युक्त परिभाषा उसका स्वरूप स्पष्ट करने मे समर्थ है। व्यक्ति का सारा ज्ञान उसके प्रत्यक्षीकरण पर ही [illegible] है। जन्म के समय बच्चे को ससार का कोई ज्ञान नही रहता। लेकिन, वह जैसे जैसे बड़ा होता है वैसे वैसे तरह तरह की चीजो के सम्पर्क मे आता जाता है और प्रत्यक्षीकरण के सहारे उनका ज्ञान प्राप्त करता है।

कुछ लोग प्रत्यक्षीकरण को प्रथम ज्ञानात्मक प्रक्रिया नही मानते। उनके अनुसार सवेदना (Sensation) प्रथम ज्ञानात्मक प्रक्रिया है और प्रत्यक्षीकरण उसके बाद मे [illegible] प्रक्रिया है। उनका कहना है कि जब भी कोई उत्तेजना हमारी किसी ज्ञानेन्द्रिय के सम्पर्क मे आता है तो हमे पहले उसकी सवेदना होती है, और तब गत अनुभव ([illegible]) के आधार पर उसमे अर्थ जोड़ा जाता है। [illegible] अर्थ जोड़ना [illegible] प्रत्यक्षीकरण है, इसलिये क्रमानुसार इसका स्थान दूसरा है। लेकिन, [illegible] है। [illegible] कारण है। पहला कारण तो यह है कि ज्ञानात्मक प्रक्रिया [illegible] उस प्रक्रिया मे है जिसमे कुछ ज्ञान प्राप्त हो, लेकिन हम जानते है हम सवेदना से कोई ज्ञान नही [illegible]। [illegible] कहा जाता है (जैसा "सवेदना" के अध्याय मे बतलाया गया) कि शुद्ध सवेदना किसी को नही होती। जब भी कोई उत्तेजना किसी ज्ञानेन्द्रिय के सम्पर्क मे आती है तो व्यक्ति उसका कुछ अर्थ लगा ही लेता है। और तब हम उसे सवेदना नही प्रत्यक्षीकरण (या विपर्यय) कहते है। इस अर्थ मे स्पष्टत प्रत्यक्षीकरण प्रथम ज्ञानात्मक प्रक्रिया है। ऐसा मानना भी ठीक नही लगता कि सवेदना और अर्थ (गत अनुभव) का योग प्रत्यक्षीकरण है। आज मनोवैज्ञानिक यही मानते है कि प्रत्यक्षीकरण एक स्वतत्र और अपूर्व (Unique) मानसिक प्रक्रिया है। यही कारण है कि किसी उत्तेजना की सवेदना सभी को एक तरह की होती है, परन्तु उसका प्रत्यक्षीकरण कभी कभी विभिन्न लोगो को विभिन्न तरह का होता है। प्रत्यक्षीकरण काफी अशों तक आत्मगत (Subjective) होता है। अत इसे सवेदना और [illegible] का योग मानना ठीक नही है।

मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि प्रत्यक्षीकरण सवेदना पर नही, बल्कि मस्तिष्क के गत्यात्मक स्वरूप (Dynamic nature) पर निर्भर करता है। उत्तेजना की उपस्थिति और उसका ज्ञान प्राप्त होने के बीच कई परिवर्त्तनशील राशियाँ (Variables) कार्य करती है। इन परिवर्त्तनशील राशियों के ही कारण हमारा प्रत्यक्षीकरण विशिष्ट और विचित्र होता है। औसगुड (Osgood) के शब्दों मे प्रत्यक्षीकरण का अर्थ उन परिवर्तनशील राशियो से है जो ज्ञानेन्द्रिय के उत्तेजित होने और चेतना प्राप्त होने के बीच कार्य करती है।[1] [illegible]वादी

1 'The term perception refers to a set of variables that intervene between sensory stimulations & awareness'—Osgood in Theory and method in Experimental Psychology.

विचारधारा के सम्बन्ध मे आगे विचार किया जायगा। अत यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह विचारधारा प्रत्यक्षीकरण के सिलसिले मे काफी अशों मे मान्य है। लेकिन, प्रत्यक्षीकरण को पहली ज्ञानात्मक प्रक्रिया मानने का यह अर्थ नही है कि यह बहुत ही सरल प्रक्रिया है। सत्य तो यह है कि यह एक जटिल (Complex) मानसिक प्रक्रिया है। इसकी पूरी प्रक्रिया कई उपप्रक्रियाओ पर निर्भर करती है। इसमे सन्निहित उन सभी प्रक्रियाओ को जान लेने पर यह स्वत मालूम हो जायेगा कि प्रत्यक्षीकरण जटिल मानसिक प्रक्रिया कैसे है।

प्रत्यक्षीकरण में सन्निहित मानसिक प्रक्रियाएँ

(Processes involved in perception)

प्रत्यक्षीकरण का सम्बन्ध किसी उत्तेजना की अनुभूति (Experience) से है। लेकिन, यह अनुभूति किसी एक मानसिक प्रक्रिया पर ही आधारित नही रहती। किसी चीज का अनुभव प्राप्त करने मे कई प्रक्रियाएँ सन्निहित रहती है। व्यक्ति द्वारा कई तरह के आन्तरिक व्यवहार होते है। सवेग, भाव, ध्यान, स्मरण, प्रेरणा (Motivation), आदि मुख्य मानसिक प्रक्रियाएँ प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया को नियत्रित करती है। एलपोर्ट और क्रेमर (Allport and Kramer) ने प्रत्यक्षीकरण पर मनोवृत्ति (Attitude) का प्रभाव दिखलाया है। लेकिन, प्रत्यक्षीकरण की पूरी प्रक्रिया मे जो मुख्य प्रक्रियाएँ सन्निहित रहती है उन्हे हम चार श्रेणियो मे रख सकते है,

(१) ग्राहक प्रक्रिया (Receptor process)
(२) एकीकरण-प्रक्रिया (Unification process)
(३) प्रतीकात्मक प्रक्रिया (Symbolic process)
(४) भावात्मक प्रक्रिया (Affective process)

(१) ग्राहक प्रक्रिया (Receptor process) हम ऊपर देख चुके है कि किसी उत्तेजना (Stimulus) का ज्ञान ग्राहको (Receptors) के ही सहारे होता है। सबसे पहले उत्तेजना ग्राहक या ज्ञानेन्द्रिय (Sense organ) को प्रभावित करती है जिससे वहा स्नायु प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। यह स्नायु प्रवाह ज्ञानवाही स्नायुओ के सहारे सुषुम्ना (Spinal cord) से होते मस्तिष्क मे पहुँचता है। स्नायु-प्रवाह के मस्तिष्क मे पहुचते ही हम उस उत्तेजना के सम्बन्ध मे जानकारी हो जाती है। इस तरह, ग्राहक-प्रक्रिया प्रत्यक्षीकरण की मुख्य प्रक्रिया है। कभी कभी एक ही उत्तेजना के प्रत्यक्षीकरण मे कई ज्ञानेन्द्रियाँ क्रियाशील हो जाती है। जैसे, जब गुलाब का फूल मेरे सामने आता है तो पहले हम उसे देखते है, जिससे आँख के ग्राहक कोष (Receptor cells) उत्तेजित हो जाते है। पुन उसे सूँघते है। उससे नाक के ग्राहक कोष भी क्रियाशील हो जाते है। फिर, उसे हम स्पर्श करते है जिसके फलस्वरूप त्वचा (Skin) के ग्राहक कोष प्रभावित हो जाते है। इस तरह फूल एक ही है, परन्तु उसके प्रत्यक्षीकरण मे तीन ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, त्वचा और नाक) क्रियाशील होती है और तीन ग्राहक प्रक्रियाएँ (Receptor processes) कार्य करती है। इनके फलस्वरूप हमे फूल के रूप रग और सुगन्ध का ज्ञान मिलता है।

(२) एकीकरण की प्रक्रिया (Process of unification) प्रत्येक प्रत्यक्षीकरण मे एकीकरण की प्रक्रिया मुख्य स्थान रखती है। वस्तुत यदि किसी उत्तेजना का सम्यक ज्ञान पाने की प्रक्रिया ही प्रत्यक्षीकरण है तो ऐसा एकीकरण प्रक्रिया के ही द्वारा सभव हो पाता है। हमने देखा है कि एक ही उत्तेजना से विभिन्न ज्ञानेन्द्रियाँ भी उत्तेजित हो जाती है। ऐसी अवस्था मे उत्तेजना के ठीक ज्ञान के लिए सभी ज्ञानेन्द्रियो से प्राप्त स्नायु-प्रवाहो के अर्थ मे एकीकरण होना आवश्यक है। जैसे, मान ले, नारगी को देखते, स्पर्श करते और खाते है। ऐसा करने से हमे नारगी के दृष्टि, स्पर्श और स्वाद सम्बन्धी अनुभव अलग-अलग मिलते है। लेकिन, इन विभिन्न अनुभवो का अलग-अलग कोई अस्तित्व नही रहता, वल्कि, ये सभी मिल जाते है और तब हम कहते है, चूँकि यह देखने मे ऐसा है, स्पर्श करने मे ऐसा है और स्वाद मे इस तरह का है, इसलिए यह नारगी है। इसी तरह, जब एक ही ग्राहक इन्द्रिय (Receptor organ) से प्रत्यक्षीकरण होता है तब भी एकीकरण की क्रिया होती है। जैसे, किसी भैस को देखते है तो उसके रग, रूप, आकार, सीग, आदि विभिन्न अगो को देखकर उनका अनुभव प्राप्त करते है और तब इन सब अनुभवो का एकीकरण कर कहते है यह जानवर भैस है। अत प्रत्यक्षीकरण मे एकीकरण की प्रक्रिया प्रमुख स्थान रखती है।

(३) प्रतीकात्मक प्रक्रिया (Symbolic process) मनोवैज्ञानिको का विचार है कि प्रत्येक उत्तेजना का प्रत्यक्षीकरण कुछ विशेष अर्थ के साथ होता है। यानी, जब हम किसी वस्तु का बोध करते है तो उससे सम्बन्धित कुछ और बात याद हो आती है। इस तरह, जिस वस्तु का हम प्रत्यक्षीकरण कर रहे है वह किसी बीते अनुभव का प्रतीक (Symbol) बन जाती है। जैसे, यदि कोई विद्यार्थी अपने साथी की माँ से मिलता है तो सभव है यह जानकर की कि यह उसके साथी की माँ है उसे तत्क्षण अपनी माँ का स्मरण हो आए जब वह उसे स्टेशन पर विदा करने आई थी। यहाँ साथी की माँ विद्यार्थी को अपनी माँ का प्रतीक बन जाती है और फलत उसे स्टेशन पर विदा देती हुई अपनी मा की याद आ जाती है। अत प्रत्यक्षीकरण मे प्रतीकात्मक प्रक्रिया भी सन्निहित रहती है।

(४) भावात्मक प्रक्रिया (Affective process) प्रत्येक वस्तु का प्रत्यक्षीकरण करते समय हमारे मन मे उस वस्तु से सम्बन्धित किसी न किसी तरह का भाव भी आता है। यह भाव सुखद, दुखद या तटस्थ (Indifferent) किसी तरह का होता है। काफी अशों मे यह प्रतीकात्मक प्रक्रिया पर निर्भर करता है।

प्रतीकात्मक प्रक्रिया के कारण जो अनुभव याद आता है, यदि वह सुखद रहता है तो वस्तु को देखकर सुखद भाव जाग्रत होता है, और उसके दुखद रहने पर मन मे दुखद भाव आ जाता है। जैसे, ऊपर के उदाहरण मे विदा करती माँ का चित्र अवश्य ही दुखद होगा। इसलिए उस विद्यार्थी को अपने साथी की माँ को देखकर एक क्षण के लिए दुख या मायूसी होगी। इसी तरह, सडक पर पड़े एक अपाहिज को देखकर न केवल उस अपाहिज का बोध (Knowledge) होता है, बल्कि मन मे एक दुखद भाव भी आ जाता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि किसी वस्तु को देखकर न हम सुखी होता है और न दुखी। ऐसे भाव को तटस्थ (Indifferent) भाव कहते है। इस भावात्मक प्रक्रिया के ही कारण हम किसी चीज को सुन्दर कुरूप, अच्छा या बुरा कहते है। यह अच्छा या बुरा का नाम देना सौन्दयानुभूति

(Aesthetic Experience) का द्योतक है। किसी चीज को अच्छा या बुरा मानना पूर्णत वैयक्तिक है। किसी का टूटी चूड़ी का टुकड़ा बड़ा आकर्षक लगता है और वह उसे पाकर बहुत प्रसन्न होता है, लेकिन अन्य लोगो के लिए उस टुकड़े का कुछ भी महत्व नही होता। पूनम का चाँद वही है, चाँदनी भी वही है पर विरही के लिए वह शूल है, और मिलने वाले प्रेमी के लिए फूल।

एक उदाहरण

अब एक उदाहरण लेकर देखे कि (मानले) गुलाब के फूल के प्रत्यक्षीकरण में उपर्युक्त चारों प्रक्रियाएँ कैसे सन्निहित रहती है। गुलाब का फूल जब हमारे सामने आता है तो उसे हम देखते, स्पर्श करते और सूँघते है। ऐसा करने से आँख, त्वचा और नाक के ग्राहक कोष क्रमश उत्तेजित हो जाते है। इन सबमे स्नायुप्रवाह मस्तिष्क के विभिन्न भागों मे पहुचते है। इससे हमे गुलाब के फूल के रूप-रंग, कोमलता और सुगन्ध का अनुभव होता है। यह हुई प्रत्यक्षीकरण की ग्राहक प्रक्रिया (Receptor process)। तत्पश्चात् इन विभिन्न अनुभवों को हम मिलाकर कहते है कि यह गुलाब का फूल है। इसे एकीकरण की प्रक्रिया (Process of unification) कहेगे। फूल का पूरा ज्ञान हमे इतने ही से नहीं मिल जाता, बल्कि जैसे ही हमे यह आभास होता है कि यह गुलाब का फूल है, उसके साथ ही गुलाब के फूल से सम्बन्धित कुछ खास अनुभव भी हमे याद हो आते है। जैसे मानले, हमे अपनी फुलवारी की याद हो आती है जहा ऐसे फूल बहुत खिले थे। यह प्रतीकात्मक प्रक्रिया (Symbolic process) हुई। अपनी फुलवारी की याद आते ही मन प्रसन्न हो जाता है। फूल के प्रत्यक्षीकरण मे खुश होने की प्रक्रिया भावात्मक प्रक्रिया (Affective process) हुई। अनुभव और भाव के आधार पर वह फूल हमे सुन्दर लगता है यह हुआ भाव की सौन्दर्यानुभूति (Aesthetic experience)। इसी तरह, किसी भी उत्तेजना के प्रत्यक्षीकरण मे उपर्युक्त चारो प्रक्रियाएँ सन्निहित रहती है, ऐसा आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का विचार है।

प्रत्यक्षीकरण की विशेषताएँ

(Characteristics of perception)

प्रत्येक मानसिक प्रक्रिया की अपनी कुछ विशेषताएँ होती है जो उसके स्वरूप को निर्धारित करती है और हम उन विशेषताओं के ही आधार पर उस प्रक्रिया को दूसरी से अलग करते है। प्रत्यक्षीकरण की भी कुछ अपनी विशेषताएँ है जिनका उल्लेख इसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है। यहाँ हम इसकी कुछ प्रमुख विशेषताओं पर सक्षेप में विचार करगे।

(१) चुनाव (Selection) किसी भी समय मे अनेक तरह की उत्तेजनाएँ हमारी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियो को प्रभावित करती रहती है, लेकिन हमे उन सबका प्रत्यक्षीकरण नही होता। हम अपनी आवश्यकता (Need) और इच्छानुसार वस्तुओं का चुनाव कर उनका प्रत्यक्षीकरण करते है। भूखा आदमी बाजार की सभी चीजो मे भोजन की सामग्रियों को ही चुनता और उनका ज्ञान प्राप्त करता है। भोजन सामग्री उसके लिए, जेस्टाल्टवादियों के अनुसार, आकृति (Figure) का कार्य करती है। कभी कभी उत्तेजना अपनी कुछ खास विशेषताओं (तीव्रता, प्रसरण, गति, पुनरावृत्ति, आदि) के कारण प्रत्यक्षीकरण के लिए चुन ली जाती है।

चुनाव की विशेषता से ही सिद्ध होगा कि प्रत्यक्षीकरण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। हम प्रत्यक्षीकरण के लिए जिस उत्तेजना का चुनाव करते है वह हमारी ... (...d), इच्छा, खास सवेग, भाव और ध्यान (Attention) के ही कारण की जाती है। इस तरह न तो यह चुनाव सरल है और न प्रत्यक्षीकरण। चेतन और अचेतन दोनो मानसिक प्रक्रियाएँ चलती रहती है और यह उत्तेजना का चुनाव उन्ही पर निर्भर करता है।

(२) सगठन (Organisation) प्रत्यक्षीकरण की दूसरी विशेषता विभिन्न अनुभवों मे सगठन स्थापित करना है। हम किसी वस्तु का बोध किसी खास शक्ल या रूप मे करते है, उसके विभिन्न अवयवो मे नही। हमे नारगी का प्रत्यक्षीकरण उसके रग, आकार और स्वाद के सगठित रूप मे होता है, न कि नारगी देखने पर हम पहले उसके केवल रग का बोध करते है और तब आकार को समझते है। प्रत्यक्षीकरण को सार्थक बनाने मे इसका सर्वाधिक हाथ है। इसीसे जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिको का कहना है कि हम किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण उसके पूर्णरूप मे करते है। कठिन परिस्थितियो को समझने मे सगठन का महत्त्व विशेष रूप से देखने मे आता है।

(३) दृढीकरण (Accentuation) किसी वस्तु या घटना का प्रत्यक्षीकरण करते समय हम चुनी वस्तुओं मे भी किसी पर अधिक ध्यान देते है और किसी पर कम। किसी वस्तु या वस्तु के किसी खास भाग पर अधिक ध्यान देने की प्रक्रिया का दृढीकरण (Accentuation) कहते है। किसी मूर्त्ति का प्रत्यक्षीकरण करने मे कोई उसकी सुन्दरता पर विशेष ध्यान देता है, कोई उसकी बनावट को ज्यादा ध्यान से देखता तो कोई उसके रग-रूप पर ज्यादा गौर करता है। फलत विभिन्न व्यक्तियो को एक ही वस्तु या उत्तेजना का प्रत्यक्षीकरण विभिन्न रूपो मे होता है।

(४) स्थिरीकरण (Fixation) प्रत्यक्षीकरण सार्थक होता है, फलत किसी चीज का प्रत्यक्षीकरण हो जाने पर उसका स्थिरीकरण हो जाता है, हम जिसे याद या अनुभव कहते है। इस अनुभव स्थिरीकरण के ही फलस्वरूप आम का एक बार प्रत्यक्षीकरण हो जाने के बाद फिर कभी भी उसे देखने पर हमे आम का ही बोध होता है।

(५) नित्यता (Constancy) हमे किसी वस्तु का बोध जिस रूप मे होता है, वह काफी अशो मे नित्य या अपरिवर्त्त-शील (Constant) होता है और उसपर पृष्ठभूमि का कोई खास असर नही होता। एक काली गाय हमेशा काली ही मालूम होती है, चाहे उसे कडी धूप मे देखा जाय या अधेरी रात मे।

(६) लोचकता (Flexibility) लोचकता नित्यता का उल्टा अर्थ रखती है। लेकिन, यह भी प्रत्यक्षीकरण की एक मुख्य विशेषता है। द्वयर्थक (Ambiguous) चित्रों के प्रत्यक्षीकरण मे यह विशेषता स्पष्ट देखने में आती है, जब व्यक्ति को कभी एक चित्र दीख पडता है और कभी दूसरा। प्रत्यक्षीकरण सगठन पर निर्भर करता है और यह सगठन कई कारणों से परिवर्त्तित हुआ करता है, फलत प्रत्यक्षीकरण भी परिवर्त्तित होते रहता है। जेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको की 'आकृति और पृष्ठभूमि' की चर्चा करते समय इसपर विशेष प्रकाश डाला जायेगा।

• इन विशेषताओ के अतिरिक्त, प्रत्यक्षीकरण की कुछ अन्य विशेषताएँ भी है, परन्तु हम उन्हे प्रमुख नही कह सकते और फलत उनपर विचार करना आवश्यक प्रतीत नही होता।

प्रत्यक्षीकरण का जेस्टाल्ट-सिद्धान्त
(Gestalt theory of perception)

'जेस्टाल्ट' (Gestalt) जर्मन शब्द है। इसका अर्थ हिन्दी मे रूप (Form) से ले सकते है। किसी चीज का रूप उसके पूर्ण (Whole) मे है, ऐसा जेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों का विचार है। इसलिए उन लोगों ने किसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण मे उसकी पूर्णता पर जोर दिया है। सबसे पहले वर्दीमर (Wertheimer) ने सन् १९१२ ई० मे प्रयोगों के आधार पर बतलाया कि हमे किसी उत्तेजना का प्रत्यक्षीकरण उसके (उत्तेजना के) पूर्ण (Whole) रूप मे होता है, किसी वस्तु का यह पूर्ण रूप उसके विभिन्न अगो का जोड नही है। उदाहरणार्थ, नीचे के चित्र मे पूरे मुखडे का एक साथ (पूर्ण रूप मे) प्रत्यक्षीकरण होता है और हम कह सकते है 'मुखडा सुन्दर है'। ऐसा नही होता कि हमे नाक, आँख, होठ, भौ, आदि विभिन्न अगों का क्रमश अलग अलग प्रत्यक्षीकरण होता हो और इन सबको मिलाकर कहे कि 'मुखडा सुन्दर है'। हाँ, ऐसा हो सकता है कि चेहरे की सुन्दरता का प्रत्यक्षीकरण हो जाने के बाद हम उसका विश्लेषण करने लगे कि यह सुन्दर इसलिए है, चूँकि इसकी नाक ऊँची और लम्बी है, गाल भरे है, आखे बडी है तथा भौहे तिरछी है, आदि। लेकिन, यह विश्लेषण चेहरे के प्रत्यक्षीकरण के बाद शुरू होता है और यदि ध्यान दे तो मालूम होगा कि इनमे कोई भी अग सम्पूर्ण चेहरे से अलग कर देने पर सुन्दर नही रह जाता। इन अगों की सुन्दरता चेहरे की पूर्णता पर निर्भर करती है। इस तरह, हम देखते है कि चेहरे की सुन्दरता इसके विभिन्न सुन्दर समझे जाने वाले अगों की मिलावट पर निर्भर नही करती, बल्कि चेहरे के पूर्ण प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर करता है।

चित्र-संख्या २८



मुखड़े का प्रत्यक्षीकरण

केवल दृष्टि सम्बन्धी प्रत्यक्षीकरण मे ही पूर्णता का बोध नही होता, बल्कि सुनने, सूँघने या स्वाद का बोध करने पर भी होता है। वीणा से निकली लय (Tune) बडी मोहक लगती है। किन्तु, हम जानते है कि किसी लय का निर्माण स्वरो (Tone) के मिश्रण से

होता है। फिर भी, हमे वीणा की लय के प्रत [illegible] मे [illegible] [illegible] कि [illegible] स्वरों से बना है। हमें [illegible] लय का ही बोध [illegible] [illegible] के साथ पाएँगे। जब कई बाजे एक [illegible] [illegible] निकली लय का बोध एक रूप मे होता है [illegible] आकर्षण अलग अलग किसी बाजे के स्वर [illegible] [illegible] ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित प्रत्यक्षीकरण के उदाहरण दिए जा सकते हैं।

जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्यक्षीकरण मात्र संवेदना और गत अनुभूति या अर्थ (Meaning) का जोड़ नहीं है। उन्होंने गति प्रत्यक्षीकरण (Perception of movement), दृष्टि नित्यता (Visual constancy) तथा तरह तरह के विपर्ययों (Illusions) के सहारे सिद्ध करने का प्रयास किया है कि प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या गत अनुभूति (Past experience) के आधार पर नहीं की जा सकती। हम अपने अनुभव से जानते हैं कि पेड़ पौधे नहीं चलते, लेकिन जब हम रेलगाड़ी में सफर करते हैं तो बगल के पेड़ पौधे उल्टी दिशा मे चलते मालूम होते हैं। यदि प्रत्यक्षीकरण गत अनुभव और संवेदना का योग होता तो गाड़ी के चलने और वृक्षों के स्थिर रहने का ही प्रत्यक्षीकरण होता, लेकिन ऐसा नहीं होता। इसी तरह के प्रमाणों के आधार पर [illegible] [illegible] प्रत्यक्षीकरण को संवेदना और अर्थ के योग से भिन्न एक अपूर्व (Unique) [illegible] माना है।

लेकिन प्रश्न है, आखिर प्रत्यक्षीकरण की यह अपूर्व प्रक्रिया [illegible] है? यानी, क्यों हमे किसी उत्तेजना के पूर्ण रूप का (उसे पूर्ण का जो अपने अंगों के जोड़ से भिन्न है) सुव्यवस्थित रूप मे बोध होता है? इसकी व्याख्या जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक एक शब्द में देते हैं—संगठन (Organisation) के कारण हमारा मस्तिष्क किसी उत्तेजना को एक खास तरह से संगठित करता है और संगठन जिस तरह का होता है हमारा [illegible] भी वैसा ही होता है। लेकिन, इस संगठन कार्य को करने के लिए मन में कोई खास उच्च मानसिक प्रक्रिया (Higher mental process) हो, ऐसी बात नहीं है। [illegible] के अनुसार जिस उत्तेजना का हमे प्रत्यक्षीकरण होता है उसकी [illegible] [illegible] ([illegible] field) ही एक संगठन उत्पन्न कर देता है। [illegible] [illegible] रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है, इसके लिए [illegible] ने दो धारणाओं (Concepts) की सहायता ली है—(क) आकृति और पृष्ठभूमि की धारणा ([illegible] figure and ground), तथा (ख) संगठन के अंगों की धारणा ([illegible] of the [illegible] organisation)। इन दोनों की व्याख्या हम क्रमशः आगे करेंगे। यहाँ यह कह देना भी आवश्यक मालूम होता है कि हमें ज्ञान क्षेत्र के संगठन की जानकारी मस्तिष्क के सहारे होती है। अतः प्रत्यक्षीकरण के स्वरूप की व्याख्या मे जेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक मस्तिष्क के कार्य को काफी महत्त्व देते हैं।

आकृति और पृष्ठभूमि

(Figure and background)

किसी उत्तेजना का प्रत्यक्षीकरण किसी न किसी आधार पर होता है। जिस उत्तेजना का प्रत्यक्षीकरण होता है उसे आकृति (Figure) कहते हैं और जिस आधार पर उसका

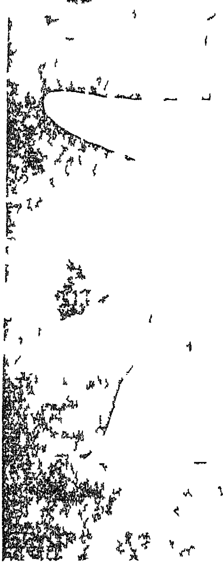
प्रत्यक्षीकरण होता है उसे पृष्ठभूमि (Background) कहते है। जैसे, हम आकाश मे चाँद को देखते है। इसमे चाँद आकृति है और आकाश पृष्ठभूमि। किसी भी चित्र को बनाने मे चित्रकार आकृति और पृष्ठभूमि का बड़ा ध्यान रखता है। वस्तुत किसी आकृति को स्पष्ट और आकर्षक बनाने मे पृष्ठभूमि का बहुत आवश्यक हाथ रहता है। उजली पृष्ठभूमि पर काली लकीरो से बने चित्र का प्रत्यक्षीकरण जितनी आसानी और स्पष्टता से होगा, उतनी आसानी से उसका प्रत्यक्षीकरण भूरी पृष्ठभूमि पर नही होगा। वर्नन (Vernon) के अनुसार स्पर्श-प्रत्यक्षीकरण मे भी आकृति और पृष्ठभूमि का महत्त्व होता है। उसी तरह, यदि एक ही गाना शान्त और कोलाहलपूर्ण वातावरण मे क्रमश गाया जाए तो दोनो के प्रत्यक्षीकरण मे अन्तर होगा और यह अन्तर पृष्ठभूमि मे अन्तर पडने के कारण होगा, क्योकि यहा वातावरण पृष्ठभूमि का काम कर रहा है। नाटक या सिनेमा के सवाद के साथ अनुकूल सगीत की पृष्ठभूमि (Background music) दी जाती है, जिससे वह सवाद ज्यादा प्रभावशाली बन जाता है। इस तरह, जस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिको के अनुसार आकृति के रूप मे उत्तेजना स्वय अपने को सगठित कर लेती है।

आकृति और पृष्ठभूमि बहुत प्राचीन चित्रो मे भी देखने मे आती है। लेकिन इन दोनों की भिन्नता और विशेषताओ का उल्लेख सर्वप्रथम रुबिन (Rubin) ने किया। उसने कई प्रयोगों के आधार पर बतलाया कि हमे किसी भी वस्तु या क्षेत्र का प्रत्यक्षीकरण आकृति के रूप मे होता है और प्रत्येक आकृति के साथ उसकी पृष्ठभूमि भी रहती है। इस तरह, उसने सिद्ध किया कि किसी भी ज्ञान क्षेत्र (Sensory field) का प्रत्यक्षीकरण आकृति और पृष्ठभूमि के रूप मे किया जाता है।

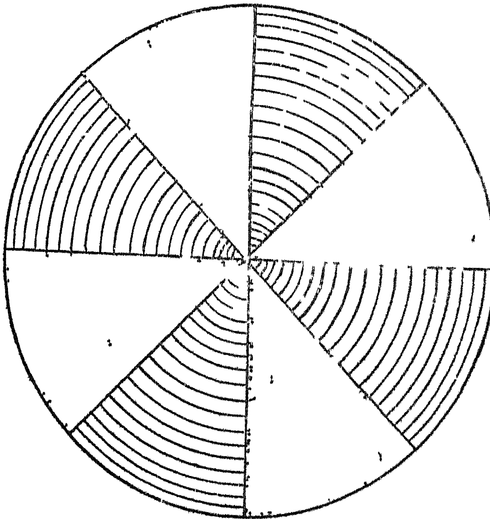
आकृति और पृष्ठभूमि के जो उदाहरण ऊपर दिए गए है वे बहुत ही सरल और स्पष्ट है। लेकिन, ऐसे उदाहरणों की भी कमी नही है जिनमे आकृति और पृष्ठभूमि परिवर्त्तित हुआ करती है। यानी, एक क्षण जो अश आकृति मालूम पडता है वही दूसरे क्षण मे पृष्ठ-भूमि बन जाता है और पृष्ठभूमि मालूम पडनेवाला अश आकृति हो जाता है। रेडियो मे स्टेशन ठीक से नही पकडने के कारण कभी कभी दो स्टेशनों से एक साथ ही ध्वनि सुनाई पडने लगती है। यदि इन दोनों की तीव्रता मे अधिक अन्तर न हो तो कभी एक स्टेशन की ध्वनि का प्रत्यक्षीकरण होता है तो कभी दूसरे स्टेशन की ध्वनि का। जिस समय एक स्टेशन की ध्वनि का बोध होता है, वह ध्वनि आकृति रहती है और दूसरी ध्वनि उसकी पृष्ठभूमि। लेकिन, दूसरे ही क्षण जब दूसरी ध्वनि का प्रत्यक्षीकरण होता है तो वह आकृति बन जाती है और दूसरी पृष्ठभूमि हो जाती है। इस तरह, इसमे आकृति और पृष्ठभूमि परि-वर्त्तित हुआ करती है। इसकी पुष्टि उभयाकार चित्र (Reversible perspective) से भी होती है। पृष्ठ १३४ के चित्रो को देख और निर्णय कर कि कौन सा अश आकृति है और कौन-सा पृष्ठभूमि। आप पाएँगे की प्रत्येक चित्र का कभी एक पहलू और कभी दूसरा पहलू आकृति बन जाता है।

आकृति और पृष्ठभूमि की विशेषताएँ रुबिन ने आकृति और पृष्ठभूमि के अन्तर को उनकी विशेषताओ के सहारे बतलाया है। आप स्वय पृष्ठ १३४ के चित्रों का प्रत्यक्षीकरण करने मे देख सकते है कि ये विशेषताएँ कहाँ तक सही है।

चित्र संख्या २९ (क)



चित्र संख्या २९ (ख)



आकृति और पृष्ठभूमि के प्रत्यक्षीकरण म परिवर्तन

(१) आकृति की सबसे पहली विशेषता यह है कि इसका एक निश्चित रूप (Form) या रूपरेखा होती है, पृष्ठभूमि की ऐसी कोई रूपरेखा नही होती। और यदि पृष्ठभूमि का कोई आकार दिखलाई पडता है तो वह आकार भी किसी आकृति के ही कारण दिखलाई पड़ता है। यदि आकृति को अलग कर दिया जाय तो अवशेष पहलू (पृष्ठभूमि) निरर्थक हो जायगा।

• (२) आकृति पृष्ठभूमि की तुलना मे अधिक स्पष्ट या उभरी हुई मालूम होती है और पृष्ठभूमि आकृति के पीछे फैली प्रतीत होती है। जैसे, पृष्ठ १३४ की चित्र सख्या २९ (ख) मे जिस समय लडकी (आकृति) का प्रत्यक्षीकरण होता है उस समय चित्र का यही पहलू स्पष्ट रहता है और अन्य पहलू उसके पीछे फैले प्रतीत होते है।

(३) आकृति हमारे मन को अधिक प्रभावित करती है और यह पृष्ठभूमि की अपेक्षा सार्थक भी अधिक होती है। यही कारण है कि आकृति काफी समय तक हमे याद रह जाती है, लेकिन पृष्ठभूमि को हम शीघ्र भूल जाते है।

(४) आकृति का प्रत्यक्षीकरण, पृष्ठभूमि की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से होता है, क्योंकि यह स्पष्ट और सीमित रहती है। ऊपर के चित्रो से इस कथन की सत्यता प्रमाणित होती है।

आकृति तथा पृष्ठभूमि के निर्धारक (Determinants)

किसी परिस्थिति, ध्वनि, या स्पर्श के प्रत्यक्षीकरण मे कोई पहलू आकृति और कोई पृष्ठभूमि कैसे बन जाता है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। मनोवैज्ञानिक अभी इसके सभी कारणों को समझने मे सफल नही हो सके है, फिर भी कुछ ऐसे कारणों का पता चला है जिनसे आकृति तथा पृष्ठभूमि निर्धारित होती है। यहाँ हम अपना सम्बन्ध दृष्टि उत्तेजना के साथ ही सीमित रखते हुए निम्नांकित मुख्य निर्धारकों की चर्चा करेंगे —

१ पूर्णता (Completeness),

२ आकार (Size)

३ प्रकाश का अन्तर,

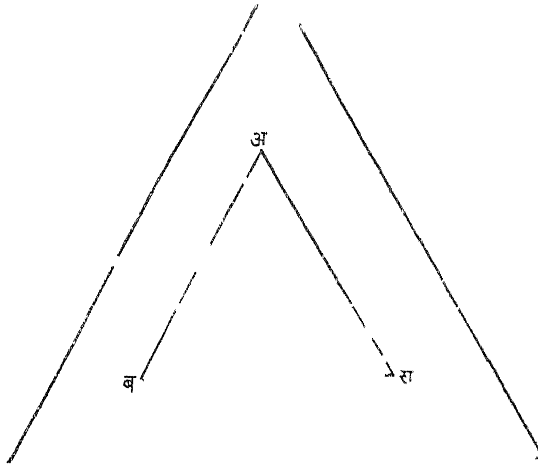
४ रग का अन्तर और

५ उपस्थिति काल (Exposure time)

१ पूर्णता किसी चित्र का जो भाग चारों ओर से घिरा हुआ या पूर्ण रहता है, वह प्रत्यक्षीकरण में आकृति बन जाता है और बाकी भाग पृष्ठभूमि का काम करते है। जैसे, यदि किसी बोर्ड पर केवल एक वृत्त बना दिया जाय तो वह वृत्त बोर्ड (Black board) की पृष्ठभूमि पर आकृति का काम करेगा। लेकिन, यदि वृत्त को मिटाकर बोर्ड पर कई छोटी छोटी लकीरे अनियमित रूप से खीच दी जाये (जिनका योग वृत्त की परिधि के बराबर हो) तो उनसे हमे आकृति का बोध नही होगा, क्योंकि उन रेखाओं से ऐसा कोई रूप नहीं बनता जो पूर्ण हो।

२ आकार (Size) सामान्यत देखा गया है कि जब कोई चित्र दो ऐसे भागों मे बँट जाता है जिनमे प्रत्येक का क्षेत्र एक दूसरे से अलग हो तो जिस भाग का आकार छोटा रहता है, वह आकृति बन जाता है और बड़े आकृति वाला भाग पृष्ठभूमि हो जाता है। उदाहरणार्थ—अगले पृष्ठ के चित्र मे बड़े त्रिभुज की पृष्ठभूमि पर छोटा त्रिभुज अ ब स आकृति है।

चित्र संख्या ३०



३ प्रकाश का अतर आकृति और पृष्ठभूमि में जब प्रकाश का अधिक अतर रहता है तब आकृति पृष्ठभूमि से भिन्न रूप में दिखाई देती है, अन्यथा उन दोनों का प्रत्यक्षीकरण कठिनाई से होता है। जैसे, यदि किसी काले कागज पर उजला चित्र या उजले कागज पर काला चित्र उपस्थित किया जाय तो वह चित्र आसानी से आकृति बन जायेगा। लेकिन, यदि उजले की जगह ग्रे (Grey) का उपयोग किया जाय तो उन दोनों में अतर कठिन हो जायगा और फलत आकृति अस्पष्ट हो जायगी। इस तरह, आकृति और पृष्ठभूमि के प्रत्यक्षीकरण मे प्रकाश का अतर एक मुख्य कारक है।

४ रग का अतर रग के अतर के कारण भी आकृति और पृष्ठभूमि का स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण होता है। यदि लाल रग के रेशमी कपड़े पर लाल गुलाब का फूल (आकृति) उपस्थित किया जाय तो फूल का प्रत्यक्षीकरण उतनी आसानी से नहीं होगा जितनी हरे रग के कपड़े पर उस फूल को उपस्थित करने पर होगा। इसी तरह, आकृति और पृष्ठभूमि के कुछ खास रग ऐसे होते हैं जिनमें आकृति अधिक उभर आती है। उदाहरणार्थ, गाढ़ पीले रग की पृष्ठभूमि पर हरे रग की आकृति काफी स्पष्ट दीख पड़ेगी।

५ उपस्थिति काल (Exposure time) कोई वस्तु या चित्र कितने समय तक आँखों के सामने उपस्थित किया जाता है, इस पर भी आकृति और पृष्ठभूमि का प्रत्यक्षीकरण निर्भर करता है। यदि यह उपस्थिति-काल बहुत छोटा हो तो दोनों के अन्तर को जान पाना मुश्किल है। सामान्यत पाया गया है कि कम से कम दस मीलीसेकण्ड तक जब उत्तेजना उपस्थित की जाती है तो आकृति और पृष्ठभूमि का अन्तर मालूम पड़ने लगता है। लेकिन, उपस्थिति काल इससे जितना ही अधिक रहता है, दोनों का अन्तर उतना ही अधिक स्पष्ट होता है।

इस तरह, ये मुख्य पाँच निर्धारक हैं जो दृष्टि सम्बन्धी प्रत्यक्षीकरण में आकृति और पृष्ठभूमि के अतर को निर्धारित करते हैं, लेकिन ये ही निर्धारक पर्याप्त नहीं माने जा सकते। वस्तुत अभी निर्धारकों का अनुसधान समाप्त नहीं हुआ है और सच तो यह है कि ये

निर्धारक भी अपने आप मे स्वतन्त्र नही है। इसपर भी, व्यक्ति (प्रत्यक्षीकरण करनेवाले) की इच्छा, अभ्यास, मनोवृत्ति (Attitude), तथा गत अनुभूति, आदि का प्रभाव पडता है। मेजगर (Metzger) तथा जक्लोन्सकी, आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह बतलाया है कि सभी अवस्थाओ मे आकृति और पृष्ठभूमि की भिन्नता का बोध होना कठिन है। इतना तो अभी व्यक्त किया ही गया कि उपस्थितिकाल दस मीलीसेकण्ड से कम रहने पर आकृति और पृष्ठभूमि के अन्तर का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता है। परन्तु, उपस्थितिकाल पर्याप्त रहने पर भी इनके अन्तर का बोध नही हो सकता है, इस सम्बन्ध में अभी कुछ निर्णयात्मक रूप से निष्कर्ष नहीं दिया जा सकता।

अब प्रश्न है, किसी आकृति का 'सगठन' (Organisation) एक खास तरह से क्यों होता है? यानी, क्यों हम किसी आकृति को एक खास रूप में देखते है? जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों ने इसकी व्याख्या के लिए सगठन के कुछ अगों (Factors of organisation) की चर्चा की है, जिनका उल्लेख यहाँ किया जाता है।

संगठन के अंग
(Factors of organisation)

हम अपने जीवन मे एक समय मे कई उत्तेजनाओं के सम्पर्क मे आते है। उनके प्रत्यक्षीकरण में भी आकृति और पृष्ठभूमि होती है, लेकिन इन आकृति और पृष्ठभूमियों का अन्तर बहुत आसान नहीं रहता, क्योंकि हम कई वस्तुओं को एक ही आधार पर देखते हैं। ऐसी स्थिति मे आकृति का निर्माण उत्तेजनाओ मे सगठन या समूहीकरण (Grouping) के कारण सभव हो जाता है। उत्तेजनाओ के बीच यह सगठन अनायास ही नही होता, बल्कि जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिको के अनुसार, कुछ खास अग इसे प्रभावित करते है। पीछे हम व्यक्त कर चुके है कि जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक ऐसा मानते है कि ज्ञानक्षेत्र (Sensory field) स्वय ही एक सगठित रूप मे हमारे सामने उपस्थित होता है। ज्ञानक्षेत्र किस प्रकार स्वय सगठित होता है, इसी को जेस्टाल्टवादियो ने कुछ नियमों (Principles) या अगों के सहारे व्यक्त किया है। इस सबध मे वर्दीमर (Wertheimer) का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। सगठन के जिन अगों की चर्चा उसने की उनका उपयोग मुख्य रूप से दृष्टि सम्बन्धी प्रत्यक्षीकरण मे होता है, तथापि अन्य ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित प्रत्यक्षीकरण मे भी इनकी उपेक्षा नही की जा सकती। वर्दीमर द्वारा बताए गए 'सगठन' के सभी अगों को तीन वर्गों मे रखा जा सकता है,

(क) बाह्य अग (Peripheral factors),

(ख) केन्द्रीय अग (Central factors) तथा

(ग) प्रोत्साहक अग (Reinforcing factors)।

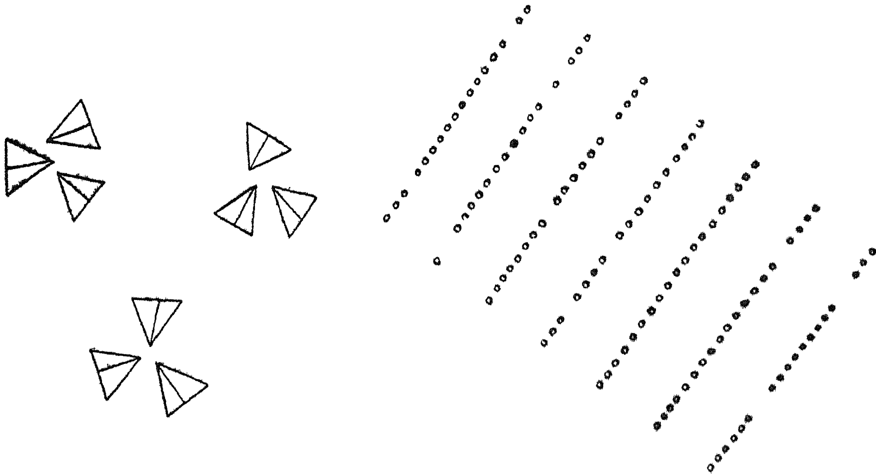
(क) बाह्य अग (Peripheral factors)

बाह्यअगों के अन्तर्गत संगठन के वैसे अग आते है जो उत्तेजनाओं (Stimuli) में ही निहित रहते है और जिनके कारण उत्तेजनाओं मे 'सगठन' का आविर्भाव होता है। वस्तुत जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों ने सबसे अधिक इन्हीं अगों पर जोर दिया है। इन अगों में

चार की चर्चा वर्दीमर तथा अन्य जेस्टाल्टवादियों ने भी की है और वे हैं—(१) समीपता (Proximity), (२) समानता (Similarity), (३) निरन्तरता (Continuity), तथा आच्छादन (Closure)। यहाँ इन चारो अगों को चित्रों के सहारे स्पष्ट कर देना पर्याप्त होगा।

(१) समीपता (Proximity) जो उत्तेजनाएँ स्थान और काल में एक दूसरे के समीप होती है उनमे एक सगठन स्थापित हो जाता है और फलत उनका संगठित प्रत्यक्षीकरण एक साथ होता है। इस नियम की पुष्टि कोहलर (Kohler) ने प्रयोग द्वारा की है। निम्नाङ्कित चित्र मे हम नौ त्रिभुजो को क्रम के साथ अलग-अलग न देखकर उन्हे तीन-तीन त्रिभुजों के समूहो मे देखते हैं। ऐसा इसलिए होता है, चूकि प्रत्येक समूह के त्रिभुज एक दूसरे के समीप है। दूसरे चित्र मे छोटे छोटे वृत्तो की सात कतार इसी अग के कारण मालूम होती है।

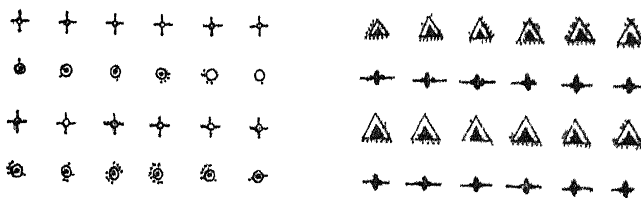
चित्र सख्या ३१



समीपता का चित्र

(२) समानता (Similarity) जब हमारे ज्ञान-क्षेत्र में कई उत्तेजनाएँ रहती हैं तो उनमें समान या एक तरह की उत्तेजनाएँ आपस में सगठित हो जाती हैं और फलत उनका प्रत्यक्षीकरण एक साथ समूह में होता है। समानता, रूप, रंग, आकार आदि किसी की भी हो सकती है। नीचे की चित्र सख्या ३२ के दोनों चित्रों में समान चित्रों का प्रत्यक्षीकरण एक साथ सगठित रूप मे हो रहा है।

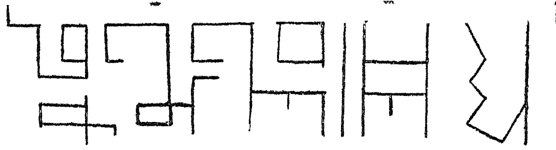
चित्र-सख्या ३२



समानता का चित्र

• ३ **निरन्तरता** (Continuity) निरन्तरता का अग प्रत्यक्षीकरण को क्योकर प्रभावित करता हे यह नीचे के चित्र से प्रमाणित होता है। इस चित्र मे 'कमलालय' लिखा हुआ है, किन्तु उसका स्पष्ट बोध नही होता है, क्योकि प्रत्येक अक्षर के साथ कुछ अनावश्यक अश जोडा या मिला दिया गया है जिससे अक्षर की निरतरता बढ गयी है। फलत हमें किसी भी अक्षर का ज्ञान न होकर आकृतिमात्र का ही ज्ञान होता है। किसी चीज से ऊपर अर्धाश को ढलकर 'कमलालय' देखा और पढा जा सकता है। इस चित्र से यह स्पष्ट है कि उत्तेजनाओ के सगठन मे निरतरता का विशेष हाथ रहता है।

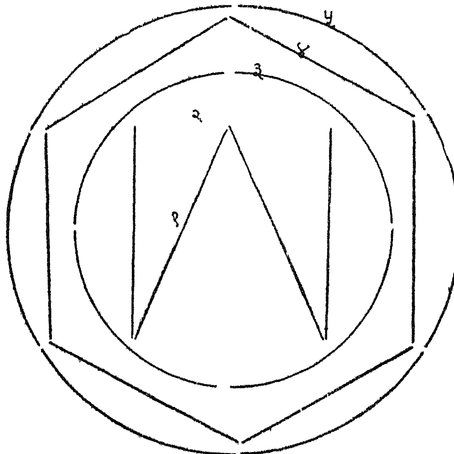
चित्र सख्या ३३



निरतरता का चित्र

४ **आच्छादन** (Closure) निरतरता के ही समान आच्छादन अंग का भी असर किसी पदार्थ को देखने मे पडता है। यदि किसी आकृति (Figure) का कोई अग अधूरा रहता है तो उसके अधूरा रहने पर भी हम उसे पूरा करके ही देखते है। नीचे के चित्र में पाँच विभिन्न आकृतियाँ बनी है। पहली आकृति को यदि गौर से देखे तो पायेगे कि यह तीन रेखाओ से बनी अवश्य है, लेकिन ये रेखाएँ एक दूसरी से मिली नही है और फलत इस आकृति मे एक भी कोण नही है। फिर भी, इसे हम त्रिभुज के रूप मे देखते है, क्योकि हमारी स्वाभाविक प्रवृति अधूरे भाग को पूरा कर हमे त्रिभुज का ज्ञान देती है। इसी तरह, दूसरी आकति मे भी केवल चार रेखाएँ है, कोण नही, और फिर भी हम उससे चतुर्भुज का ही बोध करते हे। इसी तरह, तीसरे, चौथे तथा पाँचवे चित्र भी वस्तुत अपूर्ण है, किंतु आच्छादन के कारण वे पूर्ण ही दृष्टिगोचर होते है।

चित्र सख्या ३४



आच्छादन का चित्र

(ख) केन्द्रीय अग (Central factors)

केन्द्रीय अगों के अन्तर्गत 'सगठन' (Organization) के ऐसे अगों का बोध होता है जो व्यक्ति के अन्दर रहकर उत्तेजना का एक सगठित ज्ञान देने मे सहायक होते हैं। इसके अन्तर्गत जेस्टाल्टवादियों के दो अङ्गों को रखा जा सकता है (१) परिचय (Familiarity) तथा (२) मानसिक झुकाव (Mental set)। परिचय और मानसिक झुकाव हर व्यक्ति के अलग अलग होते हैं। ये उत्तेजना के रूप रग के साथ नहीं रहते बल्कि व्यक्ति के मन मे रहते हैं। जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक इन अङ्गों पर बहुत अधिक जोर नहीं देते और न वे ऐसा ही मानते हैं कि परिचय या गत अनुभूति (Past experience) प्रत्यक्षीकरण के लिए आवश्यक अङ्ग है। फिर भी उन्होंने इतना तो माना ही है कि इनके प्रभाव से उत्तेजनाओं का सगठन एक खास तरह का होता है।

(१) परिचय (Familiarity) जब उत्तेजनाओं के किसी खास सगठन का अनुभव एक बार हो जाता है तो वह सगठन व्यक्ति विशेष के लिए परिचित हो जाता है। फलत उसका प्रत्यक्षीकरण अपेक्षाकृत आसानी और शीघ्रता से होता है। उदाहरणार्थ, यदि चित्र-सख्या ३३ मे एक बार आप 'कमलालय' पढ चुके हैं तो बाद मे जब भी वह चित्र आपके सामने आयेगा आप 'कमलालय' पढ लेगे, निरन्तरता (Continuity) बाधक नहीं होगी। लेकिन, जेस्टाल्टवादियों के अनुसार परिचय हमारे प्रत्यक्षीकरण को आवश्यक रूप से प्रभावित नहीं करता। गॉटशाल्ट (Gottschaldt) ने अपने प्रयोगों मे पाया कि उसके कुल बीस प्रतिशत प्रयोज्यों ने ही परिचय के कारण खास तरह के सगठन का अनुभव किया। करीब अस्सी प्रतिशत प्रयोज्यों का प्रत्यक्षीकरण अन्य बाह्य अङ्गों से प्रभावित था, फलत वे उपस्थित परिचित आकृति का ज्ञान नहीं पा सके।

(२) मानसिक झुकाव (Mental set) व्यक्ति के खास मानसिक झुकाव का असर भी उत्तेजनाओं के सगठन पर पडता है। जब हम किसी खास दृष्टिकोण या मानसिक झुकाव के साथ किसी वस्तु को देखते हैं तो हमारा प्रत्यक्षीकरण उसी के अनुकूल होता है, ऊपर जितने अङ्गों की चर्चा की गई उन सभी का असर फीका पड जाता है। मानसिक झुकाव का निर्माण दो तरह से होता है—एक अभ्यास या आदत से और दूसरा किसी खास परिस्थिति से। इन दोनों का असर 'सगठन' पर पडता है। डाक्टर और दार्शनिक के मानसिक झुकावों मे अन्तर होता है, प्रत्येक की वृत्ति या झुकाव अभ्यासजन्य होता है। दार्शनिक जब किसी रोगी को देखता है तब उसे जगत की नश्वरता का आभास मिलता है। किन्तु जब डाक्टर उसी को देखता है तो उसे उस व्यक्ति मे शारीरिक गडबडी का प्रत्यक्षीकरण होता है। इसतरह, एक ही बीमार व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण मे अन्तर पड जाता है। यह अन्तर इसलिए है, चूँकि डाक्टर और दार्शनिक की मानसिक वृत्तियाँ (झुकाव) अलग अलग हैं। इसी तरह, क्षणिक या परिस्थितिजन्य मानसिक वृत्ति का असर भी प्रत्यक्षीकरण पर देखने मे आता है। जैसे, यदि आप को बहुत जल्दी मे किसी जगह पहुँचना हो और रिक्शा से जा रहे हों तो रिक्शा की तेज चाल भी आप को धीमी ही लगेगी।

(ग) प्रोत्साहक अग (Reinforcing factors)

प्रोत्साहक अग के अन्तर्गत सामान्यत उभार (Pregnance) तथा अच्छी आकृति (Good figure) के अगों को रखा जाता है। वस्तुत यह अग बहुत अशों में थार्नडाइक के

प्रभाव-नियम (Law of effect) या सम्बद्ध प्रत्यावर्तन के प्रोत्साहन (Reinforcement) से बहुत मिलता जुलता है। जिस तरह, प्रभाव नियम यह बतलाता है कि किसी व्यवहार को हम क्यों दुहराते या सीखते है, उसी तरह अच्छी आकृति का नियम भी यह बतलाता है कि हम किसी उत्तेजना का सगठन एक खास रूप मे कैसे कर लेते है। अच्छी आकृति (Good figure) का यह अग या नियम अपना सम्बन्ध आच्छादन (Closure) से अधिक रखता है। हमने देखा कि आच्छादन के कारण हम अपूर्ण चित्र को भी हम पूर्ण रूप मे अनुभव करते है। लेकिन, ऐसा क्यो होता है? जेस्टाल्टवादियों के अनुसार एसा इसलिए होता है, चूँकि हम प्रत्येक चीज या उत्तेजना को अच्छी आकृति के रूप मे देखना और अनुभव करना चाहते है। अच्छी आकृति के रूप मे प्रत्यक्षीकरण पाने की प्रेरणा के ही फलस्वरूप हम अपनी इच्छा और अभिरुचि के अनुसार निरर्थक चिन्हों मे भी कुछ सार्थक आकृति देखते है। नीचे के चित्र का कोई अर्थ नही है, पर हमे लगता है, जैसे किसी घोड़े पर एक सवार है।

चित्र सख्या ३९



प्रत्यक्षीकरण के निर्धारक
(Determinants of perception)

प्रत्यक्षीकरण को निर्धारित करने वाले अङ्गों और कारणों को दो वर्गों मे बाँटा गया है—(क) बाह्य या रचनात्मक निर्धारक (Structural determinants), तथा (ख) आन्तरिक या क्रियात्मक निर्धारक (Functional determinats)। रचनात्मक निर्धारकों का अर्थ उत्तेजना के स्वरूप तथा सगठन, आदि एसे अङ्गो से है जो उत्तेजनामे ही निहित रहते है। जेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने इस पर बहुत जोर दिया है। मुख्यत इसके अन्तर्गत समीपता, समानता, निरन्तरता (Continuity) तथा आच्छादन (Closure) की गणना होती है। उनकी व्याख्या पीछे की जा चुकी है, अत यहाँ उनकी पुनरावृत्ति नही की जायगी। इन निर्धारकों के अनुसार, सक्षेप मे, प्रत्येक उत्तेजना के कुछ एसे गुण होते है, एसा स्वरूप होता है कि वह एक खास तरह का असर स्नायु मडल (Nervous system) पर डालती है और फलत उसका प्रत्यक्षीकरण एक खास तरह का होता है। लेकिन, कुछ कारण और अग ऐसे भी होते है जो न तो उत्तेजना मे रहते हैं और न परिस्थिति से सम्बन्धित रहते हैं, फिर भी वे व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करते है। ये निर्धारक अङ्ग व्यक्ति के मन में होते है। इन निर्धारकों को ही आन्तरिक या क्रियात्मक निर्धारक (Functional

determinants) के नाम से अभिव्यक्त किया गया है। (१) गत अनुभूति (Past experience) (२) मानसिक वृत्ति (Mental set), (३) [illegible] आवश्यकता (Needs), (४) मूल्य (Value) (५) उमंग (Mood) [illegible] (Perceptual defence), आदि अंगों की गणना [illegible] की जाती है। इनमें मानसिक वृत्ति (Mental set) के सम्बन्ध में हम संगठन [illegible] समय प्रकाश डाल चुके है। परिचय ([illegible]) के अन्तर्गत, हम गत अनुभूति पर भी विचार कर चुके है। अत यहाँ हम इनकी संक्षेप में ही [illegible]।

(१) गत अनुभूति (Past experience) प्रत्यक्षीकरण [illegible] गत अनुभूति पर ही निर्भर करता है। अतएव प्रायः सभी प्रत्यक्षीकरण में गत अनुभूति का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। जब कोई वस्तु या व्यक्ति मेरे सामने उपस्थित होता है तो उसका वैसा ही प्रत्यक्षीकरण होता है, जैसा उसके सम्बन्ध मे पहले अनुभव हुआ था। जब हम मालूम है कि घडी चलने से उसके मशीन से खट खट की आवाज निकलती है। तब घडी मे 'खट खट' की आवाज से हमे यह प्रत्यक्षीकरण होता है कि घडी चल रही है, लेकिन जिस बच्चे को यह मालूम है कि यह (घडी) एक बाजा है वह उसकी 'खट खट' से बाजा बजने का प्रत्यक्षीकरण करता है। एक ही आवाज के प्रत्यक्षीकरण में अन्तर पड़ने का कारण है, गत अनुभूति का अन्तर। एक सयाने और (वैसे) बच्चे के अनुभव मे अन्तर है, उसी से प्रत्यक्षीकरण दोनो का दो तरह का हुआ।

इसी तरह, जब भी कोई उत्तेजना हमारे सामने आती है हम अपने अनुभव के आधार पर उसका प्रत्यक्षीकरण करते है। किसी दावात को दावात और घोडा को घोडा हम क्यो कहते है? इसलिए कि हम पहले यह जान चुके है (गत अनुभूति) कि ऐसी चीज को दावात और ऐसे जीव को घोडा कहा जाता है। हम दोनो की विशेषता या और गुण अवगुणो का प्रत्यक्षीकरण भी अपनी गत अनुभव के आधार पर ही करते हैं। अत सच तो यह है कि प्रत्यक्षीकरण के सहारे व्यक्ति के अनुभवो का बहुत अधिक ज्ञान हम पा जाता है। कई प्रयोग द्व्यर्थक चित्रों (Ambiguous pictures) के साथ किए गए है जिनसे पता चलता है कि एक ही चित्र का विभिन्न अर्थ विभिन्न व्यक्तियो द्वारा लगाया जाता है। इसका कारण यह होता है कि वस्तुत चित्र के द्व्यर्थक होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति उसके प्रत्यक्षीकरण मे अपने अनुभवों को प्रक्षेपित (Project) कर देता है। फलत चित्र के प्रत्यक्षीकरण के सहारे वह अपने अनुभवों को अभिव्यक्त कर देता है, और चूकि हर व्यक्ति का अनुभव एक दूसरे से भिन्न होता है, इसलिए प्रत्येक का प्रत्यक्षीकरण भी एक दूसरे से भिन्न होता है।

(२) मानसिक वृत्ति (Mental set) मानसिक वृत्ति के सम्बन्ध मे हम पीछे व्यक्त कर चुके है कि यह दो तरह की होती है— अभ्यास जन्य (Habitual) और परिस्थिति जन्य (Situational) और इन दोनो का असर हमारे प्रत्यक्षीकरण पर पड़ता है। जिस समय जैसी मानसिक वृत्ति रहती है उस समय हमारा प्रत्यक्षीकरण भी उसी के अनुकूल होता है। जब दो व्यक्तियों की मानसिक वृत्ति या सुभाव दो तरह का रहता है तो उनका प्रत्यक्षीकरण भी एक दूसरे से भिन्न होता है। इसी तरह कोई व्यक्ति एक ही चित्र मे दो समय मे दो भाव का प्रत्यक्षी[illegible] मानसिक वृत्ति म अन्तर पड जाने के कारण करता है। मरे (Murray) का प्रयोग इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है। उसने कुछ

लडकियों के सामने एक आदमी का चित्र उपस्थित किया। सभी ने उसका प्रत्यक्षीकरण एक अच्छे आदमी के रूप मे किया। पुन मरे ने उन लडकियो को दो समूहों मे बाँट कर एक समूह को एक खास तरह का खेल खेलने दिया। इस खेल मे एक आदमी ने किसी की हत्या की थी। खेल के बाद जब पुन आदमी (पहले वाले) के चित्र को उपस्थित किया गया तो उस समूह की लडकियो ने (जिसने हत्या का खेल खेला था) उस चित्र में एक कलुषित हृदय और खराब आदमी का प्रत्यक्षीकरण किया, जबकि दूसरे समूह की लडकियों का प्रत्यक्षीकरण पूर्ववत् ही रहा। प्रत्यक्षीकरण मे अन्तर इसलिए पडा चूँकि खेलते समय लडकियों मे आदमी (मर्दों) के सम्बन्ध मे एक खास तरह की (कलुषित हृदय, नीच) मानसिक वृत्ति उत्पन्न हो गई थी। इस तरह स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण पर मानसिक वृत्ति का प्रभाव पडता है।

(३) आवश्यकता और प्रेरणा (Need and motivation) आवश्यकताएँ दो तरह की होती है—प्रमुख आवश्यकता (Primary needs) तथा गौण आवश्यकता (Secondary needs)। खाने पीने या जीवनयापन करने सबन्धी जितनी आवश्यकताएँ है उन्हे प्रमुख आवश्यकता कहा जाता है और सामाजिक प्रतिष्ठा, नाम और यश पाने की जो आवश्यकता व्यक्ति मे होती है उन्हे गौण आवश्यकता। हमारे प्रत्यक्षीकरण को प्रमुख एव गौण दोनों आवश्यकताएँ प्रभावित करती है। आवश्यकता का सबन्ध प्रेरणा से बहुत गहरा है। जब हम किसी आवश्यकता का अनुभव करते है तो उसके साथ ही मन मे आवश्यकता पूर्ति के लिए कुछ भाव, कुछ शक्ति (Force) भी उठती है जिसे हम प्रेरणा कहते है। हमे भूख लगती है तो हम भोजन पाने के लिए प्रेरित भी हो जाते है। मन मे जिस तरह की आवश्यकता और प्रेरणा रहती है उसका काफी प्रभाव प्रत्यक्षीकरण पर पडता है। लेविन (Lewin) तथा मर्फी (Murphy) आदि ने अपने प्रयोगो मे देखा कि द्व्यर्थक चित्रों (Ambiguous pictures) मे भूखे प्रयोज्यों को अधिकांश भोज्य पदार्थों का ही प्रत्यक्षीकरण हुआ। इसी तरह विभिन्न आवश्यकताओं के साथ हुए प्रयोगो से स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण मे आवश्यकताओं के द्वारा न केवल उत्तेजना का चुनाव (Selection) होता है, बल्कि उत्तेजना का रूप भी बदल जाता है।

इन दिनों प्रत्यक्षीकरण मे आवश्यकता का महत्व बहुत अधिक माना जाने लगा है। फ्रायड से लेकर मर्फी, मरे, पोस्टमैन, शरीफ, आदि विभिन्न आधुनिक मनोवैज्ञानिक ऐसा मानने लगे है कि यह [illegible] हमारी आन्तरिक अवस्था (Internal state) तथा प्रेरणा के अनुकूल ही होती है। किसी भी चीज का शुद्ध या विधेयात्मक (Objective) प्रत्यक्षीकरण ससार के सभी व्यक्तियों को नही होता है। जिन लोगों को जानकारी रहती है वे शुद्ध प्रत्यक्षीकरण करते है। इसी से मर्फी (Murphy) का कहना है कि ससार मे कुछ भी विश्वसनीय (Universal) और विधेयात्मक नही है और यदि हम विधेयात्मक या बाह्य ससार की बात करते है तो वह इसलिए कि हममें से कोई भी यह स्वीकार करना नही चाहता कि वह कुछ निजी कारणों (आन्तरिक अवस्थाओं) के कारण वैसा अनुभव कर रहा है[1]। कोई भूखा जब सभी द्व्यर्थक चित्रो मे खाने की चीज, प्यासा

1 'There is nothing as objective and universal around us If we speak of an objective world, it is only because no one likes to accept this reality that he is perceiving according to his subjective factors'—Murphy

पीने की चीज और दरिद्र पैसे का प्रत्यक्षीकरण करता है तो उस समय वे यही समझते हैं कि,वे जैसा अनुभव कर रहे हैं वैसा ही सभी लोग अनुभव करते हैं। यानी उनका प्रत्यक्षीकरण विश्वसनीय है। हिल्गार्ड (Hilgard) ने बतलाया कि जब हम अपनी आवश्यकता (भूख) के अनुकूल प्रत्यक्षीकरण (भोजन की चीज) करते हैं तो हमारी प्रेरणा संतुष्ट होती है। अत प्रेरणा की संतुष्टि के लिए ही हमारा प्रत्यक्षीकरण आवश्यकता के अनुसार होता है। इस तरह, इन मनोवैज्ञानिको के कथन मे सत्यता चाहे जितनी भी हो, इतना स्पष्ट है कि आवश्यकता और प्रेरणा प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करनेवाले प्रमुख अंग हैं।

४. मूल्य (Value) प्रत्येक चीज का हमारे जीवन मे कुछ महत्व और मूल्य होता है। किसी वस्तु का यह मनोवैज्ञानिक मूल्य हर व्यक्ति के लिए अलग अलग होता है। किसी गाँव के किसान के लिए हल का बहुत मूल्य है। उसी का मूल्य किसी शहरी किरानी के लिए कुछ नही है। प्रत्यक्षीकरण पर इस तरह के मूल्याकन का भी प्रभाव पडता है और फलत एक व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण दूसरे से भिन्न होता है। क्लब के सदस्यों को क्लब नर्त्तकी बहुत आकर्षक लगती है, क्योकि उन सदस्यों की आँखों में उसका मूल्य अधिक है। लेकिन, वही नर्त्तकी अपने अनोखे और अर्द्ध नग्न पोशाक के कारण क्लब न जाने वाले सज्जन को बड़ी भद्दी और बेशर्म लगती है, क्योंकि उसे सज्जन के लिए उसका मूल्य बहुत कम या कुछ नही है। ब्रुनर (Bruner) तथा गुडमैन (Goodman) ने एक प्रयोग इस सम्बन्ध में किया जिसमे कुछ धनी और गरीब बच्चों को विभिन्न सिक्कों का आकार (Size) अलग अलग चित्रित करने को दिया गया। प्रयोग में पाया गया कि गरीब लडकों ने सिक्के का आकार अधिक बडा बनाया, क्योकि किसी भी सिक्के का मूल्य उनके लिए धनी बच्चों की अपेक्षा अधिक था। यों, सभी बच्चो ने सिक्कों के मूल्य का अत्याकन (Over estimation) किया लेकिन गरीब बच्चों में यह अत्याकन धनी बच्चों से अधिक था।[1] इसी प्रकार टचिस्टस्कोप (Tachistoscope) के सहारे प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया गया है कि जिन चीजों का मूल्य व्यक्ति के जीवन में अधिक रहता है उनका प्रत्यक्षीकरण वह कम समय मे ही कर लेता है। दूसरी ओर, जिन वस्तुओं का मूल्य उसके लिए कम रहता है उसके प्रत्यक्षीकरण मे उसे अधिक समय की जरूरत होती है।

५ उमंग (Mood) किसी तरह के संवेग या भाव (Feeling) के समाप्त हो जाने के बाद भी उसका कुछ असर मन मे रह जाता है, इसे ही उमग कहते हैं। हम अक्सर यह कहते सुनते है कि 'वे मेरी बात को ठीक से नहीं समझ सके, क्योंकि उनका 'मूड' अच्छा नही था'। बात भी सही है। हमारा प्रत्यक्षीकरण कुछ अशों में उमंग से भी प्रभावित होता है। लुबा (Luba) और लुकस (Lucas) ने अपने कुछ प्रयोज्यों को छ चित्र उनके तीन विभिन्न उमगों या मूड की अवस्थाओं में दिया। एक बार जब वे प्रसन्न मूड मे थे, दूसरी बार जब वे अप्रसन्न मूड मे थे और तीसरी बार जब वे तार्किक (Critical) मूड में थे। प्रयोग परिणाम से पता चला कि इन तीनों अवस्थाओं में चित्रों

---

१ यह प्रयोग काफी प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण है। इसके विशद वर्णन और ग्राफ चित्र के लिए ब्रुनर तथा गुडमैन का 'Journal of Abnormal & Social Psychology, 1947, 42 40' में प्रकाशित निबन्ध देखा जा सकता है।

का प्रत्यक्षीकरण तीन तरह का हुआ ।

६ प्रत्यक्षात्मक सुरक्षा (Perceptual defence) प्रत्यक्षीकरण मे हमारी इच्छा और अभिरुचि बहुत काम करती है। जिस वस्तु या व्यक्ति को हम चाहते है, हमें उसमे किसी तरह की बुराई और खराबी का प्रत्यक्षीकरण नही होता। इसे ही प्रत्यक्षात्मक सुरक्षा कहते है। जिसे हम चाहते है उसके सबन्ध मे खराब बाते जानकर हमें दुख होता है, यानी, हमारी आत्मा (Self) या अह (Ego) को एक चोट लगती है। बुराई का प्रत्यक्षीकरण नहीं होने से अह को कोई कष्ट नही होता। इस तरह कभी कभी प्रत्यक्षीकरण न होने से अह को कष्ट से रक्षा होती है। इसीलिए प्रत्यक्षीकरण न होने की इस प्रक्रिया को प्रत्यक्षात्मक सुरक्षा के नाम से पुकारा जाता है। ब्लम (Blum) ने एक प्रयोग मे बचपन के मनोयौनविकास (Psychosexual development) सबन्धी कुछ सवेगात्मक चित्र, यथा, हस्तमैथुन, मौखिक प्रेम आदि को टचिस्टस्कोप के सहारे उपस्थित किया। उसने पाया प्रयोज्यो को उन सवेगात्मक चित्रों का प्रत्यक्षीकरण कुछ कठिनाई के साथ हुआ। लेकिन, जब सामान्य तथा तटस्थ (Neutral) चित्र उपस्थित किए गए तो वे ही प्रयोज्य बिना किसी असुविधा और कठिनाई के उनका प्रत्यक्षीकरण कर सके। इसी तरह के अन्य प्रयोगों से भी यह सिद्ध है कि जब कभी भी अह को भयभीत करने वाली कोई उत्तेजना या स्थिति हमारे सामने आती है तो हमारे प्रत्यक्षीकरण मे एक अवरोध उत्पन्न हो जाता है और हमारा मन यह कोशिश करने लगता है कि उसका प्रत्यक्षीकरण न हो।

इस तरह, हम देखते है कि प्रत्यक्षीकरण मे क्रियात्मक निर्धारकों (Functional determinants) का बहुत अधिक हाथ रहता है। कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक माना है कि प्रत्यक्षीकरण मे बाह्य या विधेयात्मक (Objective) कुछ नही होता। हमारा सभी प्रत्यक्षीकरण आत्मगत होता है। लेकिन, यह विचार युक्ति सगत नही है। वस्तुत हम प्रत्यक्षीकरण के बाह्य निधारकों की अवहेलना नही कर सकते। उत्तेजना वही रहती है परतु सगठन या पृष्ठभूमि (Background) मे अन्तर आने के कारण उसका प्रत्यक्षीकरण भिन्न हो जाता है। इसी तरह, जो लोग बाह्य निर्धारकों को प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या के लिए एकमात्र पर्याप्त मानते है, वे भी अपने विचार मे एकांगी है। उनका कहना है कि हमारा मस्तिष्क प्रत्येक स्थिति या उत्तेजना को एक खास ढग से सगठित करता है और फलत हमें एक खास तरह का प्रत्यक्षीकरण होता है। लेकिन, यदि आज इतना ही सही है तो फिर किसी द्वयर्थक चित्र (Ambiguous picture) का सगठन विभिन्न व्यक्तियों मे विभिन्न तरह का क्यों होता है? इसका कोई उत्तर बाह्य निर्धारको के आधार पर नही मिल पाता। हमे इसके लिए गत अनुभूति, मानसिक वृत्ति, आवश्यकता, आदि प्रेरणात्मक अवस्थाओं (Motivating states) की सहायता लेनी होगी। हिलगार्ड (Hilgard) ने कुछ जन्माधो पर प्रयोग करके पाया कि जब उन्हे उनकी आँखें ठीक हो गईं तब भी उनकी दृष्टि प्रत्यक्षीकरण हम सामान्य लोगो के प्रत्यक्षीकरण से भिन्न था। यह सिद्ध करता है कि गत अनुभूति प्रत्यक्षीकरण को निर्धारित करती है। इस तरह, हम आसानी से निष्कर्ष स्वरूप कह सकते है कि प्रत्यक्षीकरण की पूरी व्याख्या के लिए दोनो तरह के निर्धारक सही और आवश्यक है। सामान्य प्रत्यक्षीकरण की सतोषप्रद व्याख्या बाह्य निर्धारको से होती है

जब कि व्यक्तिगत प्रत्यक्षीकरण की समुचित व्याख्या आन्तरिक या क्रियात्मक निर्धारकों द्वारा हो सकती है।

स्थान का प्रत्यक्षीकरण

(Perception of space)

'स्थान' का प्रयोग यहाँ एक विशेष अर्थ मे किया गया है। जब भी हम किसी उत्तेजना का प्रत्यक्षीकरण करते है तो हमे मात्र इतना ही ज्ञान नहीं होता कि वह अमुक स्थान पर है, बल्कि हमे यह भी ज्ञान होता है कि वह कहाँ है और किस दिशा में है। टेबुल पर रखी हुई घडी का प्रत्यक्षीकरण होते समय हमे इसका भी ज्ञान होता है कि वह घडी हमसे अमुक दिशा मे इतनी दूरी पर है। इतना ही नहीं, दृष्टि-प्रत्यक्षीकरण (Visual perception मे हमें ऊँचाई, गहराई या मोटाई का प्रत्यक्षीकरण होता है। इस तरह, स्थान के प्रत्यक्षीकरण से यहा उस स्थान के प्रत्यक्षीकरण का तात्पर्य है जिसका प्रत्यक्षीकरण करते समय हमे दूरी (Distance), दिशा (Direction) और गहराई (Depth) इन तीनों का प्रत्यक्षीकरण साथ साथ हो। इस अर्थ मे, स्थान का प्रत्यक्षीकरण आँख, कान और त्वचा (Skin) इन तीन ज्ञानेन्द्रियो मे होता है। अधिकाश स्थान प्रत्यक्षीकरण हमे देखकर होता है, इसके बाद स्पर्श करके और सबसे कम सुनकर होता है। अत हम कह सकते है कि स्थान प्रत्यक्षीकरण तीन तरह का होता है,

(क) त्वक स्थान प्रत्यक्षीकरण (Cutaneous space perception)
(ख) श्रवण- स्थान प्रत्यक्षीकरण (Auditory space perception) तथा
(ग) दृष्टि स्थान प्रत्यक्षीकरण (Visual space perception)

हम क्रमश तीनों पर यहाँ सक्षेप मे विचार करेगे।

(क) त्वक् स्थान-प्रत्यक्षीकरण

(Cutaneous space perception)

त्वक् स्थान प्रत्यक्षीकरण के अन्तर्गत मुख्य रूप मे दो बाते आती है—(१) त्वक स्थानीकरण (Cutaneous localization) और (२) दो बिन्दुओं की अनुभूति (Two points limen)।

(१) त्वक् स्थानीकरण (Cutaneous localization) यदि हमारी आँखें बद रहने पर भी कोई हमारे शरीर के किसी भाग को स्पर्श करता है तो हम आसानी से बतला देते है कि उसने हमारे हाथ, पैर, पीठ या शरीर के किस भाग का स्पर्श किया है। इतना ही नहीं, यदि बहुत ध्यान से बतलाना चाहे तो उस अग के निश्चित स्पर्श बिन्दु (जहाँ पर स्पर्श किया गया) को भी हम बतला सकते है। त्वचा के स्पर्श-बिन्दु के इस प्रत्यक्षीकरण को त्वक्-प्रत्यक्षीकरण कहते है। यानी हम इसमें त्वचा के निश्चित स्थान को बतलाते है।

त्वक् स्थानीकरण का प्रयोग दो तरह से किया जाता है। एक विधि के अनुसार प्रयोज्य के हाथ या शरीर के किसी निश्चित भाग से कई जगह पेन्सिल या किसी नुकीली

चीज से स्पर्श किया जाता है। प्रयोज्य की आँख उस समय बंद रहती है। तब वह स्पर्श-बिन्दु को अपने अंदाज से किसी दूसरी नुकीली चीज के सहारे बतलाता है। दोनों बिन्दुओं में अक्सर कुछ अन्तर दीख पड़ता है, इसे स्थानीकरण की अशुद्धि (Error in localization) कहते हैं। इस अशुद्धि और अशुद्धि की दिशा (Direction of error) को कागज पर स्थान का चित्र बनाकर लिख लिया जाता है।

त्वक् स्थानीकरण की दूसरी विधि के अनुसार प्रयोज्य के शरीर के किसी भाग पर एक रबर-स्टाम्प (मुहर) की छाप लगाई जाती है। प्रायः यह मुहर एक वर्ग इंच की होती है जिसका क्षेत्रफल छोटे छोटे सौ बराबर वर्गों में बँटा रहता है। एक वैसी ही मुहर कागज पर लगा दी जाती है। प्रयोज्य की आँख बन्द कर उसके शरीर पर के किसी छोटे वर्ग को एक नुकीली चीज से स्पर्श किया जाता है। प्रयोज्य उस बिन्दु को अपने अंदाज से एक दूसरी नुकीली चीज से बतलाता है। कागज पर दोनों बिन्दुओं के वर्गों को चिन्हित कर लिया जाता है। दोनों का अन्तर और दिशा बाद में लिख लिया जाता है।

त्वक् स्थानीकरण सम्बन्धी प्रयोग परिणाम त्वक् स्थानीकरण सम्बन्धी विभिन्न प्रयोगों से कई बातों की जानकारी हुई है। सबसे पहली बात तो यह है कि स्पर्श बिन्दु को निश्चित रूप से बतलाने में कुछ न कुछ अशुद्धि (Error) हो ही जाती है। यह अशुद्धि कभी-कभी एक सेण्टीमीटर या इससे भी कुछ अधिक की होती है। अशुद्धि की मात्रा शरीर के विभिन्न भागों में अलग-अलग है। उँगली पर त्वक् स्थानीकरण में बहुत कम अशुद्धि होती है, लेकिन शरीर के वैसे भाग पर, जो अधिकांश ढका रहता है, स्पर्श सम्बन्धी स्थानीकरण में अशुद्धि अधिक होती है। स्पर्श बिन्दु के निर्धारण में अभ्यास का भी काफी असर पड़ता है। शरीर के एक ही भाग को स्पर्श करने पर शुरू में अशुद्धि अधिक होती है, परन्तु बाद में उसी अंग को स्पर्श करने पर धीरे धीरे अशुद्धि की मात्रा कम होती जाती है। हाँ, अशुद्धि का कम या अधिक होना प्रयोज्य की दैहिक अवस्था (Physiological condition) पर भी निर्भर करता है। जैसे, जो अंग शिथिल, संवेदन-विहीन (Insensitive) अथवा शून्य हो गया है वैसे अंग पर स्पर्श बिन्दु का स्थानीकरण संभव नहीं हो सकता। विभिन्न प्रयोगों से यह भी सिद्ध है कि उपर्युक्त जिन विधियों की चर्चा की गयी है उनमें दूसरी यानी, रबर स्टाम्प विधि से सामान्यतः अधिक अच्छा और विश्वसनीय परिणाम आता है। इस तरह त्वक् स्थानीकरण को मुख्यतः निम्नांकित अंग प्रभावित करते हैं।

(१) शारीरिक अंग की संवेदनशीलता (Sensitivity),

(२) अभ्यास (Practice),

(३) दैहिक अवस्था (Physiological condition) और

(४) स्थानीकरण की विधि (Method of localization)।

त्वक् स्थानीकरण के आधार (Bases) प्रश्न यह है कि हम कैसे बतलाते हैं कि हमारी त्वचा के अमुक स्थान को स्पर्श किया गया? इस सम्बन्ध में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न कारण या आधार व्यक्त किए हैं। हम यहाँ उनमें कुछ प्रमुख की संक्षेप में चर्चा करेंगे।

सर्व प्रथम लॉज (Lotze) ने बतलाया कि हम स्पर्श-बिन्दु को 'स्थानीय चिन्ह' (Local sign) के आधार पर निर्धारित करते है। स्थानीय चिन्ह की व्याख्या करते हुए उसका कहना है कि जब त्वचा के विभिन्न बिन्दुओं को स्पर्श किया जाता है तब उनसे अलग अलग तरह की स्पर्श संवेदनाएँ उत्पन्न होती है। इसी कारण हम त्वचा के विभिन्न स्पर्श बिन्दुओं को बतला पाते है। इस तरह त्वचा के प्रत्येक स्थान से उत्पन्न सवेदना के साथ उस स्थान का एक चिन्ह लग जाता है जिसके कारण एक संवेदना दूसरी त्वक् सवेदना से भिन्न हो जाती है। इसी को लॉज इन स्थानीय चिन्ह (Local Sign) के नाम से अभिव्यक्त करता है। उदाहरणार्थ, जब हमारे हाथ के किसी भाग के दो बिन्दुओं को स्पर्श किया जाता है तो उन दोनों बिन्दुओं से जो स्पर्श संवेदनाएँ प्राप्त होती है उनमे भिन्नता के आधार पर हम एक बिन्दु का स्थान हाथ में एक जगह बतलाते है और दूसरे का दूसरी जगह। लेकिन, अभी तक मनोवैज्ञानिकों को इस स्थानीय चिन्ह (Local sign) का ज्ञान निश्चयात्मक रूप से नही हो सका है, क्योकि त्वक् संवेदनाओं का निरीक्षण करने पर किसी अन्य गुण का बोध नही होता।

शरीर के जिस भाग मे स्नायुओ का बाहुल्य रहता है वहाँ स्पर्श बिन्दु का स्थानीकरण अधिक प्रतिपन्नता के साथ होता है। इससे यह मालूम होता है कि त्वचा पर स्पर्श बिन्दु का स्थानीकरण कुछ अशो मे उत्तेजित स्नायुओं पर भी निर्भर करता है। लेकिन, इतना मान लेने से भी हम लॉज (Lotze) के सिद्धान्त का तिरस्कार नहीं कर सकते, क्योकि उसका कहना भी यही है कि प्रत्येक स्नायु को अपना विशेष स्थानीय चिन्ह होता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस स्थानीकरण की व्याख्या सहज गति (Reflex movement) के आधार पर की है। उनका कहना है कि जब मनुष्य सोया रहता है तब किसी भाग को स्पर्श करने या उस भाग पर गुदगुदी करने पर वह स्वत अपने हाथ से उस अचल को निश्चित कर लेता है। मस्तिष्क रहित जानवर भी किसी स्पर्श बिन्दु का स्थानीकरण अच्छी तरह से कर लेता है जिससे यह प्रमाणित होता है कि सहज गति (Reflex movement) के ही कारण त्वक् स्थानीकरण होता है। किन्तु, त्वक् स्थानीकरण का यह आधार भी समुचित नही कहा जा सकता, क्योंकि सामान्य जानवरों का असामान्य जानवरो की अपेक्षा स्पर्श बिन्दु स्थानीकरण विशेष प्रतिपन्नता के साथ होता है। यदि सहज गति के आधार पर त्वक् स्थानीकरण होता तो एक ही तरह के जीव मे यह अन्तर नही दीख पड़ता। अत हम सहज गति को स्थानीकरण मे एक सहायक अग मान सकते है। इसी प्रकार अन्य विद्वानो का कहना है कि स्पर्श बिन्दु का स्थानीकरण दृष्टि प्रतिमा (Visual image) के आधार पर होता है। परन्तु ज्यो ही किसी त्वचा बिन्दु को स्पर्श किया जाता है त्यो ही उस बिन्दु की प्रतिमा मन मे अंकित हो जाती है और उसकी सहायता से उस स्पर्श बिन्दु को हम निश्चित कर देते है।

इस प्रकार हम देखते है कि त्वक् स्थानीकरण की व्याख्या के लिए मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न आधार बतलाए है। लेकिन, उनमे से कोई भी आधार ऐसा सर्वांग सुन्दर नहीं है जो त्वक् बिन्दु के स्थानीकरण की व्याख्या के लिए पर्याप्त हो सके। वस्तुत इन सभी अगों का कुछ श्रेय स्पर्श बिन्दु को निर्धारित करने मे रहता है।

• (२) दो विन्दुओं की अनुभूति या स्पर्शानुभूति निर्देशक (Aesthesiometric index) स्थान-प्रत्यक्षीकरण के सम्बन्ध मे दूसरी जो ध्यान देने की बात है वह यह कि जब त्वचा पर दो विन्दुओं का स्पर्श किया जाता है तब भी कभी-कभी हमे एक स्पर्श विन्दु का भी प्रत्यक्षीकरण होता है। ऐसा तब होता है जब दो विन्दुओं के बीच दूरी कम होती है। जब दो विन्दुओं के बीच की दूरी अधिक रहती है तब हमे दो विन्दुओं का ही प्रत्यक्षीकरण होता है। अब प्रश्न है कि त्वचा पर इन दो स्पर्शविन्दुओं में कम से कम कितनी दूरी हो जिससे हमे दो विन्दुओं का प्रत्यक्षीकरण हो? इसे पता लगाने के लिए विभिन्न प्रयोग हुए है। अधिकांश ये प्रयोग स्पर्शानुभूति निर्देशक यन्त्र (Aesthesiometer) के द्वारा किए गए हैं।[1]

चित्र-संख्या ३६

स्पर्शानुभूति निर्देशक का प्रयोग चित्र

इसीसे इस कम से कम दूरी को, जिसमें दो स्पर्श विन्दुओं का प्रत्यक्षीकरण हो, स्पर्शानुभूति निर्देशक (Aesthesiometric index) कहा जाता है। वेबर (Weber) ने इसे प्रारम्भिक सीमान्त (Reiz limen) के नाम से अभिव्यक्त किया है।

प्रयोग परिणाम वेबर के प्रयोगों से पता चलता है कि शरीर के विभिन्न भागों की सीमान्त भिन्नता (दो विन्दुओं की दूरी) अलग-अलग होती है। उगली या जीभ के अगले भाग पर एक मीलीमीटर (I m m) की दूरी रहने पर दो स्पर्श विन्दुओं का बोध होता है, लेकिन पीठ के बीच मे कम से कम ५० से ६० मी मी की दूरी पर स्पर्श

१ स्पर्शानुभूति निर्देशक निकालने की प्रयोग-विधि के लिए ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना से प्रकाशित 'मनोवैज्ञानिक प्रयोग' देखें।

करने पर दो बिन्दुओं का अनुभव होता है। बीस तीस मीलीमीटर की दूरी पर स्पर्शानुभावक यंत्र से पीठ पर स्पर्श करने पर एक बिन्दु का ही अनुभव होता है। उनके प्रयोग परिणाम से यह भी स्पष्ट है कि शरीर के उन अंगों का स्पर्शानुभूति निर्देशक (Aesthesiometric index) अधिक होता है जो बराबर ढके रहते हैं, किन्तु बराबर खुले रहनेवाले भागों का स्पर्शानुभूति निर्देशक कम होता है। वाल्कमन (Volkmann) ने भी अपने प्रयोगों में पाया कि स्पर्शानुभूति निर्देशक अंग विशेष की गतिशीलता पर ही निर्भर करता है।

गोल्डशेडर (Goldscheider) और बाद में वानक्रे (Vontkey) ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयोग किए हैं। उन सबने विभिन्न शारीरिक भागों के स्पर्शानुभूति निर्देशक का पता लगाने का प्रयत्न किया है। उनके प्रयोगों से स्पष्ट है कि उसमें व्यक्तिक भिन्नता होती है। यानी, एक ही अंग में किसी को कम दूरी (स्पर्शानुभूति निर्देशक) पर दो बिन्दुओं का प्रत्यक्षीकरण होता है और किसी को अधिक दूरी पर ऐसा प्रत्यक्षीकरण होता है। फिर भी, सामान्य तौर से त्वचा के कुछ प्रमुख स्थानों का लगभग स्पर्शानुभूति निर्देशक निम्नांकित रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

त्वक् स्थान	स्पर्शानुभूति निर्देशक
जीभ का अगला भाग	१ मी० मी०
उंगली का अगला भाग	२ मी० मी०
होठ के बाहर का भाग	५ मी० मी०
नाक	७ मी० मी०
होठ के अन्दर का भाग	२० मी० मी०
तरहत्थी की पीठ	३२ मी० मी०
पैर	४० मी० मी०
बाहु, जांघ	६८ मी० मी०

जब त्वचा के किसी स्थान का स्पर्शानुभूति निर्देशक लम्ब रूप से (Longitudinal) निकाला जाता है तो वह उसी स्थान के समानान्तर रूप से (Transversal) पाए गए स्पर्शानुभूति निर्देशक से भिन्न होता है। ऊपर के स्पर्शानुभूति निर्देशक विभिन्न शारीरिक भागों के लम्ब रूप से निकाले गए निर्देशक (Aesthesiometric index) हैं।

प्रयोगों से यह भी पता चला है कि जब शरीर के किसी स्थान के दो बिन्दुओं को बारी बारी से उत्तेजित किया जाता है और जब उन्हीं बिन्दुओं को एक साथ उत्तेजित किया जाता है तब इन दोनों अवस्थाओं (Conditions) में स्पर्शानुभूति निर्देशक बराबर नहीं होता, बल्कि पहली अवस्था में दूसरी अवस्था की अपेक्षा कम होता है। प्रयोगों से यह भी प्रमाणित है कि यंत्र के दो नोकों से एक नोक का जो बोध होता है, वह एक नोक के वास्तविक बोध से भिन्न होता है। इसे कोई अनुभवी प्रयोज्य ही व्यक्त कर सकता है। इसलिए इन दोनों अवस्थाओं के अनुभवों को एक समान समझना गलत होगा।

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के द्वारा यह भी प्रमाणित किया है कि स्पर्शानुभूति निर्देशक पर अभ्यास (Practice) का भी प्रभाव पड़ता है। शुरू में किसी त्वचा प्रदेश का स्पर्शानुभूति निर्देशक अधिक रहता है, परन्तु बार बार वहाँ प्रयोग करने से अभ्यास के कारण उसमें बहुत कमी आ जाती है। यहाँ अभ्यास के प्रभाव के सम्बन्ध में

दो बाते उल्लेखनीय है। पहली बात यह कि स्पर्शानुभूति निर्देशक में अभ्यास के कारण किसी एक सीमा तक ही कमी होती है, उसके बाद कितना भी अभ्यास किया जाए उससे अधिक कमी नही आती। दूसरी बात यह कि अभ्यास के कारण शरीर के जिस अग पर प्रयोग किया जाता है उसके स्पर्शानुभूति निदशक में तो कमी आती ही है, उससे मिलते-जुलते दूसरे शारीरिक भाग के स्पर्शानुभूति निर्देशक मे भी कमी आ जाती है।

प्रयोगों से यह सिद्ध है कि स्पर्शानुभूति निर्देशक पर सामान्य शारीरिक अवस्था (Physiological condition) का भी प्रभाव पडता है। मादक द्रव्यों के सेवन या थकावट (Fatigue) से त्वचा की सवेदन शीलता कम हो जाती है। अत ऐसी अवस्था में यह निर्देशक अधिक हो जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तो इसे थकावट का अध्ययन करने का भी एक साधन मान लिया है। शारीरिक चोट, दर्द या बीमारी की अवस्था में किसी भी शारीरिक भाग का स्पर्शानुभूति निर्देशक अधिक हो जाता है। यह भी देखने में आता है कि किसी भी अग-विशेष को अधिक ठढा में रखने से वहाँ का स्पर्शानुभूति निर्देशक बढ जाता है। इसी तरह किसी अग को अधिक गर्मी मे रखने पर वह कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त और भी कई ऐसे अग है जो स्पर्शानुभूति निर्देशक को प्रभावित करते है। इस तरह हम पाते है कि स्पर्शानुभूति निदेशक को मुख्यत निम्नाकित अग प्रभावित करते है —

(१) शारीरिक अग,
(२) अभ्यास और
(३) शारीरिक अवस्था

स्पर्शानुभूति निर्देशक के आधार (Bases) प्रश्न है कि जब एक ही स्वरूप की दो उत्तेजनाओ से किसी त्वचा-प्रदेश के दो विन्दुओं को स्पर्श किया जाता है तो क्यों कभी एक और कभी दो विन्दुओ का अनुभव होता है ? इस प्रश्न का उत्तर विद्वानों ने कई आधारों पर देने का प्रयास किया है, किन्तु सभी उत्तरों मे कुछ अपूर्णता है। स्पर्शानुभूति निर्देशक की जिस व्याख्या को बहुसख्यक मनोवैज्ञानिक मानते है वह लॉज (Lotze) की है। हम इसके सम्बन्ध मे पहले व्यक्त कर चुके है कि उसने त्वचा विन्दु के स्थानीकरण (Localization) की व्याख्या स्थानीय चिन्ह (Local sign) के आधार पर की है। यहाँ भी उसने स्थानीय चिन्ह पर ही जोर दिया है। उसका कहना है कि जब किसी त्वचा-प्रदेश के स्पर्श किए गए दो विन्दुओं का स्थानीय चिन्ह एक तरह का होता है तो दो विन्दुओ से स्पर्श करने पर भी हम एक ही विन्दु के स्पर्श का अनुभव होता है। किन्तु, जब दोनो विन्दुओं के स्थानीय चिन्ह दो तरह के होते है तो हमे दो प्रकार की सवेदनाओं का अनुभव होता है और हमे यह जानने मे कठिनाई नही होती कि हमारे त्वचा प्रदेश के दो विभिन्न विन्दुओं को स्पर्श किया गया है। इस स्थानीय चिन्ह का महत्व त्वक्-स्थान प्रत्यक्षीकरण (Cutaneous-space perception) मे बहुत अधिक है।

(ख) श्रवण-स्थान-प्रत्यक्षीकरण
(Auditory space perception)

धवनि के द्वारा भी हमे 'स्थान' (Space) का बोध होता है। इस स्थान-प्रत्यक्षीकरण में हमें दूरी (Distance) और दिशा (Direction) का भी ज्ञान होता है।

करने पर दो विन्दुओं का अनुभव होता है। बीस तीस मीलीमीटर की दूरी पर [illegible] यत्र से पीठ पर स्पर्श करने पर एक विन्दु का ही अनुभव होता है। उसके प्रयोग परिणाम से यह भी स्पष्ट है कि शरीर के उन अगो का स्पर्शानुभूति निर्देशक (Aesthesiometric index) अधिक होता है जो बराबर ढके रहते हैं, किन्तु बराबर खुले रहनेवाले भागों का स्पर्शानुभूति निर्देशक कम होता है। वाल्कमन (Volkmann) ने भी अपने प्रयोगों में पाया कि स्पर्शानुभूति निर्देशक अग विशेष की गतिशीलता पर ही निर्भर करता है।

गोल्डशेडर (Goldscheider) और बाद मे वानक्के (Vintley) ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयोग किए है। इन सबने विभिन्न शारीरिक भागो के स्पर्शानुभूति निर्देशक का पता लगाने का प्रयत्न किया है। उनके प्रयोगों से स्पष्ट है कि उसमे [illegible] भिन्नता होती है। यानी, एक ही अग मे किसी को कम दूरी (स्पर्शानुभूति निर्देशक) पर दो विन्दुओं का प्रत्यक्षीकरण होता है और किसी को अधिक दूरी पर ऐसा प्रत्यक्षीकरण होता है। फिर भी, सामान्य तौर से त्वचा के कुछ प्रमुख स्थानों का लगभग स्पर्शानुभूति निर्देशक निम्नाकित रूप मे व्यक्त किया जा सकता है—

त्वक् स्थान	स्पर्शानुभूति निर्देशक
जीभ का अगला भाग	१ मी० मी०
उगली का अगला भाग	२ मी० मी०
होठ के बाहर का भाग	५ मी० मी०
नाक	७ मी० मी०
होठ के अन्दर का भाग	२० मी० मी०
तरहत्थी की पीठ	३२ मी० मी०
पैर	४० मी० मी०
बाहु, जाघ	६८ मी० मी०

जब त्वचा के किसी स्थान का स्पर्शानुभूति निर्देशक लम्ब रूप मे (Longitudinal) निकाला जाता है तो वह उसी स्थान के समानान्तर रूप मे (Transversal) पाए गए स्पर्शानुभूति निर्देशक से भिन्न होता है। ऊपर के स्पर्शानुभूति निर्देशक विभिन्न शारीरिक भागों के लम्ब रूप से निकाले गए निर्देशक (Aesthesiometric index) है।

प्रयोगों से यह भी पता चला है कि जब शरीर के किसी स्थान के दो विन्दुओं को बारी बारी से उत्तेजित किया जाता है और जब उन्ही विन्दुओं को एक साथ उत्तेजित किया जाता है तब इन दोनों अवस्थाओं (Conditions) मे स्पर्शानुभूति निर्देशक बराबर नहीं होता, बल्कि पहली अवस्था में दूसरी अवस्था की अपेक्षा कम होता है। प्रयोगों से यह भी प्रमाणित है कि यत्र के दो नोकों से एक नोक का जो बोध होता है, वह एक नोक के वास्तविक बोध से भिन्न होता है। इसे कोई अनुभवी प्रयोज्य ही व्यक्त कर सकता है। इसलिए इन दोनों अवस्थाओं के अनुभवों को एक समान समझना गलत होगा।

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के द्वारा यह भी प्रमाणित किया है कि स्पर्शानुभूति निर्देशक पर अभ्यास (Practice) का भी प्रभाव पड़ता है। शुरू मे किसी त्वचा-प्रदेश का स्पर्शानुभूति निर्देशक अधिक रहता है, परन्तु बार बार वहाँ प्रयोग करने से अभ्यास के कारण उसमें बहुत कमी आ जाती है। यहाँ अभ्यास के प्रभाव के सम्बन्ध में

दो बातें उल्लेखनीय है। पहली बात यह कि स्पर्शानुभूति निर्देशक में अभ्यास के कारण किसी एक सीमा तक ही कमी होती है, उसके बाद कितना भी अभ्यास किया जाए उससे अधिक कमी नही आती। दूसरी बात यह कि अभ्यास के कारण शरीर के जिस अग पर प्रयोग किया जाता है उसके स्पर्शानुभूति निर्देशक में तो कमी आती ही है, उससे मिलते-जुलते दूसरे शारीरिक भाग के स्पर्शानुभूति निर्देशक मे भी कमी आ जाती है।

प्रयोगों से यह सिद्ध है कि स्पर्शानुभूति निर्देशक पर सामान्य शारीरिक अवस्था (Physiological condition) का भी प्रभाव पडता है। मादक द्रव्यों के सेवन या थकावट (Fatigue) से त्वचा की सवेदन शीलता कम हो जाती है। अत ऐसी अवस्था में यह निर्देशक अधिक हो जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तो इसे थकावट का अध्ययन करने का भी एक साधन मान लिया है। शारीरिक चोट, दर्द या बीमारी की अवस्था में किसी भी शारीरिक भाग का स्पर्शानुभूति निर्देशक अधिक हो जाता है। यह भी देखने में आता है कि किसी भी अग-विशेष को अधिक ठढा में रखने से वहाँ का स्पर्शानुभूति निर्देशक बढ जाता है। इसी तरह किसी अग को अधिक गर्मी मे रखने पर वह कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त और भी कई ऐसे अग है जो स्पर्शानुभूति निर्देशक को प्रभावित करते है। इस तरह हम पाते है कि स्पर्शानुभूति निर्देशक को मुख्यत निम्नाकित अग प्रभावित करते है —

(१) शारीरिक अग,
(२) अभ्यास और
(३) शारीरिक अवस्था

स्पर्शानुभूति निर्देशक के आधार (Bases) प्रश्न है कि जब एक ही स्वरूप की दो उत्तेजनाओं से किसी त्वचा-प्रदेश के दो विन्दुओं को स्पर्श किया जाता है तो क्यों कभी एक और कभी दो विन्दुओ का अनुभव होता है? इस प्रश्न का उत्तर विद्वानों ने कई आधारों पर देने का प्रयास किया है, किन्तु सभी उत्तरों मे कुछ अपूर्णता है। स्पर्शानुभूति निर्देशक की जिस व्याख्या को बहुसख्यक मनोवैज्ञानिक मानते है वह लॉज (Lotze) की है। हम इसके सम्बन्ध मे पहले व्यक्त कर चुके है कि उसने त्वचा विन्दु के स्थानीकरण (Localization) की व्याख्या स्थानीय चिन्ह (Local sign) के आधार पर की है। यहाँ भी उसने स्थानीय चिन्ह पर ही जोर दिया है। उसका कहना है कि जब किसी त्वचा-प्रदेश के स्पर्श किए गए दो विन्दुओं का स्थानीय चिन्ह एक तरह का होता है तो दो विन्दुओ से स्पर्श करने पर भी हम एक ही विन्दु के स्पर्श का अनुभव होता है। किन्तु, जब दोनो विन्दुओं के स्थानीय चिन्ह दो तरह के होते है तो हमे दो प्रकार की सवेदनाओ का अनुभव होता है और हमे यह जानने मे कठिनाई नही होती कि हमारे त्वचा-प्रदेश के दो विभिन्न विन्दुओं को स्पर्श किया गया है। इस स्थानीय चिन्ह का महत्व त्वक्स्थान-प्रत्यक्षीकरण (Cutaneous-space perception) में बहुत अधिक है।

(ख) श्रवण-स्थान-प्रत्यक्षीकरण
(Auditory space perception)

ध्वनि के द्वारा भी हमे 'स्थान' (Space) का बोध होता है। इस स्थान-प्रत्यक्षीकरण में हमे दूरी (Distance) और दिशा (Direction) का भी ज्ञान होता है।

जब हम कोई आवाज सुनते है तो हमें उस आवाज के साथ दो बातों का प्रत्यक्षीकरण होता है, एक तो यह कि वह आवाज कितनी दूर से आ रही है, और दूसरा यह कि वह किस दिशा से आ रही है। इस तरह, प्रत्येक आवाज के प्रत्यक्षीकरण में हम उसकी दूरी और दिशा को भी निश्चित कर लेते हैं।

ध्वनि से दिशा का प्रत्यक्षीकरण

हम प्राय किसी आवाज को सुन कर यह बतला दिया करते है कि वह आवाज बायें, दाहिने या अमुक ओर से आ रही है। लेकिन, कभी कभी हम ध्वनि की दिशा का ठीक अंदाज नही मिल पाता और दिशा प्रत्यक्षीकरण गलत हो जाता है। ध्वनि पिंजरा (Sound cage) अथवा अन्य उपकरणों (Materials) के सहारे हुए प्रयोगो से स्पष्ट है कि जब हम किसी ध्वनि को अपने दाँए या बाँए से आते हुए सुनते हैं तो हमें यह समझने मे किसी तरह की गलती नही होती है कि आती हुई ध्वनि हमारे दाँए या बाँए से आ रही है। ऐसी ध्वनि यदि उच्च स्वर मे होती है तो हम और भी आसानी के साथ यह बता पाते है कि वह ध्वनि बाँए या दाँए किस ओर से आ रही है। लेकिन, जब कोई ध्वनि बाँए और दाँए के ठीक बीच मे आती है तो हमारे लिए ध्वनि का दिशा निर्धारण करना कठिन हो जाता है और फलत दिशा निर्धारण में गलती हो जाती है। ऐसी बात स्पष्टत देखने मे आती है जब कोई आवाज हमारे दोनों कानों के बीच के विन्दु पर कुछ दूरी से आगे या पीछे होती है। कभी हम सामने से आती आवाज को पीछे से आती समझ लेते है और कभी पीछे से आती आवाज को सामने से आती मान लेते है। यही हालत ऊपर और नीचे से आती ध्वनियों के प्रत्यक्षीकरण मे भी होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्वनि के आधार पर स्थान का प्रत्यक्षीकरण (Space perception) पूर्णत ठीक नहीं होता। इसे एक साधारण प्रयोग से जाँचा जा सकता है। प्रयोज्य (Subject) की आँखे बन्द कर एक तिपाई पर बिठादे। उसके चारो ओर तीन फीट के त्रिज्या मे एक वृत्त खीच दे। उस वृत्त की परिधि पर विभिन्न दिशाओं से कोई ध्वनि उत्पन्न करे और प्रयोज्य से कहे कि वह ध्वनि की दिशा को बतलाए। आप पाएँगे कि दाहिनी और बाँई दिशा से आती ध्वनि की दिशा बतलाने में उसे अधिक गलती नहीं होगी, लेकिन ठीक बीच की ध्वनि की दिशा बतलाने में उसे कठिनाई होगी और फलत वह अधिक गलतियाँ करेगा।

ध्वनि से दिशा का ज्ञान कैसे होता है ?

हमने ऊपर देखा है कि जब कोई ध्वनि ऐसे स्थान से उत्पन्न होती है जो दोनों कानों से बराबर दूरी (Median Plane) पर है तो हमें ध्वनि के दिशा निर्धारण में अधिक गलती होती है। वह ध्वनि दोनों कानों को समान रूप से प्रभावित करती है। लेकिन, जब कोई ध्वनि, मध्य विन्दु से उत्पन्न न होकर ऐसी जगह से उत्पन्न होती है जो एक कान से कुछ नजदीक और दूसरे कान से कुछ दूर हो तो उस ध्वनि का असर दोनो कानों पर समान रूप से नही पड़ता। ऐसी स्थिति मे हमे ध्वनि की दिशा का स्पष्ट ज्ञान होता है। यदि वह आवाज स्रोत (Source of sound) बाएँ कान से अपेक्षाकृत नजदीक है तो हम कहते है कि वह आवाज बायी ओर से आ रही है और यदि वह दाहिने कान से

अधिक नजदीक है तो हम कहते है कि यह आवाज दाहिनी ओर से आ रही है। अब, सवाल है, हमे ऐसा प्रत्यक्षीकरण क्यो होता है? इसका उत्तर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार से दिया है। यहाँ हम उनमे से कुछ प्रमुख का उल्लेख करते हुए यह देखेगे कि किन कारणों से ध्वनि के प्रत्यक्षीकरण मे हमे दिशा का ज्ञान होता है।

(१) कान की झिल्ली (Membrane) का कपन उण्ट ने ध्वनि स्थानीकरण की व्याख्या ध्वनि तरग (Sound waves) से आविर्भूत दोनों कान की झिल्लियों (Tympanic Membranes) के कपन के आधार पर की है। उसने बतलाया कि जब कोई ध्वनि तरग कान के अन्दर प्रवेश करती है तो कान की झिल्ली प्रकम्पित हो जाती है, यानी, उसमे एक सवेदना होती है। जब कोई ध्वनि तरग वैसी जगह से उत्पन्न होती है, जो जगह दोनों कानों के बीच मे नही है, तो दोनों कानों की झिल्ली का कपन दो तरह का होता है, यानी, दोनों मे भिन्न भिन्न प्रकार की त्वक् सवेदनाये होती है। इस झिल्ली के कपन या त्वक् सवेदनाओं मे अन्तर होने ही के कारण हम बता पाते है कि वह ध्वनि दाएँ, बाँए या किस दिशा से आ रही है। कुछ अशो मे उण्ट की यह व्याख्या सतोषप्रद मालूम होती है, लेकिन कान की झिल्ली को हटाकर और क्षतिग्रस्त करके जो प्रयोग इस दिशा मे हुए है उनसे इस बात की पुष्टि नही हो पाती। झिल्ली के अभाव मे भी ध्वनि-दिशा का प्रत्यक्षीकरण होता है।

(२) अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ (Semicircular canals) कान की रचना की चर्चा करते समय हम देख चुके है कि अत कर्ण (Inner ear) मे कई अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ है। प्रेयर (Prayer) का कहना है कि ये नलिकाएँ विभिन्न दिशाओं से आनेवाली ध्वनियो से विभिन्न प्रकार से उत्तेजित होती है। इसलिए कोई ध्वनि किस दिशा से आ रही है, इसका निधारण इस बात से होता है कि कौन सी नलिका किस तरह से उत्तेजित हुई है। इसको अधिक स्पष्ट करते हुए मन्स्टर्बर्ग (Munsterberg) का कहना है कि किसी खास दिशा से जब कोई ध्वनि हमारे कानो मे पहुँचती है तो नलिका विशेप एक खास तरह की सहज गति (Reflex movement) मस्तिष्क मे उत्पन्न करती है। हम उसी सहज गति के आधार पर उस ध्वनि की दिशा को निश्चित करते है। किन्तु, यह व्याख्या भी विद्वानों को मान्य नही है, क्योकि उनका कहना है कि यद्यपि ध्वनि तरग (Sound waves) विभिन्न धरातलों पर दिशाओ से हमारे कान मे प्रवेश करती हे तथापि जिस समय वे अत कर्ण (Inner ear) मे प्रवेश करती है उस समय सबकी दिशा एक ही हो जाती है। इसलिए विभिन्न दिशा से आनेवाली ध्वनियों से अर्द्ध वृत्ताकार नलिकाओं के विभिन्न प्रकार से उत्तेजित होने का प्रश्न ही नही उठता। अतएव ध्वनि स्थानीकरण मे इस आधार को श्रेय देना युक्ति सगत प्रतीत नही होता।

(३) समय का अतर (Difference in time) कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि किसी दिशा से आती हुई ध्वनि हमारे दोनों कानो को एक साथ उत्तेजित न करके आगे-पीछे उत्तेजित करती है, इसलिए जो कान पहले उत्तेजित होता है उसीके अनुरूप हम ध्वनि-दिशा को भी निश्चित करते है। अतएव कानों के उत्तेजित होने मे समय का जो अतर पडता है वही ध्वनि स्थानीकरण का आधार हे। ध्यान देने से इतना तो सही मालूम होता है कि दाहिनी ओर से आने वाली ध्वनि हमारे दाहिने कान को और बायी ओर से आने वाली ध्वनि हमारे बाएँ कान को पहले प्रभावित करती है, लेकिन ध्वनि स्थानीकरण का इसे एकमात्र

कारण मानना ठीक नहीं है। खासकर आगे पीछे या ऊपर नीचे से आने वाली ध्वनि के सम्बन्ध में ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता। अतएव हम इसे ध्वनि दिशा के ज्ञान में सहायक मान सकते हैं, किन्तु उसी को एकमात्र आधार नहीं कह सकते।

(४) ध्वनि दशा में अंतर (Difference in sound-phase) रले (Raleigh) का विचार है कि हम ध्वनि दशा का निर्णय ध्वनि दशा (Sound phase) के अन्तर के आधार पर करते हैं। जब सामने या पीछे के अतिरिक्त ध्वनि किसी अन्य दिशा से आती है तब उसे दोनों कानों तक पहुँचने में असमान दूरियों को तय करना पड़ता है। अतएव स्वरों (Tone) की दशा (Phase) में अन्तर हो जाता है। यदि, नजदीक वाली झिल्ली (Tympanic membranes) जब ध्वनि स्वर (Sound tone) से बाहर खिंचाती है तब उस समय दूर वाले कान की झिल्ली ध्वनि स्वर के द्वारा भीतर की ओर खिंच जाती है। इस तरह दोनों कान में ध्वनि की दशा में अन्तर पड़ जाता है। इस दशा भिन्नता (Phase difference) की मात्रा बहुत अधिक नहीं होती, फिर भी हमें उसका अनुभव होता है। स्टेवर्ट (Stewart) का भी कहना है कि हमलोग ध्वनि की दिशा का निर्णय उस ध्वनि या स्वर की दशा के आधार पर करते हैं। लेकिन, ध्वनि दिशा की इस व्याख्या को मायर्स (Myers) तथा विल्सन (Wilson) आदि विद्वानों ने अनावश्यक माना है, क्योंकि इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि यह व्याख्या, 'समय में अंतर' के आधार पर की गयी व्याख्या को कहने का दूसरा ढंग मात्र है। इसलिए दशा भिन्नता को ध्वनि स्थानीकरण का एक अलग कारण मानना ठीक नहीं है।

(५) ध्वनि तीव्रता में अन्तर (Difference in intensity of sound) ध्वनि तीव्रता का अन्तर भी ध्वनि स्थानीकरण का एक प्रधान सहायक अंग है। जब कोई ध्वनि किसी दिशा से हमारे दोनों कानों में पहुँचती है तो जिस कान में उसकी तीव्रता अधिक प्रतीत होती है उसी दिशा की ओर हम उस ध्वनि का निश्चित करते हैं। कई मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगात्मक प्रमाणों द्वारा इसे ध्वनि स्थानीकरण का प्रमुख आधार माना है। इस आधार की पुष्टि में क्लेम (Klemm) ने भी ध्वनि स्थानीकरण पर प्रयोग किया है जिससे प्रमाणित होता है कि जब किसी ध्वनि से दोनों कान एक साथ उत्तेजित किए गए (ताकि समय का अन्तर न हो) तो उसके प्रयोज्य ने तीव्रता के आधार पर ही ध्वनि की दिशा बतलाई। लेकिन, क्लेम समय के अन्तर को भी कम महत्त्व नहीं देता जिसके अनुसार इन दोनों अंगों के आधार पर ही हम ठीक तरह से बता पाते हैं कि अमुक ध्वनि किस दिशा से आ रही है। वस्तुतः उसका यह दृष्टिकोण अधिक मान्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्वनि के प्रत्यक्षीकरण में दिशा का बोध कैसे होता है, इसके कई कारण विद्वानों ने बतलाए हैं। कुछ लोगों ने स्वरमान (Tone) और मानसिक वृत्ति (Mental set) को भी दिशा निर्धारण का कारण माना है। परन्तु सत्य यही है कि ध्वनि से दिशा का प्रत्यक्षीकरण किसी एक कारण से नहीं होता। न किसी एक आधार पर हम इसकी संतोषप्रद व्याख्या नहीं कर सकते। उपर्युक्त कारणों में कई कारण किसी ध्वनि दिशा के प्रत्यक्षीकरण में सहायक होते हैं। कुछ कारणों या आधारों की चेतना हमें रहती है और कुछ ऐसे भी सहायक आधार रहते हैं जिनकी चेतना हमें नहीं होती।

ध्वनि से दूरी का प्रत्यक्षीकरण

किसी ध्वनि को सुनकर न हमें केवल इतना पता चलता है कि यह ध्वनि अमुक दिशा से आ रही है, बल्कि यह भी पता चल जाता है कि वह ध्वनि कितनी दूर से आ रही है। इस दूरी का प्रत्यक्षीकरण कई सकेतों (Cues) के सहारे होता है जिनमे ध्वनि की तीव्रता (Intensity), स्पष्टता (Clarity), आयतन (Volume) तथा प्रत्यक्षीकरण करने वाले की गत अनुभूति (Past experience) प्रमुख सकेत है। हम यहाँ बहुत सक्षेप मे इन पर विचार करेंगे।

१ ध्वनि की तीव्रता नजदीक मे उत्पन्न हुई ध्वनि तीव्र होती है। इसलिए हम जब कोई तीव्र ध्वनि सुनते है तो यह समझ लेते है कि यह ध्वनि नजदीक से आ रही है। इसी तरह, धीमी ध्वनि से दूर का प्रत्यक्षीकरण होता है। इस तरह, ध्वनि की तीव्रता से हम यह प्रत्यक्षीकरण कर लेते है कि वह ध्वनि नजदीक से आ रही है या दूर से।

२ ध्वनि की स्पष्टता (Clarity) कोई ध्वनि कितनी स्पष्ट या अस्पष्ट है इसके आधार पर भी हमे दूरी का प्रत्यक्षीकरण होता है। जो ध्वनि अधिक स्पष्ट रहती है हम उसके सबन्ध मे आसानी से प्रत्यक्षीकरण कर लेते है कि वह नजदीक से आ रही है। ध्वनि जितनी ही अस्पष्ट होती है उतनी ही अधिक दूरी का प्रत्यक्षीकरण होता है। हम जब कोई बहुत दूर से पुकारता है तो उसकी आवाज इतनी अस्पष्ट रूप से हमारे कानों तक पहुँचती है कि हम उसके पुकारने का अर्थ भी नही समझ पाते।

३ ध्वनि का आयतन (Volume) नजदीक की ध्वनि मे दूर की अपेक्षा आयतन अधिक होता है। फलत नजदीक की आवाज भारी वजनी और अधिक गूँजती हुई मालूम होती है। दूर की ध्वनि मे यह भारीपन नही रह जाता। इस तरह हम ध्वनी के आयतन के आधार पर भी ध्वनि की दूरी का प्रत्यक्षीकरण करते है।

४ गत-अनुभूति (Past experience) ध्वनि की दूरी के प्रत्यक्षीकरण मे गत अनुभूति सबसे अधिक सहायक होती है। वस्तुत हमे उपर्युक्त सकेतों से दूरी का प्रत्यक्षीकरण गत् अनुभूति के ही कारण होता है। हम यह अनुभव से ही जानते है कि जो आवाज तीव्र, स्पष्ट और भारी रहती है वह नजदीक की रहती है और फलत हम उसे नजदीक का समझ लेते है। साथ ही, किसी व्यक्ति की आवाज स्वाभाविक रूप से तीव्र या धीमी हुआ करती है। ऐसी स्थिति मे उस व्यक्ति की आवाज से दूरी का प्रत्यक्षीकरण केवल उन्हे ही ठीक तरह से होता है जिन्हे उस व्यक्ति की आवाज की गतअनुभूति रहती है (यानी जो उससे पूर्व परिचित है)। इसी तरह किसी यन्त्र या वस्तु से उत्पन्न आवाज की दूरी का भी बोध गत अनुभूति के आधार पर ही होता है। इस तरह, हम उपर्युक्त सभी सकेतों का उपयोग ध्वनि की दिशा निर्धारित करने में करते है।

(ग) दृष्टि-स्थान-प्रत्यक्षीकरण

(Visual space perception)

दृष्टि स्थान-प्रत्यक्षीकरण त्वक् या श्रवण स्थान प्रत्यक्षीकरण की अपेक्षा अधिक ठीक और प्रतिपन्न होता है। हमे त्वचा या कान के सहारे जिस दूरी या दिशा

का ज्ञान होता है उसमे अशुद्धि अधिक होती है। दृष्टि मे दूरी दिशा और गहराई तीनों का बोध अधिक शुद्ध रूप मे होता है। दूरी, दिशा और गहराई को त्रय विस्तार (Three dimension) कहा जाता है। इसलिए हम यह मानते है कि दृष्टि स्थान प्रत्यक्षीकरण त्रिविस्तारक (Three dimensional) होता है। परन्तु प्रश्न है, किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण करते समय हमे यह कैसे मालूम होता है कि वह वस्तु किस दिशा मे कितनी दूरी पर है तथा उसकी गहराई (Depth) या घनत्व कितना है? जहाँ तक अक्षिपट पर पडी वस्तु की प्रतिमा (Image) का प्रश्न है, वह केवल चौरस होती है, उसमे तीनों विस्तार (Dimensions) नही होते। अक्षिपट पर गहराई या दिशा सम्बन्धी भिन्न भिन्न तरह के चित्र नही बनते। मनोवैज्ञानिकों का ऐसा विचार है कि हम तीनों विस्तार का ज्ञान कुछ सकेतों (Cues) के सहारे होता है। इन सकेतो के सहारे हम चौरस दृष्टि-प्रतिमाओ से भी दूरी, दिशा और गहराई का ज्ञान कर लेते है। ये सकेत दो तरह के है—एक नेत्रीय सकेत (Monocular cues) और द्विनेत्रीय सकेत (Binocular cues)। एक आँख से देखकर हमे दृष्टि प्रत्यक्षीकरण जिन सकेतो के सहारे होता है, उन्हे एकनेत्रीय सकेत कहते है। लेकिन, कुछ सकेत ऐसे है जो दोनो आँखो से देखते समय ही कार्य करते है। जब तक दोनों आँखे उत्तेजित नही होती तबतक इन सकेतो की सहायता दृष्टि-स्थान प्रत्यक्षीकरण मे नही मिलती। इन सकेतो को द्विनेत्रीय सकेत (Binocular cues) कहते है। खासकर हमे गहराई का प्रत्यक्षीकरण दोनो आँखो से देखने पर ही अच्छी तरह होता है। यदि एक आँख बन्द कर दे तो गहराई का निश्चित ज्ञान नही हो पाता। द्विनेत्रीय सकेतों का आधार दैहिक (Physiological) होता है। यानी, इन सकेतो के अन्तर्गत दैहिक परिवर्त्तनो का बोध होता है। दूसरी ओर, एक नेत्रीय सकेत अधिकाश मानसिक (Psychological) होते है। इन सकेतो के लिए कोई दैहिक या शारीरिक कारण नही दिए जा सकते। अधिक स्पष्टीकरण के लिए हम यहाँ इन दोनों तरह के सकेतो की सक्षिप्त व्याख्या करेगे।

द्विनेत्रीय संकेत

(Binocular cues)

द्विनेत्रीय सकेतों के अन्तर्गत मुख्यत निम्नाकित सकेतो की चर्चा होती है,

(१) सयोजन (Accomodation),

(२) केन्द्रोन्मुखता (Convergence) और

(३) अक्षिपटीय अन्तर (Retinal disparity)।

(१) सयोजन (Accommodation) नजदीक और दूर की चीज देखते समय आँखों के लेंस (Lens) का आकार घटता बढता रहता है। ऐसा इसलिए होता है ताकि किसी वस्तु की ठीक प्रतिमा अक्षिपट पर पहुँच सके। इसी को सयोजन की क्रिया (Process of accommodation) कहते है।[1] नजदीक की चीजों को देखते समय

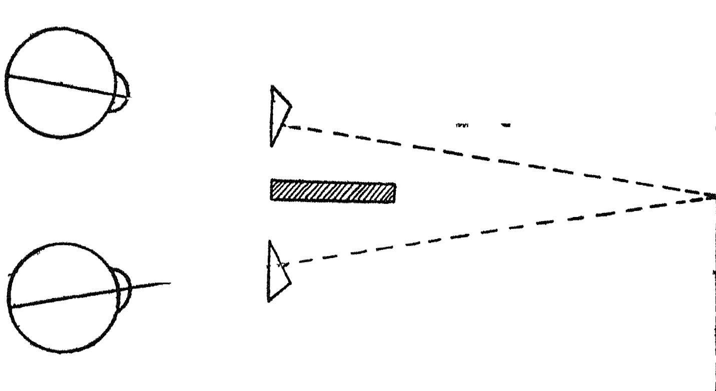
[1] विशेष जानकारी के लिये 'सवेदना' के अध्याय में पृष्ठ सख्या ८२ देखे।

सिलयरी माँसपेशियाँ (Ciliary muscles) सिकुडकर लेस के आकार को छोटा कर देती है। दूर की चीजे देखते समय ये मास-पेशियाँ फैल जाती है जिससे लेस का आकार बडा दीखता है। लेकिन, मास-पेशियो के सकोचन के कारण आँख मे भार या जोर (Strain) मालूम पडता है। स्पष्टत नजदीक की चीजे देखते समय यह जोर रहता है, दूर की चीजे देखते समय नही। अत हम इस जोर (Strain) के आधार पर किसी वस्तु की दूरी का अदाज लगाते है। जिस वस्तु का प्रत्यक्षीकरण करते समय सयोजन क्रिया में जितना जोर मालूम होता है हम उस वस्तु को उतना ही नजदीक समझते है। देखने में आँख में यह जोर जितना ही कम मालूम होता है, हम वस्तु को अपने से उतनी ही दूर समझते है।

लेकिन, दूरी के प्रत्यक्षीकरण के लिए सयोजन एक मात्र सकेत नही है। प्रयोगों से स्पष्ट है कि दूरी के प्रत्यक्षीकरण में कई सकेत कार्य करते है और उनमे इस सकेत का महत्त्व बहुत कम है। उण्ट (Wundt), एरर (Aroer) डिक्सन, आदि के प्रयोगों से भी यही सिद्ध होता है। सन् १९२३ ई० मे बैपर्ट (Bappart) ने दूरी प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी कई प्रयोग किए। उनसे इतना स्पष्ट है कि सयोजन से दूरी बोध मे सहायता मिलती है, लेकिन साथ साथ यह भी सिद्ध है कि यह आधार कमजोर और अपर्याप्त है। इसलिए मात्र सयोजन के सकेत से दूरी का सही प्रत्यक्षीकरण नही होता, यद्यपि इसके महत्त्व का तिरस्कार नही किया जा सकता।

(२) केन्द्रोन्मुखता (Convergence) अपने अनुभव से हम यह जानते है कि किसी वस्तु या व्यक्ति को देखते समय हमारी आँखे बाएँ, दाहिने या ऊपर नीचे की ओर घूमा करती है। दिशा के प्रत्यक्षीकरण मे इससे काफी सहायता मिलती है और हम बता देते है कि देखी जानेवाली वस्तु किस ओर है। दूरी का प्रत्यक्षीकरण भी इससे होता है। बहुत दूर की चीजे देखते समय दोनों आँखे सामने की ओर घुमी रहती है। आखों के सामने रहने से दृष्टि-रेखाएँ (Lines of vision) समानान्तर रहती है जिसके फलस्वरूप दूर की चीजे देखने मे किसी तरह का जोर (Strain) नहीं पडता। लेकिन, जब वस्तु की दूरी ३०० फीट से कम रहती है तब दृष्टि-रेखाएँ समानान्तर न हो कर केन्द्रोन्मुख (Converged) हो जाती है। दूसरे शब्दों मे, आँखें केन्द्र

चित्र-सख्या ३७



दूरी के प्रत्यक्षीकरण मे केन्द्रोन्मुखता का महत्व

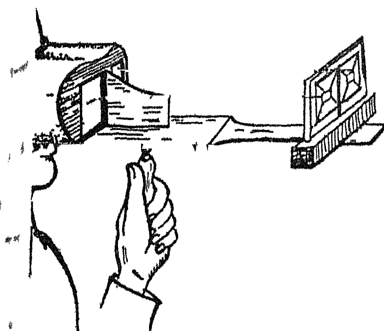
ओर घुम जाती है। आखो को केन्द्रोन्मुख करने में दोनो आँख की les) मे तनाव आ जाता है। हम इस तनाव का अनुभव करने हैं जाते है कि देखी जाने वाली वस्तु नजदीक है। इस तरह, केन्द्रोन्मुखता एक अच्छा सकेत (Cue) है। यह सकेत द्विनेत्रीय भी है और एक ar) भी, एक आख बद रहने पर भी हम दूरी का प्रत्यक्षीकरण इस सकेत

दूरी के प्रत्यक्षीकरण मे केन्द्रोन्मुखता (Convergence) का सम्बन्ध tion) से अधिक है। फिर भी, इसकी कुछ अपनी कमी और त्रुटियाँ दूरी के प्रत्यक्षीकरण मे यह सकेत सहायता नहीं करता। प्रारम्भ धी प्रयोग (Thread experiment) करके पाया कि केन्द्रोन्मुखता । का बहुत अधिक सकेत मिलता है। लेकिन, हिल्सब्रण्ड, आर्टरमा । बाद के प्रयोगो से पता चलता है कि दूरी प्रत्यक्षीकरण का यह कोई प्रमुख सकेत नही है। अत हम इतना ही कह सकते हैं कि दूरी का प्रत्यक्षीकरण है जिसमे केन्द्रोन्मुखता भी एक है।

क्षिपटीय अन्तर (Retinal disparity) हमारी दोनो आँखें एक २½ (ढाई) इंच की दूरी पर है। इसलिए जब हम किसी वस्तु को प्रतिमा हमारी दोनो आँखो पर कुछ भिन्नता के साथ पड़ती है। कौन पर है, इसका प्रत्यक्षीकरण दोनो आँख की प्रतिमाओं के मिलन (Fusion) स्तुत इसमे दूरी और गहराई के प्रत्यक्षीकरण में काफी सहायता मिलती ।तना हमलोगो को नही रहती।

किसी ठोस चीज को केवल दाहिनी आँख से देखते हैं तो उसका दाहिना दिखलाई पड़ता है। जैसे जैसे वह वस्तु आँख के नजदीक आती है वैसे वैसे क्षिपटीय प्रतिमाओं मे यह भिन्नता अधिक होती जाती है। यह अक्षिपटीय का प्रत्यक्षीकरण ठोस रूप मे कराने मे सहायक होता है। दूरी और गहराई (या ठोसपन) के प्रत्यक्षीकरण में अक्षिपटीय अन्तर (Retinal disparity) के सम्बन्ध को स्टेरी-ओस्कोप (Stereoscope) नामक यंत्र की सहायता से आसानी से जाना जाता है। इस यंत्र में दो चित्रों को व्यवस्थित किया जाता है (देखिए चित्र संख्या ४८)। ये चित्र एक ही स्थिति और वस्तु के रहते हैं, लेकिन ये (चित्र) इस तरह खिंचे गये रहते हैं जिसमें कैमरे के लेन्सों

चित्र संख्या ४८



स्टेरियस्कोप का प्रयोग चित्र

(२) position पारस्परिक tance) की अन्तर है। जब दो दूसरे पदा इसे अत वाला पद है और ढ होता है।

नों आँखों से ही समान दूरी रहती है। फलत दोनों चित्रों में थोड़ा सा अन्तर

रहता है जो स्पष्टत प्रत्यक्ष नही होता। उन ि ो को जब स्टेरियस्कोप मे व्यवस्थित कर देखते है तो उनका अ तर मिल (Fusion) के कारण समाप्त हो जाता है और हमे उस चौरस चित्र मे दूरी और गहराइ का भी प्रत्यक्षीकरण होने लगता है।

इस तरह के प्रयोग से यह पता चलता है कि यद्यपि अक्षिपट पर किसी ठोस (Solid) वस्तु की प्रतिमा भी चौरस रूप मे पडती है, तथापि हमे उसके ठोसत्व (गहराई) का प्रत्यक्षीकरण दोनों आँख की प्रतिमाओं के अन्तर के मिलन (Fusion) के कारण होता है। हमे दो वस्तुओं की पारस्परिक दूरी का प्रत्यक्षीकरण भी इन द्वि-प्रतिमाओं (Double image) के आधार पर होता है। इस तरह अक्षिपटीय अन्तर दूरी और गहराई के प्रत्यक्षीकरण मे एक प्रमुख सकेत का कार्य करता है।

एकनेत्रीय संकेत

(Monocular Cues)

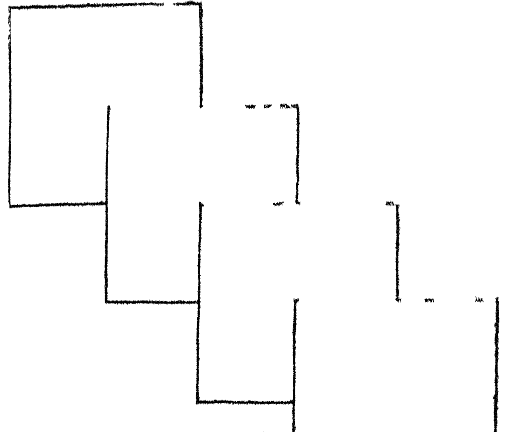
एक नेत्रीय सकेत को गौण (Secondary) या मानसिक सकेत भी कहते है। ये सकेत दैहिक परिवर्त्तनों पर आधारित नही, बल्कि अनुभव पर आधारित है। इसी से इन्हे मनोवैज्ञानिक सकेत कहते है। दूरी, गहराई अथवा दिशा (Direction) के ये सभी सकेत एक आँख से भी देखने मे काम करते है। ये सकेत अर्जित (Acquired) है, जन्मजात नही। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इन्हे दैहिक सकेतो से भी आवश्यक एव प्रमुख माना है। हम यहाँ कुछ प्रमुख एकनेत्रीय सकेतो की चर्चा करेगे।

(१) वस्तुओं का आकार (Size of objects) जो पदार्थ हमारी आँखों के नजदीक रहता है उसकी प्रतिमा हमारी आँख पर बडी पडती है। और जो पदार्थ आँखों से दूर रहता है उसकी प्रतिमा आँख पर छोटी पडती है। इसके फलस्वरूप जो चीज हम से जितनी अधिक दूर रहती है वह उतनी ही छोटी मालूम पडती है। दूसरी ओर, जो चीज जितनी नजदीक रहती है वह उतनी ही बडी मालूम होती है। अत जब दो वस्तुओं मे एक का आकार छोटा और दूसरे का बडा मालूम पडता है तो पहली वस्तु को हम दूसरे की अपेक्षा दूर समझ लेते है। लेकिन, यह सकेत उसी अवस्था मे किसी वस्तु के दूरी-प्रत्यक्षीकरण मे सहायक होता है जब वस्तु परिचित रहती है। अपरिचित चीजों की दूरी का प्रत्यक्षीकरण उनके आकार के आधार पर ठीक ठीक नही हो पाता, क्योंकि हमे उनका सही आकार मालूम नही रहता। चित्रकारो को भी जब अपने चित्रों में किसी परिचित वस्तु को दूर दिखलाना होता है तो उसे छोटा बना देते है और जिसे नजदीक दिखलाना होता है उसका आकार अपेक्षाकृत बडा बना देते है। पृष्ठ १६० की चित्र स० ३९ मे भी वस्तुओ के आकार के आधार पर उनकी दूरी का प्रत्यक्षीकरण होता है।

चित्र-संख्या ३९

वस्तुओं के आकार से दूरी का प्रत्यक्षीकरण

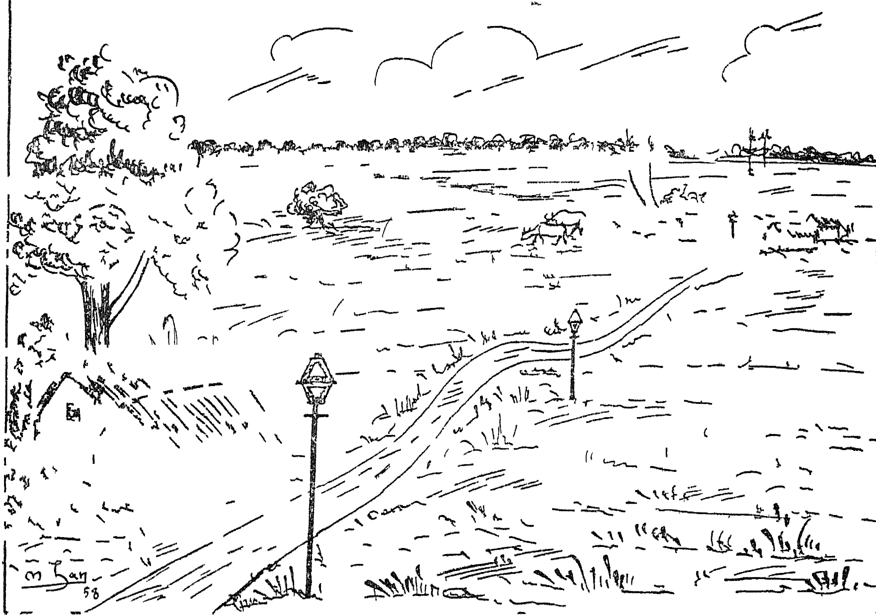
चित्र संख्या ४०



(२) अन्तर्स्थिति (Interposition) दो वस्तुओं की पारस्परिक दूरी (Relative distance) के प्रत्यक्षीकरण मे वस्तुओं की अन्तर्स्थिति काफी सहायक होती है। जब दो पदार्थों मे से एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को कुछ ढक लेता है तो इसे अन्तर्स्थिति कहते है। ढकने वाला पदार्थ नजदीक मालूम होता है और ढका गया पदार्थ दूर प्रतीत होता है। इस संकेत का उपयोग

(३) रूपरेखा की स्पष्टता (Vividness of out line) हम अपने अनुभव से जानते है कि दूर की वस्तुओं की रूपरेखा धुँधली दिखलाई पडती है। अतएव जिस वस्तु की रूपरेखा मे स्पष्टता रहती है उसे हम नजदीक और जिसमे अस्पष्टता रहती है उसे दूर समझ लेते है। चित्रकारो ने अपने चित्रों मे इस सकेत का भी उपयोग किया है, जैसा कि निम्नाङ्कित चित्र से विदित होता है।

चित्र सख्या ४१



रूपरेखा की स्पष्टता से दूरी का प्रत्यक्षीकरण

(४) पदार्थों की पारस्परिक गति (Relative movements of objects) जब हम रेल या मोटर से यात्रा करते है तब नजदीक की चीजे तेजी से और दूर की चीजें धीरे धीरे दौडती हुयी नजर आती है। पदार्थों की इस पारस्परिक गति के आधार पर हम यह जान पाते है कि तेजी से भागते पदार्थ हमसे नजदीक और धीरे से भागते पदार्थ हमसे दूर है।

इतना ही नही, जब हम किसी तेज चलने वाली सवारी से यात्रा करते है तब यह भी देखने मे आता है कि दूर की चीजें उसी दिशा मे भाग रही है जिस दिशा मे हम यात्रा करते है, परन्तु नजदीक की चीजे उल्टी दिशा मे दौडती दीख पड़ती है। इस तरह, वस्तुओं की पारस्परिक गति के आधार पर हम यह जान जाते है कि कौन वस्तु नजदीक और कौन दूर है।

(५) प्रकाश और छाया (Light & Shadow) प्रकाश और छाया विभिन्न चीजों की दूरी या गहराई के प्रत्यक्षीकरण मे आवश्यक एव प्रमुख सकेत है। जो पदार्थ प्रकाशमय रहते है, उन्हे हम नजदीक समझते है और जो छाया मे रहते है उन्हें दूर

या गहरी मानते है। चित्रकारो ने अपने चित्रो मे दूरी और गहराई प्रदर्शित करने के लिए इस संकेत का भी उपयोग किया है, जैसाकि निम्नांकित चित्र मे स्पष्ट है।

चित्र संख्या १२



छाया से गहराई और दूरी का प्रत्यक्षीकरण

इसी प्रकार पदार्थो के स्थान प्रत्यक्षीकरण (Space perception) मे और भी कई छोटे मोटे संकेतो का हाथ रहता है, किन्तु प्रमुख संकेत उपर्युक्त ही है। इस स्थल पर यह भी व्यक्त कर देना अप्रासंगिक न होगा कि स्थान प्रत्यक्षीकरण मे प्रायः कई संकेत मिलकर एक साथ कार्य करते है।

आकार की नित्यता

(Constancy of size)

दृष्टि संबन्धी स्थान प्रत्यक्षीकरण (Visual space perception) की चर्चा कर लेने के बाद वस्तु के आकार के प्रत्यक्षीकरण (Perception of size) मे जो अपरिवर्तनशीलता या नित्यता (Constancy) देखी जाती है, उसका उल्लेख भी अपेक्षित मालूम होता है। यह सर्वविदित है कि कोई वस्तु आँख से जितनी ही दूर रहती है उसकी प्रतिमा अक्षिपट पर उतनी ही छोटी होती है। हम सामान्यतः किसी वस्तु का अक्षिपटीय प्रतिमा के आकार के अनुपात मे देखते है। जब अक्षिपट की प्रतिमा का आकार बड़ा रहता है तो वस्तु भी बड़ी मालूम होती है, जब उस प्रतिमा का आकार छोटा हो जाता है तो वस्तु का आकार भी छोटा मालूम पड़ता है। दो मीटर की दूरी पर खड़े किसी व्यक्ति के आकार की जो प्रतिमा आँख (अक्षिपट) में पड़ती है वह उस प्रतिमा से बड़ी रहती है जो उसी व्यक्ति के ५०० मीटर की दूरी पर खडा रहने पर पड़ती है। फलतः दो मीटर की अपेक्षा ५०० मीटर की दूरी पर व्यक्ति छोटे आकार का मालूम पड़ता है। इस तरह, हम देखते है कि दूरी के अनुकूल अक्षिपटीय प्रतिमा और वस्तु के आकार का प्रत्यक्षीकरण परिवर्तित

होता जाता है। लेकिन, यह बात हमेशा ठीक नही होती। कभी-कभी वस्तु की दूरी बढने घटने से अक्षिपटीय प्रतिमा का आकार तो परिवर्त्तित होता है, लेकिन इससे उसके प्रत्यक्षीकरण मे कोई परिवर्त्तन नही होता, आकार ज्यो का त्यो मालूम होता है। इसी को आकार की अपरिवर्त्तनशीलता या नित्यता (Constancy of size) कहते है। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति हमसे पाँच फीट की दूरी पर रहे अथवा १०-१५ फीट की दूरी पर रहे, लेकिन उसके आकार मे कोई परिवर्त्तन नही दीखता। कोई किताब एक फुट की दूरी से जितनी लम्बी, चौडी और मोटी मालूम होती है उतनी ही दस फीट की दूरी से भी मालूम पडती है, उसके आकार मे कोई परिवर्त्तन नही दीखता। लेकिन, भौतिक विज्ञान (Physics) के नियम के अनुसार दोनो अवस्थाओं मे दूरी अन्तर के कारण अक्षिपटीय प्रतिमाओं के आकार मे अन्तर होगा। अत हम कह सकते है कि एक निश्चित सीमा तक अक्षिपटीय प्रतिमाओ मे अन्तर रहने पर भी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण मे कोई अन्तर नही पडता।

जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों ने इसकी व्याख्या मस्तिष्क यन्त्र (Brain mechanism) के आधार पर की है। उनका कहना है कि प्रत्येक वस्तु या स्थिति का प्रत्यक्षीकरण करते समय मस्तिष्क मे उस वस्तु या स्थिति का एक खास तरह का समूहीकरण (Grouping) होता है। यह समूहीकरण उत्तेजित होने (Stimulation) से भिन्न भी हो सकता है, लेकिन हमारा प्रत्यक्षीकरण हमेशा उस समूहीकरण पर ही निर्भर करता है। यही कारण है कि किसी वस्तु को दृष्टिप्रतिमाएँ विभिन्न दूरियो के कारण भिन्न रहती है, फिर भी उनका प्रत्यक्षीकरण एक समान होता है। मस्तिष्क यत्र यह समूहीकरण या सगठन (Organisation) किस प्रकार करता है, यह अज्ञात है। आकार की अपरिवर्त्तनशीलता के सबन्ध मे मनोवैज्ञानिको का यह विचार अधिक मान्य है कि हममे किसी चीज को सार्थक रूप मे देखने की एक प्रवृत्ति (Tendency) है। दूरी के कारण जब वस्तु की सार्थकता मे कमी आने लगती है, तो अपनी सार्थकता की प्रवृत्ति के कारण हम वैसा नही होने देते और फलत वस्तु को उसके मौलिक आकार मे ही देखते है। आकार मे परिवर्त्तन न होने से उसकी सार्थकता पूर्ववत् बनी रह जाती है।

दृष्टि-विपर्यय

(Visual illusions)

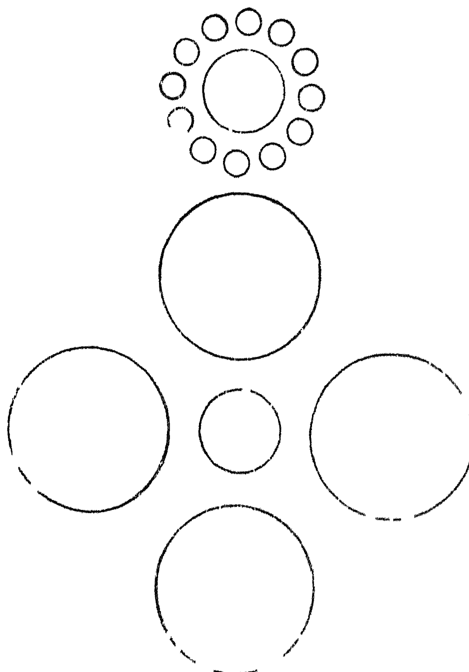
यों तो विपर्यय सभी क्षेत्रों मे देखने मे आते है, परन्तु इनका बाहुल्य दृष्टि-प्रत्यक्षीकरण मे अधिक है। इसलिए यहाँ पर विभिन्न प्रकार के दृष्टि विपर्ययों का उल्लेख कर देना आवश्यक है। प्रत्यक्षीकरण मे किसी प्रकार की अशुद्धि अथवा गलत प्रत्यक्षीकरण को ही विपर्यय कहते है। विपर्यय से किसी उत्तेजना का वास्तविक ज्ञान नही होता। कुछ मनोवैज्ञानिको ने प्रत्यक्षीकरण और विपर्यय को एक ही माना है। उनके अनुसार, हमारे सभी प्रत्यक्षीकरण विपर्यय ही है। वस्तुत उनका कहना बहुत अशों मे ठीक है। किसी उत्तेजना का ठीक ज्ञान क्या है, यह कहना बडा मुश्किल है। उदाहरणार्थ, एक साधारण आदमी पानी का प्रत्यक्षीकरण इस रूप मे करता है कि यह एक, रगहीन, स्वादविहीन, तरल पदार्थ है। लेकिन, क्या पानी का इससे सही ज्ञान हो जाता है? वैज्ञानिक कहेगा 'नहीं'। उसके अनुसार, पानी वह रासायनिक तत्त्व है जिसके एक अणु (Molecule) का निर्माण हाइड्रोजन के दो परमाणु (Atoms) और आक्सीजन के एक परमाणु के

मिलने से होता है। ऐसी स्थिति मे उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार हम कह सकते है कि हर साधारण आदमी को पानी का विपर्यय (Illusion) होता है, प्रत्यक्षीकरण नहीं। इस तरह हम देखते है कि प्रत्यक्षीकरण और विपर्यय का उपर्युक्त अन्तर कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। जिस तरह एक सयाने की नजर मे अबोध बच्चे का पानी का ठीक ज्ञान नहीं होता, उसी तरह एक वैज्ञानिक की नजर मे किसी सयाने (साधारण) का भी पानी का ठीक ज्ञान नहीं रहता। इतना मानते हुए भी व्यावहारिक दृष्टि से विपर्यय को प्रत्यक्षीकरण से भिन्न मानने में ही सुविधा है।

विपर्यय (Illusion) दो तरह के होते है—व्यक्तिगत (Individual) तथा सामान्य (Universal or general) विपर्यय। जिस विपर्यय का शिकार कोई खास व्यक्ति ही होता है, सब नही, उसे व्यक्तिगत विपर्यय कहते है यथा, अंधेरी रात मे साँप को रस्सी समझ लेना। किन्तु, जो विपर्यय सभी व्यक्तियों को होता है उसे सामान्य विपर्यय कहते है, यथा, रेल की दो पटरियो का आगे जाकर मिलने का विपर्यय। सभी तरह के ज्यामितिक विपर्यय (Geometrical illusions) सामान्य प्रकार के होते है। नीचे कुछ सामान्य स्वरूप के, ज्यामितिक विपर्ययों का उल्लेख किया गया है।

(१) नीचे की चित्र सख्या ४३ के दोनो चित्रो मे बीचवाले वृत्त आकार और नाप में एक दूसरे के बराबर है, किन्तु बड़े वृत्तो से घिरा हुआ वृत्त छोटे वृत्तो से घिरे वृत्त की अपेक्षा छोटा मालूम होता है।

चित्र सख्या ४३



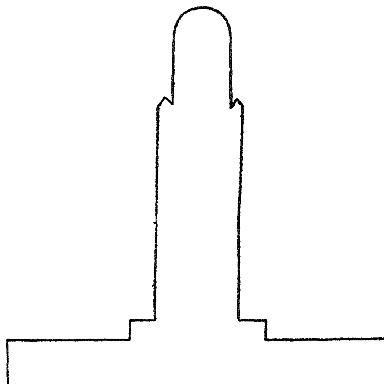
विपर्यय-चित्र

• (२) समान लम्बाई की दो रेखाओ मे खडी रेखा पडी रेखा से लम्बी मालूम होती है। इसी प्रकार, खडी दूरी भी पडी दूरी से अधिक मालूम होती है, जैसा कि निम्नाङ्कित चित्रों से स्पष्ट है—

चित्र-सख्या ४४ (क)



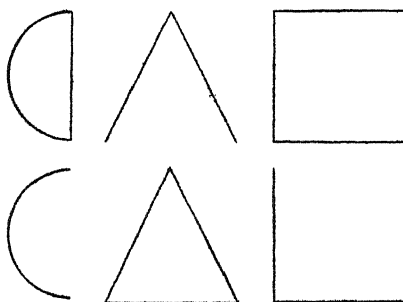
चित्र सख्या ४४ (ख)



खडी और पडी रेखा सबन्धी विपर्यय-चित्र

ऊपर चित्र स० ४४ मे पडी और खडी रेखाओं की लम्बाइयाँ एक दूसरे के बराबर है, किन्तु खडी रेखा बडी मालूम पडती है। उसी तरह चित्र स० ४४ (ख) मे खडी दूरी, पडी दूरी से अधिक मालूम होती है। इस विपर्यय का इस्तेमाल चित्रकारी, भवन-निर्माण, आदि मे अधिक होता है।

चित्र सख्या ४५



भरा और खुला चित्र विपर्यय

(३) ऊपर के चित्र मे अर्द्धवृत्त, त्रिभुज, तथा वर्ग के भरे और खुले चित्र है। प्रत्येक आकृति के बन्द और खुले क्षेत्रो का क्षेत्रफल बराबर होता है, फिर भी देखने मे बन्द क्षेत्र खुले क्षेत्र की अपेक्षा क्षेत्रफल मे छोटा मालूम पडता है।

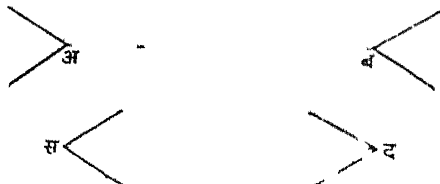
(४) नीचे के तीनों चित्र समान लम्बाई और मोटाई के है, किन्तु तीसरे चित्र में पडी धारी के कारण मोटाई अधिक मालूम होती है और पहले में खड़ी धारी के कारण लम्बाई अधिक मालूम होती है।

चित्र-संख्या ४६

विपर्यय चित्र

(५) निम्नांकित चित्र म्यूलर लायर विपर्यय (Muller Lyer illusion) के नाम से प्रसिद्ध है। इस चित्र में अ, ब रेखा (पख रेखा), और स, द रेखा (वाण रेखा) लम्बाई में एक दूसरे के बराबर हैं, लेकिन देखने मे वाण रेखा छोटी और पख-रेखा बडी मालम होती है।

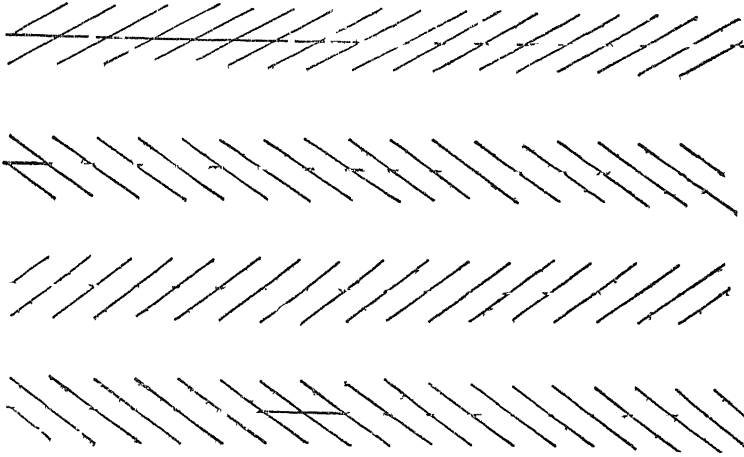
चित्र-संख्या ४७



म्युलर-लायर विपर्यय चित्र

(६) पृष्ठ १६७ के चित्र ४८ की रेखाएँ वस्तुत एक दूसरे के समानान्तर है किन्तु देखने में वे समानान्तर प्रतीत नहीं होती है।

चित्र-संख्या ४८



विपर्यय चित्र

इसी प्रकार और भी कई प्रकार के विपर्यय होते है, परन्तु उन सबका यहाँ उदाहरण देना और उल्लेख करना असंभव है। उपर्युक्त विपर्ययों मे से कुछ विपर्ययों के शिकार कुछ जानवर भी होते है। इस कथन की पुष्टि कई प्रयोगो द्वारा हो चुकी है। ध्वनि, स्पर्श, भार (Weight), आदि के विपर्यय हमलोगो के जीवन मे नित्यप्रति होते है जिनका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत नही होता।

विपर्यय के विभिन्न सिद्धान्त

मनोवैज्ञानिकों ने विपर्यय के कई कारण व्यक्त किए है। उनमें ज्ञानेन्द्रिय के दोष (Defects), मानसिक वृत्ति (Set), चिन्ता, भय, उत्तेजना की नवीनता, आदत, प्रसंग तथा विरोध प्रमुख है। हम कह सकते है कि प्रत्यक्षीकरण के व्यक्तिगत या आन्तरिक जितने निधारक है उन सभी से विपर्यय भी होते है। विभिन्न कारणों को मनोवैज्ञानिकों ने कुछ सिद्धान्तो के अन्तर्गत अभिव्यक्त किया है। यहाँ पर हम उन सिद्धान्तों पर संक्षेप मे विचार करेंगे।

१ सम्भ्रान्ति सिद्धान्त (Confusion theory) सम्भ्रान्ति सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि किसी चित्र या आकृति को देखते समय हम भ्रमवश पूरी आकृति का निरीक्षण करने लग जाते है। इसलिए किसी रेखा, कोण अथवा अन्य पहलू का निर्णय करने में अशुद्धि हो जाती है, क्योकि पूरी आकृति मे तल्लीन रहने के कारण हम आवश्यक अंग का विश्लेषण नहीं कर पाते और फलत तरह तरह के ज्यामितिक विपर्ययों का शिकार हो जाते है।

(२) नेत्रगति सिद्धान्त (The eye movement theory) यह सिद्धान्त किसी प्रकार के विपर्यय की व्याख्या नेत्रगति के आधार पर करता है। इसके अनुसार खडी रेखा को देखने मे नेत्रगति मे अधिक भार या जोर (strain) पडता है, लेकिन पडी रेखा को देखने मे यह जोर कम पड़ता है, इसलिए खड़ी रेखा, पड़ी रेखा से बडी मालूम

होती है। इसी प्रकार, म्युलर लायर विपर्यय मे पख रेखा (Feather headed line) को देखते समय आँख को अधिक चलाना पड़ता है और वाण रेखा (Arrow headed line) को देखते समय कम। इसलिए वाण रेखा की लम्बाई का न्यूनाकन (Under estimation) पख रेखा का अत्याकन (Over estimation) होता है। फलत वाण रेखा को पख रेखा की अपेक्षा छोटी समझते है। इस सिद्धान्त की एक व्याख्या के अनुसार, वास्तविक नेत्रगति विपर्यय के लिए आवश्यक नही है, नेत्रगति की प्रवृत्ति (Tendency) ही विपर्यय उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है।

(३) दृश्य-भूमि सिद्धान्त (The Perspective theory) दृश्य-भूमि का अभिप्राय यह है कि कोई भी पदार्थ त्रिविस्तार (Three dimensions) का बोधक होता है। इसलिए हम किसी आकृति का निर्णय दृश्य-भूमि के प्रसग में करते है जिसके फलस्वरूप हमे उस आकृति का विपर्यय होता है। यह सिद्धान्त इसी आधार पर सभी प्रकार के विपर्ययों की व्याख्या करता है। इस सिद्धान्त की सार्थकता पर हम आगे विचार करेगे।

(४) परन्तानुभूति सिद्धान्त (The Empathy theory) थीयोडर-लिप्स (Theodor lipps) ने जिस आधार पर सौन्दर्यानुभूति की व्याख्या की है उसी आधार पर विपर्ययों की भी व्याख्या की है। 'भाव' के प्रसग मे इस सिद्धान्त पर प्रकाश डाला जायेगा, इसलिए इसके सम्बन्ध मे हम यहाँ यही कहना पर्याप्त समझते है कि इस सिद्धान्त के अनुसार जब किसी आकृति का निर्माण मनुष्य करता है तो उस समय उसमें कुछ सवेग और प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाती है। सवेग और भाव के कारण निर्णय ठीक नही हो पाता और वह किसी विपर्यय का शिकार हो जाता है। पड़ी रेखा के अत्याकन अथवा 'वाण रेखा' के न्यूनाकन मे इस प्रवृत्ति का हाथ रहता है।

(५) सुन्दर आकृति सिद्धान्त (The Pregnance or good figure theory), इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने किया है। इसके अनुसार मनुष्य किसी आकृति के विभिन्न अशों को नही देखता, बल्कि उसकी सम्पूर्ण इकाई को ही देखता है। इकाई रूप मे देखते समय आकृति को सुन्दर रूप म देखने की प्रवृत्ति उसमे काम करती रहती है। इस प्रवृत्ति के ही कारण वह आकृति म ऐसे गुण और विशेषताए भी देखता है जो उसमे नही रहती और विपर्यय हो जाता है। अपूर्ण चित्र (त्रिभुज, वृत्त, आदि) को पूर्ण रूप मे देखना इसी कारण सभव होता है।

यदि उपर्युक्त सिद्धान्तो पर विचार करे तो पायगे की सभी सिद्धान्तो में कुछ न कुछ सत्यता अवश्य है। अत किसी सिद्धान्त का भी तिरस्कार पूर्णत नही किया जा सकता। म्युलर लायर विपर्यय (Muller-lyer illusion) अथवा बराबर लम्बाई की रेखाओं में खडी रेखा का पडी रेखा मे बडी मालम पडने के विपर्यय की व्याख्या नेत्रगति (Eye movement) के आधार पर अधिक समुचित प्रतीत होती है, लेकिन अन्य तरह के विपर्ययो की व्याख्या मे यह सिद्धान्त ठीक नही जँचता। हेल्महोज (Helmholtz) ने उपर्युक्त दोनों विपर्ययों की व्याख्या दृश्य-भूमि सिद्धान्त (Perspective theory) के आधार पर की है, परन्तु सभी विपर्ययो की व्याख्या मे यह सिद्धान्त भी सत्य नही दीखता। जो विपर्यय विरोध (Contrast) के कारण होते है उनकी व्याख्या सभ्रान्ति सिद्धान्त (Confusion

theory) के ही द्वारा अच्छी तरह होती है, नेत्रगति या अन्य सिद्धान्तो द्वारा नही। हिक्स (Hicks) तथा जड (Judd) ने तो कई प्रयोगो द्वारा यह भी प्रदर्शित कर दिया है कि वस्तुत नेत्रगति के कारण विपर्यय नही होता, बल्कि विपर्यय के कारण नेत्रगति होती है। कई स्थलों पर, जहाँ नेत्रगति का अवसर नही दिया गया है, वहा भी विपर्यय देखा गया है। अत यह प्रमाणित है कि सभी स्थलों पर नेत्रगति विपर्यय का कारण नही होता है। ऐसे स्थलों पर हमे दृश्य भूमि-सिद्धान्त का ही महत्त्व दीख पडता है, किन्तु इसका यह अर्थ नही कि हम सभी प्रकार के विपर्ययों की सतोषप्रद व्याख्या केवल इसी सिद्धान्त के आधार पर कर सकते है। यहाँ हम सभ्रान्ति सिद्धान्त की अवहेलना नही कर सकते, क्योकि इसमे दृश्य भूमि-सिद्धान्त का बीजतत्त्व सन्निहित है। इस तरह हम देखते है कि किसी विपर्यय की व्याख्या करते समय कोई सिद्धान्त युक्तिसगत और कोई असतोषप्रद सिद्ध होता है। किन्तु, यदि हम सभी सिद्धान्तों पर निष्पक्षतया विचार करे तो ज्ञात होगा कि विपर्यय की व्याख्या करने मे सभ्रान्ति-सिद्धान्त (Confusion theory) को अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिलती है।

जबतक हम किसी भ्रम या शका के शिकार नही होते तबतक विपर्यय होता ही नही। परन्तु, यहाँ हमे यह याद रखना होगा कि सभ्रान्ति सिद्धान्त को सुन्दर-आकृति सिद्धान्त से अलग नही किया जा सकता। जेस्टाल्टवादियो (Gestaltists) के अनुसार, हम किसी आकृति को उसकी इकाई (Unit) के सुन्दरतम् रूप मे देखते है और यदि उस आकृति मे किसी विशेषता की कमी भी रहती है तो हम उस कमी को अपने मन से पूरा कर लेते है। इसी सम्पूर्ण इकाई के निरीक्षण के फलस्वरूप हमे विपर्यय होता है। हम जो आकृति रहती है उसे नही देखते, बल्कि उसका क्या अभिप्राय है, उसे देखने लगते है और उसीमे विश्वास भी करते है। इस तरह सुन्दर आकृति की प्रवृत्ति एक भ्रम (Confusion) मे डाल देती है और हमे विपर्यय हो जाता है। अत हम कह सकते है कि कुछ विपर्ययो की व्याख्या प्रत्येक सिद्धात से होती है, पर अन्य सिद्धान्तो की अपेक्षा सुन्दर आकृति सिद्धान्त अधिक उपयोगी है।

बेनुसी (Benusse) के प्रयोगो से स्पष्ट है कि जब उसने अपने प्रयोज्यों को पूरी आकृति देखने का निर्देशन दिया तब उसके प्रयोज्यो मे विपर्यय की मात्रा अधिक थी, किन्तु जब उन्हे किसी अग विशेष को ही देखने का निर्देशन दिया तब उसके विपर्यय मे पहले की अपेक्षा बहुत कमी थी। इससे प्रतीत होता है कि प्रयोज्यो (Subjects) मे सम्पूर्ण आकृति देखने की प्रवृत्ति रहती है, उसके अश विशेष को नही। बेनुसी का यह प्रयोग परिणाम जेस्टाल्ट सिद्धान्त को ही पुष्ट करता है।

लेखक ने भी म्युलर-लायर विपर्यय का अध्ययन 'बाण' एव 'पख' रेखाओं के साथ कई प्रयोज्यों पर नियत्रित अवस्था मे किया है। सभी प्रयोज्यो ने 'बाणरेखा' की लम्बाई का न्यूनाकन और 'पखरेखा' की लम्बाई का अत्याकन किया। प्रयोज्यों के अन्तर्निरीक्षण से पता चलता है कि वे 'पख' या 'बाण' को रेखा से अलग नही, बल्कि उसी मे देखते थे। साथ ही, यह भी विदित होता है कि 'पख' रेखा को 'बाण रेखा' के बराबर बनाने मे वे नेत्र एव हस्तगति (Hand movement) से अदाज और सहायता लेते थे। इस तरह, इन प्रयोगों से भी स्पष्ट है कि नेत्रगति एव मासपेशियों का सचालन विपर्यय मे सहायक अवश्य होता है, परन्तु विपर्यय का मूल कारण आकृति को सुन्दर रूप मे देखने की प्रवृत्ति है।

विपर्यय-मापन (Measurment of illusion)

किसी भी विपर्यय को प्रयोगात्मक विधि द्वारा मापा जा सकता है, किन्तु विपर्यय का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिको ने अधिकतर मुलर लायर विपर्यय की विभिन्न आकृतियों का ही उपयोग किया है। इसकी दो विधियाँ है। पहली विधि को व्यवस्थापन विधि (Adjustible method) कहते है जिसके अनुसार म्युलर लायर की कोई आकृति देकर प्रयोज्य को उसी के बराबर दूसरी आकृति को व्यवस्थित करने का निर्देशन दिया जाता है। दूसरी विधि मे, एक ही आकृति (बाणरेखा) को बार-बार प्रदर्शित करके उसी के बराबर दूसरी आकृति (पखरेखा) को व्यवस्थित करने का निर्देशन दिया जाता है। जो आकृति प्रयोज्य को दी जाती है, वह ऐसी ही बनी रहती है कि उसी के बराबर वह दूसरी आकृति की व्यवस्था कर सके। इस विधि से, आकृति म किसी प्रकार का परिवर्तन नही किया जाता है।

हेमन्स (Heymans) जड (Judd), इस्पन (Ispen), आदि विद्वानों ने इन्हा विधियों से म्युलर लायर (Muller lyer) के अन्य विपर्ययों का अध्ययन किया है। इससे प्रमाणित होता है कि सभी व्यक्ति विपर्यय के शिकार होते है। कुछ अवस्थाओं में विपर्यय अधिक और कुछ अवस्थाओ मे कम मात्रा म होता है। प्रयोगो स यह भी पता चलता है कि अभ्यास का असर भी विपर्यय पर पडता है। यानी, किसी प्रयोज्य पर एक ही विपर्यय का प्रयोग बार बार किया जाय तो बार बार दुहराने के कारण विपर्यय की मात्रा में कमी पडने लगती है और कभी कभी विपर्यय की मात्रा शून्य भी हो जाती है। लेकिन, इस सिलसिले मे यह स्मरणीय है कि उपर्युक्त परिणाम आकृति को एक ही अवस्था में रखकर प्रयोग करने से प्राप्त होता है। आकृति की अवस्था (स्थान) बदल देने स विपर्यय की मात्रा पूर्ववत् देखी गयी है।

समय का प्रत्यक्षीकरण

(Perception of time)

प्रत्येक उत्तेजना निश्चित समय तक हमारे समक्ष रहती अथवा किसी ज्ञानेन्द्रिय को प्रभावित करती है। जितने समय तक कोई उत्तेजना हमें प्रभावित करती है उसके प्रत्यक्षीकरण को समय का प्रत्यक्षीकरण कहते है। यह समय प्रत्यक्षीकरण भी कभी भौतिक (Physical) और कभी मानसिक आधार पर आधारित रहता है। घडी या किसी ऐसे यत्र के सहारे समय का प्रत्यक्षीकरण भौतिक आधार पर होता है। लेकिन, हम बिना घडी देखे भी यह अदाज लगा लिया करते है कि अमुक वस्तु इतनी देर तक हमारे सामने थी। यह प्रत्यक्षीकरण मानसिक आधार पर होता है। इसी तरह यदि 'टक टक' की दो बार आवाज की जाय तो हम यह अदाज लगा लिया करते है कि दोनों आवाजों में इतने समय का अतर था। लेकिन, यह अदाज हमेशा सही नहीं होता। इसमें अशुद्धियाँ हुआ करती है। साथ ही यदि इस समय का व्यवधान (Interval) बहुत कम कर दिया जाय तो हमें उसका कुछ भी अन्दाज या प्रत्यक्षीकरण नही हो पाता। अत. यहाँ हम दो बातों पर विचार करेगे।

• (१) कम से कम समय का प्रत्यक्षीकरण (Threshold of time apprehension) और

(२) समय प्रत्यक्षीकरण की अशुद्धि ।

(१) कम से कम समय का प्रत्यक्षीकरण विभिन्न प्रयोगो से स्पष्ट है कि जब समय का व्यवधान बहुत कम हो जाता है तो हमे उसका प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। अत यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि वह कम से कम कितना समय है जिसका हमे प्रत्यक्षीकरण होता है? उस कम से कम समय को समय प्रत्यक्षीकरण का सीमान्त (Threshold of time apprehension) कहते है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से पता चलता है कि समय-प्रत्यक्षीकरण का सीमान्त कुछ निश्चित नही है। यह कई अगों पर निर्भर करता है जिसमे ज्ञानेन्द्रिय, उत्तेजना, एव प्रयोज्य की सक्रियता, प्रत्याशा, तथा भाव प्रमुख है। यहाँ सक्षेप मे प्रत्येक का उल्लेख कर देना आवश्यक होगा।

(क) ज्ञानेन्द्रिय (Sense Organ) विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों के लिए समय-प्रत्यक्षीकरण का सीमान्त भिन्न-भिन्न हुआ करता है। कान के द्वारा कम से कम ००२ सेकेण्ड का प्रत्यक्षीकरण होता है। अगर किसी समय व्यवधान (Time interval) का प्रत्यक्षीकरण आँख और कान दोनों से करना हो तो उसके लिए कम से कम १६ सेकेण्ड समय की आवश्यकता होती है।

(ख) उत्तेजना (Stimulus) समय-प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी प्रयोग करने में समय-व्यवधान दो उत्तेजनाओं के द्वारा उपस्थित किया जाता है और प्रयोज्य से यह पूछा जाता है कि उन दोनो उत्तेजनाओं के बीच कितना समय लगा। प्रयोगों से पता चलता है कि उसके प्रत्यक्षीकरण को उत्तेजना का स्वरूप (Nature) भी प्रभावित करता है। यदि किसी समय को विद्युत उत्तेजनाओ से सीमित करते है तो हमे बहुत कम समय का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। उतना समय यदि ध्वनि के सहारे उपस्थित किया जाय तो हमे उसका प्रत्यक्षीकरण नही होगा। इसी प्रकार, यदि दो समान व्यवधानो मे पहले व्यवधान को प्रकाश की उत्तेजनाओं से और दूसरे को प्रकाश और ध्वनि की उत्तेजनाओ से सीमित कर तो प्रकाश और ध्वनि उत्तेजनाओं से सीमित समय पहले की अपेक्षा अधिक जान पड़ता है।

• (ग) प्रयोज्य की अवस्था (State of the subject) जिस समय प्रयोज्य समय का प्रत्यक्षीकरण करता है उस समय उसकी शारीरिक और मानसिक अवस्था कैसी है, इस पर भी समय प्रत्यक्षीकरण का सीमान्त (Threshoold) निर्भर करता है। जब व्यक्ति व्यस्त, थका या किसी सवेग की अवस्था मे रहता है तो उसके समय प्रत्यक्षीकरण का सीमान्त बढ जाता है, यानी मात्र (Just) प्रत्यक्षीकरण के लिए अपेक्षाकृत अधिक समय की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, जब प्रयोज्य प्रसन्न रहता है, समय-प्रत्यक्षीकरण मे अधिक से अधिक ठीक उतरने के लिए प्रयत्नशील और लगनशील रहता है तो उसे अपेक्षाकृत कम समय का ही प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। यही कारण है कि एक ही तरह की उत्तेजनाओं से उपस्थित समान समय का प्रत्यक्षीकरण एक ही प्रयोज्य कभी कर पाता है और कभी नही कर पाता है।

(२) समय प्रत्यक्षीकरण की अशुद्धियाँ (Errors in perception of time) समय प्रत्यक्षीकरण में दो तरह की अशुद्धियाँ होती हैं — अत्यांकन (Over estimation) और न्यूनांकन (Under estimation)। जब कभी हम समय का अंदाज जितना वह रहता है उससे अधिक लगाते हैं तो उसे अत्यांकन कहते हैं। वास्तविक समय-व्यवधान जितना रहता है उससे कम अंदाज [illegible] न्यूनांकन कहते हैं। समय के प्रत्यक्षीकरण में कभी तो हम उसका [illegible] अत्यांकन या न्यूनांकन करते हैं। सामान्यतः देखा गया है कि जब समय-व्यवधान छोटा या कम रहता है तो हम उसका अत्यांकन करते हैं और जब समय-व्यवधान काफी बड़ा रहता है तो उसका न्यूनांकन करते हैं। जो समय-व्यवधान न बहुत छोटा और न बहुत बड़ा रहता है उसका अंदाज प्राय शुद्ध या ठीक हुआ करता है। इसे निरपेक्ष समय-व्यवधान (Indifferent time interval) कहते हैं। पहले लोग १९०० से ३९०० [illegible] समय को निरपेक्ष समय व्यवधान मानते थे। लेकिन, आजकल के मनोवैज्ञानिक निरपेक्ष समय व्यवधान ७ से ८ सेकण्ड तक के समय को मानते हैं। ७ से ८ सेकण्ड के समय व्यवधान का प्रत्यक्षीकरण सामान्यत सही सही होता है। इससे कम व्यवधान (interval) हो जाने पर हम उसका अत्यांकन करते हैं और इससे अधिक व्यवधान का न्यूनांकन। किन्तु, मनस्टरबर्ज (Munsterberg) जैसे कई मनोवैज्ञानिक इस निरपेक्ष [illegible] से भी सहमत नहीं हैं। वस्तुतः किसी खास समय व्यवधान को इसके लिए निश्चित नहीं किया जा सकता, क्योंकि अत्यांकन या न्यूनांकन कई कारणों से होता है। उनमें कुछ प्रमुख कारणों की चर्चा करना यहाँ अपेक्षित है।

(क) पूर्ण और रिक्त समय व्यवधान (Filled and unfilled time intervals) जिस व्यवधान में अधिक कुछ काम किया जाता है उसे पूर्ण व्यवधान (Filled interval) कहते हैं और जिसमें व्यक्ति [illegible] शान्त रहता है उसे रिक्त व्यवधान (Unfilled interval)। हम अपने अनुभव से [illegible] लगता है कि हम पूर्ण समय-व्यवधान का न्यूनांकन करते हैं और रिक्त समय-व्यवधान का अत्यांकन। पूर्ण व्यवधान में हम कार्य में लगे रहने के कारण [illegible] सरलता का अनुभव करते हैं और इसलिए हम समय का [illegible] नहीं रख पाता। परिणाम होता है कि अधिक समय बीत जाने पर भी [illegible] लगता है कि वह कम बीता। दूसरी ओर, रिक्त व्यवधान में [illegible] के कारण [illegible] समय कैसे बीते, इसी पर लगा रहता है। [illegible] नीरसता (Monotony) और बेचैनी का अनुभव करते हैं, अतः समय का अत्यांकन करते हैं। लेकिन, मनोवैज्ञानिक प्रयोगों और अध्ययनों ने उल्टा ही परिणाम पाया है। [illegible], पूर्ण समय व्यवधान का हम अत्यांकन करते हैं और रिक्त समय व्यवधान का न्यूनांकन। [illegible] और बोरिंग, आदि लेखकों ने भी [illegible] विचार [illegible] किया है।

(ख) समय व्यवधान के कार्य का स्वरूप (Nature of work during time interval) समय-व्यवधान का प्रत्यक्षीकरण उस व्यवधान में किए गए कार्य के स्वरूप पर भी निर्भर करता है। यदि समान लम्बाई के समय व्यवधान का प्रत्यक्षीकरण किसी प्रयोज्य से कई बार कराया जाय और प्रत्येक बार उसमें एक [illegible] तरह का कार्य उस

समय मे कराया जाय तो हर बार उसका प्रत्यक्षीकरण प्राय एक ही तरह का होगा। लेकिन, यदि समय-व्यवधान मे हर बार उससे विभिन्न तरह का कार्य कराने तो उसका प्रत्यक्षीकरण बदल जायगा। जिस कार्य मे उसकी रुचि होगी उसमे वह व्यस्त हो जायगा, फलत उस बार वह समय का न्यूनांकन करेगा। इसी तरह, उसे जो कार्य अरुचिकर लगेगा उसमे उसका मन नही लगेगा और बरबस उसका ध्यान समय कैसे बीते, इस पर चला जायगा, जिसके परिणाम स्वरूप वह उस बार समय का अत्यांकन करेगा। इसका प्रयोग साधारण प्रयोगशालाओं मे भी किया जा सकता है। प्रयोग की योजना (Planning) इस तरह की होगी—

अवस्थाएँ (Conditions)	समय-व्यवधान (Time interval) A	समय व्यवधान मे कार्य	प्रयोज्य का प्रत्यक्षीकरण B	अशुद्धि (Error) A∼B
पहली	४ मिनट	खटखट आवाज गिनना		
दूसरी	४ ,,	कहानी पढना		
तीसरी	४ ,,	गुणा करना		
चौथी	४ ,,	गाना सुनना		
पाँचवी	४ ,,	निरर्थक शब्द सीखना		

इन पाँचों अवस्थाओं मे जो अशुद्धियां होंगी, वे एक दूसरे से भिन्न होंगी और यह भिन्नता उपर्युक्त कथन को सिद्ध करेगी।

(४) दैहिक क्रियाएँ (Physiological actions) कहने के लिए हम रिक्त समय-व्यवधान (Unfilled time interval) कहा करते है, परन्तु, सही अर्थ में कोई समय एसा नहीं होता जब हम किसी तरह की क्रिया नही करते है। रिक्त व्यवधान में वाह्यक्रियाएँ नही होती है, परन्तु आन्तरिक्त या दैहिक क्रियाएँ तो होती रहती है। इन दैहिक क्रियाओ का भी असर, समय के प्रत्यक्षीकरण पर, पडता है। कभी कभी तो सांस की गति या हृदय की धडकन, आदि समय प्रत्यक्षीकरण का आधार बन जाती है। जैसे, कोई प्रयोज्य, इस आधार पर कि उसकी सांस गति मिनट मे इतनी बार चल रही है, किसी निश्चित समय-व्यवधान का प्रत्यक्षीकरण अपनी साँस गिनकर ही कर लेता है।

(५) मनोवैज्ञानिक अवस्था और भाव सवेग व्यक्ति की भावात्मक अवस्था (Affective state) यानी, उसके सुख दुख, या प्रसन्नता अप्रसन्नता का असर भी उसके

समय-प्रत्यक्षीकरण पर पडता है। कहा जाता है सुख की घडी घडी क्षणिक होती है और दुख के क्षण बिताए नही बीतते। कहने का अर्थ यह कि प्रसन्न रहने पर हम समय का न्यूनाकन (Under estimation) करते है और अप्रसन्न रहने पर उसी समय का अत्याकन (Over estimation) करते है। इसी तरह, मानसिक गति (Mental set), अभिरुचि (Interest), मनोवृत्ति (Attitude) आदि विभिन्न मानसिक अवस्थाओ का भी असर समय के प्रत्यक्षीकरण पर पडता है। सक्षेप म, कह सकते है कि वे सभी आन्तरिक और मानसिक कारण जो ध्यान (Attention) को निर्धारित करते है, समय प्रत्यक्षीकरण का प्रभावित करते है।

समय प्रत्यक्षीकरण की प्रयोग विधि (Methods)

समय प्रत्यक्षीकरण का प्रयोग प्राय दो विधियो से किया जाता है। पहली विधि म कुछ निश्चित समय व्यवधान (Time interval) प्रयोज्य के सामने उपस्थित किया जाता है। यह उपस्थितिकरण बोल कर या साफ चिह्न के सहारे किया जाता है और प्रयोज्य उस समय का प्रत्यक्षीकरण करता है। दूसरी विधि म एक समय व्यवधान को उपस्थित करने के बाद दूसरा समय व्यवधान उपस्थित किया जाता है और प्रयोज्य को यह व्यक्त करने का निर्देशन दिया जाता है कि दूसरा समय व्यवधान पहले के बराबर है, बडा है या छोटा है। प्रयोज्य के इस तरह के निर्णय से भी हमे उसके समय-प्रत्यक्षीकरण का बोध होता है।

विभिन्न प्रकार के कार्यो का प्रभाव समय प्रत्यक्षीकरण पर देखने के लिए कुछ निश्चित समय तक कोई कार्य विशेष कराया जाता है और यह व्यक्त करने को कहा जाता है कि उसने कितनी देर तक काम किया। पुन उतने ही समय मे क्रमश दूसरे, तीसरे और चौथे तरह के कार्य कराए जाते है और हर बार उसके प्रत्यक्षीकरण का निर्णय लिया जाता है। प्रयोग समाप्त होने पर प्रयोज्य का अन्तर्निरीक्षण लेना आवश्यक है, क्योकि इससे प्रयोज्य की विभिन्न मानसिक अवस्थाओं पर अत्यधिक प्रकाश पडता है। इसके द्वारा कुछ उन आधारो पर भी प्रकाश पडता है जिनके सहारे वह किसी निश्चित समय का अन्दाज (Estimation) करता है।

गति का प्रत्यक्षीकरण
(Perception of movement)

हम केवल स्थिर (Static) पदार्थो का ही प्रत्यक्षीकरण नहीं करते, बल्कि हमें गतिशील (Moving) पदार्थो का भी बोध होता है। मकान स्थिर है और गाडी चल रही है यह हम अपने प्रत्यक्षीकरण के आधार पर ही जान पाते है। गति के प्रत्यक्षीकरण के लिए वस्तु मे भौतिक या वास्तविक गति (Physical movement) का होना आवश्यक नहीं है। हम स्थिर चीजों मे भी (बिना किसी भौतिक गति) के गति का प्रत्यक्षीकरण करते है। हम इसे आत्मगति या प्रत्यक्षगति (Perceived movement) कहते है। जैसे, जब कई बल्ब एक-एक कर क्रमश बलते और बुझते जाते है तो हम एक गतिशील (दौडते हुए) प्रकाश का प्रत्यक्षीकरण होता है। कभी कभी वास्तविक गति रहने पर भी उसका प्रत्यक्षीकरण हमें नहीं होता, जैसे घडी की सूई (घटेवाली) चलती रहती है, किन्तु हमें उसकी गति का

प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। इस तरह, हम देखते है कि वास्तविक गति होने पर भी उसका प्रत्यक्षीकरण नही हो सकता है और किसी वस्तु मे गति न रहने पर भी उसमे गति का बोध हो सकता है। हम यहाँ इन्ही दो प्रकार की गतियो के प्रत्यक्षीकरण पर सक्षेप मे विचार करेगे।

गतिशील उत्तेजनाओं का प्रत्यक्षीकरण (Perception of moving stimuli) साधारणत हम यह समझते है कि जो भी वस्तु गतिशील (Moving) रहती है उसकी गति का हमें प्रत्यक्षीकरण होता है। दौडती मोटर और घडी के हिलते पेण्डुलम को देख हमें आसानी से मोटर और पेण्डुलम की गति का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है, लेकिन बहुत बार हमें वस्तु की वास्तविक गतिशीलता का प्रत्यक्षीकरण नही होता, कभी तो बिल्कुल ही उसका बोध नही होता और कभी गति मे कुछ तीव्रता या मदता का प्रत्यक्षीकरण होता है। इसका कारण यह है कि गति का प्रत्यक्षीकरण कई बातों पर निर्भर करता है जिन्हे इसके निर्धारक (Determinants) कहते है। यहाँ हम कुछ ऐसे प्रमुख निर्धारकों की चर्चा करेगे।

गति प्रत्यक्षीकरण के निर्धारक गति प्रत्यक्षीकरण का निर्धारण जिन अगों के द्वारा होता है उनमे जो प्रमुख है हम यहाँ उन्ही की चर्चा करेगे।

(१) गति की रफ्तार (Speed of movement) जब किसी वस्तु की गतिशीलता बहुत कम या बहुत अधिक रहती है तो हमे उसका प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। गति प्रत्यक्षीकरण का भी एक सीमान्त (Threshold) है। दूसरे शब्दों मे, जिस तरह विभिन्न प्रकार के स्थान-प्रत्यक्षीकरण (Space-perception) के लिए कम से कम एक खास मात्रा की जरूरत होती है, उसी तरह गति के प्रत्यक्षीकरण के लिए कम से कम गति की भी एक सीमा होती है। उससे कम या धीमी गति होने पर हमें गति का प्रत्यक्षीकरण नही होता। ऊपर के उदाहरण मे, घडी की सूई की गति प्रत्यक्षीकरण-सीमान्त (Thresold of perception) से कम है, इसीसे उसकी गति का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। यही हालत, बहुत अधिक गति हो जाने के साथ भी है। अधिक से अधिक कितनी तीव्र गति का प्रत्यक्षीकरण होगा, इसकी भी एक सीमा है। जब गतिशीलता उस सीमा से बढ जाती है तो हमे उसका प्रत्यक्षीकरण नही होता। बिजली का पखा जब घूमना शुरू करता है तो उसकी गति का प्रत्यक्षीकरण होता है, लेकिन जब उसकी गति काफी तेज हो जाती है तो हमें गति का नही, बल्कि केवल एक धब्बे (Blot) का प्रत्यक्षीकरण होता है। कम से कम और अधिक से अधिक गति की सीमाएँ (Limits) क्या हों, इसे निश्चित् रूप से व्यक्त नही किया जा सकता। फिर भी, मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि जब कोई वस्तु हमारी आँखों से दस फोट की दूरी पर प्रति सेकण्ड $\frac{१}{१०}$ इञ्च की रफ्तार से गतिशील होती है तो हमे उसकी गति का प्रत्यक्षीकरण होता है। गति-प्रत्यक्षीकरण के लिये एक औसत रफ्तार है। कभी कभी दूसरे कारणों से इतनी रफ्तार में हमें गति-प्रत्यक्षीकरण नही भी होता है।

(२) अक्षिपट का उत्तेजित अश हम जानते है, अक्षिपट (Retina) में दण्ड (Rods) तथा शकुओं (Cones) का समान वितरण नही है। इसलिए अक्षिपट के सभी भागों मे एक तरह की स्पष्ट प्रतिमा नही हुआ करती। पीतबिन्दु (Fovea) पर पडी प्रतिमा सबसे अधिक स्पष्ट हुआ करती है। अत किसी वस्तु का गति प्रत्यक्षीकरण यहाँ से शीघ्र हो जाता है। यदि वस्तुत किसी वस्तु की गति आवश्यकता से कुछ धीमी

हो तब भी उसका गति प्रत्यक्षीकरण हमे हो जाता है। उतनी ही गति की उत्तेजना का चित्र यदि पीतबिन्दु पर न पड़ अक्षिपट के किसी दूसरे भाग पर पड़ता है तो उसका प्रत्यक्षीकरण नही होगा। इस तरह, अक्षिपट का कौन सा अंश उत्तेजित हुआ है, यह भी गति प्रत्यक्षीकरण को निधारित करता है।

(३) प्रकाश की तीव्रता (Intensity of illumination) यदि दो वस्तुओं की गति समान रहे, परन्तु उनमे एक अधिक प्रकाशित हो और दूसरा कम, तो अधिक प्रकाशित वस्तु की गति का प्रत्यक्षीकरण कम प्रकाशित वस्तु की गति की अपेक्षा शीघ्र होगा।

(४) वस्तु की दूरी और आकार गति के प्रत्यक्षीकरण पर दूरी का प्रभाव भी पडता है। जो वस्तु जितनी अधिक दूरी पर रहती है उसकी प्रतिमा अक्षिपट पर उतनी ही मद रूप मे पडती है। गतिशील चीजो की प्रतिमा अक्षिपट पर एक चाप (Arc) की तरह निश्चित इकाई मे घूमती है। किन्तु, चीज हमारी नजरो से जितनी दूर चली जाती है अक्षिपटीय प्रतिमाओं के घूमने का चाप उतना ही छोटा हो जाता है। इसी तरह, जो वस्तु जितनी ही छोटी रहती है उसकी गति प्रतिमा भी उतने ही छोटे आकार मे अक्षिपट पर होती है। अक्षिपटीय प्रतिमा और चाप का आकार छोटा होने से गति प्रत्यक्षीकरण अस्पष्ट और मन्द हो जाता है। उदाहरणार्थ, जब कोई मोटर ६० मील प्रतिघण्टा की रफ्तार मे हमसे कुछ गजो की दूरी पर गुजरती है तो उसकी गति बड़ी तेज मालूम होती है। लेकिन, उतनी ही रफ्तार मे जब वह मोटर हमसे एक मील की दूरी से गुजरती है तो उसकी गति धीमी मालूम पडती है। इस तरह, वस्तु के दूर और छोटे आकार के होने से उसकी गति मद मालूम पडता है। लेकिन, इससे यह न समझना चाहिए कि वस्तु की दूरी और उसकी प्रत्यक्ष गति (Perceived movement) मे आनुपातिक सबन्ध (Ratio) है। कुछ खास दूरी तक वस्तु को ले जाने से उसकी गति मे किसी कमी का प्रत्यक्षीकरण नही होता। पीछे हम आकार की नित्यता (Constancy of size) पर विचार कर चुके है। अत, कह सकते है कि आकारनित्यता की तरह कुछ अशों में गतिनित्यता (Movement constancy) भी होती है।

गति प्रत्यक्षीकरण कैसे होता है ?

हमे किसी गतिशील पदार्थ का प्रत्यक्षीकरण कैसे होता है, इस सम्बन्ध मे विद्वानों का विचार है कि कोई गतिशील पदार्थ अक्षिपट (Retina) के विभिन्न आसन्न (Adjacent) ग्राहकों को क्रमश उत्तेजित करता है। अक्षिपट के ग्राहक कोष (कुण्ड और शकु) बहुत ही सघन रूप मे अक्षिपट मे भरे है। फिर भी उनमे कुछ दूरी रहती है। कोई गतिशील पदार्थ आँख के सभी ग्राहक कोषो को एक साथ उत्तेजित नहीं करता, बल्कि उन्हे क्रमश उत्तेजित करता है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब ग्राहक कोष अलग अलग उत्तेजित होते है तो हमे अलग अलग प्रतिमाओं या चित्रों का प्रत्यक्षीकरण होना चाहिए था, परन्तु हमे गति का प्रत्यक्षीकरण क्यो होता है ? इसके उत्तर मे मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि ग्राहक कोशो (Receptor cell) के क्रमश उत्तेजित होने से मस्तिष्क मे एक समन्वय क्रिया के ही कारण हमे भिन्न भिन्न चित्रो का अलग अलग प्रत्यक्षीकरण न होकर चित्रो मे एक निरन्तर गति का प्रत्यक्षीकरण होता है। दूसरे शब्दों में,

मस्तिष्क के इस कार्य से ही हमे स्थिर चित्रो में भी गति का प्रत्यक्षीकरण होता है। इस कथन की पुष्टि कई प्रयोगों और तर्कों के आधार पर हुई है। स्थिर वस्तुओं मे गति के प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या इसके सहारे की ग₂ है।

गति की अनुप्रतिमा (After image of movement) जिस तरह किसी स्थिर उत्तेजना पर कुछ देर देखने के बाद अन्यत्र देखने पर अनुप्रतिमा (After image) का अनुभव होता है, ठीक उसी प्रकार गतिशील उत्तेजना पर भी कुछ देर ध्यान लगाने पर यह व्यापार देखने मे आता है। पानी की किसी तेज धारा पर आप लगभग एक मिनट तक अपना ध्यान लगावे। इसके बाद वहाँ से ध्यान हटाकर उसके किनारे को देखे, आपको ऐसा लगेगा कि किनारा धार की दूसरी (प्रतिकूल) दिशा मे चल रहा है। यही दशा किसी झरना पर ध्यान लगाने के बाद भी होगी। ये उदाहरण, निषेधात्मक गति-अनुप्रतिमा (Negative after image of the movement) के है। इसमे स्थिर वस्तु मे अनुप्रतिमा के कारण जो गति दीख पडती है वह वास्तविक गति के प्रतिकूल होती है।

गति की धनात्मक अनुप्रतिमा (Positive after image) भी होती है। एक ऐसी धीरे-धीरे घूमती हुइ तख्ती (Disc) पर, जिसपर एक सर्पिल रेखा (Spiral line) हो, १५-२० सेकण्ड तक ध्यान दें। सर्पिल रेखा के कारण घूमती तख्ती सिकुडती और फैलती मालूम पड़ेगी। १५-२० सेकण्ड तक देखते रहने के बाद आप यदि किसी के चेहरे पर गौर से देखे तो वहाँ भी आपको तख्ती की ही तरह सिकुडन और प्रसरण का व्यापार देखने को मिलेगा। यह सिकुडन और प्रसरण उसी दिशा मे होता मालूम होगा, जिस दिशा में तख्ती पर मालूम होता है। गति की इस अनुप्रतिमा को धनात्मक अनुप्रतिमा कहेगे।

वस्तु की वास्तविक गति और उसकी अनुप्रतिमा मे पूर्णत अनुरूपता (Correspondence) सभव है न हो, किंतु इतना तो अवश्य है कि वास्तविक गति के तीव्र होने पर अनुप्रतिमा मे भी तीव्र गति मालूम होती है। इसी तरह, वास्तविक गति जब मन्द रहती है ता अनुप्रतिमा की गति भी धीमी मालूम पडती है।

स्थिर उत्तेजनाओं में गति का प्रत्यक्षीकरण

(Perception of movement in stationary stimuli)

स्थिर उत्तेजनाओं मे गति का प्रत्यक्षीकरण या कहे विपर्यय होता है, इसे हम अपने नित्य अनुभव मे पाते है। बहुत बार यह प्रत्यक्षीकरण पृष्ठ भूमि या सदर्भ (Back ground or frame of reference) के कारण होता है। बादल आकाश मे दौडते रहते है। पर, जब उस समय हम चाँद को देखते है तो वह भी उतनी ही गति से विपरीत दिशा में भागते नजर आता है। चाँद मे उस गति का प्रत्यक्षीकरण हमे इसलिए होता है, चूँकि गतिशील बादल यहाँ पृष्ठभूमि का कार्य करते है। उसी तरह, आप जब किसी खडी रेलगाडी मे बठे हों और आपके बगल की दूसरी रेलगाडी चलने लगती है तो उसे देखने पर आपको अपनी ही रेलगाडी चलती मालूम पडती है। कभी-कभी बिना इस तरह की पृष्ठभूमि और तुलना के भी स्थिर वस्तुओं मे गति का प्रत्यक्षीकरण होता है। ऐसे गति

प्रत्यक्षीकरणों में फाई-व्यापार (Phi-phenomenon), डेल्टा गति (Delta movement) तथा गामा गति (Gama movement), आदि प्रमुख है जिनकी चर्चा हम यहाँ संक्षेप मे करेंगे।

फाई व्यापार (Phi phenomenon) जब कुछ क्रमिक स्थिर चित्र (Succession of still pictures) एक समुचित समय के अन्तर पर क्रमश उपस्थित किए जाते है तो हमें उन स्थिरचित्रों मे गति का प्रत्यक्षीकरण होता है। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण सिनेमा के नाचते गाते चित्रो का प्रत्यक्षीकरण है। चित्रपट पर हसते, बोलते, दौडते और चलते-फिरते व्यक्तियो का प्रत्यक्षीकरण आप को होता है। लेकिन, वस्तुत कोई वैसी गतिशील उत्तेजना आपके सामने नही रहती। किसी मुद्राभिव्यंजना की विभिन्न अवस्थाओं के स्थिर चित्रों को प्रति सेकण्ड १६ या २४ की रफ्तार म क्रमश हमारे सामने उपस्थित किया जाता है। इस रफ्तार मे उपस्थित होने के कारण ही हम स्थिर चित्रों मे गति की सवेदना हो जाती है। स्थिर उत्तेजना म गति प्रत्यक्षीकरण का ही प्रत्यक्ष गति Apparent movement) या फाई-व्यापार (Phi phenomenon) कहते है। यदि अधकार में दो तीन इच की दूरी पर दो प्रकाश रेखाओ का क्रमश बहुत तेजी से उपस्थित करे तो उनमे भी ऐसा गति प्रत्यक्षीकरण होगा। ऐसा मालूम होगा कि दो रेखा अलग अलग नही जलती, बल्कि एक ही रेखा दोनो स्थानो पर दौड रही है। सामान्यत देखा गया है कि जब दो स्थिर उत्तेजनाओं को औसत ०. समय के अन्तर पर उपस्थित किया जाता है तब हमें उनमें गति का प्रत्यक्षीकरण अनिवार्यत होता है लेकिन, जब इससे सेकण्ड के अन्तर पर उपस्थित किया जाता है तो हमे पूर्णत स्थिर उत्तेजनाओं का ही प्रत्यक्षीकरण होता है, उनमें कोई गति नही प्रतीत होती। इस तरह, फाई-व्यापार (Phi-Phenomenon) होने के लिए उत्तेजनाओ के बीच का समय कम और ठीक होना आवश्यक है। समय के अतिरिक्त उत्तेजना की दूरी (Distance) और उत्तेजना की तीव्रता (Intensity of Stimulus) पर भी फाई व्यापार का होना निर्भर करता है। यदि दोनों उत्तेजनाओं की दूरी एक दूसरे से बहुत अधिक हो और उनसे बहुत धीमा प्रकाश निकलता हो तो उन दोनो के जल्दी जल्दी उपस्थित होने पर भी हमे उनमें गति का बोध नहीं होगा। कोर्टि (Korte) ने इन तीनो निर्धारको के बीच सबन्ध बतलाया है और इसे वह तीन नियमो के सहारे अभिव्यक्त करता है। इन नियमों को कोर्टि नियम (Korte' laws) कहते है। यहाँ हम इन नियमों का उल्लेख मात्र करेंगे जो निम्नाङ्कित है।

पहला नियम उत्तेजनाओं की तीव्रता को अपरिवर्तनशील (Constant) रखने पर प्रत्यक्षगति (Apparent or optimal movement) के लिए अपेक्षित समय व्यवधान, उत्तेजनाओं की दूरी के अनुसार अनूप विचरण करता है। यानी, प्रत्यक्षगति के लिए, इसी अवस्था में, समय-व्यवधान और उत्तेजना की दूरी म समान अनुपात में परिवर्तन होते है।[1]

दूसरा नियम समय व्यवधान को अपरिवर्तनशील रखने पर प्रत्यक्षगति के लिए अपेक्षित उत्तेजनाओं के बीच की दूरी तीव्रता के अनुसार अनूप विचरण (Direct varia-

1 'If the intensity is held constant, the time interval for optimal movement varies directly with the distance between stimuli"

tion) करता है। यानी, इस अवस्था मे उत्तेजनाओ मे दूरी और तीव्रता मे समान अनुपात मे परिवर्तन होने से प्रत्यक्षगति का अनुभव होता है।[1]

तीसरा नियम उत्तेजनाओं के बीच की दूरी को अपरिवर्तनशील रखने पर, प्रत्यक्ष गति के लिए अपेक्षित तीव्रता, समय व्यवधान के अनुसार प्रतीपविचरण (Indirect Variation) करता है। यानी, ऐसी अवस्था मे उत्तेजना की तीव्रता का विचरण Variation) समय व्यवधान के व्युत्क्रम (Reciprocal) के अनुसार होता है।[2]

कोर्टि के उपर्युक्त नियम सभी अवस्थाओं मे सत्य नही है। फिर भी एक सीमा के अन्तर्गत ये नियम ठीक तरह से लागू होते है और बतलाते है कि किस प्रकार उत्तेजना की तीव्रता, दूरी और समय व्यवधान क सयोग से फाई व्यापार (Phi phenomenon) सभव है। ये तीनो फाई-व्यापार के वाह्यनिर्धारक है। इनके अतिरिक्त, कुछ आन्तरिक निर्धारक भी इस व्यापार को निर्धारित करते है। उदाहरणार्थ, अपनी मानसिक वृत्ति (Mental set), मनोवृत्ति (Attitude) ससूचनशीलता (Suggestibility), तथा अन्य मानसिक अवस्थाओं के कारण भी हम स्थिर उत्तेजनाओ मे गति का प्रत्यक्षीकरण कर लेते है। इसके लिए उत्तेजना दृष्टिसम्बन्धी ही हो, यह आवश्यक नही है। आवाज या स्पर्श के सहारे भी फाई-व्यापार देखा जाता है।

अब प्रश्न है, हमे ऐसी प्रत्यक्ष गति (Appearent Movement) का अनुभव कैसे होता है? इस सबन्ध मे मनोवैज्ञानिकों के उत्तर बहुत सतोषप्रद नही है। अधिकाश मनोवैज्ञानिक जेस्टाल्टवादियों (Gestaltists) की व्याख्या का समर्थन करते है जिसके अनुसार प्रत्यक्ष गति या फाई व्यापार का अनुभव हमे इसलिए होता है, चूँकि हम किसी भी उत्तेजना को सम्पूर्ण (whole) रूप मे देखना चाहते है। हम तेजी से उपस्थित चित्रों को एक सम्पूर्ण रूप मे देखना चाहते है और इसीके परिणाम स्वरूप हमारे ग्राहकमे विभिन्न स्थिर चित्रों से जो अलग अलग प्रतिक्रियाऐं होती है उनको हमारा मस्तिष्क एक समग्र रूप दे देता है। फलत, हम उन्हे 'एक' समझकर उनमे गति का प्रत्यक्षीकरण कर लेते है। लेकिन, मस्तिष्क किस तरह विभिन्न उत्तेजनाओं (Stimulations) को समग्र रूप देता है, यह अज्ञात है।

गामा-गति (Gamma-Movement)

गामा-गति भी एक तरह की प्रत्यक्ष गति (Apparent Movement) है। इसके लिए एक ही उत्तेजना की जरूरत होती है। किसी वस्तु का क्षेत्र अचानक यदि बहुत अधिक प्रकाशित कर दिया जाय तो कुछ क्षण के लिए वह वस्तु कुछ फैलती सी मालूम होगी। इसी तरह, यदि वस्तु के क्षेत्र का प्रकाश एकाएक बहुत कम कर दिया जाय तो वस्तु सिकुडती सी मालूम होगी। प्रकाश के अधिक और कम होने से वस्तु मे जो क्रमश फैलाव (Expansion) और सिकुडन (Contraction) की क्रिया (गति) होती है, उसे गामा गति कहते है।

1 "If the interval is held constant, the distance for optimal movement varies directly with the intensity

2 'If the distance between the stimuli is held constant, the intensity for optimal movement varies invertly with the time interval"

डेल्टा गति (Delta Movement)

मानले, दो प्रकाश की पतली रेखाओं में प्रत्यक्ष गति (Apparent Movement) का व्यापार हो रहा है। ऐसी स्थिति में यदि अ रेखा ब के बाद उपस्थित की जाती है तो गति ब से अ की दिशा में होगी। लेकिन, यदि दूसरी रेखा (रेखा ब) के प्रकाश की तीव्रता बहुत अधिक बढ़ा दी जाय तो प्रत्यक्ष गति की दिशा बदल जायगी, यानी, ऐसी स्थिति में गति अ से ब की दिशा में होती दीखती है। प्रकाश की तीव्रता या चमक के कारण इस उल्टी प्रत्यक्षगति को डेल्टा गति कहते हैं।

मुख्य रूप से प्रत्यक्ष गति या स्थिर उत्तेजनाओं में गति प्रत्यक्षीकरण के ये ही प्रकार (Kinds) हैं। इनके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिकों ने जितने प्रकारों की चर्चा की है उनकी व्याख्या अपेक्षित नहीं प्रतीत होती।

प्रत्यक्षीकरण की असामान्यताएँ

(Abnormalities of perception)

अबतक प्रत्यक्षीकरण के जितने पहलुओं की चर्चा की गई उनका सम्बन्ध सामान्य (Normal) व्यक्तियों से है। लेकिन, प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी कुछ ऐसे पहलू भी हैं जिनका सम्बन्ध असामान्य (Abnormal) व्यक्तियों से रहता है अथवा हम जिनका अनुभव अपनी सामान्य अवस्था में नहीं करते। ऐसे पहलुओं में प्रमुख हैं—(१) विभ्रम (Hallucination), (२) अप्रत्यक्षीकरण (Imperception) और (३) ज्ञान लक्षण बोध (Synasthesia)।

हम एक एक कर यहाँ इन पर विचार करेंगे।

(१) विभ्रम (Hallucination)

विभ्रम वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी उत्तेजना के न रहने पर भी सामान्यतः किसी उत्तेजना या परिस्थिति का ज्ञान होता है। व्यक्ति जब किसी के प्रेम में घायल हो जाता है तो एकान्त स्थान में भी उसे अपनी प्रेमिका ही दिखलाई देती है। लेखक के सम्पर्क में दो साल पहले एक ऐसा मानसिक रोगी आया जो चाँदनी रात में छत पर भाग कर एकटक चाँद को या आकाश को देखा करता। पूछने पर वह कहता, 'देखो वह चाँद पर बैठी है हवा में उतर रही है' और इस तरह वह चाँद और निस्सीम आकाश में अपनी प्रेयसी का रूप देखता। बिना किसी व्यक्ति के वहाँ प्रेमिका का देखना विभ्रम है। यह किसी असामान्य स्थिति या अवस्था का ही द्योतक है। सामान्य अवस्था में किसी उत्तेजना के रहने पर ही हम उसका ज्ञान पाते हैं। कभी कभी सामान्य व्यक्ति भी चिन्ता या प्रतीक्षा के कारण इस असामान्य प्रत्यक्षीकरण का शिकार हो जाता है। जब कोई बहुत बेचैनी से किसी की प्रतीक्षा करता रहता है तो बिना किसी आधार के ही कभी कभी बोल उठता है—'कौन', लेकिन जब वह बाहर मिलने जाता है तो वहाँ किसी को नहीं पाता। वस्तुतः वह उसका विभ्रम रहता है।

विभ्रम और विपर्यय (Hallucination & Illusion)

विभ्रम के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए इसे विपर्यय से भिन्न करना आवश्यक है।

हमे दोनो मानसिक प्रक्रियाओ से गलत प्रत्यक्षीकरण होता है। फिर भी, इन दोनों में अन्तर है। इन दोनो मे पहला अन्तर तो यह है कि जब हमे किसी उत्तेजना का विपर्यय होता है तो उस समय वह उत्तेजना उपस्थित रहता है। लेकिन, विभ्रम मे बाह्य उत्तेजना कभी नही रहती। उत्तेजना के अभाव मे ही हमे किसी उत्तेजना का बोध होता है। विभ्रम की अवस्था मे व्यक्त अपनी मानसिक प्रतिमा को ही बाह्य उत्तेजना समझ लेता है। रस्सी को देखकर उसे साँप समझ लेना विपर्यय के कारण होता है लेकिन बिना किसी चीज के आन्तरिक भय के कारण चीख पडना कि 'वहाँ साप है' विभ्रम के कारण होता है।

दोनो मे दूसरा अन्तर यह है कि विपर्यय का शिकार हम अकसर हुआ करते है लेकिन हम बहुत कम अवसरो पर विभ्रम का अनुभव करते है। वस्तुत, विभ्रम अधिकाश मानसिक रोगी और शराबियों को हुआ करता है। मानसिक रोगी बिना किसी चोट या दर्द के ही चिल्लाता है। इसी तरह बिना किसी की उपस्थिति के भी शराबी यह समझ लेता है कि वहाँ अमुक व्यक्ति खडा है और यदि वह उसका विरोधी है तो सैकडों गालियाँ सुना डालता है।

तीसरा अन्तर यह है कि कुछ विपर्यय एसे होते है जिनका अनुभव सभी व्यक्ति करते है। लेकिन, एक ही परिस्थिति मे विभिन्न व्यक्तियों मे विभिन्न तरह के विभ्रम होते है। पीछे म्युलर लायर विपर्यय या पडी रेखा-विपर्य के सबन्ध मे जान चुके है जिनका शिकार सभी होते है। लेकिन, विभ्रम के सिलसिले मे एसा कोई उदाहरण नही दिया जा सकता।

विभ्रम के प्रकार (Kinds) विभ्रम विभिन्न ज्ञानेन्द्रियो से सबन्धित हुआ करता है। ज्ञानेन्द्रिय के आधार पर कह सकते है कि हमे कुछ दृष्टिसबन्धी विभ्रम (Visual hallucination) होते है, कुछ श्रवण सबन्धी तथा कुछ स्वाद और गध सबन्धी। अ ययनों से पता चलता है कि इनमे श्रवण सबन्धी विभ्रम का शिकार सबसे अधिक व्यक्ति होते है। दृष्टि विभ्रम का स्थान इस क्रम मे दूसरा है तथा स्वाद और गध सबन्धी विभ्रम सबस कम हाते है। मानसिक रागियो के अध्ययन से मालूम होता है कि गध के सबन्ध मे दुर्गन्ध का ही विभ्रम अधिक होता है। त्वक्-विभ्रम (Cutaneous hallucination) के सिलसिले मे रोगी अधिकाश ऐसा अनुभव करता है कि कोई उसे सूई या काटा चुभा रहा है, अथवा कोई कीडा उसके शरीर पर रेंग रहा है। स्नायविक विभ्रम के शिकार रोगी अक्सर कहा करते है कि उनका हाथ या पैर कोई अपनी ओर खीच रहा है अथवा हाथ पेर चलाने से कोई रोक रहा है। उन्हे आकाश मे उड़ने या अग विशेष के पत्थर होने का भी विभ्रम हो सकता है।

विभ्रम के कारण हम यह व्यक्त कर चुके है कि विभ्रम अधिकांश असामान्य व्यक्तियो को होता है। वैसी दशा मे उनके विभ्रम के भी कुछ विशेष अर्थ और कारण होते है। उन विशेष कारणों के अतिरिक्त कुछ और भी कारण विभ्रम के है जिनसे किसी सामान्य व्यक्ति को भी विभ्रम हो सकता है। यहाँ हम कुछ एसे ही प्रमुख कारणो का उल्लेख करेंगे।

(१) थकावट जब कोई व्यक्ति अनभ्यस्त कार्य को करने मे पूर्णत थक जाता है तो उस समय उसमे कार्य से आवद्ध दृष्टि या स्नायविक विभ्रम देखने मे आता है। जिस व्यक्ति

ने कभी कुदाल नही चलाई हो यदि किसी कारणवश उसे कुदाल चलाना पड जाए तो विभ्रम के कारण वह विभ्रम का शिकार हो कुदाल चलने का अनुभव कर सकता है या अन्य क्रिया व्यापार देख सकता है।

(२) मादक द्रव्य का सेवन कभी कभी किसी प्रकार के मादक द्रव्य का सेवन करने से भी कुछ व्यक्तियों में विभ्रम देखा जाता है। किसी अवस्था में व्यक्ति को अधिकाधिक किसी भयावह परिस्थिति को देखने या सुनने का ही विभ्रम होता है। कोकीन के सेवन से त्वक् विभ्रम का आविर्भाव होता है।

(३) सवेगात्मक अनुभव तीव्र सवेग (Emotion) भी विभ्रम का कारण होता है, जैसा कि पहले व्यक्त किया जा चुका है। उदाहरणार्थ अधिक स्नेह के कारण ही स्त्रियों मे मृत पति या पुत्र को देखने या उनकी ध्वनियों को सुनने का विभ्रम पाया जाता है।

(४) शारीरिक रोग शारीरिक स्वास्थ्य खराब रहने से भी विभ्रम होता है। हण्ट (Hunt) ने एक एसे बालक का उदाहरण दिया है जो शारीरिक रोगों के कारण विभ्रम का शिकार था। जब समुचित उपचार से उसका स्वास्थ्य ठीक हो गया तो विभ्रम भी समाप्त हो गया। सम्मोहनावस्था (Hypnotic condition) मे भी विभ्रम की अनुभूति होती है। सम्मोहनकर्ता (Hypnotist) सम्मोहित व्यक्ति में किसी प्रकार का विभ्रम उत्पन्न कर सकता है।

इस सबध मे दैहिक वैज्ञानिको (Physiologists) का कहना है कि आन्तरिक कान मे किसी प्रकार का रोग या घाव हो जाने के कारण भी कभी कभी ध्वनि-विभ्रम होता है और व्यक्ति किसी ध्वनि के अभाव मे भी ध्वनि का अनुभव करता है। इसी तरह मस्तिष्क के पृष्ठखण्ड (Occipital lobe) की व्याधियो के कारण दृष्टि विभ्रम और मेरुदण्ड अथवा सुषुम्ना (Spinal cord) के ज्ञानवाही पथ मे व्याधि के कारण त्वक विभ्रम होते है। इस तरह, विभ्रम का कोई एक ही कारण नहीं होता, बल्कि यह उपर्युक्त कारणो मे से किसी कारण से भी उत्पन्न हो सकता है।

(२) अप्रत्यक्षीकरण (Imperception)

जब कोई व्यक्ति किसी उत्तेजना के अर्थ को समझने मे पूर्णत अथवा आंशिक रूप मे असमर्थ होता है तो उसकी इस अवस्था को अप्रत्यक्षीकरण कहते है।

अप्रत्यक्षीकरण की अवस्था मे न तो हमें किसी उत्तेजना का सही ज्ञान मिलता है और न गलत प्रत्यक्षीकरण होता है, बल्कि ज्ञान या प्रत्यक्षीकरण का ही अभाव हो जाता है। अत कह सकते है कि उपस्थित उत्तेजना के अर्थ को न समझना ही अप्रत्यक्षीकरण (Imperception) है। यह असामान्यता भी दो प्रकार की होती है—सामान्य (General) तथा विशिष्ट (Specific)। सामान्य अप्रत्यक्षीकरण मे मनुष्य को किसी भी ज्ञानेन्द्रिय से आबद्ध उत्तेजना का ज्ञान नही होता है। किन्तु, विशिष्ट अप्रत्यक्षीकरण में यह दोष किसी इन्द्रियविशेष के ही प्रत्यक्षीकरण मे पाया जाता है। प्राय विशिष्ट अप्रत्यक्षीकरण का ही बाहुल्य रहता है। इसलिये यहाँ हम प्रमुख विशिष्ट अप्रत्यक्षीकरणों का उल्लेख सक्षेप में करगे।

• जब कोई व्यक्ति दृष्टिगत पदार्थों के अर्थ को समझने में असमर्थ होता है तो इसे मानसिक अधापन (Mental blindness) या दृष्टि अप्रत्यक्षीकरण कहते हैं। इससे पीड़ित व्यक्ति को जब कोई पदार्थ प्रदर्शित किया जाता है तो वह उसके नाम या व्यवहार को व्यक्त करने में पूर्णत असमर्थ होता है। कभी कभी यह दोष सिर्फ लिखे हुए वाक्यों को पढ़ने में विशेष देखने में आता है। जब कभी कोई मनुष्य लिखावट को पढ़ने और समझने में असमर्थ होता है तो उसके इस दोष को शब्दअधापन (Word blindness) कहते हैं। जिस प्रकार सामान्य व्यक्ति विदेशी भाषाओं को पढने और उनके अर्थ को जानने में असमर्थ होता है उसी प्रकार शब्दान्ध व्यक्ति भी अपनी सीखी हुयी भाषा को पढने में और समझने में असमर्थ होता है।

विद्वानो का ऐसा दृष्टिकोण है कि अप्रत्यक्षीकरण अन्तरावयव क्षति (Organic injury) अथवा दृष्टि-ज्ञान क्षेत्र (पृष्ठ खड) के समीपवर्ती स्नायु मण्डल (Nervous system) के क्रियात्मक विच्छेद (Functional dissociation) के कारण होता है। स्नायुमण्डल का यह अश दृष्टिज्ञान क्षेत्र और अन्य नाडी मण्डल के भागों को सयोजित करता है। इसलिए इसके अभाव में किसी प्रकार का ज्ञानात्मक स्नायु प्रवाह (Sensory nerve impulse) मस्तिष्क के इस अचल (पृष्ठ खड) तक नही पहुँचता जिसके फल-स्वरूप अप्रत्यक्षीकरण का आविर्भाव होता है। यो तो यह दोष इसी कारण से उत्पन्न होता है, किन्तु उन्माद (Hysteria) की अवस्था में उपर्युक्त क्रियात्मक विच्छेद होने पर यह विशेष रूप से दीख पडता है।

ध्वनि-अप्रत्यक्षीकरण (Auditory imperception) की हालत में मनुष्य ध्वनि की सवेदना मात्र पाता है, उसके अर्थ को नही समझता। अगर घण्टा कही बज रहा है तो इतना ही जानने में समर्थ होता है कि आवाज हो रही है, लेकिन वह यह नही समझता कि वह आवाज घण्टे की है। जब मनुष्य वार्त्तालाप को समझने में असमर्थ होता है तो उसे शब्दबधिरता (Word-deafness) कहते हैं।

त्वक्-स्नायविक—अधापन में व्यक्ति किसी उत्तेजना के स्पर्श या भार का अनुभव करता है, लेकिन उसे उसका पूरा ज्ञान नही होता। जिस प्रकार उपर्युक्त दोषों में अन्तरावयव नाडी भाग के क्रियात्मक विच्छेद का हाथ रहता है उसी प्रकार इस दोष में भी होता है। इसी प्रकार गध या स्वाद अधता भी देखी जाती है और इन असामान्यताओं के कारण उपर्युक्त प्रकार के ही होते हैं।

(३) ज्ञानलक्षण बोध (Synæsthesia)

स्वरूप ज्ञानलक्षणबोध भी प्रत्यक्षीकरण की एक असामान्यता (Abnormalities) है। फलत, यह व्यापार भी सभी व्यक्तियों में नही देखा जाता है। ज्ञानलक्षण बोध या सिनेस्थसिया की अवस्था में एक ग्राहक के सक्रिय होने पर दूसरा ग्राहक भी स्वत क्रियाशील हो जाता है। परिणाम स्वरूप इस असामान्यता के शिकार व्यक्ति एक ज्ञानेन्द्रिय से सवेदना प्राप्त करते हैं, परन्तु उसकी व्याख्या (अर्थ) दूसरे ज्ञानेन्द्रिय से प्राप्त अनुभव के आधार पर करते हैं। उदाहरणार्थ, किसी आवाज को सुनते ही कुछ रोगियों को किसी चेहरे या स्वाद का प्रत्यक्षीकरण होने लगता है। यहाँ सवेदना कान से होती है, लेकिन उसका

अर्थ वह आँख या जीभ से प्राप्त अनुभव के आधार पर लगाता है। कभी कभी विभिन्न आवाजों के सुनने से कुछ रोगियो को विभिन्न रगो का ज्ञान होता है। यो तो ...र ज्ञानेन्द्रिय से आबद्ध सिनेस्थेसिया हो सकती है, लेकिन कान से सम्बन्धित ... अधिकता रहती है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने इसे आनुवशिक माना है। ... म अधिक पाया जाता है।

कारण सिनेस्थेसिया की व्याख्या के सिलसिले म मनोवैज्ञानिको की विभिन्न धारणाएँ है। साहचर्यवादी (Associationist) ... के आधार पर ... गत अनुभव या बचपन मे कुछ विचित्र ढग से सीखने के कारण होता है। लेकिन कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिको ने सिनेस्थेसिया के ऐसे अनेक उदाहरण दिए है जिन्हे इस तरह ... अनुभव अर्जित करने का कोई अवसर नही मिला था। इन्होने इसकी व्याख्या आनुवशिकता (Heredity) के आधार पर की है। लेकिन, एक ही ध्वनि एक ही वश के विभिन्न व्यक्तियों मे विभिन्न रगो का बोध क्यो कराती है, इसकी सतोषप्रद व्याख्या आनुवशिकता के आधार पर नही हो पाती। अत, वर्तमान अवस्था म हम प्रत्यक्षीकरण की इस असामान्यता की किसी व्याख्या को सही और पूर्ण नही कह सकते।

प्रत्यक्षीकरण की अध्ययन-विधियाँ

(Methods of studying perception)

प्रत्यक्षीकरण सबन्धी प्रयोगों का उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ इसके प्रयोग की कुछ विधियों का परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है। इन विधियो का उपयोग दूसरी मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करने मे भी किया जाता है, लेकिन इससे प्रयोज्य (subject) के प्रत्यक्षीकरण पर काफी प्रकाश पडता है।

(१) **निराकरण विधि** (Cancellation Method) —जब इस विधि के द्वारा हम प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन करते है तब प्रयोज्य को अक्षर निराकरण पत्र (जिसका चित्र 'कार्य और थकावट' शीर्षक अध्याय मे आगे दिया जा चुका है) देकर उस कुछ अक्षरों (क, भ, या र, ट, ज) को यथाशीघ्र काटने को कहा जाता है। कुछ निश्चित काल तक ऐसा कराने से उसकी इस योग्यता का (Efficiency) का पता चल जाता है। निपुणता या योग्यता का निश्चय, कटे हुए अक्षरो की सख्या, छोड़े हुए अक्षरो की सख्या और अशुद्ध काटे गए अक्षरो की सख्या के माध्यम से किया जाता है। जो व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण मे जितना ही निपुण होता है वह उतने ही कम समय म कम अशुद्धि करके अक्षरो को काट लेता है।

(२) **कार्ड छाटने की विधि** (Card sorting method) —हम कार्ड छाटने की विधि का उल्लेख निषधात्मक शिक्षण स्थानान्तरण के सम्बन्ध में आगे करेंगे, इसलिए यहाँ कुछ अधिक न कहकर इतना ही कहना पर्याप्त समझते है कि जब प्रयोज्य ताश की विभिन्न पत्तियों को उनके अनुरूप खानो मे रखता है तो इससे उसके भिन्नता-प्रत्यक्षीकरण की योग्यता का काफी पता चलता है। जो इसमे जितना ही निपुण होता है वह उतना ही कम समय मे ताश की सभी पत्तियो को ठीक ठीक खाने मे छाँट कर रख देता है।

(३) प्रत्यक्षीकरण विस्तार विधि (Method of span of apprehension)—इसके सम्बन्ध मे यहा कुछ लिखना आवश्यक नही है, क्योंकि ध्यान विस्तार के सबन्ध मे इसपर ठीक तरह से विचार किया जायगा। जिन उपकरणों तथा चित्रों से ध्यान विस्तार मापा जाता है उन्ही का व्यवहार इस विधि मे किया जाता है। वस्तुत ध्यान-विस्तार एव प्रत्यक्षीकरण-विस्तार मे किसी प्रकार का मौलिक भेद नहीं है। इसलिए ध्यान-विस्तार अध्ययन ही प्रत्यक्षीकरण विस्तार अध्ययन भी है।

(४) मीनेसोटा स्थान-सम्बन्ध परीक्षण-विधि (Minnesota spatial relation test) मीनेसोटा स्थान-सम्बन्ध परीक्षण का एकमात्र लक्ष्य स्थान प्रत्यक्षीकरण (Space perception) करना है। यह परीक्षण नया नही, अपितु लिंक (Link) के ही आकार-बोर्ड परीक्षणों (Form board tests) का सशोधित एव परिवर्द्धित रूप है। इन बोर्डों मे विभिन्न प्रकार और आकार के कई स्थान गहराई लिए हुए बने है। इन गहराइयों के अनुरूप ही विभिन्न लकडी के टुकडे रहते हैं। कुछ तो रूप रग मे इतना अधिक मिलते है कि उनकी भिन्नता को जानना मुश्किल होता है। किन्तु, जिनके आकार प्रकारों की भिन्नता अधिक है उन्हे सरलतया जाना जा सकता है। प्रयोज्य को इन्ही टुकडों को उन बोर्डों मे बने हुए गड्ढों मे रखना पडता है। प्रत्येक बोर्ड के आकार प्रकार की गहराइयों मे काठ-खण्डो को रखने के लिए तीन तीन प्रयास दिया जा सकता है और समय तथा अशुद्धि के माध्यम से प्राप्तांक निकला जाता है।

(५) वेलिन की खूँटी-बोर्ड-विधि (Walling peg board method) इस खूँटी-बोर्ड परीक्षण मे चार बोर्ड (Boards) होते है। प्रत्येक बोर्ड में छ छेद होते है जिनमे खूँटिया को व्यवस्थित करना रहता है। पहले बोर्ड मे, जिसे हम बोर्ड अ कह सकते है, गोल खूँटियों को व्यवस्थित करना होता है, बोर्ड ब में वर्गाकार, बोर्ड स मे तीन गोल और तीन वर्गाकार तथा बोर्ड द मे दो गोल, दो वर्गाकार और दो त्रिकोणाकार खूँटियो को व्यवस्थित करना पड़ता है। यों तो सभी बोर्डो मे खूँटी व्यवस्थित करने मे क्रियात्मक सहनियम (Motor coordination) की आवश्यकता पडती है। किन्तु, बोर्ड स तथा द मे उस सहनियम के अतिरिक्त साधारण रूप से विभेदीकरण (Differentiation) की भी योग्यता अपेक्षित है। बाल्डविन (Waldwin) तथा स्टेचर ने इन सभी वर्गों का व्यवहार क्रियात्मक नियत्रण (Motor control) एव आकार प्रत्यक्षीकरण (Form perception) के अध्ययन के लिए किया है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, वेलिन (Wollin) ने इन बोर्डो का निर्माण पाठशालीय आयु के पूर्व बालकों के प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन करने के लिए किया।

(६) विटमर रभ परीक्षण-विधि (Witmer cylinder testing method) रभ परीक्षण का प्रमाणीकरण पाशल (Paschal) नामक विद्वान ने १२२१ बालक तथा पुरुषों और १००२१ बालिकाओं तथा स्त्रियों पर किया है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह परीक्षण निर्माण भेद (Performance difference) के गुणात्मक पहलू (Qualitative aspect) का अध्ययन करने के लिए बहुत ही लाभ प्रद है।

इस परीक्षण के द्वारा रूप तथा स्थान प्रत्यक्षीकरण (Pe   i of form & space) का अध्ययन किया जाता है। एक वृत्ताकार लकड़ी के टुकड़े के बाहरी धरातल पर विभिन्न गहराई और व्यास के अठारह स्थान बने रहते है। उन्ही स्थानो मे प्रयोज्य को विभिन्न रभों (Cylinders) को व्वस्थित करने का निदेश दिया जाता है। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि रभ भी विभिन्न लम्बाई और व्यास के होते है। इसलिए यह परीक्षण विधि कुछ कठिन है। इस परीक्षण के विषय म विट्मर (Witmer) का कहना है कि इससे ध्यान और विश्लेषनात्मक योग्यता पर काफी प्रकाश पड़ता है। प्राय उन्हीं परीक्षणों का व्यवहार प्रत्यक्षीकरण के अध्ययन मे किया जाता है।

पाचवाँ अध्याय

ध्यान (Attention)

ध्यान किसे कहते हैं ?

अपने दैनिक जीवन मे हम अक्सर ध्यानपद का व्यवहार किया करते है। शिक्षक विद्यार्थियो से ध्यान से पढने को कहता है, मैनेजर कर्मचारियों को ध्यान से काम करने का आदेश देता है, योगी मन को ध्यानावस्थित करने की सीख देता है और नेता बार बार उनके भाषण मे 'ध्यान दे' का व्यवहार किया करता है। यदि ध्यान के इन विभिन्न व्यवहारों पर गौर करे तो इस निष्कर्ष पर पहुॅचने मे कठिनाई न होगी कि सभी मे ध्यान को तत्परता की एक अवस्था (State of readiness) समझा गया है। वस्तुत ध्यान का यह अर्थ मनोविज्ञान मे भी उपेक्षित नही है। हमलोग मानसिक वृत्ति (Mental set) का व्यवहार पीछे इसी अर्थ मे कर चुके है और मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि ध्यान भी एक प्रकार की मानसिक वृत्ति ही है। किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने या उसके प्रति किसी तरह की प्रतिक्रिया करने के लिये ध्यान हमे तैयार करता है। हम अपने अनुभव से जानते है कि बिना ध्यान दिये न तो हमें कुछ जानकारी होती है और न हम किसी तरह की क्रिया करते है। परन्तु, मात्र इतना कहने से ध्यान का कोई स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। मनोवैज्ञानिकों ने इसकी कई परिभाषाएँ दी है। कुछ ने ध्यान को एक शक्ति माना है और इसी तरह कुछ दूसरे लोगों के अनुसार ध्यान, चतना को केन्द्रीभूत करने की योग्यता (Capacity of centralization) है। हम इन पर अधिक विचार न कर इतना ही कहेगे कि यह कोई शक्ति या योग्यता नही, बल्कि एक मानसिक प्रक्रिया (Mental process) है और यदि इसकी एक समुचित परिभाषा देना चाहे तो कह सकते है कि ध्यान वह चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम किसी उत्तेजना या उत्तेनजा समूह को चेतना केन्द्र मे लाते है।[1] यदि इस परिभाषा का विश्लेषण करे तो इसमे तीन बाते पाएँगे।

(१) ध्यान एक मानसिक प्रक्रिया है,

(२) ध्यान एक चयनात्मक प्रक्रिया (Selective process) है, और

(३) ध्यान के द्वारा उत्तेजना चेतना-केन्द्र (Focus of consciousness) में आती है।

हम यहाँ सक्षेप में इन तीनों की व्याख्या करेगे। पहले लोग ध्यान को एक शक्ति (Faculty) या योग्यता (Capacity) मानते थे। लेकिन, अब सभी मनोवैज्ञानिक इसे एक मानसिक प्रक्रिया (Mental process) मानते है और उसीसे कुछ मनोवैज्ञानिक ध्यान न कहकर 'ध्यान देना' (Attending) कहते है। जैसे, शिक्षण, स्मरण, कल्पना तथा

[1] Attention is a selective mental Process through which we bring a stimulus or a group of stimuli in the focus of our consciousness

चिंतन, आदि मानसिक रूप मे होनेवाली प्रक्रियाएँ है उसी तरह ध्यान भी एक प्रक्रिया है जो मानसिक रूप से होती है।

ध्यान देने में एक चुनने की प्रक्रिया होती है। ध्यान को चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया कहते है। हर समय हमारे सामने तरह तरह की उत्तेजनाएँ रहती है। लेकिन, एक बार में हम उन सब पर ध्यान नहीं देते, बल्कि हम उपस्थित उत्तेजनाओं में किसी एक का या कुछ के समूह को चुनते है और उस पर ध्यान देते हैं। किसी एक उत्तेजना को चुनने मे हम अन्य उत्तेजनाओं की अवहेलना कर देते है। मानलें, आप सिनेमा देख रहे है। वहां हॉल में बैठे लोग है, बच, कुर्सियां, पर्दा और रंग की दीवारें है, पंखा चल रहा है और कभी कभी दो एक आदमी आते जाते भी है। लेकिन चित्रपट पर ध्यान देते समय आप इन सब की अवहेलना कर देते है। उत्तेजना का चुनाव अक्सर व्यक्ति की इच्छा और रुचि के अनुसार होता है। दूसरे शब्दों में जो उत्तेजना हमारे अन्दर की तात्कालिक आवश्यकता (Need) को पूरा करती है हम उसी पर अपना ध्यान देते है। सिनेमा हॉल मे मनोरंजन की आवश्यकता रहती है। चूंकि यह आवश्यकता चित्रपट से पूरा होती है, इसलिये हमारा ध्यान उसी पर जाता है। इसी से ध्यान को प्रेरणात्मक प्रक्रिया (Motivational process) भी कहते है। फिर भी, ध्यान सदैव रुचि और इच्छा ही से किसी वस्तु पर दें, यह आवश्यक नहीं है। हम अनिच्छा रूप से भी किसी उत्तेजना को चुन कर उस पर अपना ध्यान देते है।

ध्यान का मुख्य स्वरूप यह है कि इसके द्वारा चुनी हुई उत्तेजना चेतना का विषय बन जाती है। किसी उत्तेजना के चेतना केन्द्र मे आने का अर्थ यह है कि उत्तेजना अधिक स्पष्ट हो जाती है और हम उसके प्रति सजग हो जाते है। सजग हो जाने के बाद ही हम किसी उत्तेजना का प्रत्यक्षीकरण (Perception) करते है। इसलिये ध्यान को, जैसा प्रारम्भ में कहा गया है, प्रत्यक्षीकरण के पहले होने वाली मानसिक प्रक्रिया या प्रतिक्रिया की तत्परता (Readiness to react) कहते है। बिना ध्यान दिये प्रत्यक्षीकरण अथवा किसी तरह की प्रतिक्रिया करना सम्भव नहीं है। कुर्सी का प्रत्यक्षीकरण करें, इसके लिये जरूरी है कि पहले कुर्सी पर ध्यान दें। इस तरह स्पष्ट है कि ध्यान देने की प्रक्रिया किस प्रकार होती है।

ध्यान हमेशा विचलित हुआ करता है, इसी से इसका स्वरूप गत्यात्मक (Dynamic) माना गया है। किसी भी वस्तु पर हम अपना ध्यान अधिक समय तक नहीं रख पाते। यह हमेशा एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी चीज पर परिवर्तित होता रहता है। ध्यान के विचलन का कारण यह है कि हम एक साथ बहुत चीजों पर ध्यान नहीं दे पाते। एक साथ व्यक्ति जितनी चीजों को अपने चेतना केन्द्र में लाता है उसे ध्यान विस्तार (Span of attention) कहते है। यह ध्यान विस्तार विभिन्न व्यक्तियों के लिए अलग-अलग होता है जिसे टैचिस्टस्कोप (Tachistoscope) के सहारे मापा जाता है। इस पर अधिक प्रकाश आगे दिया जायगा। यहाँ हमारा मतलब इतने ही से है कि उपस्थित उत्तेजनाओं में बहुत कम उत्तेजनाएँ ही ध्यान विस्तार में आती है, फलतः ध्यान विचलित हुआ करता है।

ध्यान देते समय कई तरह के बाह्य और आन्तरिक शारीरिक परिवर्त्तन भी होते है। जैसे, किसी चीज पर ध्यान देते समय हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ विशेष सतर्क हो जाती है, शारीरिक

मुद्रा (Bodily Posture) एक खास तरह की हो जाती है और कुछ अगों का झुकाव भी उस ओर हो जाता है। इसी तरह, कुछ आन्तरिक परिवर्तन भी होते है जिन्हे यन्त्रों की सहायता से देखा जा सकता है। इन परिवर्तनों से अभियोजन मे सहायता मिलती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यदि ध्यान की विशेषताओं का उल्लेख करना चाहे तो कह सकते है, कि ध्यान मे चयनात्मक प्रक्रिया (Selective process) होती है उससे उत्तेजना विशेष स्पष्ट हो जाती है, और यह प्रत्यक्षीकरण और प्रतिक्रिया करने के पहले की मानसिक प्रक्रिया है। इसके अलावे यह विचलित (shift) होते रहता है। हमारा ध्यान विस्तार (Span of attention) भी सीमित होता है, और जिस समय हम किसी उत्तेजना पर ध्यान देते है उस समय हममे कुछ अन्य शारीरिक क्रियाएँ भी होती है।

ध्यान मे शारीरिक अभियोजन

(Bodily adjustment in attention)

ध्यान से हमे वातावरण मे अभियोजन (Adjustment) करने मे सहायता मिलती है। अन्य उत्तेजनाओं की अवहेलना कर जब हम पढने पर ध्यान देते है तो विषय का ज्ञान हो जाता है। सडक पर मोटर की होर्न पर ध्यान देते है तो उसके आने का ज्ञान हो जाता है और उसके नीचे दबने से बच जाते है। इस अभियोजन मे वाह्य और आन्तरिक दोनों तरह की शारीरिक क्रियाएँ होती है। इन क्रियाओं के सहारे ही हम किसी उत्तेजना पर ध्यान देकर अपने को अभियोजित करते है। यहाँ हम कुछ प्रमुख शारीरिक क्रियाओं या अभियोजनों पर सक्षेप मे विचार करगे।

(१) ग्राहक अभियोजन (Receptor adjustment) किसी उत्तेजना पर ध्यान देने मे उस उत्तेजना से सम्बन्धित ग्राहकेन्द्रिय क्रियाशील हो जाती है। जब कोई व्यक्ति किसी दृश्यपदार्थ (Visual object पर अपना ध्यान लगाता है तो उस समय उसकी आँखे उसी दिशा मे हो जाती है। वह एक टक उसी पदार्थ की ओर देखता रहता है। उसके नेत्र पूर्णत खुले रहते है और पलक बहुत कम गिरती है। यदि कोई आवाज भी उससे निकल रही है तो हमारे कान उसे ग्रहण करने को तैयार हो जाते है।

(२) मुद्रा सबन्धी अभियोजन (Postural adjustment) किसी उत्तेजना पर ध्यान देने मे केवल ग्राहकों का ही अभियोजन नही होता, बल्कि पूरा शरीर अभियोजित हो जाता है। ध्यान की अवस्था मे शारीरिक मुद्रा एक खाश तरह की हो जाती है जिसे आप किसी भी अवसर पर देख सकते है। आश्चर्यजनक वस्तु पर ध्यान देते हुए किसी व्यक्ति को देखे तो यह अधिक स्पष्ट हो जायगा। उसका मुँह कुछ खुला और शरीर उसी की दिशा मे झुका हुआ रहगा। आप यह भी पायेगे कि उसकी भौहे तनी है, ललाट प सीकन है और सभवत मुट्ठी भी बँधी है। स्वर तथा स्पर्श सम्बन्धी उत्तेजनाओं पर ध्यान देने से भी मुद्रासबंधी अभियोजन एक विशिष्ट प्रकार का होता है।

(३) अन्तरायविक अभियोजन (Visceral adjustment) ध्यान मे कई तरह के आन्तरिक परिवर्तन भी होते है। जिनसे अभियोजन मे सहायता मिलती है

जब कोई व्यक्ति किसी उत्तेजना पर ठीक से ध्यान देता है तो उसकी सांस गति कुछ धीमी हो जाती है। हृदय और नाडी की गति तथा रक्त सचार (Circulation of blood) में भी परिवर्त्तन होते है। प्रयोगो से पता चला है कि त्वचा के किसी विन्दु पर ध्यान देने से उस विन्दु का तापमान (Temperature) कुछ बढ़ जाता है। इसी तरह की अन्य आन्तरिक क्रियाएँ भी होती है जिन्हे विभिन्न यत्रो के द्वारा जाना जाता है। सवेग के अध्याय मे इन पर विशेष प्रकाश डाला जायगा।

(४) मासपेशी सम्वन्धी अभियोजन (Muscular adjustment) ध्यान देते समय शरीर की मांसपेशियों मे यह तनाव उत्पन्न हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियो की मासपेशियों मे यह तनाव अधिक होता है। दृष्टि उत्तेजना पर ध्यान देने मे व्यक्ति की पाक्षिक मासपेशियो (Ciliary muscles) तथा उपतारा की आगे पीछे मासपेशियो मे तनाव उत्पन्न हो जाता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति तत्परता की अवस्था (State of readiness) मे आ जाता है। मासपेशियो की क्रियाशीलता पर तरह तरह की शारीरिकगतियाँ निर्भर करती है। कभी कभी ध्यान देते समय हाथ पैर का सचालन भी दिखलाई देता है। प्रो० सोमर (Sommer) और जस्ट्रो (Jastrow) के प्रयोगो से भी सिद्ध है कि ध्यान की क्रिया मे हाथ का सचालन होता है।

इस तरह हम देखते है कि ध्यान देते समय पूरे शरीर मे ग्याम तरह की क्रियाए होती है। इन क्रियाओं और परिवर्त्तनों के कारण ही कोई उत्तेजना चतना केन्द्र म आती और स्पष्ट होती है।

ध्यान के प्रकार

(Kinds of attention)

मनो वैज्ञानिको ने कई प्रकार के ध्यान की चचा की है। हम यहाँ उनम तीन प्रकार की व्याख्या करे गे। वे है—

(१) एच्छिक ध्यान (Voluntary attention),

(२) अनैच्छिक ध्यान (Involuntary attention) और

(३) स्वाभाविक ध्यान (Habitual attention)।

(१) ऐच्छिक ध्यान (Voluntary attention) किसी उत्तेजना पर अपनी इच्छा से ध्यान देने को, ऐच्छिक ध्यान कहते है। जैसे, जब किसी वस्तु को समझने के लिये विद्यार्थी विषय पर ध्यान देता हे तो उसे ऐच्छिक ध्यान कहेगे। इस ध्यान में तीन बाते पायी जाती है—(१) इच्छा और रुचि (२) ध्येय (aim) और (३) सामाजिक अभियोजन (Social adjustment) का भाव।

ऐच्छिक ध्यान मे बराबर कोई न कोई ध्येय रहता है। कोई विद्यार्थी सारी चीजों को छोड़कर परीक्षा के दिनो मे अपना ध्यान पढाई पर इसलिये लगाता है, क्योंकि उसके सामने परीक्षा मे पास करने का ध्येय रहता है। अब प्रश्न है, कोई किसी ध्येय से ध्यान

क्यो देता है इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक व्यक्ति मे समाजिकअभियोजन की इच्छा रहती है। इस इच्छा की पूर्त्ति से ध्येय (Aim) की प्राप्ति होती है। इसलिये व्यक्ति किसी ध्येय प्राप्त करने के लिये उत्तेजनाविशेष पर ध्यान देता है। ऊपर के उदाहरण मे, विद्यार्थी पढाई मे ध्यान दे कर न केवल परीक्षा मे पास होना चाहता है, बल्कि परीक्षा मे पास होकर समाजिक प्रतिष्ठा पाने की इच्छा रखता है। वह समाज मे भले रूप से अभियोजन करना चाहता है।

इस तरह हम देखते है कि ऐच्छिकध्यान जिस उत्तेजना पर ध्यान दिया जाता है उसके स्वरूप और गुणों से निर्धारित नही होता, बल्कि यह ध्यान देने वाली इच्छा और मानसिक अवस्था के द्वारा निर्धारित होता है। एक ही सडक से गुजरने वाले दस यात्रियों का ध्यान दस चीजों पर जाता है। किसी का ध्यान कपड़े की दुकान, साइनबोर्ड, हलवाई की दुकान या यात्रियों के पोशाक पर तो किसी का ध्यान राहगीरों की चाल ढाल पर जाता है। निष्कर्ष यही कि ऐच्छिक ध्यान उत्तेजना पर नही, व्यक्ति की प्रेरणा (Motivation) पर निर्भर करता है। चूकि यह ध्यान अन्त प्रेरित (Internally motivated) रहता है, इस लिये इसमे व्यक्ति अनेक बाधक उत्तेजनाओं की अवहेलना करके किसी एक विषय या वस्तु को अपने ध्यान का विषय बनाता है। कभी कभी ध्यान देते समय दो इच्छाओ मे सघर्ष (Conflict) हो जाता है। इसका निराकरण फिर ध्येय (Aim) के अनुसार हो जाता है। प्रयोगा से पता चलता है कि ऐच्छिक ध्यान में अधिक।जीवन शक्ति (ऊर्जा) (Energy) खर्च होती है।

(२) अनैच्छिक ध्यान (Involuntary attention) कभी कभी उत्तेजना की प्रबलता या किसी अन्य कारण से बरबस हमे उत्तेजना विशेष पर ध्यान देना पडता है। ऐसे ध्यान को अनैच्छिक ध्यान कहते है। ऐसे ध्यान मे व्यक्ति की इच्छा और व्यवसाय (Volition) का न केवल अभाव रहता है, बल्कि इनके विरुद्ध भी ध्यान देना होता है। जब कोई विद्यार्थी गणित का कोई जटिल प्रश्न बना रहा हो और बगल मे तीव्र स्वर मे कोई फिल्मी सगीत बज उठता है। यद्यपि विद्यार्थी प्रश्न को हल करना चाहता है, तथापि ऐसी स्थिति मे (अपनी इच्छा के विरुद्ध) उसका ध्यान बरबस सगीत पर चला जाता है। इस तरह अनैच्छिक ध्यान से ध्येय की प्राप्ति मे बाधा पडती है। उसी तरह, जब दो मित्र किसी गभीर समस्या पर विचार कर रहे हों और उस समय कोई आगतुक पहुँच कर कोई खास बात पूछने लगे तो उसकी बातों पर अनैच्छिक रूप से वे (मित्र) ध्यान देगे। सक्षेप में हम कह सकते है कि अनैच्छिक ध्यान मे उत्तेजना अपनी खास विशेषताओं के कारण चेतना-केन्द्र (Focus of consciousness) मे आ जाती है। इन विशेषताओं को ध्यान के बाह्य निर्धारक (Objective determinants) कहते है, जिनकी चचा आगे की जायगी।

(३) स्वाभाविक ध्यान (Habitual or Non-voluntary attention) स्वाभाविक ध्यान न तो उत्तेजना की प्रबलता पर निर्भर करता है और न व्यक्ति के ध्येय पर ही, प्रत्युत उसकी मनोवृत्ति (Attitude) पर निर्भर करता है। हम ऊपर देख चुके है कि ऐच्छिक ध्यान मे किसी ध्येय अथवा लक्ष्य (Aim) की पूर्त्ति होती है जो समाजिक अभियोजन (Social adjustment) मे सहायक होता है। दूसरी ओर अनैच्छिक

ध्यान (Involuntary attention) में उत्तेजना (Stimulus) उतनी शक्तिशाली होती है कि वह बरबस व्यक्ति की चेतना-केन्द्र में प्रवेश कर उसके ध्यान का विषय बन जाती है। यह तीसरे प्रकार का ध्यान (स्वाभाविक) उपर्युक्त दोनों प्रकारों के बीच की अवस्था का है। इसमें उत्तेजना के गुणों का भी महत्व होता है और व्यक्ति की आन्तरिक अवस्थाओं (रुचि, प्रवृत्ति आदि) का भी। किसी तरह की आदत, अभ्यास या पेशा के कारण हर व्यक्ति का एक खास तरह का स्वभाव बन जाता है। इस स्वभाव के कारण वह कुछ खास उत्तेजनाओं को अपने चेतना केन्द्र में ले आया करता है। जैसे किसी प्रोफेसर का ध्यान किताब पर, डाक्टर का मरीज और दवा पर, माली का लता पर और दर्जी का कपड़े की सिलाई पर स्वाभाविक रूप से चला जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान जिस पर जाता है, वस्तुतः वह उस पर ध्यान देने के लिए हमेशा तैयार रहता है। यह तत्परता खास भाव और प्रेरणाओं (Motives) पर आधारित रहती है।

ध्यान के निर्धारक

(Determinants or conditions of attention)

हम यह देख चुके हैं कि ध्यान एक चयनात्मक (selective) मानसिक प्रक्रिया है। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि हम किस आधार पर ध्यान देने के लिए उत्तेजना का चुनाव करते हैं। क्यों एक खास उत्तेजना पर हमारा ध्यान जाता है और दूसरी पर नहीं ? विचार करने पर ज्ञात होगा कि इसके दो कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि यद्यपि वातावरण में बहुत सी उत्तेजनाएँ विद्यमान रहती हैं तथापि सबकी शक्ति समान नहीं होती। कुछ किसी कारणवश अधिक शक्तिशाली होती हैं और दूसरी शक्तिहीन होती हैं। जो उत्तेजना शक्तिशाली होती है वह सबको पराजित करके चेतना के केन्द्र में प्रवेश कर हमारे ध्यान का विषय बन जाती है। आशय यह है कि उत्तेजना में कुछ ऐसे गुण वर्तमान होते हैं जिनके कारण हम उसी उत्तेजना को अपने ध्यान का विषय बना लेते हैं। ऐसे गुणों को जिनका सम्बन्ध उत्तेजना से रहता है ध्यान का बाह्य निर्धारक (Objective determinants) कहते हैं।

किसी उत्तेजना पर ध्यान देने का दूसरा कारण आन्तरिक (Internal) होता है। उत्तेजना में कोई विशेष आकर्षण न रहने पर भी अपनी मानसिक स्थिति (Mental condition), संस्कृति (Culture) और आनुवंशिकता (Heredity), आदि के कारण हम उस पर ध्यान देते हैं। इस प्रकार के कारणों को ध्यान के आत्मगत निर्धारक (Subjective determinants) कहते हैं। यहाँ संक्षेप में हम इन दोनों प्रकार के निर्धारकों पर क्रमशः विचार करेंगे।

(अ) वाह्य निर्धारक

(Objective determinants or conditions)

उत्तेजना के बहुत अधिक गुणों की चर्चा की गई है जिनसे ध्यान प्रभावित होता है। हम यहां उनमें से कुछ प्रमुख का उल्लेख करेंगे।

• १. उत्तेजना की तीव्रता (Intensity of the stimulus) कमजोर और निर्बल उत्तेजनाओं की अपेक्षा प्रबल या तीव्र (Intense) उत्तेजना पर हमारा ध्यान पहले और आसानी से चला जाता है। सड़क पर शोर मे भी मोटर के हौर्न पर हम तुरत ध्यान दे देते है, क्योंकि हौर्न की आवाज अन्य आवाजो (शोर) की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है। इसी तरह कई जलते हुए बिजली के बल्वों में हमारा ध्यान सबसे पहले उस बल्व पर जाता है जिससे सबसे अधिक प्रकाश निकलता है। सक्षेप मे, तीव्र उत्तेजना मे कुछ ऐसी शक्ति होती है कि वह बरवस चेतना-केन्द्र मे चली आती है। उत्तेजना की तीव्रता और ध्यान मे आनुपातिक सम्बन्ध (Proportional relation) होता है। कहने का अर्थ यह है कि उत्तेजना जितनी ही तीव्र होती है हमारा ध्यान उस पर उतना ही अधिक जाता है। कभी कभी यह आनुपातिक सम्बन्ध देखने मे नही आता और हम तीव्र उत्तेजना पर भी ध्यान नहीं दे पाते। ऐसा इसलिये होता है, क्योंकि ध्यान कई बातों पर निर्भर करता है। अतः, यह कहना अधिक युक्तिसगत होगा कि यदि और अग समान हों तो उत्तेजना जितनी तीव्र होगी उसी अश मे वह ध्यान का विषय बनने मे भी समर्थ होगी।

उत्तेजना के प्रकार अथवा स्वरूप (Nature of the stimulus) ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर हम आसानी से उत्तेजनाओ को, दृष्टि उत्तेजना, श्रवण उत्तेजना, स्वाद उत्तेजना आदि, कई प्रकारो मे बाँट सकते है। गौर करे तो मालूम होगा कि अन्य उत्तेजनाओ की अपेक्षा हम रूप-रग तथा आवाज पर अधिक ध्यान देते है। दूसरे शब्दों में दृष्टि और श्रवण उत्तेजनाएँ हमारे ध्यानकेन्द्र मे आसानी से आ जाती है। दृष्टि उत्तेजनाओं मे भी हम रगविहीन की अपेक्षा रगीन उत्तेजनाओं पर विशेष ध्यान देते है। ऐसा देखा जाता है कि जो विज्ञापन (Advertisement) रगीन होते है वे हमारे ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते है। लेकिन, जो विज्ञापन रगीन नही होते, वे हमारे ध्यान को उस रूप मे अपनी ओर खीचने मे समर्थ नही होते। इसी प्रकार, श्रवण उत्तेजना पर ध्यान देने मे स्वर के लय और मात्रा का भी असर पडता है। गाने और वाद्य सगीत पर हमारा ध्यान शिघ्रता से चला जाता है, लेकिन तरह तरह की बातो पर हम ध्यान नही देते। स्मरणीय है कि हम प्राय उसी प्रकार अथवा स्वरूप की उत्तेजनाओं को चुनकर अपने ध्यान का विषय बनाते है जिनका महत्त्व हमारे जीवन के लिये अधिक रहता है। छोटे छोटे जीवों के ध्यान देने मे यह खासकर देखने मे आता है।

(३) उत्तेजना का आकार (Size of the stimulus) दृष्टि उत्तेजनाओं में उत्तेजना का आकार भी हमारे ध्यान को निधारित करती है। जो चीज ज्यादा बडी रहती है उस पर हमारा ध्यान पहले जाता है। बडी उत्तेजनाओ से ग्राहक (Receptors) अधिक उत्तेजित होते है। इसके फलस्वरूप उनका प्रभाव उसी मात्रा में मन पर भी पडता है। इससे या तो जीव कुछ बेचैनी अनुभव करने लगता है या किसी प्रकार की क्षति या हानि की आशका करता है। ऐसे अनुभव या आशका के कारण जीव शीघ्र ही उसे अपने ध्यान का विषय बना लेता है।

विज्ञापन के कार्य मे आकार (Size) का विशेष उपयोग किया जाता है। प्रयोग करने पर ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक वस्तु मे ध्यान आकर्षित करने की क्षमता अपने आकार के

वर्गमूल (Squaroot) के बराबर होती है। प्रयोगो से यह भी सि॰ है कि एक पूरे पृष्ठ का विज्ञापन चौथाई पृष्ठ के विज्ञापन से दुगुनी मात्रा म यान आकृष्ट करने में समर्थ होता है। जैसे-जैसे वस्तु के आकार के वर्गमूल मे वृद्धि होती है वैसे वैसे उसमे यान आकृष्ट करने की क्षमता भी बढती जाती है। मनोवैज्ञानिको ने इस वर्गमूल नियम (Law of Square root) के नाम से अभिव्यक्त किया है। यह नियम ध्वनि के साथ भी लागू होता है।

(४) उत्तेजना की स्थिति (Location or position of the stimulus) दृष्टि उत्तेजनाओं पर ध्यान देने मे उत्तेजना की स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। प्राय ऐसा देखने में आता है कि पत्रिकाओं के विज्ञापनो म वही विज्ञापन हमारे यान केन्द्र म आता है जो पत्रिका के अधोपरि भाग (Upper half) म रहता है। उसमे भी दाहिने भाग की अपेक्षा बायाँ भाग ध्यान आकृष्ट करने मे विशेष रूप म समर्थ पाया है। इसी तरह, अन्य पृष्ठों के विज्ञापन की अपेक्षा पत्रिका के प्रथम पृष्ठ का विज्ञापन ध्यानाकर्षित करने मे विशेष रूप से समर्थ रहता है। इसी तरह, मच पर बैठा हुआ व्यक्ति अपनी स्थिति के कारण लोगों के ध्यान में शीघ्रता से आ जाता है। इस प्रकार, उत्तेजना अपनी स्थिति के कारण भी ध्यान का विषय बन जाती है।

(५) उत्तेजना की विविक्तता (Isolation of the stimulus) जो उत्तेजना अकेले (Isolated) रहती है वह हमारे ध्यान केन्द्र मे सरलतया चली आती है, क्योंकि उसका मिलन (Fusion) अन्य उत्तेजनाओं के साथ नही हो पाता। यदि किसी स्थान पर बहुत लोग खड़े हो, तो उनमे किसी एक पर ध्यान देना सम्भव नहीं रहता। लेकिन, यदि कोई व्यक्ति समूह से दूर एकान्त मे खड़ा हो तो उस पर हर आदमी की नजर चली जाती है, क्योंकि वह किसी दूसरे व्यक्ति से मिल नही पाता। पृष्ठभूमि उसे स्पष्ट बना देती है। अकेला व्यक्ति जिस गुण के कारण ध्यान आकर्षित करता है उसे विविक्तता (एकान्तता) का गुण कहते है। विज्ञापनों पर प्रयोग करने पर पता चलता है कि केवल विविक्तता (Isolation) के कारण कोई विज्ञापन ३०% अधिक ध्यान आकर्षित करता है।

(६) उत्तेजना का सत्ताकाल और पुनरावृत्ति (Duration & repetition of the stimulus) वह उत्तेजना हमारे ध्यान मे सरलता से चली आती है जो अधिक देर तक हमारे ज्ञानेन्द्रिय के समक्ष रहती है। कोई उत्तेजना क्षण मात्र के लिए उपस्थित होने के कारण ही कभी कभी हमारे ध्यान का विषय नही बन पाती। इसी प्रकार उत्तेजना की पुनरावृत्ति (Repetition) भी ध्यान आकर्षण का कारण होती है। गायक और व्याख्याता जनता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये एक ही बात बारम्बार दुहराते हैं। लेकिन, किसी उत्तेजना के सत्ताकाल और पुनरावृत्ति अधिक होने पर भी हमारा ध्यान तभी उसपर जाता है जब उत्तेजना रुचिकर होती है। जिस बात मे लोगों की रुचि न हो उसे दुहराने पर भी दर्शक उस पर ध्यान नहीं देते।

(७) उत्तेजना का परिवर्त्तन (Change of the stimulus) जब एक ही उत्तेजना हमारे सामने काफी समय तक रहती है तो हम उसके प्रति अभियोजित हो जाते है और ध्यान नहीं देते। उदाहरणार्थ, जब कोई व्याख्याता किसी बात को एक ही तरह की आवाज मे लोगों से कहता है तो जनता उसकी बातो पर कुछ ही समय के बाद ध्यान

देखा छोड देती है। लेकिन, जब किसी के भाषण मे स्वर भाव के अनुसार ऊँचा या नीचा होता रहता है तो उसकी हर बात पर श्रोता ध्यान देते है। इसी तरह, जब किसी परिस्थिति मे एकाएक (Sudden) परिवर्त्तन हो जाता है तो उसकी ओर हमारा ध्यान स्वाभाविक रूप से चला जाता है। गर्मी के दिनो मे जब हम कमरे मे बैठे रहते है और चलता हुआ पखा एक व-एक रुक जाता है तो पखे पर हमारा ध्यान स्वत चला जाता है। इसी तरह जब कोई अचानक रो पडता है या चिल्ला चिल्ला कर रोता हुआ व्यक्ति एकाएक चुप हो जाता है तो उसकी ओर लोगो का ध्यान स्वत चला जाता है। इस तरह, उत्तेजना की परिवर्त्तन-शीलता भी ध्यान को निर्धारित करती है।

(८) उत्तेजना मे गति (Movement) —यद्यपि गति भी एक प्रकार का परिवर्त्तन (Change) ही है, क्योंकि गति के कारण किसी उत्तेजना मे स्थान परिवर्त्तन होता है, तथापि इसको एक स्वतन्त्र ध्यान निर्धारक माना जाता है। गतिशील उत्तेजना का प्रभाव मन पर विशेष रूप से पडता है, क्योंकि किसी उत्तेजना की गति मे भय का भी कुछ अश होता है। हम लोगों का ऐसा अनुभव है कि जो पदार्थ स्थिर रहता है वह हमलोगो के ध्यान को आकृष्ट नही करता, परन्तु गतिशील पदार्थ की ओर हमलोगो का ध्यान शीघ्र चला जाता है। इसकी सत्यता को प्रमाणित करने के लिए एक कुत्ते पर प्रयोग किया गया और देखा गया कि जो हड्डी अपनी स्थिरता (Stability) के कारण कुत्ते को अपनी ओर आकृष्ट नही कर सकी, वही जब एक तागे द्वारा खीची जाने के कारण गतिशील हो गई तो उधर कुत्ते का ध्यान तुरत चला गया। दुकानदार अपनी दुकान का विज्ञापन करने के लिये गतिशील विद्युत प्रकाशों (moving electric lights) का व्यवहार करता है जिससे ग्राहकों का ध्यान उसकी दुकान की ओर खिच जाता है। आपने हाथ की सफाई दिखानेवाले मदारी को देखा होगा। वह अपना जादू दिखाने मे ध्यान के इस निर्धारक की काफी सहायता लेता है। वह एक हाथ को घुमा घुमा कर कुछ आकर्षक बात करता है जिसके फलस्वरूप दर्शकों का ध्यान उस हाथ पर लगा रहता है और तब तक वह दूसरे हाथ से कुछ करामात कर के दर्शक के सामने उपस्थित कर देता है। लोग इसे समझ नही पाते और अपने कौतूहलवश उसे जादू मान लेते है। गतिशील उत्तेजना की ओर हमारा ध्यान इसलिये चला जाता है कि अक्षिपट (Retina) के बाहरी सतह (External cover) मे गतिशील पदार्थों के प्रति प्रतिक्रिया करने की विशेष क्षमता होती है।

उत्तेजना का विरोध (Contrast of the stimulus) जब कोई उत्तेजना वातावरण के ठीक उल्टी होती है तो वह लोगों का ध्यान आसानी से आकर्षित कर लेती है। घोर अधकार मे टिम-टिमाता हुआ दीपक भी हमारे ध्यान को आकृष्ट कर लेता है, लेकिन उससे अधिक प्रकाश वाला दीपक भी दिन मे हमारे ध्यान को खीचने मे समर्थ नही हो पाता। पुरुषों के समाज मे किसी महिला की उपस्थिति सब का ध्यान आकर्षित कर लेती है। रगो के साथ भी ऐसी ही बात देखने मे आती है। उजली पृष्ठभूमि पर काला या लाल पृष्ठभूमि पर हरा रग तुरत ध्यान का विषय बन जाता है।

इसके अतिरिक्त ध्यान के कुछ और भी बाह्य निर्धारक है, लेकिन उनके वर्णन की यहाँ

कोई आवश्यकता नही। यहाँ हमे यह नही भूलना चाहिए कि उन्हे ध्यान निर्धारक या कभी कभी ध्यान नियम (Law of attention) भी कहते हैं।

(ब) आन्तरिक ध्यान निर्धारक

(Subjective determinants of attention)

यों तो ऐसे आन्तरिक अथवा आत्मगत अगो की संख्या, जिनसे ध्यान निर्धारित होता है, बहुत है, लेकिन यहाँ हम प्रमुख अगो पर ही विचार करेंगे।

(१) मानसिकवृत्ति (Mental set) हम सभी पदार्थों पर अपना ध्यान नही देते, क्योंकि सभो को ध्यान का विषय बनाने के लिए हमारी मानसिक वृत्ति अनुकूल नहीं रहती। मानसिकवृत्ति का अर्थ मन के झुकाव से है। एक समय में हमारा मानसिक झुकाव किसी एक दिशा की ओर रहता है। यह झुकाव जिस ओर रहता है उसी के अनुरूप हमारे मनमें भाव और विचार आते हैं। हम उन्ही चीजो पर ध्यान देते हैं जो हमारे मानसिक झुकाव या भाव विचार के अनुकूल रहते हैं। रोगी की दवा खरीदने के लिए जो व्यक्ति बाजार जाता है उसकी नजर दवा की दुकान पर तुरत चली जाती है, वह अन्य चोजो की अवहेलना कर देता है, क्योंकि उसके विचार मे दवा सम्बन्धी ही बात रहती है। मानसिक वृत्ति के कारण किस वस्तु पर हम कैसे ध्यान देते हैं, इस सिलसिले मे एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग उल्लेखनीय है।

एक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला मे एक बडा उजला कार्ड तैयार किया गया जिस पर काले रग से तेरह ज्यामितिक चित्र (Geometric figures) बनाये गये थे। ये चित्र विभिन्न रगों मे चित्रित थे। इन चित्रो के अतिरिक्त उस कार्ड पर काले रग मे तेरह अक्षर और तेरह अक भी लिखे थे। इस कार्ड को एक विद्यार्थी समूह के समक्ष उपस्थित करते हुए यह कहा गया कि वे (विद्यार्थी) पाँच सेकण्ड तक ध्यानपूर्वक उस कार्ड को देखेंगे और उसके बाद देखे हुए रगो को व्यक्त करेंगे। प्रयोग परिणाम से पता चला कि ७ प्रतिशत विद्यार्थी किसी भी अक को नही देख सके थे और ६२ प्रतिशत विद्यार्थियो ने किसी भी अक्षर को नहो देखा था और जिन्होने अक्षरो को देखा भी था उनके नाम व्यक्त करने मे असमर्थ थे।

यद्यपि कार्ड मे ज्यामितिक चित्रो की सख्या अक्षरो और अकों के बराबर ही थी और अको का आकार अक्षरो से बडा और प्रबल था तथापि प्रयोज्य उन तीनो पर समान रूप से ध्यान नही दे सके। इसका कारण यह था कि निर्देश (Instruction) के अनुसार प्रयोज्यो की मानसिक वृत्ति (Mental set) या झुकाव रग पर ध्यान देने की ओर ही था। फलत वे अन्य चीजों को देखने मे असमर्थ रहे। इस तरह, हमारी मानसिकवृत्ति जैसी रहती है हम वैसे ही पदार्थो को अपने ध्यान का विषय बनाते हैं।

ध्यान देने की मानसिक वृत्ति का निर्माण कई कारणो से होता है। उन सबको ध्यान का आन्तरिक निर्धारक कहा जाता है। हम यहाँ कुछ प्रमुख निर्धारकों की चर्चा करेंगे।

(१) भय (Fear) जब व्यक्ति को किसी चीज से भय बना रहता है तो वह बराबर उस चीज से बचने की कोशिश करता है और फलत उसे अपने ध्यान का विषय बना लेता है। जैसे यदि किसी को यह भय हो कि उसके घर चोर आएगा तो चूहा की आवाज भी उसका ध्यान आकर्षित कर लेती है और वह चौंक पड़ता है। इसी प्रकार जब कोई मनुष्य शब्द मात्र से डरता है तो किसी प्रकार के क्षीण स्वर पर भी उसका ध्यान चला जाता है।

(२) मौलिक उदीरणाएँ (Basic drives) भूख, प्यास और यौन प्रवृत्ति को, मौलिक या दैहिक उदीरणाएँ (Physiological drives) कहते है। जीवन के अस्तित्व के लिए इनकी तृप्ति आवश्यक मानी गयी है। जब इनमे से किसी की आवश्यकता मालूम होती है तो हम उसकी तृप्ति के लिए एक बेचैनी का अनुभव करने लगते है। ऐसी हालत मे भूखे का ध्यान भोजन पर, प्यासे का पानी पर और कामुक का ध्यान विपरीत यौन (Opposite sex) व्यक्ति पर स्वाभाविक रूप से तुरत चला जाता है। हम ऐसा अनुभव अक्सर करते है कि भूखा रहने पर रास्ते के किनारे भोजन की जितनी भी छोटी बडी दुकाने रहती है सब पर हमारा ध्यान चला जाता है, लेकिन भर पेट खाए रहने पर उन सभी दुकानों पर हमारी नजर नही जाती। यही दशा हम प्यास और यौन जैसी उदीरणाओं के साथ भी पाते है।

(३) जिज्ञासा (Curiosity) मनुष्य स्वभाव से जिज्ञासु होता है और उसमे कुछ जानने की इच्छा हमेशा बनी रहती है। अपनी इस प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति की मानसिक वृत्ति (Mental set) एक विशेष प्रकार की हो जाती है और उसी विषय पर वह अपना ध्यान देता है जिसको जानने के लिये उसे उत्सुकता रहती है। बहुत बार हमारा ध्यान चलते हुए रहट और हल पर इसलिए चला जाता है चूँकि हमारे मन मे एक उत्सुकता रहती है और हम यह जानना चाहते है कि वे कैसे चलते है अथवा रहट से पानी कैसे निकलता है और हल से खेत कैसे जोता जाता है?

(४) सामाजिक प्रेरणा और कर्तव्य (Social motives & duty) मनुष्य स्वत अन्य मनुष्यो के प्रति आकृष्ट रहता है, क्योंकि वह एक सामाजिक प्राणी है। इसलिये उसका ध्यान बराबर ऐसी चीजो और बातों पर जाया करता है जो मनुष्य से सम्बन्धित रहती है। प्रयोग करने पर भी यह देखा गया है कि मानव स्वभाव के अनुरूप विषयों मे हमारे ध्यान को आकृष्ट करने की शक्ति अधिक होती है। एक बार एक पत्रिका मे समान लम्बाई चौडाई के दो विज्ञापन किए गये। दोनों मे अंतर इतना ही था कि एक विज्ञापन मे मनुष्य का चित्र था और दूसरे मे नही था। प्रयोग परिणाम से ज्ञात हुआ कि जिस विज्ञापन मे मनुष्य का चित्र था पाठकों का ध्यान उधर ही पहले गया और उन लोगों ने उसे दूसरे विज्ञापन से अधिक देर तक देखा। इस तरह हम देखते है कि हमारे अन्दर एक प्रेरणा कार्य करती है कि हम मनुष्य है। हमारे अन्दर सामाजिक प्रतिष्ठा, इज्जत और मान्यता प्राप्त करने की इच्छा होती है। इसी कारण हमारा ध्यान न केवल मनुष्य पर, बल्कि मनुष्य से सम्बन्धित सारी बातों पर जाता है जिनके सहारे हम समाज मे नाम और यश पा सकते है। इसे ही सामाजिक प्रेरणा (Social motive) कहते है।

इसी प्रकार कर्त्तव्य (Duty) भी ध्यान का एक प्रमुख निर्धारक है। समाज कर्त्तव्य और धर्म पालन के पीछे वही सामाजिक ख्याति और यश का भाव छिपा रहता है, फलतः हमारा ध्यान उन विषयों और चीजों पर आसानी से चला जाता है जिनका सम्बन्ध हमारे कर्त्तव्य से होता है।

(५) अभिरुचि (Interest) अभिरुचि या जिस प्रकार की हो वह हमारे मन मे एक मानसिक झुकाव या प्रवृत्ति (Set) उत्पन्न कर देती है और हम उसी प्रकार के अनुरूप विषयों पर अपना ध्यान लगाते है। भूख प्यास, यौन आदि मौलिक प्रेरणाओं (Basic drives) तथा मूल प्रवृत्तियो (Instincts) के कारण हमारी अभिरुचि किसी खास वस्तु के प्रति होती है हम इसकी चर्चा पीछे कर चुके है। यहाँ हमारा तात्पर्य उन अभिरुचियों से है जो अनुभव और शिक्षा के द्वारा अर्जित (acquired) की जाती है। मनोवैज्ञानिक का मनोविज्ञान मे, इन्जीनियर का सडक, पुल निर्माण, वनस्पति शास्त्री (Botanist) का वनस्पतियो मे और डाक्टर का रोगियो मे अभिरुचि शिक्षा के कारण होती है। प्रत्येक का ध्यान अपने अभिरुचि के विषय या वस्तु पर शीघ्र ही चला जाता है, अन्य लोगो का ध्यान उस पर नही जाता। किसी नई वनस्पति का पता होते ही वनस्पति शास्त्री का ध्यान उस पर चला जाता है, लेकिन डाक्टर, इन्जीनियर आदि का ध्यान उस पर नही जाता। इस तरह की अभिरुचि का निर्माण शिक्षा के कारण होता है। उसी तरह इक्केवाले का चलनेवाले मुसाफिर (सवारी) पर और दूकानदार का अपने ग्राहक पर (अनुभव के कारण) शीघ्र ही ध्यान चला जाता है। इस तरह, अभिरुचि ध्यान का एक प्रमुख निर्धारक है। स्टाउट (Stout) ने तो अभिरुचि का अव्यक्त ध्यान (Latent attention) कहा है, क्योकि अभिरुचि की ही अभिव्यक्ति ध्यान मे होती है।

(६) अर्थ (Meaning) हम अपने अनुभव से जानते है कि हमारा ध्यान अधिकांश वैसी चीजों पर जाता है जिसका कुछ अर्थ मालूम होता है। जो चीज हमारे लिये निरर्थक रहती है, उन पर हमारा ध्यान नही जाता। जब कोई वक्ता ऐसी बात करने लगता है जिसका अर्थ स्पष्ट नही होता तो श्रोता का ध्यान उसकी बातों से हट जाता है। इसी तरह कितने ही विद्यार्थियों का ध्यान अंग्रेजी पर इसलिये जाता है क्योंकि उन्हें परीक्षा मे उत्तीर्ण होना है। यदि परीक्षा बन्धन हटादिया जाय तो वे कभी भी इस विषय पर शायद ही ध्यान दे। इसका मात्र कारण यह है कि वे अंग्रेजी समझ नहीं पाते। जिस विषय को समझते है उस पर उनका ध्यान स्वतः चला जाता है।

(७) ध्येय (Aim) ध्यान को निर्धारित करने मे लक्ष्य का प्रधान हाथ रहता है। जो विषय या वस्तु हमारे लक्ष्य के अनुकूल रहता है वह हमारे ध्यान को शीघ्रता से आकर्षित करता है। जैसे परीक्षा पास करने के लिए विद्यार्थी का ध्यान पुस्तकों पर और शीघ्रता मे कही पहुँचने के लिये मुसाफिर का ध्यान किसी तेज सवारी पर स्वतः चला जाता है।

(८) आदत (Habit) आदत के फलस्वरूप भी हम किसी चीज पर ध्यान देते या नहीं देते है। जिन लोगो को किसी खास समय मे घडी में कुंजी देने की आदत हो गई है उनका ध्यान स्वतः उस समय घडी पर चला जाता है। इसी तरह, आदत के कारण किसी उत्तेजना पर ध्यान नही भी जाता है। जैसे, जो आदमी रेलवे लाइन के नजदीक

रहता है उसे रात में भी रेलगाडी के आने जाने से कोई बाधा नही होती क्योंकि नित्य रेलगाडियो के आते जाते रहने से उसे गाडी के शोर मे भी काम करने की आदत हो जाती है, फलत वह उस आवाज (शोर) पर ध्यान नही देता।

ध्यान-भंग

(Distraction of attention)

जब हम किसी उत्तेजना (Stimulus) पर ध्यान लगाते है और उस समय कोई दूसरी उत्तेजना उसमे बाधक होती है तो हमारा ध्यान बहक कर कही और चला जाता है। उसे ध्यान भग कहते है। और, ध्यान भग करने वाली उत्तेजना कोध्यान-बाधक (Distractor) करते है। मान लीजिये, आप इस समय पुस्तक पढ रहे है, इसी समय सडक पर कोई सुरीली तान मे गा उठता है और आपका ध्यान पुस्तक पढने से हटकर गाने पर चला जाता है। यहाँ पढने से ध्यान का हट जाना ध्यान भग हुआ और गाने की आवाज, ध्यान बाधक।

(८) ध्यान भग का प्रभाव साधारणत लोग यह समझते है कि ध्यान भंग (Distraction) सदा कार्य क्षमता को कम कर देता है और इसलिये कार्योत्पादन की मात्रा (quantity) और प्रकार (quality) दोनों मे कमी आ जाती है। लेकिन, ऐसा समझना गलत है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगो से यह सिद्ध हो चुका है कि ध्यान भग से कार्योत्पादन मे कमी आना आवश्यक नही है। जब कार्य रुचिकर रहता है तो ध्यान-भग के कारण व्यक्ति अधिक शक्ति लगाकर कार्य करने लगता है। फलत उत्पादन घटने के बजाय बढ जाता है। अब किसी ध्यान भग का असर कार्योत्पादन पर कैसा पड़ेगा, यह काफी अशो मे कार्य करने वाले की रुचि, योग्यता, अभ्यास और मनोवृत्ति पर निर्भर करता है।

कुछ लोग ध्यान भग (निरतर) का सम्बन्ध अपने कार्य से जोड लेते है। ऐसे व्यक्ति ध्यान भग की अवस्था मे ही अधिक काम करते है। ध्यान भग (distraction) को दूर कर देने पर उनक उत्पादन कम होता पाया गया है और वे कुछ खोयाखोयासा अनुभव करते है। कुछ विद्यार्थी लिखते या हिसाब बनाते समय रेडियो खोल कर गाना सुना करते है। हाँ, गाने की आवाज धीमी और निरतर रहनी आवश्यक है। रेडियो बद कर देने पर उनके लिखने की क्षमता म कुछ कमी दीखने लगती है। एक प्रयोग मे एक टाइपिस्ट को, जो एक मशीन की घडघडाहट के बीच टाइप किया करती थी, जब एक शान्त कमरे मे स्थानान्तर कर दिया गया तो उसके टाइप करने की गती कम हो गयी, अशुद्धियाँ बढ गयीं और एक बेचैनी का अनुभव करने लगी। उसने मैनेजर से निवेदन कर उसी शोर मे टाइप करने की अनुमति माँगी। ऐसे ही कुछ अन्य प्रयोग परिणाम भी है जिनकी चर्चा आगे की जायगी।

ध्यान भग का स्वरूप (Nature) ध्यान भग का प्रभाव कैसा पड़ेगा, यह व्यक्ति के अतिरिक्त ध्यान भग के स्वरूप पर भी निर्भर करता है। ध्यान-भगो को हम मुख्य दो वर्गों मे रख सकते है

(क) निरन्तर ध्यान-भग (Continuous distraction) और

(ख) विच्छिन्न ध्यान भग (Discontinuous distraction)।

जब ध्यान-भग एक ही गति से लगातार होते रहता है तो उसे निरन्तर ध्यान भग कहते है। जैसे चलती स्टीमर पर जब आप बात करते रहते हैं तो उस समय स्टीमर के ईंजन आदि की आवाज को निरतर ध्यान भग कहेंगे। इसी तरह, किसी कारखाने के कर्मचारी के लिये कारखाने की मशीन की आवाज निरतर ध्यान भग होता है। इसी प्रकार, कुछ ध्यान भग ऐसे होते है जिनमे कोई क्रमबद्धता या नियम नहीं पाया जाता। ऐसे ध्यान भगों को विच्छिन्न ध्यान भग कहते है। पढ़ते समय नजदीक में हो रही बातों का ठहर ठहर कर गप करना हमारे ध्यान में बाधक हो जाता है। इसे विच्छिन्न ध्यान भग कहते है।

प्रयोगो से स्पष्ट है कि निरतर ध्यान भग में व्यक्ति बहुत शीघ्र अभियोजित हो जाता है। फलत उसका कोई बाधक प्रभाव उसके कार्योत्पादन (Output) पर नहीं पडता। लेकिन, विच्छिन्न ध्यान भग का अतिक्रमण करने के लिए बहुत जीवन शक्ति (ऊर्जा) (Energy) लगानी पडती है और फिर भी उत्पादन की कमी और बराबरी रुक नही पाती। कुछ प्रयोज्यों (Subjects) के साथ तो ऐसा पाया गया कि निरतर ध्यान भग मे कार्य करते समय वे अधिक सचेष्ट और सक्रिय थे जिसके फलस्वरूप उनका उत्पादन उस समय घटने के बजाय बढ़ गया था। ऐसा करने में उन्हें प्रारम्भ में अधिक जीवन-शक्ति लगानी पडी, परन्तु बाद मे अभियोजित हो जाने पर उन्हें अधिक शक्ति खर्च करने की आवश्यकता नही हुई।

प्रयोगों से यह भी पता चला है कि अन्य तरह की उत्तेजनाओं की अपेक्षा ध्वनि और दृष्टि उत्तेजनाएँ (Auditory & visual stimuli) ध्यान भग अधिक करती हैं। उसमे भी, दृष्टि सम्बन्धी कार्य करते समय दृष्टि उत्तेजनाएँ और श्रवण सम्बन्धी कार्य करते समय ध्वनि उत्तेजनाएँ अधिक बाधक होती है। यहाँ ध्यान सम्बन्धी हुए कुछ प्रमुख प्रयोगो का उल्लेख कर देना अप्रासगिक न होगा।

शारीरिक क्रियाओं और कार्यों पर ध्यान भग का प्रभाव जानने के लिए मार्गन (Morgan) ने पहले पहल सन् १९१ ई० में १० प्रयोज्यों (Subjects) पर प्रयोग किया। प्रयोज्यों (Subjects) को टाइप राइटिंग (Type-writing) के तरह का कार्य दिया गया था जिसमे एक अक्षर के प्रस्तुत होने पर प्रयोज्य को एक निश्चित अक लिखने का आदेश था। प्रयोज्यो ने शान्त वातावरण और ध्यान भग वाली अवस्थाओं मे कार्य को सम्पादित किया। प्रयोग परिणाम से मालूम हुआ कि ध्यान भग (Distraction) की अवस्था मे प्रारम्भ में कार्य की गति कुछ कम हो गई थी, परन्तु कुछ ही समय मे कार्यगति पूर्ववत् हो गई थी। इतना ही नही, उसी अवस्था में कुछ अभ्यास के बाद तो कार्यगति मे उन्नति भी आगई। साथ ही यह भी देखा गया कि ध्यान भग की अवस्था मे अभ्यस्त हो जाने के बाद प्रयोज्य को जब फिर शान्त वातावरण में काम करने को दिया गया तो उसके उत्पादन में कमी और कार्य में शिथिलता आ गई। प्रदत्तों (Data) के विवेचन से यह मालूम हुआ कि शान्त वातावरण की अपेक्षा ध्यान भग

की अवस्था में प्रयोज्यों ने अधिक शक्ति के साथ कुंजी दबाई (कार्य) थी। साँस गति के ग्राफ मे यह स्पष्ट था कि ध्यान भग की हालत मे स्वर-प्रक्रिया (Vocal process) भी होती थी और जिन अक्षरों और अको के साथ प्रयोग हो रहा था। प्रयोज्य उनका उच्चारण भी करता था। इस तरह, इतना स्पष्ट है कि ध्यान भग के कारण उत्पादन में आवश्यक रूप से कमी नही आती, बल्कि उत्पादन बढ भी जाता है। परन्तु, इसके लिये प्रयोज्य को अधिक शक्ति लगाकर सचेष्टता से काम करना होता है।

मार्गन के उपर्युक्त परिणाम से कुछ भिन्न प्रमाण हारमन को अपने प्रयोग (१९३३ ई०) में मिले। उसने पाया कि ध्यानभग की हालत मे जब कोई काम किया जाता है तो केवल शुरू मे ही कुछ अधिक जीवन शक्ति (Energy) खर्च होती है। बाद में व्यक्ति का उस परिस्थिति मे अभियोजन हो जाता है और तब उतनी ही जीवन शक्ति उसे ठीक से काम करने के लिये लगानी होती है जितनी वह सामान्य अवस्था में खर्च करता है। इसके प्रयोग मे साँस की गति का माप किया गया था और ध्यानभग के लिये ग्रामोफोन का इस्तेमाल किया गया था।

लेकिन, सभी प्रयोगों से एक ही बात नही निकलती। कुछ ऐसे प्रयोग परिणाम भी है जिनमे यह सिद्ध होता है कि ध्यान भग के कारण उत्पादन के प्रकार (गुण) और मात्रा में कमी आ जाती है। वेबर (Weber) ने ध्यानभग के प्रभाव को देखने के लिये १६ प्रयोज्यो को विभिन्न प्रकार का मानसिक कार्य दिया और गाना तथा प्रहसन का उपयोग ध्यानभग के रूप मे किया। प्रयोगफल (Results) का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि ध्यानभग से कार्य मे क्षति पहुँची। हाँ, यह बात अलग थी कि किसी प्रयोज्य (Subject) की कम क्षति हुई और किसी की अधिक।

इस तरह हम देखते है कि ध्यान भग के सिलसिले मे प्रयोगों के आधार पर भी हम निश्चित रूप से नही कह सकते कि उससे कार्योत्पादन मे घातक असर पडता है। यह कार्य करने वाले की रुचि, क्षमता, अभियोजनशीलता और ध्यानभग के स्वरूप पर निर्भर करता है।

प्रयोगशाला मे ध्यान भग पर प्रयोग किसी साधारण मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में ध्यान-भग (Distraction) के प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है। सामान्यत इसके लिये प्रयोज्य को कुछ समय तक शान्त वातावरण मे मानसिक कार्य (गुणा करना) या अक्षर-निराकरण (Letter cancellation) करने को दे। कुछ विश्राम के बाद प्रयोज्य को उतने ही समय तक पुन वैसा ही मानसिक कार्य करने को दे। परन्तु, इसबार कार्य काल मे कुछ आवाज करते रहे (खट खट, घटी या सगीत के सहारे)। इस आवाज में निश्चित समय तक कार्य कर लेने पर दोनों अवस्थाओं के परिणाम की तुलना कर देखें कि दोनो मे किस अवस्था मे कार्योत्पादन सुन्दर और अधिक है। उसी प्रकार, निरन्तर, विच्छिन्न तथा तरह-तरह के ध्यानभगों (Distractions) का असर कार्योत्पादन पर क्या पडता है, इसे भी इसी तरह के प्रयोगों से जाना जा सकता है।

ध्यान भग का अतिक्रमण कैसे करे? ध्यानभग की अबतक की चर्चा से यह स्पष्ट हो चुका है कि ध्यान भग का अतिक्रमण किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि

हम चाहे तो ध्यानभग के घातक असर से बचकर कार्योत्पादन म कोई कमी नही होने दे सकते है। यहाँ हम कुछ ऐसे प्रमुख उपायो का उल्लेख करना उचित समझते है।

(१) ध्यानभग की अवस्था मे कार्य को ठीक से करने म अधिक शक्ति लगानी होती है, यह सर्वमान्य है। इस पर विवाद भले हो कि कुछ ही समय तक (केवल प्रारम्भ म) अधिक शक्ति लगानी होती है या अधिक समय तक। अत ध्यान भग के प्रभाव स अपने को मुक्त करने के लिये व्यक्ति को अधिक सचेष्ट और सक्रिय हो कर कार्य करना चाहिये।

(२) ध्यानभग को अतिक्रमण करने का एक तरीका यह है कि उसकी उपेक्षा की जाय अथवा उस पर ध्यान न दिया जाय। कोई सगीत तभी तक कार्य बाधक होता है जब तक हम उस पर ध्यान देते है अथवा उसकी चिता करते है। जब उसस उदासीन हो जाते है तो कार्य पर उसका कोई घातक असर नही पडता।

(३) ध्यान भग का सम्बन्ध मुख्य कार्य से कर देने पर भी कार्योत्पादन म कमी नहीं आती। ऐसी हालत मे ध्यान भग कार्य का ही एक अग बन जाता है, लेकिन ऐसा करना बहुत सरल नही होता। इसमे सूझ और अभ्यास का जरूरत होती है। तथापि, कुछ अध्ययनों से स्पष्ट है कि ऐसा करना काफी लाभप्रद होता है और कभी कभी तो कार्योत्पादन में वृद्धि हो जाती है।

ध्यान-परिवर्त्तन

(Shifting of attention)

हम अक्सर ऐसा कहा करते है कि वह घटों उस चीज पर ध्यान लगाए रहा। ऐसा कहने से अर्थ यही हुआ करता है कि किसी उत्तेजना पर घटा तक ध्यान लगाया जा सकता है। परन्तु वस्तुत ऐसी बात नहीं होती। हम किसी उत्तेजना पर बहुत थोड़े समय तक ही ध्यान दे पाते है। इसके बाद हमारा ध्यान किसी दूसरी उत्तेजना अथवा उसी उत्तेजना के दूसरे भागपर चला जाता है। जैसे, यदि कोई चित्र देखता है तो उसका ध्यान चित्र के विभिन्न अशों पर विचलित होता रहता है। एक ही उत्तेजना के विभिन्न अशो पर, अथवा एक उत्तेजना से दूसरी, दूसरी से तीसरी और इसी तरह अन्य उत्तेजनाओ पर ध्यान जाते रहने को ध्यान परिवर्त्तन (Shifting of attention) कहते है।

ध्यान परिवर्त्तन (Shifting of attention) के सम्बन्ध में एक प्रश्न हो सकता है कि किसी एक उत्तेजना अथवा विचार पर ध्यान कितने समय तक रहता है? इसका कुछ निश्चित उत्तर देना बडा कठिन है। क्योंकि, इसमे वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है। कोई व्यक्ति कुछ अधिक समय तक ध्यान दे पाता है तो कोई बहुत कम समय तक ही ध्यानावस्थित रह सकता है। इस सम्बन्ध मे प्रयोगात्मक परिणामों म भी, एकरूपता नहा है। बिलिंग्स (Billings) ने अपने प्रयोग परिणाम मे पाया कि ध्यान किसी एक विचार अथवा उत्तेजना पर कम से कम $\frac{1}{10}$ सेकण्ड से लेकर ५ सेकण्ड तक रह सकता है। उसने यह भी प्रमाणित किया कि यदि प्रयोज्य (Subject) किसी जटिल या विषम (Complex) समस्या पर

ध्यानावस्थित रहता है तो उसका ध्यान अधिक समय तक टिक सकता है। किन्तु, पिल्सबरी (Pillsbury) का कहना है कि ध्यान कम से कम एक सेकण्ड से लेकर अधिक से अधिक दो सेकण्ड तक किसी विचार पर रह सकता है। पिल्सबरी ने अपने पक्ष की पुष्टि के लिये कई प्रमाण और तर्क दिया है जिनके आधार पर उसके इस निष्कर्ष को युक्तिसंगत माना जा सकता है। फिर भी, निश्चित रूप से ध्यान देने के समय के सम्बन्ध मे कुछ कहना कठिन है।

ध्यान परिवर्त्तन (Shifting of attention) का प्रयोग उभयात्मक चित्र (Reversible perspective) पर होता है। नीचे एक उभयाकार चित्र दिया जा रहा है। कभी आपका ध्यान बूढ़ी औरत पर जायगा और कभी किसी नवयुवती का बगल से चहरा नजर आयेगा। ये दोनों आकृतियाँ एक ही चित्र मे है। परन्तु, आपका ध्यान एक समय मे किसी एक आकृति पर ही जायगा।

चित्र संख्या ४९



उभयाकार चित्र

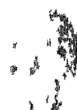
इस तरह के प्रयोगो से स्पष्ट है कि ध्यानपरिवर्त्तन गत्यात्मक (Dynamic) स्वरूप का होता है। यानी, हमारा ध्यान बराबर एक से दूसरी और दूसरी से पहली आकृति पर परिवर्त्तित हुआ करता है। हाँ, परिवर्त्तन की गति (Speed) घटती बढती रहती है। जब दोनों चित्र अधिक स्पष्ट हो जाते है तो ध्यानपरिवर्त्तन अधिक तेजी से होने लगता है। इसके विपरीत जबतक दोनों चित्र स्पष्ट नही रहते तबतक ध्यान में परिवर्त्तन भी कम होता है। यह भी देखने मे आता है कि प्रयोज्य (Subject) जब कुछ देर तक विश्राम करने के बाद पुन उस चित्र पर ध्यान लगाता है तो ध्यान परिवर्त्तन की गति पहले की अपेक्षा कम हो जाती है।

ध्यान-विचलन (Fluctuation of attention)

कभी कभी एक ही उत्तेजना के किसी भाग पर ध्यान देते समय हम अधिक ध्यानावस्थित (Attentive) हो जाते है और कभी कम ध्यानावस्थित। एसा अनुभव हम सभी को होता है कि किसी चीज को कुछ देर तक देखने से हमारी नजर उस पर रहने पर भी वह चीज हमारे ध्यान से ओझल हो जाती है। हम किसी दूसरे भाव विचार मे लग जाते है और उस चीज की चेतना कुछ क्षण के लिए खो देते है। पुन, कुछ ही क्षणों मे विचार लौट आते है और वह चीज हमारे ध्यान केन्द्र मे आ जाती है। इस तरह ध्यान की मात्रा भी घटती बढती रहती है। ध्यान की इस क्रिया को ध्यान-विचलन (Fluctuation of attention) कहते है।

साधारणत प्रयोगशालाओ मे ध्यान-विचलन का प्रयोग म . . . तश्तरी (Masson disc) के साथ किया जाता है। इस सा . . कागज की गो. तख्ती पर केन्द्र से . . . तक एक पक्ति मे छोटे छोटे चार पाँच काले बिन्दु या वर्ग बन . . . । स्पष्टीकरण के लिए चित्र सख्या ९० देखे। इस तख्ती को किसी वि . . . (Electric rotator) पर रखकर घुमाया जाता है। तख्ती के घूमने . . काले बिन्दु . . . . . के रूप मे दिखलाई पडने लगते है। प्रयोज्य को उनमे से किसी एक वृत्त पर ध्यान . . . . . जाता है। प्रयोज्य के दाहिने हाथ की उगली एक बटन (Morse key) पर रहती है। बटन का सम्बन्ध एक चिन्हक (Marker) से रहता है जो कीमोग्राफ (Kymograph) के बेलन पर सटे

चित्र सख्या ९०



ध्यान विचलन का प्रयोग चि . .

धूम्रपत्र से सटा रहता है। फलत, बट . का जैसे ही दबाया जाता है धूम्रपत्र पर चिन्ह उग जाता है। इस व्यवस्था के बाद प्रयोज्य का यह नि . शन दिया जाता है कि जब वह वृत्त (जिसपर ध्यान दे रहा है) उसकी नजर से ओझल हो जाय तो बटन दबा देगा और तबतक दबाए रहेगा जबतक वह पुन दीखने न लगे। कीमोग्राफ को भी एक निश्चित गति पर चला दिया जाता है। प्रयो . . का ध्यान ज्यो ही वृत्त से विचलित होता है वह बटन दबा देता है और जब तक वृत्त पुन ध्यान केन्द्र मे नहीं आता बटन दबाए रखता है। एक खास समय तक ऐसा करने से कीमोग्राफ के बेलन पर सटे धूम्रपत्र के चिन्ह (ग्राफ) को देखकर यह कहना आसान हो जाता है कि प्रयोज्य का ध्यान कितनी बार विचलित हुआ और एक ध्यानविचलन मे कितना समय लगा। इस तरह, किसी व्यक्ति के ध्यान-विचलन की गति का ज्ञान हो जाता है।

दृष्टिउत्तेजनाओं के अतिरिक्त अन्य प्रकार की उत्तेजनाओं के साथ भी ध्यान-विचलन का प्रयोग संभव है। श्रवणउत्तेजना से ध्यान विचलन जानने के लिये औडिओमीटर

(Audiometer) और स्पर्श उत्तेजनाओं से जानने के लिये मंद विद्युत प्रवाह (Slow electric current) का उपयोग किया जा सकता है।

ध्यान विचलन के कारण पहले लोगों का ऐसा विचार था कि ध्यान विचलन ज्ञानेन्द्रिय और मस्तिष्क के कार्यों मे क्षणिक शिथिलता (Relaxation) आने के कारण होता है। दृष्टि सबन्धी ध्यान विचलन के बारे मे विचार था कि यह पादिमक मासपेशियों (Ciliary muscles) मे अस्थिरता (Insteadiness) आ जाने के कारण होता है। इसी तरह श्रवण सबन्धी ध्यान-विचलन का कारण कान की झिल्ली (Tympanic membrane) मे तनाव और शिथिलता का माना जाता था। लेकिन, बाद के प्रयोगो से ध्यानविचलन का यह कारण गलत सिद्ध हुआ। पस, फेरी तथा स्लॉटर आदि मनोवैज्ञानिकों ने पाया कि पाश्विक मासपेशियों को ज्ञानशून्य कर देने पर भी प्रयोज्यों मे दृष्टिसबन्धी ध्यान विचलन मौजूद था।

बाद के मनोवैज्ञानिकों ने अभियोजन या सयोजन (Adjustment or Adaptation) के आधार पर ध्यानविचलन की व्याख्या की है। जब हम ऊपर के प्रयोग में वृत्त को कुछ समय तक देखते रहते है तो हमारी आँख उसे देखने मे सयोजित हो जाती है। फलत, वह वृत्त ध्यान से ओझल हो जाता है। लेकिन, पुन कुछ ही क्षणों मे आँखे अपनी पूर्ण स्वस्थता को प्राप्त हो जाती है जिसके कारण हमे पुन वह वृत्त दीखने लगता है। यो सभी तरह के ध्यान विचलन की व्याख्या इसी आधार पर करने की कोशिश की गई है, परन्तु दृष्टि और स्पर्श सबन्धी विचलन के अतिरिक्त अन्य प्रकार के ध्यान विचलन की व्याख्या इससे ठीक तरह से नही होती। श्रवणसबन्धी ध्यान विचलन का कारण अभी वैयक्तिक ही माना जाता है। इसके सबन्ध मे कुछ ठीक ठीक कहना कठिन है।

इस तरह हम देखते है कि ध्यान विचलन की निश्चित व्याख्या अभी नही हो पाई है। फिर भी, ज्ञानेन्द्रियों का सयोजन इसका एक प्रमुख कारण है। इसके अतिरिक्त, तरह तरह के वातावरण-सबन्धी अग, प्रयोज्य की शारीरिक मुद्रा (Bodily postures) और मनो-शारीरिक स्थिति, तथा स्नायुमंडल की क्रियाएँ भी ध्यान विचलन को प्रभावित करती है।

ध्यान-विस्तार

(Range or span of attention)

एक समय मे हम जितनी उत्तेजनाओं को अपने ध्यान का विषय बना पाते है उसे ध्यान विस्तार कहते है। सर्वप्रथम इसकी चर्चा दार्शनिको ने की और उन्होंने बतलाया कि चूँकि मन एक है, इसलिए एक समय मे एक ही विषय या वस्तु उसमे आ सकती है। यानी, कोई व्यक्ति एक समय मे किसी एक उत्तेजना पर ही ध्यान दे सकता है। लेकिन, प्रयोगों और अनुभव के आधार पर कुछ ही दिनों मे लोग मानने लगे कि हम एक से अधिक उत्तेजनाओं पर एक साथ ध्यान दे सकते है। विद्वानों ने ध्यानविस्तार की सख्या या सीमा बतलाने का भी प्रयत्न किया है। चार्ल्स बोनेट तथा डेस्टट्रेसी के अनुसार छ तथा ए० टुकर के अनुसार चार उत्तेजनाओं पर एक समय में ध्यान दिया जा सकता है। हेमिल्टन

(Hemilton) ने अपने विद्यार्थियों पर गोलियों के सहारे प्रयोग करने पर पाया कि उसके विद्यार्थी छ से सात गोलियों को अपने ध्यान क्षेत्र में ला सके। उसने यह भी पाया कि गोलियों को समूह में कर देने पर प्रयोज्यों का ध्यान विस्तार बढ़ गया। अक्षर, सख्या तथा रेखाओं के साथ भी ध्यान विस्तार के प्रयोग हुए हैं जिनमें विभिन्न व्यक्तियों का ध्यान विस्तार ७ से ग्यारह तक पाया गया है।

लेकिन, ध्यान विस्तार की सीमा निश्चित रूप से बताना कठिन है, क्योंकि इसमें बहुत व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है। सम्भव है किसी व्यक्ति का ध्यानविस्तार चार या छ से भी कम हो अथवा ग्यारह, बारह से भी अधिक हो। सर्वप्रथम वेबेल्स ने बताया कि एक ही व्यक्ति का ध्यान विस्तार विभिन्न अवसरों पर भिन्न हो सकता है। इसी लिए उसे गत्यात्मक (Dynamic) स्वरूप का माना जाता है। प्रयोगों से स्पष्ट है कि अभ्यास के कारण व्यक्ति के ध्यान विस्तार में वृद्धि हो जाती है। ध्यान विस्तार, व्यक्ति की शारीरिक अवस्था, अभिरुचि, तथा मनोवृत्ति आदि पर भी निर्भर करता है। ध्यान-विषय के स्वरूप से भी ध्यानविस्तार प्रभावित होता है। सरल या सार्थक विषय का ध्यान-विस्तार, जटिल, या निरर्थक विषय की अपेक्षा अधिक होता है। उस पर उम्र का भी असर पडता है, क्योंकि बच्चों का ध्यानविस्तार वयस्कों की अपेक्षा कम पाया जाता है। इस तरह हम देखते है कि ध्यानविस्तार पर कई बातों का प्रभाव पड़ता है, अतः उसकी सीमा निश्चित नहीं की जा सकती।

ध्यानविस्तार चाहे जितना हो, इतना स्पष्ट है कि यह एक से अधिक होता है। अब प्रश्न है, हम एक साथ एक से अधिक उत्तेजनाओं पर ध्यान कैसे दे पाते है? इसका कारण यह है कि वस्तुतः हम विभिन्न उत्तेजनाओं पर अलग-अलग नहीं बल्कि एक समूह या सघान (Pattern) मे ही ध्यान देते हैं। इसीलिए, जैसा फ्रीमैन के प्रयोग से स्पष्ट है, सरल रूप से समूहीकरण होने पर ध्यानविस्तार अधिक होता है। जब हम पाच या दस विन्दुओं को एक साथ देखते है तो वस्तुतः हम उन्हें अलग अलग नहीं देखकर एक इकाई या सघात रूप मे देखते है।

प्रयोग ध्यान-विस्तार का प्रयोग दृष्टि, श्रवण, तथा स्पर्श आदि सभी प्रकार की उत्तेजनाओं के साथ सम्भव है। लेकिन, अधिकाश इसका प्रयोग (Experiment) दृष्टिउत्तेजनाओ के साथ किया जाता है। जिसमें विन्दु, अक्षर, या ज्यामितिक-चित्रों (Geometrical figures) का उपयोग किया जाता है। दृष्टिसम्बन्धी ध्यानविस्तार मापने के लिए टचिस्टेस्कोप (Tachistescope) नामक यन्त्र का व्यवहार किया जाता है। सर्वप्रथम कुछ कार्ड पर अक्षर या अंक (जिस साधन के साथ प्रयोग करना हो) लिख कर तैयार कर लिया जाता है। पुन, उन कार्डों को क्रमशः उस यन्त्र के सहारे प्रयोज्य के सामने उपस्थित किया जाता है। इस यन्त्र मे ऐसी व्यवस्था रहती है कि कार्ड केवल $\frac{1}{10}$ सकण्ड या इस से भी कम समय के लिए दिखलाई पडता है जिससे प्रयोज्य को दुबारा आँख घुमाने का मौका नही मिलता। प्रयोज्य जितने अक्षर या अंक देख पाता है उसे व्यक्त कर देता है। वही उसका ध्यानविस्तार होता है। परिणाम की प्रतिपन्नता के लिए कई प्रयास लिए जाते है तथा औसत निकाला जाता है। सर्वप्रथम टचिस्टेस्कोप का प्रयोग कैटेल (Cattell) ने सन् १८८५ ८६ ई० किया था।

चित्र संख्या ९१

टचिस्टेस्कोप से ध्यान-विस्तार का मापन

ध्यान-विभाजन (Division of attention) —कोई कार्य करने मे उस पर ध्यान देना आवश्यक है। कभी कभी हम एक साथ दो कार्य किया करते है। हम कह सकते है कि ऐसे अवसरो पर हमारा ध्यान विभाजित हो जाता है। उदाहरणार्थ, आप एक ही साथ रास्ता भी चलते है और गाना भी गाते है, लडकिया बुनाई भी करती है और साथ साथ गप भी करती है। वस्तुत ऐसा क्योकर होता है? यदि ध्यान दे तो इसके तीन चार कारण मिलेगे।

दो कार्य एक साथ करने का एक कारण तो यह है कि वैसा करने मे एक कार्य यन्त्रवत् (Mechanically) होता रहता है तथा दूसरे के सबध मे हम सचेष्ट रहते है। फलत दोनो कार्यो को एक साथ करने मे विशेष कठिनाई नही होती। जैसा कि ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है। चलना या बुनना यन्त्रवत् होता रहता है, अत गाने या गप करने में असुविधा नही होती।

दो कार्यो मे एक कार्य का पर्याप्त अभ्यास कर लेने पर उसपर विशेष ध्यान की जरूरत नही होती। अतएव दोनों कार्य आसानी से एक साथ सम्पन्न हो जाते है।

जब दोनो कार्य समान कठिनाई के रहते है तो वैसी हालत मे हमारा ध्यान बराबर एक कार्य से दूसरे कार्य पर परिवर्त्तित (Shifted) होते रहता है। लेकिन, यह परिवर्तन इतनी शीघ्रता से होता है कि कार्य-कर्त्ता को इसका अनुभव नही होता और यह दोनों कार्यो को कर लेता है।

कभी कभी दो कार्यों को एक साथ करने में सघात (Pattern) बना लिया जाता है, और तब वे दोनों कार्य दो न होकर एक ही प्रतीत होने है। गिल्फार्ड (J. P. Guilford) ने अपनी किताब मे इसका एक सुन्दर उदाहरण दिया है। उसने लिखा है कि जब अलग अलग हाथ से व्यक्ति को पिआनो बजाने आ जाता है तो वह दोनों हाथ से (एक साथ) भी पिआनो बजा लेता है। इसी प्रकार, किसी दूसरे तरह के दो कार्यों का एक सघात बनाकर उन्हे एक साथ किया जा सकता है।

ध्यान-विभाजन का कार्योत्पादन पर प्रभाव इतना तो हम पाते ही है कि दो कार्यों को एक साथ करना सभव है। लेकिन, प्रश्न यह है कि ऐसी स्थिति मे प्रत्येक कार्य का उत्पादन कैसा होता है? क्या अलग-अलग करने की अपेक्षा दोनो कार्यो को एक साथ करने से प्रत्येक का उत्पादन घट जाता है अथवा खराब (प्रकार) हो जाता है? इन प्रश्नों का उत्तर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने 'हाँ' और 'नही' दोनो मे दिया है। यहाँ कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिको के प्रयोग परिणामो का उल्लेख पर्याप्त होगा।

पाल्हम (Paulham) नामक मनोवैज्ञानिक ने एक प्रयोग में एक कविता को पढने और दूसरी कविता को लिखने का कार्य साथ साथ किया। प्रयोग परिणाम से मालूम हुआ कि दोनो कार्यो को एक साथ करने मे कुछ बाधा हुई, लेकिन वह नगण्य थी। इसी तरह मिचेल (Michell) ने एक प्रयोग में प्रयोज्य को दो वजनों की तुलना के साथ साथ टन टन की ध्वनि को एक से ७ तक गिनने को कहा। प्रयोग से पता चला कि गिनने के साथ तुलना की क्रिया पहले की अपेक्षा भी अच्छी हुई, यद्यपि गिनने की क्रिया मे कुछ गडबडी पाई गई। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तो यहाँ तक कहा है कि दो कार्यो को एक साथ करने मे किसी कार्य में बाधा नहीं पड़ती बल्कि सुविधा होती है। फलत, कार्योत्पादन भी बढ जाता है। हर्स्ट और कयरनीज ने अपने प्रयोगों मे पाया कि गाना गाने और पढने का कार्य अकेले की अपेक्षा साथ साथ करने मे ही अच्छी तरह होती है। डनबाक (Dunback) ने भी अपने प्रयोगों के आधार पर बतलाया कि दो कार्यो को साथ साथ करने मे एक कार्य अकेले करने की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है।

लेकिन, सभी प्रयोग उपर्युक्त बात की ही पुष्टि नहीं करते। बिनेट (Binet) के प्रयोगों से पता चला कि दो कार्य एक साथ करने से दोनो कार्यो मे बाधा होती है और फलत दोनों का कार्योत्पादन कम और बुरा हो जाता है। स्पोरजन ने टचिस्टेस्कोप पर प्रयोग करके पाया कि ध्यान विभाजन के कारण ध्यान विस्तार (Span of attention) कम हो जाता है। स्पेश (Spetch) ने स्वतन्त्र साहचर्य परीक्षा के साथ प्रयोज्यों से गिनने का कार्य लिया और पाया कि ध्यानविभाजन के कारण कार्योत्पादन का प्रकार (Kind) और परिणाम दोनों बुरा हो जाता है।

इस तरह हम पाते है कि ध्यान विभाजन का कार्योत्पादन पर जो असर पड़ता है, उसके सबन्ध मे मनोवैज्ञानिक एकमत नही है। वस्तुत यह बात प्रयोज्य की योग्यता, रुचि और अभ्यास के साथ साथ कार्य के स्वरूप पर निर्भर करती है। योग्य और अभ्यस्त प्रयोज्य भी गणित के कठिन प्रश्न को हल करने और किसी कविता के क्लिष्ट अंश को समझने

की क्रियाएँ साथ-साथ नही कर सकता। ऐसा करने पर निश्चय ही दोनों कार्यों में हानि होगी। अत दो कार्यों को अच्छी तरह करने के लिए यह जरूरी है कि वे कार्य सरल हों। साथ ही, वेस्टकाल और शार्न (Schorn) के विचार भी मान्य है कि दो कार्यो को एक साथ करने में एकसघात (Pattern) बन जाता है तो उन्हे करने में कोई बाधा नहीं होती और हम उन्ह अच्छी तरह कर लेते है।

प्रयोग ध्यान-विभाजन का प्रयोग बिना किसी यत्र के भी सभव है। प्रयोज्य को एक बार विषम सख्या गिनने का कार्य करावे और दूसरी बार अक्षर लिखने को कहें। पुन, गिनने और लिखने का कार्य साथ-साथ करावे और देखें दो कार्यों के साथ-साथ करने से किसी कार्य के उत्पादन पर क्या असर पडता है। अभ्यास और थकावट के प्रभाव को, इस प्रयोग मे, नियत्रित रखना आवश्यक है। तीनों अवस्थाओं में कार्य-अवधि समान रहनी चाहिए। कार्यों का चुनाव आप स्वय भी कर सकते है, केवल इतना ध्यान रखना चाहिए कि कार्य बहुत कठिन स्वरूप के न हों।[१]

१—ध्यान-विस्तार, ध्यान-भग, ध्यान-विचलन तथा ध्यान-विभाजन की विस्तृत प्रयोग-विधि और प्रदत्त-निरूपण के लिए लेखक के 'मनोवैज्ञानिक प्रयोग' की क्रमश प्रयोग-सख्या १७, १८, २० और १९ देखे। [प्र०—ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना—४]

छठाँ अध्याय

साहचर्य

(Association)

जब हमे किसी उत्तेजना का प्रत्यक्षीकरण होता है या उसकी प्रतिमा मन में आती है तब उस वस्तु से सबन्धित परिस्थितिया और घटनाएँ भी स्वत याद हो जाती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ऐसा साहचर्य के कारण होता है। साहचर्य कैसे और कितने रूपों में कार्य करता है, इसके लिए साहचर्य-नियमो का प्रतिपादन किया गया है।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के जन्म से कई सौ वर्ष पहले विद्वानो ने साहचर्य की चर्चा की। अरस्तु (Aristotle) ने सामीप्य (Contiguity) साहचर्य, साम्य (Similarity) साहचर्य, और विरोध (Contrast) साहचर्य का उल्लेख किया है। इन साहचर्यो की अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दि मे इतनी धूम थी कि उस समय एक "वाद" ही चल पडा जिसे हम 'साहचर्यवाद' कहते है। इस 'वाद' के अनुयायियो ने सभी मानसिक प्रक्रियाओं को साहचर्य के द्वारा व्याख्या करने की कोशिश की। साथ ही, सभी साहचर्य नियमों (Laws of Association) को इन लोगो ने सामीप्य साहचर्य के अन्तर्गत माना। किन्तु, हॉब्स (Hobbes) ने व्यक्त किया कि सभी मानसिक प्रक्रियाओं का मात्र साहचर्य के आधार पर समझने मे काफी कठिनाई है। उसने अपने प्रयोगात्मक प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि साहचर्य दो प्रकार का होता है, स्वतन्त्र (Free) और नियन्त्रित (Controlled) साहचर्य। स्वतन्त्र साहचर्य मे साहचर्य नियमो का प्रधानता रहती है, क्योंकि इसमे प्रतिक्रिया करने मे पूरी छूट रहती है। नियन्त्रित साहचर्य मे प्रयोज्य को प्रतिक्रिया शब्द प्रयोक्ता के निर्देश के अनुसार देना पड़ता है। इसलिए उसके प्रतिक्रिया शब्द नियन्त्रित हो जाते है।

जहाँ तक साहचर्य-सबन्धी प्रयोगों का प्रश्न है, सर्वप्रथम (१८७०-८०) गाल्टन (Galton) ने ७५ उत्तेजक शब्दों (Stimulus words) को विभिन्न कागज के टुकड़ों पर तैयार किया और स्वय प्रयोज्य बनकर स्वतन्त्र साहचर्य का प्रयोग किया। यद्यपि उसकी यह विधि कुछ कठिन थी, किन्तु इससे कई नए रहस्यों का उद्घाटन हुआ। उसके बाद वुण्ट (Woundt) की प्रयोगशाला में कैटिल (Cattell) प्रभृति विद्वानों ने गाल्टन की विधि में सुधार किया। उन्होंने प्रतिक्रिया शब्द और प्रतिक्रिया काल (Reaction time) को लिखने के लिए एक प्रयोक्ता की आवश्यकता समझी। बाद में कैटिल (Cattell) ने अधिक सही प्रतिक्रिया काल निकालने के लिए ध्वनि सम्बन्धी कुजी (Voice key) या ओष्ठ-संबन्धी कुजी का उपयोग किया। बाद मे ऐसे यन्त्रो का भी अनुसन्धान और प्रयोग किया गया, जिसके सहारे उत्तेजक शब्दो को (बिना बोले) दिखला कर ही प्रतिक्रिया मालूम की जा सके। इन दिनों तो साहचर्य के विभिन्न पहलुओं और नियमों का अध्ययन करने के लिए

साहचर्य-नियम

(Laws of Association)

साहचर्य के सभी नियमो को दो वर्गों मे रख सकते है —

१ प्रधान साहचर्य नियम

२ गौण साहचर्य नियम

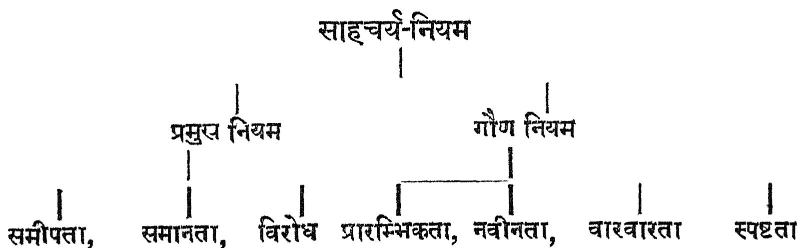
उच्च मानसिक प्रक्रियाओ की व्याख्या के लिए प्रधान साहचर्य नियमो की सहायता बहुत पहले से ही ली जाती रही है। लेकिन, गौण साहचर्य-नियमो को विद्वानों ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ म स्वीकार किया। प्रधान साहचर्य नियम के अन्तर्गत तीन नियम है —

(१) समीपता का नियम (Law of contiguity),

(२) समानता का नियम (Law of similarity),

(३) विरोध का नियम (Law of contrast)।

इसी तरह गौण साहचर्य नियम के अन्तर्गत (१) प्रारम्भिकता का नियम (Law of primacy), (२) तात्कालिकता या नवीनता का नियम (Law of recency), (३) बारम्बारता का नियम (Law of frequency) तथा (४) स्पष्टता का नियम (Law of vividness) की गणना होती है। साहचर्य-नियम के इस विभाजन को निम्नाकित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है —



यों तो साहचर्य के नियमों को प्रधान और गौण दो वर्गों मे विभाजित किया गया है, किन्तु विचारत प्रधान नियमों को ही हम साहचर्य-नियम कह सकते है। गौण साहचर्य-नियम वस्तुत प्रधान नियमों से बिल्कुल भिन्न नही है। प्राय एक विचार दूसरे विचार को प्रधान साहचर्य नियम के ही परिणाम स्वरूप आविर्भूत करता है। किन्तु, एक विशेष प्रकार का विचार ही मानव जीवन मे क्यों आविर्भूत होता है, दूसरा क्यो नही, इसकी संतोषपूर्ण व्याख्या गौण साहचर्य नियम करता है। यहाँ दोनों की संक्षिप्त व्याख्या अपेक्षित है।

(१) प्रधान साहचर्य-नियम

(Primary laws of association)

(क) समीपता का नियम जब हम दो अनुभवों को एक साथ अपने मानस-पटल पर स्थान देते है तो उन दोनो मे इस प्रकार का सामीप्य-साहचर्य स्थापित हो जाता

है कि बाद में जब पहला पुन मानस पटल पर आविर्भूत होता है, तो दूसरे की भी चेतना स्वत हो जाती है। यह समीपता दो प्रकार की होती है समय की समीपता (Contiguity of time) और स्थान की समीपता (Contiguity of space)।

(अ) समय की समीपता जब हम कई चीजों का अनुभव एक समय में करते है तो उनमे एक तरह का साहचर्य स्थापित हो जाता है। अत भविष्य में जब उनमें से एक का अनुभव होता है तो उससे आबद्ध अन्य अनुभव भी अपने मौलिक क्रम में स्वत याद हो आते है। आग और धुआ, बर्फ और शीतलता, सूर्य तथा प्रकाश के अनुभव एक समय में साथ-साथ होते है, इसलिए इनमे काल सामीप्य साहचर्य का सम्बन्ध स्थापित होता है। एक उदाहरण लें। मान लें, कोई व्यक्ति घर पर ही नोकरी करता है। पाच बजे सन्ध्या को जब वह घर लौटता है, उसकी स्त्री दो मीठे शब्दों के साथ हाल पूछती है, बच्चे हल्ला करते हुए उससे लिपट जाते है। इस तरह पाँच बजे सन्ध्या को उसी ऑफिस से छुट्टी मिलने के साथ घर पर कुछ सुखद अनुभव होते है। अब यदि वह व्यक्ति घर से बाहर कहीं काम करने चला जाय जहाँ न उसकी पत्नी हो और न बच्चे तो स्वाभाविक रूप से ऑफिससे आते ही उसे पत्नी, बच्चे और उनके सारे सुखद व्यवहार क्रमश याद आयेंगे। क्योंकि, उसके सारे अनुभवों के बीच समय की समीपता के कारण एक साहचर्य स्थापित हो गया है। इस साहचर्य की दृढता कई अगों पर निर्भर करती है, जैसे समय की सन्निकटता, मौलिक क्रम, सयोगात्मक ध्यान (Synthetic attention) आदि। दो के बीच समय की दूरी जितनी कम रहती है उतना ही उनमे दृढ साहचर्य भी होता है। इसी प्रकार दो साथ होनेवाली घटनाओ के बीच साहचर्य (Association) स्थापित हो इसके लिए यह भी जरूरी है कि हम उन दोनों पर ध्यान दें। जिस बात या घटना पर हम ध्यान नहीं देते उसके साथ किसी तरह का साहचर्य नही हो पाता।

(ब) स्थान की समीपता जब दो बातों का अनुभव किसी एक स्थान में होता है, तब भी उनमे एक साहचर्य स्थापित हो जाता है। यदि आपने सड़क पर किसी तेज सायकिल चलाने वाले को एक्सिडेन्ट का शिकार होते देखा है तो किसी भी व्यक्ति को सड़क पर तेजी से सायकिल चलाते देख वह एक्सिडेन्ट आपको याद आ सकता है। ऐसा स्थान की समीपता के कारण होता है। उपस्थितिकरण के क्रम (Order of presentation) में जो सम्बन्ध स्थापित हो जाता है वह इस समीपता के नियम का अच्छा उदाहरण है। यदि हम क, ख, ग आदि का अनुभव क्रमश करते है तब बाद में भी 'क' का स्मरण "ख" का और 'ख' का स्मरण "ग" की याद दिला देगा। दूसरे शब्दों में जिस सरलता से 'क', 'ख' की याद दिलाता है, उतनी आसानी से ख, क की याद नहीं दिलाता। कविताओं को याद रखने में समीपताओं के क्रम का यह नियम अधिक स्पष्ट दीखता है। उदाहरण के लिए निम्नाङ्कित पक्तियों को लें।

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष स्रोत बन बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।"

ये पक्तियाँ एक क्रम मे है और यह क्रम याद करने से बना रहता है। इस क्रम के कारण पहली और दूसरी, दूसरी और तीसरी तथा तीसरी और चौथी पक्तियों में सम्बन्ध या साहचर्य स्थापित हो जाता है। फलस्वरूप 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' के बाद

'निश्वास रजत नग पग तल मे' स्वत याद हो आता है। परन्तु, तीसरी पक्ति के बाद पहली पक्ति का स्मरण होना काफी कठिन है।

(ख) समानता का नियम (Law of similarity) समानता के नियम का अर्थ यह है कि जब हम दो समान पदार्थो या विचारो का अनुभव करते है तो बाद मे समानता के कारण, पहला दूसरे के स्मरण का कारण हो जाता है। जैसे दो भाइयों मे एक को देखकर दूसरे की याद हो आती है क्योकि दोनों मे बहुत समानता है।

(ग) विरोध का नियम (Law of contrast) जब दो विरोधी चीजों का अनुभव करते है तो बाद मे एक का स्मरण दूसरे की याद दिला देता है। जाडा-गर्मी, भला बुरा, दिन-रात, सुखद-दुखद आदि एक दूसरे के विरोधी है, इसलिए इनमे से एक की याद आने पर उसका विरोधी शब्द भी स्वत हमारी चेतना मे चला आता है। राम के नाम मात्र से रावण और कृष्ण के स्मरण से कस का स्मरण होना स्वाभाविक ही है। उजला के साथ काला और धनी के साथ गरीब की याद इस नियम के कारण आती है।

इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि विरोध नियम, समानता नियम से स्वतन्त्र नही, अपितु उसी पर आश्रित है। यद्यपि, कुछ मनोवैज्ञानिक अपनी सुविधा के लिए इसे अलग कर देते है। समीपता के नियम और समानता के नियम मे भी इतनी घनिष्टता है कि ये दोनो भी पूर्णत एक दूसरे से अलग नही किए जा सकते। इस प्रकार ये तीनों साहचर्य-नियम एक दूसरे से काफी मिले है। जीवन मे किस साहचर्य-नियम की अधिक प्रधानता रहती है, इस सिलसिले मे कह सकते है कि समीपता के नियम का इस सम्बन्ध मे प्रथम स्थान है। इस क्रम मे समानता साहचर्य का स्थान दूसरा और विरोध साहचर्य का तीसरा है।

उपर्युक्त तीनों नियमो की सत्यता को साधारण प्रयोग द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है। आप किसी प्रयोज्य का सावधान सकेत के बाद एक उत्तेजक शब्द देकर उसके मन मे क्रमश आए हुए शब्दों का लिखने का कहे और उससे एक मिनट तक लिखवाएँ। एक मिनट होने पर प्रयोग समाप्त कर दे और अपने प्रयोज्य से पूछकर उत्तेजक शब्द के बाद अन्य लिखे हुए शब्दों को लिखने का कारण पूछे। जब सभी शब्दों के लिखने के कारणों को पूछकर लिख ले। तब गिनकर देख ले कि कितने शब्द समीपता नियम, कितने समानता और कितने विरोध-नियमों के कारण लिखे गए है।

(२) गौण साहचर्य-नियम

(Secondary laws of association)

गौण साहचर्य नियम का नामकरण हम ऊपर कर चुके है, वे ये है —(१) प्रारम्भिकता का नियम, (२) तात्कालिक अथवा नवीनता का नियम (३) वारवारता का नियम और (४) स्पष्टता का नियम। इनकी कार्यवाहियों का अनुभव हमलोगो को अपने व्यावहारिक जीवन में नित्य-प्रति होता है।

(१) प्रारम्भिकता का नियम (Law of primacy) —अन्य बाते समान रहने पर प्रारम्भिक सस्कार अधिक समय तक दृढ रहते है और वे सरलतया अनुजीवित

(Survived) भी होते है। किसी पढ़ी हुई कविता की प्रारम्भिक पंक्तियां बीच की पंक्तियों की अपेक्षा आसानी से याद हो आती है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि उन्हें याद करने में साहचर्य का यह नियम सहायता करता है।

(२) नवीनता का नियम (Law of recency) अन्य अंग समान रहने पर नवीन संस्कार आसानी से चेतना के [illegible] आते है। [illegible] एक ही तरह की बाते करे तो कुछ समय के बाद उनकी [illegible] का अंतिम अंश, [illegible] की अपेक्षा शीघ्रता और आसानी [illegible]। [illegible] अंतिम अंश अन्य अंशों की अपेक्षा [illegible] है।

(३) बारबारता का नियम (Law of frequency) साहचर्य के इस नियम के अनुसार अन्य अंश समान रहने पर [illegible] अधिक हुई रहती है वह उतनी ही सुविधा के साथ किसी समय में याद [illegible] जाता है। [illegible] बारबारता नियम के अनुसार होता है।

(४) स्पष्टता का नियम (Law of vividness) — अन्य अंग समान रहने पर जब किसी उत्तेजना की अनुभूति अथवा याद [illegible] स्पष्ट रहता है तो उसका प्रत्याह्वान आसानी से होता है। साहचर्य के इस नियम को स्पष्टता का नियम कहते हैं।

साहचर्यवादी मनोवैज्ञानिक सभी मानसिक प्रक्रियाओं की व्याख्या साहचर्य नियमों के ही आधार पर करते हैं, क्योंकि उनके अनुसार मनोविज्ञान का यही एकमात्र मौलिक सिद्धान्त है। लेकिन, वस्तुतः ये नियम स्वतन्त्र कार्य नहीं करते, बल्कि ये भी व्यक्ति की मनोवृत्ति (Attitude) अभिरुचि आदि पर आधारित होते हैं। किसी घटना अथवा विषय के स्मृति-संस्कार (Memory traces) इसलिए [illegible] नहीं होते क्योंकि उसमे कोई साहचर्य कार्य करता है। बल्कि, वह साहचर्य नियम [illegible] कार्य करता है क्योंकि व्यक्ति उस घटना मे अभिरुचि रखता है। 'शिक्षण' के अध्याय में हम देखेंगे कि अभिरुचि के अभावमात्र से अभ्यास या बारबारता का विशेष महत्त्व नहीं होता। फिर भी हम साहचर्य के इन प्रधान और गौण नियमों की उपेक्षा नहीं कर सकते। ये नियम कई मानसिक-समस्याओं को समझने में सहायक होते हैं।

साहचर्य-प्रकार

(Kinds of association)

मुख्य रूप से साहचर्य दो प्रकार का होता है स्वतन्त्र साहचर्य (Free association) और नियन्त्रित साहचर्य (Controlled association)।

१ स्वतन्त्र साहचर्य—(Free association) व्यक्तित्व के अध्ययन में स्वतन्त्र-साहचर्य का काफी महत्त्व है। इसके सहारे व्यक्तित्व की विभिन्न भाव ग्रन्थियां (Complexes) मन के छिपे भावों तथा व्यक्ति की विचारधारा का आधार मालूम किया जाता है। स्वतन्त्र साहचर्य-परीक्षण में कुछ शब्द या चित्र प्रयोज्य (Subject) के समक्ष क्रमशः उपस्थित किए जाते हैं। प्रत्येक शब्द (उत्तेजना) के सुनते या देखते ही

प्रयोज्य के मन में जो पहला शब्द या चित्र आता है, उसे वह व्यक्त करता है। प्रयोक्ता प्रयोज्य की प्रतिक्रिया को किसी प्रकार प्रभावित नही करता और न अपना कोई विचार ही अभिव्यक्त करता है। प्रयोज्य को स्वतन्त्रता दी जाती है कि वह किसी भी शब्द से प्रतिक्रिया करे (जो सर्व प्रथम उसके मन मे आता है) प्रतिक्रिया के अच्छा बुरा या उचित अनुचित का वह विचार न करे। जैसे मानले, प्रयोक्ता कहता है "टेबुल"। टेबुल सुनने के साथ मान ले प्रयोज्य के मन मे शब्द आता है "कुर्सी"। यहा 'टेबुल' उत्तेजक शब्द हुआ और कुर्सी प्रतिक्रिया शब्द।

किन्तु, यहाँ इस प्रश्न पर विचार आवश्यक प्रतीत होता है कि स्वतन्त्र साहचर्य वस्तुत स्वतन्त्र होता है या उसमे भी किसी प्रकार का प्रतिबन्ध रहता है। ध्यान देने पर पता चलता है कि वस्तुत स्वतन्त्र साहचर्य पूर्णत स्वतन्त्र नही होता। प्रयोज्य के मन मे जो पहला शब्द आता है उसे व्यक्त करने मे वह कई बात सोचता है, यथा यह शब्द ठीक है या नही, अच्छा है या बुरा, सार्थक है या नही आदि। फलत वह कभी कभी उचित शब्द न बताकर दूसरा शब्द व्यक्त कर देता है। उसी तरह कभी कभी एक ही साथ, किसी उत्तेजक शब्द को सुनकर कई शब्द मन मे चले आते है। चूँकि, प्रयोज्य को कोई एक शब्द ही कहना रहता है, इसलिए कई बातों का असर एक शब्द के चुनाव में पडता है। इस प्रकार हम देखते है कि स्वतत्र साहचर्य भी पूर्णत स्वतत्र नही होता। यह भी कई बातो से निर्धारित होता है

(२) नियन्त्रित-साहचर्य (Controlled association) नियन्त्रित साहचर्य परीक्षण मे प्रयोज्य की प्रतिक्रिया को प्रयोक्ता नियन्त्रित करता है। प्रयोज्य को प्रत्येक उत्तेजक-शब्द की प्रतिक्रिया ऐसे शब्द से देनी होती है जो प्राय निश्चित रहती है। प्रयोज्य किस उत्तेजक शब्द की प्रतिक्रिया करेगा यह प्राय प्रयोक्ता पहले से जानता रहता है। जैसे मान ले प्रयोक्ता कहता है 'मै जो शब्द कहूँ उसका विपरीतार्थक शब्द जितनी शीघ्रता से आप कह सके।' ऐसी स्थिति मे यदि वह 'आकाश' कहता है तो यह भी जानते रहता है कि प्रयोज्य इसकी प्रतिक्रिया मे 'पाताल' कहेगा, क्योंकि आकाश का विपरीतार्थक शब्द पाताल ही है। इस तरह के परीक्षण मे केवल यह देखा जाता है कि प्रयोज्य कितनी जल्द शुद्ध प्रतिक्रिया करता है। दूसरे शब्दों मे, प्रयोक्ता पहले से यह जानता रहता है कि प्रयोज्य अमुक उत्तेजना की अमुक तरह की प्रतिक्रिया करेगा। वह केवल देखता यह है कि प्रयोज्य कितना जल्द शुद्ध प्रतिक्रिया करता है, जिस व्यक्ति मे शब्द ज्ञान और साहचर्य की जितनी ही कमी होगी उसका नियन्त्रित प्रतिक्रिया काल (Controlled reaction time) उतना ही अधिक होगा, हमारे दैनिक जीवन की क्रियाओं मे नियन्त्रित साहचर्य का योग अत्यधिक रहता है। हम जब भी कुछ कार्य करते या कोई समस्या सुलझाते है, एक विशेष स्थिति और सदर्भ मे सुलझाते है। उस सदर्भ या परिस्थिति से सम्बन्धित कुछ प्रतिमा और स्मृतियाँ होती है जिनसे समस्या के समाधान (Problem solving) में सहायता मिलती है। हिसाब बनाते समय एक खास तरह की मानसिक क्रियाएँ होती है, साहित्य के अध्ययन मे क्रियाओं की एक दूसरी दिशा रहती है। इसी तरह, प्रत्येक अवस्था मे हमारी प्रतिक्रियाएँ नियन्त्रित रहती है।

नियन्त्रित साहचर्य दो तरह का होता है - (क) आंशिक नियन्त्रित साहचर्य और (ख) पूर्ण नियन्त्रित साहचर्य। आंशिक नियन्त्रित साहचर्य में प्रयोज्य को कई निश्चित प्रतिक्रियाओं में एक प्रतिक्रिया करनी होती है। जैसे मान लें प्रयोक्ता यह कहता है कि 'हम जिस चीज का नाम लें तुम उस चीज का अंश बोलोगे।' अब मान लें वह कहता है 'घर'। घर का अंश कोई एक चीज नहीं है बल्कि खिड़की, दरवाजा, दीवार, छत, आँगन आदि कई चीजें हैं। प्रयोज्य इनमें से किसी भी शब्द से प्रतिक्रिया कर सकता है। इस तरह, यहाँ उसकी प्रतिक्रिया पूर्णतः नियन्त्रित नहीं होती है। उसे कई निश्चित शब्दों में किसी एक से प्रतिक्रिया करने की छूट रहती है। इसी से इसे आंशिक नियन्त्रित साहचर्य कहते हैं।

पूर्ण नियन्त्रित साहचर्य में प्रयोक्ता कुछ ऐसी दशा लगा देता है कि प्रत्येक उत्तेजना की एक निश्चित प्रतिक्रिया ही हो सकती है। उदाहरणार्थ यदि उत्तेजना के विपरीतार्थक शब्दों में प्रतिक्रिया करने को कहा जाय तो प्रत्येक उत्तेजना की कोई एक ही प्रतिक्रिया होगी। प्रयोज्य को प्रतिक्रिया करने में किसी तरह की छूट या स्वतन्त्रता नहीं होगी। ऐसी स्थिति में 'रात' की प्रतिक्रिया प्रयोज्य को 'दिन' से ही करनी होगी और ऊँचा के लिए 'नीचा' तथा 'भला' के लिये उसे 'बुरा' ही कहना होगा। इनमें किसी भी प्रतिक्रिया में कोई दूसरा शब्द नहीं कहा जा सकता। इसी तरह, किसी संज्ञा का विशेषण या विशेषण का संज्ञा शब्द द्वारा प्रतिक्रिया करना भी पूर्ण नियन्त्रित प्रतिक्रिया है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि साधारणतः दोनों प्रकार के साहचर्य सम्बन्धी प्रयोगों में प्रयोज्य को उत्तेजक शब्दों की प्रतिक्रिया में दूसरे शब्द देने होते हैं। फिर भी कुछ मनोवैज्ञानिकों ने साहचर्य का प्रयोग कुछ दूसरे तरीके से भी किया है जैसे किसी उत्तेजक शब्द को दिखलाने पर उसे पढ़ना, किसी पदार्थ का नाम व्यक्त करना, दूसरा शब्द बोलना या लिखना, अथवा दो अंकों का योगफल व्यक्त करना, आदि।

साहचर्य-संबन्धी प्रयोगों के परिणाम

(Results of the experiments on Association)

नियन्त्रित साहचर्य में प्रयोज्य द्वारा व्यक्त किये गये प्रतिक्रिया शब्दों की शुद्धि या अशुद्धि का पता लगाकर उसकी भाषा और शब्द ज्ञान की जानकारी प्राप्त की जाती है। दूसरी ओर स्वतन्त्र-साहचर्य के द्वारा साहचर्यात्मक प्रतिक्रिया-काल की बारम्बारता (Frequency) उत्तेजक और प्रतिक्रिया-शब्द का सम्बन्ध, और प्रयोज्य की भावना ग्रन्थियों (Complexes) का पता लगाया जाता है। यहाँ इनका क्रमशः संक्षेप में उल्लेख करना समुचित होगा।

साहचर्यात्मक-प्रतिक्रिया-काल

(Associative reactiontime)

साहचर्यात्मक-प्रतिक्रिया काल कई विधियों से निकाला जाता है। कभी तो उत्तेजक शब्द बोलकर, और कभी दिखलाकर उपस्थित किया जाता है। प्रयोज्य भी, जैसा कि

पहले ही व्यक्त किया जा चुका है, कभी एक शब्द बोलकर प्रतिक्रिया करता है, तो कभी पदार्थ का नामकरण करके और कभी उसको पढ करके। विधि को अपनाना प्रयोक्ता पर निर्भर करता है। जब पढने के प्रतिक्रिया काल को जानना रहता है तब प्रयोक्ता प्रयोज्य को शब्द, अक्षर या अक दिखलाकर उन्हे उच्च स्वर से यथा शीघ्र पढकर प्रक्रितिया करने को कहता है। इस विधि का प्रयोग केटिल (Cattell) ने प्रतिक्रिया-काल निकालने मे किया था। उसके प्रयोग परिणाम से यह स्पष्ट है कि बड़े शब्द और सख्याओं के लिये प्रयोज्यों के प्रतिक्रिया काल छोटे शब्द और सख्याओं की अपेक्षा अधिक (बड़ा) होते है। यह अन्तर इसलिए होता है कि बडे शब्दो या सख्याओ को देखने मे छोटे शब्दो या सख्याओं की अपेक्षा अधिक समय लगता है। प्रयोग से यह भी पता चला कि एक बडे अक्षर को पढने मे जितना समय लगता है उतना ही समय एक छोटे शब्द को पढने मे भी लगता है।

पदार्थ-नाम (Object name) के द्वारा जब प्रतिक्रिया काल निकालना होता है तो प्रयोज्य को परिचित पदार्थों का चित्र या रग दिखलाया जाता है और उसे उन पदार्थों का नाम व्यक्त करना पडता है। इस विधि से केटिल (Cattle), उडवर्थ (Woodworth) तथा वेल्स (Wells) ने विभिन्न प्रयोज्यों का प्रतिक्रिया काल निकाला है। उनके प्रयोज्यों के प्रतिक्रिया काल से यह निर्विवाद है कि पढने की अपेक्षा पदार्थ-नाम व्यक्त करने मे अधिक समय आता है। इसके कई कारण है। पहली बात यह है कि हम लोग जब किसी शब्द को देखते है तो उसे मन मे पढ भी लेते है, किन्तु जब रग को देखते है तो उसे या उससे आबद्ध पदार्थ का नामकरण नही करते। इसलिये शब्दों को देखने और पढने का अभ्यास (Practice) सा हो जाता है, जब कि रगों को देखकर उनके पदार्थों का नामकरण का अभ्यास नही हो पाता। अतएव यह अभ्यास भी इन दोनो के प्रतिक्रिया काल के अन्तर का कारण कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, जब हमे कोई शब्द दिखलाया जाता है तो उसे पढना मात्र रहता है, परन्तु जब कोई रग या चित्र दिखलाकर किसी पदार्थ का नाम व्यक्त करना होता है, तब उस समय मन मे कई पदार्थ आ जाते है। उनमें से किसी एक को चुनकर व्यक्त करने में अधिक समय का लग जाना स्वाभाविक ही है। तीसरी बात यह है कि हम शब्द को देखते है और पढ देते है, किन्तु चित्र या रग को पहले अच्छी तरह पहचानते है और तब उस पदार्थ का नाम व्यक्त करते है। इसलिये पहचान कर नाम व्यक्त करने मे अधिक समय लग जाता है।

नियन्त्रित साहचर्य-विधि से जब प्रतिक्रिया काल निकाला जाता है तब प्रयोज्य को या तो उत्तेजक-शब्द का विरोधी (opposite) प्रतिक्रिया शब्द देना पडता है या उससे सबन्धित प्रतिक्रिया शब्द। पूर्ण नियत्रित साहचर्य मे शब्दों का ताँता नही लगता, क्योकि एक ही विरोधी शब्द सभव रहता है। किन्तु, आशिक नियन्त्रित साहचर्य मे कई शब्दों की सभावना रहने के कारण एक प्रतिक्रिया शब्द का चुनाव करना होता है, जिसमे कुछ देर लगती है। यही कारण है कि पूर्ण नियन्त्रित साहचर्य का प्रतिक्रिया काल आशिक नियन्त्रित साहचर्य के प्रतिक्रिया काल से कम होता है। लेकिन, यहाँ यह व्यक्त कर देना अप्रासगिक नहीं होगा कि सभी स्थलों पर ऐसा सही नहीं दीखता। जिस प्रयोज्य का शब्द-ज्ञान कम रहता है वह पूर्णनियन्त्रित साहचर्य-प्रतिक्रिया करने मे अधिक समय लगाता है। कभी कभी तो वह प्रतिक्रिया करने मे भी असमर्थ हो जाता है क्योंकि शब्द उसे मालूम नहीं रहता।

उदाहरणार्थ, यदि 'आकाश' शब्द सुनने पर प्रयोज्य को 'पाताल' (प्रतिक्रिया) न मालूम हो या न याद पडे तो उसके इस पूर्णनियन्त्रित प्रतिक्रिया मे देर होना या प्रतिक्रिया का न होना स्वाभाविक है।

बहुत वैज्ञानिको ने स्वतन्त्र साहचर्य-विधि (Free association method) से भी प्रतिक्रिया-काल निकाला है। कभी-कभी स्वतन्त्र साहचर्य मे प्रतिक्रिया-काल १० सेकेण्ड तक भी देखने मे आया है, किन्तु अधिकाश प्रयोगो के प्रतिक्रियाकाल का मध्यमान (Median) एक और दो सेकेन्ड के बीच पाया गया है। इस दिशा मे मर्फी (Murphy), यग (Young), वेशनर (Wreschner) और केन्ट (Kent) आदि के कार्य महत्वपूर्ण है।

मेजराथ (Menzerath) और वेल्स (Wells) ने अपने प्रयोज्यो पर विभिन्न उत्तेजक शब्दों के साथ लगातार कई दिनो तक प्रयोग करके यह प्रमाणित कर दिया है कि अभ्यास से प्रतिक्रिया काल मे कमी पडती है। किन्तु, यह कमी भी एक निश्चित सीमा का अतिक्रमण नही कर सकती। अभ्यास के प्रभाव के सम्बन्ध मे प्रयोगो से पता चलता है कि अभ्यास के कारण प्रयोज्य परिस्थिति मे अच्छी तरह अपने को व्यवस्थित कर लेता है, और इसलिये सरल प्रतिक्रिया शब्दो को चुनने मे उसे देर नही लगती। फलत, अभ्यास से प्रतिक्रियाकाल मे कमी आ जाती है। एण्डरसन (Anderson) के प्रयोगों से पता चलता है कि बच्चो का प्रतिक्रिया काल वयस्को की अपेक्षा अधिक होता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रयोगो से यह भी स्पष्ट है कि साहचर्यात्मक प्रतिक्रिया काल विभिन्न प्रकार के उत्तेजक और प्रतिक्रिया शब्दो पर भी निर्भर करता है।

अब यहाँ पर प्रश्न उठता है कि स्वतन्त्र साहचर्य का प्रतिक्रिया काल, नियन्त्रित-साहचर्य के प्रतिक्रिया-काल से अधिक होता है या कम? यो तो साधारणत कोई भी यही मान सकता है कि स्वतन्त्र साहचर्य मे प्रतिक्रिया पक्ष पर किसी तरह का प्रतिबन्ध नही रहता, इसलिये इसका प्रतिक्रिया काल नियन्त्रित साहचर्य के प्रतिक्रिया काल से अवश्य ही कम होगा। वेशनर (Wreschner) ने भी अपने प्रयोगात्मक परिणामो के आधार पर उपर्युक्त दृष्टिकोण को ही प्रतिपादित किया है। किन्तु, नियन्त्रित साहचर्य मे उसने जिन उत्तेजक शब्दों को चुना था वे बहुत ही कठिन थे। अतएव, उन शब्दो का प्रतिक्रिया शब्द भी विलम्ब मे ही दिया गया। मे (May) ने सन् १९१७ ई० मे कई प्रयोज्यो पर प्रयोग करने पर यह पाया कि स्वतन्त्र साहचर्य का प्रतिक्रिया काल नियन्त्रित साहचर्य के प्रतिक्रिया काल से अधिक होता है। लेकिन अभी तक यह निश्चित नहीं हो सका है कि यदि किसी उत्तेजक-शब्द का नियन्त्रित और स्वतन्त्र साहचर्य मे एक ही प्रतिक्रिया शब्द दिया जाय तो उन दोनों के प्रतिक्रिया काल मे अन्तर पड़ेगा या नहीं।

इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि थम्ब (Thumb) और मार्ब (Marbe) ने प्रयोगों द्वारा यह भी प्रदर्शित कर दिया हे कि प्रयोज्य जिस शब्द को अपनी प्रतिक्रियाओं में जितनी अधिक बार दुहराता है उसका प्रतिक्रिया काल उतना ही कम होता है। इसकी पुष्टि अन्य मनोवैज्ञानिको के प्रयोगों से भी होती हे। ऐसा क्यो होता हे, इसकी व्याख्या विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग की है। केम्पन के अनुसार जिस प्रतिक्रिया

शब्द की पुनरावृत्ति नही होती, वह उत्तेजक शब्द से सबन्धित नही रहता है। इसी कारण प्रतिक्रिया करने मे देर होती है। जिस प्रतिक्रिया शब्द को व्यक्त करने मे जितना ही अधिक समय लगता है, उसकी पुनरावृत्ति की सभावना उतनी ही कम रहती है। इसका अर्थ हुआ कि किसी प्रतिक्रिया शब्द की बारबारता उसके प्रतिक्रिया काल पर निर्भर करती है। लेकिन, क्रेन का कथन है कि वस्तुत बात उलटी है। यानी, प्रतिक्रिया शब्द की बारबारता पर ही उसका प्रतिक्रिया काल निर्भर करता है। उसके अनुसार व्यक्ति को जिस शब्द का अनुभव अपने जीवन मे अधिक हुआ रहता है, साहचर्य परीक्षण के सिलसिले मे उस शब्द से वह कई बार प्रतिक्रिया करता है और, जितनी ही बार वह अपनी प्रतिक्रिया मे उस शब्द को दुहराता है, उसका प्रतिक्रिया काल कम हो जाता है। इन दो तरहो की व्याख्याओ मे कोई स्पष्ट विरोध नही मालूम होता। हाँ, इतना मालूम पडता है कि प्रतिक्रिया-शब्द की बारबारता (Frequency) और प्रतिक्रिया काल मे निश्चित सबन्ध है, और सभवत ये परस्पर एक दूसरे पर निर्भर करते है।

साहचर्यात्मक प्रतिक्रिया-काल को प्रभावित करनेवाले अंग

(Factors affecting associative reaction time)

साहचर्य प्रतिक्रिया काल कई अगो (Factors) पर निर्भर करता है। यद्यपि विषयात्मक (Objective) रूप से यह सिद्ध करना बहुत कठिन है कि ये अग कहाँ तक सत्य और सार्थक है। तथापि, प्रयोज्य के अन्तर्निरीक्षण से इस पर काफी प्रकाश पड़ता है। हम यहाँ कुछ प्रमुख अगो की चर्चा करेगे जिनके कारण साहचर्य प्रतिक्रिया काल कम या अधिक होता है।

(१) अप्रत्यक्ष-प्रतिक्रिया (Indirect response) स्वतन्त्र साहचर्य सम्बन्धी प्रयोग मे प्रयोज्य को कभी कभी किसी उत्तेजक शब्द को सुन या देखकर कोई ऐसी चीज या घटना का नाम स्मरण हो जाता है जिसे प्रयोज्य प्रकट करना नही चाहता। इसे अप्रत्यक्ष प्रतिक्रिया कहते है जिसे प्रयोज्य अपने मन मे ही छिपाकर रख लेता है और किसी दूसरे शब्द को ढूँढ कर प्रतिक्रिया कर देता है। दूसरा शब्द ढूँढने के कारण उसका प्रतिक्रिया काल अधिक हो जाता है।

(२) व्याघातक प्रतिक्रिया-शब्द (Interfering response words) प्रयोज्यो के अन्तर्निरीक्षण मे मालूम होता है कि कभी कभी किसी उत्तेजक शब्द को सुनते ही कई शब्द एक साथ ही मानस-पटल पर चले आते है। फलत, किसी खास शब्द द्वारा प्रतिक्रिया करने मे विलम्ब हो जाता है। कारण, वे सभी शब्द अभिव्यक्त होना चाहते है पर प्रतिक्रिया किसी एक शब्द से करनी रहती है, इसलिये प्रयोज्य मन ही मन किसी एक शब्द का चुनाव करने लगता है। इस चुनाव के कारण प्रतिक्रिया काल अधिक हो जाता है।

(३) आन्तरिक ध्यान-भग (Internal distraction) उत्तेजक शब्द कभी कभी प्रयोज्य को किसी सुखद या दुखद घटना की याद भी दिला देता है। इससे क्षण मात्र के लिये वह प्रतिक्रिया करना भूल जाता है और अपना ध्यान उसी याद पर देने लगता है। परिणाम-स्वरूप, प्रतिक्रिया करने में देर हो जाती है।

(४) प्रतिक्रिया-शब्द का अभाव कभी कभी उत्तेजक शब्द को देखने या सुनने पर प्रयोज्य के मन मे किसी प्रकार का विचार या शब्द नहीं आ पाता। ऐसी स्थिति मे उसे प्रतिक्रिया करने के लिये कोई शब्द नहीं मिलता। फलत वह विलम्ब से प्रतिक्रिया करता है। यहा प्रतिक्रिया शब्द का अभाव या रिक्तता भी प्रतिक्रिया काल को प्रभावित करता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि यह रिक्त काल भी किसी भावात्मक अंग का ही द्योतक है।

(५) मानसिक झुकाव (Mental set) जब व्यक्ति का मानसिक झुकाव प्रतिक्रिया करने पर रहता है तो वह प्रतिक्रिया करने के लिए हमेशा तत्पर या तैयार रहता है। ऐसी स्थिति मे वह किसी भी उत्तेजक शब्द की प्रतिक्रिया शीघ्र कर देता है। दूसरी ओर जब उसकी इच्छा वैसी नहीं रहती और वह तत्परता की अवस्था मे नहीं रहता तो प्रतिक्रिया करने मे जल्दीबाजी नहीं कर पाता। फलत प्रतिक्रिया करने मे देर हो जाती है।

इसी तरह, प्रयोज्य की मानसिक भाव ग्रन्थि (Complex) उत्तेजक और प्रतिक्रिया शब्दो का सबन्ध आदि कुछ और भी प्रभाव अंग है जो साहचर्य प्रतिक्रिया काल को प्रभावित करते है।

उत्तेजक और प्रतिक्रिया शब्दो की सापेक्ष बारम्बारता

(Relative frequency of stimulus & response word)

विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रयोगो मे देखा है कि कई परिचित उत्तेजक शब्दो के प्रतिक्रिया शब्द एक ही होते हैं। स्वभावत यह तथ्य प्रारम्भ मे ही मनोवैज्ञानिको के कौतूहल और अनुसंधान का विषय बन गया। थम्ब (Thumb) तथा मार्ब (Marbe) ने पारिवारिक सम्बन्ध के द्योतक उत्तेजक शब्द (माता, पिता, भाई आदि), सुगम विशेषण, सज्ञा, क्रिया, स्थान और कालवाचक अव्यय तथा एक से दस तक के संख्यात्मक उत्तेजक शब्दो के साथ आठ प्रयोज्यो पर इस तथ्य की परीक्षा करने के लिए प्रयोग किया। प्रयोग परिणाम से पता चला कि प्रत्येक उत्तेजक शब्द की प्रतिक्रिया मे अधिकाश प्रयोज्यो ने एक विशेष प्रतिक्रिया शब्द व्यक्त किया था। संख्यात्मक उत्तेजक-शब्दो के प्रतिक्रिया शब्द प्राय उनके आगेवाले संख्यात्मक अंक थे, यथा, सात का प्रतिक्रिया शब्द आठ, पाँच का छ, तीन का चार आदि। जब 'कल' (व्यतीत) उत्तेजक शब्द दिया गया तब सभी प्रयोज्यों ने 'आज' ही प्रतिक्रिया शब्द व्यक्त किया। विशेषणो के प्रतिक्रिया शब्द प्राय उनके विरोधी विशेषण शब्द थे। इस्पर (Esper) ने थम्ब (Thumb) और मार्बे (Marbe) के प्रयोग की पुनरावृत्ति अमरीका मे की और उसे भी अपने प्रयोग में उपर्युक्त परिणाम मिला। श्मिट (Schmidt) ने जर्मनी में विभिन्न प्रकार के क्रिया शब्दो के साथ स्वतत्र साहचर्य का जो प्रयोग किया उसमे उसे देखने में आया कि क्रियावाचक उत्तेजक शब्दो के प्रतिक्रिया शब्द भी क्रियावाचक ही थे। उनमे या तो प्रतिक्रिया शब्द उत्तेजक शब्द का ही दूसरा रूप था या उत्तेजक शब्द के ही स्वरूप का कोई दूसरा क्रियावाचक शब्द।

केन्ट (Kent) और रोशनॉफ (Rosanoff) ने सन् १९१० ई० मे एक हजार वयस्क स्त्री-पुरुषों पर, जो विभिन्न व्यवसाय (Occupation) और शिक्षा के थे, सौ अंग्रेजी

शब्दों के साथ स्वतन्त्र साहचर्य का प्रयोग किया। शब्दों में अधिकांश संज्ञा और विशेषण शब्द ही थे, क्रिया शब्दों की संख्या बहुत कम थी। प्रत्येक प्रयोज्य प्रयोक्ता की ओर पीठ करके बैठाया गया था और प्रयोग में शाब्दिक प्रतिक्रिया शब्द लिया गया था। यदि कोई प्रयोज्य किसी शब्द को दुहराता या किसी मुहावरे का प्रयोग करता अथवा प्रतिक्रिया में असफल होता था तो उस समय उसके उस शब्द का प्रतिक्रिया-शब्द न लेकर प्रयोग के अन्त में लिया जाता था। सभी प्रयोज्यों पर अब जब प्रयोग समाप्त हो गया तब उनके प्रतिक्रिया शब्दों को बारबारता तालिका (Table of frequency) में व्यवस्थित किया गया। इस तालिका से यह स्पष्ट हुआ कि किस उत्तेजक शब्द की प्रतिक्रिया कितने प्रयोज्यों ने एक ही की थी। उदाहरणार्थ 'Needle' उत्तेजक शब्द का १६० प्रयोज्यों ने 'Thread', १५८ ने 'Pin' और १५२ ने 'Sharp' तथा १३५ ने 'Sew' प्रतिक्रिया शब्द व्यक्त किया था। प्रतिक्रिया शब्दों की बारबारता में क्रमशः कमी होती गयी और तालिका से पता चला कि ३१ प्रयोज्यों ने विभिन्न शब्दों को Needle उत्तेजक शब्द के प्रति व्यक्त किया। अन्य उत्तेजक शब्दों की प्रतिक्रियाओं की बारबारता (Frequency) भी ऐसी ही थी। जो प्रतिक्रिया शब्द तालिका में अकेला था उसे व्यक्तिगत (Individual) प्रतिक्रिया शब्द की श्रेणी में रक्खा गया। इन व्यक्तिगत प्रतिक्रिया शब्दों का अध्ययन करने से मालूम हुआ कि साधारण शिक्षा के सामान्य व्यक्तियों के ऐसे प्रतिक्रिया शब्दों की संख्या तालिका में ५२ प्रतिशत के लगभग थी। कॉलेज विद्यार्थियों में इसकी संख्या ९३ और मनोविदलित (Schizopheremic) व्यक्तियों में ऐसे शब्दों की संख्या २९ प्रतिशत से लेकर ५० प्रतिशत तक थी। इससे यह स्पष्ट है कि जिसमें असामान्यता (Abnormality) की मात्रा जितनी अधिक थी उसमें व्यक्तिगत प्रतिक्रिया शब्दों की संख्या भी उतनी ही अधिक थी। प्रतिक्रिया-शब्दों की बारबारता के सम्बन्ध में इसी तरह के परिणाम उडरो (Woodrow) तथा लॉवल (Lowell) को भी मिले। इन्होंने एक हजार पाठशालीय बालकों पर, जिनकी अवस्था ९ से १२ वर्ष तक की थी, १०० उत्तेजक शब्दों के साथ स्वतन्त्र साहचर्य का प्रयोग किया था।

कोनर (Connor) ने सन् १९२८ ई० में केण्ट रोशनॉक के ही शब्दों के साथ एक हजार व्यवसायियों (Professionals) के प्रतिक्रिया शब्दों का अध्ययन किया। इनमें न तो स्त्रियाँ थीं और न बच्चे। उनके प्रतिक्रिया शब्दों के अध्ययन से स्पष्ट है कि व्यवसायी व्यक्तियों के प्रतिक्रिया शब्द अन्य स्त्री-पुरुषों के प्रतिक्रिया शब्दों से भिन्न होते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार स्त्री-पुरुषों के प्रतिक्रिया शब्द बच्चों से भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए कुछ खास उत्तेजक शब्दों के प्रतिक्रिया शब्द नीचे की तालिका में दिए जा रहे हैं —

उत्तेजक शब्द	प्रतिक्रिया शब्द	१००० बालक	१००० स्त्री पुरुष	१००० व्यवसायी
Table	Food	३५८	६३	४०
	Chair	२४	२७४	३३३
Soft	Pillow	१३८	५३	४२
	Hard	२७	३६५	५४८
Dark	Night	४२१	२२१	१६२
	Light	३८	४२७	६२६

Mountain	High	३९०	[illegible]	[illegible]
	Hall	९८	[illegible]	[illegible]

उपर्युक्त प्रतिक्रिया शब्दों से यह स्पष्ट है कि जब बच्चों को [illegible] दिया गया तो उन्होंने उसके सम्बन्ध में ही पूरा या अपूर्ण, कुछ [illegible] प्रयोज्यों ने उसके समकक्ष या समानान्तर (Co-ordinate) भाव का व्यक्त किया। इसी तरह इसी प्रयोग से पता चला कि बच्चों के प्रतिक्रिया शब्दों में [illegible] की संख्या बहुत कम थी, लेकिन वयस्कों के साथ ऐसी बात नहीं थी।

प्रतिक्रिया-शब्दों का वर्गीकरण

(Classification of response words)

ऊपर यह स्पष्ट हो चुका है कि एक ही उत्तेजक शब्द के कई तरह के प्रतिक्रिया दिए जाते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि किसी प्रकार के प्रतिक्रिया शब्द होने के पीछे कुछ निश्चित कारण रहता है। बच्चों और वयस्कों की प्रतिक्रियाएँ अलग अलग तरह की होती हैं, क्योंकि प्रतिक्रिया शब्द पर आयु और अनुभव का प्रभाव पड़ता है। जिसका अनुभव जिस तरह का होगा उसके प्रतिक्रिया शब्द उसी तरह के होंगे। यहाँ हम कुछ सामान्य कारणों के आधार पर कुछ खास प्रतिक्रिया शब्दों के प्रकार की चर्चा करेंगे।

ओटिस (Otis) ने जो प्रयोग स्वतन्त्र साहचर्य का किया उसमें उसे कई प्रकार के प्रतिक्रिया शब्द मिले। चार पाँच वर्ष के अधिकांश सामान्य बच्चों ने उत्तेजक शब्द की पुनरावृत्ति मात्र की, पाँच वर्ष के बच्चों ने प्राय ऐसे प्रतिक्रिया शब्दों को व्यक्त किया जिन्हे वे अपने कमरे में देख सके जिनका सम्बन्ध उत्तेजक शब्द से कुछ भी नहीं था, जैसे [illegible], लैम्प कोट आदि। बहुत प्रयोज्यों ने उत्तेजक शब्द की ध्वनि के समान प्रतिक्रिया शब्द को दिया। इस प्रकार के शब्द प्रयोग किसी विशेष अवस्था के प्रयोज्यों में नहीं, वरन् सभी अवस्था के प्रयोज्यों में यत्र तत्र दिखलाई पड़े। चार से सात वर्ष तक के बच्चों ने वाक्य की प्रतिक्रियाएँ भी की। जैसे 'बर्फ' कहने पर 'बर्फ मुलायम है' या 'अंधेरा' कहने पर 'रात अन्धेरी है' आदि वाक्यों का व्यवहार उपर्युक्त अवस्था के बालकों ने किया। किन्तु ६ वर्ष से ऊपर के बच्चों ने प्राय एक ही शब्द प्रतिक्रिया रूप में व्यक्त किया।

कई विद्वानों के प्रयोगों से यह भी मालूम होता है कि निर्देशन देने पर भी छोटे बच्चे एक शब्द की प्रतिक्रिया न करके एक से अधिक शब्दों द्वारा उत्तेजक शब्दों की परिभाषा देने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार प्रतिक्रिया शब्दों का बाहुल्य मन्द बुद्धि के प्रौढ़ों (Dull adults) में भी पाया जाता है। बच्चों और मन्द बुद्धि प्रौढ़ों को यदि पहाड़ उत्तेजक शब्द दिया जाय तो वे प्रतिक्रिया शब्द में 'बड़ा पहाड़', 'टेबुल' कहने पर 'लकड़ी का बना' आदि कहेंगे। प्रति शब्दों (Synonyms) को भी देने की प्रवृत्ति प्रयोज्यों में पायी जाती है, जिन्हे हम परिभाषा के ही अन्दर रख सकते हैं जैसे (१) रामायण (प्र) पुस्तक (२) आम (प्र) फल आदि। इस तरह हम देखते हैं कि बच्चों और मन्द-बुद्धि के व्यक्तियों के प्रतिक्रिया शब्द एक खास प्रकार के होते हैं।

रोशनॉफ (Rosanoff) के प्रयोगों से यह प्रमाणित है कि 'वैज्ञानिक' उत्तेजक-शब्द देने पर शिक्षित प्रयोज्य भी अधिकाशत एसे ही प्रतिक्रिया शब्दों को देते है, जिनमे परिभाषा देने की ही प्रवृत्ति मालूम होती है। फिर भी, एसे व्यक्तियों की प्रतिक्रिया मे सम्बंधित शब्दो की सख्या ही अधिक रहती है। प्राकृतिक विज्ञान (Natural science) मे परिचित प्रयोज्य वैज्ञानिक उत्तेजक शब्द देने पर प्रयोज्यों को अपक्षा अधिक समकक्ष (Coordinate) प्रतिक्रिया शब्दो को व्यक्त करते है। प्राणी विज्ञान (Biology) से उत्तेजक शब्द देने पर प्राणी विज्ञान वेत्ताओ के प्रतिक्रिया शब्द अन्य विज्ञान वेत्ताओं की अपक्षा विशिष्ट प्रकार के होते है, इससे यह सिद्ध होता है कि परिचित उत्तेजक शब्दों की प्रतिक्रिया मे उससे सम्बन्धित शब्द ही अधिक व्यक्त दिए जाते है।

प्रयोज्यो मे कुछ एसे प्रतिक्रिया शब्दों को देने की भी प्रवृत्ति देखने मे आती है जिनसे उस शब्द के प्रति उनकी रुचि का पता चलता है। जैसे 'स्त्री' कहने पर 'दयालु' 'झूठी' 'अच्छी' 'सुन्दर' 'मधुर' या 'कमजोर' आदि प्रतिक्रिया शब्द इसके द्योतक है।

युग (Jung) ने विभिन्न प्रतिक्रिया शब्दो को अठारह वर्गों मे बाँटा है। वेल्स (Wells) भी कुछ दिनों तक उन्ही विभाजनों को मानता रहा, किन्तु बाद मे उसने सभी प्रतिक्रियाओ को पाँच भागो मे रक्खा। उन श्रेणियो का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नही है। किन्तु, हम युग (Jung) और वेल्स (Wells) के सभी वर्गीकरणों के आधार पर प्रतिक्रिया शब्दों को तीन प्रधान श्रेणियों मे विभाजित कर सकते है —

(१) सवेगात्मक प्रतिक्रिया (Emotional response)

(२) तथ्यात्मक-प्रतिक्रिया (Factual response)

(३) शब्दात्मक प्रतिक्रिया (Verbal response)

प्रतिक्रिया करने मे असफल होना, असम्बद्ध (Unrelated) वस्तु या व्यक्ति का प्रतिक्रिया शब्द देना, तथा विस्मय बोधक अव्यय आदि को भी सवेगात्मक वर्ग के ही अन्तर्गत रखना उचित है, क्योंकि ऐसी प्रतिक्रियाओ से प्रयोज्य के सवेगात्मक जीवन पर प्रकाश पडता है। जो प्रतिक्रिया शब्द समान या एकरूप विरोधी समकक्ष आदि होते है, उन्हे तथ्यात्मक वर्ग मे रखा जाता है। उदाहरणार्थ कुछ उत्तेजक और प्रतिक्रिया शब्दों के जोडे इस तरह पाए जाते है —कली फूल, गाय घोडा, दिन रात, फल आम आदि। शब्दात्मक प्रतिक्रिया शब्दों के उदाहरण इस तरह की प्रतिक्रियाओ मे मिलते है—आगे-बढना, श्याम-पट, गहराई गहरा, डाक हाक, आदि।

यहाँ हमें यह नही भूलना होगा कि जिन विद्वानों ने प्रतिक्रियाओं का विभाजन किया है, उनमें मतैक्य नही है, क्योंकि कभी कभी ऐसे प्रतिक्रिया शब्द होते है जो कहे जा सकते है यथा हाथ-पैर। यहाँ 'पैर' 'हाथ' का विरोधी, समान या समकक्ष कुछ भी हो सकता है। इसलिए प्रतिक्रियाओं का विभाजन करने के लिये प्रयोज्य के अन्तर्निरीक्षण का आश्रय प्राप्त करना अत्यावश्यक हो जाता है। जितने भी प्रयोग इस दिशा मे हुए है उनका अध्ययन करने से यह विदित होता है कि प्रयोज्यों के प्रतिक्रिया शब्द प्राय उसे व्यक्तिगत अनुभव के भाव, विचार, वस्तु, घटना या परिस्थिति से सबन्धित शब्द होते है। जिहेन (Ziehen) ने १४ वर्ष तक के अनेकों बच्चों पर लगातार प्रयोग करके यह दिखला

दिया है कि अवस्था वृद्धि के साथ छिछले (Superficial) प्रतिक्रिया शब्दों की संख्या बढ़ती जाती है और व्यक्तिगत अनुभवों और अनुभूत पदार्थों की संख्या में कमी आने लगती है। युग (Jung) का कहना है कि अशिक्षित व्यक्तियों के प्रतिक्रिया शब्द मात्र की होती है, क्योंकि वे उत्तेजक शब्द की सार्थकता पर विशेष ध्यान नहीं देते। जो कम शिक्षित रहते हैं उनके प्रतिक्रिया शब्द अधिक सम्बन्धित और सार्थक होते हैं।

मर्फी (Murphy) तथा वेल्स (Wells) के अध्ययन इसके साक्षी हैं कि जहाँ तक प्रतिक्रियाओं के वर्गीकरण का प्रश्न है वहाँ तक मनोविकृत (Psychotic) तथा सामान्य व्यक्ति में विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। हाँ, अवस्था विशेष में उनके प्रतिक्रिया शब्द आत्मगत (Subjective) अवश्य होते हैं। विकृत व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएँ बच्चों की अपेक्षा सामान्य वयस्कों की प्रतिक्रियाओं से अधिक मिलती हैं। इसतरह, मनोवैज्ञानिकों ने कई तरह के प्रतिक्रिया शब्दों को बताने तथा उन्हें कुछ वर्गों में बाँटने का प्रयास किया है। इनके पीछे जो कारण या आधार होते हैं उन्हें भी यथासम्भव स्पष्ट करने की कोशिश की गई है।

स्वतन्त्र साहचर्य का अनुसंधानात्मक और निदानात्मक महत्त्व

(Detective & diagnostic value of free association)

कई देशों में अपराध या संवेगात्मक उद्वेग (Disturbance) का पता लगाने के लिए स्वतंत्र साहचर्य का प्रयोग काफी प्रचलित है। अब कुछ भारतीय मनोवैज्ञानिकों की अभिरुचि भी इस ओर बढ़ी है, और वे इस विधि का व्यवहार यहाँ भी करने लगे हैं। यहाँ एक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में होते स्वतन्त्र शब्द साहचर्य परीक्षण की प्रयोगावस्था का चित्र दिया जाता है

चित्र संख्या ६२



स्वतंत्र शब्द साहचर्य का प्रयोग

किसी अपराध का पता लगाने के लिये कम से कम बीस ऐसे उत्तेजक शब्दों को चुना जाता है जो अपराधी को उस अपराध की परिस्थिति या उससे आबद्ध अन्य दृश्यों का स्मरण दिला सके। पुन उन शब्दों को अस्सी अन्य शब्दों के बीच यत्र तत्र रख दिया जाता है। तब प्रयोज्य को उत्तेजक शब्द के सुनने पर मन मे आये हुए पहले शब्द द्वारा प्रतिक्रिया करने का निर्देशन दिया जाता है। बाद मे एक एक उत्तेजक शब्द क्रमश बोला जाता है और प्रयोज्य के प्रतिक्रिया काल को विराम घडी (Stop-watch) की सहायता से अकित किया जाता है। उसके प्रतिक्रिया शब्द को भी लिखा जाता है, और भावभगिमा का भी निरीक्षण द्वारा अकन किया जाता है। कभी कभी इस विधि मे यन्त्रों द्वारा रक्तचाप (Blood pressure) का ज्ञान भी प्राप्त किया जाता है। इस प्रयोग का मुख्य सिद्धान्त यही है कि प्रयोज्य सार्थक उत्तेजक शब्द की प्रतिक्रिया ऐसे आबद्ध प्रतिक्रिया शब्द से करता है जिससे उसके अपराध पर प्रकाश पडता है। यदि उस शब्द का वह दमन करता है तब प्रतिक्रिया-काल स्वत अधिक होता है, और इससे भी उसके अपराध का प्रकाशन होता है।

अपराध का पता लगाने के लिये इस विधि का व्यवहार सर्वप्रथम वर्दीमर (Wertheimer) ने किया था। तब से कितने विद्वानों ने इसका इस्तेमाल असली अपराधियों का पता लगाने के लिये या इसकी उपादेयता जाँचने के लिये, प्रयोगशालाओं मे किया है। कुछ विद्वानो को इसकी सार्थकता पर पूर्ण विश्वास है, किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिक इसे सन्देह की दृष्टि से देखते है। इस सम्बन्ध मे यह स्मरणीय है कि जब इसका व्यवहार सिर्फ एक प्रयोज्य पर किया जाता है तब उसके प्रतिक्रिया शब्द और प्रतिक्रिया काल के आधार पर उसके अपराध का निर्णय करना कठिन और कभी कभी गलत हो जाता है। अतएव अपराध का पता लगाने के लिये यह आवश्यक है कि सन्देहपात्र के साथ साथ कुछ अन्य व्यक्तियों पर भी इसका प्रयोग किया जाय और तब उनके प्रतिक्रिया-काल और प्रतिक्रिया शब्दों की तुलना करके किसी निर्णय पर पहुँचा जाय। तुलनात्मक आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुचने से उसकी सत्यता की सभावना बहुत अधिक हो जाती है। यद्यपि इस विधि से अभीतक सभी अपराधो का पता नही लगाया जा सका है और न सभी स्थानों मे यह सफल ही होता है, किन्तु यदि सावधानी से इसका व्यवहार किया जाय तो अधिकाशत सफलता ही हाथ लगेगी।

औपचारिक (Clinical) क्षेत्र मे इसका व्यवहार युङ्ग (Jung) और रिकलीन (Riklin) ने किया था। तब से आज तक मानसिक रोगियों की भाव ग्रन्थियों का पता लगाने के लिये, मानसिक चिकित्सक इसका व्यवहार करते आये है। मानसिक चिकित्सकों का विश्वास है कि किसी प्रकार के रोग का कारण मनुष्य के अचेतन मन के दबे भाव-विचार होते है, जिनके सम्बन्ध मे रोगी को ज्ञान नही रहता और न वह उन्हे स्वीकार ही करता है। इस विधि से उन भावो पर काफी प्रकाश पडता है। इसमे भी उन्ही समस्याओ का हल किया जाता है जिनका अपराध का पता लगाने मे किया जाता है। अन्तर सिर्फ इतना ही रहता है कि उसमे प्रयोक्ता अपराध को जानता है, अपराधी को नही। किन्तु, इसमे प्रयोक्ता रोगी को

चित्र संख्या ५२ जो पृष्ठ २२४ पर छपा है, एल० एस० कालेज, मुजफ्फरपुर, (बिहार युनिवर्सिटी) की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में लिया गया।

जानता है, परन्तु रोग और उसके कारण को नहीं जानता। इसलिये उसे ऐसे-ऐसे उत्तेजक शब्दों को चुनना पड़ता है जो रोगी के जीवन के विभिन्न पहलुओं से आबद्ध हों, यथा, व्यापार, विवाह, मैत्री, असन्तुष्टि, झगड़ा, आदि। जब प्रयोक्ता शब्दों को चुन लेता है तब उन्हें अन्य साधारण उत्तेजक शब्दों के साथ मिलाकर एकान्त कमरे में स्वतन्त्र साहचर्य विधि से उसकी प्रतिक्रियाओं को अंकित करता है। जब पहली बार प्रयोग समाप्त हो जाता है तब वह पुनः उत्तेजक शब्दों को क्रमशः देकर पहले दिये हुए प्रतिक्रिया शब्द का प्रत्यावाहन (Recall) करवाता है। जहाँ प्रयोज्य कोई दूसरी प्रतिक्रिया देता है उस प्रयोग को अंकित कर लेता है। प्रतिक्रियाओं के आधार पर, इस तरह, भाव ग्रंथियों को जाना जाता है। अधिक प्रतिक्रिया काल, प्रतिक्रिया न करना, उत्तेजक शब्द को प्रतिक्रिया के पहले दुहराना, उसी को प्रतिक्रिया-शब्द के रूप में व्यक्त करना, उत्तेजक शब्द को भ्रमवश दूसरा शब्द समझना, असम्बद्ध या ध्वन्यात्मक प्रतिक्रिया शब्द, व्यक्तिगत प्रतिक्रिया, हँसना, मुस्कुराना, विस्मय, हकलाना, चेहरा फीका पडना, या प्रथम प्रतिक्रिया शब्द के प्रत्यावाहन (Recall) की असफलता, आदि चिन्ह भाव ग्रन्थियों के सूचक होते हैं। लेकिन, हमें यह याद रखना होगा कि मनोवैज्ञानिकों ने उपर्युक्त लक्षणों की सत्यता और विश्वसनीयता (Reliability) की परीक्षा की है। बहुत से चिन्ह भाव ग्रथियों के सूचक प्रमाणित हुए हैं और बहुत भाव ग्रन्थि को व्यक्त करने में असफल रहे हैं। यदि प्रयोज्य और प्रयोक्ता का सहयोग रहे तो इसमें अत्यधिक सफलता मिलती है। प्रयोज्य के सहयोग के अभाव में पूर्णतः सफल होना सन्देहास्पद हो जाता है। जाँच करने पर देखा गया है कि प्रतिक्रिया-काल में अधिक समय कभी कभी क्षणिक बाधा से भी होता है जिसका सम्बन्ध किसी प्रकार की भाव-ग्रन्थि से नहीं रहता। इसी तरह चेहरे का फीका पड़ना या भौचक्का होना, प्रयोगात्मक परिस्थिति के कारण भी होता है। प्रतिक्रिया शब्द के प्रत्यावाहन की असफलता भी स्मरण की अपनी मुख्य विशेषता है। इस प्रकार कभी-कभी भाव ग्रन्थियों का पता लगाना कठिन होता है। हल (Hull), हबार्ड (Hubbard) आदि विद्वानों ने भी उपर्युक्त भाव ग्रन्थि निरूपकों की विश्वसनीयता की जाँच करने पर यही परिणाम पाया है। इस प्रयोग-विधि में जो भी थोड़ा दोष हो, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि रोगियों की भाव-ग्रन्थियों पर इससे काफी प्रकाश पड़ता है और उन्हें दूर करने में मानसिक चिकित्सक सफल भी हो रहे हैं।

सातवाँ अध्याय

शिक्षण (प्रारम्भिक)

(Learning)

व्यक्ति की सभी क्रियाओं को मुख्यतौर से दो भागों में बाँट सकते हैं—कुछ क्रियाएँ जन्मजात होती है और कुछ अर्जित। जन्मजात क्रियाओं का अर्थ वैसी क्रियाओ से है जिनका मूल रूप गर्भावस्था मे ही रहता है और परिपक्वता के कारण धीरे धीरे उनका विकास और परिष्कार होता है, जैसे, हँसने, रोने तथा देखने, आदि की क्रियाएँ जन्मजात होती है। दूसरी ओर, अर्जित क्रियाएँ वैसी है जो वातावरण के सपर्क के कारण सीखी गई रहती है, जैसे, गाना, बाते करना, दौड़ना, पढना आदि अर्जित क्रियाएँ है। वस्तुत अर्जित व्यवहार और क्रियाओं के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है। इन अर्जित क्रियाओं का सबन्ध शिक्षण से है। हम तरह तरह की परिस्थितियों और व्यक्तियों के सपर्क मे आते है, और तरह तरह का ज्ञान तथा कौशल अर्जित करते है। यह अर्जित करने या सीखने का क्रम जन्म से मृत्यु तक चलता रहता है। इन अर्जित गुणों के सहारे ही हम विभिन्न परिस्थितियों में अपने को अभियोजित करते है। लड़का क्लास में जाता है और शिक्षक के बतलाने पर क्लास मे व्यवहार करना सीख जाता है। बाद मे वह जब भी क्लास मे जाता है उचित रूप से व्यवहार कर अपने को अभियोजित करता है। जिस व्यक्ति को कभी इस तरह का व्यवहार सीखने का मौका नहीं मिला है, वह क्लास मे अपने को अभियोजित नहीं कर पाता। यही हाल किसी समाज, सभा या परिवार मे व्यवहार करने के साथ भी है। जो इन परिस्थितियों मे व्यवहार करना सीख चुका है वह अपने को अभियोजित कर लेता है और जिसने नही सीखा है वह परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार नही कर पाता।

शिक्षण का कभी कभी व्यवहार पर गलत और बुरा असर भी पडता है। अनावश्यक भय, हिस्टिरिया, आदि मानसिक रोग गलत आदतों के सीखने के परिणाम है। इस तरह, शिक्षण का महत्त्व न केवल सामान्य, बल्कि असामान्य व्यक्तित्त्व के लिए भी बहुत अधिक है। इसीसे शिक्षण मनोविज्ञान का मुख्य अध्ययन-विषय माना जाता है।

शिक्षण का स्वरूप

(Nature of learning)

शिक्षण के स्वरूप के सम्बन्ध मे अभी तक विद्वानों मे मतैक्य नही है। इसका मुख्य कारण यह है कि हम अपने सामान्य जीवन मे इस पद का व्यवहार इतना अधिक करते है कि इसके साथ बहुत से अवैज्ञानिक अर्थ जुट गए है। मनोविज्ञान मे भी इस पद का व्यवहार विभिन्न अर्थों मे किया गया है। कभी इससे समस्या समाधान (Problem-solving) का बोध होता है, कभी सार्थक या निरर्थक पदों को याद करने का और कभी इसका व्यवहार कौशल (Skill) अर्जित करने के अर्थ मे होता है। इन्ही कारणों से इस पद को एक निश्चित परिभाषा की सीमा में बाँधना कठिन हो गया है।

इसकी परिभाषा देते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने कहा है कि किसी नवीन परिस्थिति में अभियोजन के लिए किया गया व्यवहार परिवर्तन शिक्षण है[१]। ध्यान देने पर उस परिभाषा में दो बातें मिलेंगी। पहली बात यह कि शिक्षण के कारण व्यवहार में परिवर्तन होता है और दूसरी यह कि उस परिवर्तन का ध्येय किसी नवीन परिस्थिति में अभियोजन करना रहता है। लेकिन, यह परिभाषा काफी प्रारम्भिक होने के कारण सर्वमान्य नहीं है। इसकी आलोचना करते हुए विद्वानों ने यह बतलाया है कि शिक्षण के द्वारा हम अपने व्यवहारों को हमेशा परिवर्तित (Change) नहीं करते, बल्कि बहुत से व्यवहारों को केवल परिमार्जित (Modify) करते हैं। परिमार्जन तथा परिवर्तन एक नहीं हैं। परिवर्तन का अर्थ किसी व्यवहार को बदलना है, परन्तु परिमार्जन का अर्थ व्यवहार में कुछ काट-छाँट या सुधार करना है। शिक्षण में ये दोनों प्रकार की क्रियाएँ सम्पादित होती हैं। अतएव शिक्षण व्यवहार का परिवर्तन और परिमार्जन दोनों ही है। जहाँ तक इस परिभाषा के दूसरे भाग का प्रश्न है, कुछ विद्वान इससे भी असहमत हैं कि शिक्षण के द्वारा व्यवहार में सदा अभियोजन लाना है। उनका कहना है कि शिक्षण के द्वारा हम सदा अपने को अभियोजित ही नहीं करते, बल्कि बहुत तरह के शिक्षण तो अभियोजन के लिए घातक सिद्ध होते हैं। उदाहरणार्थ, हम अपने जीवन में कई प्रकार के अकारण भय (Phobias) अर्जित करते हैं, कुछ व्यक्ति पानी, ऊँचे स्थान, अन्धेरे कमरे, आदि से डरते हैं। उनका इस प्रकार का शिक्षण अभियोजन में सहायक नहीं होता। अतः हम नहीं कह सकते कि शिक्षण सदा अभियोजन के लिये लाभप्रद ही होता है। इसके अतिरिक्त, उपर्युक्त परिभाषा में एक और भी दोष है। इसके अनुसार व्यवहार का परिवर्तन ही शिक्षण है। किन्तु, व्यवहार में परिवर्तन कई कारणों से होते हैं। परिपक्वता (Maturation) भी व्यवहार परिवर्तन का कारण है। लेकिन, परिपक्वता या थकावट के द्वारा लाये गये व्यवहार-परिवर्तन को हम शिक्षण नहीं कह सकते। परिपक्वता और शिक्षण में क्या अन्तर है, इसकी चर्चा आगे की गयी है।

शिक्षण की परिभाषा देते हुए कुछ विद्वानों ने कहा है कि 'नये व्यवहारों का अर्जन ही शिक्षण है'[२]। इस परिभाषा में भी उपर्युक्त त्रुटियाँ मौजूद हैं। हम शिक्षण से केवल नये व्यवहारों को अर्जित ही नहीं करते, बल्कि आवश्यकतानुसार अपने पुराने व्यवहारों में परिमार्जन भी लाते हैं। इसके अतिरिक्त, शिक्षण के द्वारा व्यवहारों का केवल अर्जन ही नहीं, बल्कि विसर्जन (Dropping) भी होता है, जो पवलॉव (Pavlov) के प्रयोग से स्पष्ट है। अतएव यह परिभाषा भी अमान्य है।

हिलगार्ड (Hilgard) के शब्दों में 'शिक्षण प्रशिक्षण से परिवर्तित होने वाली वह प्रक्रिया है जो किसी क्रिया को उत्पन्न करती है'[३]। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि शिक्षण एक शक्ति नहीं, अपितु एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अन्य प्रकार की क्रियाएँ उत्पन्न

१ Learning is a change of behaviour with a view to adjust in a new situation

२ Learning is the acquisition of new behaviours

३ Learning is the process by which an activity originates and it changes through training procedures

होती है। अभिप्राय यह कि जीव शिक्षण के द्वारा कई प्रकार की नवीन क्रियाएँ सीखता है। क्रियाओं का आविर्भाव स्वत नही, अपितु प्रशिक्षण (Training) के फलस्वरूप होता है। लेकिन, इन गुणों के होते हुए भी इसमे कई दोष है। पहला दोष यह है कि इस परिभाषा मे प्रेरणा (Motivation) का कोई स्थान नही है, जबकि शिक्षण मे इसका महत्त्वपूर्ण हाथ है, जैसा स्थलविशेष पर हम देखेगे। इसमे अभियोजन के महत्त्व को भी स्वीकार नही किया गया है, जो शिक्षण का प्रमुख ध्येय होता है। कुछ अशो मे हर तरह का शिक्षण अभियोजनात्मक (Adjustive value) होता है। इसलिये यह परिभाषा भी निर्दोष नही कही जा सकती।

मेग्गो ((McGeoch) ने अपनी परिभाषा मे उपर्युक्त दोषों से बचने का कुछ सफल प्रयास किया है। उसके अनुसार, 'शिक्षण, जैसा कि हम इसे मापते हैं' अभ्यास के फलस्वरूप क्रिया का परिवर्त्तन है। अधिकाश अवसरों पर इसकी एक ऐसी दिशा होती है जिससे व्यक्ति की वर्त्तमान प्रेरणात्मक अवस्थाएँ सतुष्ट होती हैं।[1] विश्लेषण करने पर इस परिभाषा को पाँच भागों मे बाँटा जा सकता है।

(१) शिक्षण के कारण व्यवहारो मे परिवर्त्तन होता है। यह परिवर्त्तन शब्द, जैसा ऊपर व्यक्त किया गया, परिमार्जन से अधिक विस्तृत अर्थ रखता है।

(२) यह परिवर्त्तन अभ्यास के फलस्वरूप होता है, अतएव शिक्षण अचानक नही, अपितु अभ्यास से धीरे धीरे होता है।

(३) हम इस परिवर्त्तन को माप सकते है। परिभाषा का यह अग पहली बार शिक्षण की वैज्ञानिक प्रतिपन्नता (Scientific validity) पर प्रकाश डालता है।

(४) ये परिवर्त्तन असयत या क्रमहीन नही होते, बल्कि इनकी एक दिशा होती है जिससे अभियोजन मे सहायता मिलती है।

और (५) इन परिवर्त्तनों से अधिकतर हमारी इच्छा की सतुष्टि होती है।

इस तरह यह परिभाषा शिक्षण के स्वरूप की विशद व्याख्या करने मे काफी अशो मे समर्थ है और इसीसे अन्य परिभाषाओं की अपक्षा श्रेष्ठ है। फिर भी, इसे पूर्णत निर्दोष नही कहा जा सकता। इसने अभ्यास के कारण व्यवहार मे आनेवाले परिवर्त्तनों को शिक्षण माना है। किन्तु, अभ्यास के कारण व्यवहार मे कई प्रकार के परिवर्त्तन होते है। सभी प्रकार के परिवर्त्तनों को शिक्षण मानना उचित नहीं है। उदाहरणार्थ, अभ्यास करते-करते व्यक्ति के थक जाने पर उसके व्यवहार मे परिवर्त्तन होता है। ऐसे परिवर्त्तन को हम शिक्षण नही कह सकते। जब एक ही काम की अत्यधिक पुनरावृत्ति (Repetition) होती है तो व्यक्ति अरोचकता (Monotony) का अनुभव करता है। यह अरोचकता उसके व्यवहारो मे परिवर्त्तन ला देती है। इस परिवर्त्तन को भी हम शिक्षण नही कह सकते। थकावट और अरोचकता के कारण व्यवहार मे परिवर्त्तन अस्थायी होते है, अतएव कुछ देर आराम करने के बाद व्यक्ति की कार्यक्षमता पहले जैसी हो जाती है। इस तथ्य को

१ Learning as we measure it, is the change in performance as a function of practice In most cases, this change has a direction which satisfies the current motivational conditions of the individual

ान मे रखते हुए अभ्यास के परिणामस्वरूप स्थायी परिवर्त्तन को हम शिक्षण कह सकते हैं। सके अतिरिक्त, शिक्षण और कार्य (Performance) म अन्तर है। अत कार्य के रिवर्त्तन को नही, बल्कि व्यवहार परिवर्त्तन को शिक्षण कहना अधिक युक्तिसगत है। सीलिये व्यवहार पद का ही प्रयोग किया जाना चाहिए।

इस परिभाषा मे व्यक्त दोषों के होते हुए भी हम इसके गुणो की उपेक्षा नही कर सकते। इसमे प्रेरणा या ध्येय (Motivation or aim) का समुचित स्थान दिया गया है। इससे व्यक्ति मे सीखने की इच्छा होती है। यह इच्छा मन के तनाव का दूसरा नाम है और यह तनाव सीखने पर ही समाप्त होता है। अत कुछ त्रुटियो के बावजूद भी इस परिभाषा की वैज्ञानिकता और मान्यता को अस्वीकार करना ठीक नही जचता। हाँ, इसकी त्रुटियों को ध्यान मे रखते हुए इसमे कुछ सशोधन आसानी से लाया जा सकता है। इस परिभाषा मे सशोधन करते हुए हम कह सकते है कि, 'शिक्षण, जैसा कि हम इसे मापते है, अभ्यास के फलस्वरूप सापेक्षतया (Relatively) व्यवहारों का स्थायी परिवर्त्तन है। अधिकाश अवसरों पर इसकी एक ऐसी दिशा होती है जिससे व्यक्ति की वर्त्तमान प्रेरणात्मक अवस्थाएँ सतुष्ट होती है।'[1]

परिपक्वता और शिक्षण
(Maturation and learning)

परिपक्वता और शिक्षण की क्रियाएँ प्राय साथ-साथ होती है और दोनों ही किसी-न किसी प्रकार के विकास का कारण होती है। विभिन्न प्रयोगों से यह सिद्ध है कि शिक्षण परिपक्वता पर निर्भर करता है, किसी क्रिया अथवा कौशल (Skill) को सीखने के लिये उसके अनुरूप परिपक्वता का होना नितान्त आवश्यक है। इसी तरह कई स्थलों पर शिक्षण भी परिपक्वता का कारण होता है। लेकिन, इतना घनिष्ठ सबंध होते हुए भी इन दोनों मे कुछ मौलिक भेद है।

परिपक्वता के कारण जीव के व्यवहार तथा कार्य में जो परिवर्त्तन और विकास होता है वह जातीय (Racial) होता है, क्योंकि वे प्रतिक्रियाएँ जाति के सभी सामान्य प्राणियों मे पाई जाती है। परिपक्वता के कारण सभी बच्चे प्राय निश्चित आयु मे बैठना, खड़ा होना, बोलना और चलना शुरू करते है। किंतु, जो प्रतिक्रियाएँ शिक्षण के फलस्वरूप होती है वे वैयक्तिक (Individual) होती है, क्योंकि हर व्यक्ति अलग अलग किसी चीज या व्यवहार को सीखता है। कोई आदमी शिक्षण के सहारे मोटर चलाता है, कोई घोड़े पर चढता है, किन्तु, इसका अर्थ यह नहीं कि उस उम्र और योन के सभी व्यक्ति मोटर चला सकते है या घोड़े पर चढ़ सकते है।

परिपक्वता से व्यवहार में परिवर्त्तन स्वाभाविक रूप से होते हैं। इनके लिए प्रयत्न और तरह तरह की क्रियाएँ करने की जरूरत नहीं होती, जैसे, शरीर में तरह-तरह के

१ Learning as we measure it, is relatively permanent change in behaviours as a function of practice In most cases, this change has a direction which satisfies the current motivational conditions of the individual.

रासायनिक परिवर्तन, शारीरिक और यौन विकास, आदि स्वत होते है। वस्तुत ये विशेषताएँ जन्मजात रहती है और आयु के अनुसार स्वत विकसित होती है। इस तरह जीव के बिना प्रयत्नशील हुए ही उसकी परिपक्वता से प्रभावित क्रियाएँ स्वत समयानुकूल सचालित और विकसित होती रहती है। मनोवैज्ञानिकों का एसा कहना है कि यह क्रिया गर्भाधान काल से लेकर पचीस वर्ष तक ही होती है। इस आयु तक परिपक्वता मे पूर्णता आ जाती है। दूसरी ओर, किसी व्यवहार या विषय को सीखने मे हमे तरह तरह की क्रियाएँ करनी होती है। हम प्रयत्नों के सहारे ही कुछ सीख पाते है। यदि कोई सायकिल चलाना चाहता है तो इसके लिए वह प्रयत्न करता है। जो प्रयत्न या अभ्यास नही करता उसे सायकिल चलाना नही आता। कोशिश करने पर भी केवल वही किसी कार्य को सीख सकता है जिसमे उसके लिए उपयुक्त योग्यता, शक्ति, रुचि, मनोवृत्ति तथा परिपक्वता हो।

शिक्षण के विभिन्न अंग

(Different factors of learning)

जिन परिस्थितियों, अवस्थाओं अथवा उत्तेजनाओं से शिक्षण प्रभावित होता है हम उन्हें शिक्षण का अग कहते है। ये अग सख्या में बहुत अधिक है जिन्हे हम तीन मुख्य श्रेणियो में रख सकते है। कुछ तो व्यक्ति (सीखनेवाले) की आन्तरिक अनुभूति, भाव, वा मनोवैज्ञानिक अग है, कुछ अग शिक्षण-विषय से सम्बद्ध रहते है तथा कुछ शिक्षण की बाह्य वा विधेयात्मक परिस्थितियों के परिणाम है। लेकिन, सभी अगों की चर्चा करना इस पुस्तक के अनुरूप नही है। अत यहाँ हम कुछ प्रमुख अगों पर ही विचार करेगे।

(१) प्रेरणा (Motive) शिक्षण और प्रेरणा मे बहुत घनिष्ठ सबध है। जैसा कि हम लोग जानते है, किसी प्रकार की प्रेरणा जीव को किसी प्रकार की क्रिया करने के लिये प्रेरित करती है। हम कोई कार्य तभी करते है जब उसे करने की इच्छा होती है, चाहे वह इच्छा जैसी भी और जिस किसी कारण से हो। यों तो सभवत शारीरिक आवश्यकताएँ (Biogenic or physiological needs), यथा, भूख, प्यास, नींद, कामवासना, आदि की प्रेरणाएँ सभी जीवों में पाई जाती है, किन्तु इनकी प्रधानता मनुष्य से अधिक जानवरों मे है। मनुष्य इतनी विकसित अवस्था मे है कि वह शारीरिक आवश्यकताओं से अधिक महत्त्व सामाजिक आवश्यकताओं (Sociogenic needs) को देता है। इसलिये वह यश, मान, प्रतिष्ठा, प्रशसा, आदि की प्रेरणाओं से अधिक प्रभावित होता है। भिन्न भिन्न प्रेरणाओं का शिक्षण पर कैसा असर पड़ता है, इसे देखने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रयोग किये है। यहाँ कुछ प्रमुख प्रयोगों का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है।

शिक्षण पर पुरस्कार का असर देखने के लिये चूहों के तीन समूह पर भूलभुलैया (Maze) का प्रयोग किया गया। पहले समूह के चूहों को जो भूखा था, उचित पथ से जाने पर खाना दिया जाता था। दूसरा समूह भी भूखा था, किन्तु उसे भोजन नही मिलता था और तीसरा समूह भूखा न रहने पर भी भोजन पाता था। तीनों समूह के चूहों के शिक्षण वक्रों (Learning curves) की तुलना करने से मालूम हुआ कि पहले समूह के चूहों के शिक्षण मे पर्याप्त उन्नति हुई, किन्तु अन्य दो समूहों में बहुत ही कम उन्नति हुई। इसलिये कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार शिक्षण के लिए दो चीजों का होना जरूरी है। एक

आवश्यकता (Need) या उदीरणा (Drive) का होना और दूसरी उसकी संतुष्टि का होना। इसी तरह के कुछ अन्य प्रयोगों से पता चलता है कि यदि शिक्षण के कुछ प्रयासों मे किसी तरह का पुरस्कार (Reward) न दिया जाय और बाद में दिया जाय तो पुरस्कृत प्रयासों मे अपुरस्कृत प्रयासों की अपेक्षा शिक्षण गति (Speed of learning) बहुत तीव्र हो जाती है। किंतु, प्रथम कुछ प्रयासों में पुरस्कार देने और बाद के प्रयासों में पुरस्कार से वंचित रखने से शिक्षण गति बहुत ही मन्द पड जाती है और अशुद्धियों (Errors) की संख्या अधिक बढ़ जाती है।

किस तरह के पुरस्कार का क्या प्रभाव होता है, इसे देखने के लिए मनुष्यों पर भी कई प्रयोग हुए हैं। एक प्रयोग मे समान आयु और बुद्धि के सोलह बच्चों पर भूल-भुलैया के साथ प्रयोग किया गया। उन बच्चों को तीन समूह में बाँट दिया गया। पहले समूह को किसी प्रकार का पुरस्कार नहीं दिया गया, दूसरे समूह को कुछ पनी (विदेशी मुद्रा विशेष) प्रत्येक प्रयास के बाद दिया गया तथा तीसरे समूह को प्रत्येक प्रयास के बाद सीखने के लिये प्रोत्साहित किया गया। जब इन तीन समूह के बच्चों के शिक्षण वक्रों की तुलना की गई तो देखने में आया कि जिस समूह को किसी प्रकार का पुरस्कार नहीं दिया गया उसके शिक्षण की गति बहुत ही धीमी थी। जिस समूह का प्रोत्साहन दिया गया उसकी शिक्षण-गति पहले की अपेक्षा तीव्र थी। किन्तु, पनी दिये जाने वाले समूह की गति सबसे अधिक तेज थी। जब अन्तिम पाँच प्रयासों की अशुद्धियों का मध्यमान निकाला गया तो उन अशुद्धियों का मध्यमान क्रमश २.७, २.३ और १.७ था। इस दिशा में किये गये अन्य प्रयोग भी इसी उपर्युक्त तथ्य का प्रतिपादन करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि शिक्षण में सुन्दर प्रगति के लिये बच्चों के सिलसिले मे आर्थिक पुरस्कार सर्वाधिक सुन्दर है, यद्यपि किसी तरह का पुरस्कार (थोडे अंश मे ही सही) शिक्षण मे सहायक होता है।

दण्ड और पुरस्कार (Punishment and reward) का असर देखने के लिये चूहों और मनुष्यों पर जो प्रयोग किये गये हैं उनके अध्ययन से पता मालूम होता है कि यों तो पुरस्कार शिक्षण के लिये लाभप्रद सिद्ध होता ही है, किंतु यदि अशुद्धियों के लिए दण्ड और शुद्धि के लिए पुरस्कार साथ साथ दिये जायँ तो शिक्षण पर अकेले पुरस्कार की अपेक्षा उसका असर अधिक पड़ता है। जब अशुद्धियों के लिये दण्ड मिलता है तो अशुद्धियाँ बहुत ही शीघ्र विनष्ट हो जाती हैं।

इसी तरह उचित कार्य के लिये प्रशंसा और अनुचित के लिये भर्त्सना का प्रभाव शिक्षण पर क्या पडता है, इसे देखने के लिये समान योग्यता और आयु की १०४ बालिकाओं पर गणित के विभिन्न प्रश्नों के साथ प्रयोग किया गया। बालिकाओं को चार समूह में बाँट दिया गया और तीस तीस प्रश्नों के पाँच प्रश्न पत्र बनाए गये। प्रत्येक प्रश्न-पत्र के सभी प्रश्नों को पन्द्रह मिनट में हल कर देने का निर्देशन (Instruction) था। जब पहले दिन प्रयोग किया गया तो लडकियों के चारों समूह ने १५ मिनट में लगभग समान प्रश्नों को ही हल किया। तब प्रयोग के अन्त मे पहले समूह की, उसकी अशुद्धियों और लापरवाही के लिये सबके सामने, भर्त्सना की गयी। साथ ही दूसरे समूह की, उसके अच्छे कार्यों के लिये, प्रशंसा की गई। किन्तु, तीसरे समूह को कुछ नहीं कहा गया।

हाँ, पहले और दूसरे समूहों के साथ जो व्यवहार किया गया उससे वह समूह अवगत था। चौथे नियन्त्रित (Controlled) समूह को पुरस्कार अथवा दण्ड कुछ भी नहीं दिया गया और साथ ही उसने किसी समूह को पुरस्कृत या दण्डित होते भी नहीं देखा। इस तरह विभिन्न परिस्थितियो मे इन चार समूह की लड़कियों का शिक्षण हुआ। प्रयोग समाप्त होने पर जब इन विभिन्न समूह के शिक्षण वक्रो (Learning curves) की तुलना की गई तो मालूम हुआ कि जिस समूह की भर्त्सना की गई थी वह दूसरे दिन लगभग सोलह प्रश्नों को हल कर सका, किन्तु इसके बाद के प्रयासों मे प्रशसित समूह द्वारा हल किये जाने वाले प्रश्नो की सख्या बढती गई और निन्दित समूह के हल किये जाने वाले प्रश्नों की सख्या में क्रमश अवनति होती गई। अन्य अवशेष दो समूहों मे किसी प्रकार की नियमित वृद्धि नही मालूम हुई। इससे यह सिद्ध होता है कि समुचित पुरस्कार शिक्षण की गति को तीव्र बना उसमे उन्नति लाता है। यह उन्नति दण्ड देने की अपेक्षा अधिक होती है। लेकिन, गलत प्रतिक्रिया के लिये दण्ड देना, पुरस्कार या दण्ड कुछ भी नहीं देने की अपेक्षा अधिक उपयोगी है।

यह जरूरी नही कि पुरस्कार आर्थिक या शाब्दिक हो। कभी कभी शिक्षण परिस्थिति स्वय ही प्रोत्साहन का कार्य करती है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति स्वय सीखने को प्रेरित होता है। उदाहरणार्थ, कभी कभी सीखते समय व्यक्ति स्वय प्रतिद्वन्द्विता के भाव (Feeling of competition) से प्रेरित हो जाता है। इस तरह परिस्थिति स्वय पुरस्कार का कार्य करने लगती है। विभिन्न प्रयोगो से स्पष्ट है कि जब मनुष्य किसी काम को प्रतिद्वन्द्विता के भाव से करता है तो वह प्रतिद्वन्द्वितारहित भाव से किये कामो की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह करता है। जब विद्यार्थी बिना प्रतिद्वन्द्विता के भाव से किसी विषय को सीखते है तो उनके शिक्षण मे उतनी उन्नति नही होती जितनी कि होड के साथ सीखने मे।

(२) **परिणाम-ज्ञान** (Knowledge of result) परिणाम-ज्ञान का जो असर शिक्षण गति पर पडता है, उसे भी प्रदर्शित करने के लिये विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग किये है जिनके अध्ययन से यह मालूम होता है कि सीखने मे परिणाम का ज्ञान सहायक होता है। शिक्षण-परिणाम को जानने से मनुष्य को और अच्छी तरह सीखने के लिये प्रेरणा मिलती है जिससे उसके शिक्षण वक्र मे उन्नति होती है, जब कि उस परिणाम ज्ञान के अभाव मे उसे यह प्रेरणा नही मिलती। इसलिये उसके शिक्षण मे भी उस तरह की उन्नति नही हो पाती।

(३) **अभ्यास** (Practice) अभ्यास का जो प्रभाव शिक्षण गति पर पड़ता है, उसका विशेष उल्लेख हम थार्नडाइक के शिक्षण सिद्धान्त की विवेचना करते समय करेगे। मूल बात यह है कि जिस कार्य को व्यक्ति जितनी ही अधिक बार करता है वह उसमें उतना ही कुशल होते जाता है और इस तरह उसके शिक्षण में पूर्णता आ जाती है। किसी विषय को सीखने मे प्रारभ मे काफी कठिनाइयाँ और अशुद्धियाँ होती है, लेकिन बाद में प्रयत्न करते रहने से अभ्यास के फलस्वरूप वे कठिनाइयाँ क्रमश समाप्त होती जाती है और अन्त मे वह व्यक्ति उस विषय को सीख जाता है। उसे उसमें कोई दिक्कत या

अशुद्धि नही होती। अभ्यास के इस प्रभाव को दिखलाने के लिए [illegible] प्रयोग [illegible] है जिन्हे आगे व्यक्त किया जायेगा।

(४) शिक्षण-विधि (Method of learning) [illegible] के भिन्न भिन्न तरह के ढग और तरीके [illegible]। [illegible] कभी हम पूरे विषय को एक बार ही पढ कर सीखते है, कभी उसके विभिन्न भागों [illegible] करके सीखते है और पुन उन्हे समग्र रूप में जानते है। [illegible] रूपमे होता है और कभी सक्रिय (Active) [illegible] तथा सक्रिय विधियां शिक्षण के लिए विशेष लाभप्रद [illegible] प्रकार के कार्यों या विषयों के लिए यह [illegible] चर्चा स्मरण के अध्याय में आगे की जायगी। अत [illegible]।

(५) शिक्षण विषय का स्वरूप (Nature of learning material) सीखे जाने वाला विषय किस तरह का है इसका असर भी [illegible] पडता है। सार्थक विषय निरर्थक विषय की अपेक्षा शीघ्र सीखे जाते हैं। जो विषय सार्थक रहता है और जिसके विभिन्न भागों मे तार्किक सम्बन्ध रहता है उसको सीखने में [illegible] है। किन्तु, जो विषय निरर्थक रहता है, यानी, जिसके विभिन्न भागों में किसी प्रकार का तार्किक सम्बन्ध नही मालूम होता उसका शिक्षण काफी धीरे धीरे होता है। [illegible] विषय की अपेक्षा निरर्थक विषयों का सीखना कठिन होता है। यही कारण है कि हम सार्थक [illegible] शीघ्र और आसानी के साथ सीखते है, किन्तु [illegible] कठिनाई के साथ। ऐसा ही किसी यन्त्र या भूलभुलैया (Maze), [illegible] सीखने में भी होता है। यही बात सरल और दुरूह विषयों के सीखने के [illegible] है। जो विषय [illegible] कठिन मालूम होते है उसके लिये उनकी [illegible] कम रहती है। [illegible] उपन्यास जो अधिक सार्थक प्रतीत होते है उनमे [illegible] और परिणामत शीघ्र सीख जाता है।

इसके अतिरिक्त, परिग्रहवृत्ति (Belongingness) शिक्षणगति को प्रभावित करती है। इसका प्रयोग कुछ विद्यार्थियों पर किया गया। उन्हें [illegible] (Unrelated) वाक्यों को क्रमश पढकर सुनाया गया। [illegible] वाक्यांश पढकर उनसे यह पूछा जाता था कि उसके पहले [illegible] था। प्रयोग परिणाम से मालूम हुआ कि जब उसी वाक्य के [illegible] शब्द को पूछा गया तो विद्यार्थियों को ४२ प्रतिशत सफलता मिली। किन्तु, दूसरे वाक्य के सम्बन्ध मे पूछने पर उन्हें केवल एक प्रतिशत सफलता मिली। यह प्रयोग [illegible] शिक्षण में परिग्रहवृत्ति के महत्त्व को व्यक्त करता है। इसी तरह इस दिशा में जितने भी प्रयोग हुए है उन सबसे यही प्रमाणित होता है कि [illegible] का स्वरूप शिक्षण को अत्यधिक प्रभावित करता है।

(६) सीखनेवाला (Learner) शिक्षण, सीखनेवाले की योग्यता से कम प्रभावित नहीं होता है। विभिन्न प्रकार के विषयों को सीखने के लिए विभिन्न स्तर (Levels) के शारीरिक और मानसिक विकास की जरूरत होती है। हम लोग जानते हैं, किसी सवारी

पर चलना सीखने के लिये निश्चित परिपक्वता अपेक्षित है। प्रौढ़ व्यक्ति मोटर साइकिल, और घोड़े की सवारी करना आसानी से सीख लेता है, किंतु वर्ष दो वर्ष का बालक उन्हे कदापि नहीं सीख सकता, क्योंकि उन्हे सीखने के लिये उसमे उनके अनुरूप परिपक्वता नही है। इसी प्रकार बहुत से ऐसे विषय है जिन्हे कम उम्र के लोग आसानी से सीख सकते है, किंतु अधिक उम्र के लोगो को सीखने मे कठिनाई और देर होती है। इसी प्रकार भाषा को सीखने के लिये स्वर यन्त्र (Larynx) की परिपक्वता अनिवार्य है। बुद्धि भी शिक्षण गति को प्रभावित करती है, क्योंकि किसी विषय को सीखने के लिये बुद्धि का पूर्ण विकास अपेक्षित होता है तो किसी को सीखने के लिये उतने विकास की आवश्यकता नही पडती। यौन-भिन्नता (Sex difference) की भी हम उपेक्षा नही कर सकते, क्योंकि किसी विषय को स्त्रियाँ आसानी और शीघ्रता से सीखने मे समर्थ होती है तो किसी विषय को पुरुष। प्रयोग करने पर यह देखा गया है कि बुद्धि, उम्र, यौन, आदि समान रहने पर भी विभिन्न व्यक्तियों की शिक्षण गति मे अन्तर पडता है। इनकी चर्चा 'वैयक्तिक भिन्नता' के अन्तर्गत हो चुकी है। यहाँ पर एक प्रयोग का उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा, जिससे यह मालूम हो जायगा कि आयु शिक्षण को कैसे प्रभावित करती है।

उम्र के आधार पर प्रयोज्यो को तीन समूह मे विभक्त किया गया। जिनकी उम्र १२ वर्ष से १९ वर्ष के बीच थी उन्हे एक समूह मे, जिनकी ३४ से ५९ के बीच थी उन्हे दूसरे समूह मे और जिनकी उम्र ६० और ८२ के बीच थी उन्हे तीसरे समूह मे रखा गया। उन प्रयोज्यो को पाँच प्रकार के विषय सिखलाये गये और जब उनका शिक्षण समाप्त हो गया तब उनके परिणामो का अध्ययन किया गया। अध्ययन करने से मालूम हुआ कि जब कोई व्यक्ति अधिक उम्र मे नया विषय सीखता है तो उसके शिक्षण की गति काफी धीमी होती है, किंतु जीवन की पूर्वावस्था मे नये विषय को सीखने में शिक्षण-गति बहुत तीव्र होती है। इसी तरह और भी कितने ऐसे प्रयोग हुए है जिनसे यह स्पष्ट है कि शिक्षण मे सीखनेवाले का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है।

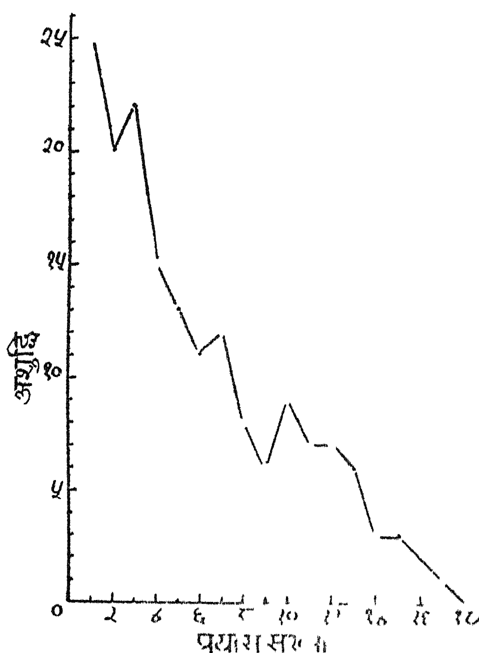
शिक्षण-वक्र
(Learning curves)

इसके पहले कई स्थलो पर हम शिक्षण वक्र का व्यवहार कर चुके है, लेकिन वक्र किसे कहते है, इस पर प्रकाश नही डाला गया है। इसकी व्याख्या स्वरूप थोडे शब्दो मे कह सकते है कि यदि शिक्षण के गतिक्रम को ग्राफ द्वारा प्रदर्शित करे तो उस ग्राफ चित्र को शिक्षण वक्र कहेगे। किन्तु, शिक्षण-क्रम का यह रेखांकन प्रधानत तीन आधारो (Bases) पर किया जा सकता है, प्रत्येक प्रयास मे क्रमश (१) कितना समय लगा है, (२) कितनी अशुद्धियाँ हुई है या (३) कितना शिक्षण परिमाण है। शिक्षण-वक्र के चढाव से हमेशा यह न समझना चाहिए कि यह शिक्षण की उन्नति का प्रतीक है। इसी तरह, शिक्षण वक्र के उतार का अर्थ हमेशा शिक्षण की अवनति का द्योतक नही होता। शिक्षण-वक्र के चढाव अथवा उतार (Rise or fall) का अर्थ ग्राफ चित्र के आधार (Base) पर निर्भर करता है। यदि प्रत्येक प्रयास (Trial) की अशुद्धियों या समय का ग्राफ-चित्र तैयार किया जाय तो शिक्षण वक्र का उतार (Fall) शिक्षण की उन्नति का परिचायक होगा तथा उसमे किसी तरह का चढाव

(Rise) शिक्षण की अवनति को व्यक्त करेगा। शिक्षण परिमाण (Amount of learning) के आधार पर ग्राफ चित्र तैयार करने पर शिक्षण का चढ़ाव उन्नति और उसका उतार उसकी अवनति का द्योतक होगा।

किसी प्रकार का शिक्षण-वक्र तैयार करने के लिए पड़ी रेखा को आधार मानकर उस पर विभिन्न प्रयासों को अङ्कित किया जाता है। तब उसके बाईं ओर की खड़ी रेखा को समान भागों मे बाँट कर समय, अशुद्धि या परिमाण का व्यक्त किया जाता है। समय, अशुद्धि और परिमाण के पृष्ठ २३६, २३७ और २३८ निम्नांकित ग्राफचित्र इस ओर भी स्पष्ट कर देगे कि विभिन्न प्रकार के आधार पर शिक्षण की प्रगति कैसे प्रदर्शित की जाती है। ये शिक्षण वक्र लेखक द्वारा कई प्रयोज्य पर किये गये शिक्षण-सम्बन्धी प्रयोगों के आधार पर तैयार किए गए है।

चित्र संख्या ७३ (अ)



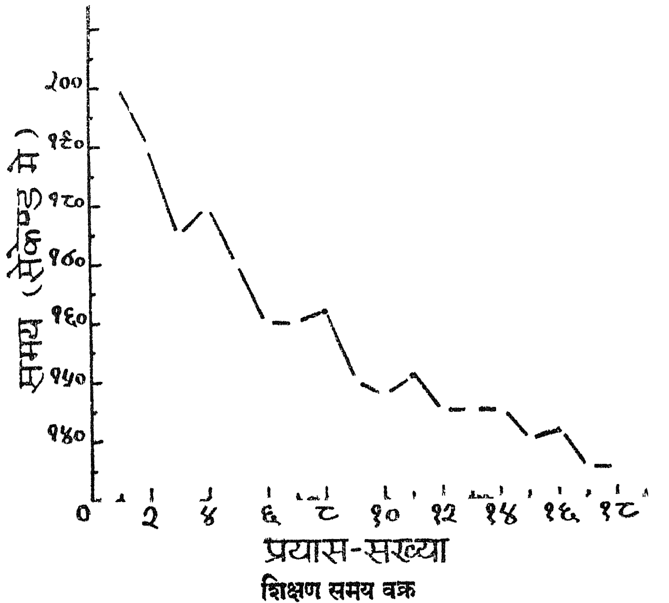
शिक्षण अशुद्धि-वक्र

शिक्षण-वक्रो के प्रकार (Kinds of learning curves) प्रश्न है, सभी शिक्षण वक्र समान होते है या उनमें किसी प्रकार की भिन्नता भी होती है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये कई मनोवैज्ञानिकों ने हजारों की संख्या में विभिन्न प्रकार के शिक्षण वक्र का अध्ययन किया है जिनसे यह स्पष्ट है कि सभी शिक्षण-वक्र समान नहीं होते, बल्कि उनमें भिन्नता होती है। किन्तु, भिन्नताओं के बावजूद भी सभी शिक्षण वक्रो को कुछ निश्चित निम्नाकित वर्गो मे विभाजित कर सकते है।

कुछ ऐसे शिक्षण वक्र दृष्टिगोचर होते है जिनमे क्रमश निरतर चढाव-उतार रहता है और उन्ही उतार-चढ़ावों में कभी-कभी अत्यधिक चढाव मिलता है। यदि हम चढ़ाव से

शिक्षण की उन्नति और उतार से अवनति समझे तो ऐसे वक्र का मतलब है कि सीखनेवाले मे सीखने की योग्यता है और वह अपने शिक्षण मे उन्नति कर सकता है। लेकिन, अभी तक उसे सबसे अच्छी और समुचित शिक्षण-विधि नही मालूम हो सकी है। एसे वक्र का एक स्थान-विशेष पर चढाव इस तथ्य का द्योतक होता है कि सीखने वाला उस सीमा तक सीखने मे समर्थ है और परिश्रम करने पर उसकी योग्यता वहाँ तक पहुच सकती है।

चित्र-सख्या-९३ (ब)



शिक्षण समय वक्र

दूसरे प्रकार के शिक्षण-वक्र सरल रेखा से मिलते-जुलते है और वे इस तथ्य का प्रतिपादन करते है कि सीखने वाला शिक्षण-प्रारभ करने के पहले उस विषय से पूर्णत अनभिज्ञ नही था और अभी तक अपनी योग्यता को प्रदर्शित करने का वह अवसर नहीं पा सका है। इसलिये पहले जितनी शिक्षण-योग्यता उसमें थी उसकी वृद्धि नहीं हो सकी है।

बहुत से शिक्षण-वक्रों में चढाव प्रारभ में ही दृष्टिगोचर होता है। ऐसा चढाव कई कारणों से होता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्रारभ में ही सीखने वाले को उचित प्रतिक्रिया मालूम हो जाती है और शिक्षण वक्र मे चढाव दिखलाई पडता है। यदि सीखने वाला पहले से उस विषय को जानता रहता है तब भी ऐसा चढाव देखने में आता है। उपर्युक्त अगों के अतिरिक्त और भी ऐसे कई अग है जो इस प्रकार के शिक्षण वक्र मे सहायक होते है।

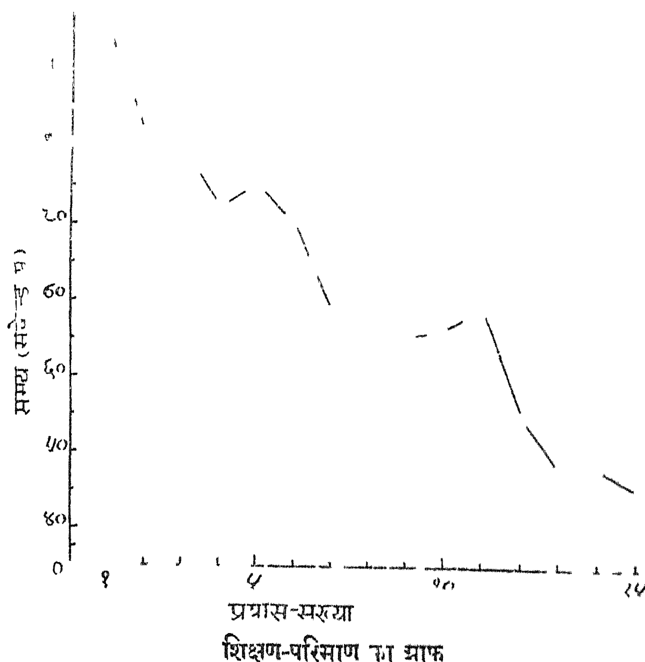
कुछ ऐसे वक्र भी मिलते है जिनमे प्रारभ मे किसी प्रकार की उन्नति परिलक्षित नहीं होती है और कुछ ऐसे वक्र भी होते है जिनमे प्रारभ में तो नही, किंतु बीच मे उन्नति और पुन बाद मे अवनति दिखलाई पडती है। इस तरह के वक्र का आकार अगरेजी के 'एस' (s) अक्षर से मिलता जुलता है। इसे विन्सेण्ट वक्र (Vincent curve) के नाम से भी पुकारा जाता है। ऐसा वक्र उस समय दृष्टिगोचर होता है जब सीखने वाले में शुरू के

प्रयासो मे उन्नति न होकर म त के प्रयासो मे उन्नति होती है और इन कारण या अन्य किसी कारणवश उसकी योग्यता मे ह्रास होने लगता है। ... मे आकस्मिक उन्नति दिखाई देती है। यह उन्नति प्रारम्भ, बीच या अन्त किसी स्तर पर आ जाती है। इस प्रकार की उन्नति, वक्र मे उस समय दिखलाई पड़ती है जब ... समस्या का समाधान (Solution of the problem) समझ जाता है और वह उसे निश्चयात्मक हल कर लेता है। ऐसा अनुभव सामान्य जीवन मे अधिक पाया जाता है।

शिक्षण-वक्र का स्वरूप
(Nature of learning curve)

हमने देखा कि शिक्षण वक्र कई तरह के होते हैं। स्वभावत प्रत्येक का अपना स्वरूप होता है। अत यहाँ हम शिक्षण के सामान्य और विशिष्ट (Typical) वक्र से ही अपना प्रयोजन रखेंगे। यह वक्र निम्नांकित प्रकार का माना गया है।

चित्र संख्या ९३ (स)



शिक्षण-परिमाण का ग्राफ

इस ग्राफ चित्र से स्पष्ट है कि प्रारम्भ मे शिक्षण वक्र क्रमशः उन्नति करते जाता है। इसका कारण यह है कि प्रयोज्य उत्साह और उत्सुकता से कार्य शुरू करता है और प्रारम्भ मे वह उससे अनभिज्ञ रहता है। जैसे जैसे अभ्यास करते जाता है उसकी ... कम होती जाती है, परिणामत शिक्षण वक्र उन्नति करते जाता है। लेकिन, कुछ समय के बाद ही प्रयोज्य के उत्साह मे कमी आ जाती है, उसका प्रारम्भिक उत्साह कार्य स्वरूप से प्रभावित हो जाता है और अभिरुचि मे कमी आ जाती है। इन सबके कारण उसके

शिक्षण-वक्र में अवनति दीख पडती है। लेकिन, उसका प्रयत्न बना रहता है और इसी से जब भी वह सचेष्ट हो शक्ति और अभिरुचि से काम लेता है, शिक्षण वक्र मे उन्नति हो जाती है। साधारणत सीखनेवाले शिक्षण काल के मध्य मे ऐसे भाव और अनुभूतिया के शिकार होते है। परिणामत शिक्षण वक्र मे (मध्य मे) काफी उतार-चढाव दीख पडते है। ये प्रयोज्य के मध्यवर्त्ती उत्ताप (Intermittent spurts) के द्योतक है। शिक्षण के इस मध्यकाल मे प्राय उल्लेखनीय अवस्थाएँ आती है जहाँ प्रयोज्य के शिक्षण मे कोई उन्नति नही दीखती (देखे पृष्ठ २३८ का चित्र)। इसे शिक्षण का पठार (Plateau of learning) कहते है। फिर प्रयत्न करते करते प्रयोज्य अपनी शिक्षण की सीमा को प्राप्त कर लेता है जो उसके वक्र का अतिम चढाव होता है। इसे प्रयोज्य की दैहिक सीमा Physiological limit) कहते है। शिक्षण वक्र के ये दोना अग विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। अत यहा हम इन पर कुछ विशद रूप मे विचार करना चाहेगे।

शिक्षण का पठार (Plateau of learning) कुछ प्रयासो तक शिक्षण-वक्र सरल रेखा के समान प्रतीत होता है और पुन बाद मे उसमे चढाव देखा जाता है। वक्र की ऐसी अवस्था को शिक्षण-पठार (Plateau of learning) कहते है। इस शिक्षण-अवस्था का उल्लेख पहले पहल ब्रायन (Bryan) तथा हार्टर (Harter) ने सन् १८९७ ई० में किया। उस समय उन लोगो का यह दृष्टिकोण था कि जब कोई निम्नकोटि का अभ्यास पूरा होता है, किन्तु अभी वह उस पूर्णता को नही पहुँच पाता कि वह यन्त्रवत् होता रहे तब उच्चकोटि के अभ्यास का विकास नही होता और पठार की अवस्था देखने मे आती है।

सभी तरह के शिक्षण मे पठार होना जरूरी नही है। थर्स्टन (Thurstone) ने ६० विद्यार्थियों से १० घण्टा प्रति सप्ताह ४८ सप्ताह तक टाइप राइटिंग का अभ्यास कराया, किंतु उसे केवल ३-४ प्रतिशत प्रयोज्यो के शिक्षण-वक्र मे ही पठार देखने को मिला। जॉनसन (Johnson) और स्ट्राउड (Stroud) को भी अपने प्रयोगो मे थर्स्टन के ही समान परिणाम मिला।

पठार के कारण शिक्षण मे पठार होने के कई कारण है। बुक (Book) का कहना है कि पठार मे शिक्षण मनोवृत्ति (Attitude of learning) का हाथ अत्यधिक रहता है। उसके प्रयोग मे कुछ ऐसे प्रयोज्य मिले जो अपने शिक्षण से सतुष्ट होकर उससे लापरवाह थे। उनकी इस लापरवाही और अनवधानावस्था के कारण उनके शिक्षण-वक्रो मे पठार दृष्टिगोचर हुआ।

बाटसन (Batson) और काओ (Kao) के अनुसार सरल कार्यो को सीखने मे नही, बल्कि कठिन कार्यो को सीखने मे पठार का आविर्भाव होता है। किसी जटिल कार्य को सीखने मे प्रयोज्य जब एक भाग पर अधिक ध्यान देता है और दूसरे भाग की उपेक्षा करता है तब पठार देखने मे आता है। अत इनके अनुसार 'पठार' का कारण कार्य की जटिलता है। किन्तु, जटिल कार्य को भी इकाई के रूप मे सीखने पर पठार का आविर्भाव नही होता।

स्मिथ (Smith) ने अधिकाश पठारो की व्याख्या, रुचि के अभाव, बीमारी, अभ्यास में बाधा (Interruption of the practice) और सवेगात्मक तनाव (Emotional strain) के आधार पर की है।

बहुत से पठारों का कारण शिक्षण प्रक्रिया में ही पाया गया है। किसी जटिल विषय के एक पहलू पर ध्यानावस्थित होकर सीखने पर शीक्षण वक्र में पठार दिखलाई पड़ा। अतएव कुछ मनोवैज्ञानिकों ने, एक कार्य के किसी एक भाग पर अधिक ध्यान देना, एक भाग से दूसरे भाग पर ध्यान विचलित होना, किसी जटिल कार्य के विभिन्न भागों के प्राप्त कौशलों मे सतुलन (Balance) का अभाव होना, आदि को शिक्षण पठार का कारण माना है। हण्टर (Hunter) ने २४ चूहों पर भूलभुलैया के साथ प्रयोग करके यह व्यक्त किया कि किसी कार्य का एक भाग कठिन और दूसरा भाग सरल होने पर शिक्षण पठार का आविर्भाव होता है। इसी प्रकार सीखने मे कठिन या गलत विधि का व्यवहार करना भी कभी कभी पठार का कारण होता है। प्रयास मे शिथिलता आने, हतोत्साह होने, आदि के कारण भी शिक्षण वक्र मे पठार देखे जाते है।

इस तरह, हम सक्षेप मे कह सकते है कि शिक्षण मे बाधा पहुँचाने वाला कोई भी अग 'पठार' का कारण हो सकता है। इस सम्बन्ध मे यह स्मरणीय है कि पठार स्थायी नही होते। उचित प्रोत्साहन देने पर सीखने वाला अपने शिक्षण मे शीघ्र ही उन्नति करने लगता है।

दैहिक सीमा (Physiological limit) जब मनुष्य किसी कौशल (Skill) को सीखना प्रारम्भ करता है तो उसका प्रयास ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है त्यों त्यों उसके शिक्षण मे उन्नति होती जाती है। लेकिन, एक ऐसा समय भी आता है जबकि अत्यधिक प्रयास करने पर भी वह अपने शिक्षण मे उन्नति नहीं करता। उसका शिक्षण वही रुक जाता है। इसी अवस्था को दैहिक सीमा कहते है। यदि किसी पठार के बाद अभ्यास और प्रलोभन (Incentive) से शिक्षण मे उन्नति नही होती तो ऐसा दैहिक सीमा (Physiological limit) पर पहुँचने के कारण होता है। पठार के बाद शिक्षण मे पुन उन्नति उस समय होती है जबकि सीखने वाला अपनी दैहिक सीमा पर नहीं पहुँचा रहता है। याद रखने की बात है कि मानसिक कार्यों के सीखने में नही बल्कि, क्रियात्मक (Motor) और कौशल शिक्षणों में ही दैहिक सीमा निश्चित रूप से बतलाई जा सकती है।

प्रयोगो से यह भी मालूम होता है कि किसी प्रकार के शिक्षण में जीव शायद ही कभी अपनी दैहिक सीमा तक पहुँचता है। एक यन्त्रालय (Press) में कम्पोजीटरों को अधिक काम करने के लिये कई सप्ताहों तक पुरस्कार दिया गया। उसमें देखा गया कि दस वर्षों से काम करने वाले कम्पोजीटर भी पहले की अपेक्षा अधिक कार्य करने लगे। इससे यह सिद्ध होता है कि कई प्रकार के शिक्षणो में अत्यधिक अभ्यास से भी हम अपनी दैहिक सीमा पर नही पहुँचते और किसी पुरस्कार या प्रलोभन से दैहिक सीमा से अधिक उत्पादन कर पाते है। दूसरी ओर, हमारी कुछ ऐसी प्रतिक्रियाएँ है जो बहुत शीघ्र दैहिक सीमा पर पहुँच जाती है और किसी प्रकार के प्रलोभन से उनमें कोई वृद्धि नहीं होती।

शिक्षण का स्थानान्तरण
(Transfer of learning)

हम अपने दैनिक अनुभव के आधार पर जानते है कि एक विषय सीखने से उसी तरह के दूसरे विषय को सीखना कभी आसान और कभी कठिन हो जाता है। इस तरह

पहले शिक्षण का प्रभाव दूसरे शिक्षण पर पडता है। इसी प्रक्रिया को शिक्षण स्थानान्तरण कहते है। शिक्षण का स्थानान्तरण शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में भी होता है। स्थानान्तरण बाएँ हाथ या शरीर के दूसरे अग मे हो सकता है। यह स्थानान्तरण दो प्रकार का होता है—धनात्मक शिक्षण स्थानान्तरण (Positive transfer of learning) और निषेधात्मक शिक्षण स्थानान्तरण (Negative transfer of learning)। निषेधात्मक शिक्षण स्थानान्तरण को अभ्यास व्याघात (Habit interference) भी कहते है, क्योंकि इसके कारण पहले शिक्षण का स्थानान्तरण दूसरे शिक्षण मे व्याघात या रुकावट पैदा करता है। दूसरी ओर, जब एक विषय के सीखने से दूसरे विषय के शिक्षण मे सुविधा होती है तो इसे धनात्मक शिक्षण स्थानान्तरण कहते है। केवल शिक्षण स्थानान्तरण कहने से सामान्यत धनात्मक स्थानान्तरण का ही बोध होता है। यहाँ हम सक्षेप मे इन दोनों स्थानान्तरणों पर विचार करेगे।

धनात्मक शिक्षण-स्थानान्तरण (Positive transfer of learning) धनात्मक स्थानान्तरण के सर्व प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन का उल्लेख वेबर (Weber) के लेखो मे मिलता है। पहले उसने बच्चों को दाहिने हाथ से लिखना सिखलाया और बाद मे वे बच्चे शीश की सहायता से बाँएँ हाथ से लिखने मे सफल हुए। अपने इस अध्ययन को उसने कही प्रकाशित न कराकर फेक्नर (Fechner) को व्यक्त किया जिसने चौदह पन्द्रह वर्ष बाद उसी तरह के अपने अध्ययनों के साथ उसे प्रकाशित किया।

इस दिशा मे किये गये विभिन्न प्रयोगों से यह प्रमाणित है कि एक हाथ से सीखे हुए कौशल का धनात्मक स्थानान्तरण दूसरे हाथ मे होता है। इस प्रकार का स्थानान्तरण हाथ से पैर मे भी होता है। कहने का अर्थ यह कि जब एक हाथ से हम कोई कार्य करना सीख जाते है तो इसका असर दूसरे हाथ की योग्यता पर भी पडता है और फलत उस हाथ से भी हम उस कार्य को पहले की अपेक्षा अधिक सहूलियत और आसानी से कर लेते है। इस सबन्ध मे कई प्रयोग क्रियात्मक शिक्षण (Motor learning) से सबन्धित हुए है। स्विफ्ट (Swift) के छ प्रयोज्यों में से पाँच प्रयोज्यों मे एक हाथ से दूसरे हाथ मे गेद उछालने के कौशल का स्थानान्तरण काफी मात्रा मे दीख पडा। वाण्डरवेल्ट (Vander velt) के प्रयोज्यों ने कई विन्दु-श्रृङ्खलाओं (Series of points) को अच्छी तरह स्पर्श करना सीखकर दूसरे हाथ से भी उन विन्दुओं को स्पर्श करने मे काफी सुविधा और आसानी का अनुभव किया। कुक (Cook) ने अपने प्रयोज्यों की आँख बन्द कराकर नली के सहारे स्टाइलस (Stylus) से एक खास रास्ता का ज्ञान कराया। उसके बाद परीक्षा लेने पर पाया गया कि सभी प्रयोज्यों में एक हाथ से दूसरे हाथ मे और हाथ से पैर मे शिक्षण का धनात्मक स्थानान्तरण हो गया था।

स्मरण-स्थानान्तरण के प्रयोगो और उनके परिणामों का उल्लेख हम स्मरण के अध्याय मे करगे। इसलिये यहाँ उडवर्थ (Woodworth), थॉर्नडाइक (Thorndike), आदि कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिकों के प्रयोग परिणामों का उल्लेख करना ही समुचित प्रतीत होता है। थार्नडाइक और उडवर्थ ने अपने कुछ प्रयोज्यों को ज्यामिति के चतुर्भुजों और अन्य चित्रों को आँकने (Estimation) का अभ्यास करवाया। कुछ चित्र, रूप में

समान, परन्तु आकार में भिन्न थे और कुछ आकार और रूप दोनों में भिन्न थे।' इस अभ्यास के पहले और बाद में उनके आँकने की प्रतिपन्नता की परीक्षा की गई। उनके प्रयोगो से यह स्पष्ट है कि दो विषयो या क्रियाओ में जितनी समानता होती है उसी मात्रा में शिक्षण स्थानान्तरण भी होता है। उनके इस निष्कर्ष की पुष्टि बाद के अन्य मनोवैज्ञानिकों के प्रयोगो से भी होती है। वेब, हण्टर, आदि मनोवैज्ञानिकों ने [illegible] के साथ चूहों और मनुष्य पर प्रयोग किया। उन्हें सभी प्रयोगों में धनात्मक शिक्षण का प्रमाण मिला।

विली (Wylie) का, अपने अध्ययन के आधार पर, कहना है कि जब पुरानी प्रतिक्रिया का स्थानान्तरण नई उत्तेजना के साथ होता है तब धनात्मक स्थानान्तरण होता है। किन्तु, जब किसी पुरानी उत्तेजना के लिए नई प्रतिक्रिया की जरूरत पड़ती है तब निषेधात्मक स्थानान्तरण होता है। उसका यह निर्णय पावलावर्गर (Poll [illegible]) के पूर्णत अनुरूप है।

उपर्युक्त प्रयोगो का विशद अध्ययन करने पर मालूम होगा कि विषय (Contents) की समानता का हाथ धनात्मक शिक्षण स्थानान्तरण में रहता है। एक भूलभुलैया को सीख लेने पर जब दूसरी भूलभुलैया को सीखने मे सुविधा होती है तो इसका कारण यह होता है कि उनमे कई प्रकार की समानताएँ रहती है। इसी प्रकार विषय समानता के कारण एक हाथ से दूसरे हाथ मे शिक्षण स्थानान्तरण देखने मे आता है।

धनात्मक स्थानान्तरण मे कौशल (Skill) की समानता का भी महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। जब हम किसी कार्य का करने का ढंग सीख जाते हैं तब दूसरी परिस्थिति मे भी उस ढंग का व्यवहार करते है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षण स्थानान्तरण होता है। किसी व्यक्ति को जब किसी विषय पर वैज्ञानिक मनोवृत्ति से काम करना आ जाता है तो वह अपनी उस मनोवृत्ति का व्यवहार अन्य अवसरों पर भी करता है। एक परिस्थिति के कौशल को दूसरी परिस्थिति मे व्यवहार करने में अन्तर्दृष्टि (Insight) अत्यधिक सहायक होती है। सिद्धान्त की समानता कौशल से ही मिलती-जुलती है। इसलिए इसके विशेष विवरण की आवश्यकता नही है। कभी कभी ये तीनों मिलकर शिक्षण स्थानान्तरण में सहायक होते है।

अब थोड़े शब्दों मे हम कह सकते है कि धनात्मक शिक्षण स्थानान्तरण होता है और इसकी मात्रा दो बातो पर निर्भर करती है (१) कितना अभ्यास किया गया है, और (२) किस तरह का अभ्यास किया गया है। दूसरी बात का सम्बन्ध विषय, कौशल, सिद्धान्त, आदि की समानता से है। इसके अतिरिक्त, सीखनेवाले पर भी यह कुछ अंशों में निर्भर करता है।

निषेधात्मक शिक्षण-स्थानान्तरण (Negative transfer of learning)

जब एक विषय या कौशल का सीखना दूसरे विषय या कौशल के सीखने में घातक या बाधक होता है तो इसे निषेधात्मक स्थानान्तरण कहते हैं। निषेधात्मक स्थानान्तरण का आविर्भाव भी विषय, सिद्धान्त और कौशल, आदि की समानता के कारण होता है। किन्तु, ये अंग इसमे सहायक न होकर घातक सिद्ध होते हैं। जब पहले शिक्षण के विषय, सिद्धान्त और कौशल नई परिस्थिति या शिक्षण के प्रतिकूल होते है तब निषेधात्मक शिक्षण

स्थानान्तरण देखने मे आता है। दूसरे शब्दो मे, नई परिस्थिति मे पुरानी प्रतिक्रिया करने पर धनात्मक शिक्षण स्थानान्तरण की सभावना रहती है, किंतु जब पुरानी परिस्थिति मे नई प्रतिक्रिया करनी पडती है तब निषेधात्मक स्थानान्तरण की सभावना रहती है।

जड (Judd) ने अपने प्रयोज्यों पर निपेधात्मक स्थानान्तरण का प्रयोग विपर्यय (Illusion), अक्षरनिराकरण पत्र (Letter cancellation sheet), आदि विभिन्न उपकरणों के साथ किया। प्रयोगो के आधार पर उसका कहना है कि स्थानान्तरण का धनात्मक या निषेधात्मक होना प्रयोज्य की योग्यता और परिस्थिति की सूझ पर निर्भर करता है। ओराटा (Orata) का अध्ययन भी इसी का समर्थन करता है।

बर्गस्ट्राम (Bergstrom) ने निषेधात्मक स्थानान्तरण का प्रयोग कार्डचयन (Card sorting) पर किया। उसके प्रयोग से पता चलता है कि कार्डचयन मे तीन सेकण्ड के व्यवधान (Interval) से निषेधात्मक स्थानान्तरण हुआ, किंतु व्यवधान ज्यों ज्यो बढता गया त्यों त्यो स्थानान्तरण कम होता गया और २४ घण्टे के व्यवधान मे कुछ भी निषेधात्मक स्थानान्तरण नही हुआ। कुलर (Culler) ने इस प्रयोग को कई प्रयोज्यों पर किया जिसके आधार पर उसका कहना है कि दो क्रियाओं को करने पर पहली क्रिया दूसरी क्रिया मे निषेधात्मक स्थानान्तरण के स्वरूप व्याघात (Interference) पहुँचाती है। यद्यपि यह व्याघात प्रभाव क्षणिक होता है, किंतु कुछ अशों मे इसमे स्थिरता भी होती है।

हमलोगों के दैनिक जीवन मे भी इस प्रकार के स्थानान्तरण की कमी नही है। जब हम किसी गाडी को बाँए हाथ से चलाने के अभ्यस्त हो जाते है तब दाएँ हाथ से चलने वाली गाडी को चलाने मे हमे कुछ समय तक कठिनाई होती है। सालभर सन् १९५८ ई० लिखने के अभ्यस्त हो जाने पर सन् १९५९ ई० होने पर भी सदा सन् १९५८ ई० लिख जाता है।

भूल-भुलैया शिक्षण में ज्ञानात्मक संकेत
(Sensory cues in maze learning)

भूल भुलैया सम्बन्धी प्रयोग शिक्षण के सबन्ध मे काफी प्रसिद्ध है। अत यह विचारणीय है कि भूल भुलैया को सीखने मे आँख, कान, नाक तथा अन्य ज्ञानेन्द्रियों के क्या हाथ रहते है, कहाँ तक इनके कारण सीखने मे सुविधा मिलती है। इस सिलसिले मे कई प्रयोग हुए है, परन्तु परिणामों मे एकरूपता नही है। यहाँ हम कुछ प्रमुख प्रयोगो का उल्लेख करेंगे।

भूल-भुलैया के शिक्षण मे किस ज्ञानेन्द्रिय का हाथ रहता है, इसको जानने के लिए पहले-पहल स्मॉल (Small) द्वारा चूहों पर किए गए प्रयोग का उल्लेख मिलता है। उसने गन्ध को इस शिक्षण में स्थान नही दिया, क्योंकि गन्ध को शिक्षण का सकेत (cues) मानना युक्तिसगत प्रतीत नही होता। स्मॉल ने अन्धे और ठीक आँख वाले, दो प्रकार के चूहों पर भूल-भुलैया का प्रयोग किया, किन्तु उसे उन चूहों के शिक्षण मे किसी प्रकार का अन्तर नही मिला। तब उसने भूल भुलैया मे एक दूसरा सरल रास्ता बनाया जो भोजन

के लिए बहुत ही सुलभ और सन्निकट था। इस अवस्था में भी उनके शिक्षण में किसी प्रकार का भेद नही पडा, क्योंकि अन्धे और नेत्रयुक्त दोनो प्रकार के चूहों ने समान शीघ्रता और आसानी के साथ सीख लिया। अतएव स्मॉल का कहना है कि दृष्टि से भूलभुलैया के शिक्षण मे किसी प्रकार का सकेत नही मिलता है। इसके लिए सम्भवत स्पर्श (Touch) और स्नायविक (गति) सवेदना (Kinesthetic sense) की आवश्यकता पडती है।

अपनी इस प्रयोग विधि मे स्मॉल ने कई प्रकार का प्रयोग किया और एक एक ज्ञानेन्द्रिय को निरर्थक बनाकर चूहो पर भूलभुलैया का प्रयोग किया। वाट्सन (Watson) ने दृष्टि सकेत को देखने के लिए अन्धेरे और प्रकाश मे भूलभुलैया का प्रयोग किया, किन्तु इन दोनो अवस्थाओ मे चूहों के शिक्षण मे किसी प्रकार का अन्तर नही पाया। तब उसने कुछ चूहो को दृष्टिविहीन कर इस शिक्षण का प्रयोग किया। लेकिन, तब भी उसे कोई विशेष अन्तर नही मिला। अतएव उसका कहना है कि दृष्टि सकेत शिक्षण का अनिवार्य अग नहीं है।

गन्धशक्ति विहीन और गन्धशक्तियुक्त चूहो के शिक्षण मे भी किसी तरह का अन्तर नही मिला। इसलिए गन्ध सकेत को भी वह शिक्षण मे किसी प्रकार का महत्त्व न दे सका। आशिक बहरा (Partly deaf) करने पर भी चूहे पूर्ववत भूलभुलैया को सीख सके और इसके महत्त्व को व्यक्त न कर सके। त्वक सकेत का भी शून्य होने पर वाट्सन को पूर्ववत् प्रमाण मिला। इन विभिन्न प्रयोगो के आधार पर वाट्सन इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भूलभुलैया के शिक्षण मे चूहो को बाह्य ज्ञानेन्द्रियो से किसी प्रकार का सकेत नही मिलता। अत वे इसके लिए अनावश्यक है। मासपेशी सवेदन और गति ग्राहक (Muscle sense and kinesthetic receptors) के सकेत अत्यावश्यक प्रतीत हुए। सम्भवत अर्द्ध वृत्ताकार नलिका (Semi circular canals) और अन्तरावयव सवेदन (Organic sense) का भी इसमे कुछ हाथ रहा हो, किन्तु इसके सम्बन्ध मे कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। बाद मे लैशले (Lashley) तथा बॉल (Ball) ने अपने प्रयोगो के आधार पर गति-सवेदन (Kinesthetic sense) के सकेत का खण्डन किया। डनिस (Dennis) ने अपने प्रयोगों के आधार पर स्पर्श सकेत को भूलभुलैया शिक्षण मे प्रधान माना। स्निग (Snygg) का कहना है कि चूहे भूलभुलैया मे दृष्टि सकेत का उपयोग करते है, वे उसे स्वत नही सीखते। अत शिक्षण के लिए उन्हे सकेतों पर निर्भर करना पड़ता है।

वीवर तथा स्टोन (Weaver and Stone) के प्रयोगो का अध्ययन करने से ऐसा मालूम होता है कि जब एक ही आकार प्रकार के खुले और बन्द भूलभुलैयो का व्यवहार किया जाता है तो खुले भूलभुलैया को सीखने मे सामान्य चूहे को कुछ आसानी होती है। लेकिन, इन दोनों प्रकार के भूलभुलैयों मे काफी अन्तर नही दिखलाई देता। जब अन्धे चूहों को उनमें रखा जाता है तब वे बन्द भूलभुलैया को खुले भूलभुलैया की अपेक्षा जल्द और आसानी से सीख लेते है। इस प्रकार विभिन्न प्रयोगात्मक परिणामों से मालूम होता है कि शिक्षण में केवल एक ही सकेत पर्याप्त नहीं होता।

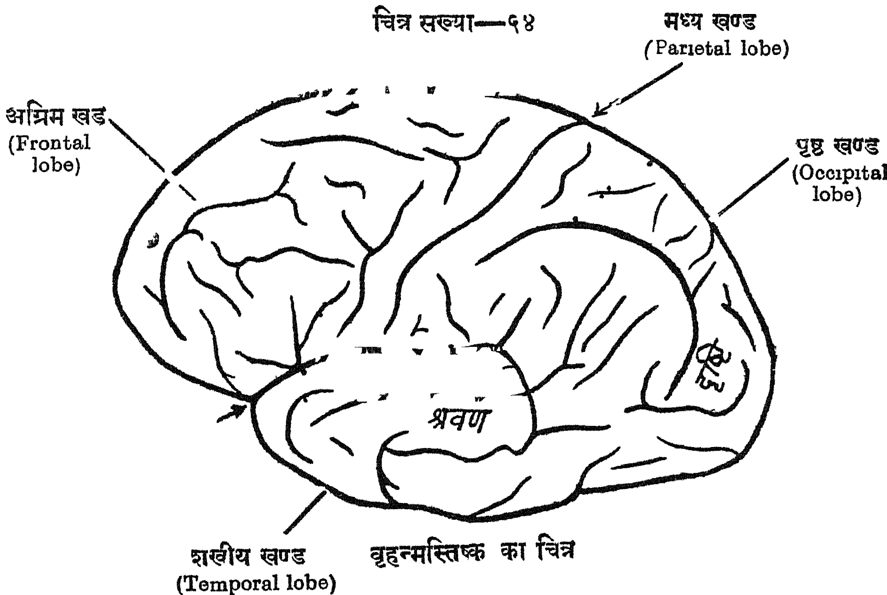
हॉनजिक (Honzik) ने विभिन्न प्रकार के चूहो पर जो प्रयोग किया उससे स्पष्ट है कि अन्धे, बहरे और गधशक्तिहीन चूहों ने अन्य प्रकार के चूहो की अपेक्षा भूलभुलैया के

शिक्षण मे अधिक गलतियाँ की। उनमे बारह प्रयासों के बाद जितनी गलतियाँ पाई गई उतनी ही चौबीस प्रयासों के बाद भी पाई गई। उनकी सख्या मे किसी प्रकार की कमी नही हुई। उन प्रयोगों से स्पष्ट है कि शिक्षण के लिये गति सवेदन ही एक मात्र सकेत नही है। इस दिशा मे हुए अन्य प्रयोग भी इसका प्रतिपादन करते है। इसलिये हम कह सकते है कि सभी प्रकार के ज्ञानेन्द्रिय-सकेतों के रहने से शिक्षण मे सुविधा होती है, किन्तु कुछ सकेतों के अभाव मे उसमे विशेष क्षति पहुँचती है। अत सुलभ शिक्षण के लिए सभी सकेतों का होना अनिवार्य है।

शिक्षण में मस्तिष्क का महत्त्व
(Importance of brain in learning)

शिक्षण एक उच्च मानसिक प्रक्रिया है। इसका मुख्य सम्बन्ध वृहन्मस्तिष्क से रहता है। वृहन्मस्तिष्क के चार मुख्य खड होते है, (१) पृष्ठ खड (occipital lobe)—इसका मुख्य सबध देखने से है तथा मस्तक के पिछले भाग मे स्थित है। (२) शखीय खड (Temporal lobe)—इसका मुख्य सबध सुनने से है तथा कनपट्टी के ठीक ऊपर स्थित है। (३) मध्य खड (Parietal lobe) साहचर्यात्मक (associative) तथा ज्ञानात्मक समन्वयशील (Sensory synthesizing) प्रदेश है तथा (४) अग्रिम खड (Frontal lobe), यह क्रियात्मक सगठन एव क्रियाओ का केन्द्र है। इन उपर्युक्त खडों की स्थिति को निम्नाँकित चित्र से स्पष्टतया समझा जा सकता है।

चित्र सख्या—९४



वृहन्मस्तिष्क का चित्र

शिक्षण मे मस्तिष्क के महत्त्व को देखने के लिए जानवरों पर महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये गये है। उन्हीं प्रयोगों के आधार पर मानवीय शिक्षण को समझने का प्रयास किया गया है। इसके कई कारण है। एक तो ऐसे प्रयोग मनुष्यों पर सरलतया नही ही किये जा सकते। दूसरे, इस दृष्टिकोण से मनुष्य और पशु में मात्र क्रमिक अन्तर ही पाये जाते है। अत हमलोग यहाँ जानवरों पर किये गये प्रयोगों की चर्चा करेंगे।

फ्रैंज (Franz) ने शिक्षण मे अग्रिम खंड की महत्ता को समझने के लिए बन्दरों तथा बिल्लियो पर प्रयोग किया। बिल्लियों को पहले आलिम्बक से निकल कर भागना सिखलाया गया। बाद मे, उनके दोनो अग्रिमखड को मस्तिष्क के अन्य भागो से अलग कर देने पर देखा गया कि बिल्लियाँ बक्से से बाहर निकलना भूल गयी थी। किन्तु, भूली हुई बात उनम सवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ होती थी। ऐसा ही प्रयोग उसने बन्दरो पर भी किया था। उन प्रयोगो के आधार पर उसका कहना है कि नव शिक्षण म साहचर्य स्थापन अग्रिम खडों पर ही निर्भर करता है। अपने अन्य प्रामाणिक प्रयोगो से उसने आलोचको की शकाओं का समाधान किया और आंतिक रूप से बतलाया कि मात्र अग्रिम खण्ड की क्षति से ही नवीन शिक्षण नष्ट हो सकता है। आपरेशन की व्यथा या मस्तिष्क के किसी अन्य भाग का कोई प्रभाव इस पर नही पडता।

बिल्लियों पर किये गये अन्य सहायक प्रयोगो के आधार पर वह इस निष्कर्ष पर आया कि आवश्यक अवसरो पर मस्तिष्क का एक भाग दूसरे भाग के कार्य को कर लेता है। अग्रिम खडो को नष्ट कर देने से नवीन आदतो का नाश हो जाना और पुरानी आदतो का बना रहना स्वय इस तथ्य को प्रमाणित करता है। अत्यधिक अभ्यस्त (पुराना) शिक्षण इसलिये बना रह जाता है, चूकि मस्तिष्क के अन्य भाग उस काम को कर लेते है। यह प्रमाण, मस्तिष्क के विशिष्ट शक्ति सिद्धात (Specific energy theory of the brain) का खडन करता है।

इसी तरह, वाक्भ्रशता (Aphasia) के रोगी को दाहिने भाग म लकवा मार गया। प्रयास करने पर उसमे यथेष्ट सफलता मिली। उसके अन्त्य परीक्षण (Post-mortem) से पता चला कि उसके शखीय खड म ही अधिक क्षति पहुँची थी। चूकि फ्रैंज के अनुसार उस भाग का काम अन्य भागो द्वारा किया जाता है, अत उसम सुधार हो जाना स्वाभाविक और युक्तिसगत है। अन्य प्रमाणों से भी स्पष्ट है कि मस्तिष्क और नाड़ीमडल के पुराने सबध या तो सुरक्षित रहते है या दूसरे भाग उसके बदले म काम करते हैं। ऐसे सम्बन्धों को व्यक्ति की मनोवृत्ति, रुचि, आवश्यकता, आदि से विशेष बल मिलता है। अत समुचित प्रयास से विनष्ट शिक्षण की पुनर्प्राप्ति हो सकती है।

इस दिशा मे लैशले (Lashley) के कार्य भी उल्लेखनीय है। उसने विशिष्ट शिक्षण एव मस्तिष्क आघात (Brain injury) के पारस्परिक सबध का अध्ययन किया। उसने सफेद चूहों को प्रकाश निर्णय (Light discrimination) सिखलाया। बक्स मे दो खाने बने थे। एक मे जाने पर प्रकाश और भोजन मिलता था, दूसरे म जाने पर अधपथ (Blind aley) था और चोट भी लगती थी। प्रकाश और भोजन किसी भी खाने मे स्थानान्तरित किये जा सकते थे। सभी चूहो को पूरी तरह सीख जाने के बाद उसने उनके मस्तिष्क के दोनो पृष्ठ खडों के नष्ट कर दिया। स्वस्थ होने के बाद वे चूहे उस कार्य को पूर्णत भूल गये थे, किन्तु अभ्यास करने पर पुन उसे सीख भी गये।

दूसरे प्रयोग मे उसने चूहो के पृष्ठखड का आपरेशन करने के बाद प्रकाश-निर्णय सिखलाया। देखा गया कि चूहे सरलतया उस काम को सीख गये। मतलब यह कि यद्यपि निर्णय सम्बन्धी शिक्षण मे पृष्ठखण्ड सक्रिय रहता है, तथापि

अभाव मे मस्तिष्क का और भाग भी उस काम को कर लेता है। इसी तरह उसने चूहों के एक समूह के मध्यखण्ड को ही निकाल दिया और देखा कि उनके सीखने मे किसी प्रकार की कमी नही आई थी। इस तरह, स्पष्ट है कि प्रकाश निर्णय का सम्बन्ध मस्तिष्क के जिस भाग से है उसके अभाव मे बृहन्मस्तिष्क का कोई और भाग भी उस काम को कर सकता है। इस शिक्षण की धारणा के लिये मस्तिष्क का कोई भाग आवश्यक है या नही, कहना मुश्किल है।

क्रियात्मक शिक्षण पर मस्तिष्क क्षति का असर देखने के लिये किये गये प्रयोगों से स्पष्ट है कि यह क्षति के अनुपात और समस्या की जटिलता पर निर्भर करता है।

इस तरह फ्रेंज और लैशले के विभिन्न प्रयोग-प्रमाण मस्तिष्क की समक्षमता (Equipotentiality) और उसकी सामूहिक (Mass) क्रियात्मकता का प्रतिपादन करते है। उनके इन निर्णयों की पुष्टि अन्य प्रयोगों तथा व्याधिग्रस्त व्यक्तियों के अध्ययन से भी होती है। इस सम्बन्ध मे, जेकाब्सन (Jacobson), पाइक (Pyke) तथा चैपेल (Chappel), आदि के कार्य विशेष महत्त्व के है।

हार्लो (Harlow) तथा ब्रिकनर (Brickner) ने विभिन्न घटनाओं के अध्ययन के आधार पर मस्तिष्क की समक्षमता बतलायी है। लेकिन, इस समक्षमता अथवा सामूहिक क्रियात्मकता का तात्पर्य यह कदापि नही होता कि मस्तिष्क मे विभिन्न क्रियाओं का स्थानीकरण ही नही होता। बल्कि, यह एक पूर्ण निश्चित एव निर्णीत तथ्य है कि मानसिक क्रियाओ का स्थानीकरण होता है। तात्पर्य यह कि मस्तिष्क का भाग-विशेष क्रिया-विशेष के सम्पादन मे अनिवार्यत सक्रिय रहता है, किन्तु उच्च बौद्धिक कार्यों मे विषय की जटिलता के कारण विभिन्न भागों को आवश्यक रूप से सक्रिय होना पडता है। अत ऐसी जटिल क्रियाओं मे सभवत मस्तिष्क का एक भाग दूसरे भाग के बदले में काम कर देता है।

अत मे, कह सकते है कि मस्तिष्क के सभी भाग परस्पर पूर्ण स्वतन्त्र नही है। मस्तिष्क के सभी भागों की अपनी एक विशेष योग्यता अवश्य होती है। साथ ही, वे एक दूसरे की क्रिया मे भी सहयोग दे सकते है। चूँकि बिल्ली, कुत्ते, बन्दर, तथा मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट मूलत एक ही सिद्धात पर आधारित हे, अत उपर्युक्त प्रयोगात्मक प्रमाणों की महत्ता अनिवार्यत बृहनमस्तिष्क के महत्त्व का ही द्योतक है।

शिक्षण-अध्ययन संबन्धी यंत्र

(Apparatus for studying learning)

प्रयोगशाला मे शिक्षण सबन्धी प्रयोगों के लिए जिन विधियों और यंत्रो का उपयोग होता है उनमे कांच रेखाकन (Mirror drawing), कार्डचयन (Card sorting) तथा स्मृति यत्र (Memory apparatus) प्रमुख है। स्मृति यत्र तथा शिक्षण की विधियों की चर्चा 'स्मरण' के अध्याय मे की जाएगी। यहाँ हम प्रथम दो यत्रों और उनकी प्रयोग विधि का उल्लेख करेगे।

कॉच-रेखाकन-विधि (Mirror drawing method) शिक्षण मे प्रयत्न और भूल (Trial and error) कैसे होता है, अभ्यास का प्रभाव क्या पड़ता है, एक अग से दूसरे अग मे शिक्षण स्थानान्तरण (Transfer of learning) कम होता है, आदि का अध्ययन करने के लिये काच रेखाकन विधि का व्यवहार किया जाता है।

प्रयत्न और भूल की प्रक्रियाओं को जानने के लिये प्रयोक्ता (Experimenter) प्रयोज्य (Subject) को अपने बगल मे बैठाकर उसके सामने कॉच रेखाकन यत्र (Mirror drawing apparatus) रख कर उस पर तारिका सघात (Star-pattern) के एक पृष्ठ को ड्राइगपिन के सहारे इस प्रकार कस देता है कि तारिका सघात का कागज अपने स्थान से किसी प्रकार विचलित न हो। तब वह यत्र पर लगे हुए लकड़ी के पट को ऊपर उठा कर इस प्रकार व्यवस्थित करता है कि प्रयोज्य तारिका सघात को सीधे न देखकर दर्पण के सहारे ही देखे। फिर पहले तारिका चित्र के उस कुमार पर, जो दर्पण के निकटतम होता है, गुणा का चिन्ह (×) लगाकर प्रयोज्य के दाहिने हाथ में पेंसिल देते हुए उस गुणा-चिन्ह पर रख देता है। सुविधा के लिये इस विधि की प्रयोगावस्था का चित्र नीचे दिया जाता है।

चित्र सख्या—६६



कॉच यत्र-रेखाकन का प्रयोग

प्रत्येक तारिका चित्र दो रेखाओं से बना रहता है। प्रयोज्य को उन दोनों रेखाओं के बीच मे दाहिनी ओर से पन्सिल घुमाने का निर्देशन दिया जाता है। ऐसा करते समय वह केवल शीशे मे तारिका की प्रतिमा ही देखता है, तारिका नहीं। पन्सिल जब तारिका की किसी रेखा से छू जाती है तो इसे एक अशुद्धि मानी जाती है। प्रयोज्य को कम से कम समय मे कम से कम अशुद्धि कर तारिका में पेन्सिल घुमाने का भी निर्देशन दिया जाता है। इसके बाद विराम-घड़ी के सहारे प्रत्येक तारिका में लगे समय को लिख

लिया जाता है। जहाँ पेन्सिल किसी रेखा को छूती या पार करती है, उसे अशुद्धि (Error) मानते हैं। प्रयोग समाप्त होने पर प्रत्येक तारिका की पूरी अशुद्धियाँ गिन ली जाती हैं। लगातार कई तारिकाओं में पेन्सिल घुमाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभ्यास से किस प्रकार क्रमश समय और अशुद्धि में कमी आ जाती है।

[illegible] का [illegible] अध्ययन करने के लिये प्राय प्रयोज्यों को नियन्त्रित और प्रयोगात्मक (Controlled and experimental) दो समूहों में बाँट कर प्रयोग किया जाता है। लेकिन, सुविधा न होने पर एक प्रयोज्य पर भी प्रयोग किया जा सकता है। धनात्मक प्रशिक्षण स्थानान्तरण (Positive transfer of training) का अध्ययन करने के लिए पहले प्रयोज्य को अनभ्यस्त हाथ (प्राय बायाँ) से दो तारिकाओं में पेन्सिल घुमाने को कहा जाता है। इसके बाद दूसरे हाथ (दाहिना) से १९-२० तारिकाओं में पेन्सिल घुमाने का निर्देशन दिया जाता है। इस अभ्यास के बाद पुन पहले हाथ (बायाँ) से दो प्रयास किए जाते हैं। पहले और अन्तिम दो प्रयासों का औसत निकाल कर तुलना की जाती है और देखा जाता है कि दूसरे हाथ (दाहिना) से अभ्यास करने के फलस्वरूप पहले हाथ (बाया) की योग्यता में कुछ वृद्धि हुई या नहीं। प्रयोज्य के वामहस्ती होने पर पहले और अन्तिम दो दो प्रयास दाएँ हाथ से कराए जाते हैं और मध्य के अन्य प्रयासों को बाएँ हाथ से कराया जाता है।

कार्ड चयन विधि (Card sorting method) कार्ड चयन विधि से साधारणत निषेधात्मक प्रशिक्षण स्थानान्तरण (Negative transfer of training), शिक्षण पर अभ्यास का असर, विभिन्न स्थलों के शिक्षण की सरलता या कठिनता आदि का अध्ययन किया जाता है। अभ्यास का असर देखने के लिये प्रयोज्य को बैठाकर कार्ड छाँटने वाले

चित्र-संख्या—९६



कार्ड-चयन का प्रयोग

बोर्ड को, जिस पर विभिन्न खाने बने रहते हैं और प्रत्येक खाने में ताश का एक पत्ता सटा रहता है, अच्छी तरह समझा दिया जाता है। प्रयोग की अवस्था चित्र संख्या ६६ में देखें।

प्रयोज्य को ताश की पत्तियाँ देकर बोर्ड के विभिन्न खानों में उनके अनुरूप पत्ता को रखने का निर्देशन दिया जाता है। प्रयोक्ता सभी कार्डों को रखने में लगे समय को विराम घड़ी के सहारे अंकित करता है और प्रत्येक प्रयास की अशुद्धियों को भी गिन लेता है। प्रत्येक प्रयास के अन्त मे सभी कार्डों को अच्छी तरह मिला दिया जाता है। इसी तरह १५-२० प्रयास लिये जाते हैं और देखा जाता है कि अभ्यास के कारण शिक्षण गति में उन्नति या अशुद्धियों मे कमी कैसे हुई। किस कार्ड के स्थान को सीखने में कठिनाई या सुविधा हुई, इसका ज्ञान प्रयोज्य के अन्तर्निरीक्षण से आता है।

निषेधात्मक शिक्षण स्थानान्तरण का अध्ययन करने के लिये कार्ड लगाने का अभ्यास काफी प्रयास तक कराने के बाद बोर्ड की स्थिति बदल दी जाती है। इस स्थिति में भी वे ही कार्ड अव्यवस्थित रूप मे सटे रहते हैं। इस अवस्था में दो तीन प्रयास लिये जाते हैं और यह देखा जाता है कि पहली अवस्था के अन्तिम प्रयास में प्रयोज्य ने जो समय लिया था, दूसरी अवस्था के पहले प्रयास में उसने उससे कितना अधिक समय लिया। दूसरी अवस्था के प्रथम प्रयास में पूर्व की अपेक्षा अधिक समय का लगना निषेधात्मक स्थानान्तरण का द्योतक है। इस अवस्था में दो तीन प्रयास यह देखने के लिये लिये जाते हैं कि दूसरी अवस्था के पहले प्रयास में जो अधिक समय लगा, वह निषेधात्मक शिक्षण स्थानान्तरण के परिणाम स्वरूप है या थकावट के कारण। दूसरी अवस्था के दूसरे और तीसरे प्रयासों मे उस अवस्था के पहले प्रयास से यदि कम समय लगता है तो वह निस्सन्देह निषेधात्मक शिक्षण स्थानान्तरण का द्योतक होता है। यदि दूसरी अवस्था के पहले प्रयास मे थकावट के कारण अधिक समय लगा होता तो उस अवस्था के अन्य प्रयासों मे और भी अधिक समय लगता। अतः निषेधात्मक शिक्षण स्थानान्तरण को निश्चित रूप से व्यक्त करने के लिये उत्क्रांत (उलटी) अवस्था (Reverse condition) में दो तीन प्रयासों का लेना आवश्यक है।

आठवाँ अध्याय

शिक्षण (सिद्धान्त)

(Learning theories)

किसी भी वैज्ञानिक तथ्य के समर्थन मे सिद्धान्त का होना आवश्यक है। विद्वानों ने शिक्षण के विभिन्न तथ्यों की व्याख्या भी किसी सिद्धान्त के आधार पर करने का प्रयास किया है। लेकिन, शिक्षण के अन्तर्गत इतने तथ्य है कि उन सभी का समावेश किसी एक सिद्धान्त मे अभी तक सभव नही हो पाया है। अतएव इसके कई सिद्धान्त कम या अधिक अश मे मान्य है। यहाँ हम उन्हीं सिद्धान्तो का सक्षेप मे उल्लेख करते हुए यह देखेगे कि कौनसा सिद्धान्त कितने तथ्यों की सन्तोषप्रद व्याख्या करने मे कहाँ तक समर्थ है। किन्तु, पूर्व इसके कि इन विभिन्न शिक्षण सिद्धान्तों की विवेचना की जाय, इनमे अन्तर्निहित सैद्धान्तिक विचार-धाराओं को समझना विशेष उपयोगी होगा। इनके स्पष्ट ज्ञान के लिये सभी शिक्षण सिद्धान्तो को दो वर्गो मे बाँटा जा सकता है—(१) साहचर्य-सिद्धान्त (Association theories) या उत्तेजना प्रतिक्रिया सिद्धान्त (S-R theories) तथा (२) क्षेत्र सिद्धान्त (Field theories)। इनमे पहले वर्ग के सिद्धान्त को माननेवालों मे थॉर्नडाइक, हल (Hull), मिलर (Miller), डोलार्ड (Dollard), स्पेन्स (Spence) तथा गुथरी (Guthrie), आदि के नाम प्रमुख है। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत मुख्यत कोहलर (Kohler), कोफ्का (Koffka), लेविन (Lewin), टॉलमैन (Tolman), एडम्स (Adams), आदि के नाम लिये जाते है। प्रत्येक वर्ग मे विभिन्न मतों के मानने वाले मनोवैज्ञानिक है जो कुछ बिन्दुओं पर एक दूसरे से भिन्न है। यह क्षेत्र-सिद्धान्त के मानने वालों के साथ विशेष रूपसे लागू है, क्योंकि इसके अन्तर्गत जेस्टाल्टवाद, नवीन जेस्टाल्टवाद (Neo-Gestaltism), चिन्ह-सार्थक सिद्धान्त (Sign significate or s s theory) तथा प्रत्यक्षीकरण सिद्धान्त (Perception theory), इन सभी के माननेवाले मनोवैज्ञानिकों की गिनती होती है। इन सभी को एक श्रेणी मे रखने का कारण यह है कि मुख्य विषयों की विवेचना मे ये प्राय समान रूप की धारणा रखते है।

शिक्षण सिद्धान्त के उपर्युक्त दोनों वर्गो के अन्तरों को बिल्कुल स्पष्ट और प्रत्येक अवस्था के लिये सही नही कहा जा सकता। इसका मुख्य कारण, जैसा ऊपर कहा गया, यह है कि प्रत्येक वर्ग के अन्तर्गत कई वाद और सिद्धान्त है। फिर भी, इन दो वर्गों के सिद्धान्तों मे कुछ ऐसे अन्तर है जो न केवल शिक्षण, बल्कि मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों मे अपना महत्त्व रखते है। ये अन्तर शिक्षण के क्षेत्र मे, मुख्यत निम्नाकित छ बातों को लेकर है (१) वातावरण और जीव, (२) सम्पूर्ण और अश, (३) प्रतिक्रिया और ज्ञान, (४) यान्त्रिक और गत्यात्मक स्वरूप, (५) ऐतिहासिक तथा समकालीन कारण और (६) प्रोत्साहन तथा अप्रोत्साहन। इन छ विवादात्मक बिन्दुओं मे प्रत्येक के दो पहलू है जिनमें एक पहलू पर एक वर्ग जोर देता है और दूसरे पहलू पर दूसरा वर्ग। यहाँ सक्षेप मे इनकी चर्चा कर देना अधिक उपयोगी होगा।

(१) वातावरण और जीव (Environment [illegible]) प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार एक दूसरे से भिन्न होता है। [illegible] भिन्नता वातावरण की भिन्नता के कारण होती है या व्यक्ति की भिन्नता [illegible] विवाद का विषय है। साहचर्य सिद्धान्तवादियों के अनुसार [illegible] वातावरण द्वारा निर्देशित होते है। वाट्सन (Watson), [illegible] ([illegible]), [illegible] मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग द्वारा पाया है कि व्यक्ति के मस्तिष्क चिन्ह ([illegible]) वातावरण के प्रभाव से सदैव परिवर्त्तित हुआ करते है। दूसरी ओर, क्षेत्र सिद्धान्तवादी (Field [illegible]) का मत है कि जीव किस तरह की प्रतिक्रिया करेगा, यह उसकी ज्ञानात्मक ([illegible]), क्रियात्मक (Motor) और स्नायविक (Neural) रचना [illegible] सिद्धान्त के लिये जीव की योग्यता, उसकी मौलिक रचना, [illegible] की योग्यता है कि वह एक विशेष प्रकार से किसी परिस्थिति में [illegible] व्यवहार करता है। इस तरह, क्षेत्र सिद्धान्तवादी मनोवैज्ञानिक शिक्षण के सिलसिले में वातावरण के प्रभाव पर जोर नहीं देते।

(२) सपूर्ण और अश (whole vs part) [illegible] सिद्धान्त (Association theories) के अनुसार, किसी वस्तु या स्थिति का ज्ञान [illegible] उसे सीखने में उसके विभिन्न अशो के बीच सम्बन्ध स्थापित करना होता है। [illegible] अनुसार, स्थिति के अश और उनका पारस्परिक सम्बन्ध [illegible] है। दूसरी ओर, क्षेत्र सिद्धान्त के अनुसार किसी क्षेत्र (Field) [illegible] पूर्ण परिस्थिति का ज्ञान एक सघात (Pattern) मे होता है, अशो को मिला कर नहीं। [illegible] शिक्षण के लिए सम्पूर्ण वस्तु या परिस्थिति का ज्ञान आवश्यक है, उसका अश नहीं।

(३) प्रतिक्रिया और ज्ञान (Reaction vs cognition) [illegible] सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति प्रतिक्रिया (Response) करना सीखता है और इसीलिए उस सिद्धान्त के मानने वाले (हल, वाटसन, थार्नडाइक, आदि) शिक्षण और कार्य (Performance) को एक ही मानते है। किन्तु, टॉलमैन, लेशले, आदि ने अपने प्रयोग परिणाम के आधार पर व्यक्त किया है कि वस्तुत शिक्षण और कार्य दोनो भिन्न है। हम किसी चीज का सीखने के बाद भी उसे क्रिया के रूप मे व्यक्त नही कर सकते है। [illegible] उनके अनुसार, जीव प्रतिक्रिया करना नही सीखता, बल्कि परिस्थिति का पहचानना या उसका ज्ञान प्राप्त करना सीखता है।

(४) यान्त्रिक और गत्यात्मक स्वरूप (Mechanical vs dynamic nature) साहचर्य-सिद्धान्त के मानने वालों की यही धारणा है कि उत्तेजना और प्रतिक्रिया मे एक निश्चित सम्बन्ध होता है जिसके आधार पर जीव के व्यवहार की भविष्यवाणी की जा सकती है। इस तरह, जीव का व्यवहार यन्त्रवत् होता है, वह यन्त्र के समान किसी कार्य को करना सीखता है। किन्तु, क्षेत्र-सिद्धान्तवादियों के अनुसार व्यक्ति मशीन नहीं, बल्कि गत्यात्मक स्वरूप का एक जीव है। उसमे तरह तरह के परिवर्त्तन हुआ करते है। ये परिवर्त्तन उसकी आन्तरिक शक्ति (Inner force) द्वारा होते है। अतएव किसी व्यवहार की निश्चित भविष्यवाणी सभव नहा है।

(५) ऐतिहासिक और समकालीन कारण (Historical vs contemporary causations) ऐतिहासिक कारण अथवा गत अनुभव साहचर्यवादियों के

लिये काफी प्रमुख हाथ रखता है। वे किसी व्यक्ति के व्यवहार की भविष्यवाणी उसके गत व्यवहार के आधार पर करते है। इस सम्बन्ध मे उनका कहना है कि चूँकि अमुक व्यक्ति ने इस परिस्थिति मे ऐसा व्यवहार किया था, इसलिये इस समय भी वह वैसा ही व्यवहार करेगा। परन्तु, लेविन, प्रभृति क्षेत्र मनोवैज्ञानिक (Field Psychologists) गत अनुभव की अपेक्षा वर्त्तमान परिस्थिति को, जिसम जीव कोई कार्य कर रहा हो, अधिक प्रमुख मानते है। अतएव, शिक्षण के अध्ययन के लिये गत अनुभूति उतनी आवश्यक नही है जितना यह जानना कि प्रयोज्य वर्त्तमान परिस्थिति मे प्रतिक्रिया किस प्रकार कर रहा है।

(६) प्रोत्साहन और अप्रोत्साहन (Reinforcement vs non reinforcement) साहचर्य सिद्धान्त के अनुसार, शिक्षण के लिये जीव मे सीखने की प्रेरणा (Motivation) का होना जरूरी है। यह प्रेरणा उसमे किसी तरह के प्रोत्साहन अथवा पुरस्कार द्वारा उद्भूत और जाग्रत होती है। अत शिक्षण के लिये प्रोत्साहन आवश्यक है। किन्तु, क्षेत्र सिद्धान्त के अनुसार, शिक्षण के लिये पुरस्कार अथवा प्रोत्साहन कोई जरूरी नही है। टॉलमैन, लेविन, आदि के अनुसार किसी प्रकार के प्रोत्साहन के बिना भी जीव सीखता है, भले ही वह उसे व्यक्त न करे। अव्यक्त शिक्षण (Latent learning) इसका प्रमाण है।

इस प्रकार, उपर्युक्त दोना वर्गो के सिद्धान्त एक दूसरे के पूर्णत विपरीत मालूम होते है। किन्तु, उनके प्रयोगों के विवेचनात्मक अध्ययन के बाद यह अन्तर कुछ इतना अधिक नही मालूम होगा। वस्तुत यह अन्तर कुछ तो सैद्धान्तिक सकीर्णता के कारण है तथा कुछ एक दिशाविशेष मे ही व्याख्या करने के कारण। यही कारण है कि शिक्षण का कोई भी सिद्धान्त सभी जीवों की शिक्षण स्थितियों की सतोषप्रद व्याख्या नही करता। हिलगार्ड (Hilgard) के अनुसार किसी भी शिक्षण-सिद्धान्त को तभी यथेष्ट कहा जा सकता है जब वह निम्नाकित बातों की सतोषप्रद व्याख्या करे।

(१) शिक्षण की सीमा कौन सा जीव क्या और कितना सीख सकता है ? यह सीमा जन्म के ही समय निर्धारित होती है या बाद मे ?

(२) शिक्षण मे अभ्यास (Practice) का क्या हाथ है ?

(३) शिक्षण मे प्रेरणा (Motivation) का कितना महत्त्व है ?

(४) शिक्षण मे, अन्तर्दृष्टि या समझ (Insight or understanding) का, क्या स्थान है ?

(५) क्या शिक्षण का स्थानान्तरण (Transfer) सभव है, यदि हाँ, तो कैसे ?

(६) शिक्षण और विस्मरण (Forgetting) मे क्या सम्बन्ध है ?

इन बातो की जानकारी के आधार पर किसी शिक्षण सिद्धान्त को जाँचा जा सकता है। किन्तु, खेद है कि अभी तक एक भी शिक्षण सिद्धान्त ऐसा नही बन सका है जो इन सारी बातों की सतोषप्रद व्याख्या कर सके। विशेष जानकारी के लिए कुछ प्रमुख शिक्षण-सिद्धान्तों की विवेचना आवश्यक होगी। प्रमुख शिक्षण सिद्धान्तों मे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन-सिद्धान्त (Conditioned reflex theory), प्रयत्न और भूल सिद्धान्त (Trial

and error theory), अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त (Insight theory), चिन्ह समष्टि सिद्धान्त (Sign Gestalt theory) तथा प्रोत्साहन सिद्धान्त (Reinforcement theory) के नाम उल्लेखनीय है। यहा हम इन्ही सिद्धान्तो पर क्रमश विचार करेंगे।

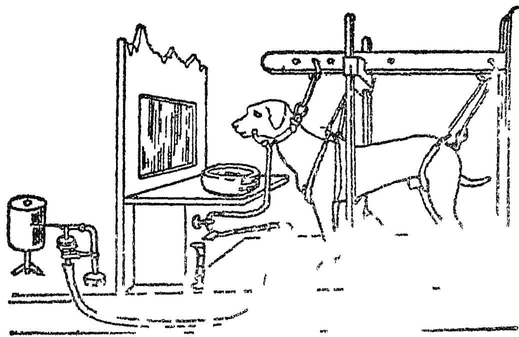
सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन सिद्धान्त
(Conditioned reflex theory)

खानेवाली कोई चीज मुँह मे रखने पर जीभ पर लार आना स्वाभाविक है। किन्तु, यदि खाना उपस्थित करने के पहले बराबर लालबत्ती दिखायी जाय और कुछ दिनो के बाद बत्ती देखते ही लारग्रथि (Salivary gland) से स्राव (Secretion) होने लगे तो बत्ती देखकर लार गिरने की यह क्रिया अवश्य ही अस्वाभाविक कही जायगी। इस प्रकार की अस्वाभाविक प्रतिक्रिया को सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन (Conditioned reflex) या सम्बद्ध प्रतिक्रिया (Conditioned response) कहते है तथा बत्ती जैसी अस्वाभाविक उत्तेजना को सम्बद्ध उत्तेजना (Conditioned stimulus)। अतएव हम कह सकते है कि किसी अस्वाभाविक या सम्बद्ध उत्तेजना से स्वाभाविक प्रतिक्रिया का होना सबद्ध प्रत्यावर्त्तन है। मान ले, कोई व्यक्ति कुत्ते से डरता है, लेकिन घण्टी के शब्द से नही। बाद मे यदि वह घण्टी की आवाज से डरने लगे तो उसके इस डरने की प्रतिक्रिया को सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन कहेगे तथा घण्टी की आवाज को सम्बद्ध उत्तेजना (Conditioned stimulus)। देखने पर हमे अपने जीवन मे ऐसे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तनों की कमी नहीं मिलेगी। तरह तरह की चीजो से बच्चो का डरना, हँसना और रोना अधिकाश सम्बद्धता (Conditioning) के ही परिणामस्वरूप होते है।

यद्यपि शिक्षण के इस सिद्धान्त का उल्लेख हम हजारो वर्ष पूर्व अप्रत्यक्षतया (Indirectly) यूनानी और पुन लॉक (Locke) के दर्शन मे मिलता है, किंतु इस दिशा मे वैज्ञानिक अन्वेषण के लिये रूसनिवासी दैहिक विज्ञानवेत्ता पेवलॉव (Pavlov) का नाम विख्यात है। सन् १९०० ई० के लगभग वह कुत्ते तथा अन्य जानवरों पर प्रयोग द्वारा पाचन की क्रिया के विभिन्न पहलुओ का अध्ययन कर रहा था। इसी क्रम मे उसने इस प्रकार की शिक्षण प्रक्रिया का निरीक्षण किया और परिणामस्वरूप उसने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उस समय के मनोवैज्ञानिक अन्तर्निरीक्षणात्मक मनोविज्ञान (Introspective psychology) से ऊब से गये थे। इसलिये उन्होंने पवलॉव के कार्य का हृदय से स्वागत करते हुए उसे हर तरह से प्रोत्साहित किया। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार के शिक्षण को साहचर्यात्मक शिक्षण (Associative learning) के नाम से भी अभिव्यक्त किया। लेकिन, लॉक के प्रत्यय साहचर्य (Association of ideas) और पवलॉव के सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन को एक समझना गलत है। प्रत्यय साहचर्य (Association of ideas) के सिद्धान्त का आधार मानसिक है और सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का आधार दैहिक। ज्ञानात्मक उत्तेजना और ग्रथि प्रतिक्रिया मे जो सख्यात्मक प्रतिपन्नता (Quantitative exactness) है, उसका लॉक के प्रत्यय साहचर्य मे पूर्णत अभाव है। इस तरह पैवलॉव का सिद्धान्त पूर्णत वैज्ञानिक, विधेयात्मक (Objective) और सख्यात्मक है, लेकिन लॉक के सिद्धान्त मे इन विशेषताओं का सर्वथा अभाव है।

१ **पैवलॉव का प्रयोग** प्रयोगात्मक अध्ययन करते हुए पैवलॉव ने यह देखा कि भोजन को देखकर कुत्ते मे ग्रथि स्राव होता है। अत उसने इसके विशेष अध्ययन के लिये कुत्ते के गाल मे आपरेशन द्वारा एक ऐसा स्थान बनाया जहा ग्रथि स्राव एकत्रित हो सकता था। उसने उस स्राव को बिन्दुओ मे मापा भी। आपरेशन करने के बाद जब कुत्ता उसके दर्द वगैरह से बिल्कुल चगा हो गया तब पैवलॉव ने उसे प्रयोगशाला के वातावरण से परिचित कराया। प्रयोग करने के पहले उसने उसे टहलाया और घुमाया भी। तब प्रयोगशाला के टेबुल पर उसे इस प्रकार खडा कर दिया कि वह इधर उधर न कर सके। इसके बाद घण्टी बजाकर उसे खाना दिया गया। ऐसा घण्टी बजाने के तुरत बाद किया गया। भोजन देखकर कुत्ते के मुँह मे पानी चला आया। लेकिन, इसी प्रकार जब कई बार खाना देने के पहले घण्टी बजाई गई तब पैवलॉव ने देखा कि घण्टी की आवाज मात्र से ही कुत्ते के मुंह मे पानी आ जाता था। पैवलॉव ने इस घण्टी की आवाज को सम्बद्ध उत्तेजना (Conditioned stimulus) और ग्रथि-स्राव को सम्बद्ध प्रतिक्रिया (Conditioned response) के नाम से व्यक्त किया। प्रयोग के अन्तर्गत उसे यह भी मालूम हुआ कि किसी प्रकार का ध्यानभग (Distraction) ग्रथि स्राव की प्रतिक्रिया मे बाधा पहुँचा सकता था। इसलिये बाद मे उसने एक ऐसी प्रयोगशाला का निर्माण किया जिसमे किसी तरह की आवाज के पहुँचने या ध्यानभग होने की गुजाइश नही थी। ऐसे प्रयोग को करते समय वह भी प्रयोज्य की आँखो मे पूर्णत ओझल रहता था। घण्टी की आवाज होना, भोजन का उपस्थित होना और ग्रथिस्राव को मापना, ये सभी कार्य यन्त्र द्वारा होते थे। प्रयोग स्थिति की जानकारी के लिये निम्नाकित चित्र देखे।

चित्र सख्या ६७



सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का प्रयोग

पैवलॉव ने प्रयोगो के आधार पर यह भी व्यक्त किया कि सिर्फ ध्वनि से ही नही, बल्कि स्पर्श, गन्ध, दृश्य, आदि किसी भी सम्बद्ध उत्तेजना से कुत्ता ग्रथि स्राव की प्रतिक्रिया कर सकता है। विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओ के साथ प्रयोग करके उसके अनुयायियों ने भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया। अपने प्रयोगों द्वारा सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन की जटिलता (Complexity) पर प्रकाश डालते हुए उसने आदत निर्माण (Habit formation), नीद तथा नाड़ी-विकृति पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला। उसने सभी प्रकार के शिक्षणों की व्याख्या भी इसी आधार पर की। उसके अनुसार किसी प्रकार की आदत, सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन श्रृखला (Chain of conditioned reflexes) के अतिरिक्त और कुछ नही

है। सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन की जाँच के लिये अमरिका में कई मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न उत्तेजनाओं के साथ भेड़, बकरी, मछली, घोंघ, बच्च और सयानों पर अनेक प्रयोग किए और उस समय सबने पैवलॉव के परिणाम का ही समर्थन किया।

बच्चों मे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन (Conditioning in children) पवलॉव ने सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का प्रयोग कुत्तों पर ही नहीं, बल्कि बच्चों पर भी किया। ध्वनि या प्रकाश के साथ प्रयोग करके यह प्रमाणित किया गया है कि जन्म के दूसरे महीने मे बच्चों मे सम्बद्धता द्वारा सीखने की क्षमता हो जाती है। तीसरे महीने मे वे दो प्रकार की ध्वनियों की भिन्नता पहचानने लगते है। डी जी मारक्विस (D G Marquis) ने दस नवजात शिशुओं (Neonates) पर सम्बद्धता का प्रयोग किया। उत्पन्न होने के बाद उन बच्चों को प्रयोगशाला के अतिरिक्त अन्यत्र दूध पीने के लिये नहीं जाने दिया जाता था। वहीं उन्हे माता का दूध बोतल द्वारा पिलाया जाता था। वे बिस्तरों पर इस तरह सुलाए गए थे कि उनकी शरीर गति और चूसने की क्रिया यन्त्र के द्वारा अंकित हो जाती थी। दूध देने के पहले पाँच सेकण्ड तक घण्टी बजाई जाती थी और तब उन्हें दूध दिया जाता था। तीन से छ दिनों के बाद सभी बच्चे घण्टी की आवाज सुनने पर रोना या अन्य क्रियाओं को रोक कर दूध पाने के पहले ही मुँह खोलने और चूसने की प्रतिक्रिया शुरू कर देते थे। अन्य रूसी अन्वेषकों ने अपने प्रयोगों द्वारा यह स्वीकार किया कि तीन चार वर्ष के बच्चों मे सम्बद्धता आसानी से प्रस्थापित होती है, लेकिन अधिक उम्र के बच्चों में यह कठिनाई से देखी जाती है।

क्रास्नोगोरस्की (Krasnogorski) ने कई उत्तेजनाओं के साथ बच्चों के सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का प्रयोग किया। अपने प्रयोग परिणामों के आधार पर उसका कहना है कि जीवन के पहले वर्ष मे ही उनमे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का आविर्भाव होता है। उसने यह भी कहा कि सामान्य (Normal) बच्चों का सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन असामान्य और मानसिक दुर्बल बच्चों की अपेक्षा शीघ्र विनष्ट होता है। मैटीयर के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि सामान्य बच्चों मे मानसिक दुर्बल बच्चों की अपक्षा आधे समय में ही सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन प्रस्थापित और विनष्ट होता है। इस तरह, सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन और बुद्धि मे घनिष्ट सम्बन्ध है।

प्रौढ व्यक्तियो मे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन हम ऊपर देख चुके है कि चार वर्ष के बाद बच्चो मे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन कठिनाई से प्रस्थापित होता है। लेकिन, इस परिणाम से वे वैज्ञानिक हतोत्साह नहीं हुए, बल्कि उन्होने अनेक प्रकार की उत्तेजनाओं के साथ प्रौढ व्यक्तियों के विभिन्न सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तनों का अध्ययन किया। उनमें किसी को सफलता और किसी को विफलता हाथ लगी। लेकिन, अभी तक इस दिशा मे जितने प्रयोग हुए है वे सभी इसके साक्षी है कि प्रौढ व्यक्तियों मे भी सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन प्रस्थापित हो जाता है। लेशले ने ग्रंथि स्राव की प्रतिक्रिया के साथ जो प्रयोग किया उसमें उसे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का प्रमाण नही मिला। लेकिन, जब रैजरन (Razran) ने सैतीस विद्यार्थियों पर प्रयोग किया तब उसे सभी प्रयोज्यों मे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन मिला। हाँ, इतना जरूर था कि उनके सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन मे एकरूपता (uniformity) नहीं थी। प्रशिक्षण का भी महत्त्व विशेष रूप से दृष्टिगोचर नही हुआ। किसी मे ग्रंथिस्राव की मात्रा अधिक थी तो किसी में कम। किसी में बहुत शीघ्र स्राव देखने मे आया और किसी में बहुत देर के बाद। इसी तरह, किसी में सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन जल्द नष्ट हो गया तो किसी में काफी समय तक बना रहा। इन विभिन्न

परिणामों के आधार पर उसका कहना है कि विभिन्न प्रयोज्यों के परिणामों में अन्तर उनकी मनोवृत्ति (Attitude) मे भिन्नता के कारण था, क्योंकि उनमे कोई विरक्त (Indifferent) था तो कोई काफी सलग्न। अतएव प्रौढ व्यक्तियों मे सम्बद्धता की शक्ति की कमी नही रहती। लेकिन, वे अपनी प्रतिक्रियाओं का नियत्रण विशेष रूप से करते है, इसलिये उनमे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन कठिनाई से स्थापित होता है।

बेख्टरेव (Bechterev) ने लार की प्रतिक्रिया से असतुष्ट होकर अपने प्रयोज्यों पर सम्बद्ध कर्षण प्रत्यावर्त्तन (conditioned withdrawal reflex) का प्रयोग किया। क्योकि उसका ऐसा विश्वास था कि प्रौढ व्यक्तियों के लिये क्रियात्मक सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन (Motor conditioned reflex) विशेष उपयुक्त है। वाटसन (Watson) ने भी शब्द और विद्युत आघात (Electric shock) के साथ प्रयोज्यों पर कर्षण प्रत्यावर्त्तन का प्रयोग किया और उसे भी अपने प्रयास मे सफलता मिली। कई सशोधनों के साथ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी इस दिशा मे प्रयोग किया। हेमेल (Hemel) ने पाया कि निर्बल आघात (weak shock) से सम्बद्ध प्रतिक्रिया नही होती, किन्तु आघात की प्रबलता बढा देने पर होती है। थार्नडाइक तथा लोर्ज (Lorge) ने अपने प्रयोज्यों को रुचिकर कहानी पढने के लिये देकर इस पर प्रयोग किया और उन्हे पर्याप्त सफलता मिली। हिल्डेन (Hilden) के प्रयोगो से भी सम्बद्ध कर्षण प्रत्यावर्त्तन प्रमाणित हुआ। उसके प्रयोग मे कुछ प्रयोज्यों ने आघात लगने पर हाथ न खीचने का सकल्प किया था, किंतु सम्बद्ध उत्तेजना के उपस्थित होते ही उन्हे विवशत हाथ खीचना पडा। हाथ खीचने की यह प्रतिक्रिया ऐच्छिक नही, अपितु अनैच्छिक (Non voluntary) थी।

सन् १९०२ ई० मे यद्यपि ट्विटमायर (Twitmyer) को अपने प्रयोज्यों में जानु प्रत्यावर्त्तन (Knee Jerk) मिला, किंतु वह उसका नाम व्यक्त नहीं कर सका। उसके बाद जितने प्रयोक्ताओं ने इस सम्बन्ध मे प्रयोग किया उन सबको जानु प्रत्यावर्त्तन का प्रमाण मिला। श्लासबर्ग (Schlosberg) ने ४९ प्रयोज्यों को पढने या किसी अन्य प्रकार का काम देकर इसका प्रयोग किया। उसे इसमे ४४ प्रयोज्यों मे सम्बद्ध जानु प्रत्यावर्त्तन दीख पड़ा। किंतु, वह शीघ्र ही विलिष्ट भी हो गया। वेण्ट (Wendt) के १७ प्रयोज्यों में से १९ प्रयोज्या मे इसका प्रमाण मिला। किन्तु, कुछ प्रयोज्यों ने इसे अर्द्ध ऐच्छिक प्रतिक्रिया व्यक्त किया। अस्तु, उपर्युक्त प्रयोगों के परिणामों मे जो भी भिन्नता हो, लेकिन यह मानना पडेगा कि प्रौढ व्यक्तियो मे जानु प्रत्यावर्त्तन प्रस्थापित किया जा सकता है, भले ही वह क्षणिक ही क्यो न हो।

पलक प्रत्यावर्त्तन (Eye reflex) की सम्बद्धता के सिलसिले में हमें प्रौढ व्यक्तियो मे इसका काफी प्रमाण मिलता है। केसन (Cason) को पलक प्रत्यावर्त्तन की सम्बद्धता मे अत्यधिक सफलता मिली। उसने कई प्रकार की उत्तेजनाओं के साथ प्रयोग किया था।

इसी प्रकार पैवलॉव, वाटसन, आदि मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं के साथ जानवरों, बच्चों तथा प्रौढ व्यक्तियों पर प्रयोग करके यह प्रमाणित किया है कि उच्चतम से निम्नतम जीवों का शिक्षण सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के द्वारा होता है। लेकिन, इसके पहले कि हम इसकी सार्थकता और गुण-दोषों का विवेचन करे, इससे आबद्ध अन्य पहलुओ का उल्लेख करना आवश्यक है।

सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के विभिन्न अंग तथा पहलू

पैवलॉव और उसके अनुयायियों ने जानवर, बच्चे और प्रौढ़ व्यक्तियों पर सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के जितने प्रयोग किये हैं उन सबका अध्ययन करने से हमें कुछ महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं जिनका उल्लेख यहाँ क्रमशः किया जायगा। इन प्रयोगों में स्वाभाविक उत्तेजना (Unconditioned Stimulus), अस्वाभाविक उत्तेजना (Conditioned Stimulus), स्वाभाविक प्रतिक्रिया और अस्वाभाविक प्रतिक्रिया जैसी बातें मिलेंगी। समझने के लिए पैवलॉव के प्रसिद्ध कुत्ता सम्बन्धी प्रयोग की उत्तेजना और प्रतिक्रिया को ध्यान में रखना अच्छा होगा। उस प्रयोग में स्वाभाविक उत्तेजना भोजन है, अस्वाभाविक उत्तेजना घंटी, स्वाभाविक तथा अस्वाभाविक प्रतिक्रिया लार या स्राव है। इसे निम्नाङ्कित प्रकार से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन स्थापित होने के बाद—

स्वाभाविक उत्तेजना (भोजन) }
अस्वाभाविक उत्तेजना (घंटी की आवाज) } — प्रतिक्रिया (लार का स्राव)

(१) उत्तेजना की प्रबलता सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के स्थापित होने में उत्तेजना का प्रबल होना बहुत महत्त्व रखता है। यदि स्वाभाविक उत्तेजना प्रबल न होगी तो फिर उसकी ओर जीव ध्यान न देगा और ध्यान न देने पर उससे दूसरी उत्तेजना का कोई सबंध न हो सकेगा। उत्तेजना की प्रबलता प्राणी की आन्तरिक स्थिति पर ही अधिक निर्भर करती है। पैवलॉव के प्रयोग में कुत्ते के लिए भोजन (स्वाभाविक उत्तेजना) बहुत महत्त्वपूर्ण (तीव्र) थी, क्योंकि उस समय कुत्ता भूखा था। इसलिए भोजन देखते ही उसमें लार का स्राव होने लगा। भोजन के प्रति तीव्र चाह होने के कारण वह भोजन के पहले घंटी की आवाज (अस्वाभाविक उत्तेजना) सुनकर ही लार स्राव करने लगा। यद्यपि स्वाभाविक उत्तेजना (भोजन) के पहले अस्वाभाविक उत्तेजना (घंटी की आवाज) उपस्थित करने से कुत्ते में चौंकने, कान खड़ा करने, आदि की प्रतिक्रियाएँ भी होती थीं, किन्तु भूखा होने के कारण कुत्ते के लिए उन प्रतिक्रियाओं का महत्त्व नहीं था, बल्कि भोजन मिलने पर ग्रन्थि स्राव का महत्त्व था। इसलिए भूख के कारण घंटी की आवाज और लार प्रतिक्रिया की सम्बद्धता आसान थी। स्पष्ट है, सम्बद्ध उत्तेजना से प्रमुख प्रतिक्रिया ही सम्बद्ध होती है, अन्य प्रतिक्रियाएँ नहीं। इसीलिए, कुत्ते की आन्तरिक अवस्था (भूख) के कारण स्वाभाविक उत्तेजना की तीव्रता बहुत बढ़ गई और फलस्वरूप सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन भी देखने में आया।

(२) पुनरावृत्ति (Repetition) —पैवलॉव तथा उसके कुछ अनुयायियों ने प्रयोगों के आधार पर यह बतलाया कि एक सीमा के अन्तर्गत स्वाभाविक और अस्वाभाविक उत्तेजनाओं की जितनी पुनरावृत्ति होती है, सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन (Conditioning) उतना ही सबल होता है। लेकिन, वाटसन ने एक ही प्रयास में ध्वनि से भय प्रतिक्रिया (Fear response) का सम्बन्ध स्थापित कर यह प्रदर्शित कर दिया कि सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के लिये पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं है। फिर भी, यह स्मरणीय है कि संवेगात्मक प्रतिक्रिया

और अस्वाभाविक उत्तेजना के बीच दृढ सम्बद्धता बनी रहे, इसके लिये उत्तेजना की पुनरावृत्ति जरूरी है। लेकिन, सवेगात्मक प्रतिक्रिया और सम्बद्ध या अस्वाभाविक उत्तेजना के बीच एक प्रयास मे भी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। फिर भी, इतनी आशा तो की जा सकती है कि पुनरावृत्ति मे यह सम्बन्ध दृढ होगा। अत हम यह कह सकते है कि सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के लिए एक निश्चित समय तक स्वाभाविक और अस्वाभाविक उत्तेजनाओ की पुनरावृत्ति अपेक्षित है।

(३) **सामान्यीकरण तथा विभेदन** (Generalization and differentiation) किसी एक उत्तेजना के प्रति सम्बद्धता (Conditioning) स्थापित हो जाने पर उससे मिलती जुलती अन्य उत्तेजनाओं के प्रति भी जीव वही प्रतिक्रिया करने लगता है। इसी को सामान्यीकरण (Generalization) कहते है। पैवलॉव तथा अन्य विद्वानो ने कुत्ते पर प्रयोग करते समय देखा कि उसमे घटी की आवाज के साथ सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन स्थापित हो जाने पर बाद मे किसी भी स्वरकपन (Vibration) से वह लार टपकाने की प्रतिक्रिया करता था। अन्य तरह की आवाजों से भी उसमे लार टपकने की प्रतिक्रिया देखी गई। इसी तरह बच्चे जब सम्बद्धता के कारण सफेद चूहे से भयभीत होने लगे तब बाद म किसी भी सफेद चीज, जैसे, खरगोश, सफेद रूई, सफेद कोट, आदि से वे भय की प्रतिक्रिया करने लगे। त्वक (Cutaneous) उत्तेजना के साथ भी प्रयोग करने पर मनुष्य और अन्य जानवरो मे ऐसा सामान्यीकरण देखा गया। हाँ, इसमे प्रतिक्रिया की प्रबलता उतनी अधिक नही, बल्कि कम रहती है। अस्वाभाविक उत्तेजना से अन्य उत्तेजनाएँ ज्यों ज्यो भिन्न होती है त्यों त्यों उनकी प्रतिक्रिया भी कम होती जाती है। उत्तेजना के इस सामान्यीकरण या व्यापकता को पैवलाव ने प्रकिरण (Irradiation) कहा। इस सामान्यीकरण के दो कारण है—एक तो यह कि प्रारभ मे प्रयोज्य सबद्ध (अस्वाभाविक) और अन्य उत्तेजनाओं मे अन्तर समझने मे असमर्थ होता है। इसलिए सम्बद्ध उत्तेजना के अतिरिक्त अन्य उत्तेजनाओं के प्रति भी वह सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का प्रदर्शन करता है। दूसरे, किसी उत्तेजना के कई पहलू होते है। सम्बद्धता की प्रारम्भिक अवस्था मे यह नही मालूम होता कि किस पहलू की प्रतिक्रिया श्रेयस्कर और आवश्यक है। इसलिए प्रारभ मे जीव किसी उत्तेजना के कुछ या सभी पहलुओं की प्रतिक्रिया करता है।

प्रयोगों से स्पष्ट है कि शुरू मे ही सम्बद्धता का सामान्यीकरण होता है, बाद मे जीव दो उत्तेजनाओ के अन्तर को समझने लगता है और तदनुकूल अस्वाभाविक उत्तेजना की ही प्रतिक्रिया करता है। इसे विभेदन (Differentiation) की क्रिया कहते है। एक प्रयोग मे कुत्ते के शरीर के एक स्थान पर दो विन्दु—क और ख (मान ले) को कुछ दूरी पर अकित किया गया। जब क विन्दु को स्पर्श किया जाता था तो उसे भोजन दिया जाता था, किन्तु ख विन्दु को स्पर्श करने पर भोजन नही दिया जाता था। जब दोनों विन्दुओ के साथ काफी अभ्यास कर लिया गया तब बिना भोजन दिये ही प्रयोग शुरू किया गया और तब देखा गया कि क विन्दु स्पर्श करने पर कुत्ता सम्बद्धता के कारण बराबर लार टपकाने की प्रतिक्रिया करता था, किन्तु ख विन्दु को स्पर्श करने पर वह लार नही टपकाता था।

ध्वनि और दृष्टि-उत्तेजनाओं के साथ प्रयोग करने पर भी एसा ही परिणाम मिला और प्रयोज्य मे विशिष्ट (specific) उत्तेजना की ही प्रतिक्रिया देखी गई, सभी की नही। विभिन्न

कंपन (Vibrations) की ध्वनियों के साथ प्रयोग करने पर कुत्ते या अन्य जीव में विभेदन की योग्यता देखी गई। ध्वनियों का स्वरमान (Pitch) क्रमश ८००, ८१२ और ८२९ था। ८०० स्वरमान की ध्वनि पर भोजन दिया जाता था, किन्तु अन्य दो ध्वनियों पर नहीं। कुछ प्रयासों के बाद कुत्ता ८०० स्वरमान की ध्वनि की ही प्रतिक्रिया करता था, अन्य ध्वनियों की नहीं। पेवलॉव ने दो या दो से अधिक उत्तेजनाओं में विभेदन (Differentiation) की व्याख्या नाड़ीमण्डल की निरोधक वृत्ति (Inhibitory tendency) के आधार पर की है।

(४) ध्यानभंग और व्याघात (Distraction and interference) प्रयोग करते समय पेवलॉव को मालूम हुआ कि प्रयोगशाला के वातावरण में किसी तरह का परिवर्त्तन सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के लिये घातक सिद्ध होता है। प्रकाश का कम या अधिक होना, आकस्मिक ध्वनि, प्रयोक्ता की उपस्थिति या अन्य किसी उत्तेजना का आविर्भाव प्रयोज्य में अन्वेषणात्मक प्रत्यावर्त्तन (Investigatory reflex) उत्पन्न कर देता है। इससे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन में गड़बड़ी हो जाती है और क्षणमात्र के लिये वह विलीन हो जाता है। यही कारण है कि इस प्रकार का प्रयोग करने के लिये पेवलॉव ने एक ऐसी ध्वनि नियंत्रित प्रयोगशाला का निर्माण किया जो सभी प्रकार के ध्यानभंग (Distractions) से परे थी। तात्कालिक सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन (Immediate conditioned reflex) अथवा अपूर्ण (Incomplete) सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन तो ध्यानभंग के कारण क्षणमात्र के लिये प्राय लुप्त हो जाता है। किन्तु, पूर्ण और पुराने सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन पर ध्यानभंग का कोई विशेष घातक प्रभाव नहीं पड़ता।

(५) विनष्टीकरण तथा पुनर्स्थापन (Extinction & restoration) यदि केवल अस्वाभाविक उत्तेजना (घंटी की आवाज) को कुछ प्रयासों तक (६ से १०) बिना स्वाभाविक उत्तेजना (भोजन) के उपस्थित किया जाय तो स्वाभाविक प्रतिक्रिया (लार का स्राव) रुक जाती है। इसी को विनष्टीकरण (Extinction) की क्रिया कहते हैं। लेकिन, यह विनष्टता स्थाई नहीं होती। विनष्टता को विस्मरण (Forgetting) नहीं समझना चाहिए। विस्मरण में कभी कभी विषय की धारणा (Retention) समाप्त हो जाती है, लेकिन विनष्टता की हालत में सबद्ध प्रत्यावर्त्तन की धारणा रहती है, परन्तु वह रोक दी जाती है। दो एक घंटे विश्राम देने के बाद जब अस्वाभाविक और स्वाभाविक उत्तेजनाओं को पूर्ववत् साथ-साथ उपस्थित किया जाता है तो सम्बद्धता पुनर्स्थापित हो जाती है और जीव स्वाभाविक प्रतिक्रिया (लार का स्राव) करने लगता है। कुछ प्रयासों तक केवल स्वाभाविक उत्तेजना को उपस्थित करने के बाद अस्वाभाविक उत्तेजना को उपस्थित करने पर भी सम्बद्धता पुनर्स्थापित हो जाती है।

(६) स्वाभाविक और अस्वाभाविक उत्तेजनाओं का सामयिक सम्बन्ध (Temporal relation of the conditioned and unconditioned stimuli) सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन को उत्पन्न करने के लिये स्वाभाविक और अस्वाभाविक उत्तेजनाओं के बीच का काल-व्यवधान (Time interval) बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जब इन दोनों उत्तेजनाओं को साथ साथ उपस्थित किया जाता है तब सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन हमेशा बना रहता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने स्वाभाविक उत्तेजना के पहले अस्वाभाविक

उत्तेजना को उपस्थित करके भी सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन स्थापित किया है। इस सम्बन्ध मे हुए प्रयोगो का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि स्वाभाविक उत्तेजना के एक सेकण्ड से पाच मिनट पहले तक अस्वाभाविक उत्तेजना को उपस्थित करने पर सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन दृष्टिगोचर होता है। किन्तु, प्रश्न है कि क्या मौलिक (स्वाभाविक) उत्तेजना के बाद सम्बद्ध उत्तेजना को उपस्थित करने से भी सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन दीख पडता है? इस सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे मतभेद है। पैवलॉव के अनुसार, सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के लिए स्वाभाविक उत्तेजना के पहले अस्वाभाविक उत्तेजना को उपस्थित करना आवश्यक है। लेकिन, बाद के प्रयोगों से मालूम होता है कि पश्चात सम्बद्धता (After conditioning) भी सभव है। अपने पलक-प्रत्यावर्त्तन के प्रयोग मे स्विटजर (Switzer) को बीस प्रयोज्यों मे से अठारह मे पश्चात सम्बद्धता का प्रमाण मिला। इसकी पुष्टि बर्नस्टेन (Burnsten) तथा उल्फ (Wulf) के पलक प्रत्यावर्त्तन और हस्तकर्षण प्रत्यावर्त्तन के प्रयोगों से भी हुई। इसी तरह कुछ और मनोवैज्ञानको को भी इसका प्रमाण मिला, किन्तु बहुसख्यक मनोवैज्ञानिकों को इसकी पुष्टि मे कोई प्रमाण नही मिला। अत इस सम्बन्ध मे यही कहना विशेष उचित जँचता है कि दोनों उत्तेजनाओं को एक साथ या मौलिक उत्तेजना के कुछ पहले सम्बद्ध उत्तेजना को देने पर सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन प्रस्थापित होना सरल है। मौलिक उत्तेजना के बाद सम्बद्ध उत्तेजना को उपस्थित करने पर सभी स्थलो पर सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन प्राप्त नही किया जा सकता। ऐसी स्थिति मे वह प्राय निरोध (Inhibition) का काम करती है।

(क) **विलम्बित सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन** (Delayed conditioned reflex) पैवलॉव ने कुत्ते पर प्रयोग करते समय देखा कि सबद्धता स्थापित हो जाने पर जब लगातार कई प्रयासों तक भोजन देने के दो तीन मिनट पहले घटी बजाई गई, तो कुत्ता घटी बजने पर लार का स्राव नही करता था। वह समझ गया कि उस आवाज के कुछ देर बाद ही भोजन मिलेगा। अत घटी की आवाज सुनने के दो तीन मिनट बाद, यानी, भोजन मिलने के थोड़ा पहले वह लार का स्राव करने लगा। देर से स्राव की इस प्रतिक्रिया के करने को ही विलम्बित सबद्ध प्रत्यावर्त्तन कहा गया है। पैवलाव तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगो के सहारे इसे स्वीकार किया है। व्यवधान के प्रथम अर्द्धांश मे जीव मे अन्य कई प्रकार की क्रियाएँ होती है, यथा, आँख बन्द करना, जम्हाई लेना, आदि जिनसे ऐसा मालूम होता है कि वह सो गया हो। उसके बाद, द्वितीय अर्द्धांश मे पूर्ण चेतन (सावधान) होकर वह लार टपकाने की प्रतिक्रिया करता है। पहली अवस्था को निषेधात्मक (Negative) और दूसरी को धनात्मक (Positive) अवस्था कहते है। पहली अवस्था मे किसी ध्यानभग के उपस्थित होने पर उस अवस्था मे निरोध (Inhibition) और लार-प्रतिक्रिया देखने मे आती है, किन्तु दूसरी अवस्था मे उसके उपस्थित होने पर बहुत ही निर्बल प्रतिक्रिया होती है।

(ख) **सस्कार प्रत्यावर्त्तन** (Trace reflex) सस्कार प्रत्यावर्त्तन (Trace reflex) विलवित सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का एक दूसरा प्रकार है। जब पैवलॉव के प्रयोग मे भोजन देने के ३० सेकण्ड पहले, ३० सेकण्ड तक मेट्रोनोम की घटी बजाई गई तो सम्बद्धता (Conditioning) स्थापित हो जाने के कुछ प्रयास बाद मेट्रोनोम की घटी बजते ही कुत्ता लार का स्राव नहीं करने लगा। जब तक घटी बजती रही तब तक वह निश्चिन्त रहा। ठीक ३० सेकण्ड के बाद जब घटी बजना बद हो गया तो उसमे लार का स्राव होना

शुरू हुआ। इसी को संस्कार प्रत्यावर्त्तन कहते हैं। इसकी पुष्टि, पैवलॉव तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों के प्रयोगों से हो चुकी है। उन प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि अस्वाभाविक उत्तेजना (10) उपस्थित करने के बाद तीन मिनट तक विराम रहना संस्कार प्रत्यावर्त्तन के लिये सहायक सिद्ध होता है, किन्तु इससे अधिक का अन्तराल विशेष लाभप्रद नहीं पाता। विलंबित सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन की अपेक्षा संस्कार प्रत्यावर्त्तन (Trace reflex) स्थापित करना कुछ कठिन है।

(ग) समय-सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन (Time conditioned reflex) कुत्ते को, बिना घंटी बजाए बराबर दो घण्टे के व्यवधान पर भोजन देने से कुछ प्रयासों के बाद ठीक दो घण्टे व्यतीत होने पर उसके मुँह से लार टपकने की प्रतिक्रिया होने लगती है। प्रत्यावर्त्तन के लिये यहाँ किसी अन्य प्रकार का संकेत नहीं मिलता, इसलिये इसे समय सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन (Time conditioned reflex) कहा जाता है। कुछ व्यक्तियों को स्वतः मालूम हो जाता है कि उनके भोजन, शौच या आराम का समय हो गया। घड़ी देखने पर ठीक वही समय निकलता है। प्रायः शिक्षक ऐसे मिलते हैं जो घण्टी न बजने पर भी व्यक्त कर देते हैं कि अध्यापन का समय समाप्त हो गया और देखने पर उनका कथन सत्य निकलता है। इसका कारण व्यक्त करते हुए मनोवैज्ञानिकों का ऐसा अनुमान है कि नाड़ी मण्डल में एक ऐसा लय (Rhythm) स्थापित हो जाता है जिससे उचित और निश्चित समय पर प्रतिक्रिया स्वयं होने लगती है।

(७) प्रयोगात्मक मनोस्नायुविकृति (Experimental neurosis) ऊपर व्यक्त किया गया है कि विलंबित सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के सिलसिले में जो समय का अन्तर दिया जाता है उसके प्रथम अर्द्धांश में कुत्ता जम्हाई लेता हुआ मालूम पड़ता है। प्रयोग द्वारा पैवलॉव ने यह भी प्रदर्शित किया कि प्रयोग परिस्थिति से कुत्ते के विरक्त (Indifferent) हो जाने पर उसमें किसी प्रकार का सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन नहीं होता और वह प्रयोगात्मक मनोस्नायुविकृति (Experimental neurosis) का शिकार हो जाता है। एक प्रयोग में कुत्ते को खाना देने के पहले क्षीण विद्युत आघात (Weak electric shock) दिया जाता था। उसमें कुछ प्रयासों के बाद उस विद्युत आघात और लार टपकाने की प्रतिक्रिया में सम्बद्धता स्थापित हो गई। इसके बाद विद्युत आघात की प्रबलता को क्रमशः बढ़ाया गया। विद्युत आघात के असह्य हो जाने पर कुत्ता रक्षात्मक (Protective) प्रतिक्रिया करने लगा। लार गिरना बन्द हो गया और उसने खाने से भी मुँह मोड़ लिया। वह इतना बेचैन और उत्तेजित हो उठा कि फिर महीनों तक प्रयोग करने के योग्य नहीं रह गया। विद्युत-आघात का धीमापन भी उसमें उस प्रतिक्रिया को पुनर्स्थापित करने में समर्थ न हो सका।

कुत्ते में मनोस्नायुविकृति दूसरी तरह से भी उत्पन्न की गई है। प्रयोग में, कुत्ते को पर्दे पर पहले एक प्रकाश वृत्त (Light circle) तीस सेकण्ड तक दिखला कर खाना दिया गया। कुछ देर बाद जब प्रकाश वृत्त से कुत्ते की लार प्रतिक्रिया सम्बद्ध हो गई तब प्रकाश का एक अण्डवृत्त (Ellipse) पर्दे पर उतने ही समय के लिये उपस्थित किया गया, किन्तु उसके साथ भोजन नहीं दिया गया। कुछ प्रयासों के बाद कुत्ता अण्डवृत्त के निषेधात्मक पहलू को पहचान गया और उसके उपस्थित होने पर लार नहीं टपकाने लगा।

कई दिनों तक कुत्ता, प्रकाशवृत्त और अण्डवृत्त के अन्तर को, प्रतिक्रिया द्वारा ठीक ठीक व्यक्त करते रहा। तब अण्डवृत्त के आकार को इस तरह क्रमश परिवर्त्तित किया गया कि उसमे और प्रकाशवृत्त मे बहुत कम अन्तर रह गया। ऐसा करने पर वह उन दोनों के अन्तर को प्रतिक्रिया द्वारा व्यक्त करने मे पूर्णत असमर्थ हो गया। इतना ही नही, उसका व्यवहार भी पूर्णत परिवर्त्तित हो गया। प्रयोगशाला मे पहले वह शान्त रहता था, किंतु ऐसी परिस्थिति मे वह चिल्लाने, छटपटाने और यन्त्र को दाँत से काटने लगा। दूसरे दिन जब फिर प्रयोगशाला मे उसे लाया गया तो वह भूकने लगा। इसके बाद वह जिस अण्डवृत्त और प्रकाशवृत्त के अन्तर को पहले पहचानता था उसे भी नही पहचान सका। प्रयोग से उत्पन्न कुत्ते की यह स्थिति प्रयोगात्मक मनोस्नायुविकृति कहलाती है।

विवेकशक्ति के अभाव मे मनुष्यों मे भी ऐसी प्रयोगात्मक मनोस्नायुविकृतियाँ देखने मे आती है। कोई मनुष्य जब घातक और सुरक्षित परिस्थितियों को समझने मे असमर्थ हो जाता है तब उसके व्यवहार मनोस्नायुविकृति के रोगी से मिलने लगते है। वह कुत्ता, बिल्ली, एकात या ऊँचे स्थान से, जिनसे सामान्यत भय नही होता, डरने लगता है। आवश्यक और अनावश्यक कार्यो को जानने मे असमर्थ होने के कारण वह बकवास की प्रतिक्रियाएँ किया करता है। ऐसी परिस्थितियों से उत्पन्न मनोस्नायुविकृत्यात्मक व्यवहार छोटे बच्चों मे भी देखने मे आते है। किसी काम के लिये एक बार प्रोत्साहित और दूसरी बार दण्ड देने से उन्हे यह नही मालूम होता कि कब क्या करे, इसलिये वे सघर्ष (Conflict) और बेचैनी के शिकार हो जाते है। इसी तरह, माता पिता जिस काम को करते है और बच्चों को उसीको करने से मना करते है तब वे द्विविधा मे पड कर पैवलॉव के कुत्ते की तरह मनोस्नायुविकृत्यात्मक (Psychoneurotic) व्यवहारों का प्रदर्शन करते है।

(८) नीद (Sleep) विलम्बित सम्बद्ध प्रतिक्रिया (Delayed conditioned response) के प्रयोग मे कुत्ते विश्राम व्यवधान (Rest interval) मे सो जाया करते है। इसलिये कुछ विद्वानों ने कहा कि नींद के कारण ही कुत्ते सम्बद्ध प्रतिक्रिया नहीं करते है, किन्तु पैवलॉव इस व्याख्या से सतुष्ट नही हुआ। उसने कई प्रयोगों के आधार पर इसकी व्याख्या मस्तिष्क केन्द्र के निरोध (Inhibition) के सहारे की। उसके अनुसार, प्रतीक्षा काल मे कुत्ते के नाडी मडल और मस्तिष्क दोनों ही उसकी लार-प्रतिक्रिया को अवरुद्ध करते है। निषेधात्मक उत्तेजना के उपस्थित होने पर पहले निरोध स्थानीय होता है, किन्तु ज्यों ज्यों उत्तेजना की अवधि बढती जाती है त्यों त्यो वह निरोध पूरे मस्तिष्क मे फैल जाता है। इसलिये कुत्ता जम्हाई लेने लगता है और अन्त मे वह सो भी जाता है।

सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन-सिद्धांत का मूल्यांकन

ऊपर हमने देखा कि पैवलॉव और उसके अनुयायियों ने सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के आधार पर ही सभी प्रकार के शिक्षणो की व्याख्या की है। साथ ही, उन्होंने कठिन शिक्षणों और आदतो को सम्बद्ध प्रतिक्रिया की शृङ्खला (Series of conditioned sponses) मात्र कहा। प्रयोगात्मक आधारो पर विवेचना करने से भी उनके कथन मे कुछ अशों मे सत्यता मालूम होती है। जानवरों का अधिकाश शिक्षण सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन द्वारा होता

है। जीवन के प्रारभ में चार-पाँच वर्षों तक बच्चे भी बोलना, हँसना, रोना, डरना, आदि सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तनों के द्वारा सीखते है। वाटसन के प्रयोगों से स्पष्ट है कि सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के द्वारा बच्चे दादा, बाबा, आदि कहना और कुत्ते, अन्धकार, आदि से डरना कैसे सीखते है। माता-पिता या किसी हितैषी को देख कर हँसने और कूद कर उसकी गोद में जाने मे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का कितना हाथ रहता है, इसे हम स्वय कह सकते है। इसके अतिरिक्त, हम देख चुके है कि किसी परिस्थिति म धनात्मक या निषेधात्मक रूपसे अभियोजित करना हम सम्बद्धता द्वारा ही सीखते है। अत सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन शिक्षण के कई पहलुओं की सतोषप्रद व्याख्या करता है। लेकिन, इसका मतलब यह नही कि इसके आधार पर सभी तरह के शिक्षण तथा सीखने के सभी पहलुओ की सतोषप्रद व्याख्या की जा सकती है।

इसमे कई त्रुटियाँ है। सभी स्थलों पर सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन स्थापित करना सभव नही है और इसे सीखना भी बहुत कठिन है। चार पाँच वर्ष के बाद बच्चों में सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन स्थापित करना टेढी खीर है, फिर सयानों का क्या कहना। जबतक वे किसी कार्य मे सलग्न नही रहते तबतक उनमे सबद्ध प्रत्यावर्त्तन स्थापित करना असभव हो जाता है। इसलिये जानवरों और छोटे बच्चों में ही इसके द्वारा शिक्षण होता है, प्रौढ़ों में नहीं।

पैवलॉव तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित किया है कि सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन स्थानीय होता है, अर्थात् इसमे जीव का अग विशेष ही सलग्न रहता है। लेकिन, लैशले के निर्णय (Discrimination) के प्रयोगों से शिक्षण में सम्पूर्ण अगो की सक्रियता एव सलग्नता स्पष्ट है। अतएव ये प्रयोग पैवलॉव की स्थानीयता का खण्डन करते है।

इस सिद्धान्त का सबसे प्रधान दोष यह है कि इसके अनुसार किसी तरह का शिक्षण सबद्ध प्रत्यावर्त्तनों की एक श्रृखला (A chain of conditioned reflexes) है, और सबद्ध प्रत्यावर्त्तन का निर्माण स्वाभाविक और अस्वाभाविक उत्तेजनाओं के बार बार दुहराए जाने से होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षण की प्रक्रिया पूर्णत यान्त्रिक है। इसमें सीखनेवाले की रुचि, मानसिक स्थिति, मनोवृत्ति तथा भाव, आदि का महत्त्व नहीं स्वीकार किया गया है। परन्तु, सीखने में सम्पूर्ण जीव क्रियाशील रहता है, इसलिए उसकी मानसिक स्थिति, योग्यता और स्वभाव, आदि पर ही उसका शिक्षण निर्भर करता है। अत सीखने को सबद्ध प्रत्यावर्त्तनों की मात्र श्रृखला मानना समुचित नहीं प्रतीत होता।

सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन से जो कुछ सीखा जाता है वह स्थायी नहीं होता। ऊपर की चर्चा से स्पष्ट है कि आसानी से सबद्धता (Conditioning) को विनष्ट किया जा सकता है। परन्तु, हमारे जीवन में स्थायी शिक्षण का ही अधिक महत्त्व है। अत इस विधि द्वारा सीखना जीवन के लिए विशेष महत्त्व का नहीं है।

हम यह देख चुके है कि जीव सम्बद्धता के द्वारा उन्हीं प्रतिक्रियाओं को सीखता है जिनकी योग्यता उसमें रहती है। किन्तु, शिक्षण के द्वारा हम कितनी ऐसी प्रतिक्रियाएँ सीखते है जिनका अकुर हममें स्पष्ट नहीं रहता। ऐसी नई प्रतिक्रियाओं और कौशलों की व्याख्या हम इसके आधार पर नहीं कर सकते। यह सीखने वाले की सक्रियता

की व्याख्या भी नही कर सकता। अत हम कह सकते है कि सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन कई स्थलों पर सार्थक सिद्ध होते हुए भी सभी प्रकार के शिक्षणों की व्याख्या नही कर सकता। सच तो यह है कि इस सिद्धात से सरल प्रकार की क्रियाओं और शिक्षणों की ही व्याख्या सभव है, जटिल और दुरूह शिक्षण मे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का महत्त्व बहुत कम देखने में आता है।

सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन की उपादेयता

कई त्रुटियों के बावजूद भी सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन सिद्धान्त जीवन-क्षेत्र के कई पहलुओं मे अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। आधुनिक युग मे प्राय सभी मानसिक चिकित्सक (Psychiatrists) अनावश्यक भय (Phobia), चोरी की बाध्यता (Stealing compulsion) और अन्य प्रकार की व्यक्तित्त्व-विकृतियों की व्याख्या सम्बद्धता के सहारे करते है और उन्हें काफी सफलता भी मिलती है। इसका आश्रय लेकर बुरी आदतों और अनावश्यक भय, आदि को हटाया भी जाता है। किसी व्यक्ति के निराधार अधकार से डरने पर अधकार मे जाने के लिये बराबर विवश किया जाता है और परिणामत वह उससे डरना छोड देता है। जब कोई बच्चा किसी जानवर से डरता है तो उस जानवर को उसके निकट लाकर उस बच्चे को उसके समीप रहने के लिये निरतर प्रोत्साहित किया जाता है। बच्चा क्रमश निर्भीक बन जाता है। इस विधि की विशेष जानकारी के लिये वाटसन द्वारा बच्चों पर किये गये प्रयोगों का अध्ययन करना श्रेयस्कर है। समाज मनोवैज्ञानिक (Social Psychologists) भी हाव-भाव, भाषा, सामूहिक व्यवहार, आदि की व्याख्या इसी आधार पर करते है। जानवरों, बच्चो तथा मानसिक दुर्बल व्यक्तियों की निर्णय-योग्यता सम्बद्धता के द्वारा जानी जाती है, क्योकि वे अन्तर्निरीक्षण देने मे असमर्थ होते है। इस तरह, हम इस के द्वारा उपर्युक्त प्रकार के जीवो की ज्ञानात्मक योग्यता का अध्ययन करते है।

इसके अतिरिक्त, सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन से पशु मनोविज्ञान के क्षेत्र मे, विभिन्न प्रकार के शिक्षण-प्रयोग करने का प्रोत्साहन मिला है, अत जानवरों पर नित्य नये प्रयोग हो रहे है। प्रयोज्यों की कई योग्यताओं को जानने के लिए उनके अन्तर्निरीक्षण पर निर्भर न कर सम्बद्धता द्वारा विधेयात्मक प्रदत्तों (Objective data) को प्राप्त किया जाता है।

प्रयत्न तथा भूल-सिद्धान्त
(Trial and error theory)

यों तो थार्नडाइक (Thorndike) क पहले भी लायड मार्गन (L Morgan), लुबॉक, (Lubbock) प्रभृति विद्वानों के शिक्षण सबधी प्रयोगों का उल्लेख मिलता है, किन्तु प्रयत्न तथा भूल के शिक्षण सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रेय थार्नडाइक को ही है। अनियन्त्रित एव अवैज्ञानिक होने के कारण उसके पहले किये गये प्रयोगों का महत्त्व उतना नहीं है जितना थार्नडाइक के प्रयोगों का है। इस सिद्धान्त को व्यापक बनाने के लिए उसने छोटे-छोटे जानवरों से लेकर बिल्ली, बन्दर तथा आदमी, सभी पर प्रयोग किया। प्रयोगों के आधार पर उसका कहना है कि जीव किसी प्रकार की क्रिया या कौशल (Skill) को प्रयत्न तथा भूल-विधि से सीखता है। वह सबद्ध प्रत्यावर्त्तन और अन्तर्दृष्ट्यात्मक

शिक्षण (Learning by Insight) (जिस पर आगे प्रकाश डाला जायेगा,) में विश्वास न कर विभिन्न प्रयोगात्मक परिणामो के आधार पर उसका खण्डन करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, किसी नयी परिस्थिति में रख दिये जाने पर जीव बिना जाने बूझे तरह तरह की प्रतिक्रियाएँ करना प्रारंभ करता है। उसके अधिकांश व्यवहार और प्रतिक्रियाएँ दोषपूर्ण होती है। उन्ही अनायास (Random) और दोषपूर्ण प्रतिक्रियाओं के अन्तर्गत सयोगवश वह उस परिस्थिति के अनुरूप उचित प्रतिक्रिया भी करता है जिसके परिणामस्वरूप वह उसमे अपने को अभियोजित करने मे समर्थ होता है। फिर जब दूसरी बार वह उस परिस्थिति मे पडता है तब उन्ही अनायास प्रतिक्रियाओं का प्रदर्शन करता है और अन्त मे ठीक प्रतिक्रिया द्वारा वह उसमे अपने को अभियोजित कर लेता है। उसी परिस्थिति मे बार बार पडने से उसकी अनायास और गलत प्रतिक्रियाओं की संख्या में क्रमश कमी आने लगती है और अन्त मे वे नष्ट हो जाती है तथा केवल ठीक प्रतिक्रिया उसमे रह जाती है। इस तरह, इसके अनुसार, जीव अभ्यास करते करते सीखता है। इसीलिए कुछ विद्वानों ने इसे 'करके सीखने का सिद्धान्त' (Learning by doing) भी कहा है। इसी को दूसरे शब्दो मे, हम कह सकते है कि किसी क्रिया या कौशल को सीखने मे प्रारंभ मे अधिक गलतियाँ होती है और समय भी अधिक लगता है। किन्तु, अभ्यास जैसे जैसे बढता जाता है वैसे वैसे गलतियों की संख्या और समय में कमी आने लगती है। अन्त मे अशुद्धियाँ (Errors) पूर्णत विनष्ट हो जाती है। उसको करने मे पहले की अपेक्षा समय भी कम लगता है और शिक्षण मे पूर्णता भी आ जाती है।

अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के साथ साथ यह प्रदर्शित करने के लिये कि जानवरों मे बुद्धि नही होती है, थार्नडाइक ने अनेक जानवरों पर कई प्रयोग किया जिनमें से कुछ की चर्चा यहाँ की जाती है।

प्रयत्न और भूल सबन्धी प्रमुख प्रयोग एक खास जाति की मछलियों को चार फीट लम्बे और दो फीट चौड़े एक मछली घर मे रखा गया। उसमे नौ इंच पानी भरा था। वे मछलियाँ सूर्य के प्रकाश से दूर रहती थी। इसलिये उस घर का एक भाग इस तरह से ढँका हुआ था जहाँ प्रकाश नही पहुँचता था। वहा सब मछलियाँ रहा करती थी। वही पर उनके खाने का भी प्रबन्ध था। थार्नडाइक उन मछलियों मे से एक मछली को शीशे की एक सरकन (Slide) द्वारा मछली घर के उस भाग मे क्रमश लाया जिस पर सूर्य का प्रकाश था। फिर उसने शीशे की एक दूसरी छेदवाली सरकन को, मछली और ढके भाग के बीच में लगा दिया। तब सूर्य के प्रकाश से बचने और ढके भाग में जाने के लिये वह मछली पानी मे नीचे ऊपर करने लगी। वह सरकन को भी बार बार धक्का देती थी। इन विभिन्न प्रतिक्रियाओं को करते समय सरकन के छेद के पास सहसा पहुँचने पर वह उससे निकल कर ढके भाग मे चली गई। उस परिस्थिति में बार-बार रखे जाने पर अनियमित प्रतिक्रियाओं को न कर उस छेद से निकल कर वह ढके भाग मे जाना सीख गई। उस छेद से निकल कर भागने मे प्रारंभ मे वह बहुत प्रकार की अनायास और गलत प्रतिक्रियाएँ करती थी जिससे समय अधिक लगता था। किन्तु, जैसे जैसे प्रयासों की संख्या बढती गई वैसे वैसे उसके दोषपूर्ण व्यावहारों और लगे हुए समय मे कमी आने लगी। अन्त में, उसकी गलत प्रतिक्रियाएँ समाप्त हो गईं और सरकन के छेद से निकल कर

वह छाया मे तुरत जाना सीख गई। उसने इस प्रयोग को उन सभी मछलियों पर किया और उस छेद से निकलना सीखने मे भी सभी मछलियो मे प्रयत्न और भूल के व्यवहार देखे गये। शुरू मे सभी मछलियो ने काफी अनियमित तथा गलत प्रतिक्रियाएँ कीं और उन्हे छेद से निकलने मे बहुत समय लगा। किंतु, ज्यो ज्यो अभ्यास बढता गया त्यों त्यों उनकी अशुद्धिओं और छेद से निकलने के समय मे कमी आती गयी। अन्त मे प्रकाश मे रखे जाने पर बिना गलत प्रतिक्रियाएँ किये ही वे सरकन्डे के छेद से निकल कर भाग जाती थी।

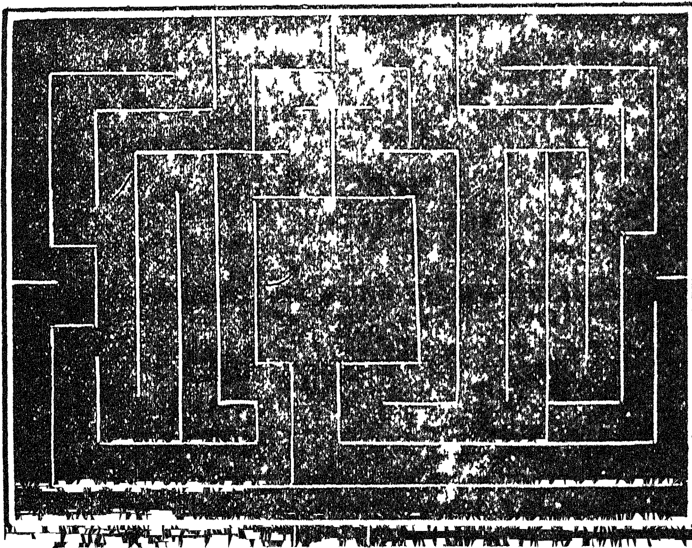
मुर्गी के बच्चो तथा अन्य पशुओ पर भी थार्नडाइक ने कई प्रकार के भूल भुलैयों (Mazes) के साथ प्रयोग किया। उसके भूल-भुलैयो मे कई अन्ध पथ (Blind alleys) और निकलने का एक ही उचित पथ था। उसने मुर्गा के एक बच्चे को एक भूल भुलैया मे छोड दिया। उसमे तीन सकीर्ण अन्ध पथ और एक उचित पथ था। उस भूल भुलैया से बाहर निकलना उचित पथ से ही सभव था। उस पथ का अनुसरण करने पर उस बच्चे को भोजन के साथ साथ उसके अन्य साथी भी मिलते थे। पहले पहल उस भूल भुलैया मे छोड़े जाने पर वह बच्चा मछलियो की ही तरह अनायास प्रतिक्रियाएँ करने लगा। वह कभी एक अध पथ मे जाता था तो कभी दूसरे मे। कूदने और जोर जोर से चिल्लाने की प्रतिक्रियाओं की भी कमी नही थी। इसी बीच उसे सहसा उचित पथ मिल गया और वह पाँच-छ प्रयासो के बाद अन्धपथों से न जाकर उचित पथ से उससे बाहर निकलना सीख गया। अन्य बच्चों के साथ भी प्रयोग करने पर यही देखा गया कि ज्यो ज्यों प्रयास-सख्या बढती गई, दोषपूर्ण प्रतिक्रियाओं की सख्या और ठीक रास्ते से निकलने के समय मे कमी आने लगी।

अपने शिक्षण सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिये मछली और मुर्गी के बच्चों के अतिरिक्त, बिल्ली, कुत्ते और बन्दरों पर भी थार्नडाइक ने कई प्रकार के प्रयोग किये जो मनोवैज्ञानिको और शिक्षाशास्त्रियो के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसने कई बिल्लियो पर सरल तथा जटिल भ्राति बक्सा (Puzzle boxes) के साथ क्रमश प्रयोग किया। सरल भ्राति-बक्स के दरवाजे को खोलने का एक ही साधन और तरीका था, किंतु जटिल भ्राति बक्स के दरवाजा को खोलने के लिये एक ही साथ कई साधनों और तरीकों को काम मे लाना पडता था। भूखी बिल्ली को भ्राति बक्स मे बन्द कर वह उसके बाहर मछली या मास रख देता था। पहले पहल जब बिल्ली बक्स मे बन्द की जाती थी तो बाहर निकलने के लिये कूद फाँद करना शुरू कर देती थी। वह कभी छडो को दाँतो से काटती तो कभी पजों से धक्का देती या खरोचती थी। इसी तरह, वह कई प्रकार की अनायास प्रतिक्रियाएँ करती थी। ऐसा करते समय उसका पैर या पजा दरवाजे के खुलनेवाले बटन या अन्य उपकरण पर सहसा पडने से दरवाजा खुल जाता था और वह बाहर निकल कर मास या मछली खा जाती थी। उसे बक्स मे जब कई बार रखा गया तो उसकी अनायास प्रतिक्रियाएँ क्रमश कम होने लगी और वह दरवाजा खोलने की ही प्रतिक्रिया करने लगी। इस तरह, कई प्रयासो के बाद उसकी गलत प्रतिक्रियाएँ समाप्त हो गई और सिर्फ उचित प्रतिक्रिया ही रह गई। दरवाजा खोलना अच्छी तरह से सीख जाने के बाद भ्राति बक्स में रखे जाने पर वह दरवाजा खोल कर तुरत बाहर चली आती थी। ऐसा करने मे उसे पहले से बहुत कम समय लगता था। ऐसा बार बार करने से गलतियाँ बिल्कुल समाप्त हो जातीं और समय भी कम लगने लगता था। प्रयोग की जाने वाली सभी बिल्लियों ने प्रयत्न और भूल प्रदर्शित किया।

वैसे ही आतिबक्सों के साथ कुत्तों पर प्रयोग करने पर भी थार्नडाइक को प्रयत्न और भूल का प्रमाण दरवाजा खोलकर बाहर आने में मिला। लेकिन, कुत्तों की अनायास प्रतिक्रियाओं की संख्या बिल्लियों की अपेक्षा कम थी। बिल्लियों की अपेक्षा बहुत कम समय में वे दरवाजा खोलना सीख गये। इसे प्रमाणित करने के लिये थार्नडाइक ने तीन अमरीकी बन्दरों पर भी प्रयोग किया। उन बन्दरों ने भी दरवाजा खोलने या भोजन अन्दर ले जाने में प्रयत्न और भूल का प्रदर्शन किया। लेकिन, उन्होंने दरवाजा खोलना या भोजन को यंत्र की सहायता से भीतर ले जाना बिल्ली और कुत्ता की अपेक्षा जल्द सीखा।

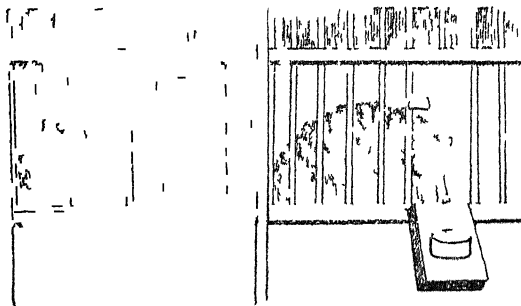
यहाँ यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि जब शिक्षण में बुद्धि का हाथ नहीं रहता तब अन्य जानवरों की अपेक्षा बन्दर जल्द क्या सीख सके? इसके उत्तर में थार्नडाइक का

चित्र संख्या ५८



भूल भुलैया

चित्र संख्या ५९



आतिबक्स

कहना है कि अन्य जानवरो की अपेक्षा बन्दरों मे देखने की क्षमता अधिक होती है और उनकी उँगलियाँ भी मनुष्यों से मिलती जुलती है। इसलिये उगलियों से वे हाथ से किये जानेवाले कामों को अन्य जानवरो से अच्छी तरह करते है। इसके अतिरिक्त, उनमे जिज्ञासा (Curiosity) अत्यधिक होती है। अन्य जानवरों से वे अधिक सक्रिय भी होते है, अत उनमे सीखने की क्षमता अधिक होती है। यही कारण है कि जिन बक्सों को खोलने का ढग बिल्ली और कुत्ते बहुत अधिक समय मे सीख सके, बन्दर उन्हे शीघ्रतया सीख गये। जानकारी के लिये पाठक भूल भुलैया और भ्रातिबक्स के चित्रों के नमूने पृष्ठ २६८ पर देख सकते है।

सीखने मे चितन और सूझ का हाथ नही जानवर किसी समस्या (Problem) को सुलझाने अथवा नयी परिस्थिति मे अभियोजन के लिये चितन (Thinking) करते है कि नही, इसे देखने के लिये भी थार्नडाइक ने प्रयोग किया। किंतु, किसी भी प्रयोग मे उसे ऐसा उदाहरण नही मिला जिसके आधार पर वह यह कह सके कि जानवर किसी परिस्थिति के विभिन्न अगो के पारस्परिक सम्बन्धों को समझते, अनुमान करते या प्रत्ययों (Ideas) का व्यवहार करते है। उसके अनुसार, यद्यपि अन्य जानवरों की अपेक्षा बन्दर कुछ सीखने मे अधिक निपुण होते हैं, किंतु उनके शिक्षण मे भी चिंतन का प्रमाण नहीं मिलता। पहले उसने भोजन दिखलाकर बन्दरो को पिंजड़े के एक निश्चित स्थान पर जाना सिखलाया तब उनकी चिंतन क्षमता जानने के लिये अभिरुचि (Choice) और निर्णय (Discrimination) का प्रयोग किया। एक प्रयोग में बाएँ हाथ से भोजन उठाने पर बन्दर को खाना दिया जाता था, किंतु दाएँ हाथ से उठाने पर नही दिया जाता था। दूसरे प्रयोग मे एक सकेत पर भोजन दिया जाता था और दूसरे सकेत पर नही। इन प्रयोगों का ध्येय बन्दरो की निर्णय क्षमता को जानना था। इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि कुछ स्थलों पर वे निर्णय करना शिघ्रतया सीख सके, किंतु अधिकाश स्थलों पर वे ऐसा करने मे असफल रहे। अत थार्नडाइक का कहना है कि जानवर समस्या-सुलझाने मे चिंतन से काम नही लेते।

कुत्ते, बिल्ली और बन्दरों पर किये गए प्रयोगो के शिक्षण वक्रो मे आकस्मिक उतार (Accidental falls) बहुत ही कम सख्या मे थे। अनायास और अशुद्ध प्रतिक्रियाओं मे क्रमश कमी थी, सहसा नही। लेकिन, परिस्थिति के विभिन्न अगों के पारस्परिक सम्बन्धों को सीखनेवाले के समझ जाने पर शिक्षण वक्र मे आकस्मिक उतार होता है। शिक्षण-वक्रों मे ऐसे उतारों की कमी के कारण थार्नडाइक जानवरों के शिक्षण मे अन्तर्दृष्टि का महत्त्व स्वीकार नही करता।

सीखने मे अनुकरण का हाथ नही उसने शिक्षण मे अनुकरण (Imitation) के महत्त्व को भी अस्वीकार किया है। उसका कहना है कि जानवर शिक्षण मे अनुकरण से किसी प्रकार लाभान्वित नही होते। इस कथन की पुष्टि के लिये उसने एक अप्रशिक्षित (Untrained) बिल्ली को ऐसी परिस्थिति मे रखा जहाँ से वह भ्राति बक्स से बाहर निकलने के लिये उसके दरवाजे को खोलती हुई दूसरी बिल्ली को देख सके। लेकिन, ऐसा करने पर भी वह अप्रशिक्षित बिल्ली कुछ लाभान्वित नही हो सकी। इसलिये भ्राति बक्स में रखे जाने पर वह पहली बिल्ली की तरह ही प्रयत्न और भूल द्वारा बक्स खोलना सीख

सकी। कुत्ते और मुर्गियों के शिक्षण मे भी किसी प्रकार के अनुकरण का प्रमाण नहीं मिला। दूसरे प्रयोग मे एक बन्दर को एक बक्स खोलना पहले बार सिखलाया गया और तब उसे उसी परिस्थिति मे रखा गया। लेकिन, अनेक दोषपूर्ण प्रतिक्रियाएँ करने के बाद ही वह उस बक्स को खोलना सीख सका। इन प्रयोगात्मक प्रमाणों के आधार पर थार्नडाइक जानवरों के शिक्षण मे अनुकरण को स्थान नही देता। लोगो का ऐसा विश्वास है कि बन्दर बहुत अनुकरणशील होते है, किंतु थार्नडाइक के अनुसार बात ऐसी नहीं है। वे स्वभावत सक्रिय और जिज्ञासु होते है। उनमे विभिन्न अंग सचालन की क्षमता होती है जिससे वे उन सभी क्रियाओं को करने मे, जिन्हे आदमी कर सकता है, समर्थ होते है। किसी चीज को गिराने, मुहँ मे डालने, घुमाने और इधर उधर करने की उनमे मूलप्रवृत्ति (Instinct) होती है। उनकी क्रियाएँ मनुष्य से इतनी मिलती जुलती है कि मालूम होता है कि वे अनुकरण करते है, यद्यपि वे वस्तुत अनुकरण नही करते। इसी तरह, अन्य जानवरो के साथ भी जितने प्रयोग हुए उनमे से एक मे भी उसे चिंतन, तर्क (Reasoning), अनुमान और अनुकरण के प्रमाण नही मिले। इसलिये उसने प्रयत्न और भूल के नियम सिद्धान्त को ही पर्याप्त समझा।

शिक्षण की अवस्थाएँ (Stages) किये गये विभिन्न प्रयोगों के आधार पर थार्नडाइक ने जानवरो के शिक्षण को कई अवस्थाओ मे बाँटा है।

(१) उदीरणा (Drive) या आवश्यकता (Need) शिक्षण की पहली अवस्था जीव की आन्तरिक शारीरिक स्थिति या और मनोवृत्ति (Attitude) है जिसके परिणाम-स्वरूप वह सीखने की कोशिश करता है। इस आन्तरिक स्थिति को उदीरणा (Drive), आवश्यकता (Need) या प्रेरणा (Motivation) कहते है। बिल्ली वाले प्रयोग मे बक्स के बाहर सूखी हुई मछली थी जिसे पाने का वह प्रयत्न कर रही थी। वह प्रयत्न इसलिये कर रही थी कि उसे पाने की प्रेरणा थी और प्रेरणा इसलिये थी, चूँकि वह भूखी (आवश्यकता) थी। अगर वह भूखी न रहती तो किवाड़ खोलने (सीखने) का प्रयत्न नही करती। इसलिये सीखने के लिये उपयुक्त आवश्यकता या प्रेरणा का होना जरूरी है।

(२) आवश्यकता की पूर्त्ति मे बाधा (Blocking of the need) आवश्यकता के साथ साथ शिक्षण के लिये यह भी जरूरी है कि आवश्यकता की पूर्त्ति (Satisfaction) सरलतम रूप मे न हो। बिल्ली के भूखी होने के साथ उसके खाने को सीधी तरह से न देना भी उसे सीखने के लिये बाध्य करना है। प्रयोगावस्था मे बिल्ली और भोजन के बीच शीशे की एक किवाड़ थी और इस बाधा का अतिक्रमण करना ही शिक्षण था।

(३) अनायास प्रतिक्रियाएँ (Random responses) थार्नडाइक का कहना है कि किसी जानवर को जब ऐसी नयी परिस्थिति मे रख दिया जाता है जो उसकी समझ मे नहीं आती तो उससे छुटकारा पाने के लिये वह अपनी योग्यतानुसार कई तरह की निरर्थक और अनायास प्रतिक्रियाएँ करता है। भ्राति बक्स मे रख दिये जाने पर बिल्ली केवल दरवाजा खोलने की ही प्रतिक्रिया नही करती, बल्कि कूदने, पञ्जा मारने, दांत से छड़ को काटने, चिल्लाने, आदि की प्रतिक्रियाएँ भी करती है।

(४) **अचानक सही प्रतिक्रिया** (Accidental success) निरर्थक और अनायास प्रतिक्रियाओं में अचानक ही सही प्रतिक्रिया हो जाती है और जीव समस्या को सुलझा लेता है। लेकिन, यह समाधान या सही प्रतिक्रिया बिल्कुल संयोगवश होती है और इसलिये इसके आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि जीव का शिक्षण पूर्ण हो गया।

(५) **सही प्रतिक्रिया का चुनाव** (Selection of the right response) जीव को फिर जब वैसी परिस्थिति में रखा जाता है अथवा समाधान के लिये वही समस्या दी जाती है तब वह संयोगवश हुई सही प्रतिक्रिया को ढूंढने लगता है। इस तरह जीव कालक्रम में सामान्य परिस्थिति से अपना ध्यान हटाकर उसके एक अंग विशेष के ही प्रति प्रतिक्रियाएँ करता है। समस्या के समाधान के लिये यह विशिष्ट अंग काफी महत्त्व का होता है। उदाहरणार्थ, कुछ अभ्यास के बाद बिल्ली अपने पंजे केवल किवाड के ही आस पास मारती थी और इस विशेष अंग (किवाड) के प्रति प्रतिक्रिया करना (पंजा मारना), समस्या-समाधान (बक्स से बाहर निकलने) के लिये महत्त्वपूर्ण था।

(६) **सही प्रतिक्रिया का स्थिरीकरण** (Fixation of the right response) सही प्रतिक्रिया का मात्र चुनाव ही शिक्षण की निशानी नहीं है। जीव उस समस्या का समाधान जब बराबर करता है तब सही प्रतिक्रिया का स्थिरीकरण (Fixation) हो जाता है। तब प्रयोज्य केवल वही सही प्रतिक्रिया करता है और अन्य प्रतिक्रियाएँ वह छोड देता है। प्रतिक्रिया का यह स्थिरीकरण ही शिक्षण है।

(७) **प्रतिक्रिया की पुनरावृत्ति** (Repetition of the response) किसी नयी परिस्थिति में पड जाने पर उस प्रकार की परिस्थिति में पहले लाभप्रद सिद्ध हुई प्रतिक्रियाओं की वह पुनरावृत्ति करता है।

पशु और मनुष्य के शिक्षण जानवरों के शिक्षण की विशेषताओं को व्यक्त करते हुए थार्नडाइक का कहना है कि ये ही विशेषताएँ मनुष्य शिक्षण में भी पाई जाती हैं, क्योंकि पशु और मनुष्य के शिक्षण में किसी विशेष प्रकार का अन्तर नहीं होता। अपने शिक्षण में मनुष्य भाषा का उपयोग करता है जिसकी योग्यता पशु में नहीं होती, अन्यथा मनुष्य का शिक्षण प्रयत्न और भूल के ही द्वारा होता है। प्रौढ और बच्चे के साथ कई तरह का प्रयोग करके उसके अनुयायियों ने भी उसके क्रियात्मक शिक्षण सिद्धान्त की पुष्टि की है।

किसी नयी और जटिल परिस्थिति में जब मनुष्य को रख दिया जाता है तो उसमें अभियोजन के लिये कुत्ते, बिल्ली या बन्दर की तरह वह प्रयत्न और भूल का प्रदर्शन करता है। वह अपनी सभी गत प्रतिक्रियाओं को करता है। फिर उसकी दोषपूर्ण प्रतिक्रियाएँ क्रमश कम होने लगती हैं और अन्त में उस परिस्थिति में समुचित प्रतिक्रिया द्वारा अपने को अभियोजित कर लेता है। चीनी मुद्रिका भ्रान्तियों (Chinese Ring Puzzles) के साथ मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्यों पर जब प्रयोग किया तो सभी प्रयोज्यों में उन्हें प्रयत्न और भूल मिली। हाँ, इतना अवश्य है कि जानवरों की तरह उनके शिक्षण वक्र में अधिक उतार-चढाव नहीं होता। उन प्रयोज्यों के अन्तर्निरीक्षण से ऐसा लगता है कि परिस्थिति के अच्छी तरह समझ में आ जाने पर उनके शिक्षण वक्र में उतार स्वत आ गया। इस प्रसंग में मनुष्यों पर

किये गये कुछ प्रयोगों का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा, क्योंकि उनसे यह पूर्णतः स्पष्ट हो जायेगा कि मनुष्य शिक्षण प्रयत्न और भूल के द्वारा कैसे होता है।

इस दिशा मे मनुष्यों पर जो प्रयोग हुये है उनमे उन्हीं उपकरणों का व्यवहार किया गया है जिनका कि पशु शिक्षण मे। इस तरह, कई प्रकार के भूल भुलैया और भ्रांति बक्सों के साथ सयानों और बच्चों पर प्रयोग किये गये है। एक विशेष प्रकार के भूल भुलैया के साथ कालेज के विद्यार्थियों की आँखो पर पट्टी बाँध कर वाडन (Warden) ने प्रयोग किया। इससे मालूम हुआ कि उसके प्रयोज्यों ने उस भूल भुलैया को सीखने मे औसत ६९ प्रयास लिया था। सीखने की विधि को व्यक्त करने के लिये कहने पर उन्होंने प्रयत्न और भूल विधि के साथ साथ दृष्टि प्रतिमा (Visual image) और शब्द व्यवहार को भी व्यक्त किया। उनके शिक्षण वक्र मे उत्कर्ष बहुत ही धीमे धीमे देखा गया। विभिन्न प्रकार के भूल भुलैया के साथ हसबण्ड (Husband) ने जब प्रयोग किया तो उसके प्रयोज्यों ने भी प्रयत्न और भूल के साथ साथ भाषा का व्यवहार उपयोगी बतलाया। अन्य प्रयोज्यों की अपेक्षा भूल भुलैया के अन्ध पथों और घुमावों को गिनने वाले प्रयोज्यों ने शीघ्र सीखा। लेकिन, उनका शिक्षण जानवरों से भिन्न नहीं था। केलॉग (Kellogg) तथा व्हाइट (White) को भी अपने प्रयोगों मे ऐसा ही प्रमाण मिला। टाइप राइटिंग, टेलीग्राफी, काच चित्र रेखांकन (Mirror drawing), आदि के जितने प्रयोग हुए है उन सब से भी क्रियात्मक शिक्षण का पर्याप्त प्रमाण मिलता है। इस सम्बन्ध मे कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि उपर्युक्त कौशलों को सीखते समय बोलने के अतिरिक्त प्रयोज्य मन मे सोचते भी है, किंतु थार्नडाइक उनके इस कथन पर विश्वास नहीं करता। उसका कहना है कि किसी समस्या को हल करने के पहले मनुष्य कुछ सोचता विचारता या तर्क अवश्य करता है, किंतु वह भी एक तरह का प्रयत्न और भूल ही है। इसलिए सभी प्रकार के शिक्षण प्रयत्न और भूल द्वारा होते है, सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन या अन्तर्दृष्टि द्वारा नहीं।

शिक्षण के नियम

(Laws of learning)

शिक्षण की समुचित व्याख्या करने के लिए थार्नडाइक ने तीन नियम बनाए जो शिक्षण नियम (Laws of learning) के नाम से प्रसिद्ध है। उन्हें क्रमशः (१) तत्परता-नियम (Law of readiness), (२) अभ्यास-नियम (Law of exercise) और परिणाम-नियम (Law of effect) कहते है। यहाँ उनकी व्याख्या आवश्यक है।

(१) तत्परता-नियम (Law of readiness)

शिक्षण का यह नियम थार्नडाइक के तृतीय नियम—परिणाम नियम की पृष्ठभूमि तैयार करता है और उसकी व्याख्या मे सहयोग देता है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः तीन सूत्र है।

(क) जब कोई कारक इकाई (Conductor unit) कार्य तत्पर हो तब उसके लिये उस समय वैसा करना संतोषप्रद होता है।

(ख) जब कोई कारक इकाई कार्य तत्पर न हो तब उसके लिये उस समय वैसा करना कष्टकर होता है।

(ग) जब कोई कारक इकाई कार्य तत्पर हो तब उस समय उसके लिये वैसा नहीं करना कष्टकर होता है।

इस तरह, इस नियम के सहारे थार्नडाइक ने शिक्षण के प्रेरणात्मक पहलू का स्नायविक (Neurological) आधार व्यक्त करने का प्रयास किया है। यद्यपि अपने इस नियम पर थार्नडाइक ने बहुत अधिक जोर नहीं दिया है, तथापि परिणाम नियम के लिये, जो उसका सबसे प्रमुख नियम है, उसने इसे काफी महत्त्वपूर्ण समझा है।

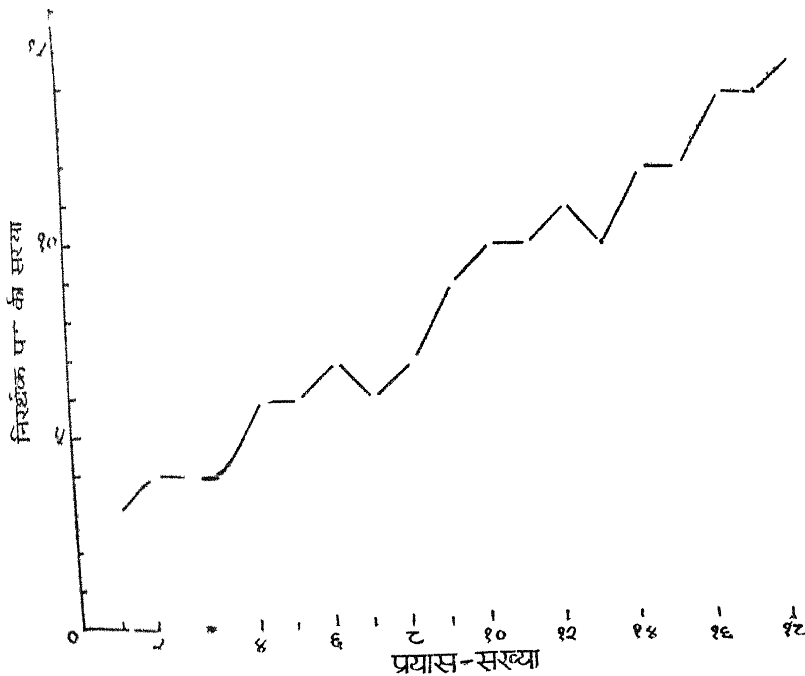
किन्तु, दो तीन बातो के सम्बन्ध मे इस नियम की आलोचना की गई है। सबसे पहली बात तो यह है कि थार्नडाइक ने (कारक इकाई) का व्यवहार नाडीकोष (Neuron) के अर्थ मे किया है, परन्तु उसने उसका कोई विशेष स्नायविक विवरण (Neurological description) नही दिया है। इसी से हिलगार्ड ने 'कारक इकाई' की जगह 'क्रियावृत्ति' (Action tendency), या कार्य करने की तैयारी (Preparation for action) का व्यवहार करना अधिक युक्तिसगत माना है। दूसरी आलोचना, इस तत्परता नियम के दूसरे सूत्र के साथ है। प्रश्न यह है कि जब 'कारक इकाई' एक नाडीकोष है तब बिना उसके क्रियाशीलता की अवस्था (कार्य तत्परता) में आये वह क्रियाशील कैसे हो सकता है? और जब वह कार्य ही नही करता तब सतोष या कष्ट होने का प्रश्न कहाँ उठता है? इस सिलसिले मे थार्नडाइक ने कोई ऐसी दलील नही दी है जिसे ग्राह्य कहा जाय। यही कारण है कि यह नियम कुछ उपेक्षित सा दीख पडता है। कई प्रामाणिक लेखकों ने इसकी चर्चा तक नही की है। फिर भी, इसके महत्त्व को पूर्णत अस्वीकार नही किया जा सकता। यह बात आगे परिणाम-नियम के क्रम में विशेष रूप से स्पष्ट होगी।

(२) अभ्यास नियम (Law of exercise)

अभ्यास नियम के अन्तर्गत दो उपनियम है—(क) उपयोग नियम (Law of use) और (ख) अनुपयोग नियम (Law of disuse)। उपयोग-नियम का साराश यह है कि यदि किसी परिस्थिति मे किसी प्रतिक्रिया का उपयोग बार बार किया जाय तो उस परिस्थिति और प्रतिक्रिया मे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप उस परिस्थिति के उपस्थित होने पर वह प्रतिक्रिया स्वाभाविक रूप से तत्काल होती है। जब पहले पहल बिल्ली या चूहा भ्राति बक्स से निकलना सीख जाता है तब पुनरावृत्ति के कारण उस बक्स से वह और भी आसानी और शीघ्रता से निकलता है। अनुपयोग नियम का अभिप्राय यह है कि यदि किसी परिस्थिति या उत्तेजना के प्रति कोई प्रतिक्रिया बहुत ही कम की जाय तो उस परिस्थिति और प्रतिक्रिया का सम्बन्ध बहुत निर्बल और शिथिल हो जाता है। दूसरे शब्दो मे, अभ्यास के अभाव मे शिक्षण नही हो पाता। जब जानवर को पहले पहल भ्राति बक्स मे रखा जाता है तो वह अन्ध पथों मे भी प्रवेश करता है। यदि एक बार सीखने के बाद ही जीव को छोड़ दिया जाय तो अभ्यास के अभाव मे उससे यह आशा नही की जा सकती कि वह बाद मे कम से कम

(Law of [illegible]y) और प्रबलता-नियम (Law of intensity) कहते है। बारबारता का मतलब य[illegible] है कि किसी कौशल या क्रिया को सीखने के लिये उसे बार-बार दुहराना लाभप्रद [illegible] है, किंतु सीमा के अन्दर ही यह नियम लागू होता है। दैहिक सीमा के बाहर [illegible] हजारों बार दुहराने पर भी शिक्षण मे किसी तरह की तरक्की नही होती। [illegible] से अभिप्राय यह है कि हम जो कुछ तत्काल सीखते है उसमे दोषों की सम्भावना कम [illegible] है और पहले सीखे हुए विषय की अपेक्षा तुरत का शिक्षण श्रेष्ठ होता है। [illegible] यह नियम पहले की अपेक्षा अधिक सार्थक देखने मे आता है। पहले सीखी हुई चीजों [illegible] भूल जाते है और उनमे अशुद्धियाँ भी अधिक होती है, किंतु तात्कालिक [illegible] भूले कम या बिल्कुल ही नही होती। सभी प्रकार के शिक्षणों के लिये यह ठीक मा[illegible] पड़ता है। प्रबलता नियम का मतलब यह है कि जिस विषय को सीखने के [illegible] प्रेरणा और इच्छा रहती है उसमे ध्यानावस्थित और सक्रिय रहने के कारण हम उसे [illegible] तरह सीख लेते है, किंतु जिसे सीखने के लिये हम सक्रिय नही रहते, उसे नही सीखते है। हम अपने नित्यप्रति के अनुभवों से कह सकते है कि ये तीनों उप-नियम शिक्षण मे काफी सहायक है। अभ्यास के कारण शिक्षण मे किस तरह क्रमश उन्नति होती है, यह निम्नांकित शिक्षण-वक्र से समझा जा सकता है।

चित्र सख्या—६०



शिक्षण पर अभ्यास के प्रभाव का ग्राफ

(३) परिणाम—नियम (Law of effect) शिक्षण की समुचित और सतोषप्रद व्याख्या के लिये थार्नडाइक को स्वय अभ्यास-नियम अधूरा मालूम हुआ। अतएव

इस अभाव को दूर करने के लिये उसने परिणाम नियम का प्रतिपादन किया। इस नियम के अनुसार जिस व्यवहार या प्रतिक्रिया को करने से सतोष मिलता है उसे जीव शीघ्र सीख जाता है, परन्तु जिसके करने से व्यक्ति को असतोष या कष्ट हो उसे नहीं सीखता। दूसरे शब्दो मे, शिक्षण-परिस्थिति (Learning situation) जीव में एक आवश्यकता पैदा कर देती है। तब जो व्यवहार उसकी आवश्यकता की पूर्ति में सहायक होता है वह उस व्यवहार को करना सीख जाता है। किन्तु, जिस प्रतिक्रिया के करने से उसकी आवश्यकता कम नही होती उसके साथ शिक्षण-परिस्थिति का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता, फलत जीव उस प्रतिक्रिया को नहीं सीख पाता है। ... कभी-कभी इसे सतोष (Satisfaction) तथा असतोष या पुरस्कार और दण्ड नियम (Law of reward and punishment) के नाम से भी व्यक्त किया है। लेकिन, थार्नडाइक इसे नहीं मानता कि जानवरो मे सुख दु ख या सतुष्टि को समझने की क्षमता होती है। उसके अनुसार, जीव जिस प्रतिक्रिया को छोडने का प्रयास नहीं करता वही सुखद और सतोषप्रद है। वह जिसे छोडने की कोशिश करता है वही असतोषप्रद और दुखद है। इस प्रकार प्रतिक्रिया का सुखद परिणाम उसे सीखने और उसका दुखद परिणाम उसे भूलने में सहायक होता है।

इस नियम की विवेचना करने पर मालूम होगा कि हम उसके द्वारा अधिकाश शिक्षण की व्याख्या सतोषप्रद कर सकते है। थार्नडाइक के शिक्षण नियमो में इसका प्रधान और प्रथम स्थान है। अभ्यास नियम की कमी को पूरा करते हुए यह स्पष्ट रूप में यह बताने की कोशिश करता है कि किसी परिस्थिति में पडने पर जीव अनेक प्रतिक्रियाओं मे से किसी एक ही प्रतिक्रिया को क्यो सीखता है। बार बार अभ्यास करने से हम किसी प्रतिक्रिया को इसलिये भूलते है कि उसके करने मे हम एक तरह की झुंझलाहट या असतुष्टि होती है। जीवन मे ऐसे उदाहरणो की कमी नहीं कि पुनरावृत्ति से अवाछनीय क्रियाओं मे निर्बलता आ जाती है और परिणामत कुछ समय में वे भूल जाती है। इसी नियम को ध्यान मे रखकर शिक्षण सस्थाओं और बड़े बडे कार्यालयो में दण्ड और पुरस्कार की व्यवस्था की गई है। लेकिन, दण्ड या पुरस्कार का असर, सीखनेवाले पर ही निर्भर करता है। सीखनेवाले की वर्त्तमान आवश्यकता की पूर्त्ति करनेवाला पुरस्कार होना आवश्यक है। जिससे किसी आवश्यकता की पूर्त्ति नहीं होती, वह किसी अन्य के लिये पुरस्कार भले ही हो, किन्तु सीखनेवाले के लिये पुरस्कार कदापि नहीं हो सकता। जैसे, भूखी बिल्ली के लिये स्वादिष्ट भोजन ही पुरस्कार का कार्य करेगा, अपने बच्चों से मिलना नहीं। प्रयोगो द्वारा थार्नडाइक ने यह भी प्रदर्शित किया है कि पुरस्कार की मात्रा (Amount) जितनी अधिक होगी शिक्षण गति उसी अनुपात में तेज होगी। मुर्गी के बच्चो को, सफलता प्राप्त करने पर, जब दिये जानेवाले भोजन के परिमाण मे छ गुना वृद्धि कर दी गई तो वे पचीस प्रतिशत शीघ्रता से सीख सके।

परिणाम नियम की आलोचना कुछ मनोवैज्ञानिको ने इस नियम की त्रुटियों को भी व्यक्त करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार बहुत स्थलों पर जीव ऐसी प्रतिक्रियाएँ सीख लेता है जिन्हें हम सतोषप्रद नहीं कह सकते। अत ऐसे स्थलो पर यह नियम लागू नहीं होता। ऐसी आपत्ति विशेषकर औपचारिक मनोवैज्ञानिकों (Clinical Psycholo-

gists) द्वारा की गई है। उन्होंने बताया है कि पागलों का अपना ही शरीर नोचना, कपडा फाडना, माथा पटकना, आदि क्रियाएँ सतोष या खुशी देने वाली नही कही जा सकती, फिर भी वे ऐसा करना सीखते और करते है। लेकिन, जैसा कि व्यक्त है, किसी कार्य या घटना के परिणाम का सुखद या दु खद लगना सीखने वाले पर निर्भर करता है, दूसरे पर नही। इसलिये दूसरे को जो असतोषप्रद प्रतीत हो, वही सीखनेवाले के लिये सतोषप्रद हो सकता है। अत इस नियम का यह कुछ विशेष दोष नही जँचता।

कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, किसी प्रतिक्रिया को करने के बाद सतोष या असतोष मिलता है। अत इसकी अनुभूति का प्रभाव तो आगे वाली प्रतिक्रियाओ पर ही होना चाहिए, लेकिन ऐसा न हो यह पश्चात् परिणाम (Backward effect) कैसे देता है। अर्थात, पुरस्कार या दड पश्चात सम्बन्ध को पुष्ट या निर्बल कैसे करता है? इसकी सतोषप्रद व्याख्या थार्नडाइक नही दे पाता। अत यह नही माना जा सकता कि थार्नडाइक का परिणाम-नियम सभी प्रकार के शिक्षण के लिये पर्याप्त और सही है। सामान्य स्तर के वयस्कों के अधिकाश शिक्षण ऐसे ही होते है जिनके लिये किसी प्रकार के पुरस्कार की जरूरत नही होती। मनुष्य के लिये दण्ड की अपेक्षा लक्ष्य, उद्देश्य या निर्दिष्ट अधिक मूल्यवान होता है, इसलिये वह दण्डित व्यवहार को भी सीख लेता है। इसीसे टॉलमैन (Tolman) ने अपने प्रयोग मे पाया कि उसके प्रयोज्यो मे दण्डित क्रियाओ को सीखने की सभावना अधिक थी। पुन जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, जीव किसी क्रियाविशेष को करना नही सीखता, बल्कि, परिस्थिति विशेष को सीखता है जिसमे उसे क्रियाएँ करनी होती है। अत शिक्षण के लिये पुरस्कार की आवश्यकता नही है। इसकी पुष्टि अव्यक्त शिक्षण (Latent learning) के प्रयोगो से भी होती है जिनकी चर्चा टॉलमैन सिद्धान्त की व्याख्या करते समय की जायेगी।

इस प्रकार, थार्नडाइक का परिणाम-नियम भी विद्वानों की आलोचना से नही बच सका। फिर भी, हम इसकी उपयोगिता को पूर्णत अस्वीकार नही कर सकते। प्रेरणा (Motivation) शिक्षण का एक आवश्यक पहलू है जिसका विरोध नहीं किया जा सकता। हाँ, इससे यह नही कहा जा सकता कि यही शिक्षण का मात्र पर्याप्त अग है। इस नियम ने थार्नडाइक के अभ्यास नियम की कमी को काफी अशो मे पूरा किया है। उसने इस नियम पर काफी जोर दिया है तथा सन् १९३० ई० के बाद उसने इसमे पर्याप्त सशोधन भी किया। नवीन दृष्टिकोण से परिचित होने के लिये इस सशोधन को ध्यान में रखना आवश्यक है।

परिणाम-नियम (सन् १९३० ई० के बाद)

प्रारभ मे थार्नडाइक ने पाया कि पुरस्कार से उत्तेजना-प्रतिक्रिया-सम्बन्ध (S R relation) जितना सबल होता है वह दण्ड से उतना ही कमजोर होता है। किन्तु, सन् १९३० के बाद उसने अपने प्रयोगों मे देखा कि सीखने मे पुरस्कार जितना अधिक सहायक होता है, दण्ड उतना बाधक नही होता। कभी-कभी शिक्षण मे दण्ड से कुछ भी कमी नही आती और उत्तेजना-प्रतिक्रिया-सम्बन्ध ज्यों का त्यो बना रह जाता है। यहाँ पर एक दो ऐसे प्रयोगों का उल्लेख करना आवश्यक होगा।

इस दिशा मे थार्नडाइक का एक मुख्य प्रयोग मुर्गी के बच्चो पर हुआ। यह प्रयोग तीन रास्ते वाले एक साधारण भूलभुलैया के साथ किया गया। एक रास्ते से जाने पर मुर्गी का बच्चा एक ऐसे स्थान पर पहुच जाता था जहाँ मुर्गी के कुछ और बच्चे स्वतन्त्र हो दाना चुगते रहते थे, किंतु अन्य दो रास्तो से जाने पर तीस सेकण्ड तक उसे कैद की तरह रहना पडता था। इस प्रकार, सही रास्ता अख्तियार करने पर उसे पुरस्कार रूप मे स्वतन्त्रता, खाना और साथी मिलते थे तथा गलत रास्ते अख्तियार करने पर तीस सेकण्ड तक जेल की सजा। उन मुर्गी के बच्चो ने कितनी बार पुरस्कृत क्रिया की, इसकी एक सूची बनायी गयी। उस सूची मे थार्नडाइक ने पाया कि पुरस्कार शिक्षण को जितना पुष्ट करता है उसकी तुलना मे दण्ड उसे उतना क्षीण नही करता।

इसी प्रकार, थार्नडाइक ने एक दूसरा प्रयोग मनुष्यो पर किया जिसमे कई स्पेनिश (Spanish) शब्दों को लेकर प्रत्येक शब्द के सामने पाँच पाच अग्रेजी शब्द लिखे हुए थे। उन पाँच अग्रेजी शब्दों मे एक शब्द उस स्पेनिश शब्द का ठीक अनुवाद था। प्रयोज्य को प्रत्येक स्पेनिश शब्द का अनुवाद शब्द पहचानने का निर्देशन (Instruction) दिया जाता था। प्रयोक्ता सही शब्द पहचानने पर 'ठीक' (पुरस्कार) और नही पहचानने पर 'गलत' (दण्ड) कहता था। इस प्रकार के छ प्रयोगो म थार्नडाइक ने पाया कि जिन शब्दो को पहचानने पर 'ठीक' कहा जाता था प्रयोज्य ने वैसे शब्दो को काफी बार दुहराया, किंतु 'गलत' कहने से उत्तेजना प्रतिक्रिया सम्बन्ध म किसी तरह की विशेष कमजोरी नजर नहीं आई। इस प्रकार, ये प्रयोग भी यही सिद्ध करते है कि शिक्षण के लिये पुरस्कार का महत्त्व अधिक है, किंतु इसका मतलब यह नही कि थार्नडाइक ने शिक्षण के लिये दण्ड का महत्त्व अनावश्यक माना है, बल्कि उसने केवल दण्ड के प्रत्यक्ष (Direct) क्षीण-प्रभाव को अस्वीकार किया है। अब वह केवल यह मानता है कि शिक्षण पर दण्ड का अप्रत्यक्ष (Indirect) प्रभाव पड़ता है।

परिणाम-विस्तार (Spread of effect) इस क्रम मे थार्नडाइक की एक और विचार धारा सन् १९३३ ई० मे प्रकाश मे आई जिसे परिणाम-विस्तार (Spread of effect) कहते है। परिणाम विस्तार का अनुसधान भी पुरस्कार के प्रभाव पर अधिक जोर देता है तथा शिक्षण के लिये दण्ड के परिणाम को उतना आवश्यक नही मानता। इस धारणा के अनुसार पुरस्कार का असर एक निश्चित क्षेत्र मे होता है। दूसरे शब्दों मे, वह केवल किसी एक पुरस्कृत प्रतिक्रिया को ही सबल नही बनाता, बल्कि उसके आस पास के प्रतिक्रिया-सम्बन्ध (Connection) को भी मजबूत बनाता है। इस तरह, जिस प्रतिक्रिया पर पुरस्कार दिया जाता है उसके पहले और बाद की प्रतिक्रियाएँ भी पुरस्कार प्रभाव की भागी बन जाती है। थार्नडाइक के अनुसार, परिणाम-विस्तार के क्षेत्र मे यदि कोई दण्डित या गलत प्रतिक्रिया हो तो इस परिणाम-विस्तार के कारण उसकी भी पुनरावृत्ति होती है। इस तरह, पुरस्कार का प्रभाव, दण्ड के निषेधात्मक प्रभाव से, इतना अधिक बलिष्ट होता है कि दण्ड का निषेधात्मक प्रभाव ही समाप्त हो जाता है और फलत प्रयोज्य उसकी भी पुनरावृत्ति कर देता है। इसकी पुष्टि के क्रम मे थार्नडाइक का एक प्रयोग उल्लेखनीय है। उस प्रयोग मे प्रयोज्य को एक उत्तेजना की प्रतिक्रिया १ से १० तक की किसी सख्या से करनी होती थी। प्रयोक्ता प्रयोज्य की प्रत्येक प्रतिक्रिया को या तो ठीक कह कर पुरस्कृत करता था

या गलत कह कर दण्डित। प्रयोग परिणाम से पता चला कि न केवल पुरस्कृत प्रतिक्रियाएँ अधिक बार हुई, बल्कि उनके पहले और बाद वाली प्रतिक्रियाओं की भी काफी पुनरावृत्ति हुई। साथ ही, परिणाम विस्तार के कारण, उन आस-पास को प्रतिक्रियाओं मे यदि कोई दण्डित प्रतिक्रिया रही तो उसकी भी पुनरावृत्ति हुई।

कहना न होगा कि परिणाम विस्तार की धारणा थार्नडाइक का अन्तिम शास्त्र है जिसके बल पर वह अपने सिद्धान्त की सत्यता को प्रमाणित करने की चेष्टा करता है। किन्तु, उसकी इस धारणा की भी कई आलोचनाएँ हुई है। स्टेफेन्स (Stephens), हल (Hull), आदि व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने भी इसकी आलोचना की है। उनके अनुसार, दण्ड उत्तेजना-प्रतिक्रिया सम्बन्ध (S R relation) को निश्चित रूप से कमजोर बनाता है। परिणाम-विस्तार के प्रयोग को दुहराने पर टिल्टन (Tilton) ने पाया कि प्रयोक्ता द्वारा 'गलत' कहना उतना ही हानिकर था जितना उसका 'ठीक' कहना लाभप्रद। उसके अनुसार, केवल पुरस्कार का ही परिणाम-विस्तार नहीं होता बल्कि दण्ड का भी मुख्य परिणाम-विस्तार होता है। दूसरे शब्दों मे, जिस प्रतिक्रिया की बारबारता (Frequency) तो भविष्य में कम जाती ही है, उसके आस पास के प्रतिक्रिया सबध भी कमजोर हो जाते हैं जिससे उनकी पुनरावृत्ति भी कम जाती है। मार्टेन्स (Martens) ने तो अपने प्रयोग मे यहाँ तक पाया कि दण्ड का परिणाम विस्तार पुरस्कार के परिणाम विस्तार से अधिक होता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों मे पाया कि पुरस्कृत प्रतिक्रिया के बाद वाली प्रतिक्रियाओं पर पुरस्कार का प्रभाव अधिक और उसके पहले वाली प्रतिक्रियाओं पर कम पडता है। किन्तु, थार्नडाइक के परिणाम-विस्तार के अनुसार तो पुरस्कृत प्रतिक्रिया के पहले और बाद वाली प्रतिक्रियाएँ समान रूप मे प्रभावित होनी चाहिये। जर्किल (Zirkle), जेनकिन्स तथा शेफिल्ड (Jenkins and Sheffield), आदि के प्रयोग थार्नडाइक के परिणाम विस्तार की इस आलोचना के समर्थक है।

इस तरह, थार्नडाइक का परिणाम-नियम सम्बन्धी नवीन विचार विवाद का विषय बन गया है। इस विवाद के सम्बन्ध मे अभी निश्चयात्मक रूप से कुछ भले ही न कहा जाय, लेकिन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों की आलोचनाओं तथा प्रयोगों को ध्यान मे रखते हुए ऐसा तो अवश्य ही मालूम होता है कि थार्नडाइक ने दण्ड के प्रभाव का समुचित मूल्यांकन (Rating) नही किया है। अपने दैनिक जीवन मे हम शिक्षण के लिए दण्ड आवश्यक समझते है और इसके प्रभाव को भी वांछित ही पाते है। फिर भी, सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक विवाद के सम्बन्ध मे अभी कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। थार्नडाइक के परिणाम विस्तार (Spread of effect) की सत्यता को पूर्णत तिरस्कृत करने के लिये पर्याप्त प्रयोगात्मक प्रमाणों का अभाव है और भविष्य के सम्बन्ध मे अभी कुछ कहना उचित नही जँचता।

विभिन्न शिक्षण नियमों पर संक्षेप में विचार करने के पश्चात् यह कहना भी आवश्यक मालूम होता है कि इन नियमों को शिक्षण का एक मात्र कारण समझना ठीक नही है, हाँ, ये शिक्षण के प्रभावशाली अंग अवश्य है। इनके अतिरिक्त, और भी कई अंग शिक्षण को प्रभावित करते है जिनकी चर्चा पीछे की जा चुकी है।

इस दिशा मे थार्नडाइक का एक मुख्य प्रयोग मुर्गी के बच्चो पर हुआ। यह प्रयोग तीन रास्ते वाले एक साधारण भूलभुलैया के साथ किया गया। एक रास्ते से जाने पर मुर्गी का बच्चा एक ऐसे स्थान पर पहुच जाता था जहाँ मुर्गी के कुछ और बच्चे स्वतत्र हो दाना चुगते रहते थे, किंतु अन्य दो रास्तो से जाने पर तीस सेकण्ड तक उसे कैदी की तरह रहना पडता था। इस प्रकार, सही रास्ता अख्तियार करने पर उसे पुरस्कार रूप मे स्वतत्रता, खाना और साथी मिलते थे तथा गलत रास्ते अख्तियार करने पर तीस सेकण्ड तक जेल की सजा। उन मुर्गी के बच्चो ने कितनी बार पुरस्कृत क्रिया की, इसकी एक सूची बनायी गयी। उस सूची मे थार्नडाइक ने पाया कि पुरस्कार शिक्षण को जितना पुष्ट करता है उसकी तुलना मे दण्ड उसे उतना क्षीण नही करता।

इसी प्रकार, थार्नडाइक ने एक दूसरा प्रयोग मनुष्यो पर किया जिसमे कई स्पनिश (Spanish) शब्दों को लेकर प्रत्येक शब्द के सामने पाँच पाच अग्रेजी शब्द लिखे हुए थे। उन पाँच अग्रेजी शब्दो मे एक शब्द उस स्पनिश शब्द का ठीक अनुवाद था। प्रयोज्य को प्रत्येक स्पनिश शब्द का अनुवाद शब्द पहचानने का निदशन (Instruction) दिया जाता था। प्रयोक्ता सही शब्द पहचानने पर 'ठीक' (पुरस्कार) और नही पहचानने पर 'गलत' (दण्ड) कहता था। इस प्रकार के छ प्रयोगो म थार्नडाइक ने पाया कि जिन शब्दो को पहचानने पर 'ठीक' कहा जाता था प्रयोज्य ने वैसे शब्दो को काफी बार दुहराया, किंतु 'गलत' कहने से उत्तेजना प्रतिक्रिया सम्बन्ध म किसी तरह की विशेष कमजोरी नजर नही आई। इस प्रकार, ये प्रयोग भी यही सिद्ध करते है कि शिक्षण के लिये पुरस्कार का महत्त्व अधिक है, किंतु इसका मतलब यह नही कि थार्नडाइक ने शिक्षण के लिये दण्ड का महत्त्व अनावश्यक माना है, बल्कि उसने केवल दण्ड के प्रत्यक्ष (Direct) क्षीण-प्रभाव को अस्वीकार किया है। अब वह केवल यह मानता है कि शिक्षण पर दण्ड का अप्रत्यक्ष (Indirect) प्रभाव पड़ता है।

परिणाम-विस्तार (Spread of effect) इस क्रम मे थार्नडाइक की एक और विचार धारा सन् १९३३ ई० मे प्रकाश मे आई जिसे परिणाम-विस्तार (Spread of effect) कहते है। परिणाम-विस्तार का अनुसधान भी पुरस्कार के प्रभाव पर अधिक जोर देता है तथा शिक्षण के लिये दण्ड के परिणाम को उतना आवश्यक नही मानता। इस धारणा के अनुसार पुरस्कार का असर एक निश्चित क्षेत्र मे होता है। दूसरे शब्दो म, वह केवल किसी एक पुरस्कृत प्रतिक्रिया को ही सबल नही बनाता, बल्कि उसके आस पास के प्रतिक्रिया-सम्बन्ध (Connection) को भी मजबूत बनाता है। इस तरह, जिस प्रतिक्रिया पर पुरस्कार दिया जाता है उसके पहले और बाद की प्रतिक्रियाएँ भी पुरस्कार प्रभाव की भागी बन जाती है। थार्नडाइक के अनुसार, परिणाम-विस्तार के क्षेत्र मे यदि कोई दण्डित या गलत प्रतिक्रिया हो तो इस परिणाम विस्तार के कारण उसकी भी पुनरावृत्ति होती है। इस तरह, पुरस्कार का प्रभाव, दण्ड के निषेधात्मक प्रभाव से, इतना अधिक बलिष्ट होता है कि दण्ड का निषेधात्मक प्रभाव ही समाप्त हो जाता है और फलत प्रयोज्य उसकी भी पुनरावृत्ति कर देता है। इसकी पुष्टि के क्रम म थार्नडाइक का एक प्रयोग उल्लेखनीय है। उस प्रयोग मे प्रयोज्य को एक उत्तेजना का प्रतिक्रिया १ से १० तक की किसी सख्या से करनी होती थी। प्रयोक्ता प्रयोज्य की प्रत्येक प्रतिक्रिया को या तो ठीक कह कर पुरस्कृत करता था

या गलत कह कर दण्डित। प्रयोग परिणाम से पता चला कि न केवल पुरस्कृत प्रतिक्रियाएँ अधिक बार हुई, बल्कि उनके पहले और बाद वाली प्रतिक्रियाओं की भी काफी पुनरावृत्ति हुई। साथ ही, परिणाम विस्तार के कारण, उन आस पास को प्रतिक्रियाओं मे यदि कोई दण्डित प्रतिक्रिया रही तो उसकी भी पुनरावृत्ति हुई।

कहना न होगा कि परिणाम-विस्तार की धारणा थार्नडाइक का अन्तिम शास्त्र है जिसके बल पर वह अपने सिद्धान्त की सत्यता को प्रमाणित करने की चेष्टा करता है। किन्तु, उसकी इस धारणा की भी कई आलोचनाएँ हुई है। स्टेफेन्स (Stephens), हल (Hull), आदि व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने भी इसकी आलोचना की है। उनके अनुसार, दण्ड उत्तेजना-प्रतिक्रिया सम्बन्ध (S R relation) को निश्चित रूप से कमजोर बनाता है। परिणाम-विस्तार के प्रयोग को दुहराने पर टिल्टन (Tilton) ने पाया कि प्रयोक्ता द्वारा 'गलत' कहना उतना ही हानिकर था जितना उसका 'ठीक' कहना लाभप्रद। उसके अनुसार, केवल पुरस्कार का ही परिणाम-विस्तार नहीं होता बल्कि दण्ड का भी मुख्य परिणाम विस्तार होता है। दूसरे शब्दो मे, जिस प्रतिक्रिया की बारबारता (Frequency) तो भविष्य में कम जाती ही है, उसके आस पास के प्रतिक्रिया सबध भी कमजोर हो जाते है जिससे उनकी पुनरावृत्ति भी कम जाती है। मार्टेन्स (Martens) ने तो अपने प्रयोग मे यहाँ तक पाया कि दण्ड का परिणाम विस्तार पुरस्कार के परिणाम विस्तार से अधिक होता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों मे पाया कि पुरस्कृत प्रतिक्रिया के बाद वाली प्रतिक्रियाओं पर पुरस्कार का प्रभाव अधिक और उसके पहले वाली प्रतिक्रियाओं पर कम पडता है। किंतु, थार्नडाइक के परिणाम-विस्तार के अनुसार तो पुरस्कृत प्रतिक्रिया के पहले और बाद वाली प्रतिक्रियाएँ समान रूप मे प्रभावित होनी चाहिये। जर्किल (Zirkle), जेनकिन्स तथा शेफिल्ड (Jenkins and Sheffield), आदि के प्रयोग थार्नडाइक के परिणाम-विस्तार की इस आलोचना के समर्थक है।

इस तरह, थार्नडाइक का परिणाम-नियम सम्बन्धी नवीन विचार विवाद का विषय बन गया है। इस विवाद के सम्बन्ध मे अभी निश्चयात्मक रूप से कुछ भले ही न कहा जाय, लेकिन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों की आलोचनाओं तथा प्रयोगों को ध्यान मे रखते हुए ऐसा तो अवश्य ही मालूम होता है कि थार्नडाइक ने दण्ड के प्रभाव का समुचित मूल्यांकन (Rating) नही किया है। अपने दैनिक जीवन मे हम शिक्षण के लिए दण्ड आवश्यक समझते है और इसके प्रभाव को भी वांछित ही पाते है। फिर भी, सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक विवाद के सम्बन्ध में अभी कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। थार्नडाइक के परिणाम-विस्तार (Spread of effect) की सत्यता को पूर्णत तिरस्कृत करने के लिये पर्याप्त प्रयोगात्मक प्रमाणों का अभाव है और भविष्य के सम्बन्ध मे अभी कुछ कहना उचित नही जँचता।

विभिन्न शिक्षण नियमो पर संक्षेप मे विचार करने के पश्चात् यह कहना भी आवश्यक मालूम होता है कि इन नियमों को शिक्षण का एक मात्र कारण समझना ठीक नहीं है, हाँ, ये शिक्षण के प्रभावशाली अंग अवश्य है। इनके अतिरिक्त, और भी कई अंग शिक्षण को प्रभावित करते है जिनकी चर्चा पीछे की जा चुकी है।

प्रयत्न और भूल-सिद्धान्त का मूल्यांकन

थार्नडाइक के प्रयत्न और भूल सिद्धान्त के चन्द पहलुओं पर विचार कर लेने के बाद इसकी पूरी समर्थता या असमर्थता को ध्यान में रखते हुए इसका मूल्यांकन आवश्यक प्रतीत होता है। थार्नडाइक के सिद्धान्त की कुछ ऐसी आलोचनाएँ की गई हैं जो इसके मौलिक आधार को ही कमजोर सिद्ध करने का प्रयत्न करती हैं।

थार्नडाइक का शिक्षण सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि जीव प्रयत्न करते करते किसी कार्य अथवा कौशल को करना सीखता है। इस तरह के प्रयत्न में उसे काफी कठिनाइयाँ होती है, वह गलतियाँ करता है। जैसे जैसे वह अभ्यास करते जाता है वैसे वैसे उसकी गलतियाँ समाप्त होती जाती है और उसके शिक्षण में धीरे धीरे पूर्णता आ जाती है। इस तरह, इस सिद्धान्त के अनुसार जीव बुद्धि से काम नहीं लेता। इसी से, थार्नडाइक ने शिक्षण मे चिंतन (Thinking) के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया है। उसके अनुसार सीखने में कुछ सोचने समझने की जरूरत नहीं होती, सभी प्रतिक्रियाएँ यन्त्रवत होती हैं। लेकिन, अधिकांश विद्वान थार्नडाइक के इस विचार से असहमत हैं। उन्होंने इसके विरोध में कई प्रयोगात्मक प्रमाणों को उपस्थित किया है। ये प्रयोग भी जानवरों पर किये गये हैं। मेयर (Mayer) ने चूहों पर प्रयोग कर यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया कि वे अपनी समस्याओं को चिंतन द्वारा सुलझाते हैं। आर एम यर्क्स (R M Yerkes) ने जानवरों की चिंतन-क्षमता को प्रमाणित करने के लिये कई जटिल परिस्थितियों में प्रयोग कर यह प्रदर्शित किया कि अपने को किसी जटिल परिस्थिति में अभियोजित करने के लिये वे बुद्धि से काम लेते हैं। चूहों की अपेक्षा बन्दरों में यह क्षमता अधिक होती है। थार्नडाइक के कथन का खण्डन करने के लिये विलंबित प्रतिक्रिया (Delayed response) सम्बन्धी प्रयोग का एक उदाहरण दे देना पर्याप्त होगा। इस प्रयोग में पहले जानवरों को यह सिखलाया गया कि प्रकाशित जगह पर भोजन मिलता है, अन्धेरी जगह पर नहीं। इन दोनों जगहों का बराबर परिवर्तित कर दिया जाता था। इसके बाद प्रकाश जला कर उसे बुझा दिया जाता था, तब कुछ देर रोकने के बाद जानवर को छोड़ा जाता था। लेकिन, रोकने पर भी पूर्व प्रकाशित स्थल पर जाकर वह भोजन कर लेता था। इस प्रकार की विलंबित प्रतिक्रिया में चूहे, बिल्ली, कुत्ते, आदि से बन्दर विशेष निपुण सिद्ध हुए। ऐसे प्रयोगों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि उत्तेजना की अनुपस्थिति में जानवरों की उचित प्रतिक्रिया उनके स्मरण और चिंतन प्रक्रियाओं को प्रमाणित करती है। इन प्रक्रियाओं के अभाव में वे उचित प्रतिक्रिया कैसे करते ?

थार्नडाइक ने जानवरों के शिक्षण में अन्तर्दृष्टि (Insight) के महत्त्व को अस्वीकार किया है, लेकिन जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक ऐसा नहीं मानते। उन लोगों ने बन्दरों, बच्चों या अन्य जीवों पर प्रयोग करके यह प्रमाणित कर दिया है कि वे समस्याओं को सुलझाने में अन्तर्दृष्टि से काम लेते हैं। उनका कहना है कि थार्नडाइक ने अपने जानवरों को जिन परिस्थितियों में रखा वे देखने में तो सरल मालूम होती थी, किन्तु जानवरों के लिये वे वस्तुतः बहुत ही जटिल थी। अतः वैसी परिस्थितियों में उनमें प्रयत्न और भूल का होना स्वाभाविक था, किंतु वे जानवर भी उन परिस्थितियों को अन्तर्दृष्टि द्वारा ही सुलझा सके। इसके अतिरिक्त, थार्नडाइक के शिक्षणवक्र (Learning curve) में आकस्मिक उतार (Sudden fall) जानवरों की

अन्तर्दृष्टि का परिचायक है। उनमे समस्या की पूरी सूझ न होने पर उस तरह का उतार असम्भव था। शिक्षण वक्र के इस आकस्मिक उतार के सम्बन्ध मे थार्नडाइक का कहना है कि यह समस्या के अत्यधिक सरल होने की निशानी है। लेकिन, अन्य प्रयोगो के प्रकाश मे उसका यह कथन अधिक युक्तिपूर्ण नही लगता।

इसी प्रकार, उसने अपने शिक्षण सिद्धान्त मे अनुकरण (Imitation) को भी स्थान नही दिया है। लेकिन, विभिन्न प्रयोगो के आधार पर कई मनोवैज्ञानिको ने जानवरों की अनुकरणशीलता को प्रमाणित किया है। एक बन्दर को एक पिंजडे मे इस तरह रखा गया कि वह दूसरे बन्दर की क्रियाओ को अच्छी तरह देख सके। दूसरे बन्दर को कई प्रकार की क्रियाएँ सिखाया गया। पिंजडे वाले बन्दर को उसी परिस्थिति मे रखा गया तो ७० प्र श अवसरों पर उसने अनुकरण का परिचय दिया। इसलिए उन प्रयोक्ताओं का कहना है कि बन्दरों मे अनुकरणशीलता अत्यधिक होती है और वे इससे अपने शिक्षण मे लाभान्वित होते है। थार्नडाइक के बन्दर ऐसी परिस्थिति मे रखे गये थे जिसमे उन्हे देखने का पर्याप्त अवसर नही मिला, इसलिये वे अनुकरण को प्रदर्शित नही कर सके। लेकिन, थार्नडाइक द्वारा की गयी बन्दरों के व्यवहार की व्याख्या को हम देख चुके है, इसलिये ऐसे प्रयोगात्मक प्रमाण उसके कथन के खण्डन के लिये अकाट्य सिद्ध नही होते।

इसके अतिरिक्त, कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि यद्यपि थार्नडाइक सम्बद्ध-प्रत्यावर्तन सिद्धान्त (Conditioned reflex theory) का खण्डन करता है, परन्तु उसका शिक्षण सिद्धान्त उससे भिन्न नही है। किसी प्रतिक्रिया के करने पर जानवर जब किसी तरह का पुरस्कार पाता है तो आगे चलकर वह उस प्रतिक्रिया को करना सीख लेता है, किंतु उस पुरस्कार को न पाने पर वह उस प्रतिक्रिया को भूल भी जाता है। यह सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के विनष्टीकरण (Extinction) के अतिरिक्त और क्या है? फिर कुछ समय बाद जीव उस प्रतिक्रिया को पुन अपना लेता है। इसी को पैवलॉव ने पुनर्स्थापन (Restoration) कहा है। इसी प्रकार, प्रयत्न और भूल मे सामान्यीकरण (Generalization), विभेदीकरण (Differentiation), आदि भी देखने मे आते है। इस तरह, प्रयत्न और भूल सिद्धान्त सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन को व्यक्त करने का ही दूसरा तरीका है। लेकिन, इतना होते हुए भी ये दोनों सिद्धात विशिष्ट विन्दुओ पर एक दूसरे से भिन्न है, अत इन्हे एकरूप समझना उचित नही है।

अपने सिद्धान्त मे थार्नडाइक ने अभ्यास पर अत्यधिक जोर दिया है और उसके अनुसार यान्त्रिक अभ्यास (Mechanical practice) के कारण ही जीव उचित प्रतिक्रिया करना सीख जाता है। किंतु, मनोवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित है कि शिक्षण में यान्त्रिक अभ्यास सहायक नही होता। डनलप भी पुनरावृत्ति का खण्डन करता है और जैसा कि हम जानते है, उसने इस सम्बन्ध मे प्रयोगो का भी आश्रय लिया है। इसी प्रकार, अन्य कई मनोवैज्ञानिको ने इस शिक्षण सिद्धान्त का खण्डन किया है।

लेकिन, मात्र त्रुटियो और आलोचनाओं के आधार पर ही किसी सिद्धान्त का सही मूल्यांकन नही किया जा सकता है। इस सिद्धान्त मे कई गुण भी है। उन पर विचार करने से मालूम होगा कि यह सिद्धान्त शिक्षा विभाग के लिये काफी लाभप्रद प्रमाणित हुआ है। अब शिक्षा शास्त्री बालको को कुछ सिखलाने मे पुनरावृत्ति पर काफी जोर देते है। शिक्षण को स्थायी बनाने के लिये वे बालकों को तरह तरह से प्रोत्साहित करते है। कुछ

सिखलाने के लिये दण्ड देना लाभप्रद नही, अपितु हानिप्रद समझा जाता है। इसलिये शारीरिक दण्ड देने की व्यवस्था पाठशालाओ से प्रायः उठा ली गई है। किसी विषय को सीखने के लिये स्नेह के साथ नाना प्रकार के ढग से विद्यार्थी को समझाने की कोशिश की जाती है। शिक्षा विभाग के अतिरिक्त, जीवन मे इसकी जो उपयोगिता है उसकी भी हम उपेक्षा नही कर सकते। किसी प्रकार का कौशल सीखने के लिये प्रारभिक अवस्था मे हमे प्रयत्न और भूल का आश्रय लेना पडता है। प्रयोगो से यह पूर्णत स्पष्ट है कि टाइप करना, मोटर या सायकिल चलाना, तार देना, आदि कौशलो को सीखने मे प्रयत्न और भूल का आश्रय लेना होता है। प्रारभ मे अधिक अशुद्धियाँ होती है और समय भी अधिक लगता है, किंतु अभ्यास के कारण ये अशुद्धियां धीरे धीरे विनष्ट हो जाती है। हम कह चुके है कि सरल शिक्षण के लिये सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन सिद्धान्त भले ही पर्याप्त हो, किंतु अधिकाश जटिल प्रतिक्रियाओ को सीखने की व्याख्या प्रयत्न और भूल के आधार पर की जा सकती है। जहाँ बुद्धि काम नही करती वहाँ तो क्रियात्मक शिक्षण ही होता है।

अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त (Insight theory)

या

जेस्टाल्ट-सिद्धान्त (Gestalt theory)

शिक्षण का यह तीसरा प्रमुख सिद्धान्त कोहलर (Kohler), काफ्का (Koffka), आदि जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों की देन है। यह अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त पेवलॉव के सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन तथा थार्नडाइक के प्रयत्न और भूल दोनो सिद्धान्तो का शिक्षण की व्याख्या करने मे अपर्याप्त और असतोषजनक मानता है। जेस्टाल्टवादियो के इस सिद्धान्त के प्रकाश मे आने से पूर्व थार्नडाइक का सिद्धान्त पश्चिमी देशो मे अपना प्रभाव पूर्णत जमा चुका था। फलत इस सिद्धान्त ने, थार्नडाइक के प्रतिपादित सिद्धान्त के एक चुनोती के रूप मे मनोविज्ञान जगत मे हलचल मचा दी।

इस सिद्धान्त का मुख्य साराश यह है कि जीव किसी प्रतिक्रिया अथवा कौशल को सम्बद्धता या प्रयत्न तथा भूल के द्वारा नही, बल्कि अन्तर्दृष्टि (insight) के द्वारा सीखता है। सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन में विश्वास रखने वाले मनोवैज्ञानिको ने जीव के अग-प्रत्यगो की अवहेलना की है। थार्नडाइक ने अपने सिद्धान्त में पूर्ण परिस्थिति या उसके प्रत्येक अग के पारस्परिक सम्बन्धो और ध्येय की उपेक्षा की है। किन्तु, जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक अपने शिक्षण सिद्धान्त में जीव की सक्रियता, पूर्ण परिस्थिति की सूझ (Understanding of the whole situation), अथवा उसके विभिन्न अगों के पारस्परिक सम्बन्धों की सूझ पर पूरा जोर देते है। ये मनोवैज्ञानिक ऐसा नही मानते (वाटसन, प्रभृति की तरह) कि शिक्षण का अर्थ उत्तेजना और प्रतिक्रिया मे सबन्ध स्थापित करना है। इनके अनुसार, शिक्षण का अर्थ किसी परिस्थिति की विभिन्न उत्तेजनाओं मे सबन्ध स्थापित करना है। इसी से जीव जब किसी नई परिस्थिति मे रख दिया जाता है तब वह सम्पूर्ण परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया करता है, न कि किसी एक उत्तेजना के प्रति।

किसी परिस्थिति मे समुचित रूप से अभियोजित करने के लिये पूर्ण परिस्थिति को समझना आवश्यक है। जब तक वह पूरी परिस्थिति जीव की समझ मे नही आती तबतक

संघात (Pattern) का, जिसे जर्मन भाषा में जेस्टाल्ट (Gastalt) कहते हैं, निर्माण नहीं होता और उसके अभाव में शिक्षण असम्भव है। जब तक परिस्थिति के विभिन्न अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों का ज्ञान नहीं होता तब तक वे अंग निरर्थक रहते हैं। किन्तु, उनका ज्ञान होते ही वे सार्थक प्रतीत होने लगते हैं। जीव यह अच्छी तरह समझ जाता है कि उस समस्या को सुलझाने में उन अंगों या किसी अंग विशेष की क्या सार्थकता है। वह आवश्यकतानुसार उन अंगों को अपनी समस्या सुलझाने का उपकरण बनाता है।

उसकी यह प्रतिक्रिया निरर्थक और अनायास नहीं होती, बल्कि एक खास ध्येय के प्रति और इसलिये सार्थक होती है। इस तरह, जीव की प्रतिक्रिया परिस्थिति के अनुरूप होती है। अत जीव का शिक्षण पूर्णत अन्तर्दृष्टिपूर्ण (Insightful) और ध्येययुक्त होता है।

कोहलर के अनुसार जीव के गलत व्यवहारों या प्रतिक्रियाओं को भी अनायास या निरर्थक नहीं कहना चाहिये, क्योंकि वे भी किसी उद्देश्य से ही की गयी रहती हैं। गलत प्रतिक्रियाओं में कुछ को उसने अच्छी प्रतिक्रिया कहा है और कुछ को बुरी। अच्छी गलतियाँ (Good errors) आंशिक अन्तर्दृष्टि की निशानी होती है और उनके सहारे जीव आगे चल कर समस्या समाधान में सफल होता है। दूसरी ओर, बुरी गलतियाँ (Bad errors), कोहलर के अनुसार, वे हैं जो समस्या समाधान में बाधक और भटकाने वाली होती है।

जेस्टाल्टवादी, थार्नडाइक के क्रियात्मक शिक्षण सिद्धान्त का खंडन करते हुये कहते हैं कि थार्नडाइक ने अपने प्रयोगों में जानवरों को ऐसी परिस्थिति में रक्खा कि वे उस परिस्थिति के विभिन्न अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों को देखने में असमर्थ थे। चूँकि वे परिस्थिति को भलीभाँति नहीं देख सके, इसलिये उसे अच्छी तरह समझना भी उनके लिये असंभव हो गया। अत वैसी परिस्थिति में, जानवरों को अनियमित और अनायास प्रतिक्रियायें करना स्वाभाविक था। अगर परिस्थिति जानवरों की समझ में अच्छी तरह आ गई होती तो वे प्रयत्न और भूल की क्रियाएँ कभी नहीं करते। इसके अतिरिक्त, उन जानवरों की प्रतिक्रियायें भी पूर्णत ध्येय और अन्तर्दृष्टि से रहित नहीं कही जा सकती, क्योंकि उनका प्रदर्शन वे किसी ध्येय को ही प्राप्त करने के लिये करते थे। थार्नडाइक के प्रयोग में बिल्ली चाहे जिधर भी भागती हो, लेकिन उसके सामने एक ध्येय था—खाना को प्राप्त करना, क्योंकि वह भूखी थी। साथ ही, धीरे धीरे जब उसे परिस्थिति का कुछ ज्ञान होता गया तब उसकी प्रतिक्रियायें भ्रान्तिबाक्स के दरवाजे के पास ही अधिक होती थी। अतएव निरीक्षणकर्त्ता को उनके व्यवहार भले ही अनायास और अनियमित मालूम पड़े, किन्तु वे भी उनकी अन्तर्दृष्टि के ही परिचायक हैं। इस प्रकार, कोहलर या अन्य जेस्टाल्ट-वादी मनोवैज्ञानिक क्रियात्मक या सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन-शिक्षण का खंडन करते हुए जानवर और मनुष्य के शिक्षण में अन्तर्दृष्टि पर जोर देते हैं। जेस्टाल्टवादियों का यह सिद्धान्त प्रयोगात्मक प्रमाणों पर आधारित है। यहाँ हम उनके कुछ प्रमुख प्रयोगों का उल्लेख करेंगे।

यह देखने के लिये कि जीव किसी उत्तेजना विशेष के प्रति प्रतिक्रिया करता है या परिस्थिति के विभिन्न अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों को समझकर कोहलर ने दो मुर्गियों पर प्रयोग किया। पहले उसने अपनी मुर्गियों को सैकड़ों प्रयास करवा कर यह सिखलाया

रावात (Pattern) का, जिसे जर्मन भाषा मे जेस्टाल्ट (Gastalt) कहते है, निर्माण नही होता और उसके अभाव मे शिक्षण असम्भव है। जब तक परिस्थिति के विभिन्न अगों के पारस्परिक सम्बन्धो का ज्ञान नही होता तब तक वे अग निरर्थक रहते है। किन्तु, उनका ज्ञान होते ही वे सार्थक प्रतीत होने लगते है। जीव यह अच्छी तरह समझ जाता है कि उस समस्या को सुलझाने में उन अगा या किसी अग विशेष की क्या सार्थकता है। वह आवश्यकतानुसार उन अगो को अपनी समस्या सुलझाने का उपकरण बनाता है।

उसकी वह प्रतिक्रिया निरर्थक और अनायास नही होती, बल्कि एक खास ध्येय के प्रति और इसलिये सार्थक होती है। इस तरह, जीव की प्रतिक्रिया परिस्थिति के अनुरूप होती है। अत जीव का शिक्षण पूर्णत अन्तर्दृष्टिपूर्ण (Insightful) और ध्येययुक्त होता है।

कोहलर के अनुसार जीव के गलत व्यवहारों या प्रतिक्रियाओ को भी अनायास या निरर्थक नही कहना चाहिये, क्योंकि वे भी किसी उद्देश्य से ही की गयी रहती है। गलत प्रतिक्रियाओ मे कुछ को उसने अच्छी प्रतिक्रिया कहा है और कुछ को बुरी। अच्छी गलतियाँ (Good errors) आशिक अन्तर्दृष्टि की निशानी होती है और उनके सहारे जीव आगे चल कर समस्या समाधान मे सफल होता है। दूसरी ओर, बुरी गलतियाँ (Bad errors), कोहलर के अनुसार, वे है जो समस्या समाधान मे बाधक और भटकाने वाली होती है।

जेस्टाल्टवादी, थार्नडाइक के क्रियात्मक शिक्षण सिद्धान्त का खडन करते हुये कहते है कि थार्नडाइक ने अपने प्रयोगो मे जानवरों को ऐसी परिस्थिति मे रक्खा कि वे उस परिस्थिति के विभिन्न अगो के पारस्परिक सम्बन्धो को देखने मे असमर्थ थे। चूँकि वे परिस्थिति को भलीभाँति नही देख सके, इसलिये उसे अच्छी तरह समझना भी उनके लिये असभव हो गया। अत वैसी परिस्थिति मे, जानवरो को अनियमित और अनायास प्रतिक्रियाये करना स्वाभाविक था। अगर परिस्थिति जानवरों की समझ मे अच्छी तरह आ गई होती तो वे प्रयत्न और भूल की क्रियाएँ कभी नही करते। इसके अतिरिक्त, उन जानवरों की प्रतिक्रियाये भी पूर्णत ध्येय और अन्तर्दृष्टि से रहित नही कही जा सकतीं, क्योंकि उनका प्रदर्शन वे किसी ध्येय को ही प्राप्त करने के लिये करते थे। थार्नडाइक के प्रयोग मे बिल्ली चाहे जिधर भी भागती हो, लेकिन उसके सामने एक ध्येय था—खाना को प्राप्त करना, क्योकि वह भूखी थी। साथ ही, धीरे धीरे जब उसे परिस्थिति का कुछ ज्ञान होता गया तब उसकी प्रतिक्रियाये आन्तिबाक्स के दरवाजे के पास ही अधिक होती थीं। अतएव निरीक्षणकर्त्ता को उनके व्यवहार भले ही अनायास और अनियमित मालूम पड़े, किन्तु वे भी उनकी अन्तर्दृष्टि के ही परिचायक है। इस प्रकार, कोहलर या अन्य जेस्टाल्ट-वादी मनोवैज्ञानिक क्रियात्मक या सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन-शिक्षण का खडन करते हुए जानवर और मनुष्य के शिक्षण मे अन्तर्दृष्टि पर जोर देते है। जेस्टाल्टवादियों का यह सिद्धान्त प्रयोगात्मक प्रमाणों पर आधारित है। यहाँ हम उनके कुछ प्रमुख प्रयोगों का उल्लेख करेगे।

यह देखने के लिये कि जीव किसी उत्तेजना विशेष के प्रति प्रतिक्रिया करता है या परिस्थिति के विभिन्न अगों के पारस्परिक सम्बन्धों को समझकर कोहलर ने दो मुर्गियों पर प्रयोग किया। पहले उसने अपनी मुर्गियों को सैकड़ों प्रयास करवा कर यह सिखलाया

कि जिस कागज पर प्रकाश नहीं है उसमे दाना मिलता है और जिस पर प्रकाश है उसमे दाना नही मिलता है। इतना सिखलाने के लिये उन चारों मुर्गियों को सौ प्रयासों को करना पड़ा। जब मुर्गी प्रकाशित (Illumined) कागज के बाद मे दाना चुगने के लिये मुँह डालती थी तो उसे दाना नहीं मिलता था और जब वह अन्धकारयुक्त कागज के बाद मे मुँह डालती थी तो उसे दाना मिलता था। प्रयोग के अन्त मे पुरस्कार सहित कागज को निर्विघ्न छोड़ दिया जाता था। मुर्गियों के सीख जाने पर कागज न प्रकाशित कागज को हटा कर उसकी जगह पर पहले का कागज (जिसमे दाना मिलता था) और नया कागज, यह देखने के लिये, रखा दिया गया कि मुर्गियाँ एक विशिष्ट उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया करती है या उनके सम्बन्ध के प्रति। यदि मुर्गियों ने पहले कागज की ओर जाने के लिये जाना सीखा है, उसी मे जाती है तो हम कहेंगे कि उन्होंने एक विशिष्ट उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया करना सीखा है। दूसरी ओर, यदि मुर्गियाँ दो कागजों मे अधिक अधेरा कौन है, काला (अँधेरे) कागज की ओर (पूर्व के प्रकाशित) दाना पाने के लिये जाती है तो हम कहेंगे कि उन्होंने विशिष्ट उत्तेजना प्रतिक्रिया सम्बन्ध का नहीं सीखा, पूरी परिस्थिति का समझ कर प्रतिक्रिया करना सीखा है। यह प्रयोग चार मुर्गियों पर किया गया जिन्हें पहले ही दाना चुनने का प्रशिक्षण (Training) दिया गया था। प्रयोग करने पर देखा गया कि ७० प्रतिशत अवसरों पर मुर्गियाँ नये दो कागजों मे से जो अधिक अन्धकारमय था (जिस प्रकाशित कागज के पास पहले नहीं दाना मिलता था) उसी के प्रति प्रतिक्रिया की और पहले प्रयोग मे जिस कागज की ओर उन्हें दाना मिलता था, उसकी ओर वे केवल ३० प्रतिशत प्रयासों में ही गई। इस प्रयोग से यह स्पष्ट है कि मुर्गी ऐसा जीव भी उत्तेजना विशेष के प्रति नहीं, वरन् सम्पूर्ण परिस्थिति को समझ कर पूरी परिस्थिति के ही प्रति प्रतिक्रिया करता है। यदि ऐसा नहीं होता तो मुर्गियाँ उसी कागज की ओर ही दाना खोजतीं जिस ओर जाने मे उन्हें पहले दाना मिलता था। किन्तु, उन्होंने दो कागजों मे से अधिक अंधेरा कागज की ओर जाकर ही दाना पाया था, इसलिये बाद मे भी दोनों मे से जो अधिक अन्धकारमय था उसी में दाना खोजने की प्रतिक्रिया की।

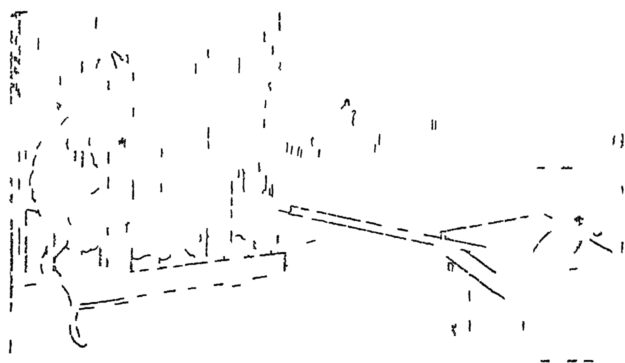
उपर्युक्त सिद्धान्त की पुष्टि के लिये कोहलर ने जो प्रयोग अफ्रीका के बन्दरों पर किया वे भी काफी महत्त्वपूर्ण है। कोहलर ने प्रयोगावस्था को पूर्ण नियन्त्रित रखा ताकि उन बन्दरों पर वातावरण के परिवर्तन का प्रभाव न पड़ सके। एक बन्दर को सुबह मे भोजन नहीं दिया गया और प्रयोग के लिये एक बड़े पिंजड़े में रखा गया जहाँ वह अच्छी तरह कूद फाँद कर सके। उसके बाद भोजन (फल) को उस पिंजड़े की छत से लटकाकर उस पिंजड़े मे कुछ दूरी पर एक बक्स रख दिया गया। लेकिन, बन्दर यह नहीं जानता था कि भोजन पाने के लिये बक्से का इस्तेमाल किया जा सकता है। इसलिये वह भोजन प्राप्त करने के लिये पिंजड़े मे इधर उधर कूद फाँद करता रहा। लेकिन, इस कूद फाँद से वह भोजन नहीं पा सका। तब कोहलर ने उस बक्स को लटकते हुये फल के नीचे रखा और उस पर चढ़कर उसे स्पर्श किया। फिर पुनः उस बक्स को उसके नीचे से हटा दिया। अब बन्दर को उस बक्स की सार्थकता मालूम हुई और तुरत उसने बक्स को घसीट कर लटकते हुये फल के नीचे लाया और उस पर चढ़ कर फल नीचे उतार कर खा लिया। इस प्रयोग को कोहलर ने कई बन्दरों पर किया और सभी बन्दरों ने इसी तरह का व्यवहार प्रदर्शित किया। केवल एक मन्दबुद्धि का बन्दर ऐसा था जो फल प्राप्त करने मे उस बक्स की

सहायता नही ले सका। यद्यपि उसने अपने अन्य साथियो को बक्स पर चढ कर फल लेते हुये देखा था, तथापि अल्पबुद्धि का होने के कारण वह उस बक्स और लटकते हुए फल के बीच किसी तरह का सम्बन्ध स्थापित नही कर सका। इसलिय जब उसे पिजडे मे रखा गया तो वह दौड कर उस बक्स पर चढ कर कूदने फादने लगा और बक्स की सहायता न ले कर स्वय कूद कर फल खाने का विफल प्रयास करता रहा। कुछ अन्य बन्दर भी लटकते हुये फल और बक्स के बीच क्या सबध है, इस प्रयोक्ता द्वारा प्रदर्शित करने पर अच्छी तरह समझ गये। फलत वे तुरत एक सघात (Pattern) का निमाण कर सके। किंतु, मूर्ख बन्दर उस सम्बन्ध को नही देख सका, इसलिये इसके सम्बन्ध मे उस सघात का निमाण नही हो सका जिसके परिणामस्वरूप वह उस समस्या को सुलझाने मे असफल रहा। इस कथन के सहारे शिक्षण मे गेस्टाल्टवाद की स्थापना की गयी है। इस बन्दर का उदाहरण देते हुए कोहलर का कहना है कि साधारण परिस्थिति के विभिन्न अगो के बीच जो सम्बन्ध है, उसे देखने और समझने मे असफल होने पर साधारण परिस्थितिया भी जटिल हो जाती है और उसे सुलझाने मे हमलोग सफल नही हो पाते। इसलिय शिक्षण के लिये सम्पूर्ण परिस्थिति का बोध होना आवश्यक है।

सुल्तान नामक बन्दर पर कोहलर द्वारा किये गये प्रयोग की भी चर्चा यहा कर देना अच्छा होगा। कोहलर ने सुल्तान नामक बन्दर को एक पिजडे मे रखकर कुछ फल के टुकडो को पिजड़े के बाहर इस तरह बिखेर दिया कि वह उसे सामान्य रीति से नही पा सके। पिजडे के अन्दर बास की छोटी बडी ऐसी दो छडिया भी रख दी गई थी कि बडी छडी के एक छोर मे छोटी छड़ी का एक सिरा घुसा कर एक काफी लम्बी छडी बनाई जा सकती थी। जब सुल्तान को उस पिजडे मे रक्खा गया तो उसने बारी बारी से दोनो छडियो के सहारे फलो को अन्दर लेने का प्रयास किया, किन्तु वह किसी तरह उन्हे पा नही सका, क्योकि दोनो छडियों मे से कोई भी ऐसी नही थी जो फलो तक पहुच सके। तब सुल्तान ने एक छडी को दूसरी छडी से फलों तक पहुचा कर उन्हे लेने की कोशिश की, किन्तु छडियो के अलग अलग रहने के कारण वह उन्हे अन्दर नही ला सका। फिर भी, फलो को इस प्रकार से स्पर्श करने पर उसे कुछ सतोष हुआ, ऐसा उसकी भावभगी को देखने से लगा। बन्दर की इस सफलता को देख कर प्रयोक्ता ने उसकी आखो के सामने छडी के छेद मे अपनी उगली को डालकर दिखाया, किन्तु इस सकेत से वह लाभान्वित नही हुआ। घण्टो फल पाने का विफल प्रयास करने के बाद उसने फलो के खीचने के काम को छोड कर अपने दाएँ और बाँए हाथों मे छडियों को लेकर उनके साथ खेलना शुरू किया। इसी सिलसिले मे सयोग से छोटी छडी बडी छडी मे घुस गई। बन्दर ने अब फलो को खीचना शुरु किया, लेकिन ढीली होने के कारण छडियाँ शीघ्र अलग हो गई। बन्दर ने पुन उन्हे अच्छी तरह जोड कर सिर्फ फलो को ही अन्दर नही खीचा, बल्कि छोटी बडी जिन चीजो को भी वह खीच सकता था उसने सभी को खीचा। जब दूसरे दिन सुल्तान फिर इस परिस्थिति मे रखा गया तब कुछ ही देर बाद वह दोनो छडियो को एक मे जोड कर सभी फलों को पिजड़े के अन्दर खीच कर खा गया।

परिस्थिति के विभिन्न अगो के पारस्परिक सम्बन्ध को जानने के महत्व को प्रदर्शित करने के लिये कोहलर ने एक तीन वर्षीय बालक पर भी प्रयोग किया। उसने दो रगीन बक्सों में से जो अधिक चमकीला था, उसमें से मिश्री लेकर खाने का ढग सिखलाया। जब वह

चित्र सख्या ६१



अन्तर्दृष्टि शिक्षण के प्रयाग का एक दृश्य

बालक दोनो बक्सा के अन्तरो को अच्छी तरह समझ गया तो उन दोनो बक्सा म जो कम चमकीला था उसे हटाकर पहले चमकीले बक्स से भी अधिक चमकीला बक्स रग कर पुन बच्चे पर प्रयोग किया गया। इस बार भी उसने दोना मे से अधिक चमकीले बक्स का ही चुना।

उपर्युक्त प्रयोगा के आधार पर कोहलर का कहना है कि जीव सम्पूर्ण परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया करता है, उसके किसी एक पहलू के प्रति नही। सुलतान पर किये गये प्रयोग का सकेत करते हुये उसका कहना है कि पहले सुलतान भी दो छडिया और फल के बीच मे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही देख सका, किन्तु ज्यो ही उसे उन छडिया और फल के पारस्परिक सम्बन्ध की सूझ हो गई त्यो ही एक संघात का निर्माण हो गया और वह उस समस्या को सुलझाने मे सफल हो सका। कोहलर ने कई प्रयोगा द्वारा यह प्रदर्शित किया है कि बक्स या छडियाँ फल प्राप्ति का साधन बनीं। लेकिन, उसका कहना है कि बक्स या छडी को परिस्थिति का एक अग होने के लिये यह आवश्यक है कि वह इतनी ही दूरी पर रहे कि जीव उसे देख सके, अन्यथा बहुत दूर रहने पर वह ध्येय प्राप्त करने का साधन नही बन सकती। इस तरह, हमने देखा कि किस तरह इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षण उत्तेजना और प्रतिक्रिया के सम्बन्धो की शृखला मात्र नहीं है, बल्कि परिस्थिति मे सन्निहित विभिन्न सम्बन्धों की सूझ है। जब जीव विभिन्न अगा के पारस्परिक सम्बन्धा को समझ जाता है तब उसमे उस परिस्थिति की अन्तर्दृष्टि का आविर्भाव हो जाता है और अन्तर्दृष्टि का यह आविर्भाव ही शिक्षण है। अत किसी परिस्थिति की सम्पूर्णता (Wholeness) का ज्ञान अन्तर्दृष्टि का परिचायक और उसकी कमी उसके अभाव का द्योतक है। जब तक जीव मे अन्तर्दृष्टि का आविर्भाव नही होता तबतक वह उस परिस्थिति के विभिन्न अगों के पारस्परिक सम्बन्धो को एक सघात के रूप मे न देखकर अलग अलग देखता है और फलत वह सीख नही पाता। सूझ के आते ही शिक्षण की पूर्णता हो जाती है।

इस दिशा मे अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी कई तरह का प्रयोग किया है। यर्कस (Yerkes) ने एक विशेष जाति के बन्दर पर सन् १९१६ ई० मे कोहलर की ही तरह फलपाने के लिये बक्सों के व्यवहार करने का प्रयोग किया। अपने प्रयोग के आधार पर उसका कहना है कि समस्या सुलझाने में प्रयत्न और भूल प्रक्रिया का कुछ भी हाथ नहो रहता, क्योंकि उसके प्रयोज्य ने अपनी समस्या को अन्तर्दृष्टि से सुलझाया। अन्तर्दृष्ट्यात्मक

शिक्षण की विशेषताओ को व्यक्त करते हुये उसका कहना है कि जब जीव को ऐसी परिस्थिति मे रख दिया जाता है, जो उसके लिये समस्या बन जाती है, तब वह उस पूरी परिस्थिति का अवलोकन करता है। उसके बाद उसमे सशय (Doubt) तथा ध्यानावस्थित (Attentive) होने के व्यवहार परिलक्षित होते है। वह उस परिस्थिति मे उपयुक्त प्रतिक्रिया करने का प्रयास करता है और यदि वह प्रतिक्रिया अनुपयुक्त प्रमाणित हुई तो उसे छोडकर दूसरी प्रतिक्रिया या विधि का आश्रय लेता है। किन्तु, उसका ध्यान निरन्तर ध्येय-प्राप्ति की ओर ही लगा रहता है। पुन एक ऐसा अवसर आता है जब वह सहसा निश्चित रूप से प्रत्यक्षतया उस परिस्थिति के अनुरूप अनियोजनात्मक प्रतिक्रिया करता है। बाद मे वह उसी प्रतिक्रिया की पुनरावृत्ति करता है। इस तरह, थार्नडाइक के विपरीत इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षण अचानक (Sudden) होता है। जीव उस परिस्थिति को समझने और ध्यानावस्थित होने की पर्याप्त योग्यता हो जाती है और अन्त मे वह उसके अनावश्यक अगो को बहिष्कृत कर देता है।

ए अलपर्ट (A Alper) नामक महिला ने ४४ बच्चों पर, जिनकी आयु १९ महीने से लेकर ४९ महीने की थी, अन्तर्दृष्टि को देखने का प्रयोग किया। उसने भी बच्चों को कोहलर की तरह परिस्थितियों मे ही रक्खा। उसके अधिकाश बच्चों ने अपनी समस्याओं को सुलझाने मे आकस्मिक अन्तर्दृष्टि (Sudden insight) का परिचय दिया जिसे उसने तात्कालिक अन्तर्दृष्टि के नाम से अभिव्यक्त किया है। किन्तु, कुछ बच्चों मे अन्तर्दृष्टि के पहले प्रयत्न और भूल के व्यवहार देखे गए। फिर भी, उनमे बन्दरों की अपेक्षा समस्या को सुलझाने मे अधिक सूझ पाई गई। हाँ, परिस्थिति की वह सूझ कभी आंशिक (Partial), तो कभी पूर्ण (Complete),) कभी तात्कालिक (Immediate) और कभी क्रमिक थी। रीचार्डसन (Richardson) तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी इस दिशा मे कई प्रयोग किए है। पृष्ठ २८८ पर कोहलर के प्रयोग के एक पहलू का दृश्य चित्रित किया गया है।

लिण्डले (Lindley), रूजर (Ruger), प्रभृति विद्वानों ने भी शिक्षण मे अन्तर्दृष्टि का महत्त्व देखने के लिये प्रयोग किया है और उन लोगों ने प्रयोगो के आधार पर इसके महत्त्व को स्वीकार किया है। किन्तु, रूजर का कहना है कि अन्तर्दृष्टि का आविर्भाव पहले नही, बाद मे होता है, क्योंकि उसके कई प्रयोज्यो को समस्या क्याकर सुलझ सकती है, यह समस्या सुलझने या प्रतिक्रिया करने पर ही मालूम हुआ, पहले नही। इसलिये उसने पूर्व अन्तर्दृष्टि (Fore-insight) न कहकर पश्चात् अन्तर्दृष्टि (After insight) के नाम से व्यक्त किया है। इसी प्रकार, अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने प्रयोगो के आधार पर अन्तर्दृष्ट्यात्मक शिक्षण-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

अन्तर्दृष्टि-सिद्धान्त का मूल्याकन —यदि हम उपर्युक्त सिद्धान्त के गुण दोषों की विवेचना करे तो हमे मालूम होगा कि यह सिद्धान्त कई स्थलों पर अक्षरश लागू होता है। जब परिस्थिति जटिल नही रहती तब कोई जानवर हो या मनुष्य, किसी प्रयत्न और भूल के प्रदर्शन किये बिना ही उस परिस्थिति के अनुरूप प्रतिक्रिया करता है। यह पूर्ण परिस्थिति की समझ का द्योतक माना जा सकता है, और यही अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त का आधार है। यह बात भी सही है कि ज्योंही हम किसी परिस्थिति को अच्छी तरह समझ जाते है त्योंही उसकी समुचित प्रतिक्रिया कर बैठते है। परिस्थिति

सरल होने पर उसके पहले अभ्यास अथवा प्रयत्न और भूल की कुछ भी आवश्यकता नही पड़ती। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन से शिक्षणशास्त्रियों का जो उपकार हुआ है, उसे अस्वीकार नही किया जा सकता। इस सिद्धान्त के ही फलस्वरूप अब विद्यार्थियों का कोई विषय सिखलाने मे यान्त्रिक अभ्यास नियम (Mechanical law of exercise) पर ही जोर नही दिया जाता, बल्कि विषय को अच्छी तरह समझा दिया जाता है और सीखनेवालों मे सीखने की मनोवृत्ति उत्पन्न कर दी जाती है। परिणामतः वे उस विषय को सरलतया सीख जाते हैं। शिक्षण मे प्रत्यक्षीकरण, ..., चिन्तन तथा सूझ के महत्त्व को स्वीकार कर इस सिद्धान्त ने ... सुन्दर समाधान उपस्थित किया है, जो काफी दूर तक ग्राह्य है। यह सिद्धान्त शिक्षण मे ... के महत्त्व को भी स्वीकार करता है। लेकिन, इतना होते हुए भी इस सिद्धान्त को सर्वमान्य और शिक्षण स्वरूप की सम्पूर्ण व्याख्या मे समर्थ नही माना जा सकता। हम पहले ही देख चुके है कि सम्बद्ध प्रत्यावर्तन और प्रयत्न तथा भूल के कारण शिक्षण कैसे होता है। थार्नडाइक और उसके अन्य अनुयायियों का कई प्रयोगों मे अन्तर्दृष्टि का कुछ भी प्रमाण नही मिला। शेरिंगटन (Sherrington) ने ... बन्दर पर जो प्रयोग किया उसमे उस अन्तर्दृष्टि का कोई भी प्रमाण नही मिला। इसी प्रकार, फ्रकेन (Franken) ने सन् १९११ ईसवी मे शिक्षण का जो प्रयोग कुत्ते पर किया उसमे उसे भी परिस्थिति के विभिन्न अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों को देखने मे अन्तर्दृष्टि का कोई प्रमाण नही मिला। उसका कहना है कि किसी समस्या को सुलझाने मे आकस्मिक सफलता अन्तर्दृष्टि के कारण नही, बल्कि संयोगवश मिलती है। इसी प्रकार और भी कितने ऐसे प्रयोग है जो शिक्षण मे अन्तर्दृष्टि को न व्यक्त करते हुए इस सिद्धान्त का खंडन करते है। इस तरह, इस सिद्धान्त की पूर्ण समर्थता तो यही पर संदिग्ध हो जाती है।

इसके अतिरिक्त, टेलर (Taylor) ने कोहलर के कथन की सत्यता को प्रमाणित करने के लिये सम्बन्धात्मक शिक्षण (Relational learning) का जो प्रयोग मुर्गियों पर किया, उससे यह स्पष्ट है कि उसकी मुर्गियों ने उत्तेजना विशेष की प्रतिक्रिया की, सम्पूर्ण परिस्थिति की नही। इसलिये उसका कहना है कि कोहलर की मुर्गियाँ दो उत्तेजनाओं के अन्तरों का समन्वय अच्छी तरह नही सीख सकी थी, अन्यथा वे उत्तेजना-विशेष की ही प्रतिक्रिया करती। इस तरह, अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त के आधारभूत प्रयोगों का भी विवेचन दूसरे रूपों मे करने का प्रयास किया गया है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने 'अन्तर्दृष्टि' पद पर ही आपत्ति की है। वस्तुतः कोहलर, कोफ्का, आदि ने अन्तर्दृष्टि पद का व्यवहार सामान्य अर्थ मे ही किया था। इसलिये इस पद की कोई वैज्ञानिक व्याख्या देना उनके लिये कठिन हो गया। ... दो रूपों मे उनलोगों ने इस पद का व्यवहार किया है। एक वर्णनात्मक (Descriptive) तथा दूसरा व्याख्यात्मक (Explanatory)। जहाँ तक इसके वर्णनात्मक व्यवहार का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में कोई विवाद नही है, क्योंकि इस रूप मे अन्तर्दृष्टि का प्रयोग एक गुण या निष्कर्ष की तरह होता है, जैसे, आप की यह सूझ (अन्तर्दृष्टि) सराहनीय है। लेकिन, जब इस पद का व्यवहार गेस्टाल्टवादियों ने 'प्रयत्न और भूल' अथवा 'सम्बद्धता' (Conditioning) की तरह प्रक्रियारूप मे किया और इसके सहारे शिक्षण की व्याख्या करने का प्रयास किया तब यह मनोवैज्ञानिकों की आलोचना का विषय बन गया। यह कहने मे कि 'व्यक्ति अन्तर्दृष्टि के

सहारे सीखता है' कुछ वैयक्तिक विचारो की अभिव्यक्ति अधिक प्रतीत होती है। कहाँ तक इस कथन मे सत्यता है, यह जेस्टाल्ट और थार्नडाइक सिद्धान्तो की तुलना करते समय मालूम होगा।

अन्तर्दृष्टि-सिद्धान्त, शिक्षण मे गत अनुभूति (Past experience) के समुचित महत्त्व को स्वीकार नही करता। यह भी मनोवैज्ञानिकों की आलोचना का एक मुख्य विषय है। ड्रिण्डले (Drindley) ने प्रयोगों के आधार पर सिद्ध किया है कि यदि किसी नयी परिस्थिति मे जानवर अन्तर्दृष्टि से समस्या का समाधान भी करते है तो उसमें भी वे बिना गत अनुभूति के सफल नही होते। कोहलर के शास्त्रीय प्रयोग मे भी बन्दर यह जानता था कि उसे बक्सो को फाँदना है। अतएव, वस्तुत गत अनुभूति को एक नये रूप मे उपस्थित करना ही अन्तर्दृष्टि या सूझ है। इसी तरह, यह सभी मानते है कि शतरज के खेल मे बुद्धि और सूझ की जरूरत होती है। लेकिन, क्लेवलैण्ड (Cleveland) ने इस खेल के पूर्ण शिक्षण को कई अवस्थाओं में बाँटते हुये यह प्रदर्शित किया है कि शतरज ठीक से सीखने के लिए विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। इस तरह, इससे भी यह सिद्ध होता है कि शिक्षण मे अन्तर्दृष्टि के महत्त्व को स्वीकार कर लेने पर भी गत अनुभव की उपेक्षा नही की जा सकती।

इस सिद्धान्त के प्रतिपादन मे जिन प्रयोगो को आधार माना जाता है, उनके सबन्ध मे यह आलोचना भी कम सबल नही है कि उनमे प्रयोग परिस्थिति पक्षपातपूर्ण (Biased) थी। दूसरे शब्दों मे, वे परिस्थितियाँ बन्दर या वनमानुष के लिए इतनी सरल थी जिनमे अचानक सफलता या सूझ का मिलना आसान था। अतिरिक्त इसके, कोहलर आदि ने परिस्थिति को सामान्य बनाने पर बहुत अधिक ध्यान दिया जिसके फलस्वरूप परिस्थिति पर प्रयोगात्मक नियन्त्रण (Experimental control) की कमी प्रतीत होती है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन मे यह वैज्ञानिकता की कमी का परिचायक है। साथ ही, अभी इस सिद्धान्त की सत्यता को साख्यिक विधि (Statistical method) द्वारा प्रमाणित नही किया गया है। अतएव इन दोषो के होते हुये हम इसे शिक्षण का सर्वमान्य और व्यापक सिद्धान्त कदापि नही मान सकते।

थार्नडाइक और जेस्टाल्ट-सिद्धान्तो की तुलना

थार्नडाइक और जेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको के शिक्षणसम्बन्धी सिद्धान्त एक दूसरे के विरोधी प्रतीत होते है। मनोवैज्ञानिको का ऐसा विचार है कि कोहलर, कोफ्का, आदि ने थार्नडाइक-सिद्धान्त के विरोध मे ही अन्तर्दृष्टि-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, क्योंकि इस सिद्धान्त के द्वारा थार्नडाइक के क्रियात्मक अथवा प्रयत्न और भूल शिक्षण के मूलभूत तथ्यों की कड़ी आलोचना की गयी थी। इसके अनुसार, शिक्षण अभ्यास के फलस्वरूप धीरे धीरे नहीं होता (जैसा कि थार्नडाइक ने बताया), बल्कि यह पूर्णत जीव की सूझ या अन्तर्दृष्टि पर निर्भर करता है। जिस समय सूझ मिल जाती है, शिक्षण पूर्ण हो जाता है। इस तरह, अन्तर्दृष्टि-सिद्धान्त के अनुसार शिक्षण आकस्मिक (Sudden) होता है। दूसरी ओर, प्रयत्न और भूल सिद्धान्त के अनुसार शिक्षण मे बुद्धि और सूझ की कोई आवश्यकता नही होती। व्यक्ति रुचि और अभ्यास के सहारे किसी भी विषय या कौशल को धीरे धीरे सीख

जाता है, अत शिक्षण आकस्मिक नही होता। स्पष्ट है, थार्नडाइक शिक्षण के लिये गत अनुभव को आवश्यक मानता है, लेकिन अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त के अनुसार यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि परिस्थिति का सम्पूर्ण एव समन्वित प्रत्यक्षीकरण ही शिक्षण है। न केवल प्रत्यक्षीकरण, बल्कि चिंतन, ध्यान, आदि ज्ञानात्मक प्रक्रियाओ को भी अन्तर्दृष्टि-सिद्धान्त शिक्षण में सन्निहित मानता है। इन सब कारणो से 'प्रयत्न और भूल' तथा अन्तर्दृष्टि-सिद्धान्त एक दूसरे के विपरीत मालूम होते है। लेकिन, इसके पूर्व कि हम अपने निष्कर्ष पर पहुंच, इन बाह्य विरोधी निष्कर्षों का विवेचनात्मक विश्लेषण आवश्यक होगा।

सर्वप्रथम, विचारणीय यह है कि क्या शिक्षण सचमुच आकस्मिक (Accidental) होता है (जैसा कि जेस्टाल्टवादी मानते है)? इस सम्बन्ध मे दोनो मत-प्रत्यक्ष के पक्ष के समर्थन मे पर्याप्त प्रयोगात्मक प्रमाण है। लेकिन, यहाँ हम उनकी चर्चा न कर बात विशेष से स्वतन्त्र कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण प्रयोगो का उल्लेख करना ठीक समझते है। इन प्रयोगो मे वक्र मार्ग-प्रयोग (Detour experiment) तथा बक्स-सग्रह प्रयोग (Box stacking experiment) प्रमुख है। बक्स सग्रह समस्या सुलझाने का प्रयोग यर्क्स (Yerkes) ने एक भारतीय बनमानुष पर कई बार किया। उसने पाया कि इसी समस्याओ के सुलझाने मे प्रयत्न और भूल का कुछ भी कार्य नही पड़ा। बनमानुष का समस्या समाधान की सूझ थी, लेकिन जब कोहलर ने इसी तरह का प्रयोग कई बन्दरो पर किया तब उसे कुछ दूसरा ही परिणाम मिला। यह समस्या उनके (बन्दरो के) लिये दुरूह थी। उसने बन्दरो के व्यवहारों का विश्लेषण किया और देखा कि इस दुरूहता का कारण यह था कि उसमे बन्दरों को दो तरह की समस्याएँ सुलझानी होती थी जिनमे एक ज्यामिति तथा दूसरी स्थिरविज्ञान (Statics) से सबन्धित थी। ज्यामितिक समस्याये भी दो तरह की थी—एक सख्या सम्बन्धी और दूसरी आकार (Form) सबन्धी। सख्या सम्बन्धी समस्या का सुलझान के लिए बन्दर को यह जानना होता था कि फल पाने के लिए एक बक्स से काम नही चलेगा, बल्कि कई बक्सों की जरूरत होगी। आकार सम्बन्धी समस्या तब सुलझी जब बन्दरो को यह बात सूझा कि इन विभिन्न बक्सों को अगल-बगल मे न रख कर एक पर एक रखने की जरूरत है। ज्यामिति से सबन्धित उन दोनो प्रकार की समस्याओ का सुलझाने मे स्पष्टत बुद्धि की आवश्यकता थी। उन दोनों का हल भी अचानक ही हुआ। लेकिन, दूसरी तरह की (यानी, स्थिरविज्ञान से सबन्धित) समस्या को हल करना बन्दरो के लिए अधिक कठिन था, क्योकि उसके अन्तर्गत उन्हे बक्सो को इस प्रकार व्यवस्थित करना था कि बक्स गिर न पड़े। बन्दर उस कार्य मे कुशल नही थे। उसमे उन्होंने प्रयत्न और भूल का सहारा लिया। इस विश्लेषण से अन्तर्दृष्टि तथा 'प्रयत्न और भूल' सिद्धान्तो का प्रत्यक्ष विरोध काफी अशो मे समाप्त होते नजर पड़ता है, क्योंकि यहाँ कोहलर भी पूर्ण शिक्षण की व्याख्या मात्र अन्तर्दृष्टि के आधार पर करने में असमर्थ है। उसे एक ही शिक्षण मे प्रयत्न और भूल तथा अन्तर्दृष्टि दोनो ही प्रक्रियाएँ कार्य करती मिली। अत हम इन दोनो को एक दूसरे का विरोधी नही कह सकते।

रिचार्डसन, अलपर्ट तथा डकर, आदि के प्रयोग-परिणाम भी इन दो सिद्धान्तों के पारस्परिक विरोध को अस्वीकार करते है। डकर (Dunker) के अनुसार, किसी भी शिक्षण समस्या के साथ कुछ सकेत दिये रहते है और बाकी उसे खोजना होता है। शिक्षण-प्रक्रिया यही खोजने मे शुरू होती है कि क्या दिया हुआ है और पूर्ण हल के लिए और क्या क्या चाहिए। जब इस 'चाहिए' का पूरा ज्ञान जीव को हो जाता है, तब शिक्षण पूर्ण हो जाता है।

डकर का कहना है कि 'क्या चाहिए' का विश्लेषण प्रयत्न और भूल के द्वारा होता है, लेकिन शुद्ध समाधान की प्राप्ति अन्तर्दृष्टि का द्योतक है। इसीलिए उसके अनुसार, अन्तर्दृष्टि क्रमिक (Gradual) और आंशिक (Graduated) होती है। यह क्रमिक इसलिए है, चूँकि शुद्ध समाधान तक पहुँचने के पहले वाले उपक्रम भी सार्थक और कुछ सूझपूर्ण होते हैं। प्रयत्नो मे भूल होती है, लेकिन इससे हम उन प्रयत्नो को अनायास नही कह सकते, क्योंकि वे आंशिक सूझ के उदाहरण होते हैं। अन्तर्दृष्टि आंशिक (Graduated) होने का अर्थ यह है कि किसी परिस्थिति मे व्यक्ति गहरी सूझ दिखा पाता है और किसी परिस्थिति मे हल्की। यदि सूझ आंशिक (Graduated) न होती तो फिर वह गहरी या छिछली कैसे होती?

उडवर्थ भी इसी प्रकार, थार्नडाइक और जेस्टाल्ट सिद्धान्तों को एक दूसरे का सहयोगी मानता है, विरोधी नही। यह सही है कि थार्नडाइक ने शिक्षण के लिए चिंतन, विचार, आदि की जो उपेक्षा की, उसकी जेस्टाल्टवादियो ने काफी आलोचना की और फलत उन्होने अपने शिक्षण सिद्धान्त मे इस ज्ञानात्मक पहलू (Cognitive aspect) पर काफी जोर दिया। लेकिन, ऐसा मानने के बाद अन्तर्दृष्टि को आकस्मिक मानकर उन लोगों ने भी अपने सिद्धान्त को पक्षपातपूर्ण बना दिया। परिस्थिति का ज्ञान मात्र देखने से ही हठात् नही होता, बल्कि इसके लिए कुछ क्रियाएँ करनी होती हैं। हाँ, प्रत्यक्षीकरण, चिंतन, आदि के कारण ये क्रियाएँ सीमित रहती हैं। इस तरह, शिक्षण मे ज्ञानात्मक पहलू सन्निहित रहता है, लेकिन इससे प्रयत्न और भूल की उपेक्षा नही की जा सकती। उडवर्थ का कहना है कि शिक्षण परिस्थिति मे आने पर सर्वप्रथम जीव ध्येय और परिस्थिति को समझने का प्रयास करता है। उसका ज्ञान होने से शिक्षण के निमित्त की जाने वाली क्रियाये एक निश्चित सीमा मे होने लगती है। इस तरह,प्रत्यक्षीकरण का कार्य व्यवहार-सीमा को निर्धारित करने मे होता है। लेकिन, उस सीमा के अन्तर्गत जीव तरह तरह की प्रतिक्रियाएँ करता है (प्रयत्न और भूल) जिसके फलस्वरूप वह ध्येय को प्राप्त करने मे अन्ततोगत्वा सफल होता है। इस तरह, मूल बात यही है कि यदि अन्तर्दृष्टि की विभिन्न मात्राओ को स्वीकार कर लिया जाय तो अन्तर्दृष्टि-सिद्धान्त तथा प्रयत्न भूल-सिद्धान्त का विरोध समाप्त हो जाय।

'अन्तर्दृष्टि' तथा 'प्रयत्न और भूल' इन दो पदों की सकुचित व्याख्या ही वस्तुत विवाद की जड़ है। ऐसा लगता है मानो प्रतिपादकों ने इनकी वैज्ञानिक व्याख्या पर समुचित ध्यान नही दिया है। हम पीछे विचार करते समय देख चुके हैं कि मनोवैज्ञानिकों की मुख्य आपत्ति 'अन्तर्दृष्टि' के व्याख्यात्मक अर्थ के साथ है। वे इसे एक प्रक्रिया नही मानते। बुल्ब्रुक (Bulbrook) तथा क्लैपरेड (Claparede), आदि ने अपने प्रयोग परिणाम के आधार पर अन्तर्दृष्टि को एक प्रक्रिया न मान कर प्रक्रिया का अन्तिम-परिणाम (End result) माना है। ऐसा विचार व्यक्त करने का मूल आधार अन्तर्दृष्टि को आकस्मिक मानना है। इसीसे बिरेन्स डे हान (Birens de Haan) के अनुसार आकस्मिक या अचानक सफलता अन्तर्दृष्टि की एक कमजोर कसौटी है। जो सफलता अचानक मिलती है, वह पीछे हुई असफलताओ की अनुपस्थिति है। दूसरी ओर, थार्नडाइक के अपने प्रयोगों मे भी हम जीव की किसी प्रतिक्रिया को निरर्थक नही पाते। बिल्ली पूरे बक्स में पजे न मार कर दरवाज के ही पास क्यो विभिन्न हरकतें करती थी? निश्चय ही, इसलिए कि उसे ध्येय और परिस्थिति का कुछ ज्ञान था। इस तरह, हम देखते हैं कि यदि अन्तर्दृष्टि

का अर्थ शिक्षण परिस्थिति का मात्र निरीक्षण है तथा प्रयत्न और भूल का अर्थ केवल अनायास प्रयासो से (बिना सपूर्ण परिस्थिति का निरीक्षण किए) है तो सम्भवत किसी भी शिक्षण मे न तो अन्तर्दृष्टि का हाथ रहता है और न प्रयत्न तथा भूल का। उपर्युक्त विवेचनाओ के आधार पर यह कहना उपयुक्त होगा कि अन्तर्दृष्टि के लिए किसी अंश मे प्रयत्न और भूल की आवश्यकता होती है। साथ ही, प्रयत्न तथा भूल या तो [illegible] नही है यदि वह सूझपूर्ण न हो। अत थार्नडाइक सिद्धान्त तथा [illegible] सिद्धान्त वस्तुत विरोधी न होकर एक दूसरे के पूरक (Complimentary) है।

हम शिक्षण के तीनो सिद्धान्तो का विवेचनात्मक उल्लेख करते हुए यह अच्छी तरह देख चुके है कि कोई भी सिद्धान्त सर्वांगपूर्ण नही है और सभी मे कुछ दोष है। लेकिन, अब प्रश्न यह है कि क्या सचमुच ये उपर्युक्त सिद्धान्त पूर्णत एक दूसरे से स्वतन्त्र है या उनमे किसी तरह का सम्बन्ध भी है? इस प्रश्न पर विचार करने से मालूम होता है कि वस्तुत ये एक ही आधार के तीन पहलू के समान है और एक दूसरे के पूरक है। जिस शिक्षण की व्याख्या एक सिद्धान्त से नही होती, उसकी व्याख्या दूसरे सिद्धान्त के द्वारा सरलतया हो जाती है। एक के अभाव को दूसरा सिद्धान्त पूरा कर देता है। हम अन्धेरे से डरना क्यो कर सीखते है, इसकी व्याख्या प्रयत्न तथा भूल या अन्तर्दृष्टि के द्वारा नही कर सकते, इसकी सफल और सन्तोषप्रद व्याख्या सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन सिद्धान्त से हो जाती है। इसी प्रकार किसी कौशल को प्राप्त करने के लिये हमे अभ्यास नियम का आश्रय लेना पडता है, जिस पर कि थार्नडाइक का क्रियात्मक शिक्षण-सिद्धान्त अत्यधिक जोर देता है। कोई समस्या बिना किसी पूर्व अभ्यास या प्रयास के सहसा कैसे सुलझ जाती है, इसे तो अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त ही बता सकता है, अन्य शिक्षण सिद्धान्त नही। इस तरह, हम देखते है कि तीनो सिद्धान्त समान महत्त्व के है और हम किसी की भी उपेक्षा नही कर सकते।

इतना ही नही, सारे प्रकार के इन सिद्धान्तो की विवेचना करने पर इन्हे अन्योन्याश्रयी (Interdependent) भी पाते है। हम थार्नडाइक के शिक्षण सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए यह देख चुके है कि किसी समस्या का सुलझाना हम कई प्रयासो के बाद सीखते है। चूहे और बिल्ली को बार-बार भूल करके या भ्रान्ति वाक्स मे रखने पर ताले से उचित पथ से जाकर भोजन लेना सीखते है, किन्तु क्या सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के सिद्धान्त मे इन प्रयासो का सर्वथा अभाव है? नही, सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन मे भी, जैसा कि विभिन्न प्रयोगो का उल्लेख करते हुये हम देख चुके है, कई प्रयासो के बाद तो कुत्ता या अन्य जानवर लार गिराने या अन्य प्रकार की उचित प्रतिक्रिया को सीखता है। इसके अतिरिक्त, हम यह भी देख चुके है कि प्रयत्न और भूल मे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन की अनेक विशेषताएँ भी विद्यमान है। जब हम अन्तर्दृष्यात्मक शिक्षण के विभिन्न प्रयोगो का अध्ययन करते है तो हमे यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्तर्दृष्टि का आविर्भाव सहसा और स्वत नही होता, बल्कि कई अनुपयुक्त प्रयासों और प्रतिक्रियाओ के बाद होता है। इस तरह, उसमे भी प्रयत्न तथा भूल का सर्वथा अभाव नही है। जिस प्रकार प्रयत्न और भूल सभी शिक्षणों मे विद्यमान रहते है, उसी प्रकार सम्बद्धता और अन्तर्दृष्टि का अभाव भी अन्य शिक्षणो मे नहीं रहता है, जिसकी विशद व्याख्या यहाँ आवश्यक नही है। अत हम कह सकते है कि उपर्युक्त तीनो सिद्धान्त एक दूसरे से भिन्न और स्वतन्त्र नही, अपितु एक दूसरे के पूरक और अन्योन्याश्रयी है।

' आधुनिक मनोविज्ञान जगत मे शिक्षण की व्याख्या के लिये पैवलाव, थार्नडाइक और ोहलर के ही सिद्धान्त नही है, बल्कि आजकल कुछ अन्य विद्वानों ने अपने अपने नये सिद्धान्तों ा भी प्रतिपादन किया है। उनमे गथरी (Guthrie), स्कीनर (Skinner), व्हीलर Wheeler), लेविन (Lewin), टालमैन (Tolman) तथा हुल (Hull), आदि ्रद्वानों के नाम उल्लेखनीय है। यहाँ हम सभी पर विचार न कर केवल टालमैन तथा हल के ो शिक्षण-सिद्धान्तों की विवेचना सक्षेप मे करगे।

चिन्ह-जेस्टाल्ट-सिद्धान्त (Sign Gestalt theory)

टालमैन (Tolman) ने शिक्षण की व्याख्या के लिये चिन्ह-जेस्टाल्ट सिद्धान्त का ्रतिपादन किया है। लेकिन, इसके पहले कि हम उसके चिन्ह जेस्टाल्ट सिद्धान्त की ेवेचनात्मक व्याख्या करे, यह व्यक्त कर देना आवश्यक समझते है कि उसने विभिन्न ादों (Schools) के समन्वय से मनोविज्ञान के क्षेत्र मे एक नवीन सम्प्रदाय चलाने का प्रयास किया है। किन्तु, इसका अर्थ यह नही कि टालमैन सिद्धान्त कुछ सिद्धान्तो का मेश्रण मात्र ही है। इसकी अपनी मौलिकता है जिसकी अपनी विशेषताएँ है।

(१) टालमैन की विचार धारा पूर्णत व्यवहारवादी है। अभिप्राय यह कि वह भी वाटसन की तरह अन्तर्निरीक्षण का तिरस्कार करते हुये शिक्षण के लिये व्यवहार के अध्ययन पर ही जोर देता है। (२) लेकिन, इसकी दूसरी विशेषता इसे वाटसन से भिन्न करती है और वह यह कि इसकी विचार धारा आणविक (Molecular) न हो कर सामग्रिक (Molar) है। दूसरे शब्दो मे, टालमैन व्यवहार की आंशिकता पर जोर नही देता, वरन् समग्रता पर जोर देता है, यद्यपि उसके अनुसार, समग्र व्यवहारों का निर्माण आंशिक व्यवहारों से ही होता है। (३) सामग्रिक व्यवहार (Molar behaviour) के सम्बन्ध मे उसका कहना है कि व्यवहार ध्येय निर्देशित (Goal directed) होता है, यानी, प्रत्येक व्यवहार का कोई ध्येय या प्रयोजन रहता है। हाँ, व्यवहार के रूप या स्वरूप का निर्धारण वातावरण मे प्राप्त साधन, बाधा (Obstacles), आदि द्वारा होता है जो ज्ञानात्मक (Cognitive) होता है, विचारविहीन नहीं। (४) इसकी चौथी विशेषता यह है कि प्राणी व्यवहार करने मे कम से कम शक्ति का उपयोग करना चाहता है। इस कारण उसका सामग्रिक व्यवहार स्थिर और निश्चित न हो कर परिवर्त्तनशील होता है।

व्यवहारो की व्याख्या के लिय टालमैन ने मध्यवर्त्ती चल राशियो (Intervening variables) का आश्रय लिया है। उसके अनुसार ये चल राशियाँ दो तरह की होती है— एक वातावरण सम्बन्धी और दूसरी वैयक्तिक। व्यक्ति का व्यवहार इन मध्यवर्त्ती चल राशियों के फलस्वरूप होता है। मध्यवर्त्ती चल राशियों का अभिप्राय उन घटनाओं (Events), अवस्थाओं (conditions) या परिस्थितियों से है जो प्राणी मे उत्तेजना और प्रतिक्रिया के बीच होते है। जैसा कि कहा गया टालमैन के अनुसार इन चल राशियों का अनुमान उत्तेजना और प्रतिक्रिया के सम्बन्ध के आधार पर किया जाता है। प्रतिक्रिया, उत्तेजना पर निर्भर करती है, इसलिये टालमैन उत्तेजना को स्वतंत्र चल राशि (Independent variable) और प्रतिक्रिया को निर्भर चल राशि (Dependent variable) के नाम से

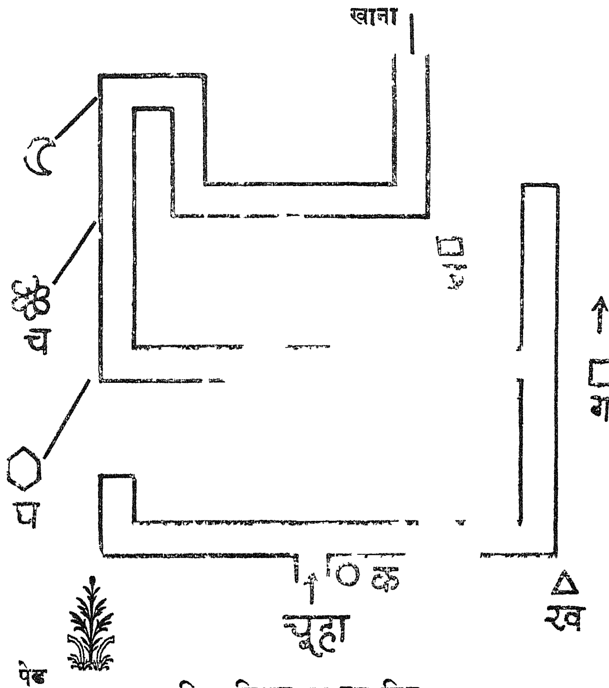
व्यक्त करता है। यह उत्तेजना प्रतिक्रिया सम्बन्ध देखने में तो आत्मगत (Subjective) प्रतीत होता है, किन्तु इसकी क्रियात्मक परिभाषा दे कर मापा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि टालमैन, जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा, इन को तब न केवल शारीरिक और भौतिक (Physical) न मानकर मनोवैज्ञानिक भी मानता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत वह ज्ञानात्मक और प्रयोजनात्मक (Cognitive and purposive) प्रक्रियाओं को भी स्थान देता है। 'माँग' (Demand) और 'प्रत्याशा' (Expectation) टालमैन की दो मुख्य मध्यवर्त्ती चलराशियाँ है। इसीलिये लोग टालमैन को जस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों की तरह केन्द्रवादी (Centralist) मानते हैं, व्यवहारवादियों की तरह परिधिवादी (Peripheralist) नहीं। वाटसन का सम्बन्ध शरीरविज्ञान से अधिक है, किन्तु टालमैन व्यवहारो की समग्रता पर जोर देकर मनोविज्ञान से निकट आ जाता है। इसकी विचार-धारा की एक विशेषता यह है कि वह व्यवहारों को ध्येयात्मक (Purposive) मानता है। उसके अनुसार व्यवहारों का उद्देश्य वातावरण में किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति होता है।

टालमैन-सिद्धान्त के आधार टालमैन ने गथरी (Guthrie) की तरह स्पष्ट रूप से अपने सिद्धान्त के मूलभूत तथ्यों की चर्चा नहीं की है। अतः यह कहना कठिन है कि टालमैन ने शिक्षण की व्याख्या के लिये किन किन नियमों (Principles) का प्रतिपादन किया है। फिर भी, औसगुड (Osgood) ने टालमैन द्वारा अभिव्यक्त शिक्षण के नियमों को चार भागों में बाँटा है—(१) प्रेरणा नियम (Motivational principles), (२) साहचर्य नियम (Associative principles), (३) शक्ति नियम (Strengthening principles), तथा (४) कार्य-नियम (Action principles)।

(१) साहचर्य नियम (Associative principles)—व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जीव किसी उत्तेजना की प्रतिक्रिया करना सीखता है। दूसरे शब्दों में, शिक्षण विभिन्न उत्तेजना-प्रतिक्रिया सम्बन्धों की एक लम्बी कड़ी है। लेकिन, टालमैन ने इनसे भिन्न अपना विचार प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार प्राणी किसी ध्येयविशेष (Particular goal) को प्राप्त करने के लिए प्रतिक्रिया शृंखला (Chain of responses) को नहीं सीखता, बल्कि चिन्ह (Sign) सीखता है। जब चूहे को ऐसे भूलभुलैया में रख दिया जाता है जिसके बीच में भोजन रहता है तब वह उस भोजन तक पहुँचने के लिये या तो पथ के विभिन्न चिन्हों (Signs) को सीखता है, या कब किधर मुड़े, इसे सीखता है। इस तरह, शिक्षण परिस्थिति के ज्ञानात्मक चित्र (Cognitive map) पर निर्भर करता है। यह चित्र ही जीव को उचित प्रतिक्रिया सिखा पाता है। पृष्ठ २९५ के चित्र से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

पृष्ठ २९५ के चित्र में चूहे को खाना तक पहुँचने के लिए कई मोड़ों पर मुड़ना पड़ता है। चूहा बिना भूल किये हुये ठीक रास्ता दो तरह से सीख सकता है—या तो वह यह सीख ले कि 'क' स्थान पर पहुँच कर दाहिने 'ख' स्थान तक पहुँचे फिर बाएँ, 'ग' तक जाय जहाँ से फिर बाएँ मुड़कर घ तक पहुँचे। वहाँ पहुचकर फिर दाएँ मुड़कर च तक जाय और फिर

चित्र-संख्या ६२



चिन्ह-शिक्षण का एक चित्र

ग्हाँ से दाएँ मुड़कर छ तक पहुँचे, इसके बाद बाएँ मुड़कर खाना तक जाय। इस तरह से सीखने ार चूहा एक सहज-क्रिया-श्रृंखला (Chain of reflexes) सीखता है कि पहले दाहिने, फिर ाएँ, फिर बाएँ, फिर दाहिने और अत मे बाएँ मुड कर खाना तक पहुँचा जा सकता है। ूहा इसी रास्ता को दूसरी तरह भी सीख सकता है। 'क' स्थान पर पहुँच कर वह दाहिनी ोर त्रिभुज (Triangle) और बाई ओर 'पेड' देखता है। जब 'पेड' की ओर रास्ता बन्द ो जाता है तो वह 'त्रिभुज' की ओर जाता है और फिर वहाँ से 'वर्ग' (Square) की ोर। 'तीर' (Arrow) की ओर रास्ता बन्द है, अर्थात्, वह षट्भुज (Hexagon) की ोर आता है। जहाँ से फिर 'तारे' की ओर आता है। 'चन्द्रमा' की ओर भी रास्ता बन्द ै, इसलिये 'समानान्तर चतुर्भुज' (Parallelogram) की ओर बढता है और उसे खाना मलता है। अन्त मे वह सीख जाता है कि 'वृत्त' (Circle) से त्रिभुज की ओर, 'त्रिभुज' े 'वर्ग' की ओर और 'वर्ग' से 'षट्भुज' की ओर, वहाँ से तारा की ओर और फिर 'समानान्तर ातुर्भुज' की ओर चलकर खाना तक पहुँचा जा सकता है। टालमैन चिन्ह शिक्षण (Sign earning) का ही पृष्ठ-पोषण करता है। इसको प्रमाणित करने के लिये उसने स्थान शिक्षण Place learning) तथा पुरस्कार प्रत्याशा (Reward expectancy), आदि कई ्रयोगों का उल्लेख किया है।

स्थान शिक्षण (Place learning) पर टालमैन तथा उसके साथियों ने कई प्रयोग कया है। सभी प्रयोग यही प्रमाणित करते है कि प्राणी किसी ध्येय तक पहुँचने के लिये

पथ के विभिन्न चिन्हो को पहचान लेता है। एक प्रयोग मे चूहे को (नीचे के चित्र में) खाना तक पहुचने के लिये एक स्थान क से चलकर दाहिने मुड़ने को सिखलाया गया।

चित्र संख्या ६२ (क)

खाना

← चूहा
क

ख

एक भूलभुलैया चित्र

इसी प्रयोग मे जब चूहे को ख स्थान पर रख दिया गया तब वह खाना पाने के लिये अपनी बाई ओर मुडने लगा। इस प्रयोग से टालमेन के अनुसार यह स्पष्ट है कि खाना पाने के लिये चूहे ने प्रतिक्रिया नही सीखी थी, बल्कि खाना तक जाने वाले रास्ते के चिन्ह को सीखा था।

एक दूसरे प्रयोग मे खाना तक पहुचने के लिये तीन रास्ते बनाए गये थे। रास्तों की दूरी बराबर नही थी। इस प्रयोग मे देखा गया कि चूहो ने सबसे छोटे रास्ते से खाना तक पहुचना सीखा। जब उस रास्ते को बन्द कर दिया गया तो उसने दूसरे और तीसरे से छोटे रास्ते से ही चूहा ने खाना तक जाना सीखा। इससे यह मालूम होता है कि चूहे भी निम्नतम परिश्रम (Least effort) के सिद्धान्त को मानते है। उन्हें ध्येय (Goal) मालूम रहता है, लेकिन वे उस तक पहुचने के लिये सबसे छोटे रास्ते से ही जाना पसन्द करते है।

इस सबन्ध मे पुरस्कार प्रत्याशा प्रयोग (Reward expectancy experiment) भी उल्लेखनीय है। टिन्क्लेपफ (Tinklepaugh) ने अपने एक प्रसिद्ध पुराने प्रयोग में बन्दरों (प्रयोज्यों) को यह सिखलाया कि दो बर्तनों मे से एक मे केला रखा है तथा दूसरे मे कुछ नही। जब बन्दरों ने केला वाले बर्तन का ठीक से पता लगा लिया (बराबर उसे ठीक चुन लिया) तब उस बर्तन के केला को हटा कर उसकी जगह चाकन्दर (Lettuce) के कुछ पत्ते रख दिये गये (जो बन्दर कम पसन्द करते है)। लेकिन, बन्दर ने उस बर्तन खोलने पर केला की जगह पत्ते देखा तो उसने पत्ते लेना अस्वीकार कर दिया। टालमेन का कहना है कि इससे यह सिद्ध होता है कि जीव कोई खास चिन्ह (Sign) सीखता है, प्रतिक्रिया नहीं।

(२) प्रेरणा नियम (Motivational Principles) टाल्मैन के पहले प्रचलित विचार यह था कि प्राणी उन्हीं व्यवहारों की पुनरावृत्ति करता है जिससे उसकी प्रेरणात्मक अवस्थाओं (Motivating conditions) की सन्तुष्टि होती है। व्यवहारों का आविर्भाव भी किसी प्रेरणा की उपस्थिति मे होता है। हम थार्नडाइक के विचारों से परिचित हैं कि वे ही व्यवहार दुहराए जाते है जिनका परिणाम सन्तोषजनक होता है। हल (Hull) का भी विचार है कि प्राणी किसी आवश्यकता के उपस्थित होने पर क्रिया के लिये

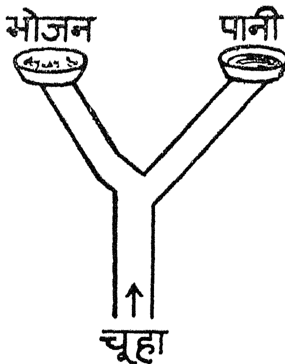
प्रेरित होता है। उसके अन्दर एक प्रकार का तनाव उत्पन्न हो जाता है। उसके कुछ व्यवहार ऐसे होते है जिससे उसके तनाव (Tension) मे कुछ कमी आती है। फिर उसी प्रकार के तनाव के उत्पन्न होने पर वह उन्ही व्यवहारों को दोहराता है। परिणामत उसका तनाव घट जाता है और वह उन व्यवहारो को सीख लेता है।

इस तरह, इन मनोवैज्ञानिको ने शिक्षण के लिये प्रेरणात्मक अवस्था या प्रोत्साहन (Reinforcement) का होना आवश्यक माना है। लेकिन, इनसे भिन्न टालमैन का कथन है कि शिक्षण और कर्त्तृत्व (Performance) मे अन्तर है और प्रोत्साहन कर्त्तृत्व के लिये आवश्यक है, शिक्षण के लिये नही। इस सम्बन्ध मे टालमैन का अव्यक्त-शिक्षण (Latent-learning) सबन्धी प्रयोग उल्लेखनीय है। यह प्रयोग और अव्यक्त शिक्षण की धारणा टालमैन-सिद्धान्त का मुख्य आधार है।

टालमैन और हानजिक (Honzek) ने चूहों के तीन समूहों पर प्रयोग किया। चूहों को भूलभुलैया सीखना था। पहले समूह के चूहे जब भी भूलभुलैया से बाहर निकल आते तो उन्हे खाना दिया जाता था। दूसरे समूह के चूहों को बाहर निकलने पर भी कभी खाना नही दिया जाता था। तीसरे समूह के चूहों को पहले कुछ प्रयासों तक खाना नहीं दिया गया, किन्तु बाद मे उन्हे खाना दिया जाने लगा। इस प्रयोग में यह देखा गया कि पहले समूह के चूहों ने बहुत कम समय में भूलभुलैया से बाहर निकलना सीख लिया। दूसरे समूह के चूहे, जिन्हे कभी भी पुरस्कार नही दिया गया था, बहुत प्रयासों के बाद भी बहुत देर मे भूलभुलैया से बाहर निकलते थे। तीसरे समूह के चूहे जिस समय पुरस्कार दिया गया उसी समय से बहुत जल्दी बाहर निकलने लगे। इस प्रयोग से यह स्पष्ट है कि पुरस्कार (भोजन) न मिलने पर भी चूहों ने भूलभुलैया से बाहर आने वाले उचित पथ को सीख लिया था जिसे वे प्रदर्शित नही कर रहे थे।

इस तरह, यह प्रयोग परिणाम इस रहस्य का भी उद्घाटन करता है कि शिक्षण के लिये प्रेरणा आवश्यक नही है, क्योंकि प्रेरणा (भोजन) के अभाव में भी टालमैन के चूहो ने रास्ते को सीखा था, तभी तो खाना मिलते ही उन्होंने अचानक पूर्व शिक्षण की अभिव्यक्ति की। यदि शिक्षण के लिये प्रेरणा आवश्यक होती तो ऐसा देखने मे कदापि नही आता। प्रेरणा का महत्त्व शिक्षण के लिये नही, बल्कि शिक्षण को कार्यरूप मे अभिव्यक्त करने के लिये है।

चित्र-सख्या ६२ (ख)



लेकिन, विद्वानों ने टालमैन के अव्यक्त शिक्षण की हाल मे आलोचना की है। इस सबध में रेनोल्ड (Reynold), स्पेन्स वगैरह के प्रयोग परिणाम महत्त्वपूर्ण है। स्पेन्स, (Spence) और लिपिट (Lipitt) ने भी चूहों पर Y शक्ल के भूलभुलैया के साथ जो प्रयोग किया उससे अव्यक्त शिक्षण की सत्यता संदिग्ध हो जाती है। इस प्रयोग को बगल के चित्र से समझा जा सकता है।

चित्र से स्पष्ट है कि चूहे को भोजन या पानी की ओर जाने की बराबर सुविधा थी। बराबर प्रयासों के द्वारा चूहों को यह सिखलाया गया कि बायें तरफ भोजन है और दाहिने तरफ पानी। जब चूहोंने यह सीख लिया तब उन्हें पहले प्यासा रख कर भूलभुलैया में छोड़ा गया। सभी चूहे पानी की ओर दौड़े। दूसरी बार उन्हें भूखा रखा गया, लेकिन इस बार भी वे (भोजन की ओर न जाकर) पानी की ओर (दाहिनी ओर) ही दौड़ पड़े। इस तरह, इस प्रयोग से स्पष्ट है कि जीव चिन्ह नहीं सीखता अथवा यह नहीं कहा जा सकता कि जीव 'माँग' (Demand) और 'प्रत्याशा' (Expectancy) के सहारे सीखता है, जैसा कि टालमैन का विचार है। लेकिन, अव्यक्त शिक्षण के समर्थकों का कहना है कि भूखे रहने पर भी चूहे इस प्रयोग में पानी की ओर इसलिये दौड़ गये, चूँकि इसके पूर्व वे प्यासे थे। इसीलिये उनमें भोजन वाले खाने की तरफ जाने का आवश्यक ज्ञानात्मक रचना (Cognitive structure) का निर्माण नहीं हो सका था।

इस तरह, टालमैन का अव्यक्त शिक्षण सत्यासत्य के विवेचन में पड़ा है और इस अवस्था में निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है। निष्कर्ष क्या होगा, इसके सम्बन्ध में इस समय कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, इससे यह नहीं समझना चाहिये कि टालमैन शिक्षण के लिये प्रोत्साहन (Reinforcement) के महत्त्व का स्वीकार नहीं करता। हाँ, वह इसे शिक्षण के लिये आवश्यक नहीं मानता, क्योंकि उसका कहना है कि शिक्षण और कर्त्तृत्व को एक नहीं समझा जा सकता।

(३) शक्ति-नियम (Strengthening principle)—थार्नडाइक अथवा पैवलाव के सिद्धान्तों की विवेचना करते समय यह बताया जा चुका है कि किसी प्रतिक्रिया का शिक्षण उतना ही शक्तिशाली होते जाता है जितनी बार उसकी उत्तेजना प्रोत्साहन (Reinforcement) के साथ उपस्थित की जाती है (अवश्य ही एक निश्चित सीमा तक)। लेकिन, टालमैन यह नहीं मानता कि शिक्षण उत्तेजना प्रतिक्रिया सम्बन्ध पर निर्भर करता है। उसके अनुसार, जीव द्वारा चिन्ह की सार्थकता (Sign-significance) समझना ही शिक्षण है अतएव, सार्थक चिन्ह प्रत्याशा (Sign significate expectations) का शक्तिशाली होना ही शिक्षण को प्रौढ बनाना है। इसके सम्बन्ध में उसका कहना है कि जीव जब अपनी प्रत्याशा की पुष्टि (Confirmation) परिस्थिति में पाता है तब चिन्ह की सार्थकता बलिष्ठ होती है, लेकिन खण्डन तथा अपुष्टि (Non-confirmation) से कमजोर होती है। इस पुष्टि और अपुष्टि की व्याख्या करते हुए टालमैन यह भी व्यक्त करता है कि क्षेत्र प्रत्याशा (Field expectancy) की शक्ति कई चर राशियों (Variables) पर निर्भर करती है, यथा, तात्कालिकता, प्रेरणा, जोर, पुनरावृत्ति, आदि। इस तरह, टालमैन अभ्यास के महत्त्व को भी मानता है, यद्यपि अभ्यास, प्रतिक्रिया के प्रारम्भिक चुनाव में सहायक होता है, ऐसा नहीं मानता।

इस नियम के सम्बन्ध में औसगुड की दो मुख्य आपत्तियाँ हैं। पहली यह कि प्रत्याशाओं के 'बीच' ज्ञानात्मक सम्बन्ध (Cognitive relationship) (जो टालमैन के शिक्षण सिद्धान्त का आधार है) कैसे स्थापित हो सकता है? दूसरा यह कि व्यक्ति प्रत्याशायें तो बाद में करता है, फिर वह अपनी पूर्व प्राप्ति से ही कमजोर या बलिष्ठ कैसे हो सकती है? टालमैन इन प्रश्नों का समुचित उत्तर नहीं दे पाया है।

• (४) कार्य-नियम (Action principle) —टालमैन के अनुसार किसी कार्य को सीखने के लिये जीव मे उचित आवश्यकता या आन्तरिक 'माँग' (Demand) का होना जरूरी है। लेकिन, मात्र 'माँग' से ही निश्चित 'उपयुक्त प्रतिक्रिया' नही होती, बल्कि उस माँग के साथ जीव का कुछ अनुभव भी सही प्रतिक्रिया खोजने मे सहायक होता है। इस अनुभव के आधार पर जीव सही प्रतिक्रिया के सम्बन्ध मे कुछ प्रत्याशा (Expectation) करता है। इस तरह, किसी कार्य को सीखने मे जीव 'माँग और 'प्रत्याशा' की सहायता लेता है। लेकिन, टालमैन ने 'उपयुक्त प्रतिक्रिया' (Appropriate behaviour) की समुचित व्याख्या नही की है।

चिन्ह जेस्टाल्ट सिद्धान्त का मूल्याकन पाठको को अबतक ज्ञात हो चुका होगा कि टालमैन बडा ही तार्किक मनोवैज्ञानिक है। उसने देखा कि अभी तक प्रतिपादित प्रत्येक शिक्षण सिद्धान्त मे एक कमजोरी है और वह यह कि सिद्धान्त प्रतिपादक विशेष ने विभिन्न समस्याओ की उपेक्षा कर एक समस्या विशेष के अध्ययन के ही आधार पर अपना सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। इस दोष से बचने के लिये उसने विभिन्न स्तरो (Levels) के शिक्षण को स्वीकार किया जिसमे निम्नकोटि से लेकर उच्चतम कोटि के शिक्षण सम्मिलित है। उसके अनुसार, निम्नतम प्रकार का शिक्षण, सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का है जिसमे एक उत्तेजना से एक प्रतिक्रिया विशेष का सम्बन्ध स्थापित करना मात्र रहता है। इससे उच्चतर कोटि का शिक्षण प्रयत्न और भूल का है जिसमे कई पक्षों (Alternatives) मे से किसी एक को चुनना रहता है। उसके अनुसार अन्तर्दृष्ट्यात्मक शिक्षण उच्चतम कोटि का है। इन शिक्षणो की व्याख्या करते हुए उसने यह व्यक्त किया है कि ये सभी शिक्षण, चिन्ह-शिक्षण (Sign learning) द्वारा सम्पादित होते है। शिक्षणों की व्याख्या के लिए उसने तीन शिक्षण नियमों का भी प्रतिपादन किया है जिन्हे समर्थता या क्षमता नियम (Capacity law) उपकरण स्वरूप आबद्ध-नियम (Law relating to the nature of material) तथा उपकरण प्रस्तुतकरण सापेक्ष नियम (Law relating to the manner of presentation) कहते है। इन नियमों के भी कई उपनियम है जिनके उल्लेख की यहाँ कोई आवश्यकता नही प्रतीत होती। टालमैन के अनुसार, जीव की समर्थता और शिक्षण जटिलता (Complexity of learning) मे प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इसलिये जीव की समर्थता के ही अनुरूप शिक्षण प्रकार निर्धारित होता है। अतएव सामर्थ्य मे वैयक्तिक भिन्नता होने के कारण शिक्षण प्रकार मे भी भिन्नता होती है। इसीलिये शिक्षण विभिन्न प्रकार के होते है। इसी प्रकार, उपकरण के स्वरूप और प्रस्तुतकरण प्रकार के द्वारा भी शिक्षण प्रकार निर्धारित होता है।

निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते है कि टालमैन पहला विद्वान है जिसने शिक्षण मे समर्थता के महत्त्व को एक नये रूप मे स्वीकार किया है। वह अपने सिद्धान्त मे अभ्यास को स्वीकार करता है, लेकिन उचित प्रतिक्रिया के चुनाव के लिये नही, बल्कि उस प्रतिक्रिया के स्थिरीकरण के लिये। जहा तक प्रेरणा का सम्बन्ध है, वह इसे कर्त्तृत्व (Performance) के लिये आवश्यक मानता है, शिक्षण के लिये नही। यद्यपि वह यह भी स्वीकार करता है कि शिक्षण का अदाज कर्त्तृत्व के द्वारा ही होता है। हाँ, अपने सिद्धान्त मे सूझ (Understanding) को वह पर्याप्त महत्त्व देता है। वह इस सूझ और ज्ञानात्मक चित्र के द्वारा शिक्षण स्थानान्तरण (Transfer of learning) को भी प्रतिपादित करता है। इसके अतिरिक्त,

चित्र से स्पष्ट है कि चूहे को भोजन या पानी की ओर जाने की बराबर सुविधा थी। बराबर प्रयासों के द्वारा चूहों को यह सिखलाया गया कि बायें तरफ भोजन है और दाहिने तरफ पानी। जब चूहोंने यह सीख लिया तब उन्हें पहले प्यासा रख कर T-भुलभुलैया में छोड़ा गया। सभी चूहे पानी की ओर दौड़े। दूसरी बार उन्हें भूखा रखा गया, लेकिन इस बार भी वे (भोजन की ओर न जाकर) पानी की ओर (दाहिनी ओर) ही दौड़ पड़े। इस तरह, इस प्रयोग से स्पष्ट है कि जीव चिन्ह नहीं सीखता अथवा यह नहीं कहा जा सकता कि जीव 'माँग' (Demand) और 'प्रत्याशा' (Expectancy) के सहारे सीखता है, जैसा कि टालमैन का विचार है। लेकिन, अव्यक्त शिक्षण के समर्थकों का कहना है कि भूखे रहने पर भी चूहे इस प्रयोग में पानी की ओर इसलिये दौड़ गए, चूंकि इसके पूर्व वे प्यासे थे। इसीलिये उनमें भोजन वाले खाने की तरफ जाने का आवश्यक ज्ञानात्मक रचना (Cognitive structure) का निर्माण नहीं हो सका था।

इस तरह, टालमैन का अव्यक्त शिक्षण सत्यासत्य के विवेचन में पड़ा है और इस अवस्था में निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है। निष्कर्ष क्या होगा, इसके सम्बन्ध में इस समय कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, इससे यह नहीं समझना चाहिये कि टालमैन शिक्षण के लिये प्रोत्साहन (Reinforcement) के महत्त्व का स्वीकार नहीं करता। हाँ, वह इसे शिक्षण के लिये आवश्यक नहीं मानता, क्योंकि उसका कहना है कि शिक्षण और कर्त्तृत्व को एक नहीं समझा जा सकता।

(२) शक्ति नियम (Strengthening principle)—थार्नडाइक अथवा पैवलाव के सिद्धान्तों की विवेचना करते समय यह बताया जा चुका है कि किसी प्रतिक्रिया का शिक्षण उतना ही शक्तिशाली होते जाता है जितनी बार उसकी उत्तेजना प्रोत्साहन (Reinforcement) के साथ उपस्थित की जाती है (अवश्य ही एक निश्चित सीमा तक)। लेकिन, टालमैन यह नहीं मानता कि शिक्षण उत्तेजना प्रतिक्रिया सम्बन्ध पर निर्भर करता है। उसके अनुसार, जीव द्वारा चिन्ह की सार्थकता (Sign-significance) समझना ही शिक्षण है अतएव, सार्थक चिन्ह प्रत्याशा (Sign significate expectations) का शक्तिशाली होना ही शिक्षण को प्रौढ़ बनाना है। इसके सम्बन्ध में उसका कहना है कि जीव जब अपनी प्रत्याशा की पुष्टि (Confirmation) परिस्थिति में पाता है तब चिन्ह की सार्थकता बलिष्ठ होती है, लेकिन भग्न तथा अपुष्टि (Non-confirmation) से कमजोर होती है। इस पुष्टि और अपुष्टि की व्याख्या करते हुए टालमैन यह भी व्यक्त करता है कि क्षेत्र प्रत्याशा (Field expectancy) की शक्ति कई चल राशियों (Variables) पर निर्भर करती है, यथा, तात्कालिकता, प्रेरणा, जोर, पुनरावृत्ति, आदि। इस तरह, टालमैन अभ्यास के महत्त्व को भी मानता है, यद्यपि अभ्यास, प्रतिक्रिया के प्रारंभिक चुनाव में सहायक होता है, ऐसा नहीं मानता।

इस नियम के सम्बन्ध में औसगुड की दो मुख्य आपत्तियाँ हैं। पहली यह कि प्रत्याशाओं के 'बीच' ज्ञानात्मक सम्बन्ध (Cognitive relationship) (जो टालमैन के शिक्षण-सिद्धान्त का आधार है) कैसे स्थापित हो सकता है? दूसरा यह कि व्यक्ति प्रत्याशायें तो बाद में करता है, फिर वह अपनी पूर्व प्राप्ति से ही कमजोर या बलिष्ठ कैसे हो सकती है? टालमैन इन प्रश्नों का समुचित उत्तर नहीं दे पाया है।

• (४) कार्य-नियम (Action principle) —टालमैन के अनुसार किसी कार्य को सीखने के लिये जीव मे उचित आवश्यकता या आन्तरिक 'माँग' (Demand) का होना जरूरी है। लेकिन, मात्र 'माँग' से ही निश्चित 'उपयुक्त प्रतिक्रिया' नही होती, बल्कि उस माँग के साथ जीव का कुछ अनुभव भी सही प्रतिक्रिया खोजने मे सहायक होता है। इस अनुभव के आधार पर जीव सही प्रतिक्रिया के सम्बन्ध मे कुछ प्रत्याशा (Expectation) करता है। इस तरह, किसी कार्य को सीखने मे जीव 'माँग और 'प्रत्याशा' की सहायता लेता है। लेकिन, टालमैन ने 'उपयुक्त प्रतिक्रिया' (Appropriate behaviour) की समुचित व्याख्या नही की है।

चिन्ह-जेस्टाल्ट सिद्धान्त का मूल्यांकन पाठको को अबतक ज्ञात हो चुका होगा कि टालमैन बडा ही तार्किक मनोवैज्ञानिक है। उसने देखा कि अभी तक प्रतिपादित प्रत्येक शिक्षण सिद्धान्त मे एक कमजोरी है और वह यह कि सिद्धान्त प्रतिपादक विशेष ने विभिन्न समस्याओ की उपेक्षा कर एक समस्या विशेष के अध्ययन के ही आधार पर अपना सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। इस दोष से बचने के लिये उसने विभिन्न स्तरो (Levels) के शिक्षण को स्वीकार किया जिसमे निम्नकोटि से लेकर उच्चतम कोटि के शिक्षण सम्मिलित है। उसके अनुसार, निम्नतम प्रकार का शिक्षण, सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का है जिसमे एक उत्तेजना से एक प्रतिक्रिया विशेष का सम्बन्ध स्थापित करना मात्र रहता है। इससे उच्चतर कोटि का शिक्षण प्रयत्न और भूल का है जिसमे कई पक्षों (Alternatives) मे से किसी एक को चुनना रहता है। उसके अनुसार अन्तर्दृष्टात्मक शिक्षण उच्चतम कोटि का है। इन शिक्षणो की व्याख्या करते हुए उसने यह व्यक्त किया है कि ये सभी शिक्षण, चिन्ह-शिक्षण (Sign learning) द्वारा सम्पादित होते है। शिक्षणों की व्याख्या के लिए उसने तीन शिक्षण नियमों का भी प्रतिपादन किया है जिन्हे समर्थता या क्षमता नियम (Capacity law) उपकरण स्वरूप-आबद्ध-नियम (Law relating to the nature of material) तथा उपकरण प्रस्तुतकरण सापेक्ष नियम (Law relating to the manner of presentation) कहते है। इन नियमों के भी कई उपनियम है जिनके उल्लेख की यहाँ कोई आवश्यकता नही प्रतीत होती। टालमैन के अनुसार, जीव की समर्थता और शिक्षण जटिलता (Complexity of learning) मे प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इसलिये जीव की समर्थता के ही अनुरूप शिक्षण प्रकार निर्धारित होता है। अतएव सामर्थ्य मे वैयक्तिक भिन्नता होने के कारण शिक्षण प्रकार मे भी भिन्नता होती है। इसीलिये शिक्षण विभिन्न प्रकार के होते है। इसी प्रकार, उपकरण के स्वरूप और प्रस्तुतकरण प्रकार के द्वारा भी शिक्षण प्रकार निर्धारित होता है।

निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते है कि टालमैन पहला विद्वान है जिसने शिक्षण मे समर्थता के महत्त्व को एक नये रूप मे स्वीकार किया है। वह अपने सिद्धान्त मे अभ्यास को स्वीकार करता है, लेकिन उचित प्रतिक्रिया के चुनाव के लिये नही, बल्कि उस प्रतिक्रिया के स्थिरीकरण के लिये। जहा तक प्रेरणा का सम्बन्ध है, वह इसे कर्त्तृत्व (Performance) के लिये आवश्यक मानता है, शिक्षण के लिये नही। यद्यपि वह यह भी स्वीकार करता है कि शिक्षण का अदाज कर्त्तृत्व के द्वारा ही होता है। हाँ, अपने सिद्धान्त मे सूझ (Understanding) को वह पर्याप्त महत्त्व देता है। वह इस सूझ और ज्ञानात्मक चित्र के द्वारा शिक्षण स्थानान्तरण (Transfer of learning) को भी प्रतिपादित करता है। इसके अतिरिक्त,

उसने विस्मरण को भूताभिमुख अवरोधन (Retroactive inhibition) और दमन (Repression) के आधार पर समझाने की कोशिश की है। वह कर्त्तृत्व और शिक्षण को एक दूसरे से भिन्न मानता है, लेकिन शिक्षण का ज्ञान कर्त्तृत्व के ही माध्यम से होता है। उसकी इससे भी महत्त्वपूर्ण देन विभिन्न शिक्षण प्रकारों की है। उसने कई प्रकार के शिक्षणों को स्वीकार कर आज तक शिक्षण सिद्धान्त के सम्बन्ध में छिड़े हुए संघर्ष को निर्मूल करने का जो प्रयास किया है, वह वस्तुतः सराहनीय है।

इस प्रकार, टालमैन ने अपने शिक्षण सिद्धान्त में मनोवैज्ञानिक जगत को काफी उपकृत किया है। लेकिन, इतना होते हुए भी उसका यह सिद्धान्त दोष रहित नहीं कहा जा सकता। उसने सभी प्रयोग चूहों पर करके इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मनुष्य सांस्कृतिक प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित होता है और भाषा में सभी जीवों से समृद्ध है, अतः उसके सम्बन्ध में यह सिद्धान्त कहाँ तक चरितार्थ है, कहना कठिन है। उसकी चलराशियाँ (Variables) भी अन्य विद्वानों के लिए अभी अधिक उपयोगी नहीं सिद्ध हो सकी है, क्योंकि उनका संख्यात्मक व्यवहार अभी तक सम्भव नहीं हो सका है। उसकी चलराशियाँ प्रायः आत्मगत (Subjective) स्वरूप की हैं। इसके अतिरिक्त, वह शिक्षण में जिस अंश तक प्रेरणा की उपेक्षा करता है, उस अंश तक उपेक्षा करना उचित प्रतीत नहीं होता। प्रयोगात्मक अध्ययनों से शिक्षण में प्रेरणा का जो महत्त्व प्रस्थापित हो चुका है, वह पाठकों से अव्यक्त नहीं है। फिर भी, टालमैन ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है और उसका यह प्रयत्न अनुकरणीय है।

प्रोत्साहन-सिद्धान्त (Reinforcement theory)

क्लार्क एल० हल (Clark L Hull) ने शिक्षण की व्याख्या के लिए एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसे सामान्यतः प्रोत्साहन सिद्धान्त या हल सिद्धान्त कहते हैं। यह सिद्धान्त पूर्णतः व्यवहारवादी और यान्त्रिक (Mechanistic) है। जहाँ तक सम्भव हो सका है हल ने शिक्षण की व्याख्या में चेतना का तिरस्कार किया है। आदत इस सिद्धान्त का केन्द्र है और इसके सम्बन्ध में सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तनों से पर्याप्त जानकारी हासिल की गई है। सरल और साधारण प्रारम्भिक शिक्षणों के आधार पर ही जटिल शिक्षणों की व्याख्या की गई है। ये सभी विशेषताएँ वाटसन और उसके अनुयायियों की है। लेकिन, इससे यह समझना उचित नहीं कि हल भी वाटसन का ही पृष्ठ पोषक है। विचारतः वह कई पहलुओं में वाटसन से भिन्न है। जहाँ वाटसन ने थार्नडाइक के 'परिणाम नियम' का पूर्णतः तिरस्कार किया है, वहाँ हल अपने सिद्धान्त में इस पर काफी जोर देता है। इसी प्रकार, वाटसन प्रयोजन (Purpose), अन्तर्दृष्टि, आदि को पूर्णतः अस्वीकार करता है, लेकिन हल ने इन पहलुओं की व्याख्या करने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त और भी कई दृष्टिकोण से हल की विचारधारा वाटसन से सर्वथा भिन्न है।

हल के शिक्षण-सिद्धान्त की व्याख्या करने के लिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि हल के अनुसार कोई जीव चिन्ह या अर्थ नहीं सीखता, जैसा कि टालमैन ने व्यक्त किया है, बल्कि वह उत्तेजना की प्रतिक्रिया करना सीखता है। जहाँ तक यह प्रश्न है कि कोई कैसे सीखता है (How of learning), इसके सम्बन्ध में उसका कहना है

कि, जीव क्रमश आदतशक्ति (Habit strength) अर्जित करता है। यह आदत शक्ति ग्राहक प्रभावक प्रक्रिया की क्रियाशीलता (Receptor effector process) पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त, एक दूसरा अग भी इस आदत शक्ति को प्रभावित करता है जिसे प्रोत्साहन अवस्था (Reinforcement condition) कहते है। वस्तुत हल का यह सिद्धान्त सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन शिक्षण के प्रयोगों पर आधारित थार्नडाइक के परिणाम नियम का एक परिमार्जित रूप है। विद्वानों ने इसे ध्येय झुकाव (Goal gradient) या प्रोत्साहन झुकाव (Re inforcement gradient) के नाम से भी व्यक्त किया है। हल के अनुसार, जैसा कि आगे चल कर स्थल विशेष पर व्यक्त किया जायेगा जीव ध्येय से प्रेरित होकर ही उचित प्रतिक्रिया करना सीखता है।

हल ने टालमैन की तरह व्यवहार को सामग्रिक रूप मे ही समझने की कोशिश नहीं की है, बल्कि उसका विवेचन आणविक (Molecular) है। यद्यपि उसकी दलील यह है कि व्यवहार का सामग्रिक एव आणविक दृष्टिकोण सापेक्ष (Relative) ही हे, निरपेक्ष (Absolute) नही। उसने स्वय ही शिक्षण प्रक्रिया मे सन्निहित नाडीमण्डल की क्रियाओं को समझने की कोशिश की है। उसका एसा करना ही यह प्रमाणित करता है कि वह व्यवहार के आणविक स्वरूप मे भी विश्वास करता है।

हल के अनुसार उचित प्रतिक्रिया सीखने के लिये जीव मे प्रेरणा (Motivation) का होना बहुत जरूरी है। इसके अभाव मे वह कुछ नही सीख सकता। इस सम्बन्ध में उसका कहना है कि प्रेरणा गत्युत्पादक (चालक) या (driver) का काम करती है, इसलिये जीव प्रेरणा से ही प्रेरित होकर किसी प्रतिक्रिया विशेष को करता है। आवश्यकता (Need) या प्रेरणा शिक्षण या व्यवहार को निर्धारित करने मे दो तरह से कार्य करती है। एक तो आदत निर्माण मे इसका हाथ रहता है और दूसरे कर्तृत्व मे उस आदत का उपयोग करने मे। एक उदाहरण देते हुये वह कहता है कि जब कोई जीव शान्त या सोया रहता है तो उस समय उसमे दौडने या चलने की आदत विनष्ट नही होती, बल्कि वह एक उचित प्रेरक की प्रतीक्षा मे रहती है जो कि उसे उत्पन्न कर सके। प्रेरणा भोजन प्राप्त करने की हो सकती है या किसी दुखद परिस्थिति से छुटकारा पाने की भी। उदाहरण के लिये, जब चूहा भूलभुलैया मे उचित पथ से जाना सीखता है तो उसका उचित पथ से जाना सीखना भोजन प्राप्त करने की प्रेरणा के फलस्वरूप होता है। लेकिन, जब अन्धपथ से जाने पर चूहे को विद्युत आघात (Electric shock) लगता है तो वह उचित पथ से जाना विद्युत आघात से बचने के लिये ही सीखता है।

जीव की प्रथम उचित प्रतिक्रिया आकस्मिक या अनायास होती है। इसके लिये उसे किसी तरह का तर्क या विचार नही करना पड़ता है। लेकिन, इस सम्बन्ध मे उसका कहना है कि इस उचित प्रतिक्रिया को उत्पन्न करने के लिये परिस्थिति या जीव मे एक उत्तेजनाविशेष का होना जरूरी है। भूलभुलैया मे उचित रास्ता से जाने के लिये उसमे भोजन का होना या जीव मे दैहिक अवस्था विशेष (Specific physiological condition) का होना जरूरी है। इस प्रकार की उत्तेजना न होने पर वह प्रतिक्रिया नही कर सकता।

जब जीव की प्रथम अनायास, किन्तु उचित प्रतिक्रिया पुरस्कृत होती है तो वह उसकी पुनरावृत्ति करता है। पुरस्कार न मिलने पर उस प्रतिक्रिया को दुहराने की प्रवृत्ति निर्बल पड़ जाती है। हल के शब्दों में, पुरस्कार, आवश्यकता या उदीरणा (Drive) को कम कर देता है। इसीलिये इसका महत्व शिक्षण में अत्यधिक है। पुरस्कार ही वाली परिस्थिति जीव की प्रतिक्रिया और उत्तेजना के सम्बन्ध की पुष्टि करती है। इसी पुरस्कार का हल अपने शब्दों मे प्रोत्साहन (Reinforcement) द्वारा व्यक्त करता है। प्रोत्साहन दो तरह के है—प्रधान (Primary) और अप्रधान (Secondary)। प्रधान प्रोत्साहन का अर्थ उनसे है जो जीव की उदीरणा (Drive) को सीधे तौर से कम करते हैं। जैसे, भोजन भूख (Drive) के लिये प्रधान प्रोत्साहन है। प्रधान प्रोत्साहन से सम्बन्धित उत्तेजनायें भी कभी कभी प्रोत्साहन का कार्य करती है, यथा, मात्र प्याला देख कर ही प्यास का जाना। इन्हे अप्रधान प्रोत्साहन कहते है।

हल के शिक्षण सिद्धान्त में ध्येय-अनुक्रम (Goal gradient) या प्रोत्साहन अनुक्रम (Gradient of re-inforcement) का अत्यधिक महत्व है। यही उसके शिक्षण का केन्द्र-विन्दु (Central point) है जिसके द्वारा वह शिक्षण के अन्य पहलुओं की व्याख्या करता है। जितना ही शीघ्र ध्येय की प्राप्ति होती है, उतना ही सबल सम्बन्ध उत्तेजना और प्रतिक्रिया के बीच स्थापित होता है। क्योंकि, ध्येय प्राप्त हो जाने पर जीव में जो तनाव (Tension) रहता है वह कम या निर्बल हो जाता है और वह सामान्य प्राणी बन जाता है। अतएव यह प्रतिक्रिया सीखने में अत्यधिक सहायक होता है। इसीके आधार पर हल ने व्यक्त किया है कि जब कई पथो मे से चूहे भूलभुलैया मे छोटे रास्ते से जाना सीखते हैं तो उसका यही कारण होता है कि ऐसा करने से उन्हे भोजन शीघ्र मिल जाता है। लम्बे रास्ते से जाने से भोजन देर से मिलता है, इसलिये चूहे लम्बे रास्ते से न जा कर छोटे रास्ते से ही जाना पसन्द करते है। यद्यपि उल्फ (Wolfe) ने विलम्बित पुरस्कार (Delayed reward) पर प्रयोग करके बीस मिनट बाद भी पुरस्कार का देना शिक्षण के लिये श्रेयस्कर समझा है, लेकिन हल सभी स्थलो के लिये इसे उचित नहीं मानता।

थार्नडाइक की तरह हल ने अपने शिक्षण में अभ्यास या पुनरावृत्ति के महत्व को भी स्वीकार किया है। जब जीव किसी उत्तेजना के उपस्थित होने पर बार बार उचित प्रतिक्रिया की पुनरावृत्ति करता है तो उस प्रतिक्रिया और उत्तेजना का सम्बन्ध बहुत ही घनिष्ट हो जाता है। लेकिन, पुनरावृत्ति के साथ साथ प्रोत्साहन का होना जरूरी है, अन्यथा उससे कोई लाभ नही हो सकता।

इस स्थल पर यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि हल ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन जैसा कि पहले ही व्यक्त किया जा चुका है, सम्बन्ध प्रत्यावर्तन शिक्षण पर किये गये प्रयोगों के आधार पर किया है। अतएव उसका ऐसा दृष्टिकोण है कि सभी शिक्षणो की व्याख्या सम्बद्धता के आधार पर हो सकती है। इसी कारण शिक्षण के विभिन्न पहलुओं की व्याख्या के लिये उसने सोलह नियमों (Laws or postulates) का भी प्रतिपादन किया है और उन्हीं नियमों के आधार पर उनकी व्याख्या भी की है। उनमे उदीरणा (Drive) और प्रोत्साहन (Reinforcement) प्रमुख है, जिनकी चर्चा ऊपर की गयी है। सीखने के लिये व्यक्ति मे आवश्यकता और साथ ही उस आवश्यकता की पूर्ति का होना जरूरी है। इसके

अधिकांश नियम इन्ही दोनों चल राशियों से सबन्धित है। हल ने अपने नियमों को काफी गिरेयात्मक रूप मे गणित के सूत्रो के द्वारा व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ, उसका कहना है कि प्रतिक्रिया की शक्ति (S) निर्धारित करने के लिये आदत (H) और उदीरणा (D) गुणात्मक रूप में कार्य करते है। हल इसे निम्नांकित सूत्र द्वारा व्यक्त करता है—$sE_R = f(H \& D)$।

टालमैन की तरह हल भी शिक्षण को समझने के लिये मध्यवर्ती चल राशियों (Intervening variables) को आवश्यक मानता है। अतएव उन्हे सख्यात्मक रूप में व्यक्त करने के लिये उसने कई समीकरणो (Equations) के बनाने की कोशिश की है। लेकिन, अभी तक वह इस प्रयत्न मे पूर्णत सफल नहीं हो सका है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि वह दैहिक और भौतिक चल राशियो मे ही विश्वास करता है, अन्य प्रकारों मे नही।

जहाँ तक शिक्षण स्थानान्तरण का प्रश्न है, उसके सबध मे हल का कहना है कि शिक्षण-स्थानान्तरण के दो पहलू है। एक उत्तेजना से आबद्ध है और दूसरा प्रतिक्रिया से आबद्ध। वह उत्तेजना से आबद्ध शिक्षण स्थानान्तरण की व्याख्या सामान्यीकरण (Generalization) के आधार पर करता है और प्रतिक्रिया-सम्बन्धी शिक्षण स्थानान्तरण की व्याख्या आदत-परिवार-क्रम (Habit family hierarchy) के आधार पर। इसके अनुसार, किसी परिस्थिति में एक प्रतिक्रिया के असफल होने पर जीव दूसरी ऐसी प्रतिक्रिया करता है जो भूतकाल मे सफल हो चुकी है।

इसी प्रकार, उसने विस्मरण की व्याख्या एक प्रकार के अनभ्यास नियम (Law of disue) के आधार पर की है और सस्मरण (Reminiscence) की व्याख्या करने के लिये उसने निरोध निर्मुक्ति (Recovery from inhibition) का आश्रय लिया है।

प्रोत्साहन-सिद्धान्त का मूल्यांकन—हल ने अपने शिक्षण-सिद्धान्त मे बहुत ही कम नये विचारों को अपनाया है। लेकिन, इतना तो निर्विवाद है ही कि उसने इस सिद्धान्त को सख्यात्मक आधार पर समझने और समझाने की कोशिश की है।

उसके सिद्धान्त का केन्द्रीय विचार प्रोत्साहन (Reinforcement) है जिसके अनुसार, पुरस्कार जीव की आवश्यकता और तनाव को कम करता है। यदि हल के इस कथन पर हम गभीरतया विचार करे तो मालूम होगा कि उसका यह सिद्धान्त अधिक शत मान्य है। जब चूहा उचित पथ से जाने पर भोजन पाता और उसे खा जाता है तो वस्तुत उसकी भूख मिट जाती है। जब हम लोग दुखद परिस्थिति से छुटकारा पा जाते है तो निस्सन्देह हम लोगों की तकलीफ और बेचैनी कम हो जाती है। यही विचार हजारों वर्ष पहले सुखवादियों द्वारा भी व्यक्त किया गया था। लेकिन, वस्तुत यह हल का अनुमान (Hypothesis) मात्र ही है, क्योंकि इसे प्रयोग-द्वारा प्रदर्शित कर वह लोगो में विश्वास नही जमा सका है। इस दिशा में फाइनन (Finan) ने भूखे चूहों पर प्रयोग करके हल के अनुमान को पुष्ट करने का प्रयास किया है। परन्तु, टालमैन ने प्रोत्साहन को कर्त्तृत्व के लिये आवश्यक और शिक्षण के लिये अनावश्यक मानकर हल के इस दृष्टिकोण का खडन किया है। इस सम्बन्ध मे उसका कहना है कि प्रोत्साहन कर्त्तृत्व के लिये लाभप्रद होता है, शिक्षण के लिये नही।

लेकिन, हल ऐसी आलोचनाओं से निराश नहीं होता, बल्कि पैवलाव और उसके अनुयायियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की भी व्याख्या इसी प्रोत्साहन के आधार पर करता है। फिर भी, कितने विद्वानों ने उसके इस विचार का खंडन करने का प्रयास बार बार किया है। उनका कहना है कि यदि हल का प्रोत्साहन सिद्धान्त ठीक है तो कोई जीव कष्ट पाने पर कैसे सीखता है। साथ ही, हल का भी सिद्धान्त चूहों पर किए गए प्रयोग-परिणाम पर आधारित है जिसको मनुष्य के लिये उतना ही सत्य मानना भूल है। हल ने अप्रधान प्रोत्साहन (Secondary reinforcement) के स्वरूप की चर्चा भी नहीं की है।

इस तरह, हल के प्रोत्साहन सिद्धान्त की कई त्रुटियाँ व्यक्त की गई हैं। फिर भी, इतना तो मानना ही होगा कि इस शिक्षण सिद्धान्त को प्रतिपादित कर उसने अन्य मनोवैज्ञानिकों को इस दिशा मे उचित प्रयोग और अन्वेषण करने तथा शिक्षण के स्वरूप के सम्बन्ध मे अपने ज्ञान को समृद्ध करने के लिये उचित रूप मे प्रोत्साहित किया है। हल सिद्धान्त की विधेयात्मकता (Objectivity) मनोविज्ञान के प्रौढ होने का प्रमाण है। हल के शिक्षण नियम सत्य के कितना निकट हैं, यह विचारणीय प्रश्न है। लेकिन, वे नियम जितने विधेयात्मक रूप से उपस्थित किये गये हैं, वह अवश्य ही श्लाघ्य है।

हल तथा टालमैन के शिक्षण-सिद्धान्तों की तुलना

सभी शिक्षण सिद्धान्त इसी तथ्य पर प्रकाश डालने की कोशिश करते हैं कि हम किसी क्रिया या कौशल को कैसे सीखते हैं। कुछ विद्वानों ने इस पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया है कि शिक्षण के समय नाडी मण्डल मे किस प्रकार के परिवर्त्तन होते हैं। लेकिन, इस प्रश्न पर बहुत कम विद्वानों का ध्यान गया है कि जीव (Organism) क्या सीखता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये हल तथा टालमेन ने अपने शिक्षण-सिद्धान्तों मे शिक्षण के 'क्या और कैसे' (What' and 'how' of learning) पर प्रकाश डाला है। इन दोनों ने अपने प्रयोग चूहों पर करके यह देखने की कोशिश की है कि प्रशिक्षित (Trained) चूहे ध्येय विन्दु (Choice point) की ओर क्यों मुड़ जाते हैं और ऐसा करने के लिये वे क्या सीखते हैं?

जीव किसी उत्तेजना की क्या प्रतिक्रिया करता है, इसी का अध्ययन मनोविज्ञान करता है। इसी को उ→जी→प्र (S→O→R) के सूत्र द्वारा भी व्यक्त किया गया है। उ—उत्तेजना, जी—जीव (Organism) और प्र—प्रतिक्रिया के द्योतक हैं। जीव जब कुछ सीखता है तो उसमे कौन कौन घटनाएँ (Events) उत्तेजना और प्रतिक्रिया के बीच होती है, इसे प्राय सभी विद्वान् शिक्षण की व्याख्या करते समय समझाने की कोशिश करते है। इन मध्यवर्त्ती घटनाओं (Intervening events) को मध्यवर्त्ती चल राशियाँ (Intervening variables) भी कहते हैं। हल और टालमेन दोनों अपने शिक्षण सिद्धान्तों मे इन मध्यवर्ती चलराशियों की सार्थकता स्वीकार करते हैं और इसकी स्पष्टता के लिये समीकरण (Equations) भी बनाने की कोशिश करते हैं। ये दोनों ही अपने सिद्धान्तों मे शिक्षण की मध्यता या केन्द्रीयता (Centrality of learning) को स्थान देते हुये शिक्षण और कर्त्तृत्व (Performance) को भिन्न मानते हैं। लेकिन, इन समानताओं के होते हुए भी इनकी भिन्नताओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

(१) जीव क्या और कैसे सीखता है, इसका उत्तर देते हुए हल ने अपने सिद्धान्त में यह व्यक्त किया है कि जीव शिक्षण के द्वारा किसी उत्तेजना की प्रतिक्रिया करना सीखता है। जहाँ तक कैसे सीखने (How of learning) का प्रश्न है, वह धीरे-धीरे आदत शक्ति (Habit strength) हासिल करता है। आदत शक्ति ग्राहक प्रभावक-प्रक्रिया (Receptor effector process) की सक्रियता और प्रोत्साहन के अंगों (Reinforcement conditions) पर निर्भर करती है। वस्तुत हल का शिक्षण-सिद्धान्त पैवलाव के सम्बद्धता प्रयोगों (Conditioning experiments) पर आधारित थार्नडाइक के परिणाम-नियम (Law of effect) का परिमार्जित रूप है। इसे ध्येय-झुकाव-सिद्धान्त (Goal-gradient theory) भी कहते हैं, क्योंकि हल के अनुसार जीव ध्येय से प्रेरित होकर ही उचित प्रतिक्रिया को करना सीखता है। इसे समीकरण में निम्नांकित तरह से उपस्थित किया जा सकता है।

उत्तेजना (S)→आदत (sH_R)→सही प्रतिक्रिया (R)

दूसरी ओर, टालमैन के शिक्षण सिद्धान्त को चिन्ह जेस्टाल्ट सिद्धान्त (Sign Gestalt theory) कहते हैं, क्योंकि इसके अनुसार जीव प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि उत्तेजना की सार्थकता या चिन्ह (Significance or sign) को सीखता है। उत्तेजना का अर्थ सीख लेने पर वह स्वयं भी उसके अनुरूप प्रतिक्रिया सीखता है। वह यह सीखता है कि जब अमुक तरह की परिस्थिति होगी तो ध्येय (Food) प्राप्त होगा। इस प्रकार, जीव पहले परिस्थिति को पहचानने की कोशिश करता है। परिस्थिति ध्येय (Food) का चिन्ह (Sign) है। इसी को टालमैन के शब्दों में कह सकते हैं कि जीव प्रतिक्रिया नहीं सीखता, बल्कि ज्ञानात्मक चित्र (Conitive map) सीखता है। यही ज्ञानात्मक चित्र जीव की प्रतिक्रिया को निर्देशित (Guide) करता है। इसी को हम निम्नांकित रूप में व्यक्त कर सकते हैं। ध्येय बिन्दु (Choice-point)→ज्ञानात्मक चित्र (Cognitive map)→ उचित प्रतिक्रिया (R-Response)।

टालमैन के इस कथन की पुष्टि, जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, पुरस्कार-प्रत्याशा (Reward expectancy), स्थान शिक्षण (Place learning) तथा अव्यक्त शिक्षण (Latent learning) के सम्बन्ध में किये गये प्रयोगों द्वारा भी होती है।

(२) हल के अनुसार चूहे ध्येय बिन्दु (Choice point) की ओर इसलिये घूम जाते हैं, चूँकि उनमें भोजन प्राप्त करने का तनाव बना रहता है। यह तनाव ही उन्हें उधर घुमा देता है। हल का यह दृष्टिकोण थार्नडाइक के परिणाम नियम के परिमार्जित रूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। परन्तु, टालमैन अपने सिद्धान्त में इस नियम को महत्त्व नहीं देता। इस सम्बन्ध में उसका कहना है कि यह शिक्षण या अर्जन (acquisition) का नियम नहीं, अपितु कर्त्तृत्व (Performance) अथवा उपयोगिता का नियम है। इसके चलते जीव सीखता नहीं, बल्कि सीखी प्रतिक्रियाओं का उपयोग करता है। हम यह पहले ही देख चुके हैं कि टालमैन कर्त्तृत्व और शिक्षण को भिन्न मानता है। अतएव उसके अनुसार यह नियम कर्त्तृत्व का है, शिक्षण का नहीं।

(३) जहाँतक प्रेरणा (Motivation) का सम्बन्ध है, हल इसे शिक्षण के लिये आवश्यक मानता है। इसलिए उसके अनुसार, शिक्षण के लिये जीव में प्रेरणा का होना

जरूरी है। यह प्रेरणा चाहे भोजन प्राप्त करने की हो चाहे दण्ड परिस्थिति से छुटकारा पाने की। परन्तु टालमेन प्रेरणा की अच्छाइया का स्वीकार करते हुये भी इसे शिक्षण के लिये आवश्यक नही मानता। जैसा कि पहले ही व्यक्त किया जा चुका है, वह अपने कथन की पुष्टि के लिये अव्यक्त शिक्षण के प्रयोग परिणाम का प्रमाण उपस्थित करता है।

(४) हल के अनुसार शिक्षण एक ही प्रकार का होता है या सभी शिक्षणो का एक उभयनिष्ठ आधार है। सभी शिक्षणो मे प्रोत्साहन नियम (Principle of reinforcement) कार्यशील रहता है। किन्तु, दूसरी ओर, टालमेन हल के इस दृष्टिकोण से सहमत नही है। उसने एक से अधिक शिक्षण प्रकारो को माना है। उन शिक्षण प्रकारों का पूर्ण विवरण उसके एक लेख मे मिलता है जिसका शीर्षक है, 'एक से अधिक प्रकार के शिक्षण होते है' ('There is more than one kind of learning')। इस सबध मे उसका कहना है कि वस्तुत शिक्षण छ प्रकार का होता है और सभी की व्याख्या अलग अलग की जा सकती है, क्योंकि किसी एक के पक्ष मे निश्चयात्मक रूप से कुछ व्यक्त करना कठिन है।

(५) यद्यपि हल और टालमान दोनों ही मध्यवर्ती चल राशियो को महत्वपूर्ण स्थान देते है, लेकिन मध्यवर्ती चल राशियों के प्रकार के सम्बध मे उन दोनो मे भिन्नता है। हल के अनुसार चूकि शिक्षण एक प्रकार का होता है, इसलिये सभी मध्यवर्त्ती चल राशिया भी एक ही प्रकार की होती है। किन्तु, टालमैन ने अपने एक लेख मे सम्बद्धता (Conditioning) पर आधरित हल की चलराशियो (Variables) की आलोचना की है। आलोचना के ही प्रसग मे उसने यह व्यक्त किया है कि वातावरण से आबद्ध प्रत्येक चलराशियों के लिये अलग अलग मध्यवर्त्ती चलराशि होती है। हल केवल दैहिक और भौतिक चलराशियो को ही मानता है, लेकिन टालमैन इनके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक चल राशियो पर विश्वास करता है। लेकिन, टालमैन की अपेक्षा हल की चलराशियां अधिक निश्चयात्मक है।

हल तथा टालमैन के सिद्धान्तो की अपूर्णता को व्यक्त करते हुए कुछ विद्वानो का कहना है कि हल मध्यवर्त्ती चलराशियो के लिये समीकरण बनाने मे ही रह गया है, लेकिन अभीतक यह नहीं व्यक्त कर सका है कि इसे बनाया कैसे जाय। इसी प्रकार, टालमन ने भी अपने सिद्धान्त की सर्वांगपूर्ण व्याख्या न कर उसे एक योजनात्मक रूप (Programmatic form) मे ही छोड दिया है। किन्तु, यह आलोचना हमे पूर्णत युक्तिसगत एव उचित नहीं प्रतीत होती।

दोनो सिद्धान्तों का तुलनात्मक उल्लेख कर देने के पश्चात् इस स्थल पर निष्कर्ष स्वरूप यह व्यक्त कर देना अनुचित नही होगा कि दोनो प्राय एक ही बात को दो तरह से प्रतिपादित करने का प्रयास करते है। एक उत्तेजना पर जोर देता है तो दूसरा प्रतिक्रिया पर, अन्य पहलुओ मे प्राय अश (Degree) या मात्रा का ही अन्तर है। टालमैन ने कई प्रकार के शिक्षणो को मान कर विभिन्न सिद्धान्तो के सघर्ष को कम करने का जो प्रयास किया है, वह प्रशसनीय है। इसी तरह, हल का गणित द्वारा शिक्षण के नियमों का उपस्थित करना एक ठोस और साहसपूर्ण कदम है, जो मनोविज्ञान की वैज्ञानिकता को काफी बल देता है। अत इन दोनों सिद्धान्तो में दोष चाहे जो भी हो, लेकिन इतना मानना ही होगा कि ये दोनों मनोविज्ञान जगत को महत्त्वपूर्ण देन है।

नवाँ अध्याय

स्मरण और विस्मरण

(Remembering and Forgetting)

स्मरण किसे कहते है ?

स्मरण का व्यवहार हम अक्सर किया करते है। कोई कहता है, उसे अमुक घटना स्मरण नही आ रही है तो कोई अपनी भूल पर झल्लाकर कहता है कि इन दिनों मेरी स्मरणशक्ति खराब हो गई है। लेकिन, मनोविज्ञान मे स्मरण का न तो कोई सज्ञात्मक अर्थ माना जाता है और न इसे कोई शक्ति या विशेष योग्यता ही समझा जाता है। सवेदना, प्रत्यक्षीकरण, चिंतन, कल्पना, आदि की तरह स्मरण भी एक मानसिक प्रक्रिया (Mental process) है। यह प्रक्रिया किसी विषय को सीखने या घटना को अनुभव करने के साथ शुरू होती है। इसकी परिभाषा के सिलसिले मे कह सकते है कि स्मरण वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम किसी गत अनुभव या शिक्षण को वर्त्तमान चेतना मे लाते और पहचानते है। इस तरह, स्मरण की प्रक्रिया के लिए जरूरी है कि हम पहले कुछ सीखें या अनुभव करे। उस अनुभूति को जब कुछ समय के बाद हम पुन अभिव्यक्त करते या चेतना मे लाते और पहचानते है तो इस चेतना मे लाने और पहचानने की मानसिक प्रक्रिया को ही स्मरण कहते है। मान ले, आप किसी को सिनेमा की कहानी सुना रहे है। ऐसा करने मे आप सिनेमा की घटनाओं का स्मरण करते है। यदि ध्यान दे तो पायेगे कि स्मरण करने के सिलसिले मे आप सिनेमा सबन्धी घटनाओं और अनुभूतियों को पुन चेतना मे लाते और उनका सम्बन्ध किसी निश्चित स्थान और समय से प्रस्थापित करते है।

स्मरण एक जटिल प्रक्रिया है। इसे कल्पना, चिंतन, शिक्षण, प्रत्यक्षीकरण, आदि प्रक्रियाओं से भिन्न करना भी सरल नही है। यदि स्मरण की पूरी प्रक्रिया का विश्लेषण करे तो इसमे चार प्रक्रियाएँ पायेगे। किसी विषय का स्मरण करे, इसके लिए जरूरी है कि कभी हम उस विषय को सीखे या अनुभव किए रहे। अत स्मरण की पहली प्रक्रिया शिक्षण (Learning) है। सीखने के बाद हम उसे अपने मन मे सयोते है। सीखे हुए विषय को सयोने की इस प्रक्रिया को धारणा (Retaining) कहते है। धारण किए हुए विषय को जब हम याद करते या व्यक्त करते है तो इसे प्रत्यावाहन की प्रक्रिया (Recall) कहते है। यह स्मरण की तीसरी प्रक्रिया है। प्रत्यावाहन के साथ ही पहचानने की भी प्रक्रिया होती है। हम उस चीज को पहचानते है जिसका प्रत्यावाहन होता है। पहचानने की यह प्रक्रिया (Recognizing) स्मरण की चौथी प्रक्रिया है। आगे स्थल विशेष पर हम इन चारों प्रक्रियाओं की व्याख्या करेंगे।

स्मरण का स्वरूप

(Nature of remembering)

स्मरण प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का प्रमुख अध्ययन विषय है। लेकिन, उसके स्वरूप के सम्बन्ध मे कुछ विचित्र सी धारणा रही है। इब्बिंगहॉस, प्रभृति विद्वानो ने स्मरण की व्याख्या पूर्णत दैहिक आधारों (Physiological basis) पर की है। उन लोगो के अनुसार स्मरण एक दैहिक प्रक्रिया (Physiological process) है। दूसरी ओर, कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे एक मानसिक प्रक्रिया मानते हुए इसकी व्याख्या अनुभूति, भाव, विचार, आदि मानसिक आधारों पर की है।

बेण्टले (Bentley) तथा उसके अनुयायियो ने बतलाया कि हम जब भी कुछ सीखते है तो उसका एक चिन्ह मस्तिष्क मे बन जाता है। इस चिन्ह को स्मरण चिन्ह (Memory trace) कहते है। यह स्मरण चिन्ह क्रियात्मक वृत्ति (Functional tendency) के रूप मे जब तक मस्तिष्क (अथवा स्नायुमंडल) मे बना रहता है तब तक हमे सीखे हुए विषय की धारणा रहती है। जब ये स्मरण चिन्ह मिट जाते है तो धारणा भी समाप्त हो जाती है और हम उसे याद नही कर पाते। इस तरह, बेण्टले, वगैरह ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि स्मरण एक दैहिक प्रक्रिया है। इस सम्बन्ध मे कई प्रयोग और अध्ययन हुए है।

फ्रैंज (Franz) ने कुत्ता, बिल्ली तथा बन्दर पर कई प्रयोग किए। उन प्रयोगों मे उसने जानवरों को कुछ सिखलाने के बाद उनके मस्तिष्क के अग्रिम खड (Frontal lobe) को आपरेशन के सहारे निकाल देता। तीन चार दिनो के बाद जब जानवर आपरेशन की पीडा से निर्मुक्त हो जाते तो उनकी परीक्षा ली जाती। परीक्षणो से पता चला कि सभी जानवर आपरेशन के बाद (अग्रिम खड के अभाव मे) उस समय के शिक्षण को भूल गये थे। अत फ्रैंज का कहना है कि नए साहचर्य और आदतो का स्मरण रखना अग्रिम खड पर निर्भर करता है। लेशले (Lashley) ने अपने प्रयोग मे कुछ चूहो को प्रकाश निर्णय (Light discrimination) करना सिखलाया। सीख जाने के बाद उसने जब चूहों के मस्तिष्क के दोनो पृष्ठ-खण्डों (Occipital lobes) का आपरेशन करके निकाल दिया तो वे सभी चूहे प्रकाश निर्णय करना भूल गये। इस तरह के अन्य प्रयोगो से भी स्पष्ट है कि स्मरण मस्तिष्क के विभिन्न भागो की कार्यशीलता या दैहिक आधार पर निर्भर करता है।

स्मरण एक दैहिक प्रक्रिया है, इसकी पुष्टि कुछ औपचारिक (Clinical) अध्ययनों से भी करने की कोशिश की गई है। मस्तिष्क मे किसी प्रकार के आघात अथवा रोग हो जाने पर भी स्मरण प्रक्रिया पर बुरा असर पडता है। स्मृतिभ्रंशता (Amnesia) के रोगियों को पूर्व अनुभव याद नहीं रहता। स्मरण सम्बन्धी यह दोष मस्तिष्क आघात (Brain injury) के कारण होता है। इसी तरह, सिफलिस के कीटाणुओं से अग-शून्यता (Paralysis) होने पर मस्तिष्क की रचना मे काफी परिवर्त्तन हो जाता है। इस परिवर्त्तन से भी स्मरण प्रक्रिया कमजोर हो जाती है।

• लेकिन, बार्टलेट (Bartlett), पावरन, गिब्सन, आदि मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि स्मरण एक दैहिक प्रक्रिया नही, बल्कि मानसिक प्रक्रिया है। उन लोगों ने कहानी, चित्र, आदि विभिन्न उपकरणों के सहारे प्रयोग करके पाया कि स्मरण शिक्षण सबधी स्मरण-चिन्हो (Memory traces) पर निर्भर नही करता। यदि ऐसा होता तो प्रत्येक विषय अथवा अनुभव हमे समान मात्रा मे याद रहता। लेकिन, ऐसा नही होता। कोई घटना एक बार देखने पर ही बहुत समय तक याद रहती है और किसी घटना को बार बार देखने और अनुभव करने पर भी हम अधिक समय तक स्मरण नही रख पाते। ऐसा इसलिए होता है, चूँकि स्मरण अभिरुचि, प्रेरणा, पक्षपात, आदि मानसिक अवस्थाओ द्वारा निर्धारित होता है। अतएव यह एक मानसिक प्रक्रिया है। सडक पर चलते समय हम बहुत चीजों को देखते और अनुभव करते है। लेकिन, कुछ समय के बाद हमे केवल वही चीजे याद रह जाती है जिनमे हमारी रुचि रहती है। ऐसे ही जो अनुभव सुखद होते है वे अधिक समय तक याद रहते है, दूसरी ओर, हम दुखद अनुभवों को जल्द भूल जाते है। यदि स्मरण दैहिक प्रक्रियाओ या स्मरण चिन्हों पर निर्भर करता तो ऐसा नही होता। किसी घटना के स्मरण करने मे कुछ अश हम अवश्य ही छोड देते है और कुछ अपनी ओर से जोड देते है। इस तरह, सीखे हुए विषय का स्मरण करने मे विषय में परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्त्तन इसीलिए होता है, चूँकि स्मरण एक मानसिक या रचनात्मक और गत्यात्मक (Dynamic) प्रक्रिया है। वस्तुत यदि स्मरण मानसिक प्रक्रिया न होती तो यह मनोविज्ञान का अध्ययन-विषय न बन पाती। अत यह मानसिक प्रक्रिया तो है ही। हाँ, प्रत्येक मानसिक प्रक्रिया का कुछ दैहिक आधार (Physiological basis) भी होता है। स्मरण का भी दैहिक आधार—स्मरण-चिन्ह है। लेकिन, इससे इसे दैहिक प्रक्रिया नही कहा जा सकता। इसलिये स्मरण न तो पूर्णत एक दैहिक प्रक्रिया है और न मनोवैज्ञानिक अथवा रचनात्मक, बल्कि यह एक दैहिक (Physiological)—मनोवैज्ञानिक (Psychological) प्रक्रिया है। इसी को दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि यह एक पुनरोत्पादक (Reproductive)—रचनात्मक (Constructive) प्रक्रिया है। अब, यहाँ स्मरण की चार प्रक्रियाओ शिक्षण (Learning), धारणा (Retaining), प्रत्याह्वान (Recalling), तथा प्रत्यभिज्ञा या पहचानने (Recognizing) की व्याख्या कर देना अपेक्षित है।

शिक्षण की प्रक्रिया
(Learning)

शिक्षण की परिभाषा और स्वरूप की चर्चा सातवे अध्याय मे की जा चुकी है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह स्मरण के अन्तर्गत पहली मानसिक प्रक्रिया है। किसी चीज को सीखे बिना उसके स्मरण का प्रश्न ही नही उठता। हम कोई विषय याद कर रहे है, यह कहने ही से स्पष्ट हो जाता है कि हमने उसे पहले कभी सीखा था। जब हम कोई विषय सीखते है अथवा किसी घटना का अनुभव करते है तो विषय (अथवा घटना) के विभिन्न अशों के साथ कुछ साहचर्य (Association) स्थापित हो जाते है। इन साहचर्य सबन्धों के ही कारण हम उस विषय या घटना को स्मरण कर पाते है। शिक्षण और स्मरण सबन्धी प्रयोगों के लिए सर्व प्रथम इबिंगहॉस (Ebbinghaus) ने एक ऐसे उपकरण का निर्माण किया जो सभी व्यक्तियों के लिए प्राय समान परिचय और कठिनाई का

था। यह उपकरण था, निरर्थक पद (Nonsense Syllable)। उसने विभिन्न प्रयोगों के लिये २३०० निरर्थक पदों का निर्माण किया। निरर्थक पद का अर्थ अक्षरों के उस समूह से है जिसका कोई अर्थ नहीं होता। यों तो कम पदों के निरर्थक पदों के सहारे भी प्रयोग किया गया है, लेकिन अधिकांश तीन अक्षरों के निरर्थक पदों का ही व्यवहार किया जाता है जिनके बीच मे स्वर (Vowel) तथा दोनों किनारों में व्यंजन वर्ण (Consonant) रहते है, यथा, VEZ, RUF, KIF, JUH, आदि। हिन्दी में इन निरर्थक पदों का कुछ निर्माण तो हुआ है, परन्तु अभी तक उनका प्रमाणीकरण नहीं हो सका है। ट्सम, डकन, भ्रअन, टखर, भज्ञछ, आदि हिन्दी के निरर्थक पदों के उदाहरण है। इन निर्माण मे स्वराक्षर देना आवश्यक नही है।[1]

उपकरण परिमाण और उसके सीखने के समय में सम्बन्ध विभिन्न लम्बाई की निरर्थक पद सूचियों के सीखने सम्बन्धी जो प्रयोग हुए है उनसे इतना तो स्पष्ट है कि निरर्थक पदों की संख्या जितनी ही अधिक होती जाती है, उन्हें सीखने में समय भी अधिक लगता है। ऐसा इसलिए होता है, चूँकि पद सूची जितनी ही लम्बी होती है विभिन्न निरर्थक पदों के बीच के साहचर्य (Associations) भी अधिक संख्या में स्थापित करने पड़ते है। साथ ही, पद सूची लम्बी होने पर आगे के कई निरर्थक पद पीछे के पदों के सीखने में बाधक हो जाते है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने यह देखने का प्रयास किया है कि उपकरण के परिमाण (Amount) और उन्हे सीखने मे लगे समय के बीच कोई समानुपातिक सम्बन्ध (Ratio) है या नही। सर्वप्रथम इबिंगहास ने ७,१०,१२,१६,२४, और ३६ निरर्थक पदों की सूचियाँ को क्रमश सीखा और प्रत्येक के सीखने मे लगे समय का अंकित किया। लेकिन, परिणाम से उपकरण परिमाण और सीखने के समय मे किसी तरह का समानुपातिक सम्बन्ध नहीं दीख पड़ा। इसी तरह, कुछ दूसरे प्रयोगों से भी पता चलता है कि सूची की लम्बाई जितनी ही अधिक होती जाती है एक निरर्थक पद को सीखने में समय भी अधिक लगता है, किन्तु इस वृद्धि का कोई नियम नहीं है। लेकिन, थर्स्टन (Thurstone) ने अपने प्रयोगों में इससे भिन्न परिणाम पाया। उसका कथन है कि स्मरण विस्तार (Memory Span) के बाद प्रत्येक निरर्थक पद को सीखने में जो समय लगता है वह पद संख्या के वर्गमूल (Square root of the number of syllables) के अनुरूप होता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी प्रयोज्य का स्मरण-विस्तार चार निरर्थक पद है तो चार से अधिक प्रत्येक निरर्थक पद को सीखने में उस सूची की पद संख्या के वर्गमूल के अनुकूल समय लगेगा। यदि नौ पदों की सूची को सीखते समय चार पद के बाद एक पद को सीखने में औसत तीन सेकण्ड समय लगता है तो १६ पदों की सूची सीखते समय उसे चार पद के बाद औसत एक पद को सीखने में चार सेकण्ड लगेगा।

शिक्षण मे साहचर्य सम्बन्धी अङ्गो का महत्त्व

(Importance of Association of other factors in learning)

शिक्षण मे साहचर्य्य का बहुत अधिक महत्त्व होता है। किसी भी चीज को सीखने मे हमारा गत अनुभव या अनुभूति मदद करती है। यह सहायता साहचर्य के सहारे ही सम्भव हो पाती है। प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि निरर्थक पदों को सीखने मे भी वे पद निरर्थक नहीं

१ हिन्दी के निरर्थक पदों के निर्माण के लिए लेखक का मनोवैज्ञानिक प्रयोग देखें।

रह जाते, बल्कि साहचर्य के सहारे हम उनका सम्बन्ध किसी सार्थक शब्द से कर लेते हैं। जैसे, KUT एक निरर्थक पद है, लेकिन याद करने मे इसका सम्बन्ध 'CUT' (कट=काटना) से कर लेते है। फलत KUT एक निरर्थक पद नही रह जाता और हम उसे आसानी से सीख लेते है। किसी अक को याद करने मे भी साहचर्य बहुत सहायता करता है। वह अक जो हमारे किसी अनुभव मे सम्बन्धित है, जल्द याद हो जाता है। जैसे, यदि किसी लेख मे १८५७, १८६२, १९०१, १९१० तथा १९२३ ईस्वीया लिखी हों तो साधारणत एक बार पढ लेने पर भी और कोई ईस्वी याद हो या न हो, १८५७ अवश्य याद हो जायगा। क्योंकि, १८५७ के साथ भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना जुटी है। निरर्थक पदों के सहारे जो प्रयोग हुए हैं उनसे शिक्षण मे कुछ खास तरह के साहचर्य और समूहीकरण के महत्त्व का पता चला है।

इबिगहास ने कई निरर्थक पदसूचियों के सहारे प्रयोग करके पाया कि प्रत्येक निरर्थक पद का कुछ सम्बन्ध अपने आगे और पीछे के पदों से हो जाता है, फलत उस पद के याद होने पर अग्रिम और पश्चात् साहचर्य के कारण व्यक्ति आगे और पीछे के पदों को भी आसानी से याद कर लेता है।

निरर्थक पदो के सीखने मे कभी कभी एक लयात्मक सगठन (Rhythmical organisation) भी हो जाता है। इससे उस सगठन वा समूह के सभी पदों मे एक साहचर्य स्थापित हो जाता है और वे पद आसानी से सीख लिए जाते हैं। म्युलर तथा शुमन ने अपने प्रयोगो मे पाया कि लयात्मक रूप मे पढ़ने से किसी विषय को सीखने में आसानी होती है। छोटे बच्चे गद्य को भी जब लयात्मक रूप से जोर जोर से पढ़ते है तो उन्हे सीखने मे सहूलियत होती है।

गेम्बुल, विल्सन, आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों मे पाया कि सीखने मे प्रयोज्य स्थानीय समूहीकरण (Spatial grouping) की सहायता लेते है। १२ या १९ निरर्थक पदों की सूची को सीखने मे प्रयोज्य पूरी सूची के पदों को तीन तीन चार-चार पदों के भागों मे बांट दिया करते है। ऐसा करने से उन्हे सीखने मे सहूलियत होती है। एक प्रयोग मे स्थानीय समूहीकरण की सहायता लेने पर प्रयोज्यों की प्रतिक्रिया ६० प्रतिशत शुद्ध हुई, लेकिन जब उन्होंने पदों को समूहों मे नही बांटा तो वे केवल १९ प्रतिशत ही शुद्ध प्रतिक्रिया कर पाये।

स्मरण के सिलसिले में हुए प्राय सभी प्रयोगों में प्रयोज्यो को सीखते समय दृष्टि-प्रतिमा (Visual image) या श्रवण-प्रतिमा (Auditory image) से काफी सहायता मिली। कितने प्रयोज्यो ने यह व्यक्त किया है कि अमुक निरर्थक पद से उन्हे अमुक व्यक्ति, वस्तु या स्थिति की प्रतिमा का अनुभव हुआ और फलत वे आसानी से याद हो गए। इस तरह, सीखने मे तरह-तरह के साहचर्यों की सहायता ली जाती है।

शिक्षण की विधियाँ

(Methods of learning)

हम किसी विषय को किस तरह से सीखते है, इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों ने कई

विधियों का उल्लेख किया है। यहाँ हम निम्नांकित कुछ प्रमुख विधियों की व्याख्या करेंगे।

(क) आंशिक तथा पूर्ण विधियाँ (Part and whole methods),

(ख) निरन्तर तथा व्यवधान विधियाँ (Massed and Spaced methods),

(ग) सक्रिय तथा निष्क्रिय विधियाँ (Active and Passive methods)।

(क) आंशिक तथा पूर्ण विधियाँ (Part and whole methods) किसी विषय को प्रत्येक बार आद्योपांत पढ़ कर सीखने की विधि को पूर्ण विधि (Whole method) कहते हैं। दूसरी ओर, पूरे विषय को विभिन्न हिस्सों में बाँट कर अलग-अलग सीखने की विधि को आंशिक विधि कहते हैं। इन दोनों में कौन विधि श्रेयस्कर और अधिक उपयोगी है, इसे पता लगाने के लिए कई प्रयोग हुए हैं।

इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम लोटी स्टेफेन्स (Lottie Steffens) ने निरर्थक पद तथा अन्य प्रकार के उपकरणों के सहारे सयानों और बच्चों पर प्रयोग किया। उसने पाया कि आंशिक विधि की अपेक्षा पूर्ण विधि से सीखने में प्रयोज्यों को १० प्रतिशत कम समय लगा। मेयर (Meyer) के ९३ प्रयोज्यों में ४८ प्रयोज्यों को उस समय १९ प्रतिशत समय की बचत हुई जब कि उन्होंने पूर्ण विधि से सीखा। कई प्रयोगों में साहचर्य युग्म पदों (Paired associates) तथा कार्ड छाँटने (Card sorting) के शिक्षण में भी पूर्ण विधि ही अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

लेकिन, प्रयोग परिणामों में समरसता नहीं है। ऐसे मनोवैज्ञानिक परिणामों की भी कमी नहीं है जिनसे आंशिक विधि (Part method) श्रेष्ठ मालूम होती है। पेक्स्टाइन (Pechstein) के एक प्रयोग में ३२ निरर्थक पदों को छः प्रयोज्यों ने पूर्ण विधि से सीखा और छः प्रयोज्यों ने उसे आंशिक विधि से सीखा। इससे पता चला कि आंशिक विधि से सीखने वाले प्रयोज्यों को अपेक्षाकृत कम समय लगा। पेक्स्टाइन के अनुसार, स्थानान्तरण (Transference) के कारण आंशिक विधि अधिक उपयोगी है। उसने चूहों और मनुष्यों के भूलभुलैया सीखने सम्बन्धी जो प्रयोग किए उनमें भी आंशिक विधि ही अधिक उपयोगी सिद्ध हुई। रीड तथा पिंच, आदि मनोवैज्ञानिकों ने भी जब अपने प्रयोज्यों को कुछ गद्य तथा पद्य सिखलाया तो प्रयोज्यों को आंशिक विधि से सीखने में ही सुविधा हुई।

इस तरह देखते हैं कि पूर्ण और आंशिक दोनों विधियों की उपयोगिता के पक्ष में बहुत से प्रयोगात्मक प्रमाण हैं। अतः हठात् किसी एक को दूसरे से अधिक उपयोगी और सफल नहीं माना जा सकता। वस्तुतः ये दोनों विधियाँ एक दूसरे की विरोधी नहीं हैं। यदि सीखने में दोनों का उपयोग किया जाए तो वह ज्यादा अच्छा हो। मेक्गा (McGeoch) ने भी अपने प्रयोगों के आधार पर कहा है कि आंशिक और पूर्ण विधियाँ एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। आंशिक विधि से सीखने में भी अन्त में हम पूरे विषय को एक साथ ही सीखते (याद करते) हैं। आंशिक विधि से याद करने से विषय के विभिन्न आवश्यक अंग आसानी से ध्यान में चले आते हैं। इसके बाद पूर्ण विधि से सीखने पर

विभिन्न भागों (अगों) में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और फलत विषय आसानी से याद हो जाता है। अत किसी गद्य, पद्य, शब्द-सूची या क्रिया को सीखते समय प्रारम्भ मे आशिक विधि का सहारा लेना चाहिए। ऐसा करने से सीखनेवाला आसानी से अभियोजित हो जाता है और फलत सतुष्ट रहता है। लेकिन, यदि विषय कठिन हो तो पूर्ण विधि से ही सीखना शुरू करना अच्छा होता है। लेकिन, पूर्ण विधि से सीखते समय उसे यह ख्याल रखना चाहिए कि वह विषय के कठिन या आवश्यक भागों पर विशेष ध्यान दे। इस तरह सीखने से विषय (उपकरण) के विभिन्न अशों मे एक क्रमबद्ध साहचर्य (Association) स्थापित हो जाता है और विषय जल्दी याद हो जाता है। लेकिन, कौन सी विधि अधिक उपयोगी होगी, यह विषय के स्वरूप तथा प्रयोज्य पर भी निर्भर करता है। मेक्गो के कथन के बावजूद भी कुक के प्रयोग परिणाम को ध्यान मे रखते हुए कहा जा सकता है कि प्राय लम्बे और कठिन विषय को सीखने के लिये आशिक और छोटे तथा सरल विषय के लिये पूर्ण विधि लाभप्रद प्रमाणित होती है।

(ख) निरतर तथा व्यवधान विधियाँ (Massed and Spaced methods) किसी विषय को लगातार अभ्यास करके सीखने की विधि को निरतर विधि (Massed method) कहते है। इस विधि से सीखने म प्रयोज्य जब किसी चीज को सीखना शुरू करता है तो उसे सीखने के बाद ही विश्राम करता है, बीच मे नही। व्यवधान विधि (Spaced method) इसके ठीक विपरीत है। इस विधि से सीखने मे प्रयोज्य बीच-बीच मे विश्राम करता है। दूसरे शब्दो मे, पूरे शिक्षण काल को कई भागों मे बाट कर याद करने की विधि को व्यवधान विधि कहते है। इन दोनों मे कौन विधि अधिक उपयोगी है, इसे जानने के लिए भी अनेक प्रयोग हुए हैं।

सर्वप्रथम इबिंगहास (Ebbinghaus) ने इस क्रम मे प्रयोग किया। उसने जब निरर्थक पद-सूचियों की क्रमश दोनों विधियों से सीखा तो पाया कि व्यवधान (Interval) दे-देकर सीखने मे सहूलियत और समय की बचत होती है। गद्य और पद्य याद करने मे भी, वेलवार्न और किलियन के प्रयोगों के अनुसार, व्यवधान विधि से ही सुविधा होती है। स्नाडी (Snody) ने काँच रेखाकन-प्रयोग (Mirror drawing experiment) मे पाया कि २० प्रयास लगातार करने पर जितनी अच्छी तरह रेखाकन करने आया उससे अच्छा रेखाकन उसने तब किया जब प्रत्येक प्रयास के बाद एक मिनट का विश्राम दिया। प्रत्येक प्रयास के बाद एक दिन का विश्राम देना उससे भी अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ। इस तरह ये सभी प्रयोग व्यवधान विधि को निरतर विधि से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न करते है।

लैशले (Lashley) का कहना है कि शिक्षण (Learning) की दो अवस्थायें (Stages) है। पहली अवस्था तो वह है जिसमे सीखने या याद करनेवाला खोज (Exploration) और अभियोजन (Adjustment) करता है, और दूसरी अवस्था वह है जिसमे वह उचित प्रतिक्रिया को सीखता या याद करता है। खोज करनेवाली अवस्था मे निरतर विधि (Massed method) किसी भी हालत मे लाभप्रद सिद्ध नही होती, इसलिए व्यवधान विधि (Spaced method) ही श्रेष्ठ मिलती है। कुक (Cook) भी शिक्षण की दोनों अवस्थाओं को मानता है, लेकिन उसका कहना है कि समय या विश्राम देने से उचित प्रतिक्रिया

भूल सकती है, इसलिये इस अवस्था में निरतर विधि (Massed method) ही अधिक उपयोगी है। पुन सन् १९३७ ई० में उसने पाया कि सरल उपकरणों को निरन्तर विधि से और कठिन उपकरणों को व्यवधान विधि से सीखना हितकर है। अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने प्रयोगों के आधार पर इस कथन की पुष्टि की है। एक प्रयोग में बारह निरर्थक पदों को याद करने मे निरतर विधि (Massed method) उपादेय सिद्ध हुई, किंतु कुछ लम्बी पद सूचियों को याद करने मे व्यवधान विधि (Spaced method) अधिक सहायक सिद्ध हुई। साथ ही, जब सूचियों की लम्बाई बढ़ा दी गई तब व्यवधान विधि और भी अधिक उपयोगी मालूम हुई। इसी तरह, सरल भूलभुलैया (Maze) का सीखने के लिये निरतर विधि (Massed method) लाभप्रद सिद्ध होती है, लेकिन कठिन भूलभुलैया को सीखने के लिये व्यवधान विधि का आश्रय लेना ही श्रेयस्कर है।

ऊपर के विवाद से इतना स्पष्ट है कि दोनों विधियो की उपादेयता जगह जगह पर होने पर भी व्यवधान विधि निरतर विधि की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि व्यवधान विधि से सीखने में व्यक्ति को सीखे हुए विषय का मानसिक चिंतन (Mental Review) करने का अवसर मिलता है। इसके अतिरिक्त, थकावट (Fatigue), अरोचकता Monotony) और ध्यान विचलन (Fluctuation of attention) भी सीखने के समय नही होता। अत इनके अभाव मे वह जो सीखता है ताजगी और ध्यान के कारण उसका चिन्ह (Trace) मस्तिष्क पर अच्छी तरह पड़ता है। व्यवधान काल (Interval Time) मे अशुद्ध प्रतिक्रियायें (Wrong responses) शुद्ध प्रतिक्रियाओं (Correct responses) की अपक्षा शीघ्र भूल जाती है, इसलिये जीव उचित प्रतिक्रिया की ही पुनरावृत्ति करता है। किसी क्रिया के बाद स्नायुततुओं (Muscle fibres) की क्रिया में वृद्धि होती है जिसमें पूर्णता कुछ घण्टों के बाद आती है। इस वृद्धि और पूर्णता से किसी क्रिया का स्मरण चिन्ह (Memory Trace) गहरा होता है। अतएव दोनों विधियों मे व्यवधान विधि (Spaced method) विशेष श्रेयस्कर प्रतीत होती है। फिर भी, सरल विषय को हम निरतर विधि से आसानी से सीख सकते है। व्यवधान विधि से सीखने मे दो प्रयासों के बीच कितने समय का व्यवधान दिया जाय, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। प्रयोगों स पता चलता है कि यह सीखेजाने वाले विषय, सीखनेवाला, और सीखने के समय पर निर्भर करता है। कुछ कठिन विषयों को अधिक समय तक सीखने पर १२ से २४ घटे तक के व्यवधान की जरूरत होती है। साराश यह कि व्यवधान उतने ही समय तक होना चाहिए जिसमें सीखे हुए विषय के स्मरण चिन्ह मजबूत बन सके, न कि कमजोर हो जायें।

(ग) सक्रिय तथा निष्क्रिय विधि (Active and Passive methods) निरर्थक पद-सूची, पद्य अथवा गद्य दो प्रकार से याद किया जा सकता है—मन में पढ़कर या उसे उच्च स्वर से बोलकर। उच्च स्वर से बोलकर उपकरण (material) को याद करने को सक्रिय विधि (Active method) और मन में पढ़कर याद करने की विधि का निष्क्रिय विधि (Passive method) कहते है। सक्रिय विधि में ही पूर्वोक्षण विधि (Anticipation method) का भी बोध होता है। एक बार किसी विषय को पढ लेने पर हम यह देखते है कि कितना अश उसका याद हो चुका है। इस तरह, प्रत्येक प्रयास को सीखने के बाद प्रयोज्य को अपने शिक्षण परिमाण का अदाज रहता है। फलत वह आगे

सीखने के लिए प्रयत्नशील रहता है। इबिंगहास तथा उसके अनुयायियों ने विभिन्न उपकरणों को याद करने में सक्रिय विधि (Active method) लाभप्रद पाया। गेट्स(Gates) ने निरर्थक पद तथा छोटी जीवनियों को सीखने के कई प्रयोग स्कूल, कालेज और पाठशाला के विद्यार्थियों पर किया। उसे प्रत्येक अवस्था में सक्रिय विधि श्रेष्ठ मालूम पडी। उसके एक प्रयोग मे निरर्थक पदों को जब निष्क्रिय विधि से याद किया गया तब प्रयोज्य सिर्फ ३९ प्रतिशत प्रत्यावाहन (Recall) करने मे समर्थ हुआ, किन्तु जब कुल समय का पाचवाँ हिस्सा सक्रिय विधि मे लगाया गया तब वह ९० प्रतिशत प्रत्यावाहन कर सका। प्रत्यावाहन का प्रतिशत उस समय अधिकतम था जब कि बहुत अधिक समय सक्रिय विधि (Active method) से सीखने मे लगाया गया। यह विधि सार्थक उपकरणों की अपेक्षा निरर्थक उपकरणों को याद करने मे विशेष लाभप्रद सिद्ध हुई।

प्रश्न है, सक्रिय विधि उपयोगी और श्रेष्ठ क्यों है? इसका कारण यह है कि इस विधि से सीखने मे सीखने वाले को निष्क्रिय विधि की अपेक्षा अत्यधिक उत्तेजना और प्रोत्साहन मिलता है। उच्च स्वर से याद करने मे उसकी इच्छा भी याद करने की बनी रहती है। इस तरह से सीखने मे वह उस विषय के विभिन्न अशों के बीच के सबन्ध को जोडता है और इसलिए विषय बोधगम्य और सरल हो जाता है। जो कुछ याद कर लेता है उसका भी उसे ज्ञान होता है और जो याद करना बाकी रहता है उसका भी ज्ञान अच्छी तरह हो जाता है। प्रयोज्यो के अन्तर्निरीक्षण (Introspection) से पता चलता है कि उच्च स्वर से याद करने के कारण सभी पदों या अवतरणों के भाव अच्छी तरह से समझ मे आ जाते है। किन्तु, मन मे याद करने से ऐसा नही होता है। इतना ही नही, बल्कि उच्चस्वर से याद करने के कारण उपकरण के विभिन्न अशों का लयात्मक समूहीकरण (Rhythmical grouping) और स्थानीयकरण (Localisation) आसानी से होता है और याद करना सरल हो जाता है। ये दोनों अग शिक्षण मे बहुत सहायक सिद्ध होते है। इस विधि से याद करने मे विषय का ज्ञान एक रूप या सघात (Pattern) में होता है जिसके परिणामस्वरूप याद करने में आसानी होती है। जो उसे याद नही रहता उसपर वह अधिक ध्यान देता है और फलत उसे याद कर लेता है। विभिन्न प्रयोज्यों के अन्तर्निरीक्षण से यह विदित होता है कि मन मे पढ़ने से प्रयोज्यों का ध्यान उधर से निरतर विचलित होता रहता है और याद करने में थकावट, आदि अगो का अनुभव करते है जिससे याद करना कठिन हो जाता है। किंतु, सक्रिय विधि से सीखने मे ऐसी बाधाएँ नही होती।

लेकिन, इसका अर्थ यह नही कि निष्क्रिय विधि बिल्कुल बेकार है। किसी विषय को सीखते समय शुरू मे एक दो बार मन में पढकर पूरे विषय का निरीक्षण कर लेना अधिक उपयोगी होता है। इसके बाद सक्रिय विधि के सहारे सघात (Pattern) का निर्माण करना आसान हो जाता है।

शिक्षण की उपर्युक्त तीनों प्रकार की विधियों के सम्बन्ध मे हम कह सकते है कि साधारणत किसी विषय को आशिक, व्यवधान और सक्रिय विधि से सीखना अधिक लाभप्रद है। लेकिन, विषय के सरल होने पर पूर्ण और निरतर विधियों से सीखना भी कम लाभप्रद नही होता। निष्क्रिय विधि की भी अपनी उपयोगिता है। अभ्यास होने पर

भूल सकती है, इसलिये इस अवस्था में निरतर विधि (Massed method) ही अधिक उपयोगी है। पुन सन् १९३७ ई० में उसने पाया कि सरल उपकरणों को निरन्तर विधि से और कठिन उपकरणों को व्यवधान विधि से सीखना हितकर है। अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने प्रयोगों के आधार पर इस कथन की पुष्टि की है। एक प्रयोग में बारह निरर्थक पदों को याद करने मे निरतर विधि (Massed method) उपादेय सिद्ध हुए, किंतु कुछ लम्बी पद सूचियो को याद करने में व्यवधान विधि (Spaced method) अधिक सहायक सिद्ध हुई। साथ ही, जब सूचियों की लम्बाई बढ़ा दी गई तब व्यवधान विधि और भी अधिक उपयोगी मालूम हुई। इसी तरह, सरल भूलभुलैया (Maze) को सीखने के लिये निरतर विधि (Massed method) लाभप्रद सिद्ध होती है, लेकिन कठिन भूलभुलैया को सीखने के लिये व्यवधान विधि का आश्रय लेना ही श्रेयस्कर है।

ऊपर के विवाद से इतना स्पष्ट है कि दोनों विधियो की उपादेयता जगह जगह पर होने पर भी व्यवधान विधि निरतर विधि की अपक्षा श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि व्यवधान विधि से सीखने में व्यक्ति को सीखे हुए विषय का मानसिक चिंतन (Mental Review) करने का अवसर मिलता है। इसके अतिरिक्त, थकावट (Fatigue), अरोचकता Monotony) और ध्यान विचलन (Fluctuation of attention भी सीखने के समय नही होता। अत इनके अभाव मे वह जो सीखता है ताजगी और ध्यान के कारण उसका चिन्ह (Trace) मस्तिष्क पर अच्छी तरह पड़ता है। व्यवधान काल (Interval Time) मे अशुद्ध प्रतिक्रियाये (Wrong responses) शुद्ध प्रतिक्रियाओं (Correct responses) की अपेक्षा शीघ्र भूल जाती है, इसलिये जीव उचित प्रतिक्रिया की ही पुनरावृत्ति करता है। किसी क्रिया के बाद स्नायुततुओं (Muscle fibres) की क्रिया में वृद्धि होती है जिसमें पूर्णता कुछ घण्टों के बाद आती है। इस वृद्धि और पूर्णता से किसी क्रिया का स्मरण चिन्ह (Memory Trace) गहरा होता है। अतएव दोनों विधियों मे व्यवधान विधि (Spaced method) विशेष श्रेयस्कर प्रतीत होती है। फिर भी, सरल विषय को हम निरतर विधि स आसानी से सीख सकते है। व्यवधान विधि से सीखने में दो प्रयासों के बीच कितने समय का व्यवधान दिया जाय, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। प्रयोगों से पता चलता है कि यह सीखेजाने वाले विषय, सीखनेवाला, और सीखने के समय पर निर्भर करता है। कुछ कठिन विषयों को अधिक समय तक सीखने पर १२ से २४ घटे तक के व्यवधान की जरूरत होती है। साराश यह कि व्यवधान उतने ही समय तक होना चाहिए जिसमें सीखे हुए विषय के स्मरण चिन्ह मजबूत बन सके, न कि कमजोर हो जायें।

(ग) सक्रिय तथा निष्क्रिय विधि (Active and Passive methods) निरर्थक पद-सूची, पद्य अथवा गद्य दो प्रकार से याद किया जा सकता है—मन में पढ़कर या उसे उच्च स्वर से बोलकर। उच्च स्वर से बोलकर उपकरण (material) को याद करने को सक्रिय विधि (Active method) और मन में पढ़कर याद करने की विधि का निष्क्रिय विधि (Passive method) कहते है। सक्रिय विधि में ही पूर्वोक्षण विधि (Anticipation method) का भी बोध होता है। एक बार किसी विषय को पढ लेने पर हम यह देखते है कि कितना अश उसका याद हो चुका है। इस तरह, प्रत्येक प्रयास को सीखने के बाद प्रयोज्य को अपने शिक्षण-परिमाण का अदाज रहता है। फलत वह आगे

सीखने के लिए प्रयत्नशील रहता है। इबिंगहास तथा उसके अनुयायियों ने विभिन्न उपकरणों को याद करने में सक्रिय विधि (Active method) लाभप्रद पाया। गेट्स(Gates) ने निरर्थक पद तथा छोटी जीवनियों को सीखने के कई प्रयोग स्कूल, कालेज और पाठशाला के विद्यार्थियों पर किया। उसे प्रत्येक अवस्था में सक्रिय विधि श्रेष्ठ मालूम पडी। उसके एक प्रयोग मे निरर्थक पदों को जब निष्क्रिय विधि से याद किया गया तब प्रयोज्य सिर्फ ३९ प्रतिशत प्रत्यावाहन (Recall) करने मे समर्थ हुआ, किन्तु जब कुल समय का पाचवाँ हिस्सा सक्रिय विधि मे लगाया गया तब वह ९० प्रतिशत प्रत्यावाहन कर सका। प्रत्यावाहन का प्रतिशत उस समय अधिकतम था जब कि बहुत अधिक समय सक्रिय विधि (Active method) से सीखने मे लगाया गया। यह विधि सार्थक उपकरणों की अपक्षा निरर्थक उपकरणों को याद करने मे विशेष लाभप्रद सिद्ध हुई।

प्रश्न है, सक्रिय विधि उपयोगी और श्रेष्ठ क्यों है? इसका कारण यह है कि इस विधि से सीखने मे सीखने वाले को निष्क्रिय विधि की अपेक्षा अत्यधिक उत्तेजना और प्रोत्साहन मिलता है। उच्च स्वर से याद करने मे उसकी इच्छा भी याद करने की बनी रहती है। इस तरह से सीखने मे वह उस विषय के विभिन्न अशों के बीच के सबन्ध को जोडता है और इसलिए विषय बोधगम्य और सरल हो जाता है। जो कुछ याद कर लेता है उसका भी उसे ज्ञान होता है और जो याद करना बाकी रहता है उसका भी ज्ञान अच्छी तरह हो जाता है। प्रयोज्यों के अन्तर्निरीक्षण (Introspection) से पता चलता है कि उच्च स्वर से याद करने के कारण सभी पदों या अवतरणों के भाव अच्छी तरह से समझ मे आ जाते हैं। किन्तु, मन मे याद करने से ऐसा नही होता है। इतना ही नही, बल्कि उच्चस्वर से याद करने के कारण उपकरण के विभिन्न अशों का लयात्मक समूहीकरण (Rhythmical grouping) और स्थानीयकरण (Localisation) आसानी से होता है और याद करना सरल हो जाता है। ये दोनों अग शिक्षण मे बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। इस विधि से याद करने में विषय का ज्ञान एक रूप या सघात (Pattern) मे होता है जिसके परिणामस्वरूप याद करने में आसानी होती है। जो उसे याद नही रहता उसपर वह अधिक ध्यान देता है और फलत उसे याद कर लेता हे। विभिन्न प्रयोज्यों के अन्तर्निरीक्षण से यह विदित होता है कि मन मे पढने से प्रयोज्यों का ध्यान उधर से निरतर विचलित होता रहता है और याद करने में थकावट, आदि अगो का अनुभव करते है जिससे याद करना कठिन हो जाता है। किंतु, सक्रिय विधि से सीखने मे एसी बाधाएँ नही होती।

लेकिन, इसका अर्थ यह नही कि निष्क्रिय विधि बिल्कुल बेकार है। किसी विषय को सीखते समय शुरू मे एक दो बार मन में पढकर पूरे विषय का निरीक्षण कर लेना अधिक उपयोगी होता है। इसके बाद सक्रिय विधि के सहारे सघात (Pattern) का निर्माण करना आसान हो जाता है।

शिक्षण की उपर्युक्त तीनो प्रकार की विधियों के सम्बन्ध मे हम कह सकते है कि साधारणत किसी विषय को आशिक, व्यवधान और सक्रिय विधि से सीखना अधिक लाभप्रद है। लेकिन, विषय के सरल होने पर पूर्ण और निरतर विधियों से सीखना भी कम लाभप्रद नही होता। निष्क्रिय विधि की भी अपनी उपयोगिता है। अभ्यास होने पर

विकसित और प्रौढ़ बुद्धि के लोग मन ही मन पढकर किसी विषय को तुरत याद कर लेते है, उन्हे किसी तरह की बाधा नही होती। इस तरह, प्रत्यक विधि की अपनी उपयोगिता हे और आवश्यकतानुसार ही उसका उपयोग लाभप्रद है।

धारणा

(Retention)

किसी सीखे हुये विषय को मस्तिष्क मे चिन्ह (Trace) रूप मे सुरक्षित रखने की प्रक्रिया को ही धारणा (Retention) की प्रक्रिया कहते है। हम स्मरण स्वरूप (Nature of memory) का वर्णन करते हुये यह व्यक्त कर चुके है कि शिक्षण का सस्कार (Trace) हमारे मस्तिष्क मे स्थाकर बना रहता है। इसलिये इतना ही कहना पर्याप्त है कि हम किसी उपकरण अथवा कौशल (Skill) को सस्कार (Trace) के रूप मे ही धारण करते हे। यह एक जैव (Biological) प्रक्रिया है, अतएव इसका निरीक्षण करना असभव हे। किन्तु, इसका ज्ञान प्रत्यावाहन (Recall), पहचानना (Recognition) और पुनर्शिक्षण (Relearning) के द्वारा होता है। प्रत्यावाहन (Recall) को धारणा (Retention) का पर्याप्त प्रमाण नही कहा जा सकता, क्योंकि कभी कभी एसा होता है कि हमे किसी गत अनुभव (Past experience) की धारणा रहती है, लेकिन उसका प्रत्यावाहन किसी कारण विशेष से नही होता और बाद मे पुन उसका प्रत्यावाहन स्वत होता है। इसके लिये अनुकूल परिस्थिति और सस्कारों की दृढता (Strength) आवश्यक है। यही कारण है कि यद्यपि इसके द्वारा धारणा पर प्रकाश पड़ता है, लेकिन इसकी पूर्णता पर विश्वास नहीं किया जाता। प्रत्यभिज्ञा (Recognition) और पुनर्शिक्षण (Relearning) निस्सदेह धारणा को अच्छी तरह प्रमाणित करते है। हम किसी अनुभव का प्रत्यावाहन भले न कर सके, लेकिन उसकी प्रत्यभिज्ञा हमे आसानी से हो जाती है। यदि धारणा न रहती तो प्रत्यभिज्ञा असभव होती। इसी तरह, पुनर्शिक्षण (Relearning) भी धारणा (Retention) को पूर्णरूपेण प्रतिपादित करता है। किसी विषय को याद कर लेने पर भी बाद मे हम उसका प्रत्यावाहन करने मे असमर्थ हो जाते है। लेकिन, पुन जब उसको याद करते है तब दूसरी बार याद करने मे पहले की अपेक्षा कम समय लगता है। इस कम समय का लगना यह प्रमाणित करता हे कि उस विषय की धारणा (Retention) हमें कुछ अशों में थी, अन्यथा पुर्नशिक्षण म समय की बचत नहा होती।

शिक्षण के बाद ही तुरत धारणा—प्रक्रिया समाप्त नहीं होती, बल्कि दैहिक प्रक्रिया (Physiological process) के रूप मे उसकी प्रक्रिया कुछ समय तक चलती रहती है। धारणा को सबल बनाने के लिये चिन्हो (Traces) के पुष्टिकरण (Consolidation) की प्रक्रिया होती है। यद्यपि इसका भी ज्ञान प्रत्यक्षतया नहीं होता, तथापि इसमें विश्वास करना पड़ता है, क्योंकि किसी विषय को सीखने के बाद जब व्यक्ति दूसरा कोई विषय नहा सीखता तब उसकी धारणा अच्छी होती है। लेकिन, कुछ सीखने के बाद यदि वह तुरत कुछ नया विषय सीखता हे तो पहले शिक्षण (Learning) की धारणा (Retention) कमजोर हो जाती है।

इसलिये ऐसा अनुमान किया जाता है कि शिक्षण के बाद संस्कारों (Traces) के पुष्टिकरण की दैहिक प्रक्रिया होती है। इसके अतिरिक्त, संस्कार-प्रसक्ति व्यापार (Perseveration) भी कुछ व्यक्तियों में देखने में आता है। जब वे किसी गद्यांश अथवा अन्य प्रकार के उपकरण को याद कर लेते हैं तब उसके बाद बिना किसी प्रयास के उन उपकरणों के कुछ अंशों का प्रत्यावाहन (Recall) होता रहता है। यही प्रत्यावाहन व्यापार संस्कार-प्रसक्ति (Perseveration) के नाम से प्रख्यात है। इसका उदाहरण हम लोगों के जीवन में अधिक मिलता है। यह व्यापार भी पुष्टिकरण प्रक्रिया (Consolidation) को प्रमाणित करता है और मनोवैज्ञानिकों का ऐसा विश्वास है कि इस प्रक्रिया से भी संस्कारों की दृढ़ता बढ़ती है।

धारणा को प्रभावित करनेवाले अंग
(Factors of Retention)

धारणा की प्रक्रिया कई बातों या अंगों पर निर्भर करती है। किसी विषय को जितनी अधिक देर तक सीखा जाता है, उसकी धारणा उतनी ही अच्छी और सबल होती है। लेकिन, धारणा को प्रभावित करने वाला केवल यही अंग नहीं है। अन्य कई बातें भी धारणा को कमजोर या सबल बनाती है। यहाँ हम कुछ प्रमुख कारणों का उल्लेख करेंगे। यद्यपि धारणा में व्यक्तिगत भिन्नता (Individual difference) देखने में आती है, तथापि इन अंगों का प्रभाव इस पर काफी पड़ता है।

(१) **शिक्षण की मात्रा** (Amount or degree of learning). धारणा शिक्षण पर ही निर्भर करती है। जिस विषय को हम जितनी ही अधिक बार सीखते हैं उसकी धारणा उतनी ही सबल होती है और फलत बहुत दिनों तक बनी रहती है। दूसरी ओर, जिस विषय को कम मात्रा में सीखते हैं उसकी धारणा भी अच्छी नहीं रह पाती और फलत उसे हम शीघ्र भूल जाते है। इबिंगहास ने इसे जाँचने के लिए समान लम्बाई की सात पदसूचियों को क्रमश ८, १६, २४, ३२, ४२, ५३ और ६४ बार पढ़ा। प्रत्येक सूची में पदों की संख्या समान थी, इसलिए कुछ सूचियाँ आवश्यकता से कम और कुछ अत्यधिक याद की गई। २४ घंटे बाद उसने पुनर्शिक्षण विधि (Relearning method) से प्रत्येक सूची की धारणा का प्रतिशत निकाला। पुनर्शिक्षण (Relearning) में पहले की अपेक्षा जितना समय कम लगा, वह उन सूचियों की धारणा का द्योतक था। उसके प्रयोग-परिणाम का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसे दूसरी बार पहले सीखी हुई सूचियों को याद करने के समय में जो बचत हुई थी उसका प्रतिशत क्रमश ८, १९, २३, ३२, ४९, ५४ और ६४ प्रतिशत था। इससे यह प्रमाणित होता है कि किसी उपकरण की धारणा उसके सीखने की मात्रा पर भी निर्भर करती है। लेकिन, यह ध्यान में रखना होगा कि याद करने की मात्रा का प्रभाव धारणा पर उसी समय तक पड़ता है जब तक कि उसकी मात्रा दैहिक सीमा (Physiological limit) तक नहीं पहुँच जाती। उसके बाद कितना भी अधिक प्रयास क्यों नहीं किया जाय, किंतु उसका प्रभाव धारणा पर कुछ भी नहीं अथवा अत्यल्प पड़ता है।

लुह (Luh) ने अपने दस प्रयोज्यों से १२ निरर्थक पद सूचियों को याद करवाया। उनके सीखने की मात्रा १५०, १००, ६७ और ३३ प्रतिशत थी। सौ प्रतिशत

शिक्षण मे प्रयोज्य को उतनी बार सीखना पड़ा जितना कि उपकरण को एक बार अच्छी तरह प्रत्यावाहन करने के लिये पर्याप्त था। १५० प्रतिशत म पहले की कुल सख्या और उसकी आधी सख्या के योग के बराबर अभ्यास करना पड़ा। ६७ प्रतिशत के शिक्षण (Learning) मे १०० प्रतिशत मे जितना प्रयास लगा था उसका दो तिहाई और ३३ प्रतिशत मे १०० प्रतिशत के अभ्यास का एक तिहाई प्रयास कराया गया। फिर धारणा (Retention) की परीक्षा चार घण्टे, एक दिन और दो दिन बाद अकित पुनरोत्पादन (Reproduction), प्रत्यभिज्ञा (Recognition) और पुनर्निर्माण (Reconstruction) तीन विधियो से की गई। उसकी परिणाम-तालिका (Table of results) का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि सीमा के भीतर अति शिक्षण (over learning) धारणा के लिये हितकर होता है।

धारणा पर अतिशिक्षण (Overlearning) का प्रभाव देखने के लिये क्रुगर (Krueger) ने भी प्रयोग किया है। उसके प्रयोग का ध्येय अतिशिक्षण की मात्रा और धारणा के सम्बन्ध को जानना था। उसने बीस प्रयोज्यो को १२ सज्ञा शब्दो को क्रमश दो सेकड के लिये प्रदर्शित करते हुए विभिन्न मात्राओ म याद करवा कर १, २, ४, ७, १४ तथा २८ दिन के बाद धारण की परीक्षा की। उसके प्रयोग परिणाम के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि शिक्षण और प्रत्यावाहन मे व्यवधान जितना भी रहा सब म १५० प्रतिशत अतिशिक्षण १०० प्रतिशत की अपेक्षा अच्छा था। इतना ही नही, बल्कि १५० प्रतिशत अतिशिक्षण अधिक काल के व्यवधान के बाद भी धारणा के लिये लाभप्रद था। इसमे यह निर्विवाद है कि अतिशिक्षण (Overlearning) का महत्त्व व्यवधान वृद्धि के साथ साथ बढ़ता है। यद्यपि उसके प्रयोग परिणाम मे समरसता (Uniformity) नही थी, किन्तु उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अतिशिक्षण एक निश्चित सीमा तक धारणा के लिये लाभप्रद है, किंतु उसके बाद कोई लाभ नही होता और क्रमागत ह्रास (Diminishing return) आविर्भूत हो जाता है।

अब, उपर्युक्त तीन मनोवैज्ञानिको के प्रयोग-परिणामो के विवेचनात्मक अध्ययन स यह मालूम होता है कि क्रुगर (Krueger) का प्रयोग इबिंगहास के ही दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है। हाँ, लुह (Luh) के परिणाम मे कुछ भिन्नता अवश्य दृष्टिगोचर होती है, किंतु इस सबध मे यह याद रखना होगा कि हम इबिंगहास और क्रुगर (Krueger) के प्रयोग-परिणामों की तुलना लुह से नही कर सकते। लुह (Luh) ने इबिंगहास से भिन्न विधि का इस्तेमाल, धारणा को नापने के लिये किया और उसका उपकरण भी इबिंगहास की अपेक्षा परिमाण मे कम था। इतना ही नही, बल्कि इबिंगहास ने स्वय अपने पर प्रयोग करके अपना निष्कर्ष निकाला, किंतु लुह (Luh) का निष्कर्ष दस प्रयोज्यो के मध्यमान पर आधारित है। जहाँ तक क्रुगर (Krueger) का सबध है उसके विषय म भी यही कहा जा सकता है कि उसने भी सार्थक उपकरण (Meaningful material) के साथ प्रयोग किया। अत प्रयोग विधि और उपकरण की भिन्नता के कारण प्रयोग परिणाम में भिन्नता का होना स्वाभाविक है।

अत उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान मे रखते हुये हम यह कह सकते है कि अतिशिक्षण (Overlearning) एक निश्चत सीमा तक धारणा को बढाता और दृढ़ करता है, किंतु

इसके बाद का अतिशिक्षण धारणा के लिये लाभप्रद सिद्ध नहीं होता। अतिशिक्षण का निषेधात्मक (Negative) प्रभाव धारणा (Retention) पर प्रयोज्य की अरोचकता (Monotony), अनभिरुचि (Disinterest) और थकावट (Fatigue) के कारण पडता है।

(२) उपकरण-परिमाण (Amount of material) सीखे जाने वाला विषय जितना ही बडा या लम्बा रहता है, उसकी धारणा उतनी ही टिकाऊ होती है। इस सबन्ध मे भी सबसे पहले इबिंगहास ने ही प्रयोग किया। उसने १२, २४ और ३६ निरर्थक पदों की सूचियों को क्रमश याद किया और २४ घटे बाद पुनर्शिक्षण (Relearning) विधि से बचत का प्रतिशत मालूम किया। पहले की अपेक्षा पुनर्शिक्षण मे क्रमश ३९, ४९ और ५८ प्रतिशत समय कम लगा। अत वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कम और छोटे उपकरणों की अपेक्षा लम्बे और अधिक उपकरणो की धारणा अधिक होती है। बाद के प्रयोगों से इसी निष्कर्ष की पुष्टि होती है। लम्बी पदसूची या अन्य उपकरणों को याद करने के लिये छोटी पद सूचियों की अपेक्षा अधिक बार पढ़ने और दुहराने के कारण ऐसा होता है। इसलिये प्रत्येक अश की कई बार पुनरावृत्ति होती है जिससे वह अच्छी तरह याद होता है और उसकी धारणा भी छोटी पदसूची की अपेक्षा टिकाऊ और अच्छी होती है। उडवर्थ (Woodworth) इसकी व्याख्या करते हुए कहता है कि छोटे विषय को याद करने मे प्रयोज्य को विशेष परिश्रम नही करना पडता, लेकिन बडे विषय या लबे उपकरण को जब याद करना पडता है तब अधिक परिश्रम करना पडता है। उस अधिक परिश्रम के साथ वह उसके प्रत्येक अग को आपस मे मिलाता और उनमे सार्थकता ढूँढ निकालता है। इन दो कारणों से बडे उपकरण की धारणा छोटे उपकरण की अपेक्षा अच्छी और अधिक होती है।

(३) उपकरण का स्वरूप (Nature of material) उपकरण के स्वरूप का जो प्रभाव धारणा पर पडता है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सार्थक उपकरण (Meaningful material) की धारणा निरर्थक उपकरणों (Nonsense materials) की अपेक्षा अधिक दिनों तक बनी रहती है। इस कथन की पुष्टि इस दिशा मे किये गये प्रयोगों और नित्य प्रति के अनुभवों से भलीभाँति होती है। कोई भी उपकरण और विषय क्यों न हो, यदि हम उसे अच्छी तरह समझते है तो याद करने पर उसकी धारणा, उस उपकरण की अपेक्षा जिसे हम कुछ भी नही समझते, अच्छी रहती है। जिस विषय को हम समझते है उसकी छाप हमारे मन पर स्पष्ट और गहरी पडती है, फलत उसकी धारणा अधिक समय तक बनी रहती है।

जिन उपकरणों का सस्कार (Impression) हमारे मन पर स्पष्टतर (Clearer) पडता है उनकी धारणा भी, उन उपकरणों की अपेक्षा जिनका सस्कार स्पष्टत नही पडता, अच्छी रहती है। हम पहले भी स्थान विशेष पर यह देख चुके है कि सूची के प्रथम और अन्तिम पद क्योंकर शीघ्रत याद हो जाते है। कई अन्वेषकों (Investigators) ने अपने प्रयोगों द्वारा यह दिखलाने का प्रयास किया है कि सूची मे जो पद स्थान अथवा आधारभूमि (Background) के कारण स्पष्ट रहता है वह सरलतया प्रत्यावाहित (Reproduced) होता या प्रयोज्य उसे आसानी के साथ याद कर लेता है। वानबुस्कर्क (Van Buskirk) नामक मनोवैज्ञानिक ने नौ-नौ पदों की दो

सूचियों के साथ अपने प्रयोज्यो पर प्रयोग करके यह प्रदर्शित कर दिया है कि आधारभूमि (Background) और बड़े बड़े अक्षरों के कारण जिस पद का स्पष्टता थी उसे सभी प्रयोज्य एक या दो सप्ताह बाद आसानी के साथ प्रत्याह्वाहित (Recall) या फिर से याद कर सके।

(४) भाव (Feeling) सभी तरह के अनुभवों की धारणा हमारे मन मे एक सी नही रहती। सुखद अनुभव काफी समय तक याद रहते है, परन्तु दुखद घटनाओ का अनुभव हम भूल जाते है। जरसिल्ड (Jersild) ने अपने प्रयोज्यों को गत तीन सप्ताहो के सुखद और दुखद अनुभवो को यथाशीघ्र लिखने को कहा। कुल सात मिनट समय दिया गया था। पुन उन्हे तीन सप्ताह बाद उन्ही सुखद और दुखद अनुभवो को लिखने को कहा गया। जब दोनो बार के लिखे अनुभवो की तुलना की गई तब मालूम हुआ कि पहली बार सुखद अनुभवो का औसत (Mean) १६ ३९ प्रतिशत था और दूसरी बार ६ प्रतिशत। दुखद अनुभवो का प्रतिशत क्रमश १३ तथा ३ ८६ था। इस प्रकार सुखद अनुभवों की धारणा (Retention) दुखद अनुभवों की अपेक्षा अच्छी प्रमाणित हुई। सुखद अनुभवो की धारणा दुखद अनुभवो से अच्छी क्यों होती है, इसकी सतोषप्रद व्याख्या दमन (Repression) के आधार पर की गई है। दुखद अनुभव चेतना मे रहकर भी व्यक्ति को कष्ट देते है, इसलिए वह उसका दमन कर देता है। दमन के कारण वे अनुभव अचेतन मन मे चले जाते और फलत उनकी याद नही रह जाती। लेकिन, दुखद अनुभवों की भी धारणा वैसे अनुभवो से अच्छी होती है जो न तो सुखद और न दुखद, बल्कि विरक्त (Indifferent) होते है। साथही, समय जितना बीतते जाता है अन्य प्रकार के उपकरणो के भावात्मक पहलू (Affective aspect) मे कमी आने लगती है और अन्त मे वे न तो सुखद रहते है और न दुखद, बल्कि विरक्त स्वरूप (Indifferent nature) के हो जाते है। यह कथन सुखद की अपेक्षा दुखद उपकरणो के लिये विशेष सत्य है।

(५) शिक्षण की विधि (Methods of learning) पीछे हम सीखने की विभिन्न विधियों और उनके गुण दोषों पर प्रकाश डाल चुके है, अत यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि साधारणत धारणा के लिये पूर्ण, व्यवधान, और सक्रिय विधियाँ (Whole, Spaced and active methods), आंशिक, निरंतर तथा निष्क्रिय विधियां (Part, massed and passive methods) की अपेक्षा हितकर होती है। इन विधियों मे सीखने पर धारणा अधिक समय तक बनी रहती है।

(६) निद्रा (Sleep) किसी विषय का सीखने के बाद तुरत सो जाने पर स्मरण-चिन्हो (Memory traces) को सुदृढ़ होने का अवसर मिल जाता है, फलत उसकी धारणा अपेक्षाकृत अच्छी हो जाती है। निद्रा धारणा को क्योंकर प्रभावित करती है, इसे देखने के लिये भी मनोवैज्ञानिको ने कई प्रयोगो का आश्रय लिया है। सर्व प्रथम इबिंगहास ने अपने प्रयोगो के आधार पर कहा कि शिक्षण और प्रत्याह्वान के बीच का समय धारणा के लिये घातक होता है। किंतु, सभी मनोवैज्ञानिक उसके इस कथन से पूर्णत सहमत नही है। इसलिये धारणा पर निद्रा का प्रभाव देखने के लिए जेनकिन्स (Jenkins) तथा डेलेनबाक (Dallenbach) ने अपने प्रयोज्यों से दस निरर्थक पदों को याद करवाया।

कुछ प्रयोज्यों ने उन पदों को सोने के पहले और कुछ ने सोने के बाद सबेरे याद किया। प्रत्यावाहन की परीक्षा करने पर देखा गया कि सोने के बाद प्रत्यावाहित पदों की सख्या जागने के प्रत्यावाहित (Recalled) पदों की सख्या से दूनी थी। इस प्रयोग मे यह देखा गया कि धारणा (Retention) की मात्रा जागने की अवस्था मे कम होती गइ, किंतु निद्रा की अवस्था में दो घण्टे बाद किसी प्रकार की कमी नही दीख पडी। अत उपर्युक्त मनोवैज्ञानिकों का निष्कर्ष है कि सोना (Sleep) धारणा के लिये सहायक होता है। जाग्रतावस्था मे शिक्षण के बाद की विक्षेप क्रियाये धारणा को क्षीण कर देती है। वान ओर्मर (Van ormer) नामक मनोवैज्ञानिक भी निरर्थक पदों के साथ अपने प्रयोज्यों पर प्रयोग करके इसी निष्कर्ष पर पहुँचा। न्यूमैन (Newman) ने अपने बारह प्रयोज्यों पर, जो कालेज के विद्यार्थी थे, सार्थक उपकरणो (तीन छोटी कहानियाँ) के साथ धारणा का प्रयोग किया। उसके प्रयोग का अ ययन करने से विदित होता है कि उसके प्रयोज्य आठ घण्टे बाद किसी भी अवस्था मे बराबर आवश्यक अगों का प्रत्यावाहन करने मे समर्थ हुए। किंतु, अनावश्यक अगों के प्रत्यावाहन (Recall) मे आठ घण्टे बाद दोनों अवस्थाओं मे अत्यधिक सख्यात्मक Quantitative) अन्तर था। आठ घटा सोने के बाद उसके प्रयोज्य ४७ प्रतिशत अनावश्यक अगों को प्रत्यावाहित कर सके, किंतु दो घण्टे कार्यमग्न रहने के बाद वैसे अगों के प्रत्यावाहन का मध्यमान (Mean) केवल २९ प्रतिशत ही था। इसलिये वह इस निष्कर्ष पर आया कि विक्षेप क्रियाये (Interpolated activitie) धारणा को कमजोर कर देती है, किंतु सार्थक उपकरणों की धारणा पर उनका प्रभाव कम और निरर्थक उपकरणों की धारणा पर अधिक पडता है। उडवर्थ ने भी अपने प्रयोग के आधार पर धारणा के लिये शिक्षण के तत्काल बाद सोना लाभप्रद कहा है।

(७) सीखने की गति (Speed of learning) किसी विषय की धारणा पर उसको सीखने की गति का भी प्रभाव पडता है। यों तो शीघ्र याद करने वाले और मन्द गति से याद करने वाले प्रयोज्यो के पक्ष मे प्रमाणों की कमी नहीं है, लेकिन इस दिशा मे किये गये प्रयोगों से यह पता चलता है कि जो किसी उपकरण को शीघ्र याद कर लेता है उसमे उसकी धारणा, उस व्यक्ति की अपेक्षा अच्छी होती है जो उस उपकरण को मन्द गति (Slow speed) से याद करता है। यदि किसी उपकरण को याद करने के लिए एक निश्चित समय निर्धारित कर दिया जाये तो निश्चय ही शीघ्र गति से याद करने वाला व्यक्ति, मन्द गति से याद करने वाले की अपक्षा उसे अधिक बार दुहरा लेता है, इसलिये उसकी धारणा अच्छी होती है। २९ ऐसे बालकों पर, जिनमे सात मन्द गति, सात तीव्र गति (Quick speed) और ग्यारह मध्यम गति से याद करने वाले थे, चित्रों का सबध विभिन्न अकों से स्थापित करने का प्रयोग किया गया। उनकी धारणा की जाँच २४ घण्टे बाद प्रत्यावाहन (Recall) और पुनर्शिक्षण विधि (Relearning method) से की गई। जब उनकी धारणा का औसत निकाला गया तो देखा गया कि तीव्र गति से याद करने वालों की धारणा अन्य दो समूह के बालकों से उत्तम थी। अत हम कह सकते है कि धारणा के लिये तीव्रगति से सीखना लाभप्रद सिद्ध होता है।

(८) मानसिक झुकाव (Mental set) मानसिक झुकाव का प्रभाव भी धारणा (Retention) पर कम नही पड़ता है। जो व्यक्ति किसी उपकरण को किसी प्रेरणा (Moti-

vation) से प्रेरित होकर याद करता है उसमें उसकी धारणा उस व्यक्ति की अपेक्षा बहुत ही अच्छी होती है जिसमें किसी प्रेरणा का अभाव रहता है। जब हम किसी विषय को बहुत दिन तक याद रखने के लिये सीखते है तब उसकी धारणा अच्छी होती है। किंतु, यदि हम किसी चीज को तुरत उपयोग मे लाने के लिये याद करते है तो उसकी धारणा अच्छी नही होती। यही कारण है कि जो विद्यार्थी परीक्षा के दृष्टिकोण स किसी विषय को याद करते या सीखते है वे उसका प्रत्याव्हान परीक्षा भवन में करने मे तो सफल होते है, किंतु परीक्षा के बाद विषय का बहुत ही कम अश उन्हे याद रह जाता है। मानसिक झुकाव (Mental set) का जो प्रभाव धारणा पर पडता हे उसके कई उदाहरण नित्य प्रति की घटनाओ और इस दिशा मे किये गये प्रयोगो स दिये जा सकते है।

(६) मानसिक चितन तथा पुनरावृत्ति (Mental review and repetition) याद किये हुए विषय का मानसिक चितन और उसकी पुनरावृत्ति उस विषय की धारणा के लिये लाभप्रद सिद्ध होती है। किंतु, मानसिक चितन या पुनरावृत्ति सीखने के बहुत दिन बाद नही, बल्कि उसके कुछ देर बाद ही करना हितकर होता है। समय व्यवधान (Time interval) की वृद्धि के साथ साथ मानसिक चितन तथा पुनरावृत्ति धारणा को पुष्ट और सबल बनाती है। याद किये हुए विषय का व्यक्त करना या लिखना मानसिक चितन और पुनरावृत्ति के ही अन्तर्गत आते है। चितन और पुनरावृत्ति के अभाव मे याद किये हुए विषय की धारणा समय व्यवधान की विक्षेप क्रियाओ के कारण निर्बल हो जाती है। अत अच्छी धारणा के लिये मानसिक चितन और पुनरावृत्ति दोनों ही आवश्यक अग है।

संस्मरण

(Reminiscence)

किसी विषय को सीखने के तुरत बाद ही धारणा की प्रक्रिया शुरू होती है। सामान्यत सीखने के कुछ समय बाद तक धारणा प्रक्रिया प्रौढ नहीं हो पाती। अत यदि शिक्षण के तुरत बाद से धारणा वक्र (Retention curve) तैयार कर तो साधारणत प्रारम्भ मे वह वक्र तीव्र गति से नीचे आता हे और तब बाद मे उसम उन्नति होती है। लेकिन, कभी कभी इसके विपरीत, बिना किसी तरह के मानसिक चिंतन (Mental review) के ही धारणा वक्र, शिक्षण के बाद अवनति करने की अपेक्षा उन्नति करते (ऊपर जाते) दीख पडता है। वक्र द्वारा प्रकट धारणा की ऐसी प्रक्रिया को ससमरण (Reminiscence) कहते है।

ससमरण, विस्मरण (Forgetting) के पूर्णत प्रतिकूल स्वरूप (Nature) का है, क्योकि विस्मरण के कारण धारणा वक्र का ह्रास होता है, किंतु ससमरण के कारण उस वक्र में उन्नति होती है। बेलार्ड (Ballard) नामक मनोवैज्ञानिक ने जब लदन के बारह वर्ष के स्कूली विद्यार्थियो को विभिन्न पद्यो को याद कराया तो उसे इस प्रक्रिया का पता लगा। पद्यों को अधूरा याद कराकर ही उसने उनका प्रत्याव्हान (Recall) क्रमश कई दिनों तक कराया जिससे पता चला कि चार दिनों तक धारणा वक्र (Retention curve) का उत्कर्ष होता रहा और पाँचवे दिन से उस वक्र का अपकर्ष (Fall) प्रारम्भ हुआ। जो पद्य अरुचिकर

थे उनकी धारणा मे सस्मरण बहुत कम मात्रा मे दृष्टिगोचर हुआ। साथ ही, ६ वर्ष के बच्चों मे बारह वर्षीय बालकों की अपेक्षा सस्मरण की मात्रा अधिक थी। उनसे पूछने पर मालूम हुआ कि व्यवधान काल मे जिन्होने याद किये विषयो का मानसिक चिंतन (Mental review) किसी प्रकार किया था उनमे अन्य बालको की अपेक्षा सस्मरण की मात्रा अधिक थी। किन्तु, बेलार्ड (Ballard) मानसिक चिंतन को ही धारणावक्र मे इस उन्नति का एक मात्र कारण मानने के लिये तैयार नही है। विलियम्स (Williams) ने चार हजार पाठशालीय तथा महाविद्यालयीय विद्यार्थियों पर प्रयोग करके ऐच्छिक (Voluntary) तथा अनैच्छिक (Non voluntary) चिंतन को सस्मरण का एकमात्र कारण माना है।

निकोलाई (Nicolai) ने अपने प्रयोग म पाया कि मानसिक चिंतन का अवसर न देने पर भी धारणा-वक्र मे उत्कर्ष (Rise) हुआ। मेग्गो (McGeoch) ने कई बच्चों पर प्रयोग किया, लेकिन उसे उन बच्चो की धारणा मे भी सस्मरण का व्यापार मिला जिन्हे मानसिक चिंतन (Mental review) के लिये किसी प्रकार का अवसर नही मिला। हाँ, जो बालक मानसिक चिंतन कर सके उनमे भी वह व्यापार पाया गया। अत अपने प्रयोग के आधार पर उसका कथन है कि सस्मरण एक एसा तथ्य है जिसकी व्याख्या केवल मानसिक चिंतन के आधार पर नही की जा सकती, क्योकि यदि सस्मरण (Reminiscence) का यही एक मात्र कारण होता तो जिन बालकों को मानसिक चिंतन का अवसर नही मिला उनमे इसका पूर्णत अभाव होता। किंतु, ऐसे बालको मे सस्मरण का होना इसका साक्षी है कि इसका कारण मानसिक चिंतन ही नही है। इसी प्रकार और भी जितने प्रयोग इस दिशा मे हुए है उन सब मे सस्मरण व्यापार परिलक्षित हुआ। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पुष्टिकरण के आधार पर इनकी व्याख्या करने का प्रयास किया है। किंतु, उनकी यह व्याख्या सन्तोषप्रद नही कही जा सकती। पुष्टिकरण प्रक्रिया का होना एक दो दिन तक ही सभव है, अत उसके बाद का सस्मरण पुष्टिकरण के फलस्वरूप नही कहा जा सकता। इसी तरह, एसे भी मनोवैज्ञानिक है जो इसकी व्याख्या थकावट के अभाव के सहारे करने की कोशिश करते है, किन्तु उनका ऐसा करना सन्तोषप्रद नही है। थकावट की अवस्था मे भी हमलोग बहुत कुछ एसा सस्मरण करते है जिसका प्रत्यावाहन पहले करने मे असमर्थ थे। इसी तरह कुछ लोग इसे आकस्मिक (Accidental) मानते है। लेकिन, आकस्मिक होने पर इसका जीवन मे इतना बाहुल्य न होता। कुछ ऐसे भी विद्वान है जिनका एसा विश्वास है कि किसी विषय को याद करने के बाद जब हम उसका शीघ्र प्रत्यावाहन (Recall) करते है तो उसका कुछ अश प्रत्यावाहित होता है। जो अश प्रत्यावाहित नही होता वह एक प्रकार की तत्परता की अवस्था (State of readiness) मे आ जाता है। फलत भविष्य मे अनुकूल अवसर मिलने पर उसका प्रत्यावाहन आसानी से होता है। इसी तरह विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने इसकी व्याख्या अपने अपने दृष्टिकोण से की है। लेकिन, एसा विदित होता है कि व्यवधान के कारण शिक्षण के समय के निरोधक (Inhibitory) अगो का अनुपस्थित हो जाना सस्मरण का कारण होता है। उन्ही अगों के कारण शिक्षण के तत्काल बाद के प्रत्यावाहन मे उपकरण के सभी अश परिलक्षित नही होते, किंतु कुछ समय के बाद उन अगों के हट जाने से अधिक अशों का प्रत्यावाहन होता है। इस आधार पर सस्मरण से सम्बन्धित अन्य पहलुओं की व्याख्या भी सतोषप्रद ढग से की जा सकती है। अत हम कह सकते है

कि यद्यपि सस्मरण के कई कारण सभव है, परन्तु शिक्षण के बाद निरोधक अगो का अनुपस्थित हो जाना इसका प्रमुख कारण है।

प्रत्यावाहन (Recall)

प्रत्यावाहन स्मरण की तीसरी प्रक्रिया है। इसके द्वारा हम अपने गत अनुभवो को पुन वर्त्तमान चेतना मे लाते है। हम देखी हुई चीजो, सुने हुए मधुर सगीतो, सीखी हुई क्रियाओं, याद किए हुए गद्य और पद्य की पक्तियो का प्रत्यावाहन प्रतिमा (Image) या भाषा के माध्यम से करते है। इस तरह धारणा का प्रत्यावाहन लिखकर, बोलकर अथवा अन्य क्रियाओ के द्वारा होता है। प्रत्यावाहन दो प्रकार का होता है—(क) प्रत्यक्ष (Direct) तथा (ख) अप्रत्यक्ष (Indirect)। प्रत्यक्ष प्रत्यावाहन (Direct recall) मे उत्तेजना (Stimulus) और प्रत्यावाहन के बीच अन्य मानसिक प्रक्रियाएँ नही होती, बल्कि उत्तेजना के बाद तुरत प्रत्यावाहन किया जाता है। अत प्रत्यक्ष प्रत्यावाहन किसी प्रकार की विशेष प्रक्रिया से स्वतत्र रहता है, लेकिन अप्रत्यक्ष प्रत्यावाहन उसमे स्वातन्त्र नही रहता। ऐसी क्रियाओ का अध्ययन करने के लिये प्रयोज्यों की अन्तर्निरीक्षणात्मक सूचना (Introspective reports) ली गई जिनसे स्पष्ट है कि प्रत्यावाहन के पूर्व प्रतिमा, भाव (Feeling), चिंतन (Thinking), आदि अनेक प्रक्रियाओ का अनुभव होता है। परन्तु, ऐसा न तो सभी प्रयोज्यों मे और न सभी प्रत्यावाहनो मे पाया जाता है। कभी कभी ये विशेष प्रक्रियाये प्रत्यावाहन मे सहायक भी होती है। किसी उपकरण का सीखने और उसके प्रत्यावाहन में जितना अधिक समय का अन्तर होता है उतना ही कम प्रत्यक्ष प्रत्यावाहन होता है। इस कथन की पुष्टि माइकोट (Michotte) और पोर्टक के प्रयोगो से पूर्णत होती है। वेसिल (Wenzl) और जेम्स विलियम (James William) के प्रयोगो से पता चलता है कि जब प्रत्यावाहन के लिये किसी प्रकार की उत्तेजना प्राप्त होती है तब अधिकाश अवसरों पर किसी खास अनुभव (नाम, पदार्थ, घटना, आदि) के प्रत्यावाहन करने के पहले मन मे ऐसे नाम, पदार्थ या घटना का आविर्भाव होता है जिससे उस अनुभव के प्रत्यावाहन मे काफी सहायता मिलती है।

उत्तेजना और प्रत्यावाहन के बीच जो समय व्यतीत होता है उसे प्रत्यावाहन काल (Recall time) कहते है। इसकी कोई सीमा निर्धारित नही है, क्योकि यह आधा सेकण्ड से लेकर कई सेकण्ड का होता है। माइकोट (Michotte) और पोर्टक (Portych) ने प्रयोग करके यह भलीभाँति प्रदर्शित कर दिया है कि प्रत्यावाहन गति (Speed of recall) या समय, नवीनता (Recency) और शिक्षण की मात्रा पर निर्भर करता है। जिन उपकरणो या घटनाओ का अनुभव तत्काल हुआ रहता है उनका प्रत्यावाहन पुराने अनुभवो की अपेक्षा शीघ्र होता है। इस कथन की सत्यता की परीक्षा के लिये पिलजेकर (Pilzecker) और म्युलर (Muller) ने भी निरर्थक पद सूचियो के साथ अपने प्रयोज्यों पर प्रयोग किया। पहली पद सूची का प्रयोज्यो को कई बार याद कराया गया, किंतु तत्काल उसका प्रत्यावाहन नही लिया गया। दूसरी सूची को उस मात्रा मे याद करने का अवसर प्रयोज्यो को नही दिया गया, लेकिन उसका प्रत्यावाहन तत्काल लिया गया। तुलना करने पर दोनो पद सूचियो के प्रत्यावाहन मे किसी प्रकार की सख्यात्मक भिन्नता (Quantitative difference) दृष्टिगोचर नही हुई, लेकिन

दोनो के प्रत्याराहन काल (Recall time) मे अन्तर था। पहली सूची, जिसे कई दिन पूर्व प्रयोज्य ने याद किया था, का प्रत्याराहन काल, दूसरी सूची के, जो कुछ ही काल पूर्व याद की गई थी, प्रत्यावाहन काल मे अधिक था। इससे यह स्पष्ट है कि बहुत पहले अनुभूत अनुभवो की प्रत्याराहन गति (Recall speed) मन्द (Slow) और तात्कालिक अनुभवों (Recent experiences) की तीव्र (Quick) होती है। इसलिये कभी-कभी ऐसा होता है कि जब हम लोग किसी पुराने अनुभव का प्रत्याराहन करना चाहते है तो उसके पहले तात्कालिक अनुभवो का ही प्रत्याराहन होता है जिससे अभिलषित उपकरण का प्रत्याराहन विलम्ब से होता है। लेकिन, इबिंगहास, म्युलर (Muller), शुमा (Schumann), प्रभृति विद्वानों के प्रयोगो से यह स्पष्ट है कि वे अभिलषित पुराने अनुभव चेतना सीमान्त (Fringe of consciousness) मे तत्परता की अवस्था मे रहते है और थोडा सा सकेत मिलने पर भी वे चेतना मे शीघ्रत आ जाते है। हम किसी नाम को स्मरण करना चाहते है, किंतु वह हमारी चेतना मे नही आता है। लेकिन, ज्योंही उसका किसी तरह आभास मिलता है त्यों ही वह याद पड जाता है। ऐसे ही कितने अवसर हमारे जीवन मे आते रहते है जिनके आधार पर यह निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि हम जिसे प्रत्याराहित करना चाहते है वह भले ही कुछ देर के लिए याद न हो, किंतु वह हमारी चेतना सीमान्त मे प्रत्याराहन के लिये पूर्ण तैयारी की अवस्था मे रहता है।

प्रत्यावाहन का स्वरूप (Nature)

इबिंगहास, प्रभृति मनोवैज्ञानिको का विचार है कि प्रत्यावाहन पुनरोत्पादक (Reproductive) होता है। दूसरे शब्दों मे, हम जो भी जिस रूप में सीखते है उसका उसी रूप मे प्रत्याराहन कर लेते है। उदाहरणार्थ, हमने बहुत पहले सीखा कि दो और दो मिलकर चार होता है। आज भी जैसे ही कोई दो और दो का योग पूछता है, हम तुरत प्रत्याराहन के सहारे चार व्यक्त कर देते है। किंतु, बर्टलेट (Bartlett) तथा उसके अनुयायी इस दृष्टिकोण से सहमत नही है। उनका कहना है कि गत अनुभवों का प्रत्याराहन मौलिकरूप मे सयोगवश ही होता है। अत इसे अपवाद ही कह सकते है। इस कथन की सत्यता को प्रमाणित करने के लिये बार्टलेट तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्याराहन सबधी कई उपकरणों के साथ प्रयोग किया है जिनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है। उनके सहारे यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि प्रत्यराहन एक रचनात्मक (Constructive) मानसिक प्रक्रिया है। किसी भी अनुभव के प्रत्याराहन मे हम अपनी ओर से कुछ जोड-घटाव कर देते है।

इबिंगहास और उसके अनुयायियों ने अपने प्रयोज्यों को निरर्थक पदों को सिखलाकर उनका प्रत्याराहन विभिन्न व्यवधानों के बाद लेकर यह उद्घोषित किया कि प्रत्याराहन पुनरोत्पादक (Reproductive) होता है। किंतु, उपर्युक्त दृष्टिकोण पूर्णत मान्य नही है। पहली बात तो यह है कि निरर्थक पदों का प्रत्याराहन भी उनके मौलिक रूप मे नही होता। लेखक ने स्वय इस सबन्ध मे कई विद्यार्थियों पर प्रयोग किया है और उसे ऐसा देखने मे आया है कि उसके कई प्रयोज्यों ने प्रत्याराहन करते समय दो एक निरर्थक पदो को बदल दिया। प्रत्याराहन मे नये पदों का होना प्रत्याराहन के रचनात्मक स्वरूप (Constructive nature) को सिद्ध करता है। इसके अतिरिक्त,

बार्टलेट तथा अन्य मनोवैज्ञानिको का कहना है कि हम अपने ि‍क जीवन मे इतिहास ऐसे उपकरणो का न तो अनुभव करते है न उनके प्रत्याहान का अवसर मिलता है। इसलिये उन मनोवैज्ञानिको ने प्रत्याहान के वास्तविक स्वरूप की जानकारी के लिये चित्र, आकार, आकृति (Figure), कहानी, आदि उपकरणो के साथ प्रयोग किया है। कहानी को हम आकार के अन्तर्गत रख सकते है। अत अब हम देखेंगे कि उपर्युक्त उपकरणो के प्रत्याग्राहन या पुनरोत्पादन का वास्तविक स्वरूप क्या है।

कहानी का प्रत्याग्राहन बार्टलेट ने विभिन्न कहानियो का प्रत्याग्राहन अपने कई प्रयोज्यो से कराया। किसी कहानी विशेष का एक प्रयोज्य से एक बार सावधानी से पढाकर उसका प्रत्याग्राहन पन्द्रह मिनट बाद लिया गया। फिर उस कहानी को दूसरे प्रयोज्य को उसी विधि से एक बार पढाकर पन्द्रह मिनट बाद उसका भी प्रत्याहान अंकित कराया गया। इसी प्रकार क्रमश उसने कई प्रयोज्यो का एक ही कहानी का प्रत्याग्राहन श्रृंखला विधि (Serial or chain method) मे किया। अतिम प्रत्याग्राहन मे उसने देखा कि कुछ कहानियो के शीर्षक और पात्रो के नाम भी बदल गए थे। कहानी के रूप मे इसी तरह का परिवर्त्तन नजर आया जब एक ही कहानी का प्रत्याहान एक ही प्रयोज्य से विभिन्न समयो मे लिया गया। उनका आधार पर उसका कहना है कि हम अपने किसी गत अनुभव का प्रत्याग्राहन उसके मौलिक रूप मे नहीं करते, बल्कि उसमे हम अपनी इच्छा, रुचि, संस्कृति, बुद्धि, स्वभाव के अनुरूप बहुत कुछ बदल देते है। सुनी या पढी हुई कहानी का जब कोई प्रत्याग्राहन करता है तब बहुत कुछ बदल जाता है। कुछ अश उसमे मिला दिये जाते है और कुछ अलग किये जाते है। जो अंग आवश्यक मालूम होता है उसे तो प्रत्याग्राहन मे स्थान दिया जाता है, किन्तु अनावश्यक अंग बहिष्कृत कर दिये जाते है। जो समझ मे नहीं आता अथवा बेतुका मालूम होता है वह या तो बहिष्कृत कर दिया जाता है या परिवर्तन। जहा प्रत्याग्राहन नहीं होता वहा प्रयोज्य (Subject) अपने अनुभव के आधार पूरा करता है। कभी-कभी किसी अश विशेष को बहुत ही बढा-चढा कर प्रत्याग्राहन किया जाता है। इसी प्रकार और भी कई प्रकार के परिवर्त्तन होते है। अत प्रत्याग्राहन रचनात्मक होता है। बार्टलेट के इस कथन का प्रतिपादन अपने प्रयोगात्मक परिणामो के आधार पर कार्लैण्ड (Carlund), लेविस (Lewis), हण्डरसन (Hunderson), प्रभृति मनोवैज्ञानिक भी करते है। हण्डरसन (Hunderson) का कहना है कि किसी कहानी का प्रत्याग्राहन करते समय प्रयोज्य उसे कई प्रकार से सशोधित (Modify) और परिवर्तित करते है। जो अंश अस्पष्ट प्रतीत होता है उसे हटा कर इस प्रकार सरल बना दिया जाता है कि कहानी पूर्णत व्यावहारिक और लौकिक बन जाती है। इस सबध मे लेखक ने जो प्रयोग इस विद्यार्थियो पर किया उससे भी पता चलता है कि कहानी के प्रत्याग्राहन मे कई प्रकार के परिवर्त्तन (Modification) होते है। यद्यपि प्रयोग बार्टलेट की विधि से ही किया गया है, लेकिन कहानी भारतीय स्वरूप की है और प्रयोज्य भी भारतीय विद्यार्थी थे।

मौलिक कहानी

'पुनर्मूषको भव"

"गंगा के तट पर किसी तपोवन की एक कुटिया मे एक संत रहते थे। उनके पास बहुधा जीव जन्तु आते। वहाँ एक चूहा परक गया था और रोज ही उनके आश्रम में आकर

दाने चुग लेता। एक दिन वह ज्यों ही आया एक बिल्ली पहुँच गई। उसने झपट्टा मारा। चूहा काँप गया। परन्तु, सन्त की उस पर दृष्टि थी फलतः वह तुरत बिडाल बन गया। बिल्ली चली गई।

दूसरे दिन एक कुत्ता आया। उसने बिडाल पर दाँत दिखाया। बिडाल भागकर सन्त की शरण मे गया। उन्होने उसे तत्क्षण कुत्ता बना डाला। अब वह निर्विघ्न टहलता और किसी से नही डरता।

एक दिन संयोगवश कही से एक बाघ आया। कुत्ते के शब्द से उसे क्रोध आया। उसने चाहा कि कुत्ते को मार डाले। पर सन्त कुत्ते की प्राण रक्षा चाहते थे। उनके मुँह से शब्द निकला नही कि कुत्ता शेर बन कर खडा हो गया।

आश्रम मे यह बात गूँज उठी कि सन्त की कृपा से चूहा शेर बन गया है। लोग उससे डरते नही, प्रत्युत उसकी हँसी उडाते। शेर के मन मे यह बात खटकी। उसने इस परिहास से बचने के लिये चाहा कि सन्त को ही मार डालूँ, न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। यह सोचकर सन्त पर टूटने का उपक्रम वह किया ही चाहता था कि सन्त के मुँह से निकल पडा—पुनर्मूषको भव। सबो ने देखा अब वह शेर नही है। उसकी जगह वही चूहा रेंग रहा है।"

प्रथम प्रयोज्य का प्रत्यावाहन

'पुनर्मूषको भव'

"गंगा तट पर साधु रहता था। वहाँ बहुत से जीव जन्तु आया जाया करते थे। एक चुहिया वहाँ बहुत उधम मचाया करती थी। एक रोज उस चुहिया पर एक बिलार ने झपट्टा लगाया, लेकिन साधु की दृष्टि पडते ही वह बिडाल बन गया। उसके दूसरे दिन एक कुत्ता वहाँ पहुँचा और वह क्रोधित ही बिल्ली पर झपटा। बिल्ली भी अपनी रक्षा के लिये साधु के शरण मे दौडी और वह कुत्ता हो गया। कई दिन बाद एक शेर उधर पहुँचा, उसे कुत्ते की आवाज अच्छी नही मालूम पडी और कुत्ते पर झपटा। झपटते ही कुत्ता शेर हो गया। साधु की करामात लोगों को मालूम हुई और कहने लगे कि चुहिया शेर बन गयी। शेर को बहुत बुरा मालूम हुआ और उसने सोचा कि साधु को ही मार देना अच्छा है ताकि न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। ज्योंही उस शेर ने झपट्टा मारा साधु ने कहा—'पुनर्मूषको भव' और वह चूहा हो गया।

दसवें प्रयोज्य का प्रत्यावाहन

'पुनर्मूषको भव'

एक समय एक चूहा था जो मुनि के आश्रम मे रहा करता था। वह सदा बिल्ली से डरता था, क्योंकि सदा बिल्ली इसी ताक मे रहती थी कि जब चाहे उसे चट कर दे। इस अवस्था से आकुल होकर चूहा ने मुनि से प्रार्थना की कि उसे बिल्ली बना दे जिससे वह इस फन्दे से बच जाय। मुनि ने उसे बिल्ली बना दिया, लेकिन उस अवस्था में भी उसे कुत्ते से डर लगता था। अतः उसने मुनि से फिर प्रार्थना की

बार्टलेट तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि हम अपने निक जीवन में इतिहास ऐसे उपकरणों का न तो अनुभव करते हैं न उनके प्रत्याह्वान का अवसर मिलता है। इसलिये उन मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्याह्वान के वास्तविक स्वरूप की जानकारी के लिये चित्र, आकार, आकृति (Figure), कहानी, आदि उपकरणों के साथ प्रयोग किया है। कहानी को हम आकार के अन्तर्गत रख सकते हैं। अत यह देखना आवश्यक है कि उपर्युक्त उपकरणों के प्रत्याह्वान या पुनरोत्पादन का वास्तविक स्वरूप क्या है।

कहानी का प्रत्याह्वान बार्टलेट ने विभिन्न कहानियों का प्रत्याह्वान अपने कई प्रयोज्यों से कराया। किसी कहानी विशेष को पहले प्रयोज्य ने एक बार सावधानी से पढ़कर उसका प्रत्याह्वान पन्द्रह मिनट बाद किया गया। फिर उस ... कहानी को दूसरे प्रयोज्य को उसी विधि से एक बार पढ़कर पन्द्रह मिनट बाद उसका भी प्रत्याह्वान अंकित कराया गया। इसी प्रकार क्रमश उसने कई प्रयोज्यों से एक ही कहानी का प्रत्याह्वान शृंखला विधि (Serial or chain method) से किया। अंतिम प्रत्याह्वान में उसने देखा कि कुछ कहानियों के शीर्षक और पात्रों के नाम भी बदल गए थे। कहानी के रूप में इसी तरह का परिवर्त्तन नजर आया जब एक ही कहानी का प्रत्याह्वान एक ही प्रयोज्य से विभिन्न समयों में लिया गया। उनके आधार पर उसका कहना है कि हम अपने किसी गत अनुभव का प्रत्याह्वान उसके मौलिक रूप में नहीं करते, बल्कि उसमें हम अपनी इच्छा, रुचि, संस्कृति, बुद्धि, स्वभाव के अनुरूप बहुत कुछ परिवर्त्तन कर देते हैं। सुनी या पढ़ी हुई कहानी का जब कोई प्रत्याह्वान करता है तब बहुत कुछ बदल जाता है। कुछ अंश उसमें मिला दिये जाते हैं और कुछ अलग किये जाते हैं। जो अंश आवश्यक मालूम होता है उसे तो प्रत्याह्वान में स्थान दिया जाता है, किन्तु अनावश्यक अंग बहिष्कृत कर दिये जाते हैं। जो समझ में नहीं आता अथवा अजीब मालूम होता है वह या तो बहिष्कृत कर दिया जाता है या परिवर्त्तित। ... प्रत्याह्वान नहीं होता वहाँ प्रयोज्य (Subject) अपने अनुभव के ... करता है। कभी-कभी किसी अंश विशेष को बहुत ही बढ़ा-चढ़ा कर के प्रत्याह्वान किया जाता है। इसी प्रकार और भी कई प्रकार के परिवर्त्तन होते हैं। अत प्रत्याह्वान रचनात्मक होता है। बार्टलेट के इस कथन का प्रतिपादन अपने प्रयोगात्मक परिणामों के आधार पर ... (Clo Lind), लेविस (Lewis), हण्डरसन (Hunderson), प्रभृति ... भी करते हैं। हण्डरसन (Hunderson) का कहना है कि किसी कहानी का प्रत्याह्वान करते समय प्रयोज्य उसे कई प्रकार से संशोधित (Modify) और परिवर्त्तित करते हैं। जो अंश अजीब प्रतीत होता है उसे हटा कर इस प्रकार सरल बना लिया जाता है कि कहानी पूर्णत ... और लौकिक बन जाती है। इस सम्बन्ध में लेखक ने जो प्रयोग दस विद्यार्थियों पर किया उससे भी पता चलता है कि कहानी के प्रत्याह्वान में कई प्रकार के परिवर्त्तन (Modifications) होते हैं। यद्यपि प्रयोग बार्टलेट की विधि से ही किया गया है, लेकिन कहानी भारतीय स्वरूप की है और प्रयोज्य भी भारतीय विद्यार्थी थे।

मौलिक कहानी

'पुनर्मूषको भव'

"गंगा के तट पर किसी तपोवन की एक कुटिया में एक सन्त रहते थे। उनके पास बहुधा जीव जन्तु आते। वहाँ एक चूहा परक गया था और रोज ही उनके आश्रम में आकर

दाने चुग लेता। एक दिन वह ज्योंही आया एक बिल्ली पहुँच गई। उसने झपट्टा मारा। चूहा काँप गया। परन्तु, सन्त की उस पर दृष्टि थी फलत वह तुरत बिडाल बन गया। बिल्ली चली गई।

दूसरे दिन एक कुत्ता आया। उसने बिडाल पर दाँत दिखाया। बिडाल भागकर सन्त की शरण मे गया। उन्होने उसे तत्क्षण कुत्ता बना डाला। अब वह निर्विघ्न टहलता और किसी से नही डरता।

एक दिन सयोगवश कही से एक बाघ आया। कुत्ते के शब्द से उसे क्रोध आया। उसने चाहा कि कुत्ते को मार डाले। पर सन्त कुत्ते की प्राण रक्षा चाहते थे। उनके मुँह से शब्द निकला नही कि कुत्ता शेर बन कर खडा हो गया।

आश्रम मे यह बात गूंज उठी कि सन्त की कृपा से चूहा शेर बन गया है। लोग उससे डरते नही, प्रत्युत उसकी हँसी उडाते। शेर के मन मे यह बात खटकी। उसने इस परिहास से बचने के लिये चाहा कि सन्त को ही मार डालूँ, न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। यह सोचकर सन्त पर टूटने का उपक्रम वह किया ही चाहता था कि सत के मुँह से निकल पडा—पुनर्मूषको भव। सबो ने देखा अब वह शेर नही है। उसकी जगह वही चूहा रेग रहा है।”

प्रथम प्रयोज्य का प्रत्यावाहन

‘पुनर्मूषको भव’

“गगा तट पर साधु रहता था। वहाँ बहुत से जीव जन्तु आया जाया करते थे। एक चुहिया वहाँ बहुत उधम मचाया करती थी। एक रोज उस चुहिया पर एक बिलार ने झपट्टा लगाया, लेकिन साधु की दृष्टि पडते ही वह बिडाल बन गया। उसके दूसरे दिन एक कुत्ता वहाँ पहुँचा और वह क्रोधित ही बिल्ली पर झपटा। बिल्ली भी अपनी रक्षा के लिये साधु के शरण मे दौडी और वह कुत्ता हो गया। कई दिन बाद एक शेर उधर पहुँचा, उसे कुत्ते की आवाज अच्छी नही मालूम पडी और कुत्ते पर झपटा। झपटते ही कुत्ता शेर हो गया। साधु की करामात लोगों को मालूम हुई और कहने लगे कि चुहिया शेर बन गयी। शेर को बहुत बुरा मालूम हुआ और उसने सोचा कि साधु को ही मार देना अच्छा है ताकि न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। ज्योही उस शेर ने झपट्टा मारा साधु ने कहा—‘पुनर्मूषको भव’ और वह चूहा हो गया।

दसवें प्रयोज्य का प्रत्यावाहन

‘पुनर्मूषको भव’

एक समय एक चूहा था जो मुनि के आश्रम मे रहा करता था। वह सदा बिल्ली से डरता था, क्योंकि सदा बिल्ली इसी ताक में रहती थी कि जब चाहे उसे चट कर दे। इस अवस्था से आकुल होकर चूहा ने मुनि से प्रार्थना की कि उसे बिल्ली बना दे जिससे वह इस फन्दे से बच जाय। मुनि ने उसे बिल्ली बना दिया, लेकिन उस अवस्था में भी उसे कुत्ते से डर लगता था। अत उसने मुनि से फिर प्रार्थना की

के वे उसे कुत्ता बना दे। मुनि ने वैसा ही किया, लेकिन उस अवस्था में भी उसे बाघ से र लगता था। इसलिये उसने फिर मुनि से प्रार्थना की कि उसे बाघ बना दें जिससे स फन्दे से मुक्त हो जाये। मुनि ने ऐसा ही किया, पर उसका भय फिर भी लगा जिसके ारण उन्होने पुन 'मूषको भव' का मन्त्र जपा, जिससे बाघ ने फिर अपने पूर्व रूप को ारण कर लिया।

चित्र का प्रत्यावाहन जब किसी चित्र अथवा वस्तु का प्रदर्शन करके उसका त्यावाहन किसी प्रयोज्य विशेष से कराया जाता है तब उसमें भी हम कई कार के परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होते है। प्रत्यावाहन कभी भी प्रतिपन्न Accurate) और वास्तविक चित्र रहा नहीं होता। यह परिवर्त्तन अथवा अप्रतिपन्नता कई अंगो पर निर्भर करती है। चित्र अथवा वस्तु का ठीक से निरीक्षण न करना अप्रतिपन्न Inaccurate) प्रत्यावाहन का कारण होता है। प्रयोज्य या अन्य व्यक्ति अपनी भिरुचि, मनोवृत्ति (Attitude), आदि के अनुरूप अंशो का ही निरीक्षण करता है और रिणामत अन्य अंश उसे न तो याद ही होते है और उनका प्रत्यावाहन ही होता है। भी कभी किसी चित्र या घटना के वर्णन मे अज्ञात अंगों को भी स्थान दे दिया जाता है। धिक समय बीतने पर धारणा की निर्बलता के कारण घटना अथवा या चित्र के कुछ शों को भूल जाना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त, जब प्रयोज्य से उस चित्र या घटना े सम्बन्ध मे ससूचनात्मक (Suggestive) प्रश्न पूछे जाते है तब वह उस प्रश्न से भावित होने के कारण भी कुछ ऐसा उत्तर देता है जिसकी वास्तविकता नही रहती। कन्तु, ऐसे प्रश्नो से वे ही व्यक्ति अधिक प्रभावित होते है जिनका अनुभव स्पष्ट और ठास ही रहता। न्यायालयो मे वकील ऐसे ही प्रश्नों को पूछ कर गवाहो से अपने अनुकूल बातो ो न्यायाधीश के सामने कहला लेते हैं। किन्तु, सभी व्यक्ति ऐसे प्रश्नो से समान मात्रा मे ही भावित नही होते। जब लेखक ने इस सम्बन्ध मे कई विद्यार्थियो पर प्रयोग किया तो क विद्यार्थी मे सिर्फ १२ प्रतिशत ही सूचनाग्राहकता (Suggestibility) देखी गई, किन्तु न्य कई विद्यार्थियों मे इसका प्रतिशत कई गुना अधिक था।

आकार और आकृति का प्रत्यावाहन आकार और आकृति (Form nd figure) के पुनरुत्पादन का भी अध्ययन अनेक मनोवैज्ञानिको द्वारा किया या है और उनमे भी यही देखा गया है कि मौलिक आकार और आकृति े पुनरोत्पादन मे कई प्रकार के परिवर्त्तन उसी प्रकार होते है जिस प्रकार कि न्य उपकरणों के प्रत्यावाहन मे। प्रयोज्य को कुछ काल के लिए कोई आकार ा आकृति प्रदर्शित की जाती है और फिर बाद मे उसे याद से पेन्सिल के हारे चित्र बनाने का निर्देशन दिया जाता है। यद्यपि आकृति और आकारो का नाना प्रयोज्य की योग्यता पर भी निर्भर करता है, लेकिन मनोवैज्ञानिकों ने इस विधि ो सहर्ष आश्रय दिया है। इस प्रकार के उपकरणों के प्रत्यावाहन का अध्ययन करके कुछ नोवैज्ञानिकों ने तीन प्रकार के परिवर्त्तनों को व्यक्त किया है—(१) विस्तृत विवरणों मे कमी, २) नये विवरणों (Details) का समन्वय (Assimilation) और (३) किसी पदार्थ शेष के आकार के समान मालूम होना। मेयर (Meye) ने आकृति के प्रत्यावाहन का योग करके यह व्यक्त किया है कि प्रयोज्य किसी आकृति के विभिन्न अंशो का अलग अलग

निरिक्षण नही करते, बल्कि उसे एक इकाई (Unit) के रूप म देखते हुए उसकी तुलना किसी परिचित पदार्थ से करते है। इसके अतिरिक्त, वे दो आकृतियो का मिला देते है, इसलिये किसी आकृति के पुनरोत्पादन मे तरह तरह के परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होते है। बार्टलेट ने भी कई प्रकार के परिवर्त्तनों को व्यक्त किया है। इस सबन्ध मे जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रयोग करके आकृति के पुनरोत्पादन के परिवर्त्तनो को व्यक्त किया है। किन्तु, उनका कहना है कि ज्यों ज्यों समय का व्यवधान बढता जाता है त्यों त्यों आकृतियों के पुनरोत्पादन मे पूर्णता आती जाती है। परिणामत पुनरोत्पादित आकृतियाँ मौलिक की अपेक्षा अधिक पूर्ण होती है। लेकिन, इस कथन की सत्यता की परीक्षा के लिये जब अन्य मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग किया तब उन्हे आकृतियों के पुनरोत्पादन मे परिवर्त्तन तो मिले, परन्तु सभी पुनरोत्पादित आकृतियो मे पूर्णता का अभाव था। इसलिये, उनलोगो का कहना है कि आकृति और आकार के पुनरोत्पादन मे भी परिवर्त्तन होते है। किन्तु, उनके लिये यह आवश्यक नही है कि वे सभी मौलिक आकृति की पूर्णता के ही परिचायक हों। इसी प्रकार, अन्य मनोवैज्ञानिको ने भी इस दिशा मे प्रयोग किया है जिनके आधार पर उनका कहना है कि आकृतियों के पुनरोत्पादन मे जो परिवर्तन होते है हम उनका वर्गीकरण निश्चयात्मक रूप से नही कर सकते। हा, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ अशो मे आकृतियो का पुनरोत्पादन समय व्यवधान के साथ-साथ क्रमिक विकास की ओर अग्रसर (Progessive) प्रतीत होता है, लेकिन, यह सर्व व्यापक (Universal) नियम नही कहा जा सकता। इस प्रकार, हम देखते है कि किसी प्रकार के उपकरण का प्रत्यावाहन हम क्यों न करें, किन्तु उसमे कुछ परिवर्त्तनो का होना आवश्यक है। अत हम प्रत्यावाहन को रचनात्मक पुनरोत्पादक प्रक्रिया (Constructive reproductive process) ही कहना विशेष उचित समझते है, मात्र रचनात्मक या पुनरोत्पादक कहना नही। मौलिक उपकरण का उसी रूप मे पुनरोत्पादन तो जीवन मे बहुत ही कम अवसरों पर होता है।

प्रत्यावाहन के अंग
(Factors of recall)

प्रत्यावाहन को वे सभी अग प्रभावित करते है जो धारणा (Retention) को प्रभावित करते है, क्योंकि प्रत्यावाहन हम उसी का करते है जिसे धारण किए रहते है। इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य अग भी प्रत्यावाहन को प्रभावित करते है। यहाँ हम उन्हीं की चर्चा करेगे।

प्रत्यावाहन मे उत्तेजना का महत्त्व गत अनुभव के प्रत्यावाहन के लिये उत्तेजना (Stimulus) विशेष रूप से सहायक होती है। यह उत्तेजना कभी तो बाह्य होती है और कभी आन्तरिक। हम किसी फूल को देखते है और किसी खास फुलवारी का प्रत्यावाहन हो जाता है। रगीन कपडा देखते है और उसको पहननेवाले की याद आ जाती है। परीक्षा-भवन मे विद्यार्थियो को प्रश्नपत्र मिलता है और उन प्रश्नों से सबन्धित उत्तर का प्रत्यावाहन क्रमश होने लगता है। इसी तरह, हमे भय लगता है और चोर, साप सबन्धी घटनाएँ याद हो आती है। लेकिन, प्रत्यावाहन मे उत्तेजना के सहायक होने के लिए दो बातों का होना जरूरी है। पहली बात तो यह है कि उत्तेजना बहुत स्पष्ट

और सबल होनी चाहिए। उसके वैसा न रहने पर प्रत्याग्राहन असम्भव है। दूसरी बात यह कि उत्तेजना से किसी गत अनुभव का प्रत्याग्राहन तभी होता है जब उस अनुभव के स्मरण चिन्ह चेतना सीमान्त मे रहते है। जो स्मरण चिन्ह चेतना सीमान्त से बाहर रहते वे ठीक तरह से प्रत्याग्राहित नही होते।

प्रयोज्य की आन्तरिक अवस्थाएँ प्रत्याग्राहन मे मनोवृत्ति (Attitude) का स्थान कम महत्त्व का नही है। प्रत्याग्राहन उन्ही अनुभवो का होता है जिनमे हमलोग अपनी अभिरुचि रखते है। जो विद्यार्थी परीक्षा भवन मे उत्तर देने के लिये याद करते है वे उन विषयो का परीक्षा भवन मे स्मरण करने मे तो सफल होते है, लेकिन वही बात उस समय के पहले या बाद मे पूछे जाने पर बहुत कुछ याद नही कर पाते। यो तो इस सबध मे कई मनोवैज्ञानिको ने प्रयोग किया है, लेकिन उनका उल्लेख न करके इतना ही कह देना पर्याप्त है कि एक प्रयोग मे निर्धारित समय के पहले और बाद मे प्रत्याग्राहन लेने पर क्रमश ८ और १७ प्रतिशत की क्षति दृष्टिगोचर हुई।

भावात्मक पहलू सुखात्मक और दुखात्मक पहलुओ (Pleasant and Unpleasant aspects) की भी उपेक्षा नही की जा सकती। जैसा कि हम पहले देख चुके है, जो अनुभव सुखद होते है उनका प्रत्याग्राहन हम आसानी से करते है, लेकिन दुखद और विरक्त (Indifferent) अनुभवो का प्रत्याग्राहन उस आसानी से नही होता। इसकी सत्यता की परीक्षा के लिये १०० विद्यार्थियो को विभिन्न शब्दो के साथ सुखद, दुखद और विरक्त शब्दों का साहचर्य स्थापित (Association establish) करना सिखलाया गया और जब ६ महीने बाद उत्तेजना को उपस्थित करके प्रत्याग्राहन लिया गया तब देखने मे आया कि बच्चे सुखद शब्दो का प्रत्याग्राहन अत्यधिक, दुखद का कम और विरक्त शब्दो का नही के बराबर कर सके। उनमे विरक्त शब्दो के स्थान मे सुखद शब्दो द्वारा प्रत्याग्राहन करने की भी वृत्ति (Tendency) देखी गई। इस प्रकार हम देखते है कि भावात्मक पक्ष प्रत्याग्राहन का एक प्रधान अग है। मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) मे विश्वास रखनेवाले मनोवैज्ञानिकों का यही दृष्टिकोण है। इसी तरह किसी अनुभव के प्रत्याग्राहन के लिये शारीरिक अवस्था (Physical condition) का सामान्य (Normal) रहना भी आवश्यक है, क्योकि थकावट अथवा अन्य शारीरिक असामान्यताओ (abnormalities) मे प्रत्याग्राहन ठीक नही होता। यही कारण है कि थकावट होने पर विद्यार्थी आराम करना ही श्रेयस्कर समझते है, पढना नही।

सवेग-नियत्रण (Emotions) सवेगात्मक उत्तेजना (Excitement) प्रत्याग्राहन का प्रधान अग है। हमारा नित्य प्रति का अनुभव यह प्रमाणित करता है कि क्रोध, क्षोभ, भय, आदि अवस्थाओ मे हमलोग कुछ स्मरण करने मे असमर्थ होते है। जो विद्यार्थी परीक्षाभवन को हौवा नही समझते उन्हे काम की बात याद होती है। किंतु, जो परीक्षा के डर से आतकित हो जाते है वे याद करने मे समर्थ नही होते। प्राय ऐसा देखने मे आता है कि आती हुई चीज को भी पूछे जाने पर भय के कारण व्यक्त करने मे लोग असमर्थ होते है। अतएव प्रत्याग्राहन के लिये सवेगो का नियत्रण आवश्यक है।

पुनरोत्पादक निरोध (Reproductive inhibition) प्रत्याग्राहन के लिये पुनरोत्पादक निरोधों से स्वतत्र रहना भी अत्यावश्यक है, क्योकि एक ही साथ कई

अनुभव चेतना क्षेत्र में आने का प्रयास करते है जिसके फलस्वरूप प्रत्यावाहन में बहुत देर होती है। हम साहचर्य के सिलसिले मे यह देख चुके है कि स्वतन्त्र साहचर्य (Free association) मे वैसे कई प्रतिक्रिया शब्द (Response words) चेतना क्षेत्र में आने का प्रयास करते है जिसके कारण प्रतिक्रिया काल (Reaction Time) अधिक हो जाता है। इस तरह भी व्यावहारिक जीवन मे प्राय ऐसा देखने मे आता है कि जब भी कई भाव एक साथ मन मे आते है तब समुचित प्रत्यावाहन में बहुत विलम्ब होता है। इसलिये प्रत्यावाहन के लिये इस प्रकार के अवरोधनो (Inhibition) से स्वतन्त्रता आवश्यक है।

प्रत्यावाहन के समय मानसिक वृत्ति (Mental set) किसी उत्तेजना का प्रत्यावाहन कभी-कभी इसलिए भी नही हो पाता कि उस समय हममें गलत मानसिक वृत्ति काम करती रहती है। उदाहरणार्थ, कभी कभी ऐसा होता है कि मोहन नाम के व्यक्ति का नाम याद करने मे ध्यान मे यह बात आ जाती है कि उसका नाम 'र' (अक्षर) से शुरू होता है और फलत 'र' से शुरु होने वाले रवीन्द्र, रमाशकर, रमानाथ, आदि नामों पर ही अपना ध्यान देते रह जाते है। इससे धारणा रहने पर भी हम उसका प्रत्यावाहन नहीं कर पाते।

प्रत्यभिज्ञा (Recognition)

स्मरण की चौथी मानसिक प्रक्रिया पहचानने या प्रत्यभिज्ञा की है। इसके द्वारा हम प्रत्यावाहित अनुभव का सबन्ध समय और स्थानविशेष से स्थापित कर देते है और तभी यह जान पाते है कि इसका अनुभव हमे कब और कहाँ हुआ था। इस तरह, पहचानने के बिना स्मरण की प्रक्रिया पूरी नही होती। पहचानने का शाब्दिक अर्थ होता है, फिर से जानना। अधिक स्पष्टीकरण के लिये किसी परिचित (या सीखी हुई) उत्तेजना को कई अपरिचित उत्तेजनाओ से अलग करने की मानसिक प्रक्रिया को पहचानना कहा जाता है। जब हम किसी पूर्व परिचित व्यक्ति को पहचानते है तो उस समय हम उसे अन्य अपरिचित व्यक्तियों से अलग ही करते है। यद्यपि इसका सबध प्रत्यक्षीकरण (Perception) से बहुत ही निकट है, लेकिन इतना होते हुए भी इन दोनों प्रक्रिआयों मे जो अन्तर है हम उसकी उपक्षा नही कर सकते। जब हमे किसी पदार्थ का प्रत्यक्षीकरण होता है तब हम उस पदाथ को एक जाति या वर्ग विशेष का समझते है, किंतु जब हमे किसी वस्तु की प्रत्यभिज्ञा होती है तब हम उसे किसी जातिविशेष का नहीं समझते, बल्कि यह जानने मे समर्थ होते है कि यह अमुक चीज अथवा व्यक्ति है। हाँ, गत अनुभव की प्रधानता दोनों प्रक्रियाओ मे रहती है, किन्तु उसकी चेतना हमे रहे, यह आवश्यक नहीं है।

पहचानना दो तरह का होता है—निश्चित पहचानना और अनिश्चित पहचानना। जब किसी वस्तु को देखकर ठीक-ठीक पहचान जाते है कि इसे कब और कहाँ देखा है तो इसे निश्चित पहचानना कहते है। इसमे समय और स्थान का पूरा ज्ञान रहता है। परन्तु, कभी-कभी हम किसी वस्तु या व्यक्ति को देखकर यह तो जान लेते हैं कि यह परिचित है, लेकिन याद नही पडता कि इसे कहाँ और कब देखा है। इस तरह के पहचानने को अनिश्चित पहचानना कहते है। इस में एक और भी विचित्रता देखने मे आती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि हम किसी पूर्णत अपरिचित और नये व्यक्ति, स्थान या चीज को देखते है और ऐसा मालूम होता है कि इसका अनुभव हमने अपने गत जीवन मे किया, इसलिये यह हमसे परिचित है।

ऐसे अनुभव को मिथ्या प्रत्यभिज्ञा (False recognition) कहते है, क्योंकि वस्तुतः उसका अनुभव हमे अपने गत जीवन मे नही हुआ रहता। अब प्रश्न यह है कि मिथ्या प्रत्यभिज्ञा क्यों होती है? इसका मुख्य कारण यह है कि जिस पदार्थ या घटना के सबध मे ऐसा अनुभव होता है उसकी समानता (Similarity) हमारे गत अनुभव या घटना से इतनी अधिक रहती है कि भ्रमवश हम उसे अपने अतीत जीवन का विषय समझ बैठते है। अत्यधिक समानता के कारण उनकी भिन्नताओ की ओर हमारा ध्यान ही नही जाता।

प्रत्यावाहन और पहचानने मे अन्तर प्रत्यावाहन और पहचानना दोनों ही स्मरण की मानसिक प्रक्रियाएँ है जो अक्सर साथ साथ देखने मे आती है। सामान्य व्यक्ति के जीवन मे प्रत्यावाहन के बाद पहचानने की प्रक्रिया होती है। किन्तु, कुछ ऐसे असामान्य (Abnormal) व्यक्ति भी होते है जो प्रत्यावाहन कर सकते है, परन्तु पहचानने मे असमर्थ रहते है। इससे यह प्रमाणित होता है कि किसी प्रकार की असामान्यता (Abnormality) का हानिकारक प्रभाव प्रत्यावाहन की अपेक्षा पहचानने पर शीघ्र पड़ता है। प्रत्यावाहन और पहचानना दोनो ही धारणा के परिणाम है। फिर भी, इनमे अंतर है।

सबसे पहली बात तो यह है कि पहचानने मे उत्तेजना उपस्थित रहती है, जो उत्तेजना अनुपस्थित हो उसको पहचाना नही जाता। लेकिन, प्रत्यावाहन किसी अनुपस्थित पदार्थ, घटना अथवा अनुभव का होता है। दूसरे शब्दो मे, जिस उत्तेजना या घटना का हम प्रत्यावाहन करते है वह हमारे सामने उपस्थित नही रहती।

जीवन मे ऐसे अवसर अधिकतर आते है जब हम किसी अनुभव को आसानी से पहचान जाते है, लेकिन उसका प्रत्यावाहन (Recall) करने म समर्थ नही होते है। इससे यह मालूम होता है कि पहचानना, प्रत्यावाहन की अपेक्षा सरल है। इस कथन की सत्यता की परीक्षा के लिये एकिलीज (Achilli) ने अपने प्रयोज्यो पर समान सख्या (पचीस) के निरर्थक पद, सार्थक शब्द तथा लोकोक्तियो के साथ प्रत्यावाहन और पहचानने का प्रयोग किया। प्रयोग-परिणाम से मालूम होता है कि प्रत्यावाहित उपकरणो की सख्या पहचानने मे बहुत ही कम थी। उसके प्रयोज्य का प्रत्यावाहन निरर्थक पदों के लिये १२ प्रतिशत, सार्थक के लिए ३९ प्रतिशत तथा लोकोक्तियो के लिए २२ प्रतिशत था, किन्तु उन्ही उपकरणो का पहचानना क्रमश २१, ६९ और ६७ प्रतिशत था। लेहमान (Lehmann) ने इस दिशा म जो प्रयोग किया उसमे भी यही प्रमाणित होता है कि साधारणत पहचानना प्रत्यावाहन से सरल होता है, किन्तु, पहचानना की जाँच के लिये जब नये और पुराने उपकरणों को मिला कर प्रयोज्य को पुराने (अनुभूत) उपकरणों को नये उपकरणो से अलग करने को कहा जाता है तब ऐसी स्थिति म नये और पुराने उपकरणों मे बहुत समानता होने पर पहचानना आसान नही रह जाता। अत पहचानना की सरलता या कठिनता परीक्षण विधि और उपकरणों की भिन्नता पर निर्भर करती है। लेखक ने भी प्रत्यभिज्ञा की परीक्षा रगीन कागज के विभिन्न आकार के टुकड़े ज्यामिति की विभिन्न आकृतियों और निरर्थक पदों के साथ आज से कुछ दिन पहले किया था। प्रत्येक उपकरण की सख्या बीस थी। प्रत्यभिज्ञा की जाच करने पर रगीन कागज और निरर्थक पदो मे से प्रत्येक का प्राप्ताक २० प्रतिशत था, किन्तु ज्यामिति के चित्रों के प्राप्ताक का प्रतिशत ६० प्रतिशत था। प्रयोज्य ने अपनी अन्तर्निरीक्षणात्मक

सूचना मे भी व्यक्त किया कि वह रगीन कागज के टुकडो को पहचानने मे तो समर्थ था, किन्तु उनके आकार-प्रकार एक दूसरे से इतना मिलते जुलते थे कि उसे उन टुकडों को पहचानने मे बहुत कठिनाई हुई। निरर्थक पदो को पहचानने म भी उसने कठिनाइयों का ही अनुभव किया। लेकिन, ज्यामिति (Geometry) की आकृतियों की प्रत्यभिज्ञा मे उसे उतनी कठिनाई नही हुई, क्योकि उन आकृतियों का उसे पहले से बोध था। उसके अन्तर्निरीक्षण से यह भी स्पष्ट ह कि सार्थक उपकरणों की प्रत्यभिज्ञा निरर्थक उपकरणो की अपेक्षा सरल और अच्छी होती है। अत हम इस निष्कर्ष पर आये कि यद्यपि प्रत्यभिज्ञा की प्रक्रिया सरल होती है, किन्तु निरर्थक उपकरणो और नये तथा पुराने उपकरणो की अत्यधिक समानता के कारण उसमे कठिनता आ जाती है।

'पहचानना' पर काल व्यवधान का प्रभाव रखने के लिए भी मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग किये है जिनमे से एक दो प्रयोगो का यहाँ उल्लेख करना अप्रासगिक न होगा। उल्फ (Wulf) विभिन्न ध्वनि कपनों (Sound vibrations) के साथ प्रयोग करके इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह प्रक्रिया भी प्रत्यावाहन की तरह काल व्यवधान से प्रभावित होती है। अर्थात्, ज्यो ज्यो समय व्यतीत होता जाता है त्यों त्यो पहचानने की मात्रा मे ह्रास होता जाता हे। ह्रास की गति प्रारभ मे तीव्र होती है, किंतु बाद मे उसमे मन्दता आ जाती हे। इसका वक्र इबिगहॉस के विस्मरण वक्रके समान था। किन्तु, लेहमान (Lehmann) ने उसी प्रयोग को जब रगीन कागजों के साथ किया तब वह उल्फ के ठीक विपरीत निष्कर्ष पर पहुँचा। उसके अनुसार समय व्यवधान पहचानना को प्रारभ मे प्रभावित नही करता, लेकिन बाद मे इसका प्रभाव उस पर कुछ अशो मे अवश्य पड़ता है। हेडेन (Heden), ऐंजिल (Angell), आदि कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिकों का भी अपने प्रयोगों के आधार पर यही निष्कर्ष है। हालिंगवर्थ (Hollingworth), स्ट्राग (Strong), आदि मनोवैज्ञानिको ने सार्थक और निरर्थक उपकरणों के साथ प्रत्यभिज्ञा का प्रयोग किया हे। उन प्रयोगो से भी प्रमाणित होता है कि सार्थक उपकरणों का पहचानना निरर्थक उपकरणो के पहचानने की अपेक्षा कई गुना अधिक और टिकाऊ होता है।

प्राय सभी प्रयोगों से पता चलता हे कि विक्षेप क्रियाओं के कारण पहचानने की प्रक्रिया कमजोर हो जाती है। फिर भी इसका प्रभाव पहचानना पर उतना घातक नही पड़ता जितना कि प्रत्यावाहन पर पड़ता है। इससे भी यह पता चलता है कि पहचानना प्रत्यावाहन से सरल प्रक्रिया है।

प्रत्यावाहन स्मरण की तीसरी प्रक्रिया हे, किन्तु पहचानना इस क्रम मे चौथी प्रक्रिया है। अत प्रत्यावाहन के बिना पहचानना नही होता, परन्तु पहचानने के अभाव मे भी प्रत्यावाहन करना सभव है। यदि किसी परिचित व्यक्ति को हम पहचानते है तो एसा करने मे हम उससे सबधित सभी अनुभवों का पहले प्रत्यावाहन करते है।

प्रत्यावाहन पूर्ण या अपूर्ण होता है। दूसरे शब्दो मे, किसी विषय का प्रत्यावाहन करने मे या तो हम उसे पूरी तौर से प्रत्यावाहित कर लेते है या उसके किसी अशमात्र को

ही याद कर पाते है। इस क्रम मे हम अपनी ओर से कुछ जोड़ घटाव भी कर लेते हैं जिसके कारण प्रत्याह्वान को रचनात्मक प्रक्रिया कहा गया है। दूसरी ओर, पहचानना निश्चित या अनिश्चित (Indefinite) होता है। यानी, कभी तो हम पहचानने के क्रम मे स्थान और समय का पूरा ज्ञान हो जाता है और कभी मात्र इतना ही पहचान पाते है कि यह परिचित है (कब और कहाँ परिचय हुआ, नही याद पड़ता)। इस तरह, प्रत्याह्वान और पहचानना एक दूसरे के समान होते हुए भी काफी भिन्न है।

विस्मरण का स्वरूप

(Nature of Forgetting)

हम जो कुछ सीखते या याद करते है वह हमेशा हमे याद नही रहता, उसका कम या अधिक अश भूल जाता है। हम कह सकते है कि विस्मरण वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके कारण हम किसी गत अनुभव को वर्त्तमान चेतना का विषय बनाने म असमर्थ होते है। दूसरे शब्दों मे, किसी सीखे विषय का प्रत्याह्वान न होना ही भूलना या विस्मरण है।

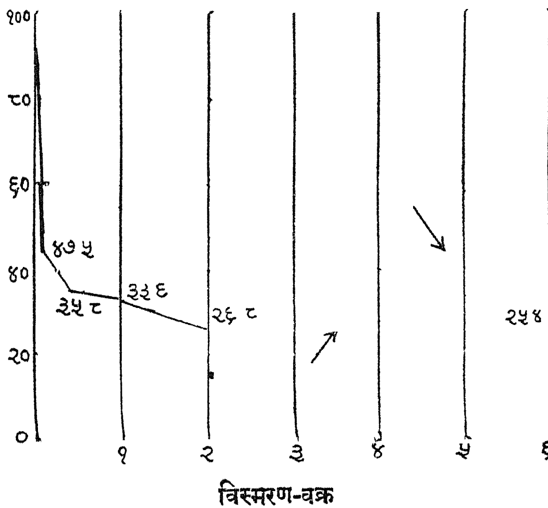
जब तक किसी विषय की धारणा बनी रहती है तब तक वह याद रहता है, इसलिये विस्मरण को धारणा के विपरीत माना जाता है। दूसरे शब्दो म, धारणा की असफलता ही विस्मरण है। लेकिन, कुछ लोगों के अनुसार, हम किसी चीज की धारणा करते हुए भी स्मरण नही कर सकते है। फ्रायड (Freud), वगैरह भी इसी विचार का पृष्ठपोषण करते है। बहुत सी बाते किसी खास समय पर याद नही होती, किन्तु बाद म वे पुन अपने-आप याद हो जाती है। यदि धारणा की विफलता ही विस्मृति होती तब ऐसा देखने मे क्यों आता। सस्मरण, जिसके सम्बन्ध मे पहले ही लिखा जा चुका है, उपर्युक्त दृष्टिकोण का ही प्रतिपादन करता है। इसके अतिरिक्त, धारणा की असफलता को ही विस्मरण मान लेने पर आशिक और पूर्ण विस्मरण की समुचित व्याख्या नही की जा सकती। अत कहा गया है कि विस्मरण वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके कारण हम गत अनुभवो का प्रत्याह्वान करने मे असमर्थ होते है। दूसरे शब्दो म, प्रत्याह्वान को विफल करनेवाली मानसिक प्रक्रिया, विस्मरण है। लेकिन, हम जानते है कि प्रत्याह्वान धारणा की एक परीक्षा या जाच (Test) है और वह भी ऐसी जाँच जिससे पूरे स्मरण का अदाज नहीं लगता। धारणा की इससे अच्छी जाँच पहचानना या पुनर्शिक्षण से होती है। किसी समय हम किसी विषय को प्रत्याह्वाहित नही करके भी उसे पहचान सकते है। अतएव, प्रत्याह्वान की असफलता को विस्मरण कहना गलत होगा। विस्मृत अनुभव किसी तरह चेतना मे नही आते। इस दृष्टि से धारणा की अनुपस्थिति या असफलता की प्रक्रिया ही विस्मरण है। हा, इसका ज्ञान धारणा की किसी जाँच से ही होता है। अत कह सकते है कि धारणा की किसी जांच म गत अनुभव को चेतना म लाने की असमर्थता बिस्मरण है।

जहांतक विस्मरण के स्वरूप का प्रश्न है, इबिंगहॉस (Ebbinghaus) के अनुसार यह एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया (Passive mental process) है। उसने इसकी व्याख्या व्यवधान-काल के आधार पर की है। सीखने के बाद ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, हम भूलते जाते है। यह निष्क्रिय इसलिए है कि समय के बीतने के साथ भूलने

की प्रक्रिया स्वत होती जाती है, हम भूलने की कोशिश नही करते, अथवा हमारे मन मे भूलने के लिए कोई प्रक्रिया नही चलती। आज यदि कोई कविता शुद्ध शुद्ध सुना सकते है तो निश्चय ही तीन दिनों के बाद (यदि बीच मे अभ्यास न करे तो) कविता का कुछ अश भूल जायगा। इसके बाद एक सप्ताह या दो सप्ताह के बाद विस्मरण और भी अधिक हो जायगा।

विस्मरण वक्र इबिंगहॉस ने विस्मरण प्रक्रिया को ग्राफ-चित्र के सहारे भी व्यक्त किया है जिसे विस्मरण वक्र (Forgetting curve) कहते है। उस ने विभिन्न लम्बाई की कई निरर्थक पद सूचियों को याद किया और तब विभिन्न घण्टे और दिन पर उसकी धारणा की परीक्षा प्रत्याग्राहन, पुनर्शिक्षण, आदि विधियों से की। उन सभी से उसे यह पता चला कि समय व्यवधान मे वृद्धि के कारण विस्मरण की मात्रा एक नियम के अनुसार बढती जाती है। उसके अनुसार विस्मरण की तीन अवस्थाएँ होती है—पहली अवस्था मे याद किया हुआ विषय तीव्र गति से भूलता है, दूसरी अवस्था मे इसकी गति बहुत धीमी हो जाती है और तीसरी अवस्था मे विस्मरण की गति इतनी कम हो जाती है कि विस्मरण-वक्र बिल्कुल सीधी रेखा की तरह मालूम पडता है। इसे निम्नाङ्कित चित्र मे देखा जा सकता है।

चित्र-सख्या ६३



विस्मरण-वक्र

निरर्थक पदों को सीखने के चार छ घण्टे तक प्रयोज्य उन्हे बहुत तेजी से भूलता है, लेकिन इसके बाद ६-७ दिनो तक उसका भूलना बहुत धीमी गति से होता है। बाद में तो भूलने की गति इतनी कम हो जाती है कि दस दिन और इकीस दिन के विस्मरण में नाम का ही अतर मिलता है।

लेकिन, बार्टलेट, फ्रायड, आदि मनोवैज्ञानिकों ने इबिंगहॉस के उपर्युक्त विचार को गलत माना है। उनके अनुसार हम समय बीतने के कारण नही, बल्कि उस समय-व्यवधान में हुई कई तरह की क्रियाओं के कारण भूलते है। किसी विषय को सीखने के बाद चार घटा आराम से सोये और फिर उसी तरह के किसी दूसरे विषय को सीखने के बाद चार घंटा कुछ कार्य करते

रहे। प्रत्येक अवस्था मे चार घटे के बाद धारणा की जाँच करने पर पायँगे कि सोने के बाद विस्मरण दूसरी अवस्था की अपेक्षा कम है। यदि मात्र समय-व्यवधान भूलने का कारण होता तो दोनो अवस्थाओ के विस्मरण की मात्रा समान होती। ऐसा नहीं होना यह सिद्ध करता है कि समय व्यवधान मे हुई क्रियाओ के कारण विस्मरण अधिक होता है। इसी तरह, मस्तिष्क आघात (Brain injury), मादक द्रव्य का सेवन, भाव, सवेग, मानसिक तनाव, आदि पर भी विस्मरण निर्भर करता है। अत हम कह सकते है कि विस्मरण कुछ खास तरह की क्रियाओ के कारण होता है। इसलिए यह एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है। फ्रायड ने तो यह भी कहा है कि हम किसी बात को इसलिए भूलते है, चूँकि उसे भूलना चाहते है। उनके अनुसार जब कोई अनुभव हमे दु खद लगता है तो हम उसे दमन (Repression) के सहारे तिरस्कृत कर अचेतन मन मे भेज देते है। वे अनुभव जब अचेतन मन मे चले जाते है तो भूल जाते है। इससे यह स्पष्ट है कि हमारे मन मे भूलने के लिए एक खास तरह की प्रक्रिया होती है। अत यह एक सक्रिय प्रक्रिया है।

इतना होने पर भी, समय-व्यवधान के महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त सभी अग विस्मरण की मात्रा को बढाते है, परन्तु उनके लिए भी धारणा-काल का होना जरूरी है। हम अनुभव से भी कह सकते है कि समय का व्यवधान जितना ही अधिक होता है, विस्मरण भी उतना ही अधिक होता है। यह बात दूसरी है कि उस व्यवधान मे किसी और तरह की प्रक्रिया होने से इसकी मात्रा और भी बढ जाय। अत यहाँ यही कहना युक्तिसगत लगता है कि विस्मरण एक सक्रिय निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया (Active passive mental process) है।

विस्मरण के कारण

वे सभी अग, जिनमे शिक्षण, धारणा और प्रत्याबाहन कमजोर होते है, विस्मरण के कारण है। अत विस्मरण के सभी कारणो या अगो (Factors) को तीन वर्गों मे बाँट सकते है,

(१) शिक्षण को प्रभावित करने वाले अग,
(२) धारणा को प्रभावित करने वाले अग और
(३) प्रत्याबाहन को प्रभावित करने वाले अग।

इन अगों की व्याख्या पीछे हो चुकी है, अत यहाँ इनका उल्लेख मात्र करते हुए कुछ प्रमुख अगों की ही व्याख्या की जायगी।

शिक्षण की मात्रा हम पहले ही देख चुके है कि एक निश्चित सीमा तक अति-शिक्षण से धारणा क्योंकर दृढ और टिकाऊ होती है। इस दिशा मे किये गये इबिंगहॉस, लुह (Luh), क्रुगर (Krueger) के प्रयोगो पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। अत यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि सीमा के अन्दर अति शिक्षण का अभाव कुछ अशों में विस्मरण का कारण होता है।

शिक्षण-विधि शिक्षण विधि विस्मरण को कम अशों मे प्रभावित नही करती। पूर्ण, व्यवधान या सक्रिय विधि से याद किया हुआ विषय शीघ्र नही भूलता, किंतु आशिक, निरतर तथा निष्क्रिय विधि से याद किया हुआ विषय शीघ्र भूल जाता है। अतएव शिक्षण की विधि विस्मरण का प्रभावशाली अग है।

शिक्षण की गति शिक्षण की गति का प्रभाव भी विस्मरण पर पड़ता है, क्योकि जो विषय तीव्र गति से याद किया जाता है वह जल्द नही भूलता, लेकिन मन्द गति से याद किया हुआ विषय शीघ्र भूल जाता है। इसकी सत्यता प्रयोगों द्वारा प्रमाणित है।

उपकरण-परिमाण सीखा हुआ उपकरण परिमाण विस्मरण का कारण होता है। जैसा कि पहले व्यक्त किया जा चुका है, लम्बे और अधिक परिमाण के उपकरण छोटे और कम परिमाण के उपकरण की अपेक्षा देर से भूलते है क्योंकि उनकी धारणा कम उपकरणो की अपेक्षा अधिक होती है।

उपकरण स्वरूप विस्मरण मे उपकरण के स्वरूप का जो महत्वपूर्ण हाथ है, उसकी अवहेलना नही की जा सकती। हम इस दिशा मे किए गये प्रयोगों का उल्लेख करते समय यह पहले ही देख चुके है कि निरर्थक उपकरण और दुखद अनुभव सार्थक उपकरण और सुखद अनुभवो की अपेक्षा शीघ्रतया भूलते है। अत उपकरण स्वरूप भी विस्मरण का कारण है।

मानसिक झुकाव मानसिक झुकाव (Mental set) के कारण विस्मरण क्योंकर होता है, इसका उल्लेख किया जा चुका है। इसलिये इस स्थल पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि जो विषय किसी प्रेरणा (Motivation) से प्रेरित (Motivated) होकर याद किया या सीखा जाता है, वह शीघ्र नही भूलता। किंतु, जो विषय बिना किसी प्रेरणा के याद किया जाता है, वह शीघ्र भूल जाता है। हम नित्य प्रति अनेक घटनाओं का अनुभव करते है, किंतु उनमे से अधिकाश घटनायें हमे इसलिये भूल जाती है कि उन्हे हम याद करने की इच्छा नही करते है। इसलिये प्रेरणा की कमी से हमलोग बहुत कुछ भूल जाते है।

मानसिक चितन और पुनरावृत्ति मानसिक चितन और पुनरावृत्ति के अभाव के कारण हमलोग अनुभूत अनुभवो को भूल जाते है, क्योंकि उपर्युक्त दोनो उपायों से याद किये हुए विषय के सस्कार दृढ होकर प्रत्यावाहन मे सहायक होते है। लेकिन, जिन विषयो का हम मानसिक चितन और पुनरावृत्ति नही करते उनके सस्कार कई कारणो से क्षीण हो जाते है और उनकी धारणा अच्छी नही होती। इसलिए वे विषय हमे भूल जाते है और अवसर पडने पर उनका प्रत्यावाहन नही होता है।

समय-व्यवधान जैसा कि मालूम है इबिगहॉस ने अपने प्रयोगो के आधार पर समय-व्यवधान को विस्मरण का कारण कहा। बाद के अन्वेषको ने भी, जिनमे रेडोसाल्विच (Radosalvich), फिंकेन (Finken), लुह (Luh), आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है, उसके दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है। यद्यपि उन लोगो ने विभिन्न उपकरणों और विधियों को काम मे लाया, तथापि उनके प्रयोग परिणाम मे कोई विशेष अन्तर नही पडा। लेकिन, जब बेलार्ड ने इस सबध मे प्रयोग किया तब वह उपर्युक्त निष्कर्ष से सहमत नही हुआ। लेकिन, बेलार्ड (Ballard) के इस निष्कर्ष के बाद भी इबिगहॉस के दृष्टिकोण का पूर्णत तिरस्कार

नहीं किया गया। अत हम कह सकते है कि समय व्यवधान में अनभ्यास (Disuse) के कारण विस्मृत होती है, क्योकि उस व्यवधान मे सीखे हुए उपकरण को दहराया नही जाता।

मस्तिष्क आघात धारणा मस्तिष्क की स्वस्थता पर निर्भर करती है, अतएव मस्तिष्क पर किसी प्रकार का आघात अभिनव (New) अनुभवो के भूलने का कारण होता है। गिल्फोर्ड (Guilford) ने जेनरल साइकोलॉजी (General psychology) नामक पुस्तक में एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेख किया है जिसे फुटबाल खेलते समय इतना अधिक आघात पहुँचा कि वह अचेतन हो गया। जब वह होश मे आया तो देखा गया कि उसे पुरानी घटनाये तो याद थी, किंतु उस दिन की उसे कोई भी घटना याद नही थी। ऐसी ही घटनाओं के आधार पर मनोवैज्ञानिको का कहना है कि मस्तिष्क आघात (Brain injury) से पुराने अनुभव तो नही, लेकिन नये अनुभव अवश्य ही विस्मृत हो जाते है।

मादकता मादक द्रव्यो के सेवन (Intoxication) से मस्तिष्क मे विकृति आ जाने के कारण स्मरण संस्कार (Memory trace) निर्बल हो जाते है, जिसके फलस्वरूप सीखे या अनुभूत उपकरणो का प्रत्यावाहन नही होता। मद्यपान कर्त्ताओं म प्राय स्मृति भ्रंशता (Amnesia) हमलोगो के व्यावहारिक जीवन म देखने म आती है। अत मद्यपान विस्मरण का एक मुख्य कारण हे।

दमन हम पहले व्यक्त कर चुके है कि उपकरण का दुखात्मक स्वरूप भूलने का कारण होता है। इसी को मनोविश्लेषकों ने दमन के आधार पर समझाया है। उनका कहना है कि जो अनुभव अपमानजनक और दुखद होते है वे दमन के द्वारा अचेतन मन में कर दिये जाते है और उनका प्रत्यावाहन सामान्यावस्था मे नही होता। फ्रायडवादियों ने विस्मरण की व्याख्या दमन के ही आधार पर की है, क्योंकि उनका कहना है कि प्रत्यावाहन की विफलता ही विस्मरण है। इस प्रकार के विस्मरण के अनेक उदाहरण मनोविश्लेषकों द्वारा दिये गये है जिनका यहाँ उल्लेख करना हम आवश्यक नहीं समझते।

परिवर्त्तित उत्तेजना परिस्थिति कई अवसरों पर उत्तेजक परिस्थिति (Stimulus situation) मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन भी भूलने का कारण होता है। यदि हम कोई विषय एक निश्चित परिस्थिति मे याद करते है और उस परिस्थिति मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन हो जाता है या हमे उसका प्रत्यावाहन पूर्णत भिन्न परिस्थिति मे करना पड़ता हे, तब हम याद किये हुए विषय को ही भूल जाते है। प्रयोग करके देखा गया है कि आधारभूमि (Background) के परिवर्त्तन से सीखे हुए शब्दों के प्रत्यावाहन म कमी पड़ जाती हे। इस सबध में एक ज्वलत उदाहरण उस व्यक्ति का देना आवश्यक हे जो चीन देश म बहुत दिन तक रहने के कारण चीनी भाषा को अच्छी तरह समझ और बोल सकता था। किन्तु, जब वह सयुक्त राष्ट्र (U S A) चला गया तो वह चीनी भाषा को समझना और बोलना पूर्णत भूल गया, किंतु पुन चीन देश मे आने पर वह उस भाषा को समझने और बोलने लगा। अत यह अग भी कभी कभी भूलने का कारण होता है।

परीक्षण-विधि हम स्थल विशेष पर देख चुके है कि धारणा परीक्षण विधि से प्रभावित होती है। अत यहाँ कहा जा सकता है कि कुछ अशों में परीक्षण-विधि भी विस्मरण को प्रभावित करती है। इस कथन की पुष्टि लुह, औसगुड, पोस्टमेन तथा जेनकिन्स के प्रयोगों से भलीभाँति हो चुकी है।

भूताभिमुख अवरोधन (Retroactive inhibition)

भूताभिमुख अवरोधन का शाब्दिक अर्थ है, पीछे की ओर रुकावट। किसी विषय का शिक्षण जब पूर्व शिक्षण या अनुभव को याद करने मे अवरोध (बाधा) पैदा करे तो इस अवरोध पैदा करने की प्रक्रिया को भूताभिमुख अवरोधन कहते है। सीखने और प्रत्यावाहन करने के बीच जो प्रक्रियाएँ होती है उन्हे विक्षेप क्रिया (r t ~ activities) कहते है। अत कह सकते है कि विक्षेप क्रिया का व तक प्रभाव, सीखे हुए विषय के प्रत्यावाहन पर, पडना ही भूताभिमुख अवरोधन है। मान ले, कोई सूची अ पहले सीखते है और उसके बाद सूची ब सीखते है। यदि सूची अ के प्रत्यावाहन मे सूची ब का शिक्षण घातक असर डाले तो इसे भूताभिमुख अवरोधन कहेगे। भूताभिमुख अवरोधन का असर जानने के लिए प्रयोग योजना निम्नांकित प्रकार की होगी।

अवस्थाएँ	शिक्षण	धारणा काल	प्रत्यावाहन	भूताभिमुख अवरोधन का प्रभाव
पहली	सूची अ को सीखना	विश्राम	सूची अ का प्रत्यावाहन	दोनो अवस्थाओं के प्रत्यावाहन का अन्तर
दूसरी	सूची ब को सीखना	सूची स को सीखना	सूची ब का प्रत्यावाहन	

भूताभिमुख अवरोधन की धारणा को सर्वप्रथम म्युलर (Muller) और पिल्जेकर (Pilzecker) ने प्रकाश मे लाया। इसके बाद विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रयोगो से विस्मरण मे इसका महत्त्व सिद्ध हुआ।

भूताभिमुख अवरोधन के निर्धारक

भूताभिमुख अवरोधन का असर कब कितना घातक होता है, इसका भी पता लगाने का प्रयत्न किया गया है, भूताभिमुख अवरोधन कई अगो पर निर्भर करता। इसे निर्धारित करने वाले अगों मे निम्नांकित चार बाते उल्लेखनीय है,

(१) पूर्व शिक्षण और विक्षेप क्रियाओ के शिक्षण मे समानता,

(२) पूर्व शिक्षण और विक्षेप शिक्षण की मात्रा,

(३) विक्षेप क्रियाओं का सामयिक स्थान (Temporal position), तथा

(४) सीखने वाले की आयु और बुद्धि।

पूर्व शिक्षण और विक्षेप क्रिया के शिक्षण मे समानता पूर्व शिक्षण की विधि और विक्षेप क्रिया के शिक्षण मे जितनी अधिक समानता रहती है उतनी ही अधिक विस्मृति होती है। राबिन्सन (Robinson) ने सन् १९२० ई० मे अपने प्रयोज्यों से चार अको की सख्याओं को याद कराके चार पाँच मिनट व्यवधान दिया। लेकिन, व्यवधान मे भी उसी प्रकार की सख्याओं को याद करवाया। फिर दूसरे अकों को याद करवाया। लेकिन, इस

नोट—उपर्युक्त योजना मे सूची अ और ब समान लम्बाई और कठिनाई की होंगी।

बार व्यवधान काल में गुणा करने का काम करवाया। दोनों अवस्थाओ के प्रत्यावाहन की तुलना करने पर मालूम हुआ कि पहली अवस्था के प्रत्यावाहन म दूसरी अवस्था की अपेक्षा अधिक क्षति पहुँची थी।

स्कैग्स (Skaggs) ने विभिन्न अश मे समान उपकरणों के साथ प्रयोग करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पूर्व और विक्षेप क्रियाओ की समनता ज्यों-ज्यों बढती जाती है त्यों त्यों भूताभिमुख अवरोधन (Retroactive Inhibition) का प्रभाव भी अधिक होता जाता है। हाँ, एक निश्चित सीमा के बाद विक्षेप क्रिया की समानता पूर्व क्रिया के लिये घातक प्रमाणित नही होती। अत उपकरणो की समानता की एक सीमा है जिसके बाद वह घातक नही होता।

मेक्गो (McGeoch) और मेक्डोनाल्ड (Mcdonald) ने अपने प्रयोज्यों पर अर्थ की समानता का प्रभाव देखने का प्रयोग विभिन्न उपकरणो के साथ किया। उनके प्रयोग का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि विक्षेप क्रिया और सीखी क्रिया के अर्थ मे जितनी अधिक समानता होती है उतनी ही अधिक क्षति पहुँचती है। उन्होने अपने प्रयोज्यो से विशेषण पदों को याद कराकर पुन उन्ही के पर्यायवाची विशेषणों को याद करवाया। दूसरी बार अकों को याद करवाया। पर्यायवाची (Synonymous) विशेषणो को याद करने के बाद का प्रत्यावाहन अकों को याद करने के बाद के प्रत्यावाहन की अपेक्षा बहुत ही कम था।

शिक्षण की मात्रा भूताभिमुख अवरोधन का प्रभाव मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षण की मात्रा के सबध मे भी प्रदर्शित किया है। अपने प्रयोगो के आधार पर उनका कहना है कि हम जितना अधिक किसी विषय को सीखते है, उस पर उतना ही कम प्रभाव किसी विक्षेप क्रिया का पडता है। दूसरी ओर, यदि पूर्व शिक्षण की अपेक्षा विक्षेप क्रिया के शिक्षण की ही मात्रा अधिक रही तो भूताभिमुख अवरोधन की मात्रा अधिक हो जाती है, लेकिन, यदि दोनों विषयो को समान मात्रा मे सीखा जाय तो भूताभिमुख अवरोधन सबसे अधिक होता है।

सामयिक सम्बन्ध (Temporal relation) कई मनोवैज्ञानिको ने यह निर्धारित करने का प्रयास किया है कि पूर्व शिक्षण के कितने देर बाद विक्षेप क्रिया का सीखना कितना घातक सिद्ध होता है। म्युलर (Muller) तथा पिल्जकर (Pilzecker) का कहना है कि किसी विषय के याद करने के तुरत बाद जब कोई क्रिया व्यक्ति करता है तो उसका सबसे अधिक हानिकर असर सीखे हुए विषय की धारणा पर पड़ता है। लेकिन, अन्य प्रयोगों से ज्ञात होता है कि सीखे हुए विषय के प्रत्यावाहन के ठीक पूर्व जब कोई क्रिया प्रयोज्य करने लगता है तो प्रत्यावाहन सबसे कम होता है। इनके आधार पर यही मानना अच्छा है कि शिक्षण के तुरत बाद या प्रत्यावाहन के ठीक पहले विक्षेप क्रिया के होने से भूताभिमुख अवरोधन अधिक देखने म आता है। दूसरी ओर, जब क्रिया धारणा काल के ठीक बीच मे होती है तब प्रत्यावाहन पर घातक असर बहुत कम पड़ता है।

आयु और बुद्धि भूताभिमुख अवरोधन पर याद करने वाले की उम्र और बुद्धि का भी प्रभाव पड़ता है। प्रयोग करने पर देखा गया है कि जिन बालकों की बुद्धि अधिक होती है उन पर उन बालकों की अपेक्षा इसका प्रभाव कम पड़ता है जिनकी बुद्धि कम

होती है। अधिक उम्र वाले व्यक्तियों पर इसका प्रभाव, कम उम्र वाले व्यक्तियों की अपेक्षा, कम पड़ता है। इस कथन की पुष्टि विभिन्न प्रयोगो द्वारा हो चुकी है।

इन उपर्युक्त अगों के अतिरिक्त, कुछ और भी ऐसे अग है जिनका असर भूताभिमुख अवरोधन पर पड़ता है। प्रयोग करने पर देखा गया है कि बहुत पहले सीखे हुए विषयों पर विक्षेप क्रिया का प्रभाव कम पड़ता है। मानसिक झुकाव (Mental set) भी इसको प्रभावित करता है। यदि सीखने वाले को विक्षेप क्रिया के सबध मे पहले बता दिया जाये तब भूताभिमुख अवरोधन का असर कम पड़ता है। इसके अतिरिक्त, सुखद विक्षेप क्रिया का प्रभाव भूताभिमुख अवरोधन पर बहुत ही कम पड़ता है। विभिन्न गन्धों द्वारा प्रयोग करके यह प्रमाणित कर दिया गया है। उपर्युक्त सभी विवेचनाओं से यह निर्विवाद है कि भूताभिमुख अवरोधन विस्मरण का प्रमुख कारण है। लेकिन, इसका प्रभाव बराबर समान मात्रा मे नही पड़ता, क्योंकि विभिन्न प्रयोगो से यह स्पष्ट है कि इसका प्रभाव याद किये हुए विषय पर शून्य से लेकर सौ प्रतिशत तक पड़ता है।

भूताभिमुख अवरोधन के सिद्धान्त
(Theories of Retroactive inhibition)

चिन्ह प्रसक्ति-सिद्धान्त (Perseveration theory) भूताभिमुख अवरोधन की व्याख्या करने के लिए म्युलर (Muller) तथा पिलजेकर (Pilzecker) ने चिन्ह प्रसक्ति सिद्धान्त (Perseveration theory) का प्रतिपादन किया है। इस बात से सभी मनोवैज्ञानिक सहमत है कि शिक्षण का प्रभाव हमारे स्नायुमडल पर पड़ता है। शिक्षण के फलस्वरूप स्नायुमडल मे एक विशेष प्रकार की प्रक्रिया उत्पन्न होती है जो शिक्षण के समाप्त होने के बाद भी चलती रहती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तीन चार दिनो मे धीरे धीरे यह प्रक्रिया कम होते होते समाप्त हो जाती है। यदि इस बीच भी किसी दूसरे शिक्षण का प्रभाव स्नायुमडल पर न पड़ा तो गत शिक्षण के मस्तिष्क चिन्ह (Traces) दृढ हो जाते है। परन्तु, चिन्हो के दृढ होने के पहले ही यदि कोई दूसरा शिक्षण प्रारम्भ कर दिया जाए तो उसके प्रभाव से गत शिक्षण के सस्कार दृढ नही हो पाते। यही कारण है कि जब हम पहले शिक्षण का प्रत्यावाहन करते है तो प्राप्तांक कम होता है। म्युलर तथा पिलजेकर ने भूताभिमुख अवरोधन की व्याख्या इसी आधार पर की है कि विक्षेप क्रियाओं के कारण पूर्व शिक्षण सबन्धी मस्तिष्क चिन्हों को सुदृढ होने का अवसर नही मिलता।

व्याघात सिद्धान्त (Interference theory) भूताभिमुख अवरोधन का दूसरा सिद्धान्त डिकैम्प (Decamp) तथा वेब (Webb) ने प्रतिपादित किया है जिसे व्याघात सिद्धान्त (Interference theory) कहा जाता है। ये दोनों मनोवैज्ञानिक भी मानते है कि शिक्षण का प्रभाव स्नायु मडल पर शिक्षण प्रक्रिया के बाद भी चलता रहता है। यदि इसी बीच किसी दूसरे विषय को सीखा जाये तो इसके स्मृतिचिन्ह गत शिक्षण के चिन्हों के साथ मिल जाते है। यही मिलन भूताभिमुख अवरोधन का कारण होता है। जब हम कुछ समय के बाद पहले शिक्षण का प्रत्यावाहन करते है तो उस समय प्रथम शिक्षण के चिन्ह बाद के शिक्षण संबधी स्मृति चिन्हों के साथ मिल जाते है। फलत दोनों के अनुभवों को एक दूसरे से अलग करना कठिन हो जाता है। यदि दोनों शिक्षणों

में निरर्थक पद (Nonsense syllables) ही याद करवाएँ तो प्रत्याह्वान के समय प्रयोज्य भ्रम में पड़ जायगा कि जो पद उसके प्रत्याह्वान में आ रहा है वह उस सूची का है जिसका वह प्रत्याह्वान कर रहा है या उसकी बादवाली सूची का है। इस प्रकार के भ्रम का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। और चूंकि बाद वाली सूची को सीखे हुए थोड़ा ही समय बीता है, इसलिए हमारे स्मरण में उनके निरर्थक पदों का संस्कार पहली सूची के निरर्थक पदों के संस्कार से अधिक प्रबल होते हैं। अतः ऐसा देखा गया है कि प्रत्याह्वान में बाद वाली सूची के ही निरर्थक पद अधिक आ जाते हैं जिसके फलस्वरूप प्रयोज्य का प्रत्याह्वान प्राप्तांक (Recall score) बहुत कम हो जाता है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों ने यह कहा है कि बाद के शिक्षण के फलस्वरूप गत शिक्षण के चिन्ह मिट जाते हैं। चिन्ह दोनों ही वर्तमान रहते हैं, परन्तु एक दूसरे के साथ बिल्कुल मिल जाते हैं। चिन्हों के इस मिश्रण के कारण पहली सूची के प्रत्याह्वान के समय भूताभिमुख अवरोधन हो जाता है।

दो अंग सिद्धान्त (Two factor theory) भूताभिमुख अवरोधन का एक तीसरा सिद्धान्त मेल्टन तथा लैकुन (Lackum) ने प्रस्तुत किया है जिसको दो अंग सिद्धान्त कहते हैं। किसी नये विषय को सीखने से गत शिक्षण का प्रत्याह्वान कम हो जाता है। मेल्टन तथा लैकुन के अनुसार इसके दो कारण हैं।

(१) किसी नई वस्तु या विषय को सीखने के पश्चात् सीखी हुई बातों को भुला देना पड़ता है। इसके फलस्वरूप पहले के शिक्षण सम्बन्धी चिन्ह कमजोर हो जाते हैं।

(२) प्रत्याह्वान के समय दोनों शिक्षणों के स्मृति चिन्हों में प्रतिद्वन्द्विता (Competition) उपस्थित हो जाती है। इसके फलस्वरूप पहले के शिक्षण का विषय ठीक तरह स्मरण नहीं हो पाता। अतएव, पुनःशिक्षण का अभाव (Unlearning), और प्रतिद्वन्द्विता दो कारणों से नये विषय का सीखना गत शिक्षण के स्मरण पर घातक प्रभाव डालता है।

यदि ध्यान दें तो पायेंगे कि इस सिद्धान्त में किसी नवीन धारणा के सहारे भूताभिमुख अवरोधन की व्याख्या नहीं की गई है। इसके पहले अंग (Factor) ने प्रसक्ति सिद्धान्त (Perseveration theory) को मान्यता दी है। पर शिक्षण को भुला देने का अर्थ है कि उसके स्मृति चिन्ह दूसरे विषय के शिक्षण के कारण कमजोर होकर मिट जाते हैं। यही बात प्रसक्ति सिद्धान्त में कही गई है कि दूसरे शिक्षण के कारण पहले शिक्षण के स्मृति चिन्हों को पक्के होने का अवसर नहीं मिल पाता। इस सिद्धान्त का दूसरा अंग व्याघात सिद्धान्त को स्वीकार करता है। प्रतिद्वन्द्विता (Competition) का अर्थ स्मृति चिन्हों का मिल जाना ही है।

इन तीनों सिद्धान्तों की सत्यता सिद्ध करने के लिए निर्णायक प्रयोग (Crucial experiment) अब तक न हो सके हैं। म्युलर तथा पिल्ज़ेकर के विचार कि बादवाली शिक्षण प्रक्रिया गत शिक्षण संस्कार को दृढ़ नहीं होने देती, ठीक है। यह इस बात से प्रमाणित है कि पहले उपकरण का प्रत्याह्वान प्राप्तांक घट जाता है, किन्तु कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि गत शिक्षण के कुछ अंश तथा बाद में सीखे गये विषय के कुछ अंश सम्मिलित हो प्रत्याह्वान में आ जाते हैं। यह तथ्य डिकैम्प

तथा वेब के सिद्धात की सत्यता प्रमाणित करता है। तब मेल्टन तथा लैकुन के सिद्धात मे कोई नवीनता प्रतीत नही होती। इनको श्रेय केवल इस कार्य का है कि इन्होने दो सिद्धान्तों के परिमार्जित समन्वय का प्रयास किया है। अतएव, भून विपुल अवरोधन की अधिक सतोषप्रद व्याख्या दो अग सिद्धान्त के द्वारा की जा सकती है।

विस्मरण-सिद्धान्त

(Theories of Forgetting)

विस्मरण के विभिन्न पहलुओं की सतोषप्रद व्याख्या करने के क्रम मे कई सिद्धान्तो का प्रतिपादन हुआ है। यहाँ उनमे से कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख सक्षेप मे किया जायेगा।

अनभ्यास-सिद्धान्त

(Theory of disuse)

प्रारभ मे विद्वानों का ऐसा दृष्टिकोण था कि समय बीतने के साथ साथ सीखे हुए विषय के सस्कार निर्बल होकर समाप्त हो जाते है। दूसरे शब्दो मे, किसी प्रतिक्रिया अथवा विषय को सीखने के बाद समय व्यवधान (Time interval) में उसका अभ्यास न किया जाय तो अभ्यास के अभाव मे वह भूल जाता है। इस तरह, समय व्यवधान मे अनभ्यास पर जोर देते हुये अनभ्यास सिद्धान्त विस्मरण की व्याख्या करने का प्रयास करता है। इसके प्रवर्त्तको मे इबिगहॉस तथा उसके अनुयायियों के नाम उल्लेखनीय है।

यद्यपि यह सिद्धान्त बहुत दिनो तक मान्य रहा, लेकिन विचार करने पर मालूम होगा कि इस आधार पर विस्मरण के सभी पहलुओ की व्याख्या नही की जा सकती। यह इसकी व्याख्या नही कर पाता कि हम किसी विषय का एक निश्चित अश ही क्यो भूलते है, दूसरा अश या पूरा क्यों नही भूलते। समय-व्यवधान मे अभ्यास न करने पर भी कभी कभी गत अनुभव स्वत स्मरण हो जाते है। इसी तरह, सस्मरण (Reminiscence) का अनुभव भी दैनिक जीवन मे होता है। यदि यह सिद्धान्त सत्य होता तो स्वत स्मरण (Spontaneous recovery) और सस्मरण के व्यापारों का अनुभव नही होता। विभिन्न प्रयोगो से यह प्रमाणित है कि विनष्टीकरण (Extinction) मे यद्यपि क्रिया का उपयोग किया जाता है, लेकिन प्रतिक्रिया की आदत कमजोर होकर भूल जाती है। कुछ विद्वानो ने इसका खण्डन करने के लिए उदाहरण देते हुए यह व्यक्त किया है कि कही पडा हुआ लोहे का छड समय व्यवधान के कारण जग लगने से नही सडता, बल्कि उस समय मे वायुमण्डलीय तथा अन्य अगो की क्रियाओं का जो असर उसपर पडता है, उसके कारण नष्ट होता है। इसी तरह, समय व्यवधान नही, अपितु उस व्यवधान मे होने वाली क्रियाओ (Interpolated activities) के कारण हम लोग किसी सीखे हुए विषय को भूलते है। इसलिए विस्मरण का स्वरूप और परिमाण, व्यवधान मे होने वाली क्रियाओं द्वारा निर्धारित होता है। अर्थात्, किसी विषय का अधिक या कम अश भूलना, जल्द या देर से भूलना समय व्यवधान पर नहीं, अपितु विक्षेप क्रियाओ (Interpolated activities) पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त,

कुछ भूलने मे व्यक्ति की दैहिक अवस्था (Physiological condition) का भी हाथ कम नही रहता है, जैसा कि उडवर्थ (Woodworth) ने भी स्वीकार किया है। इसीलिए, यह सिद्धान्त अधिक दिनो तक मान्य न रह सका और विद्वानो ने दूसरे सिद्धान्तों के प्रतिपादन का प्रयास किया।

व्याघात-सिद्धान्त

(Interference theory)

व्यवहारवादी (Behaviouristic) विचारधारा के अनुसार स्मरण किसी उत्तेजना से उत्पन्न प्रतिक्रिया के अलावे और कुछ नही है। इसलिये जिन अंगों के कारण कोई उत्तेजना इतनी निर्बल हो जाती है कि अपने अनुरूप प्रतिक्रिया को उत्पन्न करने मे असमर्थ सिद्ध होती है तो वे ही अंग विस्मरण मे भी सहायक होते है। दूसरे शब्दो मे, कुछ सीखने के बाद धारणा व्यवधान मे (Retention interval) घटित विक्षेप घटनाएँ (Interpolated events) या क्रियाएँ मौलिक उत्तेजना के प्रत्याह्वान मे बाधा उपस्थित करती है। इसके अनुसार, जब उत्तेजना प्रतिक्रिया के सम्बन्ध की पुनरावृत्ति होती है, किन्तु प्रतिक्रिया पुरस्कृत (Reinforced) नही होती तब ऐसी स्थिति मे प्रतिक्रिया भूलने लगती है। इसके अतिरिक्त, उत्तेजना मे अत्यधिक परिवर्त्तन या परिमार्जन हो जाने से भी व्यक्ति उत्तेजना की मौलिक प्रतिक्रिया करने मे असमर्थ होता है। इस तरह, इस सिद्धान्त के अनुसार विस्मरण दोनों हालतों मे देखने मे आता है—प्रतिक्रिया के अपुरस्कृत और उत्तेजना के परिवर्त्तित होने पर भी। पहली हालत मे उत्तेजना की प्रतिक्रिया होती है, लेकिन वह पुरस्कृत नही होती, इसलिये उन दोनों के बीच का साहचर्य शिथिल हो जाता है और फलत प्रतिक्रिया क्रमश भूल जाती है। दूसरी अवस्था मे, उत्तेजना ही इतनी अधिक परिवर्त्तित हो जाती है कि उसको पहचानना मुश्किल होता है, इसलिए उसके अनुरूप प्रतिक्रिया नही हो पाती। इस तरह विस्मरण परिमाण सिर्फ विक्षेप क्रिया को प्रभावित करनेवाले अगो पर ही नही निर्भर करता, बल्कि मौलिक शिक्षण का प्रभावित करनेवाले अगो पर भी निर्भर करता है। इस सिद्धान्त मे सन्निहित नियमो की चर्चा करते हुए ओसगुड का कहना है कि मौलिक क्रिया (उत्तेजना) की प्रतिक्रिया और विक्षेप क्रियाओ मे जितनी अधिक अभिन्नता होती है उतनी ही सुविधा मौलिक अनुभव (शिक्षण) के प्रत्याह्वान मे होती है। किन्तु, दोनो की भिन्नता विस्मरण का कारण होती है। इस सिलसिले मे उसने कई क्रियाशील नियमो और सिद्धान्तो का उल्लेख किया है, लेकिन यहा उनकी चर्चा अपेक्षित नही है। वानआर्मर (Van ormer), जेनकिन्स तथा डलेनबाक (Dallenbach) के प्रयोगो से प्रमाणित है कि कुछ सीखने के तत्काल बाद सो जाने से विक्षेप क्रियाएँ बहुत कम होती है, इसलिये विषय का विस्मरण नही होता। मेक्गो ने भी विस्मरण की सतोषप्रद व्याख्या करने के लिये इसी सिद्धान्त को सर्वांग सुन्दर कहा है। अभिप्राय यह कि यह सिद्धान्त इसमे विश्वास नहीं करता कि समय व्यवधान के कारण किसी विषय के संस्कार निर्बल होकर नष्ट हो जाते है। बल्कि, इसके अनुसार सीखे हुए विषय के संस्कार विक्षेप क्रियाओ के कारण कमजोर होकर नष्ट होते है। ये क्रियाएँ कई रूपो मे विस्मरण का कारण होती है। किन्तु उनका विशद विवेचन अपेक्षित नही। इनके सम्बन्ध में अन्तःभिमुख अवराधन के सिद्धातो मे प्रकाश डाला जा चुका है।

इस सिद्धान्त पर विचार करने से मालूम होगा कि अन्य अगों की तरह भूताभिमुख अवरोधन (Retroactive inhibition) भी विस्मरण का एक कारण है। अत मात्र इसी के आधार पर सभी प्रकार के विस्मरण की व्याख्या नही की जा सकती। इसके अलावे, इस सम्बन्ध मे जितने भी प्रयोग हुए है वे सभी निरर्थक पदो के साथ मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं मे ही हुए है। ऐसी स्थिति मे इस सिद्धात की सर्व व्यापकता पर विश्वास करना ठीक नही जँचता। इसके द्वारा कोई यह भी नही व्यक्त कर सकता कि सोने के पहले जो विषय सीखा जाय उसकी धारणा कितनी देर तक रहेगी। हमने स्थल-विशेष पर देखा है कि सीखने के बाद कुछ समय तक विस्मरण की रफ्तार बहुत तेज रहती है और फिर वह धीमी पड जाती है। प्रारभ मे विस्मरण-गति क्यों तेज रहती है, यह सिद्धान्त इसकी व्याख्या नही कर पाता। इसके अनुसार, सीखे हुए विषय और विक्षेप क्रिया की समानता से विस्मरण प्रक्रिया अधिक प्रभावशाली होती है। लेकिन, जब निरर्थक-पदों को हमलोग सीखते है तो उन्हे भी भूल जाते है। ऐसी स्थिति मे इसकी सत्यता प्रमाणित नहीं होती, क्योकि सामान्य जीवन की विक्षेप क्रियाएँ उस स्वरूप की नही होती। इसलिये इस सिद्धात के अनुसार उन क्रियाओं का घातक प्रभाव निरर्थक पदों की धारणा पर नही पडना चाहिये। न्यूमैन ने कालेज छात्राओं पर कहानी के साथ जो प्रयोग किया उसका अध्ययन इसका साक्षी है कि उन छात्राओं ने कहानी का जो साराश आठ घण्टा जगने या सोने के बाद व्यक्त किया उनमे कोई अन्तर नही था। इस प्रयोग परिणाम से इस सिद्धान्त की यह धारणा, कि सोना धारणा मे सहायक होता हे, खण्डित हो जाती है। फ्रेच (French) ने सन् १९४२ ई० में गोल्ड मछलिया (Gold fish) पर प्रयोग करके यह प्रमाणित कर दिया है कि विस्मरण विक्षेप क्रिया से नही, अपितु तापमान (Temperature) से प्रभावित होता है। इसके अतिरिक्त, विक्षेप क्रियाओं का मापन भी प्रत्यक्षतया नही होता, बल्कि भूताभिमुख अवरोधन के प्रयोगो से हम उनका अनुमान मात्र करते है। यह सिद्धान्त इसे व्यक्त करने मे भी समर्थ नही होता कि सीखा हुआ विषय सोने के पहले कितने काल तक धारणा के रूप मे सुरक्षित रह सकता है। इस तरह, यद्यपि इस सिद्धान्त मे कई त्रुटियाँ है, किंतु विस्मरण क्षेत्र मे इसकी जो देन है उसकी उपेक्षा नही की जा सकती।

स्मरण-सस्कार-सिद्धान्त

(Memory trace theory)

जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों ने विस्मरण के स्मरण सस्कार सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जो अन्य सिद्धान्तो से भिन्न और अपूर्व है। वे जिस प्रकार प्रत्यक्षीकरण और प्रेरणा की व्याख्या करते है उसी प्रकार इसकी भी। यही कारण हे कि विस्मरण की व्याख्या के लिये वे सगठन, अच्छी आकृति, पूर्ण, गत्यात्मक स्वरूप, आदि सभी का आश्रय लेते है। कोफ्का, कोहलर, लेविन, प्रभृति विद्वानों के अनुसार किसी आकृति को अच्छी और व्यवस्थित देखने की प्रवृत्ति के ही कारण विस्मरण होता है। किन्तु, प्रत्यक्षीकरण और विस्मरण मे अन्तर है। जहाँ प्रत्यक्षीकरण मे किसी अव्यवस्थित (Irregular) और अपूर्ण पहलू की उपेक्षा की जाती है वहाँ स्मरण मे कोई आकृति निश्चित और विशिष्ट रूप की ओर अग्रसर होती है। इसी आधार पर उल्फ (Wulf) ने म्युलर के निष्कर्ष को खण्डित करते हुए कहा है कि स्मरण सस्कार अस्पष्टता (Vagueness)

की ओर अग्रसर न होकर निश्चित आकृति की ओर अग्रसर होते हैं।

इस सम्बन्ध में कोफ्का का कहना है कि जब कोई गत अनुभव या पदार्थ प्रत्याह्वान द्वारा वर्तमान में लाया जाता है तो उसका प्रत्याह्वानित रूप मौलिक की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। समय व्यवधान के साथ-साथ मौलिक अनुभव में प्रगतिशील परिवर्तन के कारण प्रत्याह्वानित अनुभव की आकृति अच्छी होती जाती है। इसलिये किसी अनुभव को पूर्णतः भूलना सम्भव नहीं है। इस तरह, काल पश्चात् आकृति मौलिक से भिन्न भले ही हो जाय, किन्तु भूलता नहीं है। इसी को और स्पष्ट करते हुए उसने कहा है कि जिन अंगों का संगठन अच्छी तरह होता है उनके स्मरण-संस्कार अधिक स्थिर होते हैं, इसलिये वे जल्दी नहीं भूलते। फिर भी पूर्ण भूलने की क्रमिक (Gradual) प्रक्रिया धारणा व्यवधान में प्रगतिशील रहती है और अज्ञात तथा समूह के पदार्थों के स्मरण संस्कार की तीव्रता में अन्तर होता है। किसी पदार्थ से तादात्म्य स्थापित होने पर व्यक्ति के मन में तनाव उत्पन्न होने के कारण उस पदार्थ की धारणा अच्छी होती है। इसलिये तनाव की कमी या अभाव विस्मरण का कारण होता है।

इस सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिए जब उल्फ ने एक प्रयोग में अपने प्रयोज्य को विच्छिन्न और अव्यवस्थित आकृतियों को दिखला कर स्मरण के आधार पर बनाने को कहा तो पाया कि पुनरोत्पादन की आकृतियाँ पूर्व की अपेक्षा अच्छी थीं। उसने अपने प्रयोग के आधार पर तीन प्रकार के परिवर्तनों को व्यक्त किया। पर्किन्स (Perkins) ने भी कई विद्यार्थियों पर ऐसा ही प्रयोग करके व्यक्त किया कि सभी परिवर्तनों का झुकाव संतुलित और व्यवस्थित संघात की ओर ही था। इस सम्बन्ध में किये गये प्रयोगों के आधार पर गिब्सन ने रेखाचित्रों के बनाने में गत अनुभव और मानसिक झुकाव के महत्त्व को भी स्वीकार किया है।

हनावाल्ट (Hanawalt) ने उपर्युक्त प्रयोग-परिणामों का खण्डन किया है। उसका कहना है कि शृंखला और प्रत्यभिज्ञा विधियों के पुनरोत्पादनों में भिन्नता होती है। इसलिए प्रत्यभिज्ञा विधि से पुनरोत्पादन में उतना अधिक परिवर्तन नहीं होता जितना कि शृंखला विधि से। उडवर्थ ने भी यही कहा है कि विधि विशेष के कारण जस्टाल्ट-वादियों को प्रत्याह्वान में अच्छी आकृतियाँ मिलीं, क्योंकि वे मौलिक आकृति से प्रभावित न होकर पूर्व पुनरोत्पादनों (Previous reproductions) से प्रभावित थीं। इसी तरह हेब (Hebb), फोर्ड (Ford), पद्धति विज्ञानों के प्रयोगों ने भी जेस्टाल्टवाद की प्रयोग विधि को दोषपूर्ण साबित करते हुए इस सिद्धान्त का खण्डन किया है। उनके अनुसार, जेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने जिन परिवर्तनों को स्मरण दोष (Memory errors) माना है, वे वस्तुतः प्रत्यक्षीकरण और चित्रांकन (Drawing) के दोष हैं, न कि स्मरण के। अतः यह सिद्धान्त सुनने में अपूर्व भले ही हो, किन्तु त्रुटियों से पूर्ण होने के कारण मान्य नहीं है।

दमन सिद्धान्त
(Repression theory)

फ्रायड ने विस्मरण के विभिन्न पहलुओं की संतोषप्रद व्याख्या के लिये दमन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उसके मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) का मूल आधार भी

दमन ही है। यह एक ऐसी मनोरचना (Mechanism) है जिसके द्वारा हमारे दु खद और अवांछित अनुभव अचेतन मन मे कर दिये जाते है। इसी का आश्रय लेकर उसने विस्मरण के विभिन्न पहलुओं की व्याख्या करने का प्रयास किया है। इस सिलसिले में उसका कहना है कि हमारे जीवन के सभी अनुभव मन मे सुरक्षित रहते है, अत वे नष्ट नही होते। यह बात दूसरी है कि किसी अनुभव का प्रत्यावाहन अवसर विशेष पर नही होता। इसका कारण व्यक्त करते हुए उसका कहना है कि जो अनुभव सुखद होते या जिनसे हमारी कोई आवश्यकता पूरी होती है उनका प्रत्यावाहन होता है, किंतु दु खद और अनावश्यक अनुभवो का प्रत्यावाहन नही होता। इसी तरह जिस अनुभव को हम याद रखना चाहते है वह नही भूलता और जिसे याद रखना नही चाहते वह भूल जाता है। अपने इस कथन की पुष्टि मे उसने कई औपचारिक प्रमाणों को उपस्थित किया है। दैनिक भूलों (Psychopathology of every day life) की चर्चा करते हुए उसने कहा है कि नित्यप्रति के जीवन मे लिखने, बोलने, पहचानने, क्रिया, आदि की भूले अनायास और अकारण नही होती। विश्लेषण करने पर भूलने की इच्छा ही भूलने का कारण प्रमाणित होती है। मनोरोगियों की आत्म विस्मृति (Fugue) मे भी यही कारण सक्रिय रहता है। इसी तरह, जो सामाजिक बाते व्यक्ति के विश्वास के प्रतिकूल होती है वह उन्हे भूल जाता है। एसे ही अन्य प्रमाणों को व्यक्त करते हुए फ्रॉयड ने अपने सिद्धान्त को व्यापक बनाने का प्रयास किया है।

इस सिद्धान्त के गुण दोषों की विवेचना करने से मालूम होगा कि वर्त्तमान युग मे जीवन के कई पहलुओं मे इसकी सार्थकता प्रमाणित हो चुकी है। सामान्य दैनिक जीवन की भूलों और मनोरोगियों की आत्म विस्मृति की व्याख्या इसी आधार पर करना सभव है, अन्य आधारों पर नही। लेकिन, उसके सिद्धान्त की त्रुटियों को ध्यान मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह सिद्धान्त सामान्य विस्मरण की व्याख्या नही करता। इसके आधार पर विस्मरण गति की भिन्नताओं को समझना सभव नही है। इसके अनुसार, दु खद अनुभव दमन के कारण भूल जाते है और सुखद अनुभव याद रहते है। लेकिन, जेगार्निक (Zeigarnik) ने प्रयोग द्वारा यह प्रमाणित किया है कि पूर्ण सुखद कार्यो (Finished pleasant tasks) की अपेक्षा, अपूर्ण (Unfinished) दु खद कार्यो (अनुभवों) का प्रत्यावाहन अच्छा होता है। जेगार्निक ने ऐसे प्रत्यावाहन की व्याख्या मानसिक तनाव के सहारे सफलता पूर्वक की है। अपने प्रयोग के आधार पर ब्राउन ने भी इसकी पुष्टि की है। लेकिन, कुछ फ्रायडवादियो ने प्रयोगों द्वारा जेगार्निक के प्रयोग परिणाम का खण्डन किया है। उनका खण्डन कहाँ तक वैज्ञानिक है, यह कहना कठिन है, क्योंकि वस्तुत फ्रायड के सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रयोगशाला के प्रयोगों के आधार पर करना सभव नहीं है। इसलिये औपचारिक क्षेत्र में इसकी चाहे जितनी भी सार्थकता हो, किंतु प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के लिये यह सर्वमान्य नहीं कहा जा सकता।

इस तरह, उपर्युक्त सभी सिद्धान्तों मे कुछ विशेषताएँ और त्रुटियाँ है। अत कोई भी सिद्धान्त सर्वांग सुन्दर और व्यापक नहीं कहा जा सकता। हमने ऊपर देखा है कि जेस्टाल्टवादियों की प्रयोग विधि अप्रामाणिक और अवैज्ञानिक उद्घोषित कर दी गई है।

दमन की जाँच भी मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला मे प्रत्यक्षतया नही की जा सकती और विद्वानों को व्याघात सिद्धान्त की भी कुछ बाते मान्य नही है। लेकिन, ऐसी स्थिति मे सभी सिद्धान्तों के गुण दोषो के तुलनात्मक विवेचन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचना अनुचित नही होगा कि वर्त्तमान के लिये व्याघात सिद्धान्त विशेष मान्य जँचता है।

स्मरण कैसे बढाया जाए?

कभी-कभी आवश्यक विषयो को भूल जाने से लोगो को बहुत क्षति होती है। विस्मरण के ऐसे घातक परिणाम से बचने के लिये स्मरण प्रशिक्षण की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट हुआ। मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रयोग कर स्मरण प्रशिक्षण (Memory training) के विभिन्न नियमों को व्यक्त किया है। विलियम जेम्स (William James) का कहना है कि स्मरण पूर्णत धारणा (retention) की सबलता पर निर्भर करता है जो शरीर रचना, आयु और अन्य कई अगो पर निर्भर करता है। इसलिये जिस प्रकार व्यायाम और अभ्यास के द्वारा हम अपने पुट्ठो (Joints) और पेशियो (Muscles) को बलिष्ठ बनाते है उस प्रकार स्मरण की उन्नति प्रशिक्षण द्वारा असम्भव है। धारणा एक दैहिक प्रक्रिया (Physiological process) है, अत प्रशिक्षण का प्रभाव इस पर नही पड़ सकता। लेकिन, यदि याद करने की विधि या कौशल्यो (Techniques) म सुधार किया जाय तो स्मरण की उन्नति सभव है।

स्मरण-प्रशिक्षण की सार्थकता को देखने के लिये मनोवैज्ञानिको ने कई उपकरणों के साथ अपने प्रयोज्यो पर प्रयोग किया है, लेकिन सभी प्रयोगो के परिणाम समान नही है। एबर्ट (Ebert) तथा म्युमन (Meumann) के प्रयोग मे स्मरण म जो उन्नति दीख पडी वह कौशल (skill) की अच्छाई के फलस्वरूप थी। रीड (Reed) को अपने प्रयोग मे स्मरण प्रशिक्षण का प्रभाव कुछ भी नही दिखलाई पड़ा। स्लेट (Sleight) ने भी इस दिशा मे प्रयोग किया और उसे स्मरण स्थानान्तरण का भी कुछ प्रमाण मिला, किन्तु वह प्रमाण इतना अपर्याप्त था कि उसे इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि स्मरण प्रशिक्षण का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। तात्पर्य यह कि स्मरण मे सुधार लाने के लिये किसी विषय को बार बार रटना लाभप्रद नही होता, बल्कि शिक्षण सिद्धान्तो को अवसर के अनुरूप अपनाना लाभप्रद सिद्ध होता है। कालेज-विद्यार्थियों के एक समूह ने विभिन्न उपकरणो को कण्ठस्थ किया। लेकिन, बाद मे उस प्रकार के उपकरणो को कण्ठस्थ करने म उन्हे किसी तरह की सुविधा नही हुई। फिर दूसरा समूह, जो शिक्षण के विभिन्न कौशलो (Different skills) और सिद्धान्तों को याद करते समय व्यवहार करना सीख सका, बाद म कण्ठस्थ करने में उन्नति दिखला सका, क्योकि उस समूह ने उन्ही सिद्धान्तों और कौशलो को बाद मे भी अपनाया जिन्हे पहले के उपकरणों को याद करने मे अपनाया गया था। अतएव स्मरण मे सुधार लाने के लिए उन निम्नाकित कौशलों और सिद्धान्तों को अपनाना आवश्यक है जो विभिन्न प्रयोगों द्वारा स्मरण के लिये लाभप्रद प्रमाणित हो चुके हैं।

किसी विषय को याद करने के लिये इच्छा (Desire) का होना आवश्यक है, क्योंकि याद करने की इच्छा न रहने पर हमे कुछ भी याद नहीं होता। हम पहले ही इसका उल्लेख कर चुके है कि इच्छा न रहने पर सीखे गये विषय का प्रत्यावाहन हमें नहीं होता, क्योंकि

उसका महत्त्व हमारे जीवन मे नही रहता। इच्छा के साथ याद करने के कारण हमारा ध्यान इधर उधर नही जाकर याद किये जानेवाले विषय पर लगा रहता है जिससे उसका स्मरण-चिन्ह हमारे मस्तिष्क पर अच्छी तरह पड़ने के कारण हमे याद हो जाता है। किसी विषय को याद करने के लिये ध्यानावस्थित (Attentive) होना कितना आवश्यक है, इसके उल्लेख की यहाँ कोई आवश्यकता नही।

स्मरण के लिये प्रतिमाय (Images) सहायक होती है। अतएव किसी विषय को याद करते समय अवसर के अनुरूप प्रतिमाओं का व्यवहार करना श्रेयस्कर होता है। इनके सहारे उस विषय का प्रत्यावाहन भी आसान होता है। इतना ही नहीं, जिस विषय को याद करना या सीखना है, उसके अर्थ को समझना आवश्यक है। अर्थ को समझने से उस विषय का सबन्ध अन्य विषयो से स्थापित करने मे आसानी होती है और इस प्रकार का सबध स्थापन स्मरण के लिये सहायक होता है। उस विषय के प्रत्येक अश का सबन्ध एक दूसरे से स्थापित करने मे भी आसानी होती है और जब प्रत्येक अश का पारस्परिक सबध मालूम हो जाता है तब वह विषय अच्छी तरह याद हो जाता है। साहचर्य (Association), याद करने मे कितना सहायक होता है, इसे हम पहले ही देख चुके है।

याद करने के लिये व्यवधान विधि (Spaced method) विशेष लाभप्रद सिद्ध होती है, इसलिये किसी उपकरण को उपर्युक्त विधि से याद करना आवश्यक है। इसके पक्ष मे जो प्रयोगात्मक प्रमाण उपस्थित है वे किसी से छिपे हुए नही है। हम यह भी देख चुके है कि किसी विषय को लयात्मक विधि से याद करना कितना लाभप्रद होता है, अत अच्छे स्मरण के लिये विषय को लय (Rhythm) और स्वर से याद करना आवश्यक है।

यदि किसी ऐसे विषय को याद करना हो जो बहुत लम्बा हो तो उसे याद करने के पहले उस विषय को सक्षेप मे समझ लेना आवश्यक है, क्योंकि इससे उसका भावार्थ (साराश) समझ मे आ जाता है। इतना कर लेने के बाद पहले उसे एकाध बार पूर्ण विधि (Whole method) से याद करना और पुन आशिक विधि (Part method) का आश्रय लेना विशेष उपकारी होता है।

हम उच्च स्वर से याद करने और मानसिक चिंतन (Mental Review) के महत्त्व को भी पहले ही देख चुके है। अत अच्छे स्मरण के लिये उच्च स्वर से याद करना और उस विषय का मानसिक चितन करना नितात आवश्यक है।

इन उपर्युक्त कौशल्यों (Techniques) को काम मे लाने के अतिरिक्त किसी विषय को याद करने के पश्चात् पृष्ठोन्मुख अवरोधन (Retroactive inhibition) को रोकने के लिये आराम करना या सोना भी जरूरी है।

स्मरणसंबन्धी असामान्यताएँ

स्मरण मे कई प्रकार की असामान्यताएँ पाई जाती है। वृद्धावस्था, मद्यपान, मस्तिष्क-आघात और आकस्मिक घटनाओं के कारण याद करने की योग्यता नष्ट हो जाती है। वृद्धावस्था में तात्कालिक अनुभवों को भूलने के उदाहरण बहुत मिलते है, किंतु पुराने अनुभवों के भूलने का आधिक्य नहीं रहता।

मस्तिष्क व्याधि और आघात के फलस्वरूप धारणा क्षीण हो जाती है जिससे स्मृति कुछ अशों मे या सर्वांशत नष्ट हो जाती है। स्मृतिभ्रशता मे, जिसका आविर्भाव उपदश व्याधि (Syphilis) के कारण होता है, मनुष्य अपने अतीत और वर्तमान को भूल जाता है। इसमे मस्तिष्क चिन्ह ही नष्ट हो जाते है। इसलिये फिर स्मरण मे किसी तरह का सुधार नही होता है। इसे हम आन्तरिक स्मरण-व्यतिक्रम (Internal memory disorder) के नाम से व्यक्त कर सकते है।

प्रत्यावाहन दोष मे स्मरण चिन्ह विनष्ट नही होते। फिर भी कभी कभी मनुष्य अपने अतीत का प्रत्यावाहन करने म असमर्थ होता है। वह इधर-उधर बिना किसी लक्ष्य के चक्कर काटता रहता है और पूछने पर अपना नाम, गोत्र, स्थान या व्यवसाय व्यक्त करने मे पूर्णत असमर्थ होता है। इसे स्मृति भ्रशता (Amnesia) कहते है, क्योकि इस अवस्था में वह निश्चित काल की स्मृति भ्रशता का प्रदर्शन करता है। यह व्यापार किसी प्रकार के सवेगात्मक अवरोधन के फलस्वरूप होता है, इसलिये सम्मोहन (Hypnotism) और स्वतत्र साहचर्य (Free association) के द्वारा इसका सुधार किया जा सकता है।

पहचानने मे दो प्रकार के दोष पाये जाते है—(१) गत अनुभवो को न पहचानने का और (२) नये उपकरणों के परिचित और पुराना समझने का। हिस्टीरिया से ग्रस्त व्यक्ति अपने पूर्व परिचित व्यक्तियों को भी नहा पहचानते है। आँख खोलकर देखने से एसे उदाहरणों की कमी नहीं है। कभी कभी जब कोई मनुष्य किसी नये स्थान पर जाता या किसी नई चीज को देखता है तो उसे ऐसा मालूम होता है कि वह पहले भी उसे देख चुका है। इसे गलत पहचानना (False recognition) कहते है। ऐसा थकावट, सवेगात्मक गड़बड़ी, नये और पुराने अनुभवो की अत्यधिक समानता आदि के कारण होता है। इसी प्रकार और भी कई प्रकार के स्मरणसम्बन्धी दोष पाये जाते है जैसे, कल्पना को स्मरण समझना और स्मरण की अतिरजना (Exaggeration) करना, आदि।

स्मरण-अध्ययन की प्रयोगात्मक विधियाँ और उपकरण

सर्वप्रथम इबिंगहास ने स्मरण का प्रयोग निरर्थक पदों के साथ किया तब से आज तक कई विधियो और कई प्रकार के उपकरणो का व्यवहार किया गया है। निरर्थक पदों के अतिरिक्त, मनोवैज्ञानिकों ने सार्थक पदो, कहानियो, गद्याशो, पद्याशो, चित्रों, विभिन्न निरर्थक और सार्थक ज्यामिति चित्रों, आकृति और आकारो का इस्तेमाल किया है। इस तरह, इस सिलसिले मे क्रमश कई विधियों का आविर्भाव हुआ जिनमे निम्नाकित प्रमुख हैं।

(१) शिक्षण विधि (Learning method) शिक्षण विधि के द्वारा यह देखा जाता है कि कोई व्यक्ति किसी उपकरण को कितने समय अथवा प्रयासों म उस अश तक याद कर सकता है जबकि वह उसका प्रत्यावाहन शुद्धतया एक बार करने मे समर्थ हो सके। इस विधि का व्यवहार पहले पहल इबिंगहास (Ebbinghaus) ने निरर्थक पदों को याद करने मे किया था। इसके द्वारा किसी भी प्रकार का उपकरण याद किया जाता है। यह विधि स्मरण मे सहायक कई अगों यथा, प्रतिमा, साहचर्य, लय, आदि पर प्रकाश डालने में विशेषरूपेण लाभप्रद है।

(२) स्मरण विस्तार-विधि (Method of memory span) स्मरण विस्तार-विधि, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, किसी व्यक्ति का स्मरण विस्तार जानने के लिये काम मे लाई जाती है। किसी उपकरण को कुछ क्षण के लिये उपस्थित करने पर प्रयोज्य उसके जितने हिस्से का प्रत्यावाहन करने मे समर्थ होता है वही उसका स्मरण-विस्तार कहलाता है। यह कई प्रकार के उपकरणों के साथ मालूम किया जाता है। स्मरण विस्तार आयु, उपकरण स्वरूप, और उसकी उपस्थिति विधि, आदि कई अगों पर निर्भर करता है। उपकरणों का उपस्थितिकरण दृश्यात्मक (Visual) और ध्वन्यात्मक (Auditory) दोनों प्रकार से होता है।

(३) तत्परता-विधि (Prompting method) तत्परता-विधि का व्यवहार कई मनोवैज्ञिकों ने किया है। इसके द्वारा शिक्षण-वृद्धि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। यह उन्नति कई आधारों पर मालूम की जा सकती है। कोई पदसूची एक बार क्रमश सुना दी जाती है और फिर प्रयोज्य को उस पद-सूची का उच्चारण करने का निदेशन दिया जाता है। जहाँ वह उच्चारण करने मे असमर्थ होता या हिचकिचाता है वहाँ वह पद उसे बोलकर या प्रदर्शित कर उपस्थित कर दिया जाता है। लेकिन, उस समय उसको उच्चारण करने का आदेश नही दिया जाता है। इसी तरह उस समय तक किया जाता है जब तक कि वह पूरी सूची को ठीक ठीक एक बार नही सुना देता है। प्राप्तांक (Scores) तत्परता सख्या या कुल लगे हुए समय को दृष्टिकोण मे रखकर निकाला जाता है।

(४) युगल साहचर्य-विधि (Method of paired associations) युगल साहचर्य-विधि से स्मरण की परीक्षा के लिए दो दो पदों को कई सख्या में प्रयोज्य के समक्ष उपस्थित किया जाता है। एक बार बोलकर या दिखला कर उपस्थित करने के बाद प्रयोज्य को केवल पहला पद, जिसे उत्तेजक पद (Stimulus word) कहते है, दिया जाता है और उसे उससे आबद्ध पद को व्यक्त करना होता है। जहाँ वह आबद्ध पद को नहीं कहता उसे तत्परता विधि से वह पद व्यक्त किया जाता है। ऐसा उस समय तक किया जाता है जब तक कि उसे पूरी सूची याद नही हो जाती। इसके द्वारा शिक्षण में सन्निहित विभिन्न प्रक्रियाओं और उसके सहायक अगों का अध्ययन किया जाता है। इसी के द्वारा सबद्ध और असम्बद्ध उपकरणों को याद करने की कठिनाई और सरलता का ज्ञान भी प्राप्त किया जाता है।

(५) स्तम्भन विधि (Method of retained members) भावसबन्धी स्मरण (Memory for Ideas) के अध्ययन के लिए स्तभन-विधि का व्यवहार बौल्टन (Bolton) ने किया। इसका व्यवहार कई प्रकार के सार्थक उपकरणों के साथ होता है। प्रयोज्य को उपकरण पढ कर सुना दिया जाता या उसे स्वय पढने के लिए दिया जाता है। जब वह उसे एक बार पढ लेता है तब उसका प्रत्यावाहन विभिन्न समयों पर लिया जाता है। शुद्ध प्रत्यावाहन उपकरणों की सख्या के आधार पर स्मरण की उत्तमता की परीक्षा की जाती है। इस विधि से स्मरण के स्वरूप का भी अध्ययन किया जाता है।

(६) सरक्षण-विधि (Saving method) सरक्षण विधि से धारणा और विस्मरण का अध्ययन किया जाता है। जब प्रयोज्य किसी विषय को याद कर लेता है और

कुछ समय के बाद उसका प्रत्यावाहन करने मे असमर्थ होता है तब वह उस विषय को फिर शिक्षण विधि (Learning method) से उसी अश तक याद करता है। पहले की अपेक्षा दूसरी बार याद करने मे जो समय की बचत होती है वही बचत धारण का द्योतक होती है। उसके अतिरिक्त का अवशेष प्रतिशत विस्मरण का परिचायक होता है।

(७) प्रत्यभिज्ञा विधि (Recognition method) स्मरण का अध्ययन प्रत्यभिज्ञा विधि से भी किया जाता है। निरर्थक पद, चित्र, आकृति, आदि का उपयोग इस विधि के साथ किया जाता है। मानल, बीस निरर्थक पद एक एक कर प्रयोज्य को दिखलाये जाते है तब उनकी पहचान की जाँच के लिये फिर बीस नये निरर्थक पदो को पुराने के साथ मिलाकर एक एक कर प्रदर्शित किया जाता है। प्रयोज्य नया ओर पुराना पहचानता है। प्रत्यभिज्ञा का प्रतिशत निम्नाकित प्रकार से निकाला जाता है।

$$\frac{\text{शुद्ध} - \text{अशुद्ध}}{\text{कुल सख्या}} \times १०० = \text{प्रत्यभिज्ञा प्राप्ताक (प्रतिशत मे)}।$$

(८) पुनर्रचना-विधि (Reconstruction method) पुनर्रचना-विधि मे प्रयोज्य को विभिन्न विषय की व्यवस्था के क्रम का निर्माण करना पड़ता है। उपकरण के विभिन्न अशों को व्यवस्थित करके प्रदर्शित किया जाता है और फिर उसे छिन्न भिन्न करके प्रयोज्य को उसी क्रम मे निर्माण करने का निर्देशन दिया जाता है। इसका प्राप्ताक कई आधारो पर निकाला जाता है।

(९) पुनरोत्पादन विधि (Reproduction method) पुनरोत्पादन विधि के द्वारा स्मरण के स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। यह विधि स्तभन-विधि से अधिक मिलती जुलती है। इस विधि म किसी कहानी, आकृति या आकार को प्रयोज्य को उपस्थित किया जाता है और कुछ निश्चित व्यवधान के बाद मौलिक उपकरण का पुनरोत्पादन लिया जाता है। श्रृखला (Serial or chain) विधि में कई प्रयोज्य काम मे लाये जाते है, किंतु क्रमिक (Successive or repeated reproduction) विधि में एक ही प्रयोज्य का पुनरोत्पादन विभिन्न व्यवधानो पर लिया जाता है। इन उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त और भी एकाध विधियाँ स्मरण के अध्ययन के लिये काम मे लाई जाती है, किंतु उन सभी विधियों का यहाँ उल्लेख करना सभव नहीं है।[1]

---

१ भूताभिमुख अवरोधन की प्रयोग-विधि के लिये देखें 'मनोवैज्ञानिक प्रयोग' (प्र०— ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना)

दसवाँ अध्याय

प्रतिमा और कल्पना

(Image and Imagination)

प्रतिमा

स्वरूप

प्रतिमा वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम किसी गत अनुभूति, घटना या परिस्थिति का अनुभव मौलिक उत्तेजना के अभाव में मानसिक चित्र के रूप में करते है। प्रतिमा अनुभव करने की प्रक्रिया को प्रतिमा प्रक्रिया कहते है। कभी-कभी मनोवैज्ञानिकों ने इसे पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना (Reproductive imagination) का नाम भी दिया है। इस प्रक्रिया के द्वारा हम किसी प्रकार के नये चित्र का अनुभव नही करते, बल्कि जिसका अनुभव भूतकाल मे किए रहते है उसी का चित्र प्रत्यावाहन द्वारा अपने मन में खीचते है। इसको और भी स्पष्ट करने के लिये दो-एक उदाहरणों को व्यक्त करना जरूरी है। मानले, कालेज से आने पर कालेज के भवन या प्रिंसिपल के सम्बन्ध मे हम कुछ सोचते है और उनका चित्र हमारी आँखों के सामने खिंच जाता है। कही से किसी उपदेशक का भाषण सुनकर आते है और बाद मे वही भाषण हमारे कानों में गूँजने लगता है, यही कालेज-भवन, प्रिंसिपल, या भाषण का मानसिक प्रत्यावाहन प्रतिमा है। जब कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका की अनुपस्थिति मे उसकी याद करता है तब नायिका-सम्बंधी अनुभवों, उसके मुँह, होठ तथा तरह-तरह की प्रतिक्रियाओं, आदि के आंशिक या पूर्ण मानस चित्र प्रेमी के मानस-पटल पर आते है। इस तरह, प्रतिमा में मौलिक उत्तेजना के प्रत्यक्ष (Percept) का अधूरा या पूरा पुनरोत्पादन होता है।

कुछ लोग प्रतिमा से यह समझते है कि जिस तरह किसी व्यक्ति का चित्र उसके पूरे व्यक्तित्व (Personality) का प्रतिरूपक (Representative) होता है वैसे ही प्रतिमा मे भी किसी अनुभव के सर्वांश का प्रत्यावाहन होता है और सभी प्रतिमाएँ दृश्यात्मक (Visual) होती है। किंतु, उनका ऐसा दृष्टिकोण दोषपूर्ण है। न तो प्रतिमा मे गत प्रत्यक्ष के सभी अंशों का पुनरोत्पादन ही होता है और न सभी प्रतिमाएँ दृश्यात्मक होती है। जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा, हम जिस प्रतिमा को सर्वांगपूर्ण समझते है उसमे भी मौलिक (Original) अनुभव की अपेक्षा कुछ न्यूनाधिक्य अवश्य रहता है।

फिर, प्रतिमाओं को अनुकरणात्मक (Imitative) न समझ कर रचनात्मक ही समझना चाहिये, क्योंकि हम किसी गत अनुभव की प्रतिमा का आवाहन सक्रियता के साथ करते है, निष्क्रियता के साथ नही। इसके अतिरिक्त, यदि इसका स्वरूप

अनुकरणात्मक होता तो यह हमारे गत अनुभव अभिरुचि (Interest) और मनोवृत्ति (Attitude) से प्रभावित नहीं होती। इन अगों से प्रभावित होना, यह प्रमाणित करता है कि प्रतिमा रचनात्मक और सक्रिय स्वरूप की होती है।

इस प्रसग में यह स्मरणीय है कि जिस तरह प्रत्यक्ष (Percept) उत्तेजना का सर्वांशत प्रतिरूपक नहीं होता उसी तरह प्रतिमा को भी हम पूर्ण प्रतिरूपक नही कह सकते। जब एक प्रयोग में प्रयोज्य को उल्लू का चित्र दिखाकर थोड़ी थोडी देर पर उसके चित्र खिचवाये गये तो मौलिक उल्लू का चित्र बिल्ली के चित्र मे परिणत हो गया, क्योंकि वह देखे हुए चित्र को बिल्ली का चित्र ही याद कर सका। उपर्युक्त प्रयोग परिणाम इस तथ्य का साक्षी है कि प्रतिमा गत अनुभव का सर्वांशत प्रतिरूपक नही रहती, बल्कि उसमे किसी प्रकार की भिन्नता अवश्य रहती है। इसके स्वरूप को और स्पष्ट करने के लिये प्रतिमा और प्रत्यक्ष के अन्तरो को व्यक्त कर देना अच्छा होगा।

प्रतिमा और प्रत्यक्ष (Image and Percept)

प्रतिमा और प्रत्यक्ष मे कई अन्तर व्यक्त किये जा सकते है, परन्तु यहाँ उन्हीं प्रमुख अन्तरों का उल्लेख किया जायेगा जिनका ज्ञान प्रयोगो द्वारा हुआ है। अन्तरो के सबन्ध में सर्व प्रथम इस मौलिक तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्यक्षीकरण की वर्त्तमान उत्तेजना के मानसिक विषय (Mental content) को प्रत्यक्ष और अनुपस्थित उत्तेजना के मानसिक विषय को प्रतिमा कहते है।

कुछ विद्वानों ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह व्यक्त किया है कि प्रतिमा प्रत्यक्ष के समान स्पष्ट (Vivid) होती है। गाल्टन (Galton) के कई प्रयोज्यों ने भी प्रतिमा के सम्बन्ध में यह व्यक्त किया है। किंतु, स्पष्टता में दोनों का बराबर मान लेना दोषपूर्ण होगा। हमारे नित्य प्रति के अनुभव और जो प्रयोग इस दिशा मे किये गये है, उनसे यह स्पष्ट है कि अधिकांश व्यक्ति धुँधली और निर्जीव प्रतिमा का ही अनुभव करते है।

हम प्रत्यक्ष के आधार का स्थानीयकरण (Localization) करते है, किंतु प्रतिमा का कोई स्थान निश्चित नहीं रहता। प्रत्यक्ष वर्तमान उत्तेजना का होता है जो बाह्य विश्व में रहता है। अत उसकी उत्तेजना को निश्चित करना कठिन नहीं होता। प्रतिमा में उत्तेजना का अभाव रहता है, इसलिये उसका निश्चित रूप से स्थानीयकरण नहीं होता। कभी उसका अनुभव मन में होता है, कभी अगल-बगल या सामने और कभी अन्यत्र।

मार्टिन (Martin) ने अपने कई प्रयोज्यों को एक पदार्थ प्रदर्शित कर उसके बगल में उसकी प्रतिमा को अनुभव करने का निर्देशन दिया। उन प्रयोज्यों ने दोनों के तुलनात्मक अनुभवों का जो अन्तर्निरीक्षण व्यक्त किया उस से यह स्पष्ट है कि रग के दृष्टिकोण से प्रतिमाएँ प्रत्यक्ष की अपेक्षा कम स्पष्ट, अनिश्चित और अस्थिर (Unstable) थी। उन प्रतिमाओं का, अनुभव प्रयास (Efforts) करने पर हुआ, किंतु प्रत्यक्ष के लिये उस प्रयास की आवश्यकता नहीं थी। इतना ही नहीं, ध्यानावस्थित होने पर प्रत्यक्ष को विवरण

(Detail) के साथ वे देख सके, किंतु उस ध्यानावस्था का असर प्रतिमा पर कुछ भी नही पड़ा।

कुल्पे (Kulpe) और रीफर (Reifer) ने प्रतिमा और प्रत्यक्ष के अन्तरों को देखने के लिये कई प्रयोज्यों पर प्रयोग किया। उनके प्रयोग मे अधिकाश प्रयोज्य प्रतिमा को प्रत्यक्ष समझ बैठे, किन्तु ऐसे प्रयोज्यों की सख्या अत्यल्प थी जो प्रत्यक्ष को प्रतिमा समझ सके। इस परिणाम से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रयोज्यों का निर्णय उनकी मनोवृत्ति और ध्यान-दिशा (Direction of attention) से अत्यधिक प्रभावित होता है। किंतु, पर्की (Perkev) तथा स्क्रिप्चर (Scripture) ने जब २७ प्रयोज्यों पर इस दिशा मे प्रयोग किया तब उनके सभी प्रयोज्यों ने केले के प्रत्यक्ष को केले की प्रतिमा समझा। बात यह थी कि प्रयोज्यों को पर्दे पर केले की प्रतिमा का अनुभव करने का निर्देशन दिया गया और वे जब प्रतिमा का प्रयास कर रहे थे दूसरे कमरे से केले का चित्र पर्दे पर प्रदर्शित किया गया। उस चित्र को सभी प्रयोज्यों ने केले की प्रतिमा समझा। प्रत्यक्ष और प्रतिमा की प्रक्रियाएं एक दूसरे से भिन्न होती है। प्रत्यक्ष की प्रक्रिया ज्ञानेन्द्रिय विशेष की उत्तेजना (Stimulation) से प्रारम्भ हो कर बृहन्मस्तिष्क (Cerebrum)के ज्ञानेन्द्रिय विशेष से आबद्ध स्नायुकेन्द्रों (Nerve centres) मे समाप्त होती है। प्रतिमा में ज्ञानेन्द्रिय विशेष किसी उत्तेजना से प्रभावित नही होती, इसलिये प्रतिमा का अनुभव मस्तिष्क के स्नायु केन्द्र विशेष के उत्तेजित होने मात्र से होता है। उपर्युक्त अन्तरों को ध्यान मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि वस्तुत इन दोनों मे गुणात्मक (Qualitative) नही, अपितु सख्यात्मक भेद है। प्रतिमा प्रत्यक्ष की तरह इतना प्रबल, या स्पष्ट हो सकती है कि यह समझना कठिन हो जाय कि प्रत्यक्ष का अनुभव हो रहा है या प्रतिमा का। जैसा कि पर्की (Perkey) और स्क्रिप्चर के प्रयोग परिणाम से स्पष्ट है, जब प्रतिमा को कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष समझता है तब उसके इस अनुभव को विभ्रम (Hallucination) कहते है। यद्यपि सभी मनुष्यों को ऐसा अनुभव किसी न किसी समय होता है, किंतु जब किसी मे इसका आधिक्य हो जाता है तब उसे असामान्य समझा जाता है। असामान्य व्यक्तियों का अध्ययन करके इसकी सत्यता की परीक्षा आसानी से की जा सकती है।

प्रतिमा-अध्ययन की विधियाँ

मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिमा-अध्ययन की कई विधियाँ निर्धारित की गई है जिनका उल्लेख कर देना अप्रासगिक नही होगा। उनका विश्वास है कि मनुष्य मे जिस प्रकार की प्रतिमा का बाहुल्य रहता है उस प्रकार के कामों मे वह निपुण रहता है। इसलिए जिस काम में आँख की जरूरत होती है उसमे दृष्ट्यात्मक और जिसमे कान या अन्य ज्ञानेन्द्रिय की आवश्यकता होती है उसमे आबद्ध प्रतिमा अधिक सहायक होती है।

(१) ध्यानभग-विधि (Method of distraction) हम जब कोई कार्य करते है तो थोड़ी देर के बाद हम उसमे ध्यानावस्थित हो जाते है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि बगल से कोई बहुत परिचित व्यक्ति चला जाता है और हमे पता तक नहीं चलता।

ध्यानभग-विधि से प्रतिमा का अध्ययन करने के लिए प्रयोज्य को किसी कार्य मे नियुक्त कर दिया जाता है। फिर विभिन्न स्वरूप की उत्तेजनाओ से उसके कार्य म बाधा पहुँचाई जाती है। जिस ध्यानभग से प्रयोज्य के कार्य मे अधिक क्षति पहुचती है उसे उसी प्रकार की प्रतिमा से युक्त समझा जाता है। लेकिन, प्रतिमा अध्ययन की यह विधि ठीक नही जँचती। प्रयोग करने पर देखा गया है कि आँख से किए जाने वाले कार्य ध्वन्यात्मक ध्यानभग (Auditory distractions) से प्रभावित होते है और जिन कार्यों के लिए कान की आवश्यकता अधिक होती हे वे दृष्ट्यात्मक ध्यानभगो से क्षतिग्रस्त होते है। अत ऐसे परिणामों के आधार पर किसी व्यक्ति के प्रतिमा-प्रकार का अध्ययन नही किया जा सकता, क्योंकि यह परिणाम व्यक्ति की गत अनुभूतियों की अपेक्षा वर्त्तमान कार्य के स्वरूप से अधिक प्रभावित होता हे।

(२) लेख-विश्लेपण-विधि (Method of writing-analysis) लेखक जिस विषय, वस्तु या दृश्य का चित्रण करता है उसे लिखते समय उसके सामने उसका एक मानसिक चित्र रहता हे। वह धडाधड भागती गाडी का चित्र खीचता हे और उसके सामने वही एक गाडी भागती जाती हे। वह इस भागती गाडी की प्रतिमा का जिस रूप मे निरीक्षण करेगा उसका चित्रण उसी तरह का होगा। इसीसे कुछ मनोवैज्ञानिको ने लेखको के लेखो का विश्लेषण करके प्रतिमा-प्रकार निधारित करने का प्रयत्न किया है। एसा विश्वास है कि जिसमे जिस प्रतिमा की प्रधानता रहती है उसके लेखो मे उसी स्वरूप के दृश्यों (Scenes) और घटनाओ की भरमार रहती हे। लेकिन, यह विधि प्रतिमा को निर्धारित करने मे सफल नही हो सकी। ऐसे उदाहरणो की कमी नही कि दृष्ट्यात्मक प्रतिमाओ का अभाव रहने पर भी लेखक दृश्य पदार्थो का सुन्दरतम वर्णन करता है।

(३) साहचर्य-विधि (Method of association) हमने देखा कि प्रतिमा गत अनुभव पर निर्भर करती है। हम यह भी जानते है कि गत अनुभवो के प्रत्यावाहन मे साहचर्य काफी सहायक होते है। अत कुछ विद्वानों ने व्यक्ति की प्रतिमा का अध्ययन करने के लिए साहचर्य विधि को समुचित माना। इस विधि से प्रतिमा की जाँच करने के लिए प्रयोज्य को कुछ समय तक (पाँच सात मिनट) प्रत्येक प्रकार की प्रतिमा से सम्बन्धित कुछ पदार्थों के नाम लिखने का आदश दिया जाता है। जिस प्रकार की प्रतिमा से सम्बन्धित शब्दों की अधिकता रहती है उसे उसी प्रतिमा प्रकार मे रखा जाता है। परन्तु, यह विधि भी दोषपूर्ण हे। मनुष्य किसी पदार्थ, घटना या अनुभव का प्रत्यावाहन उसके गुणों के सम्बन्ध मे सोचे बिना भी कर सकता हे। तबले का प्रत्यावाहन उसकी ध्वनि के बिना किया जा सकता है। अत मात्र शब्द के उच्चारण या प्रत्यावाहन से किसी निश्चित प्रतिमा की उपस्थिति का सदा अर्थ लगाना गलत होगा।

(४) शिक्षण-विधि (Learning method) किसी विषय को सीखने में प्रतिमाओ का बहुत अधिक योगदान मिलता है। साथ ही, घटनाओ को सुनकर और कुछ को देख कर हम अनुभव प्राप्त करते है। इसी तरह, भिन्न भिन्न स्वाद को जीभ के सहारे और गध के ज्ञान को नाक के सहारे प्राप्त करते हे। बाद मे ये ज्ञान हमारी तरह-तरह की प्रतिमाओं के आधार बनते है। यही कारण हे कि यदि कोई विषय सीखने को दिया जाता

है तो उसके विभिन्न शब्द और घटनाएँ मन मे विभिन्न प्रतिमाओ का निमाण करती है। उदाहरणार्थ, किसी स्वस्थ प्रयोज्य मे 'कॉलेज' शब्द से दृष्ट्यात्मक, 'टिक' शब्द ने ध्वन्यात्मक तथा 'खट्टा' शब्द से स्वाद प्रतिमा की आशा की जा सकती है। जिस व्यक्ति मे जिस प्रकार की प्रतिमा प्रबल रहती है, वह उस प्रतिमा से आबद्ध शब्दों को सरलता से शीघ्र ही सीख लेता है। इस तथ्य को ध्यान मे रखकर कुछ विद्वानो ने शिक्षण विधि के सहारे प्रतिमा का अध्ययन किया है। प्रत्येक प्रकार की प्रतिमा से आबद्ध कुछ निश्चित शब्द प्रयोज्य के समक्ष उपस्थित कर यह देखा जाता है कि किस तरह की प्रतिमा से सम्बन्धित शब्दों को सीखने मे उसे अधिक सहूलियत होती है। वह जिस तरह के शब्दो को सीखने में अधिक सरलता और सुविधा का अनुभव करता है, उसमे उसी तरह की प्रतिमा का बाहुल्य समझा जाता है। लेकिन, इस विधि के साथ सबसे बड़ा दोष यह है कि किस शब्द से किस प्रकार की प्रतिमा का बोध होगा, इसे निश्चित रूप से प्रत्यक प्रयोज्य के लिये सही नहीं माना जा सकता। गत्यात्मक और क्रियात्मक (Motor) प्रतिमाओ के निश्चयन मे विशेष कठिनाई होती है। अत इस विधि का उपयोग इन दिनो प्राय नही होता है।

प्रतिमा का अध्ययन शब्दों के शिक्षण के सहारे एक दूसरे तरीके से भी होता है। इससे दृश्य और ध्वनि-प्रतिमाओं का तुलनात्मक अध्ययन अच्छी तरह होता है। इस विधि से प्रतिमा का अध्ययन करने के लिये दो शब्द-सूचियाँ तैयार की जाती हैं। इनमे एक सूची पढकर प्रयोज्य को सुनाई जाती है और दूसरी को उसे दिखाया जाता है। प्रत्यक सूची को उपस्थित करने के उपरान्त प्रयोज्य को प्रतिमासम्बन्धी अनुभव को व्यक्त करने का आदेश दिया जाता है। ध्वनि और दृश्य प्रतिमाओ में जिसकी भी तीव्रता प्रयोज्य मे होगी, वह उसी तरह से सीखे शब्दो को लिखने मे अधिक समर्थ होगा। लेकिन, इस विधि के सहारे सभी प्रकार की प्रतिमाओ का अध्ययन करना सम्भव नही है। साथ ही, शब्दो के प्रत्याग्रहन मे कई अग कार्य करते हैं। अत अधिक प्रत्याग्रहन से किसी प्रतिमा विशेष की तीव्रता का अर्थ लेना गलत होगा। इसलिये यह विधि भी सतोषजनक नही कही जा सकती।

शिक्षण विधि से ही सबन्धित शब्दविन्यास विधि (Method of word analysis) भी है जिससे प्रतिमा का अध्ययन होता है। इसमे प्रयोज्य को काइ शब्द उच्च स्वर से बोलकर उसे शब्द के अक्षरों को उल्टा रूप मे व्यक्त करने को कहा जाता है। जिस व्यक्ति मे दृष्ट्यात्मक प्रतिमा प्रबल रहती है वह इस कार्य मे विशेष रूप से सफल होता है। किन्तु, इसे भी हम उपर्युक्त दोषों से रहित नही मान सकते। अत मनोवैज्ञानिकों ने प्रतिमा अध्ययन की दूसरी विधियो को अपनाया है।

(५) चित्र-वर्णन विधि (Method of picture description) इस विधि से प्रतिमाओ का अध्ययन करते समय प्रयोज्य के समक्ष कोई खास चित्र कुछ समय के लिये प्रदर्शित किया जाता है। तत्पश्चात् उसे उस चित्र का विस्तृत वर्णन लिखने को कहा जाता है। जब वह लिखना समाप्त कर लेता है तब उससे उस चित्र के सम्बन्ध मे तरह तरह के प्रश्न पूछे जाते हैं और उनके उत्तरों को अकित किया जाता है। फर्नाल्ड (Fernald) ने इस विधि का व्यवहार काफी सफलता के साथ किया। उसका यह विश्वास था कि चित्र

के विवरण मे शाब्दिक और दृष्ट्यात्मक प्रतिमाओ की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। चित्र-वर्णन की उत्तमता के आधार पर प्रयोज्य की प्रतिमा को निश्चित किया जाता है।

म्युलर (Muller), बिने (Binet), फरनाल्ड, प्रभृति मनोवैज्ञानिको ने प्रतिमा के अध्ययन के लिये अक्षर वर्ग विधि (Letter square method) का व्यवहार किया है, लेकिन इसमे कई तरह के दोष पाए जाते है।

(६) प्रश्नावलि विधि (Questionnaire method) गाल्टन (Galton) द्वारा प्रतिपादित प्रतिमा अध्ययन की यह विधि काफी पुरानी है। लेकिन, उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रतिमा अध्ययन की सभी उपलब्ध विधियां प्राय दोषपूर्ण है और फलत प्रतिमा-निधारण करने के लिये प्रश्नावलि-विधि का ही प्रधानता दी जाती है। इस विधि के अनुसार प्रयोज्य से प्रत्येक प्रतिमा से सम्बन्धित कुछ प्रश्न पूछे जाते है जिनके उत्तर में प्रयोज्य अपनी प्रतिमाओ का विवरण देता है। उनके सम्बन्ध मे अन्तर्निरीक्षण देते समय वह यह बतलाता है कि प्रतिमाएँ कितनी स्पष्ट है—यानी, वे प्रत्यक्ष (Percept) के समान है, स्पष्ट है अथवा धुँधली है। प्रयोग परिणाम को संख्यात्मक बनाने के लिये प्रतिमाओं की स्पष्टता सम्बन्धी विवरण का मूल्यांकन (Rating) करके औसत मालूम किया जाता है। जिस प्रतिमा का औसत मूल्यांकन अधिक होता है, प्रयोज्य मे उसी की प्रबलता समझी जाती है।

प्रत्येक प्रतिमा से सम्बन्धित प्रश्नो की संख्या बराबर होती है। प्रश्न स्पष्ट और सरल होते है ताकि प्रयोज्य उनका सही अर्थ समझ सके। प्रश्नो से द्वयर्थक (Ambiguous) शब्द हटा दिये जाते है। प्रश्नो मे उन अनुभवो की प्रतिमाएँ मन मे लाने को कहा जाता है जिनमे प्रयोज्य को सामान्यत कोई दिक्कत या अनिश्चितता न हो। साधारणत प्रश्न सीधे और छोटे होते है। उदाहरणार्थ, प्रयोज्य से 'अपने घर का चित्र', 'पिताजी की आवाज' या 'अमरूद के स्वाद' के अनुभव सम्बन्धी प्रतिमा की स्पष्टताकी-मात्रा पूछी जा सकती है। प्रयोज्य को मन मे किसी प्रकार की प्रतिमा के अनुभव करने मे प्रारम्भ मे दिक्कत होती है, लेकिन कुछ अभ्यास के बाद यह कठिनाई समाप्त हो जाती है। फिर भी, व्यक्तिगत भिन्नता बनी रहती है। विभिन्न प्रतिमाओं को अनुभव करने की शक्ति सभी व्यक्तियों मे समान नहीं होती, तथापि वर्त्तमान अवस्था मे प्रश्नावलि विधि प्रतिमा अध्ययन मे सर्वाधिक उपयोगी है।[1]

प्रतिमा का वर्गीकरण

प्रतिमा और प्रत्यक्ष की समानता के आधार पर जो प्रतिमा विभाजन किया गया है हम उसी का क्रमश संक्षिप्त उल्लेख करेंगे।

(१) स्मरण-प्रतिमा (Memory Image) स्मरण प्रतिमा को सामान्यत प्रतिमा मात्र भी कहते है। किन्तु, किसी प्रकार के दोष से वंचित रहने के लिये स्मरण-प्रतिमा

१—प्रश्नावलि विधि से प्रतिमा प्रकार (Image type) निर्धारित करने की पूर्ण गतिविधि (Procedure) के लिये लेखक द्वारा लिखित 'मनोवैज्ञानिक प्रयोग' (प्र०—ग्रंथमाला कार्यालय, पटना, ४ (बिहार)) देखें।

कहना विशेष श्रेयस्कर है। जब हमे अपने किसी गत अनुभव की स्मरण प्रतिमा की अनुभूति होती है तब हम उसका सम्बन्ध किसी काल और स्थान विशेष से स्थापित करते हैं। किंतु, सभी स्मरण प्रतिमाओ के सम्बन्ध मे ऐसा नही कहा जा सकता, क्योंकि उनमे परिचय का बीजतत्त्व (Elements) तो रहता है, लेकिन उसका कोइ निश्चित रूप नही रहता। जो कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि सभी सामान्य व्यक्तियो मे प्रतिमाओं के अनुभव की योग्यता विद्यमान है। इस दिशा मे फेकनर (Fechner) और गाल्टन के नाम विशेष महत्त्व के हैं। सबसे पहले फेकनर ने प्रतिमाओं का अध्ययन किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रतिमाओ मे व्यक्तिगत भिन्नता होती है। तत्पश्चात् गाल्टन ने प्रतिमाओं का अध्ययन बहुत परिश्रम के साथ किया। उसकी प्रश्नावलि-विधि आज भी काम मे लाई जाती है। वह अपने प्रयोज्यो से जलपान के समय के दृश्य के विषय मे तरह-तरह का प्रश्न करके उनकी प्रतिमाओ की विशेषताओ को अंकित करता था। यद्यपि बहुत प्रयोज्यो ने किसी प्रकार की प्रतिमा का अनुभव नही किया, लेकिन बहुतों मे इसका अनुभव बहुत सजीव था। उसे प्रतिमाओ के विषय मे सबसे विचित्र बात जो ज्ञात हुई वह यह थी कि वैज्ञानिकों मे इसकी योग्यता बहुत कम देखने मे आई। गाल्टन ने अपने अन्वेषणो के आधार पर यह व्यक्त किया कि प्रतिमाएँ केवल दृष्ट्यात्मक नही होती, बल्कि जितनी ज्ञानेन्द्रियाँ है उतने प्रकार की स्मरण प्रतिमाएँ होती है। उसके अनुयायियों ने मनुष्यों को प्रतिमा प्रकार मे बाँटने का प्रयास किया। जिसमे दृष्ट्यात्मक प्रतिमा की योग्यता अधिक थी और अन्य प्रतिमाओ का अभाव अथवा निर्बलता थी उसे दृष्ट्यात्मक प्रतिमा-प्रधान (Visile) का नाम दिया गया। इसी प्रकार, सभी व्यक्ति ध्वन्यात्मक (Auditory), घ्राणात्मक (Olfactory), रसात्मक (Gustatory), क्रियात्मक (Motor) प्रतिमा प्रधान प्रकारों में बाँटे गये। यो तो सभी प्रतिमाओ की शक्ति कुछ अशो मे सभी मनुष्यों मे रहती है, परन्तु जिस प्रतिमा की प्रबलता अधिक रहती है उसी के आधार पर व्यक्ति के प्रतिमा-प्रकार को निर्धारित किया जाता है। विभिन्न प्रयोगों से यह निर्विवाद है व्यक्ति के जीवन मे दृष्ट्यात्मक (Visual), ध्वन्यात्मक (Auditory) और क्रियात्मक (Motor) प्रतिमाओं का बाहुल्य रहता हैं। उसमे अन्य प्रकार की प्रतिमाओं की शक्ति बहुत कम मात्रा मे रहती है। बाद के अन्वेषको ने, जिनमे बेट्स (Betts) का नाम विशेष उल्लेखनीय है, प्रतिमा-प्रकार का खण्डन किया है। उसका कहना है कि मनुष्यो को विशुद्ध प्रतिमा-प्रकार मे बाँटना उचित नही है, क्योकि उनमे सभी प्रकार की प्रतिमाओं को अनुभव करने की शक्ति रहती है। अतएव उन्हे मिश्रित प्रतिमा प्रकार (Mixed image type) मे ही बाँटना उचित है। किन्तु, यदि हम प्रतिमा की प्रबलता और स्पष्टता के आधार पर मनुष्यों को प्रतिमा-प्रकार मे बाँटे तो अनुचित नही होगा। यों तो व्यवहारवादियों ने प्रतिमा प्रकार का खण्डन किया है, लेकिन उनका ऐसा करना दोषपूर्ण है। हमारा नित्यप्रति का अनुभव इस बात का साक्षी है कि हमारे जीवन मे प्रतिमाओ का बाहुल्य है। लेखक ने जितने प्रयोज्यो पर प्रतिमा का प्रयोग किया है उन सभी ने अपनी विभिन्न प्रतिमाओ को व्यक्त किया है। यहाँ लेखक द्वारा किये गए प्रयोग के आधार पर प्रयोज्यों की विभिन्न प्रतिमाओं का औसत ग्राफ-चित्र देना अनुचित नही होगा।

(२) दर्शन प्रतिमा (Eidetic image) कुछ लोग प्रतिमाओं का अनुभव बिल्कुल प्रत्यक्ष की तरह करते है। उनसे जब प्रतिमा के विषय मे पूछा जाता है तब वे

के विवरण मे शाब्दिक और दृष्ट्यात्मक प्रतिमाओ की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। चित्र-वर्णन की उत्तमता के आधार पर प्रयोज्य की प्रतिमा का निश्चित किया जाता है।

म्युलर (Muller), बिने (Binet), फराउ, प्रभृति मनोवैज्ञानिको ने प्रतिमा के अध्ययन के लिये अक्षर वर्ग विधि (Letter square method) का व्यवहार किया है, लेकिन इसमे कई तरह के दोष पाए जाते है।

(६) प्रश्नावलि विधि (Questionnaire method) गाल्टन (Galton) द्वारा प्रतिपादित प्रतिमा अध्ययन की यह विधि काफी पुरानी है। लेकिन, उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रतिमा अध्ययन की सभी उपलब्ध विधियाँ प्राय दोषपूर्ण है और फलत प्रतिमा-निर्धारण करने के लिये प्रश्नावलि-विधि का ही प्रधानता दी जाती है। इस विधि के अनुसार प्रयोज्य से प्रत्येक प्रतिमा से सम्बन्धित कुछ प्रश्न पूछे जाते है जिनके उत्तर मे प्रयोज्य अपनी प्रतिमाओ का विवरण देता है। उनके सम्बन्ध मे अन्तर्निरीक्षण देते समय वह यह बतलाता है कि प्रतिमाएँ कितनी स्पष्ट है—यानी, वे प्रत्यक्ष (Percept) के समान है, स्पष्ट है अथवा धुँधली है। प्रयोग परिणाम का संख्यात्मक बनाने के लिये प्रतिमाओ की स्पष्टता सम्बन्धी विवरण का मूल्यांकन (Rating) करके औसत मालूम किया जाता है। जिस प्रतिमा का औसत मूल्यांकन अधिक होता है, प्रयोज्य मे उसी की प्रबलता समझी जाती है।

प्रत्येक प्रतिमा से सम्बन्धित प्रश्नो की संख्या बराबर होती है। प्रश्न स्पष्ट और सरल होते है ताकि प्रयोज्य उनका सही अर्थ समझ सके। प्रश्नो से द्व्यर्थक (Ambiguous) शब्द हटा दिये जाते है। प्रश्नो मे ऐसे अनुभवो की प्रतिमाएँ मन मे लाने को कहा जाता है जिनमे प्रयोज्य को सामान्यत कोई दिक्कत या अनिश्चितता न हो। साधारणत प्रश्न सीधे और छोटे होते है। उदाहरणार्थ, प्रयोज्य से 'अपने घर का चित्र', 'पिताजी की आवाज' या 'अमरूद के स्वाद' के अनुभव सम्बन्धी प्रतिमा की स्पष्टता की मात्रा पूछी जा सकती है। प्रयोज्य को मन मे किसी प्रकार की प्रतिमा के अनुभव करने मे प्रारम्भ मे दिक्कत होती है, लेकिन कुछ अभ्यास के बाद यह कठिनाई समाप्त हो जाती है। फिर भी, व्यक्तिगत भिन्नता बनी रहती है। विभिन्न प्रतिमाओ का अनुभव करने की शक्ति सभी व्यक्तियो मे समान नही होती, तथापि वर्त्तमान अवस्था मे प्रश्नावलि विधि प्रतिमा-अध्ययन मे सर्वाधिक उपयोगी है।[1]

प्रतिमा का वर्गीकरण

प्रतिमा और प्रत्यक्ष की समानता के आधार पर जो प्रतिमा विभाजन किया गया है हम उसी का क्रमश संक्षिप्त उल्लेख करेंगे।

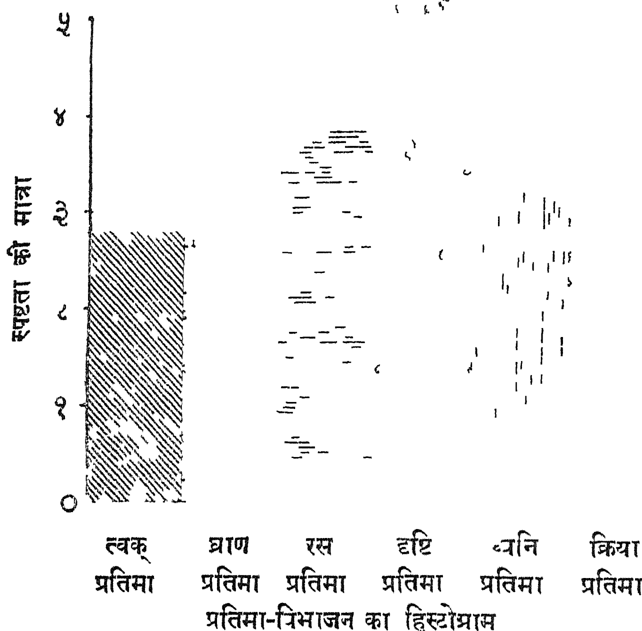
(१) स्मरण प्रतिमा (Memory Image) स्मरण प्रतिमा को सामान्यत प्रतिमा मात्र भी कहते है। किन्तु, किसी प्रकार के दोष से वंचित रहने के लिये स्मरण-प्रतिमा

[1]—प्रश्नावलि विधि से प्रतिमा प्रकार (Image type) निर्धारित करने की पूर्ण गतिविधि (Procedure) के लिये लेखक द्वारा लिखित 'मनोवैज्ञानिक प्रयोग' (ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, ४ (बिहार)) देखें।

कहना विशेष श्रेयस्कर है। जब हमे अपने किसी गत अनुभव की स्मरण प्रतिमा की अनुभूति होती है तब हम उसका सम्बन्ध किसी काल और स्थान विशेष से स्थापित करते है। किंतु, सभी स्मरण प्रतिमाओं के सम्बन्ध मे ऐसा नही कहा जा सकता, क्योंकि उनमे परिचय का बीजतत्त्व (Elements) तो रहता है, लेकिन उसका कोई निश्चित रूप नही रहता। जो कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि सभी सामान्य व्यक्तियो मे प्रतिमाओं के अनुभव की योग्यता विद्यमान है। इस दिशा मे फेक्नर (Fechner) और गाल्टन के नाम विशेष महत्त्व के है। सबसे पहले फेक्नर ने प्रतिमाओ का अध्ययन किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रतिमाओ मे व्यक्तिगत भिन्नता होती है। तत्पश्चात् गाल्टन ने प्रतिमाओं का अध्ययन बहुत परिश्रम के साथ किया। उसकी प्रश्नावलि-विधि आज भी काम मे लाई जाती है। वह अपने प्रयोज्यो से जलपान के समय के दृश्य के विषय मे तरह-तरह का प्रश्न करके उनकी प्रतिमाओ की विशेषताओ को अंकित करता था। यद्यपि बहुत प्रयोज्यो ने किसी प्रकार की प्रतिमा का अनुभव नही किया, लेकिन बहुतों म इसका अनुभव बहुत सजीव था। उसे प्रतिमाओ के विषय मे सबसे विचित्र बात जो ज्ञात हुई वह यह थी कि वैज्ञानिकों मे इसकी योग्यता बहुत कम देखने मे आई। गाल्टन ने अपने अन्वेषणों के आधार पर यह व्यक्त किया कि प्रतिमाएँ केवल दृष्ट्यात्मक नही होती, बल्कि जितनी ज्ञानेन्द्रियाँ है उतने प्रकार की स्मरण प्रतिमाएँ होती है। उसके अनुयायियों ने मनुष्यों को प्रतिमा प्रकार मे बाँटने का प्रयास किया। जिसमे दृष्ट्यात्मक प्रतिमा की योग्यता अधिक थी और अन्य प्रतिमाओ का अभाव अथवा निर्बलता थी उसे दृष्ट्यात्मक प्रतिमा-प्रधान (Visile) का नाम दिया गया। इसी प्रकार, सभी व्यक्ति ध्वन्यात्मक (Auditory), घ्राणात्मक (Olfactory), रसात्मक (Gustatory), क्रियात्मक (Motor) प्रतिमा-प्रधान प्रकारों मे बाँटे गये। यो तो सभी प्रतिमाओ की शक्ति कुछ अंशो मे सभी मनुष्यों मे रहती है, परन्तु जिस प्रतिमा की प्रबलता अधिक रहती है उसी के आधार पर व्यक्ति के प्रतिमा-प्रकार को निर्धारित किया जाता है। विभिन्न प्रयोगों से यह निर्विवाद है व्यक्ति के जीवन मे दृष्ट्यात्मक (Visual), ध्वन्यात्मक (Auditory) और क्रियात्मक (Motor) प्रतिमाओं का बाहुल्य रहता है। उसमे अन्य प्रकार की प्रतिमाओ की शक्ति बहुत कम मात्रा मे रहती है। बाद के अन्वेषकों ने, जिनमे बेटस (Betts) का नाम विशेष उल्लेखनीय है, प्रतिमा-प्रकार का खण्डन किया है। उसका कहना है कि मनुष्यो को विशुद्ध प्रतिमा-प्रकार मे बाँटना उचित नही है, क्योंकि उनमे सभी प्रकार की प्रतिमाओं को अनुभव करने की शक्ति रहती है। अतएव उन्हे मिश्रित प्रतिमा-प्रकार (Mixed image type) मे ही बाँटना उचित है। किन्तु, यदि इम प्रतिमा की प्रबलता और स्पष्टता के आधार पर मनुष्यों को प्रतिमा-प्रकार मे बाँटे तो अनुचित नही होगा। यों तो व्यवहारवादियों ने प्रतिमा प्रकार का खण्डन किया है, लेकिन उनका ऐसा करना दोषपूर्ण है। हमारा नित्यप्रति का अनुभव इस बात का साक्षी है कि हमारे जीवन मे प्रतिमाओ का बाहुल्य है। लेखक ने जितने प्रयोज्यों पर प्रतिमा का प्रयोग किया है उन सभी ने अपनी विभिन्न प्रतिमाओ को व्यक्त किया है। यहाँ लेखक द्वारा किये गए प्रयोग के आधार पर प्रयोज्यों की विभिन्न प्रतिमाओं का औसत ग्राफ चित्र देना अनुचित नही होगा।

(२) दर्शन-प्रतिमा (Eidetic image) कुछ लोग प्रतिमाओं का अनुभव बिलकुल प्रत्यक्ष की तरह करते है। उनसे जब प्रतिमा के विषय मे पूछा जाता है तब वे

चित्र संख्या ४०



प्रतिमा-विभाजन का हिस्टोग्राम

यह व्यक्त करते है कि उसका अनुभव मन मे करने की कौन कहे उसे वे बाह्य जगत मे देख रहे है। प्रतिमा की इतनी अधिक स्पष्टता प्रत्यक्ष से काफी साम्य रखती है। लेकिन, ऐसे व्यक्ति विभ्रम (Hallucination) के शिकार नहीं रहते, क्योकि उस समय उनका यह विश्वास रहता है कि वस्तुत उस स्थल विशेष पर वह पदार्थ नही है, यद्यपि इसके विवरण (Details) अत्यन्त स्पष्ट होते है। दृष्टि गत्यात्मक के साथ साथ इसमें गति होती है और उत्तेजना के विलीन होने पर घटो, दिनो या महीना बाद भी इच्छानुसार इसका अनुभव किया जा सकता है। यह स्मरण-प्रतिमा का एक विशेष प्रकार है और यह इतनी प्रभावोत्पादक (Impressive) होती है कि अनुभव करने वाला व्यक्ति इच्छानुकूल इसके रूप, रग, स्थान और आकार को परिवर्तित कर देता है। किन्तु, जिस चीज मे अभिरुचि रहती है उसीकी दर्शन-प्रतिमा का अनुभव भी होता है।

यद्यपि कुछ प्रौढ व्यक्ति भी इस प्रकार का अनुभव व्यक्त करते है, किन्तु इसका बाहुल्य छः वर्ष से किशोरावस्था तक के बच्चो में रहता है। पर्डी (Purdey) ने एक ऐसे महाविद्यालयीय छात्र का उल्लेख किया है जो सिर्फ दृष्टि दर्शन-प्रतिमा का ही नही, बल्कि अन्य इन्द्रियों से आबद्ध दर्शन-प्रतिमाओं का भी अनुभव करता था। जिस व्यक्ति मे इसकी प्रबल शक्ति रहती है वह दर्शन प्रतिमा का बहुत विस्तृत रूप मे वर्णन करता है। लेकिन, इससे यह समझना दोषपूर्ण होगा कि दर्शन प्रतिमा मे मौलिक प्रत्यक्ष का अनुभव होता है। जब किसी दर्शन प्रतिमा का विवरण पूछा जाता है तब व्यक्ति उसी समय सभी विवरणों का अनुभव नहीं करता रहता है, बल्कि उसे उनका क्रमश अनुभव होता है। उसके वर्णन में कुछ कमी-बेशी अवश्य ही रहती है। क्लुवर (Kluver) के प्रयोग इसी तथ्य का प्रतिपादन करते है।

कई मनोवैज्ञानिकों ने जटिल चित्रों (Complex pictures) के साथ कुछ बच्चों पर प्रयोग किया है। बच्चों को कोई चित्र दस से चालीस सेकण्ड तक प्रदर्शित किया गया और उन्हे यह आदेश दिया गया कि वे केवल चित्र मे एक स्थल पर ही अपनी आँख न गडावे, बल्कि पूरे चित्र के सभी अगो को आँखे घुमाकर देखे। चित्र के हटा लेने के बाद उन्हे एक हरे पर्दे पर देखने को कह कर दर्शन प्रतिमा का अनुभव करने को कहा गया। जब उन्होंने अपनी दर्शन प्रतिमाओ का वर्णन किया तो वह वर्णन बहुत विस्तृत था। जब एलपार्ट (Allport) ने ग्यारहवर्षीय बालकों पर इसका प्रयोग एक चित्र के साथ किया तो उसके बच्चे इतना विस्तृत वर्णन करने मे समर्थ हुए कि उन्होंने विदेशी भाषा (जर्मन) के शब्दों का अन्वय तक शुद्ध-शुद्ध किया। उन वर्णनों की तुलना स्मरण प्रतिमा और अनुप्रतिमा (After image) के वर्णनों के साथ करने पर देखा गया कि दर्शन प्रतिमा का वर्णन अन्य दो प्रकार के अनुभवों से अत्यधिक और उत्तम था। एलपार्ट (Allport), क्लुवर (Kluver), जेन्श (Jaensch), प्रभृति विद्वानों के जितने प्रयोग इस दिशा मे हुए है उन सबसे यह प्रमाणित होता है कि दर्शन प्रतिमा के विवरण के वर्णन मे अभिरुचि का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। किन्तु, इसकी स्पष्टता इसकी प्रतिपन्नता (Accuracy) का वास्तविक द्योतक नही कही जा सकती, क्योंकि अभिरुचि के अनुकूल इसके विवरण मे न्यूनाधिक होता है। इसके अतिरिक्त, समय के साथ इसमे परिवर्त्तन भी होता रहता है।

बालकों मे प्रौढों की अपेक्षा दर्शन-प्रतिमा का बाहुल्य क्यों रहता है, इस प्रश्न का उत्तर किसी ने निश्चयात्मक रूप से नहीं दिया है। परन्तु, इसके विभिन्न कारणों का अध्ययन करने से पता लगता है कि शरीररचना, आनुवशिकता, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों (Endocrine glands) की क्रियाओं, और रसपाक क्रिया (Metabolic process) के अन्तरो के कारण इस शक्ति मे भेद पडता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानसिक विकास में दर्शन-प्रतिमा वह प्रारम्भिक अवस्था है जिससे कालक्रम मे प्रत्यक्ष और स्मरण प्रतिमा की शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। हमलोग मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में विभिन्न प्रयोज्यों को कोई चित्र दस सेकण्ड से एक मिनट तक दिखला कर उसकी दर्शन प्रतिमा की योग्यता की परीक्षा कर सकते है। चित्र को एक जगह न देखकर आँख घुमाकर देखने का निर्देशन दिया जाता है। जब समय समाप्त हो जाता है तब उसे भूरे या हरे पर्दे पर देखने को कहा जाता है और वह जो दृश्य देखता है उसे व्यक्त करता है। जिसमे इसकी योग्यता का अभाव रहता है वह कुछ नही देखता, किन्तु जिसमे इसको अनुभव करने की शक्ति रहती है वह चित्र के देखने के व्यापार को व्यक्त करता है। जिसे दर्शन प्रतिमा का अनुभव होता है वह अपनी आँखों को प्रतिमा के एक भाग से दूसरे भाग पर घुमाया करता है। वह उस ओर विशेष रुचि के साथ झुक कर चित्र के अनुरूप सवेग को भी प्रदर्शित करता है। कुछ प्रयोज्य इस प्रतिमा का अनुभव दो तीन मिनट तक भी करते है।

(३) अनुप्रतिमा (After image) जब हम किसी उत्तेजना का अनुभव ध्यानपूर्वक करते है तब इन्द्रिय से ओझल हो जाने पर भी हम उस उत्तेजना का अनुभव करते है। इसी प्रकार के अनुभव को अनुप्रतिमा कहते है। उत्तेजना के विलीन होने के तुरत बाद ही इसका अनुभव होता है और यह स्मरण प्रतिमा की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और

निर्मल होती है। इसे कभी कभी पूर्व स्मरण प्रतिमा भी कहते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भ्रमवश इसे अनुसवेदना के नाम से पुकारा है, लेकिन उनका ऐसा करना दोषपूर्ण है। इन दोनों मे कुछ मौलिक अन्तर है। दृष्टि अनुप्रतिमा और अनुसवेदना को ध्यान मे रखकर इनके अन्तरों को व्यक्त करना विशेष सुविधाजनक होगा। अनुसवेदना, पर दृष्टि-सचालन का प्रभाव पड़ता है, इसलिए जिस दिशा मे हम देखते हैं उसी दिशा मे उसका अनुभव भी करते हैं। अनुप्रतिमा पर दृष्टिसचालन का असर नही पड़ता है, क्योंकि यह नेत्र-गति से पूर्णत स्वतत्र होती है। अनुसवेदना का स्थापन (Localization) वाह्यविश्व मे होता है, परन्तु अनुप्रतिमा की स्थिति मानसिक जगत मे होती है। फिर भी, जिस प्रकार अनुसवेदना मे कई अगो के कारण परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार इसमे भी होता है। अनुप्रतिमा का अनुभव मौलिक उत्तेजना की पूर्णता और स्पष्टता के समान क्षणमात्र के लिए होता है जिसके बाद हम उसका अनुभव नही करते। उतने ही काल मे इसकी स्पष्टता और प्रबलता अपनी चरम सीमा पर पहुच जाती है और पुन क्रमश क्षीण होने लगती है। दृष्टि अनुप्रतिमा के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि इसका विलीन होना व्यक्ति विशेष और उत्तेजना के सत्ताकाल पर निर्भर करता है। किंतु, प्रयोग करने पर यह देखा गया है कि उत्तेजना के ओझल होने के बाद इसका आविर्भाव होता है और यह कभी प्रबल और कभी निर्बल होती रहती है। पुन तीस सेकण्ड या एक दो मिनट के बाद यह सदा के लिए विलीन हो जाती है और भविष्य मे इसका अनुभव पुन नही होता। यह प्रतिमा क्रमश क्षीण (Fade) कैसे होती है, इसका अध्ययन अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि से सावधानी के साथ किया जा सकता है।

जब उत्तेजना के विलीन होने पर तत्काल ही हम उसका अनुभव करते है तब उसे अनुप्रतिमा या पूर्व स्मरण-प्रतिमा कहते है। हम किसी के भाषण को ध्यानपूर्वक सुनते है और जब वह भाषण बद हो जाता है तब भी उसके अतिम शब्द हमारे कानों मे क्षणमात्र के लिये गूँजते रहते है। पुन कुछ क्षण मे वे इस तरह विलीन हो जाते है कि उनका अनुभव हम उस मौलिक रूप मे स्पष्टता और प्रबलता के साथ न कर स्मरण प्रतिमा के रूप मे करते है। जब उत्तेजना की मनोहारिता और प्रबलता के कारण उसका अनुभव उसके ओझल होने पर भी हमारे मन मे स्थायभाव के साथ बराबर कुछ काल तक होता रहता है तब इसे पुनरावर्त्तक प्रतिमा (Recurrent image) कहते है। हमारे जीवन में ऐसे उदाहरणो की कमी नही है जिनमे उत्तेजना के गुणो और अपनी अभिरुचि के कारण उसका चित्र हमारे मन मे रह रहकर कुछ समय के लिये चित्रित होता रहता है। इसके अतिरिक्त, अनुप्रतिमा किसी प्रकार की हो सकती है, अर्थात् उसका सम्बन्ध किसी भी ज्ञानेन्द्रिय से सम्भव है।

इन उपर्युक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त, कल्पना प्रतिमा (Imagination image), निद्राविषयक, आदि प्रतिमाएँ (Hypnogogic image) भी होती हैं जिनके विषय मे अधिक न लिखकर इतना कहना पर्याप्त समझते है कि कल्पना प्रतिमा स्मरण-प्रतिमाओं के कई बीजतत्त्वों से मिलकर बनती है। जब हम पख वाले घोड़े की प्रतिमा का अनुभव अपने मन में करते है तब हमे काल्पनिक प्रतिमा का उदाहरण मिलता है। दर्शन-प्रतिमा या स्मरण प्रतिमा मे हमे मौलिक प्रत्यक्ष की प्रतिमा का ही अनुभव होता है, लेकिन इसमे जिस प्रतिमा का अनुभव होता है उसमे कई मौलिक प्रत्यक्षों के बीजतत्त्व सन्निहित रहते हैं। इसमे

बीजतत्त्वों के अतिरिक्त, अवशेष सभी कुछ पूर्णतः नया रहता है। निद्राविषयक प्रतिमा में हम लोग सोने के पहले अपनी तन्द्रावस्था मे बिना किसी प्रयास के बहुत स्पष्ट और सजीव रूप में विभिन्न दृश्यों और घटनाओं की प्रतिमा का अनुभव अपने मानस क्षेत्र मे करते है। कभी-कभी तो इच्छा के प्रतिकूल भी इनका आविर्भाव इतनी स्पष्टता के साथ होता है कि ये कई अशों मे विभ्रम के सदृश्य कार्य करती है।

कल्पना

कल्पना का स्वरूप

विद्वानों ने कल्पना पद का व्यवहार कई अर्थों मे किया है, लेकिन यहाँ इसका प्रयोग हम बहुत सीमित अर्थ में करेगे। हम देख चुके है कि प्रतिमा में मनुष्य अपने गत अनुभव को पूर्ण या अपूर्ण रूप मे अपने मानस पटल पर लाता है। प्रतिमा का अनुभव करते समय उसके प्रति परिचित भाव रहता है और इसलिये हम अच्छी तरह समझते है कि जिसका अनुभव हमे वर्त्तमान मे हो रहा है वह हमारे अतीत का एक अग है। कल्पना का भी आधार हमारा गत अनुभव रहता है, किन्तु वह इस प्रकार नये रूप में रहता है कि यह कदापि नही मालूम होता कि हमे इसका अनुभव भूतकाल मे हो चुका है। यही पुराने अनुभवो के आधार पर एक नवीन मानसिक रचना का अनुभव करना कल्पना है। कवियों की कविता मे कभी कभी विलक्षण कल्पनाएँ दीख पडती है। यदि ऐसी रचनाओं का मात्र शाब्दिक अर्थ लगाया जाय तो एक हास्यास्पद चित्र उपस्थित हो जायगा। उदाहरण के लिए 'पंत' की निम्नांकित पंक्ति को देखे,

"बाँधो बाँधो इन्द्रधनुष को, धरती की वेणी पर।"

यदि इसका लाक्षणिक अर्थ छोड कर मात्र शाब्दिक अर्थ पर विचार करे तो 'धरती की वेणी पर' 'इन्द्रधनुष' को बाँधने का एक भयकर चित्र उपस्थित हो जायगा। यह कल्पना हुई जिसमे वेणी पर फूल बाँधने की अनुभूति को एक नये रूप मे उपस्थित किया गया है। इस तरह, प्रतिमा मे हमलोग अपने गत अनुभवों का प्रत्यावाहन मात्र करते है, लेकिन कल्पना मे उन्ही अनुभवों के बीजतत्त्वों को एक नया रूप देते है। अतः गत अनुभवों का पुनर्संगठन (Reorganisation) को ही कल्पना कहते है।

बार्टलेट के अनुसार पुराने अनुभवों का उपयोग करना ही कल्पना है, किन्तु उसकी यह परिभाषा अधूरी है। इससे कल्पना के वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश नहीं पडता। उडवर्थ का कहना है कि कल्पना एक प्रकार का मानसिक हस्तव्यापार (Manipulation) है, अर्थात् जिस प्रकार वाह्य विश्व मे हम पुरानी चीजोंको अपने हाथों से सुव्यवस्थित करते है, उसी प्रकार कल्पना के द्वारा अपने मन मे, अपने गत अनुभवों को एक नये सघात (Pattern) मे रखते है। जब कोई व्यक्ति अतीत दृश्य और घटनाओं को प्रत्यावाहन द्वारा एक नये क्रम मे रखता है तब उस समय वह अपनी कल्पना का प्रदर्शन करता है। उडवर्थ की परिभाषा पर विचार करने से मालूम होगा कि इस परिभाषा से पुनरोत्पादन का बहिष्कार कर इसकी सीमा को सीमित कर दिया गया है। इसके अनुसार, कल्पना रचनात्मक होती है, पुनरोत्पादक नही। अतएव पुरानी चीजों से एक नयी चीज का निर्माण करना ही कल्पना का कार्य है। कुछ विद्वानों का कहना है कि कल्पना से हमलोगों की अतृप्त

इच्छाएँ सतृप्त होती है। स्वर्णपरी और हवाई किला की कल्पनाएँ इच्छा-सतृप्ति के ही उदाहरण कही जा सकती है।

इसको और भी स्पष्ट करने के लिए यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि कल्पना में अनुभव का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। हमे जिस वस्तु का अनुभव नही रहता हम उसकी कल्पना करने मे भी समर्थ नही होते। जन्मान्ध कभी रूप की कल्पना नहा कर सकता। कल्पना पूर्णत हमारे अनुभव पर निर्भर करती है। इसीलिए कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अनुभवों का प्रत्यावाहन और पुनर्निर्माण ही कल्पना है। यह परिभाषा अन्य परिभाषाओं से कुछ अधिक सन्तोषप्रद मालूम होती है, क्योंकि यह स्मरण और प्रतिमा को कल्पना से अलग कर देती है, और यह भी व्यक्त करता है कि इसके लिए अनुभव की कितनी आवश्यकता है। अब कल्पना को अन्य मानसिक प्रक्रियाओ से अलग करने के लिए इसके तथा अन्य मानसिक प्रक्रियाओ के अन्तरों को व्यक्त कर देना आवश्यक है।

प्रत्यक्षीकरण और कल्पना

प्रत्यक्षीकरण और कल्पना दोनो मानसिक प्रक्रियाएँ एक दूसरे से काफी साम्य रखती है। दोनों ही के द्वारा हम किसी समय में किसी व्यक्ति या वस्तु का अनुभव करते है। गत अनुभव दोनों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण हाथ रखता है।

जिस तरह प्रत्यक्षीकरण हमारी अभिरुचि, आदत, आदि से निर्धारित होता है, उसी तरह कल्पना भी हमारी रुचि, मनोवृत्ति, आदि पर निर्भर करती है। अभिप्राय यह कि इन दोनो प्रक्रियाओ मे हमारी कुछ मनोवृत्तियाँ सन्निहित रहती है। यदि किसी प्रकार की कल्पना से हमारी सन्तुष्टि नही होती है तब उसकी दिशा बदल जाती है, और परिणामत असामान्य प्रकार से हमारी इच्छाओं की सतृप्ति होती है। इन समानताओं के कारण कभी कभी इन दोनों प्रक्रियाओं को एक दूसरे से भिन्न समझना कठिन हो जाता है। लेकिन, प्रत्यक्षीकरण कल्पना से सर्वथा भिन्न प्रक्रिया है।

प्रत्यक्षीकरण के समय हमारी ज्ञानेन्द्रिय के समक्ष कोई उत्तेजना रहती है जिसका हमें ज्ञान होता है। लेकिन, कल्पना हम किसी वर्तमान उत्तेजना की नही करते, वरन् हमारी कल्पना के बीजतत्त्वों का सम्बन्ध हमारे गत अनुभव से रहता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्यक्षीकरण किसी वर्त्तमान पदार्थ का होता है, परन्तु कल्पना अनुपस्थित घटना, दृश्य या पदार्थ का होता है। प्रत्यक्षीकरण के समय हमलोगो की मनोवृत्ति एक विशेष प्रकार की होती है, जिससे अभियोजन मे सहायता मिलती है। कई तरह की आन्तरिक गड़बड़ी (Organic disturbances) और भाव विशेष का भी अभाव उस समय नहीं रहता। प्रत्यक्षीकरण की उपर्युक्त सभी विशेषताएँ कल्पना में भी पायी जाती है। जब हम किसी भयावह घटना की कल्पना करते है तब उस समय हममे एक मनोवृत्ति विशेष के साथ-साथ आन्तरिक गड़बड़ी और दुखद भाव (Unpleasant feeling) देखने में आता है। किन्तु, प्रत्यक्षीकरण से हमें उत्तेजना का सही ज्ञान होता है। फलत प्रत्यक्ष सही और वास्तविक होता है। लेकिन, कल्पना की सारी वस्तुएँ वास्तविक नहीं होती है। इसके उदाहरण हम पहले दे चुके है। इस तरह कल्पना और प्रत्यक्षीकरण भिन्न मानसिक प्रक्रियाएँ है।

स्मरण और कल्पना

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने स्मरण और कल्पना का व्यवहार इस प्रकार किया है मानो दोनो एक ही हो, परन्तु उनका ऐसा करना अनुचित है। यद्यपि यह पूर्णत सत्य है कि दोनो मे शिक्षण सन्निहित है, और दोनों हमारे गत अनुभव पर निर्भर करती है, किन्तु इतना होते हुए भी ये दोनो भिन्न प्रक्रियाएँ है। स्मरण मे हम अपने अतीत के अनुभवों का प्रत्यावाहन करते है। लेकिन, जब गत अनुभवों के बीजतत्त्वों से अपने मन मे एक नयी प्रकार की रचना करते है तब उसे कल्पना कहा जाता है। कल्पना स्मरण पर निर्भर करती है, क्योकि इसमे पुराने अनुभवों को एक नया रूप मिलता है। स्मरण से परे कल्पना असभव है। वैज्ञानिक, साहित्यिक, आदि की कल्पनाएँ प्रत्यक्षतया भले नयी प्रतीत हों, परन्तु उनमें भी गत अनुभव के बीजतत्त्व विद्यमान रहते है। इस प्रकार हम देखते है कि कल्पना के लिए स्मरण आवश्यक है। कही कही स्मरण को भी कल्पना का आश्रय लेना पडता है। यदि कोई व्यक्ति किसी दृश्य का वर्णन करते हुए कुछ अशों को भूल जाता है, तब वह उन अशों की पूर्त्ति कल्पना के आधार पर करता है। परन्तु, सभी स्थलों पर कल्पना की सहायता से विस्मृत अगों की पूर्त्ति नहीं की जा सकती। यदि कोई परीक्षार्थी परीक्षा मे कल्पना के आधार पर किसी घटना का वर्णन करे तो सहज ही उसे परीक्षा-परिणाम मालूम हो जाय।

चिन्तन और कल्पना

चिन्तन के द्वारा हमलोग विभिन्न तथ्यो के पारस्परिक सम्बन्ध को जानते है। दूसरी ओर, कल्पना के द्वारा हम उन तथ्यों मे जितने नये सम्बन्ध स्थापित हो सकते है, उनको खोजने की कोशिश करते है। जो सम्बन्ध पहले रहता है उसको देखने की कोशिश कल्पना में नही की जाती, बल्कि उस सम्बन्ध को फिर से कैसा बनाया जा सकता है, इसे जानने की चेष्टा की जाती है। अभिप्राय यह कि कल्पना परिस्थिति को परिवर्त्तित, सशोधित (Modified) और पुनर्निमित (Reconstruct) करती है और चिंतन उस परिस्थिति की समस्या का समाधान करता है, सशोधन या परिवर्त्तन नहीं। जब कोई परिस्थिति समस्या उत्पन्न कर देती है (चाहे वह काल्पनिक हो या वास्तविक) तब चिन्तन के सहारे व्यक्ति उस समस्या को समझकर समुचित प्रतिक्रिया का अन्वेषण करता है। कल्पना उस परिस्थिति को विभिन्न रूपों से विकसित करती है। समस्या को सिर्फ एक तरीके से हल करना चिन्तन, और अनेक सभव तरीकों से हल करना कल्पना का काम है। जो लोग चिन्तन को नियन्त्रित (Controlled) और कल्पना को अनियन्त्रित (Uncontrolled) समझते है, वे भूलते है। किसी भी कल्पना को हम पूर्णत अनियन्त्रित नही कह सकते, क्योंकि सभी प्रकार की कल्पनाएँ इच्छा से निधारित होती है। निष्क्रिय कल्पना (Passive imagination) भी पूर्णत स्वतन्त्र नही है। उसमे भी दिवास्वप्न-द्रष्टा (Daydreamer) की अतृप्त इच्छाएँ निर्धारक प्रवृत्ति (Determining tendency) का काम करती है। परिणामत वह एक दिशाविशेष मे प्रवाहित होती है। किन्तु, इन अन्तरों के होते हुए भी हम इन दोनों को सभी स्थलों पर अलग नही कर सकते। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि ये दोनों एक दूसरे में इस प्रकार अभिन्न रूप से सन्निहित रहती है कि इन्हे जानना कठिन होता है। इस प्रकार इन दोनों के लक्ष्य (Goal) में अन्तर है, मानसिक प्रक्रियाओं में नही।

कल्पनोत्पादक परिस्थितियाँ

कल्पना का आविर्भाव हमारे मन मे सभी समय और सभी स्थलो पर नही होता, बल्कि अवसर मिलने पर ही होता है। अनुकूल परिस्थिति मे कल्पनाओ का ताँता लग जाता है, किन्तु प्रतिकूल परिस्थिति रहने पर लाख चेष्टा करने से भी उसका आविर्भाव हमारे मानसपटल पर नही होता। अब यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि कब और कैसी परिस्थिति में कल्पना का आविर्भाव होता है। अत सक्षेप मे यहा हम कल्पनोत्पादक परिस्थितियों का उल्लेख करेंगे।

जैसा कि हम जानते है, कल्पना अनुपस्थित और स्थूल परिस्थिति की ही होती है। इसके द्वारा व्यक्ति अप्राप्त को प्राप्त करता है। जिसमे हमारी रुचि रहती है हम उसी की कल्पना करते है, वह रुचि चाहे भय के कारण हो या उसकी मनोहारिता (Attractiveness) के कारण। आज तरह-तरह के प्रक्षेप अस्त्रो तथा विभिन्न ग्रहो की यात्रा की कल्पनाएँ शक्ति प्रदर्शन मे अभिरुचि के द्योतक है।

अपनी इच्छाओं को सन्तुष्ट करने के लिये हम किसी प्रकार की क्रिया करते है। जब तक उस क्रिया की गति अवरुद्ध नही होती, तब तक वह क्रिया यथावत् होती रहती है। किन्तु, किसी कारणवश जब उस क्रिया मे किसी प्रकार का व्याघात पहुचता है तब हम आत्मसतुष्टि के लिये तरह तरह की कल्पना करना प्रारम्भ कर देते है।

किसी वर्त्तमान परिस्थिति मे परिवर्त्तन लाने के लिए भी कल्पना का आविर्भाव होता है। जब कलाकार किसी चित्र का निर्माण करना चाहता है, तब उसे कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है। अपने निवास स्थान को पुन सुसज्जित करने के लिए भी कल्पना की सहायता आवश्यक है। किसी भी सरकार की योजनाएँ और वैज्ञानिक का आविष्कार प्रारम्भिक अवस्था मे कल्पना ही रहती है।

व्यक्ति को जब अपनी व्यावहारिक आवश्यकताओं को पूरा करने की जरूरत नहीं रहती और जब वह अपने को स्वतत्र समझता है, तब तरह-तरह के मनोरजनो मे सलग्न होता है। उस मनोरजन के समय उसकी कल्पना का आविर्भाव होता है। जब हम कार्य भार से मुक्त होकर कला, खेल, आदि कार्यो मे सलग्न होते है तब अपने मानस-पटल मे कल्पना का अनुभव करते है।

जब हमें एक साथ दो विरोधी परिस्थितियों का अनुभव होता है, या हमारी किसी इच्छा की सतृप्ति नही होती, तब उस इच्छा की सतृप्ति के लिए, अथवा उन दोनो परिस्थितियो के सभव सबधो को जानने के लिये हम कल्पना करना शुरू करते है। एक व्यक्ति है, जिसे अपनी स्त्री से कभी सुख नहीं मिला। वह अपने एक मित्र के यहाँ जाता है जिसकी स्त्री बड़ी ही सुशील तथा सुन्दर स्वभाव की है। उसके सुखमय दाम्पत्य जीवन का अनुभव उसे नारी के सबध मे एक विरोधी अनुभव देता है। ऐसी स्थिति मे स्त्री जाति के सबन्ध मे वह तरह तरह की कल्पनाएँ कर सकता है। अपनी अतृप्त इच्छा की पूर्त्ति भी वह काल्पनिक सुखद दाम्पत्य जीवन मे कर सकता है। उसके लिए वह कल्पना कितनी सुखद होगी, जिसमे उसका कर्कश जीवन दो क्षण के लिए पत्नी की प्रेमभरी बातों और आकर्षक व्यवहार में खो जाय।

परिस्थिति से पूर्ण परिचित रहने पर कल्पना करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि वहाँ समझने के लिये कुछ शेष नही रहता है। किन्तु, जब कोई ऐसी परिस्थिति आ उपस्थित होती है जिसे हम पूर्ण रूपेण समझने मे असमर्थ होते है या जब हमारा विचार अधूरा रह जाता है, तब उसे जानने के लिये हम कल्पना प्रक्रिया का आश्रय लेते है। उदाहरणार्थ, किसी खडहर मे पहुँच कर उसकी पहली स्थिति और उसमे रहने वाले के सबन्ध में तरह तरह की कल्पनाएँ करते है।

इसके अतिरिक्त, मनुष्य को वातावरण मे अच्छी तरह अभियोजित करना आवश्यक है, क्योंकि जबतक उसे अभियोजन मे सफलता नही मिलती तबतक वह अपने प्रयास मे सफल नहीं हो सकता। जब बार बार वह सफलता पाने के लिये प्रयास करता है और फिर भी अपने प्रयास मे असफल होता है, तब उस समय वह वास्तविक जगत से अपना मुँह मोड लेता है। उसे वास्तविकता की कणमात्र भी चिन्ता नही रहती, क्योंकि वह स्वनिर्मित कल्पना जगत मे अपने को सफल पाता है। कल्पना के सहारे वह उन सारी कठिनाइयों को दूर कर देता है जिन्हे वह वास्तविक जगत मे दूर करने मे असमर्थ हुआ था। उसकी ऐसी कोई भी कामना नही रहती जिसकी पूर्त्ति इस कल्पना-जगत मे न हो। कोई भी परिस्थिति अब उसके प्रतिकूल नही रहती। इस प्रकार जीवन की असफलता भी कल्पना को उत्पन्न करने मे सहायक होती है।

कल्पना-प्रकार

हम कल्पना की व्याख्या करते हुए यह व्यक्त कर चुके है कि यह मानसिक जगत मे गत अनुभवों के आधार पर एक नवीन रचना करती है। अतएव यह स्पष्ट है कि कल्पना का स्वरूप रचनात्मक है। इसीलिये कुछ आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इसे रचनात्मक चिन्तन (Constructive thinking) के नाम से अभिव्यक्त किया है। यदि हम इसका वर्गीकरण करना चाहे तो सामान्यत इसे दो प्रकारों मे विभाजित कर सकते है—निष्क्रिय रचनात्मक कल्पना (Passive constructive imagination), और सक्रिय रचनात्मक कल्पना (Active constructive imagination)। यहाँ इन दोनो प्रकार की कल्पनाओं पर प्रकाश डालना आवश्यक होगा।

निष्क्रिय कल्पना निष्क्रिय रचनात्मक कल्पना को अनियन्त्रित कल्पना भी कहते है। इस प्रकार की कल्पना के लिये मनुष्य को किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पडता, वरन् कल्पनाओं का आविर्भाव मन मे स्वत होता और वे स्वत विलीन भी हो जाती है। एक के बाद दूसरी, और दूसरी के बाद तीसरी कल्पना आविर्भूत होती है, और पुन उसके विलीन होने पर चौथी कल्पना का आविर्भाव होता है। इन कल्पनाओं का आविर्भाव मन मे साहचर्य के कारण होता है। इस प्रकार की कल्पनाओं को निर्धारित करने मे हमारी मनोवृत्तियों का भी बहुत बडा हाथ रहता है। जैसी हमारी मनोवृत्ति रहती है वैसी ही कल्पना आविर्भूत होती है। यदि इस दृष्टिकोण से हम इन कल्पनाओं को अनियन्त्रित कहें तो हमारा ऐसा कहना दोषपूर्ण होगा, क्योंकि जब मनोवृत्तियों के अनुरूप ही हमारी कल्पनाएँ होती है, तब इसका मतलब यह है कि ये कल्पनाएँ हमारी मनोवृत्तियो से नियन्त्रित है। अतएव हमारी निष्क्रिय कल्पनाओं मे भी हमारी असतृप्त इच्छाएँ सतुष्ट होती है। किन्तु, वे इच्छाएँ अज्ञात रहती है। हम पहले ही देख चुके है

कि इच्छा की असतृप्ति की अवस्था मे हम क्योंकर दिवास्वप्न का आश्रय लेते है। निष्क्रिय कल्पना की सबसे बडी विशेषता यह है कि यह वास्तविकता की उपेक्षा करती है और इसे सामाजिकता की भी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती।

खेल, दिवास्वप्न, स्वप्न, आदि निष्क्रिय कल्पना के अतर्गत आते है। जब हम किसी प्रकार का खेल खेलते है तब उससे हमारी इच्छाओ की सतृप्ति होती है। जिन इच्छाओं को हम अपने व्यावहारिक जीवन मे सतुष्ट करने मे असफल होते है उन्हे खेलो के द्वारा सतुष्ट करते है। हम अपने पराक्रमी शत्रु पर विजय पाने मे असमर्थ होते है, और खेल मे उसे पराजित करते है, और फिर अपनी विजय की अतृप्त वासना को शान्त करते है। हाथी, घोडा या मोटर की सवारी दरिद्रता के कारण उपलब्ध नही होती, इसलिये लकडी के बने घोडे या गाड़ी पर चढ कर बच्चे अपनी उस अचेतन इच्छा को सतुष्ट करते है।

जब मनुष्य अपने वास्तविक जीवन की कठिनाइयों से पराभूत हो जाने के कारण उचित रूप से समाज मे अभियोजित करने मे अपने को असफल पाता है तब वह दिवास्वप्न का आश्रय लेता है। वह अपने मनोनुकूल काल्पनिक जगत का निर्माण करता है। वहा उसे किसी प्रकार का अभाव नही रहता। वह अपनी सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार सफलता उसकी चेरी बन जाती है। यदि कोई व्यक्ति किसी को प्रेम करता है, किन्तु उसकी इच्छाए अपने प्रेम-पात्र की कमी के कारण सतुष्ट नहीं हो पातीं, तब वह अपने काल्पनिक जगत मे एक ऐसे प्रेम पात्र का निर्माण करता है जो उसे सर्वस्व अर्पण करने को तैयार हो। इस प्रकार, वह प्रेमी दिवास्वप्न मे अपने प्रेम पात्र को मनोनुकूल पाकर सतुष्ट होता है। जिस व्यक्ति को कई दिन पट भर भोजन नहीं मिलता वह दिवास्वप्न मे अपने आप को राजसिंहासन पर बैठा देखता है। उसे वहाँ किसी तरह की कमी नही रहती।

दिवास्वप्न में एक नायक होता है। यह नायक चेतन या अचेतन रूप से स्वप्न द्रष्टा स्वय होता है। नायक भी दो तरह का होता है। विजयी नायक (Conquering hero) और विजित नायक (Conquered hero)। विजयी नायक दिवास्वप्न मे अपनी सभी प्रतिकूल परिस्थितियों को अपने अधिकार में करके अपनी मनोनकूल इच्छाओं को सतृप्त करता है। बार-बार परीक्षा मे फेल होकर कोई विद्यार्थी अपने दिवास्वप्न मे सर्वप्रथम पुरस्कार पाने का आनन्द ले सकता है। विजित नायक दिवास्वप्न में अपने को विपत्तियों का ही शिकार पाता है। यहाँ यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि जब दिवास्वप्न मे असतृप्त इच्छाए सतृप्त होती है तब कोई विपत्तियों से घिरा रहने की कल्पना क्यो करता है? इसका उत्तर यह है कि दुःखद दिवास्वप्नों से भी व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्त्ति अप्रत्यक्षतया (Indirectly) होती है और इस प्रकार वह अपने महत्त्व को स्थापित करता है। जिस व्यक्ति का परिवार में कोई स्थान नही हो, वह देश की स्वतन्त्रता के लिये फांसी के तख्ते पर अपने दिवास्वप्न में चढ सकता है, क्योकि उससे वह अपने को महान् पाता है। इस प्रकार किसी भी प्रकार का दिवास्वप्न क्यों न हो, उसका एकमात्र ध्येय अतृप्त इच्छाओं को सतुष्ट करना ही है।

अब दिवास्वप्न के बारे मे कुछ बाते स्मरणीय है। पहली बात तो यह है कि जब कोई इच्छा सतुष्ट नही होती तब मनुष्य उसकी सतुष्टि दिवास्वप्न में करता है। यद्यपि इसमे हमारा चेतन मन निष्क्रिय रहता है, तथापि अचेतन मन बहुत सक्रिय रहता है। अतएव इसे हम पूर्णत अनियन्त्रित नहीं कह सकते। इसका प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर बहुत गहरा पड़ता है। यह सोचना गलत है कि मानव जीवन के लिये यह पूर्णत निरर्थक है। इसके द्वारा क्षणमात्र के लिये ही क्यो न हो, मनुष्य अपनी अतृप्त वासना को सतुष्ट करके नैसर्गिक आनन्द का अनुभव करता है। उस समय वह अवश्य ही ससार के दुखों को भूल जाता है। इसके अतिरिक्त, इसके द्वारा वह अपने भावी जीवन मे अभियोजन करने की तैयारी भी करता है। वस्तुत साधारण दिवास्वप्न से मनुष्य की कोई बहुत बडी क्षति नहीं होता। लेकिन, जब इसकी अधिकता हो जाती है तो मनुष्य असमामान्य व्यक्तित्व का भी हो जाता है। वह वास्तविक जीवन की कठिनाइयों से छुटकारा पाने के लिये दिवास्वप्न मे इस तरह मग्न रहता है कि किसी काम को करने की कोशिश नहीं करता। इसका परिणाम उसके जीवन पर काफी बुरा पडता है और वह अपमे जीवन में कभी सफल नही होता। दिवास्वप्न को विचार तरग या विश्रृखल चिन्तन (Autistic thinking) भी कहते है।

स्वप्न भी एक प्रकार की निष्क्रिय कल्पना है, किन्तु इसका अनुभव मनुष्य को निद्रावस्था में होता है। इसके कारण मनुष्य की अतृप्त इच्छाओं की सतृप्त होती है, किन्तु इसका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नही है। वर्त्तमान काल में यह असामान्य मनोविज्ञान का प्रमुख विषय बना हुआ है और अभी भी कितने मनोवैज्ञानिक इसके विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने में लगे हुए है। फ्रायड (Freud), युग (Jung), एडलर (Adler) तथा हेडफील्ड (Headfield), आदि विद्वानों के कार्य इस दिशा मे सराहनीय हे।[1]

सक्रिय रचनात्मक कल्पना हम निष्क्रिय कल्पना का वर्णन करते समय देखचुके है कि उसमे व्यक्ति वास्तविकता की परवाह नही करता और न उससे किसी व्यावहारिक ध्येय की ही पूर्त्ति होती है। सक्रिय रचनात्मक कल्पना इससे ठीक उल्टी होती है। यह पूर्णत नियन्त्रित होती है, क्योंकि इसका एकमात्र ध्येय किसी नवीन रचना का करना होता है। इसमें तर्क (Reasoning) और वास्तविकता की उपेक्षा नही की जाती। पुराने अनुभवों के आधार पर नवीन रचना करना नियन्त्रित कल्पना का काम है। कवि की कविता, चित्रकारी और वैज्ञानिक अन्वेषणो में हमें सक्रिय नियन्त्रित कल्पना का उदाहरण मिलता है। ध्येय के अनुकूल हम अपने पुराने अनुभवों मे से सारगर्भित अगों को चुनकर उनमे एक नया सम्बन्ध स्थापित कर, एक नयी रचना करते है। वायुयान, रेडियो, आदि आविष्कार इसी नियन्त्रित कल्पना के फलस्वरूप है। इस प्रकार की कल्पना मे कौन-कौन सी अवस्थाएँ (Stages) या कितनी प्रक्रियाएँ सन्निहित रहती है, इसको निश्चयात्मक रूप से व्यक्त करना कठिन है, क्योंकि इनका ज्ञान मनोवैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका है। इन अवस्थाओं या प्रक्रियाओं के सबध मे अभी तक बडे-बड़े आविष्कर्त्ताओं और वैज्ञानिकों से जो कुछ मालूम हो सका है उसके आधार पर कहा जा

१ "स्वप्न" की विशेष जानकारी के लिए लेखक द्वारा लिखित 'असामान्य मनोविज्ञान' (प्र० ग्रन्थमाला कार्यालय पटना-४ देखें)।

सकता है कि किसी सक्रिय रचनात्मक कल्पना में निम्नांकित चार अवस्थाएँ पायी जाती है।

पहली अवस्था को हम तैयारी (Preparation) की अवस्था कह सकते है। किसी तरह का आविष्कार या रचना करने के लिए सर्वप्रथम हम उसके विभिन्न अंगों का संग्रह करते है जो हमारे अन्वेषण मे सहायक होते है। हम अपने गत अनुभवो को इकट्ठा करते है और उन्ही को एक नया रूप देते है। जब तक सभी तथ्यों को हम खोज नही लेते तब तक किसी प्रकार का आविष्कार करना असम्भव है। यह अवस्था कठिन परिश्रम की होती है, क्योंकि किसी भी नवीन रचना के लिए हमे उसके सम्बंध मे अत्यधिक आवश्यक अंगो की खोज करनी पडती है। एक विश्वविख्यात विद्वान के शब्दों मे यह अवस्था कच्चे ईंधन को इकट्ठा करने की है। उसमे हमलोग सभी अंगो को खोजकर संग्रह मात्र करते है। नये वायुयान की रचना के लिये हमे उसके सम्बंध मे सभी तथ्यो का खोजकर जानकारी हासिल करनी आवश्यक है।

इसके बाद दूसरी अवस्था गर्भीकरण (Incubation) की आती है, जिसमे कल्पनाकार को प्रतीक्षा मात्र करनी पडती है। इस अवस्था मे वह चेतन रूप से किसी प्रकार की क्रिया अपने अन्वेषण के समय नही करता है। इसमे किसी प्रकार की गति नही परिलक्षित होती, लेकिन यह अवस्था बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जब बहुत परिश्रम के बाद सभी तथ्यों को संग्रह कर लिया जाता है, तब यह प्रक्रिया अचेतन रूप मे होती है। यही कारण है कि इसका ज्ञान कल्पनाकार को नहीं होता। यह प्रक्रिया कभी-कभी बहुत दिनो तक होती रहती है, किन्तु इसका कुछ भी आभास नहीं मिलता है।

गर्भीकरण के बाद स्फूर्त्ति या रचनात्मक सूझ (Inspiration) की अवस्था आती है जिसमे सहसा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये उचित पथ प्रदर्शित होता है। स्फूर्त्ति की यह अवस्था गर्भीकरण को भी प्रतिपादित करती है। यदि गर्भीकरण की प्रक्रिया अज्ञात रूप से न होती तो सहसा समस्या सुलझाने की सूझ क्योंकर होती? इसके द्वारा हमलोग जिस इच्छा से नयी रचना करना चाहते है, उसे प्राप्त कर लेते है। इस समय कल्पनाकार भी संवेगशील (Emotional) हो जाते है। न्यूटन को नवीन आविष्कार करने के लिये सत्रह वर्ष तक प्रयास करना पडा था, किन्तु स्फूर्त्ति का आगमन सहसा हुआ। तब कहीं वह अपने मनोरथ को सिद्ध करने में सफल हो सका। इसी तरह जितने भी अन्वेषक, कवि और वैज्ञानिक है, उन सबकी रचनाओ की सूझ आकस्मिक होती है।

चौथी अवस्था, जिसे प्रमाणित करने की अवस्था (Stage of verification) कह सकते है, स्फूर्त्ति के बाद आती है। जब किसी नवीन रचना के सम्बन्ध मे कोई नयी स्फूर्त्ति सहसा मिलती है तब उसकी सत्यता की परीक्षा की जाती है कि उसमें कितनी सार्थकता है। उसको विभिन्न रूप से जाँच कर हम यह देखते है कि वर्त्तमान सूझ वातावरण और अन्य तथ्यों के अनुकूल है या नही। यदि वह अनुकूल होती है तो उसका स्वागत करते है। प्रमाणित करने की आवश्यकता, इसलिये पड़ती है कि इसके बिना यह निर्णय करना कठिन होता है कि स्फूर्त्ति किस अंश तक कार्यान्वित हो सकती है। इसलिये हर तरह से उसकी विवेचना की जाती है। यदि विवेचना करने पर वह सत्य प्रमाणित होती है तब उसकी

सत्यता पर पूर्ण विश्वास किया जाता है। किसी भी अभिनव विचार, भाव अथवा प्रत्यय (Idea) को किसी अन्वेषक की इस कसौटी पर कस कर देखना आवश्यक है। इस कसौटी पर खरा उतरने पर उसकी सार्थकता मे किसी प्रकार का सदेह नही रह जाता। लेकिन, सभी काल्पनिक रचनाओ अथवा वैज्ञानिक आविष्कारो मे उपर्युक्त सभी अवस्थाएँ समान रूप में मौजूद नही रहती, बल्कि उनमे से किसी एक की ही प्रधानता देखने मे आती है। किन्तु, सभी रचनात्मक कार्यो मे इन काल्पनिक अवस्थाओं का होना अनिवार्य है।

कल्पना-अध्ययन की विधियाँ

कल्पना प्रकार का उल्लेख कर देने के बाद यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि सभी मनुष्यों की कल्पनाएँ एक समान नही होती, क्योकि उनमे वैयक्तिक भिन्नता होती है। इसलिये यदि हम यह सोचे कि सभी व्यक्तियों की कल्पनाएँ उर्वर है या सब मे एक ही रचनात्मक शक्ति विद्यमान है, तो हमारा यह सोचना एक भूल होगी। मनोवैज्ञानिकों ने कल्पना की उर्वरता और रचनात्मक शक्तियों के अध्ययनके लिये कुछ मनोवैज्ञानिक विधियों का उल्लेख किया है। यहाँ हम उन्ही विधियों पर सक्षेपत प्रकाश डालेगे।

स्याही धब्बा की विधि (Method of Ink blots) कल्पना की उर्वरता की परीक्षा के लिये सर्व प्रथम बिने (Binet) तथा हेनरी (Henry) ने स्याही के धब्बों का (Ink-blots) का व्यवहार किया। बाद मे बीस धब्बों को ह्विपुल (Whipple) ने प्रामाणिक बनाया। अब स्याही के धब्बे से कल्पना की उर्वरता की जाँच दो विधियों से की जाती है। पहली विधि मे प्रयोज्य को मनोनुकूल स्याही का धब्बा देखने की स्वतन्त्रता रहती है और उसे वह धब्बा जिन-जिन चीजो की कल्पना करने मे सहायक होता है उन्हे वह लिखता जाता है। जब एक धब्बे को वह समाप्त कर लेता है तब दूसरा और तीसरा, आदि क्रमश दिखलाया जाता है, और इस तरह उसकी कल्पना शक्ति का अध्ययन किया जाता है। प्रयोक्ता प्रत्येक धब्बे मे लगे हुए समय को भी अकित करता है।

दूसरी विधि मे सभी धब्बों को उलट कर रख दिया जाता है और प्रयोज्य को क्रमश एक-एक उठा कर देखने और धब्बा जो मालूम हो, उसे व्यक्त करने का निर्देशन रहता है। जितनी देर मे प्रयोज्य अपने कल्पना पदार्थ को व्यक्त करता है प्रयोक्ता उस समय को अकित कर लेता है। जब सभी धब्बे समाप्त हो जाते है तब यह देखा जाता है कि एक कल्पना करने मे कितना समय लगा। पहली विधि मे यह देखा जाता है कि प्रयोज्य सब कितने प्रकार की कल्पनाएँ उस निश्चित समय मे कर सका। इस प्रकार, इस विधि से सख्यात्मक योग्यता का अध्ययन होता है और उसमे प्रयोज्य की अकित कल्पनाओं के आधार पर गुणात्मक परिणाम भी मालूम किया जाता है। इस विधि से व्यक्ति की कल्पना की उर्वरता पर काफी प्रकाश पडता है, क्योंकि जिसमे जितनी अधिक कल्पनाशक्ति रहती है वह उतने ही अधिक पदार्थों की कल्पना करने मे समर्थ होता है। जिसमे इस शक्ति की कमी रहती है वह स्याही के धब्बों मे बहुत कम चीजों की कल्पना करता है। इसके द्वारा कल्पना के गुणात्मक पहलू पर भी पर्याप्त प्रकाश पडता है। आशा है, कल्पना के सम्बन्ध में लोगों को अधिक जानने का अवसर मिलेगा।

मेसेलिन-विधि (Maskelyne method) रचनात्मक योग्यता का अध्ययन करने के लिये मेसेलिन विधि को काम मे लाया जाता है। सबसे पहले मेसेलिन (Maskelyne) ने अपने प्रयोज्यों का तीन शब्दों को देकर पाँच मिनट मे अधिक से अधिक वाक्यो को बनाने का निदेशन दिया, और इस प्रकार उनकी रचनात्मक योग्यता का अध्ययन किया। ये तीन शब्द सज्ञावाचक हो सकते हैं और क्रिया वाचक भी। बाद मे स्युमन (Meumann) ने सिर्फ दो शब्दों को देने की परिपाटी चलायी। किन्तु, प्रयोग करने पर देखा गया कि इससे कल्पना पर नहीं, बल्कि बुद्धि पर ही प्रकाश पड़ता है। इसलिये रचनात्मक योग्यता की परीक्षा के लिये तीन शब्दों को ही दिया जाता है और इसके सम्बन्ध मे संख्यात्मक ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसके द्वारा गुणात्मक पहलू को जानना कुछ कठिन है।

पूर्त्ति-परीक्षण विधि (Completion testing method) इबिंगहॉस की पूर्त्ति परीक्षण विधि का व्यवहार भी कल्पना की रचनात्मक शक्ति को जानने के लिये किया जाता है। इस विधि से उपर्युक्त शक्ति का अध्ययन करने के लिये एक ऐसा अवतरण दे दिया जाता है जिसमे कई स्थलों के शब्द नहीं रहते और प्रयोज्य को उन्ही रिक्त स्थानों को भरना पड़ता है। इसमे भी संख्यात्मक परिणाम ज्ञात होता है। इसको व्यवहार करने की सम्पूर्ण विधि को यहा व्यक्त करना आवश्यक नहीं, किन्तु इससे कल्पना की अपेक्षा बुद्धि पर काफी प्रकाश पड़ता है। आजकल कुछ शब्दों को प्रयोज्य को देकर उनकी सहायता से कहानी लिखवाने की विधि चल पड़ी है। इसमे प्रयोज्य की रचनात्मक योग्यता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। लेकिन, अभी तक संख्यात्मक परिणाम निकालना कठिन है। आशा है, आगे चलकर इस कमी की भी पूर्त्ति हो जायगी। रचनात्मक योग्यता जानने के लिये पूर्त्ति परीक्षण विधि की अपेक्षा यह विधि विशेष रूपण अच्छी है।

शब्द-निर्माण-विधि (Word building method) शब्द निर्माण के द्वारा भी कल्पना के रचनात्मक पहलू का अध्ययन किया जाता है। प्रयोज्य को छ अक्षरों से पाँच मिनट में अधिक से अधिक शब्दों को बनाने का निदेशन दिया जाता है, और यह भी कह दिया जाता है कि एक शब्द मे कोई अक्षर एक बार से अधिक व्यवहृत न हो। इस विधि मे संख्यात्मक परिणाम निकाला जाता है, क्योंकि यह देखा जाता है कि प्रयोज्य पाँच मिनट मे कितने शब्दों का निर्माण करने मे सफल हुआ है। यह विधि रचनात्मक योग्यता का अध्ययन करने के लिये अभी तक अत्यधिक रूप में व्यवहृत होती है।

बिने-विधि (Binet method) इस सम्बन्ध मे बिने-विधि का उल्लेख यदि न करें तो यह विधि अधूरी रह जाएगी। जैसा कि हम ऊपर पूर्त्तिपरीक्षण विधि के सम्बन्ध मे व्यक्त कर चुके है, उसी विधि से मिलती-जुलती बिने विधि है। इसमे प्रयोज्य को किसी वाक्य के पहले अंश दे दिये जाते है और उसे उस वाक्य को पूरा करना पड़ता है। इस विधि का व्यवहार पहले पहल बिने ने अपनी लड़कियों पर किया था। इसीलिये हमने इसे बिने विधि के नाम से व्यक्त किया है। वस्तुत इसके द्वारा व्यक्ति की कल्पना पर काफी प्रकाश पड़ता है। इसके द्वारा संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों ही पहलुओं का अध्ययन

किया जाता है। जिसमे रचनात्मक कल्पना का जितना बाहुल्य रहता है वह उतने ही सुन्दर वाक्य बना पाता है। अभी तक कल्पना की उर्वरता और रचनात्मक योग्यता का अध्ययन उपर्युक्त विधियो से ही होता है। आगे चलकर इस दिशा मे कितनी उन्नति होगी, यह कहना कठिन है।

कल्पना के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने के बाद यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि मानव जीवन मे कल्पना का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। किसी प्रकार की नवीन रचना के लिये—वह काव्य, वैज्ञानिक खोज या और जो कुछ भी हो, कल्पना का आश्रय लेना आवश्यक है। इसके बिना किसी प्रकार का रचनात्मक कार्य असभव है।

ग्यारहवाँ अध्याय

चिंतन (Thinking)

चिंतन का स्वरूप

मनोविज्ञान के विभिन्न अध्ययन विषयों में चिन्तन का एक विशेष स्थान है। इसके दो प्रमुख कारण हैं जो मनोविज्ञान के उद्देश्यों से सम्बन्धित हैं—(१) मनोविज्ञान के अध्ययन का एक उद्देश्य है—मनुष्य के व्यवहारों की ज्ञान प्राप्ति और (२) विभिन्न विधियों द्वारा उसके व्यवहारों का नियन्त्रण करना। इन दोनों उद्देश्यों के अध्ययन में चिन्तन का महत्त्व अत्यधिक है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य के व्यवहारों की भविष्यवाणी तथा उसके नियन्त्रण के लिये हम चिन्तन का अध्ययन करते हैं। लोगों का विचार है कि प्रत्येक मनुष्य परिस्थिति विशेष में एक ही ढंग से सोचा करता है। यदि हम मनुष्य के सोचने का ढंग मालूम हो जाय तो हम उसके व्यवहारों की भविष्यवाणी भी कर सकते हैं और उन्हें नियन्त्रित करने का प्रयास भी।

कुछ दार्शनिकों तथा मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि चिंतन केवल मनुष्य की ही विशेषता है, किन्तु यह बात विवादग्रस्त है। जानवरों में भी चिंतन के प्रमाण मिलते हैं। परन्तु, इतना सही है कि चिन्तन की मात्रा जानवरों की अपेक्षा मनुष्यों में ज्यादा हुआ करती है, क्योंकि मनुष्य विकासश्रेणी का उच्चतम प्राणी है और मनुष्य को भाषा की एक ऐसी निधि प्राप्त है जो जानवरों को नहीं है। भाषा हमारे चिन्तन को निश्चित रूप में प्रभावित करती है।

अब प्रश्न यह है कि चिन्तन है क्या? वस्तुतः चिन्तन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसे शिक्षण, स्मरण, कल्पना, समस्या समाधान (Problem solving), आदि से पूर्णतः अलग नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि दैनिक बोलचाल की भाषा में चिन्तन का व्यवहार बहुत ही साधारण अर्थ में किया जाता है। साधारण भाषा में चिन्तन शब्द का व्यवहार ध्यान, विमर्श, कल्पना, आदि अर्थों में किया जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि चिन्तन प्रक्रिया हमारे मस्तिष्क (Brain) में चलती है, परन्तु कुछ लोगों का विचार है कि यह प्रक्रिया मस्तिष्क के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों से भी सम्बन्ध रखती है। इन सभी विचारों से चिन्तन के स्वरूप पर समुचित प्रकाश पड़ना कठिन हो गया है। इस स्थान पर हम कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी परिभाषाओं का विवेचनात्मक उल्लेख करेंगे।

इंग्लिश (English) ने अपने शब्दकोष में चिन्तन की परिभाषा देते हुए लिखा है कि चिन्तन एक अप्रत्यक्षात्मक (Non-perceptual) प्रक्रिया अथवा क्रिया है, जो प्रधानतः वैसी प्रत्यक्षात्मक नहीं जिसके द्वारा व्यक्तिविशेष को किसी वस्तु या उसके किसी अंग या

परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण होता[1] है। यह परिभाषा किसी विचार के उल्लेख का निषेधात्मक ढग है, अत सराहनीय नही। फिर भी, इसकी कुछ बाते काम की है। इस परिभाषा से यह व्यक्त होता है कि चिन्तन वर्त्तमान वस्तुओं से बहुत कम सबधित रहता है। दूसरा यह कि चिन्तन अन्य मानसिक प्रक्रियाओं की अपेक्षा अधिक जटिल प्रक्रिया है और अधिकाशत गत अनुभूतियो पर निर्भर करता है।

इसी प्रकार की एक दूसरी परिभाषा वारेन (Warren) ने दी है। उसके अनुसार, चिन्तन एक प्रत्ययात्मक (Ideational) क्रिया है। इसका स्वरूप प्रतीकात्मक (Symbolic) होता है। इसकी उत्पत्ति व्यक्तिविशेष के सामने उपस्थित समस्याओं (Problems) से होती है। वारेन के शब्दो मे—"चिन्तन किसी व्यक्ति के समक्ष उपस्थित समस्या के समाधान के लिये आविर्भूत होनेवाली समस्या-निर्णायक-प्रवृत्ति से प्रभावित, कियत् अशो मे प्रयत्न और भूल से सयुक्त प्रतीकात्मक स्वरूप की प्रत्ययात्मक क्रिया है[2]।"

इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि चिन्तन-प्रक्रिया का आविर्भाव सदा नही होता, वरन् व्यक्ति के समक्ष जब कोई समस्या उपस्थित होती है तब उसमे चिन्तन प्रक्रिया की उत्पत्ति होती है। वह उस समस्या का समाधान बाह्य क्रियाओ द्वारा नही, बल्कि प्रतीकों तथा प्रत्ययों की सहायता से आन्तरिक रूप मे करता है। जिस तरह बाह्य क्रियाओं मे प्रयत्न और भूल की क्रियाएँ परिलक्षित होती है, उसी प्रकार वह उस समस्या को आन्तरिक रूप मे सुलझाने मे कुछ प्रयत्न तथा भूलों का आश्रय लेता है, जिसके फलस्वरूप वह समस्या समाधान मे सफल होता है।

इस स्थल पर यह स्मरणीय है कि एक ही परिस्थिति किसी व्यक्ति के लिये समस्या कहला सकती है और दूसरे के लिये नही। जब हम किसी ऐसी अभिनव परिस्थिति में पड़ जाते है जिसमे हमारी अभ्यस्त क्रियाएँ (Habitual actions) अभियोजित करने मे सहायक नही होती, तब हमारे सामने वह परिस्थिति समस्या बन जाती है। इस तरह, किसी परिस्थिति का समस्या बनना व्यक्तिविशेष पर निर्भर करता है। एक ही परिस्थिति किसी के लिये समस्या बन सकती है और किसी के लिये वह साधारण हो सकती है। समस्या का आविर्भाव हमारी अभिरुचि या जिज्ञासा के कारण होता है। नये नक्षत्र का आविर्भाव किसी ज्योतिषी के लिये एक समस्या है, किन्तु साधारण लोगों के लिये यह कोई खास महत्त्व नही रखता। समस्या दो प्रकार की होती है—(क) सैद्धान्तिक (Theoretical), तथा (ख) व्यावहारिक (Practical)। सैद्धान्तिक समस्या हमारी जिज्ञासा के कारण होती है। फलत

१ Thinking is a non perceptual process or activity not predominantly perceptual by which one apprehends an object or some aspects of an object or situation

२ Thinking is an ideational activity, symbolic in character initiated by a problem or task the individual is facing, involving some trial and error but under directing influence of his problem set and ultimately leading to a conclusion or solution of the problem —Warren

इसके समाधान से हमारी जिज्ञासा शान्त होती है। चन्द्र या सूर्य ग्रहण क्यों लगता है, यह ज्योतिषी के लिये एक सैद्धान्तिक समस्या है। [illegible] उसकी जिज्ञासा (उत्सुकता) शान्त होती है। [illegible] हमारे [illegible] जीवन मे उपयोगी सिद्ध होता है। जैसा [illegible] किया जा चुका है, चिन्तन सदा निर्देशित रहता है, क्योंकि उसका [illegible] समस्या का समाधान करना रहता है। अतः चिन्तनप्रक्रिया [illegible] निर्देशित [illegible] में ही होती है। इस दिशाविशेष को निर्धारित करने [illegible] निर्धारक प्रवृत्ति (Determining tendency) को है, जिसके सम्बन्ध में स्थलविशेष पर [illegible] किया जायगा।

चिन्तन का विश्लेषण

हम पहले ही यह स्पष्ट कर चुके है कि जब किसी नयी समस्या के उपस्थित होने के कारण मनुष्य की अभ्यस्त मानसिक या शारीरिक क्रिया में व्यवधान पहुँचता है तब चिन्तन प्रक्रिया का आविर्भाव होता है। अतः चिन्तन की पहली अवस्था वह है जिसमे हमे किसी समस्या की उपस्थिति और उसकी कठिनाइयों की चेतना होती है। इस कठिनाई की चेतना होते ही हमारे मन मे उसके निराकरण की इच्छा उत्पन्न होती है। इसके बाद उस समस्या को हम अच्छी तरह समझने के लिये उसके विभिन्न बीजतत्त्वों का विश्लेषण करते है और यह देखते है कि किस प्रकार की समस्या है। विश्लेषण करने के पश्चात् सभी प्राप्त बीजतत्त्वों को अपने गत अनुभव के आधार पर किसी सामान्यप्रत्यय विशेष (Specific concept) की श्रेणी में रखते है। इसे अनुमान प्रक्रिया (Inference) कहते है। यह चिन्तन की दूसरी अवस्था है जो बहुत ही [illegible] होती है। इस अवस्था मे बीजतत्त्वों की तुलना और मूल्यांकन करके उन्हें किसी वर्ग विशेष में रखा जाता है। यह प्रक्रिया गत अनुभव पर निर्भर करती है, क्योंकि अनुभव के बिना उन बीजतत्त्वों का मूल्यांकन, तुलना और वर्गीकरण पूर्णतः असम्भव है। समस्या के इस विश्लेषण मे हमे उसका पूर्ण ज्ञान हो जाता है। गंगा नदी पर यातायात के लिये पुल बनाने का आदेश पाकर कोई इंजीनियर सहसा पुल बनवाना प्रारम्भ नहीं कर देगा, वरन् सर्वप्रथम वह उस समस्या के विभिन्न बीजतत्त्वों का विश्लेषण करके यह जानेगा कि पुल का भार जमीन पर कितना पड़ेगा, उसका विस्तार कितना होगा, यातायात के कारण उसपर कितना बोझ पड़ेगा, उसके लिये किस प्रकार के कितने खम्भे अपेक्षित हैं, आदि। विश्लेषण के द्वारा जब वह पुल के इन विभिन्न बीजतत्त्वों का ज्ञान पा लेगा, तब पुल का नक्शा, आवश्यक सामग्री, वगैरह का निश्चय कर सकेगा। विश्लेषण के बिना समस्या का समुचित ज्ञान नहीं हो सकता और इस ज्ञान के अभाव मे समस्या को हल करने का प्रयास, अन्धकार पथ से चलकर शक्ति को नष्ट करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता।

इसके बाद चिन्तन की तीसरी अवस्था आती है, जिसे निर्णय (Judgment) कहते है। इस अवस्था मे व्यक्ति समस्या का हल करने के निश्चय पर पहुँचता है, किन्तु यदि समस्या बहुत जटिल हुयी तब इस निश्चय पर पहुँचने में बहुत विलम्ब होता है। समस्या को हल करने के लिये मन मे विभिन्न प्रकार के सुझावों का आविर्भाव साहचर्य नियम के आधार पर होता है। सुझाव जब मन मे आता है तब उसके दोष और

गुण पर विचार करके यह देखा जाता है कि इसकी सार्थकता कितनी है। यदि उस परिस्थिति के लिये वह सुझाव उपादेय नहीं प्रतीत होता है तो उसे तिरस्कृत कर दिया जाता है, और पुन दूसरे सुझाव की उपादेयता पर विचार किया जाता है। इसी प्रकार अनेक सुझाव मन मे उस समय तक आते रहते है जब तक कि हम उस समस्या को हल करने के लिये एक सुझाव अंगीकृत नहीं कर लेते। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि जिस तरह जानवर जटिल परिस्थिति मे प्रयत्न और भूल के द्वारा अपने आप को अभियोजित करने मे सफल होते है, उसी तरह समस्या को हल करने मे प्रयत्न और भूल की प्रक्रिया होती है। अन्तर यही है कि चिन्तन मे यह प्रक्रिया शारीरिक न होकर मानसिक होती है। उपर्युक्त उदाहरण मे इंजीनियर पुल के विभिन्न उपकरणों और रूपरेखाओं (outlines) पर एक एक करके उस समय तक चिन्तन के द्वारा छानबीन करता रहता है जब तक कि वह उपकरण विशेष और पुल की एक सुनिश्चित रूपरेखा को स्वीकार नहीं कर लेता। वह उसी उपकरण और रूपरेखा को ठीक समझता है जो अनेक सुझावो मे से सर्वोत्तम प्रतीत होती है।

जिस समय चिन्तन करने वाला एक सुझाव को स्वीकार कर लेता है, उसी समय वह समस्या हल करने मे सफल होता है। अपने अंगीकृत सुझाव की उपादेयता पर उसे पूर्ण विश्वास होता है। विश्वास करना चिन्तन की चौथी अवस्था है। किन्तु, विश्वास मात्र से ही वह सतुष्ट नही हो जाता, बल्कि अपने निष्कर्ष की पुष्टि वह आगमन और निगमन (Inductive and deductive) विधियों के द्वारा करता है। वस्तुत जबतक वह अपने सुझाव की सार्थकता की जाच नही कर लेता, तब तक न तो चिन्तन की प्रकिया ही समाप्त होती है और न तो समस्या का समाधान ही होता है। यह प्रमाणित करने की प्रक्रिया चिन्तन की पाँचवी और अन्तिम अवस्था है। उपर्युक्त उदाहरण मे जबतक इंजीनियर अपने पुल की रूपरेखा और उपकरण की उपयुक्तता को प्रमाणित नही कर लेता तबतक पुल बनाने की समस्या पूर्णरूपेण हल नही होती।

चिन्तन प्रक्रिया का उपर्युक्त विश्लेषण तार्किक (Logical) आधार पर किया गया है, दैनिक जीवन की सभी चिन्तन प्रक्रियाओं मे यह क्रम देखने मे नही आता। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उपस्थित समस्या के सभी बीजतत्त्वो का विश्लेषण करने के पहले ही उसको हल करने का सुझाव व्यक्ति के मन मे आ जाते है। लेकिन, यदि वह समस्या को अच्छी तरह समझे बूझे बिना ही किसी सुझाव को स्वीकार कर लेता है तो अन्ततोगत्वा वह समस्या हल करने मे भी असफल हो जाता है। फिर भी, इतना निर्विवाद है कि चिन्तन मे उपर्युक्त क्रम को बहुत ही कम स्थलों पर अपनाया जाता है। अत चिन्तन के समय बहुत ही सावधानी की आवश्यकता है, क्योंकि इसके बिना समस्या का कोई समुचित समाधान असम्भव है।

चिंतन-उपकरण

(Materials of thinking)

चिन्तन की व्याख्या करते समय, कुछ अंशों मे चिन्तन उपकरण पर प्रकाश डाला गया है, तथापि उनका यहा संक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक है। चिन्तन के लिये आवश्यक उपकरणों

में पदार्थ (Object), सामान्य प्रत्यय (Concept) और प्रतीक मुख्य है। अतएव उन्हीं पर यहाँ प्रकाश डाला जायेगा।

पदार्थ (Object) कोई पदार्थ चिन्तन मे तीन प्रकार से सहायक हो सकता है। एक तो यह हो सकता है कि पदार्थ हमारी आँखों के सामने उपस्थित हो जिसके कारण हमारी चिन्तन-प्रक्रिया मे सहायता मिले। जो पदार्थ आँखों के सामने मौजूद नही रहता उसका प्रत्यावाहन या कल्पना करके हम उसे चिन्तन का उपकरण बनाते है। अनुपस्थित पदार्थ का स्मरण करने से उसका चित्र हमारे मन मे आ जाता है और हम उन्ही मानस प्रतिमाओ के सहारे चिन्तन करते है। प्रतिमाएँ कितने प्रकार की होती है, इसके विषय में लिखा जा चुका है, अत यहाँ उनका उल्लेख करना आवश्यक नही। थोड़े शब्दों मे यही कह सकते है कि प्रत्यक्ष प्रत्यावाहन अथवा कल्पना के द्वारा हम किसी पदार्थ विशेष को अपने चिन्तन का उपकरण बनाते है। पदार्थ चिन्तन सामग्री कैसे है, इसे अपने जीवन के व्यावहारिक अनुभवो के द्वारा आसानी से जाना जा सकता है।

सामान्य प्रत्यय (Concept) चिन्तन का दूसरा प्रमुख साधन सामान्य प्रत्यय है। उसके निर्माण, विकास और उपयोगिता के सम्बन्ध मे पहले ही सकेत किया जा चुका है, और स्थल विशेष पर उसके विषय मे पर्याप्त प्रकाश डाला जायगा। अत यहाँ अधिक उल्लेख करने की आवश्यकता नही है।

प्रतीक (Symbol) प्रतीक और सकेत (Symbol and sign) चिन्तन की मुख्य सामग्रियाँ है। चिन्तन के लिये ये दोनो अत्यावश्यक है और ये दोनों ही एक दूसरे के बोधक है। प्रत्येक प्रतीक सकेत (Sign) का काम करता है और प्रत्येक सकेत प्रतीक का बोधक होता है। अत इन दोनो का एक साथ उल्लेख करना ही विशेष सुविधाजनक होगा। जो अपने से परे किसी अन्य अर्थ का बोधक होता है, उसे प्रतीक कहते है। चिन्तन मे सामान्य प्रत्ययों का प्रतिरूपन प्रतीको के ही जरिये होता है। इसका उदाहरण भी दिया जा चुका है कि लाल और हरी झडी क्योकर प्रतीक होती है। इससे चिंतन करने मे बड़ी सुविधा होती है। प्रतीक ही सकेत का भी कार्य करता है। घटाने, जोड़ने या गुणा करने के प्रतीक ही सकेत भी है, क्योंकि उनसे यह व्यक्त होता है कि हमे क्या करना है अथवा क्या करना चाहिये। वस्तुत प्रतीक और सकेत दोनों ही चिन्तन के अनिवार्य उपकरण है।

भाषा भी एक प्रकार का प्रतीक है जिसका प्रकाशन कई तरीको से होता है। केवल मनुष्य को ही इसकी योग्यता प्राप्त नही है, बल्कि जानवर भी कुछ अंश तक भाषा का व्यवहार प्रतीक के रूप मे करते है। जब कोई जानवर किसी घण्टे के बजने पर कोई प्रतिक्रिया-विशेष करता है, तब वह किसी प्रतीक की ही प्रतिक्रिया करता है। प्रतीक की प्रतिक्रिया करने के कई उदाहरण सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन शिक्षण (Conditioned reflex) में मिलते है। यों तो मनुष्य भाषा से कई प्रकार से लाभान्वित होता है, किन्तु चिन्तन में इसकी उपादेयता अत्यधिक है। मनुष्य शब्दों के सहारे ही सोचता है। अत सभी शब्द प्रतीक का काम करते है जिनका एक विशेष अर्थ होता है। ये शब्द सकेत का भी काम करते है। अत भाषा भी प्रतीक और सकेत है जो चिन्तन में सहायक होती है।

चिन्तन के अंग

चिन्तन को प्रभावित करनेवाले अगों को हम दो प्रधान भागों मे रख सकते हैं—वातावरण जन्य और व्यक्तिगत। वातावरण जन्य अग मनुष्य के समक्ष समस्या उपस्थित करता है, जिसके फलस्वरूप उसमे चिन्तन-प्रक्रिया का आविर्भाव होता है। व्यक्तिगत अग चिन्तन-प्रक्रिया को सफल बनाने मे सहायता करता है। यहाँ हम उन्ही दोनों अगों का सक्षिप्त उल्लेख करेंगे।

वातावरण जन्य अग (Environmental factors)

भाषा वातावरण जन्य अगों मे भाषा का स्थान महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति केवल अपने भावों को ही दूसरे से नही व्यक्त करता, बल्कि इसकी सहायता अपने चिन्तन मे भी लेता है। जिसकी भाषा जितनी समृद्ध रहती है उसमे उतनी ही उच्चकोटि की चिन्तन प्रक्रिया भी होती है। बच्चे, गूगे और जानवरों मे इसकी कमी होने के कारण ही उच्चकोटि की चिन्तन प्रक्रिया नही पायी जाती।

सामाजिक सम्पर्क (Social contact) सामाजिक सम्पर्क भी मनुष्य की चिन्तन प्रक्रिया को प्रोत्साहित करता है। जो समाज के नियम और व्यक्तियों के सम्पर्क मे रहता है वह अपने भावों को दूसरों पर व्यक्त करने और चिन्तन करने के लिये वाध्य हो जाता है। जब उसके दृष्टिकोण का समाज स्वागत नही करता तब वह चिन्तन के द्वारा अपने दृष्टिकोण को समाज के अनुरूप परिमार्जित करता है।

वातावरण मे परिवर्त्तन जब वातावरण मे परिवर्त्तन होता है तब उस परिवर्त्तित वातावरण मे सफल अभियोजन के लिये मनुष्य का चिन्तन करना पडता है। यही कारण है कि जब समाज मे नित्य नये परिवर्त्तन होते है तब उस समय अधिकाश व्यक्ति चिन्तनशील हो जाते है।

अन्य सस्कृति का सम्पर्क अन्य सस्कृति का सम्पर्क भी चिन्तन का एक अग है। जब व्यक्ति अन्य सस्कृति के व्यक्तियों के सम्पर्क मे आता है तब वह उस सस्कृत की अच्छाइयों को अपनाने के लिये चिन्तन करता है। विदेशों मे अध्ययन करनेवाले प्राय प्रत्येक भारतीय विद्यार्थी के सामने अभियोजन की एक समस्या प्रारम्भ मे उठती है। यह समस्या परिवर्त्तित सस्कृति के ही कारण होती है जिसका समाधान वह क्रमश चिंतन के सहारे करता है।

व्यक्तिगत अग (Personal factors)

आत्मविश्वास व्यक्तिगत अगों मे आत्मविश्वास (Self confidence) सर्वप्रथम आता है। जब मनुष्य दूसरे पर निर्भर नही करता और अपने पर विश्वास करता है, तब अपने जीवन की गुत्थियों को सुलझाने के लिये वह चिन्तन करता है।

सवेग-नियत्रण चिन्तन के लिये सवेगों का नियत्रण भी एक आवश्यक अग है, क्योंकि सवेग के समय उच्च मानसिक प्रक्रियाएँ अवरुद्ध हो जाती है। अत जब तक मनुष्य अपने सवेगों का नियत्रण करने में समर्थ होता है, तभी तक वह चिन्तन भी करता है।

निष्पक्ष मनोवृत्ति निष्पक्ष होना चिन्तन के लिये कम जरूरी नही है, क्योंकि किसी प्रकार का निश्चित दृष्टिकोण या विश्वास रखने से चिन्तन प्रक्रिया समुचित रूप से नही होती। अत चिन्तन के लिये निष्पक्ष होना जरूरी है। जो व्यक्ति अपने भावो के प्रति जितना ही तटस्थ और कमजोरियो से दूर होकर सोचता और मनन करता है वह उतना ही यथार्थ सोचता है और फलत उसकी बाते लोगो को उतना ही अधिक ग्राह्य होती है।

आलोचनात्मक मनोवृत्ति इसके अतिरिक्त, चिन्तन के लिए आलोचनात्मक मनोवृत्ति (Critical attitude) का होना आवश्यक है, क्योकि जबतक ऐसी मनोवृत्ति नही होगी तब तक किसी विषय पर चिन्तन करने की आवश्यकता नही महसूस होगी। अत आलोचनात्मक मनोवृत्ति भी चिंतन का एक प्रधान अभिन्न अंग है।

समस्या समाधान मे प्रयत्न तथा भूल का महत्त्व

(Importance of trial error in problem solving)

पीछे हम यह देख चुके है कि चिंतन के द्वारा हम लोग किस प्रकार किसी समस्या का समाधान करते है। अतएव इस स्थल पर यह विचारणीय है कि इसमे प्रयत्न और भूल प्रक्रिया का क्या हाथ रहता है। शिक्षण सिद्धान्तो की व्याख्या करते समय हम यह देख चुके है कि थार्नडाइक के अनुसार प्रत्येक शिक्षण प्रयत्न और भूल के द्वारा सम्पादित होता है। वही स्थल विशेष पर हम इसका भी उल्लेख कर चुके है कि कोहलर ने थार्नडाइक के सिद्धान्त का खण्डन करते हुए किसी समस्या समाधान के लिये अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। कोहलर ने थार्नडाइक का विरोध करते हुए अपना प्रयोग चूहे और बिल्लियो पर न कर बन्दर और वनमानुषो पर किया, जिनसे पाठक पूर्णत परिचित है। उसने प्रयोगो मे अन्ध परिस्थितियो (Blind situations) की उपेक्षा कर वक्र मार्ग समस्याओं (Detour problems) का इस्तेमाल किया। लेकिन, गभीरतया विचार करने पर मालूम होगा कि कोहलर का दृष्टिकोण सर्वमान्य नही था। उसके बन्दर और वनमानुषों ने स्वय भी प्रयत्न तथा भूल का प्रमाण दिया था। कोहलर ने अन्तर्दृष्टि की तीन विशेषताएँ व्यक्त की है—(क) सहसा असमर्थता से कुशलता की ओर अग्रसर होना (Sudden transition from helplessness to mastery), (ख) अच्छी धारणा (Good retention) और (ग) स्थानान्तरण (Transfer)। कोहलर के बन्दर सुल्तान मे ये सभी बाते उपस्थित थी, किन्तु समस्या-समाधान तक पहुँचने के पहले सुल्तान बहुत देर तक डण्डों से खेलता रहा। उसने कई बार प्रयास किया और असफल रहा। तब उसकी कोई ऐसी क्रिया हुई जिससे समस्या का समाधान सहसा हो गया। इस सम्बन्ध में उडवर्थ ने अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि परिस्थिति मे खाई (Gap) की उपस्थिति समस्या कहलाती है। इसी खाई के फलस्वरूप व्यक्ति के वर्तमान व्यवहार उसे अभियोजन कराने में असमर्थ हो जाते है। इसमे भी कठिनाई यह है कि वह खाई जल्दी मालूम नहीं होती है। इस खाई का स्पष्ट हो जाना ही अन्तर्दृष्टि की प्राप्ति कहलाती है। यदि किसी समस्या का समाधान उसे देखते ही जाय तो हम उसे समस्या नहीं कहेंगे। वास्तविक समस्या वही है जिसके समाधान के पहले अन्त से अनुमान और प्रयास मानसिक अथवा शारीरिक स्तरों पर किये गए हो और तत्पश्चात् सफलता मिली हो। इस प्रकार उडवर्थ के अनुसार समस्या समाधान के पहले प्रयत्न एव भूल का होना अनिवार्य है।

जेस्टाल्टवादी उपर्युक्त विचार से पूर्णत असहमत है, यद्यपि वे स्वय यह मानते है कि अन्ध व्यवहार (Blind behaviour) कभी कभी अन्तर्दृष्टि के उत्पादक हो जाते है। इससे यह स्पष्ट है कि जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक भी समस्या समाधान मे अप्रत्यक्षतया प्रयत्न एव भूल को महत्त्व देते है। उडवर्थ के अनुसार जेस्टाल्टवादियों द्वारा की गई आपत्ति का कारण यह है कि जेस्टाल्टवादियो ने प्रयत्न और भूल की परिभाषा गलत तरह से की है। प्रयत्न और भूल का तात्पर्य यह कदापि नही होता कि कोई जीव किसी क्रिया को बिना सोचे समझे करता है, बल्कि उस क्रिया का भी अपना एक उद्देश्य होता है। उडवर्थ के शब्दों मे यह उद्देश्य परिस्थिति के पुन सगठन (Reorganization of the situation) के अतिरिक्त और कुछ नही होता है।

वर्दीमर (Wertheimer) ने समस्या समाधान का अध्ययन ज्यामितिक समस्याओ के साथ बच्चों पर किया। अपने अध्ययन के आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि समस्या समाधान मे अन्तर्दृष्टि एवं प्रयत्न भूल की दोनों ही प्रक्रियाएँ विद्यमान रहती है। किन्तु, उत्पादक चिन्तन (Productive thinking) मे प्रयत्न और भूल का तनिक भी हाथ नही रहता है। वर्दीमर का यह विचार सर्वमान्य नही कहा जा सकता। उत्पादक चिन्तन का सबसे बडा प्रमाण आइन्स्टाइन (Einstein) ने सापेक्षता-सिद्धान्त (Theory of relativity) का प्रतिपादन कर प्रस्तुत किया है। फिर भी हम यह जानते है कि उसने कई बार मैक्सवेल समीकरण (Maxwell equation) को हल करने का प्रयास किया, किन्तु वह असफल रहा। इस तरह कई विफल प्रयासों के बाद ही उसे सफलता प्राप्त हो सकी। इससे यह पूर्णत स्पष्ट है कि उत्पादक चितन भी प्रयत्न और भूल पर ही आधारित है।

इस स्थल पर हम यह व्यक्त कर देना चाहते है कि प्रयत्न और भूल का सिद्धान्त समस्या समाधान मे गत अनुभूतियों (Past experiences) से लाभान्वित होने पर जोर देता है। जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक इससे सहमत नही है। उनके अनुसार समस्या समाधान वर्त्तमान परिस्थिति के आधार पर होता है, गत अनुभूतिया के आधार पर नही। परन्तु, उनकी यह विचारधारा दोषपूर्ण है। इस सम्बन्ध मे डर्किन (Durkin) का एक प्रयोग उल्लेखनीय है। उसने एक समस्या को विभिन्न भागो मे विभक्त कर प्रयोज्यो से उनका समाधान अलग अलग करवाया। फिर उन्ही प्रयोज्यो के समक्ष सभी भागा को मिलाकर समस्त समस्या (Whole Problem) उपस्थित किया। उस समस्त समस्या के उपस्थित होने पर उन प्रयोज्यो ने उसका समाधान आसानी से कर लिया। प्रयोज्यों का एक दूसरा समूह भी था, जिसे उस समस्या के विभिन्न भागों के समाधान का ज्ञान नही था। उस समूह के सामने समग्र समस्या एक ही बार उपस्थित की गई थी। उस समूह के प्रयोज्यों के लिए उस समस्या का हल करना कठिन हो गया। डर्किन का यह प्रयोग-परिणाम समस्या समाधान मे गत अनुभूतियों के महत्त्व का स्वीकार करता है।

इसमें सन्देह नहीं कि अन्तर्दृष्टि के द्वारा समस्या-समाधान अच्छी तरह होता है, लेकिन इससे यह नही समझना चाहिये कि अन्तर्दृष्टि की उत्पत्ति अचानक होती है, बल्कि इसका आविर्भाव क्रमिक (Gradual) होता है। इस क्रमिकता (Gradualness) को पूर्णता (Perfection) की ओर अग्रसर कराने मे प्रयत्न तथा भूल एवं गत अनुभूतियों

का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। अतएव इस स्थल पर निष्कर्ष रूप मे यह व्यक्त कर देना अनुचित नही होगा कि समस्या समाधान या चिंतन मे प्रयत्न और भूल का प्रमुख हाथ रहता है।

चिंतन और भाषा

व्यवहारवादी दृष्टिकोण चिन्तन और भाषा का सम्बन्ध काफी घनिष्ट है। विकसित भाषा रहने पर चिन्तन प्रक्रिया भी सुचारु रूप से होती है। भाषा के अभाव मे यह प्रक्रिया अधूरी और अव्यवस्थित होती है। इन दोनो में इतना घनिष्ट सम्बन्ध देख कर ही व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिको ने, जिनमे वाटसन (Watson) का नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय है, चिन्तन और भाषा को अभिन्न (Identical) या एक ही माना है। वाटसन का कहना है कि चिन्तन अव्यक्त अथवा आन्तरिक वाणी (Inner speech) है। जब कोई व्यक्ति चिन्तन करता है तब वह स्वयं धीरे-धीरे बोलता है। वाटसन का कहना है कि हम भाषा सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन विधि से सीखते है और बचपन मे उच्च स्वर से भाषण करते है। किन्तु, ज्यो ज्यो हमारी आयु बढती जाती है, त्यों त्यों हम धीमे स्वर से बोलने के लिये बाध्य होते जाते है। अन्त मे हम अपने मन मे बोलने लगते है, और इसी को चिन्तन कहते है। इस तरह चिंतन और भाषा को अभिन्न मानते समय व्यवहारवादियों ने भाषा का अर्थ केवल बोलने या व्याख्या करने मे नही रखा। यदि ध्यान दे तो पायगे कि इसमे तीन प्रकार की प्रक्रियाए रहती है—(१) आन्तरिक, (२) आगिक या आवयिक और (३) बाह्य। इनमे चिंतन का सम्बन्ध भाषा की आन्तरिक प्रक्रिया से ही मुख्यत है जिसकी चर्चा हम आगे की पक्तियों मे करगे। दृष्टि, श्रवण, घ्राण सबधी ज्ञानेन्द्रियो की सहायता जब भाषा की अभिव्यक्ति मे ली जाती है तब हमे आवयिक प्रक्रिया का उदाहरण मिलता है। लेकिन, साधारणत भाषा का अर्थ, हम जिस आवाज मे बोलते अथवा वस्तु स्थिति का विवेचन करते है, उसी से लिया जाता है। यह भाषा का अभिव्यक्त बाह्य रूप है।

इस प्रकार, वाटसन ने चिंतन को भी एक सामान्य शारीरिक क्रिया माना है। उसका कहना है कि जिस प्रकार फुटबॉल खेलने मे शारीरिक अगो का सचालन होता है, उसी प्रकार चिंतन मे भी कुछ शारीरिक क्रियाए होती है। अन्तर केवल इतना ही है कि हम खेलने की क्रिया को आसानी से देख पाते है, परन्तु चिंतन की प्रक्रिया देखी नहीं जाती, क्योंकि यह प्रक्रिया स्वरयत्र (Larynx), छाती और कठ के स्नायुओ मे होती है।

इन स्नायुओ की क्रिया का निरीक्षण हम सूक्ष्म यत्रो की सहायता और सूक्ष्म निरीक्षण के द्वारा ही कर सकते है। मन्द भाषण (Sub vocal speech) और चिन्तन को एक ही मानते हुए वाटसन ने कहा है कि बिना भाषा के चिन्तन असम्भव है। जो गूगे होते या जिनके स्वरयत्र मे किसी प्रकार की कमी होती है, वे भी चिन्तन के समय भाषा का प्रयोग करते है। फर्क यही है कि गूग बहरे की भाषा हमलोगों की बोल-चाल की भाषा नहीं होती, बल्कि साकेतिक होती है। इसलिए वे सब साभाषित भाषा (Spoken language) का नहीं, वरन् साकेतिक भाषा (Symbolic language) या भावभगीपूर्ण भाषा का प्रयोग करते है। चिन्तन के सम्बन्ध में वाटसन के पहले बेन

(Bain) का भी यही विचार था, किन्तु वह अपने विचार को पूर्णत विकसित नही कर सका। म्युलर (Muller) भी कुछ अंशो मे इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, क्योंकि उसका कहना है कि चिन्तन दो प्रकार का होता है,—भाषाविहीन चिन्तन और भाषायुक्त चिन्तन। इस प्रकार हम देखते है कि वाटसन के अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिको ने भी इस सिद्धान्त का आश्रय दिया है, यद्यपि व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने इसे पूर्णत अपनाया। इस तरह व्यवहारवादियो ने चिन्तन मे सिर्फ मस्तिष्क के ही कार्य पर नही, अपितु अन्य शारिरिक भागो के कार्य पर भी जोर दिया है।

अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए व्यवहारवादियो ने चिन्तन मे होनेवाली शारीरिक क्रियाओ का अध्ययन प्रयोगो द्वारा किया है। चिन्तन के समय स्वरयत्र की क्रियाओं की जानकारी के लिये क्लार्क (Clarke), थार्सन (Thorson), आदि मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे यत्रो का व्यवहार किया जिनसे स्वरयत्र की क्रियाएँ परिलक्षित हो सके। किन्तु, उनके प्रयोग परिणाम मे एकरूपता नही पायी गई। चिन्तन के समय कभी स्वरयत्र की क्रियाएँ विद्यमान थी और कभी उनका पूर्णत अभाव था। जिस समय स्वरयत्र की क्रियाएँ पाई गयी उस समय भी उन क्रियाओ मे समरसता (Uniformity) नहीं देखी गयी। इसके आधार पर यह अनुमान किया गया कि विभिन्न चिन्तन-प्रक्रियाओं मे स्वरयत्र की क्रियाएँ विभिन्न रूप की होती है। लेकिन, प्रयोग परिणाम की एकरूपता के अभाव मे व्यवहारवादियों के सिद्धान्त का खण्डन करना कठिन है, क्योंकि ऐसा यत्र दोष के कारण भी हो सकता है। अभीतक ऐसे यत्रों का अभाव है जिनके द्वारा शरीर की सूक्ष्म आन्तरिक क्रियाओ का अध्ययन ठीक तरह से किया जा सके।

किन्तु, मात्र यह कह कर कि सूक्ष्म यत्रों का अभाव है, यह सिद्ध नही किया जा सकता कि भाषा और चिन्तन अभिन्न है। जीवन मे कितने अवसर आते है जिनमें भाषा और चिन्तन एक दूसरे से पूर्णत स्वतत्र दृष्टिगोचर होते है। हम भाषा के बिना भी चिन्तन करते है। साथ ही, हम चिन्तन करते है कुछ, और भाषा बोलते है कुछ और। नीरस पाठ्य पुस्तकों को उच्चस्वर से पढते है, किन्तु उस समय चिंतन करते है अपने भावी जीवन अथवा किसी सिनेमा की अभिनेत्री का। यदि भाषा और चिन्तन अभिन्न होते तो हमे ऐसा अवसर नही मिलता। हम बहुत सी ऐसी भाषाएँ बोलते है जिन्हे समझते तक भी नहीं। ऐसा, विदेशी भाषाओं को बोलने या वेदमत्रों के उच्चारण करने मे अधिकाशत देखा जाता है। अशिक्षित ब्राह्मण वेदमत्रो का उच्चारण करते है, परन्तु वे उन शब्दो का कुछ भी अर्थ नहीं समझते। इसके अतिरिक्त, कभी कभी ऐसा होता है कि हमलोग कुछ सोच लेते हैं, लेकिन उसे व्यक्त करने के लिए हमे शब्द नही मिलते। कभी कुछ सवेगात्मक शब्द के याद आने से चिंतन प्रक्रिया ही समाप्त हो जाती है और व्यक्ति उसे अभिव्यक्त करने में भी असमर्थ हो जाता है। ऐसे अवसरों पर हम देखते है कि चिन्तन और भाषा के सम्बन्ध मे अन्तर पड़ जाता है। यदि ये दोनों अभिन्न रहते तो यह अन्तर सभव नहीं था। इतना ही नही, भाषा एक रहते हुए भी हमे विचारो मे भिन्नता मिलती है। एक ही विचार कई भाषाओं द्वारा भी व्यक्त होता है। इन विवेचनाओं को ध्यान मे रखते हुये भाषा और चिन्तन को एकरूप नही कहा जा सकता। चिन्तन के समय स्वरयत्र या शरीर के अन्य भागों मे क्रियाएँ हो सकती है, किन्तु इससे यह कहना कि चिन्तन ही भाषा या मन्दभाषण ही चिन्तन है, अनुचित है।

व्यावहारवादियों के उपर्युक्त कथन का खंडन औपचारिक प्रमाणों से भी होता है। हेड (Head) नामक विद्वान ने वाक्‌भ्रंशता (Aphasia) के रोगियों का अध्ययन अत्यन्त सावधानी के साथ किया है। वाक्‌भ्रंशता की अवस्था मे मनुष्य अपने भावो को व्यक्त करने मे असमर्थ होता है। यह दोष मनुष्यों में मस्तिष्क-आघात (Brain injury) के कारण पाया जाता है। हेड (Head) का कहना है कि यदि व्यवहारवादियो का मत ठीक होता तो वाक्‌भ्रंशता की अवस्था में मनुष्य चिन्तन नही कर पाता, क्योंकि उसका स्वरयंत्र इस अवस्था मे काम नही करता है। लेकिन, ऐसी अवस्था मे भी इस प्रकार के व्यक्ति मे चिन्तन प्रक्रिया देखी जाती है, भले ही वह व्यक्ति अपने चिन्तन को व्यक्त करने मे असफल हो जाय। वह एक ऐसे उच्च पदस्थ अंग्रेज कर्मचारी का उदाहरण देता है जो वाक्‌भ्रंशता से पीड़ित था, परन्तु उसमे चिन्तनशक्ति विद्यमान थी। अतएव उसका कहना है कि चिन्तन के फलस्वरूप स्वरयन्त्र (Larynx) मे क्रिया होती है, स्वरयन्त्र की क्रिया के कारण चिन्तन की प्रक्रिया नही होती। उपर्युक्त विवेचनाओं को ध्यान मे रखते हुये भी हम यही कह सकते हैं कि चिंतन के समय स्वरयन्त्र में क्रियाओ का होना स्वाभाविक है, किंतु इस आधार पर भाषा और चिंतन को अभिन्न नही कहा जा सकता। इसलिये हम इसे सामान्य शारीरिक क्रिया भी, जैसा कि वाटसन का कहना है, नही कह सकते।

प्रतिमाहीन चिन्तन और उर्जबर्ग सम्प्रदाय

(Imageless thinking and wurzburg school)

साधारणत जब हम कुछ सोचते हैं तब उसका मानसिक चित्र हमारे सामने रहता है। हम पिता के सबन्ध मे सोचते है तो उनका चित्र हमारे मन मे रहता है, उनसे बातें होती हैं और कभी-कभी तो अचेतनतया बातें जोर जोर से होने लगती हैं। इसीलिए अन्तर्निरीक्षणवादी मनोवैज्ञानिकों का सिद्धान्त था कि चिन्तन प्रक्रिया के समय दृश्य, ध्वनि या गति (Kinesthetic) प्रतिमा का होना आवश्यक है। उनके अनुसार, चिन्तन प्रतिमा के बिना असम्भव है। उनका यह निर्णय प्रयोज्यो की अन्तर्निरीक्षणात्मक सूचना के आधार पर है। इस विचार के पृष्टपोषकों मे उण्ट (Wundt) तथा टिचनर (Titchener) के नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। इन मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोज्यो को विभिन्न समस्याओं के विषय मे चिन्तन करने और अपने अनुभव को अन्तर्निरीक्षण द्वारा व्यक्त करने का निर्देशन दिया। सभी प्रयोज्यो ने अपनी चिन्तन-प्रक्रिया मे सन्निहित दृश्य, ध्वनि और गति संवेदनाओं और प्रतिमाओं की सूचना दी। प्रयोज्य के इस प्रकार के अनुभव को उनलोगों ने मानस विषय (Mental content) का नाम दिया और यह भी व्यक्त किया कि इस प्रकार की कितनी ही प्रतिमाएँ ऐसी होती है जिनकी उपयोगिता चिन्तन मे कुछ भी नहीं होती। किन्तु, यह सभी स्थलों के लिये सत्य नहीं है। इस तरह, इन अन्तर्निरीक्षणवादियों ने मानस विषय को संवेदना, प्रतिमा और भाव के बीजतत्त्वों मे विभाजित कर दिया। लेकिन, आगे चल कर इस विचारधारा की कटु आलोचना हुयी और मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन को प्रतिमाहीन माना। प्रतिमाहीन चिंतन की विचारधारा का प्रतिपादन एक ही समय तीन देशों की प्रयोगशालाओं में अलग-अलग हुआ। उन तीनो मनोवैज्ञानिकों के नाम हैं—उर्जबर्ग सम्प्रदाय के

लोग (जर्मनी में), बिने (फ्रान्स मे) और उडवर्थ (अमेरिका मे)। लेकिन, अधिक कार्य प्रथम के द्वारा होने से इसका मुख्य सबन्ध भी इस सम्प्रदाय से प्रख्यात हो गया है। उन लोगों के अनुसार, चिन्तन एक समन्वित प्रक्रिया ((Integiated pio ess) है, जिसको सवेदना, प्रतिमा, आदि मे नही बाँटा जा सकता। चिन्तन एक रचनात्मक और गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसमे चेतन मनोवृत्ति (Conscious attitude) और निर्धारक वृत्ति (Deteimining tendency) सन्निहित रहती है और जिन्हे हम प्रतिमा या सवेदना नही कह सकते।

इन्हीं उपर्युक्त विवेचनों को ध्यान में रखकर उर्जबर्ग सम्प्रदाय (Wuizburg school) के मनोवैज्ञानिको ने अपने प्रयोज्यों के अन्तर्निरीक्षण के आधार पर सन् १९०१ ई० में चिन्तन-प्रक्रिया को प्रतिमा रहित उद्घोषित किया। इस मतावलम्बियों में कुल्पे (Kulpe) का नाम अग्रगण्य है, क्योंकि उसीके द्वारा उसके अनुयायियो को प्रोत्साहन और निर्देशन मिला। चिंतन के क्षेत्र मे सयित प्रयाग इसी अध्ययन से प्रारम्भ होता है। मार्बे (Marbe) नामक मनोवैज्ञानिक ने अपने प्रयोज्यों को दो भारों (Weights) की तुलना करने का आदेश देकर अपने उस अनुभव को सूचित करने को कहा। प्रयोज्यों की सूचना से ज्ञात हुआ कि वे भारी और हल्का का निर्णय करने में क्योंकर सफल हुए, उन्हें यह स्वय नहीं मालूम हो सका। उनके इस निर्णय मे प्रतिमा, सवेदना या अन्य मनो-विषय का कुछ भी हाथ नही था। इसके पहले, जैसा कि ऊपर व्यक्त किया जा चुका है, मनोवैज्ञानिकों का ऐसा विश्वास था कि इस प्रकार के तुलनात्मक कार्य मे प्रतिमाओं का हाथ रहता है। किन्तु, मार्बे (Marbe) ने जी० ई० म्युलर (G E Mullei) तथा उसके अन्य शिष्यों के सहयोग से कई प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि ऐसे निर्णयों मे प्रतिमा और सवेदनाओं का पूर्णत. अभाव था। हाँ, प्रयोज्यों मे सन्देह, विश्वास, हिचकिचाहट, आदि की चेतना अवश्य थी, जिसे उसने 'चेतन मनोवृत्ति' के नाम से अभिव्यक्त किया, क्याकि सवेदना, प्रतिमा या भाव में से किसी की भी वह चेतना, नहा थी। इस प्रकार, उन मनोवैज्ञानिकों ने अन्तर्निरीक्षणवादियों की चिन्तन-प्रक्रिया की सहभागी सवेदना, प्रतिमा और भाव को तिरस्कृत कर उनके स्थान पर चेतन मनोवृत्ति और निर्धारक वृत्ति को स्वीकार किया। बाद मे उनके इस मत का खण्डन टिचनर (Titchener) ने यह व्यक्त करते हुए किया कि उनकी चेतन मनोवृत्ति और निर्धारक वृत्ति मे भी भाषिक (Verbal) स्नायविक तथा अन्य प्रकार की प्रतिमाएँ प्रारम्भिक अवस्था मे विद्यमान रहती है। अत उनका भी विश्लेषण सवेदना और प्रतिमाओं के बीज-तत्वों मे किया जा सकता है। किन्तु, प्रतिमाहीन चिन्तन के पोषक मनोवैज्ञानिक, टिचनर की इस आलोचना से चुप नहीं बैठे रहे, वरन् वे अपने सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिये और भी प्रोत्साहित हुए। उनमे से मेसर (Messer) और बुहलर (Buhler) के नाम विशेष प्रख्यात है। उन लोगों ने पुन अपने प्रयोगों के आधार पर यह घोषित किया कि चेतन मनोवृत्ति और निधारक वृत्ति का, जो चिन्तन के एकमात्र विषय (Contents) हैं, प्रतिमा और सवेदना के बीजतत्वों में विश्लेषण कदापि नही हो सकता। बिने ने भी अपनी दो बालिकाओं पर प्रयोग करके प्रतिमाहीन चिंतन के मत का ही पृष्ठपोषण किया। इस तरह, उर्जबर्ग सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रतिमाहीन चिंतन सिद्धान्त को प्रतिपादित किया।

लेकिन, प्रतिमाहीन चितन के प्रतिपादकों ने जो प्रमाण और दलील दी है उनके आधार पर चिंतन को प्रतिमा विहीन नही मान सकते। उर्जबर्ग स्कूल के मनोवैज्ञानिकों

का भी यह कहना है कि चिंतन के लिए प्रतिमाएँ आवश्यक नहीं, यह नहीं कि किसी भी चिन्तन में प्रतिमा होती ही नहीं। कुछ अन्य प्रयोग भी इस दिशा में विशेष महत्त्व के हैं। हेड (Head) का कहना है कि चिन्तन का प्रकाशन किसी प्रतीक के द्वारा होता है और प्रतीक ही प्रतिमा का जन्म देता है। अतएव चिन्तन में प्रतिमाएं रहती हैं। किन्तु, अब प्रश्न यह है कि यदि प्रतिमाएँ चिन्तन प्रक्रिया में रहती हैं तो वे चिन्तन में सहायक होती हैं या घातक, और क्या प्रतिमाहीन चिन्तन वस्तुतः असम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये उडवर्थ (Woodworth) ने कई प्रयोज्यों पर प्रयोग किया और अपने प्रयोग परिणाम के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वस्तुतः प्रतिमाहीन चिन्तन असम्भव है। जिसमें प्रतिमा नहीं, वह चिन्तन नहीं, अपितु प्रत्याग्रहन है, क्योंकि प्रतिमा के बिना भी हम प्रत्याग्रहन करते हैं। कम्स्टॉक (Comstock), क्रॉसलैण्ड (Crossland), ग्लीसन (Gleason), प्रभृति मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने प्रयोगों के आधार पर चिन्तन में प्रतिमा को स्वीकार किया है।

कम्स्टॉक ने प्रतिमाओं की उपयोगिता को भी चिन्तन प्रक्रिया में स्वीकार किया है। होलिंगवर्थ (Hollingworth) ने भी प्रतिमाओं को सार्थक ही उद्घोषित किया है। बोन्सफील्ड (Bonsfield) और बेरी (Berry) ने प्रतिमाओं की सार्थकता और उनके प्रकार का अध्ययन गणित के प्रश्नों के साथ अपने प्रयोज्यों पर किया। उन मनोवैज्ञानिकों ने यह निश्चित करना चाहा कि प्रतिमा, अनुप्रतिमा, स्मरण प्रतिमा और दर्शन-प्रतिमा में से किस वर्ग की होती और चिन्तन में उसका क्या हाथ रहता है? प्रयोज्य जिस समय गणित के प्रश्नों को मन में हल कर रहा था उसके व्यवहार का निरीक्षण प्रयोक्ताओं ने किया, जिससे यह प्रमाणित हुआ कि प्रयोज्य को अंकों को याद करने और परिगणना करने के लिये दृष्टि प्रतिमाएँ आवश्यक थीं। अंकों की दृष्टि प्रतिमाएं सदा विद्यमान थीं और वे प्रश्नों को हल करने में सहायक सिद्ध हुयीं। उन प्रतिमाओं का विश्लेषण करने पर प्रयोक्ताओं को ज्ञात हुआ कि वे प्रतिमाएँ निश्चित, स्पष्ट और स्थायी थीं। अंक, बोर्ड पर खड़ी से अंकित प्रयोज्य की दृष्टि से पन्द्रह सोलह इंच की दूरी पर मालूम होते थे। इस विश्लेषण के आधार पर प्रयोक्ताओं ने यह व्यक्त किया कि उनके प्रयोज्य में प्रतिमाएँ, अनुप्रतिमा, या स्मरण प्रतिमा के वर्ग की नहीं थीं, बल्कि दर्शन-प्रतिमा के स्वरूप की थीं। क्योंकि, उन्हें प्रयोज्यों ने वातावरण में अनुभव किया था और विवरण में वे समृद्ध थीं। वे बहुत देर तक बनी रहीं और चक्षु मांसपेशियों को इधर से उधर सचालित किया गया, किन्तु उनके आकार प्रकार में किसी प्रकार की कमी बेशी नहीं हुयी।

उपर्युक्त परिणाम के आधार पर उन दोनों प्रयोक्ताओं का कहना है कि दर्शन-प्रतिमाएँ स्मरण प्रतिमा की ही एक विशेष श्रेणी में आती हैं। किन्तु, दर्शन-प्रतिमाएँ स्मरण-प्रतिमाओं से अंश और स्पष्टता में भिन्न होती हैं। अतः चिन्तन में स्मरण-प्रतिमाओं का ही हाथ रहता है। दूसरे प्रयोज्यों ने भी गणित के प्रश्नों को ध्वनि और गति प्रतिमाओं के सहारे हल किया। इसलिये चिन्तन में प्रतिमाएँ निरर्थक नहीं, अपितु सार्थक सिद्ध होती हैं।

चिंतन में प्रतिमा का हाथ है या नहीं, यह दिखलाने के लिये टिचनर की कॉरनेल प्रयोगशाला (Cornell laboratory) में पाइल (Pyle), ओकाबे (Okabe), क्लार्क

(Clarke) और जेकबसन (Jacabson) ने चार प्रयोग अलग अलग किया। लेकिन, उन लोगों को प्रतिमाहीन चिंतन का कोई प्रमाण नही मिला। अपने प्रयोग-परिणाम के आधार पर क्लार्क ने बताया कि चिंतन मे प्रतिमा के योगदान का यदि एक क्रमिक मापदण्ड बनाया जाय तो प्रतिमाहीन चिंतन उसी मापदण्ड का सबसे अतिम विन्दु होगा। उन प्रयोक्ताओं का कहना है कि चिंतन को प्रतिमाहीन मानने के दो कारण है—एक तो यह कि मनोवैज्ञानिकों ने अर्थ (Meaning) और विषय (Content) के अन्तर को ठीक तरह से नही समझा और दूसरा यह कि जब व्यक्ति काफी सक्रिय होकर सोचते रहता है तब उसे द्वयर्थक तथा धुँधली प्रतिमाओं और सवेदनाओं को समझने मे कठिनाई होती है। किन्तु, विभिन्न प्रयोग परिणामों के प्रकाश मे इस कथन मे अधिक वैज्ञानिक सत्यता नही मिलती। इन प्रयोगों के सम्बन्ध मे ओगडेन (Ogden) का कहना है कि कॉरनेल प्रयोगशाला के प्रयोज्यों ने चिंतन मे प्रतिमाओं की सूचना इसीलिये दी कि वे प्रतिमा व्यक्त करने के लिये निर्देशित किये गये थे।

उपर्युक्त विवेचनाओं से स्पष्ट है कि प्रतिमाहीन चिंतन और प्रतिमायुक्त चिंतन का विवाद काफी जटिल है।

प्रत्येक के समर्थन मे मनोवैज्ञानिकों ने पर्याप्त प्रमाण दिए है। अत निष्कर्षस्वरूप हम यही कह सकते है कि चिंतन दोनों प्रकार का होता है। कुछ चिंतन-प्रक्रियाएँ प्रतिमा-हीन होती है, और कुछ मे प्रतिमाएँ मौजूद रहती है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिये यह कहा जा सकता है कि कुछ चिंतन-प्रक्रियाओं मे भाषा रहती है, अतएव उसमें प्रतिमाएँ भी रहती है। इस प्रकार के चिंतन को मूर्त्त चिंतन (Concrete thinking) कहते है। किन्तु, कुछ चिंतन-प्रक्रियाएँ अमूर्त्त (Abstract) होती है, जिनमें प्रतिमाओं का पूर्णत अभाव रहता है। उडवर्थ ने भी इसी मध्य पथ का अनुसरण करते हुए कहा है कि चिंतन मौलिक रूप से सभवत प्रतिमाहीन ही होता है, यद्यपि बाद में यह शब्दों या सुविधाजनक प्रतीकों से सबन्धित हो प्रतिमायुक्त हो जाता है।

चिंतन में निर्धारक वृत्ति का महत्त्व

(Importance of set in thinking)

किसी समस्या को उपस्थित होने पर हम उसके समाधान के लिये उसके विभिन्न पहलुओं पर सोचते-विचारते या चिंतन करते हैं। लेकिन, चिंतन से सदा हमारी समस्याओं का समाधान नही होता। कई स्थलों पर हम चिंतन करते है, परन्तु कुछ निजी कमी या बन्धन के फलस्वरूप समस्या का कोई निश्चित समाधान नहीं पाते। इसका एक प्रमुख कारण सही निर्धारक वृत्ति (Set or determining tendency) का अभाव है। समस्या के उपस्थित होने पर हम बहुत से अनुमान करते है, फिर हम उन्हें परखते है कि वे सत्य है कि नही। हम अपने अनुमानों का विस्तार किस सीमा तक बढ़ाएँगे या किन व्यवहारों को कहाँ तक आजमाएँगे, यह हमारी निर्धारक वृत्ति पर निर्भर करता है। इस स्थल पर प्रश्न होना स्वाभाविक है कि निर्धारक वृत्ति क्या है? सक्षेप मे, यह वह मनोवृत्ति है जो समस्या के समाधान के लिये चिंतन-प्रक्रिया को किसी दिशा विशेष मे प्रवाहित करती है। अतएव चिंतन और प्रधानत. समस्या-समाधान

मे निर्धारक वृत्ति का काफी महत्त्व है। लेकिन, दिशा विशेष मे चिंतन का प्रवाहित होना ही समाधान पाने की कोई गारण्टी नही है। कभी कभी चिंतन गलत दिशा मे भी होता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति समस्या समाधान के करीब जाने की अपेक्षा दूर चला जाता है। इस सम्बन्ध मे कई प्रयोग हुए है जिनकी चर्चा आगे की जायगी। इसीसे कुछ वैज्ञानिको का निष्कर्ष है कि जो व्यक्ति जितना ही बुद्धिमान होता है वह उतना ही जल्द चिंतन की गलत दिशा को पहचान कर उसे बदल देता है। उन्नीसवी सदी के समय से अब तक चिंतन और निर्धारक वृत्ति से सम्बन्धित कई प्रयोग हुए है। एक (Ach) ने कुछ सम्मोहक ससूचनो (Hypnosis) के आधार प्रयोग करके सिद्ध किया कि निर्धारक वृत्ति का, केवल चेतन, बल्कि अचेतन प्रभाव भी होता है। उसने यह भी बतलाया कि निर्धारक वृत्ति के ही सहारे चिंतन नियंत्रित और अर्थपूर्ण हो पाता है।

अनेक प्रयोग होने के उपरात भी निर्धारक वृत्ति सम्बन्धी प्रयोग काफी जटिल प्रतीत होते है। इस जटिलता का मुख्य कारण यह है कि प्रयोज्य को दिए गए निर्देशन के अतिरिक्त अन्य कई बात भी उसकी निर्धारक वृत्ति को निर्धारित करती है। किसी भी मनोवैज्ञानिक प्रयोग मे तीन तरह के निर्देशन कार्य करते है—(१) जो निर्देशन प्रयोक्ता द्वारा दिये जाते है, (२) जो निर्देशन प्रयोज्य स्वयं चेतन या अचेतन रूप से अपने आपको देता है और (३) जो निर्देशन प्रयोग स्थिति के कारण प्रयोज्य ग्रहण करता है। लेकिन, प्रयोज्य के लिये कौन सी स्थिति निर्देशन बनेगी, यह मुख्यत उसके गत अनुभव पर निर्भर करता है। निर्धारक वृत्ति गत अनुभव से काफी अशो मे प्रभावित होती है। इसीसे सामान्य प्रयोगो मे प्रयोज्यो के अन्दर निर्धारक वृत्ति की उत्पत्ति दो तरह से की जाती है—निर्देशन तथा गत अनुभव के नियंत्रण के द्वारा। मायर ने दोनो साधनो के द्वारा अपने प्रयोज्यो मे समस्या-समाधान सम्बन्धी एक विशेष प्रकार की निर्धारक वृत्ति को उत्पन्न किया। उसके अनुसार चिंतन प्रक्रिया मे मुख्यत गत अनुभूतियों का पुनर्संयोजन (Recombination of past experiences) होता है और इसी संयोजन से हमे विभिन्न वस्तुओ के बीच एक नया सम्बन्ध दीख पड़ता है। चिंतन मे निर्धारक वृत्ति के महत्त्व को समझने के लिये मायर द्वारा किये गये तीन प्रयोगो का उल्लेख करना समुचित होगा।

पहले प्रयोग मे मायर ने यह जानने का प्रयास किया कि समस्या-समाधान (Problem solving) मे गत अनुभवो का कितना हाथ रहता है। प्रयोज्यो को व्यक्तिगत रूप से एक नीची छत के कमरे मे लाया गया। उस कमरे मे एक बड़ा टेबुल, लगभग साढे सात फीट के दो डडे, तीन फीट से अधिक लम्बाई के दो डडे, एक बड़ा टेबुल कीलक (Table clamp), दो छोटे कीलक, बिजली घंटी का तार, जस्ते की नलिया (Tube) के टुकड़े, और खल्ली के बहुत से टुकड़े रखे हुए थे। समस्या समाधान में उन सभी वस्तुओं की आवश्यकता नही थी, बल्कि उनमे बहुत सी अनावश्यक सामग्रियाँ भ्रम उत्पन्न करने के लिये रखी गयी थी। प्रयोज्य को कमरे मे बैठाकर निम्नाङ्कित निर्देशन दिये गये।

"आपकी समस्या दो दोलको (Pendulums) को बनाना है जिनमें से एक इस विन्दु (सकेत करके) पर और दूसरा उस विन्दु (सकेत करके) पर डोलेंगे। दोनों

दोलको की रचना इस प्रकार हो कि दोनों मे खड़ी के टुकड़े लगे रहे ताकि उनके द्वारा दोनों बिन्दुओं पर चिह्न बनते रहे।"

मायर के अनुसार इस समस्या के समाधान के लिये तीन बातो का जानना आवश्यक था—(१) साहुल का ज्ञान, (२) दो छोटे डडों को कीलक के द्वारा मिलाकर बडा बनाने का कौशल और (३) खूँट सिद्धान्त (Wedging principle) का जानना। मायर ने अपने प्रयोज्यो को विभिन्न पाँच समूहो मे बाँट दिया। पहले समूह को केवल समस्या दी गयी। उसे न तो निर्देशन दिया गया और न समस्या समाधान का आशिक प्रदर्शन ही किया गया। दूसरे समूह को समस्या के साथ समाधान का आशिक प्रदर्शन भी किया गया। किन्तु, यह कह दिया गया कि इस प्रदर्शन का उद्देश्य उसको सामग्रियों से परिचित कराना मात्र था। तीसरे समूह को समस्या देकर उसका आशिक प्रदर्शन किया गया और साथ ही यह भी कह दिया गया कि यदि इन सामग्रियों का ठीक ठीक सयोजन (Combination) हुआ तो समस्या समाधान करना आसान हो जाएगा। चौथे समूह को समस्या और उसके साथ उपर्युक्त निर्देशन दिया गया। पाँचवे समूह को समस्या के साथ साथ उसके समाधान का आशिक प्रदर्शन, और यह निर्देशन दिया गया कि इन सामग्रियो का सयोजन समस्या समाधान कारक होगा। इसके अतिरिक्त, उन प्रयोज्यों मे उपर्युक्त निर्देशन के द्वारा एक निर्धारक वृत्ति भी उत्पन्न की गयी। इस तरह प्रथम चार समूह के प्रयोज्यो को आशिक सकेत दिया गया, लेकिन अन्तिम (पाँचवे) समूह को सभी निर्देशन पूर्ण रूप मे दिये गये।

प्रयोग परिणाम के अध्ययन से पता चला कि पहले चार समूहो के ६२ प्रयोज्यो मे से केवल एक ही उस समस्या का समाधान कर सका। किन्तु, पाँचवे समूह के २२ प्रयोज्यों मे से आठ ने उसका समाधान कर दिया। उस समूह के जो प्रयोज्य असफल हुए वे भी इसलिये, चूँकि उन्होने गलत निर्धारक वृत्ति से चिंतन किया था। उस प्रयोग से चिन्तन मे निधारक वृत्ति का महत्त्व स्पष्ट है।

दूसरे प्रयोग मे मायर (Maier) ने छत से दो रस्सियाँ लटका दी। वे दोनों रस्सियाँ इतनी दूरी पर थी कि साधारण रूप से एक को पकड कर दूसरे को पकडना असम्भव था। इसका समाधान कई प्रकार से हो सकता था, परन्तु मायर की अभिरुचि एक ही साधन मे थी, और वह यह कि प्रयोज्य एक रस्सी मे भारी वस्तु बाँधकर डुला दे, और दूसरी रस्सी को पकड कर खडा रहे। जब पहली रस्सी डोलती हुयी उसके सामने आ जाय तो वह उसे पकड ले। पहले की तरह इस बार भी कमरे मे बहुत सी अनावश्यक सामग्रियाँ उपस्थित थीं। समाधान के लिये सिर्फ १० मिनट का समय दिया जाता था। जब प्रयोज्य असफल हो जाते थे तब उन्हे निम्नलिखित दो सकेत (Hints) दिये जाते थे। एक तो यह कि रस्सी को जोर से डुला दिया जाता था और दूसरे, प्रयोज्य को भार (Weights) देकर कहा जाता था कि इससे समस्या का समाधान हो जायगा। बिना सकेत के ३९ प्र० श० प्रयोज्यो ने सफलतापूर्वक उसका समाधान किया, बाकी असमर्थ रहे। सकेत देने के पश्चात् ३८ प्र० श० अधिक प्रयोज्यों ने उसका समाधान कर लिया। इस प्रयोग से भी यह स्पष्ट है कि जब निश्चित सकेत दिया गया तब समाधान प्रक्रिया सरल हो गयी।

मायर ने अपने प्रयोगों में पाया कि बहुत से प्रयोज्य बार बार असफल होने के बाद भी अपने व्यवहार मे कोई परिवर्त्तन नही करते थे। लेकिन, सही समाधान के लिए एक व्यवहार से असफल होने के बाद अपने उस व्यवहार मे परिवर्त्तन लाना चाहिये। व्यवहारो के परिवर्त्तन से ही समाधान सम्भव हो सकता है। ऐसा नही कर सकने को मायर ने समाधान चक्रमार्ग (Solution rut) की संज्ञा दी है। मायर ने प्रयोगों द्वारा यह भी पाया कि संकेतों के द्वारा समाधान-चक्रमार्ग मे परिवर्त्तन लाया जा सकता है। इस संबन्ध में उसका तीसरा प्रयोग उल्लेखनीय है।

मायर ने यह प्रयोग प्रयोज्यो के दो समूहो पर किया। पहले समूह को समस्या समाधान संबन्धी विभिन्न क्रियाओं पर बीस मिनट तक भाषण दिया गया। यह प्रयोगात्मक समूह था। दूसरे समूह को नियन्त्रित रखा गया, जिसके समक्ष किसी प्रकार का भाषण नही दिया गया। वक्तव्य मे यह बतलाया गया कि जब किसी समस्या का समाधान न हो रहा हो तो हमे अपने व्यवहारो मे परिवर्त्तन लाना चाहिये। जब एक अनुमान से हम उस समस्या का समाधान करने मे असमर्थ रहे तो शीघ्र ही हमे पहले अनुमान को बदल देना चाहिये। इसके पश्चात् प्रयोज्यों के समक्ष विभिन्न प्रकार की तीन समस्याएँ रखी गयीं। (१) पहली समस्या मे छोटी छोटी नलियाँ तथा कीलकों (Clamps) को देकर दूर जलते हुए दीप को बुझाने को कहा गया। (२) दूसरी मे दूसरे प्रयोग की रस्सी वाली समस्या का प्रयोग भी इसमें किया गया। (३) तीसरी समस्या मे तख्तों को क्लैम्पों के द्वारा मिलाकर टोप टाँगने की अलगनी बनाने को कहा गया। देखा गया कि दोनों समूहो के प्रयोज्यों के लगभग ९० प्रतिशत व्यक्तियों ने रस्सीवाला समस्या का समाधान किया। अर्थात्, उन दोनो समूहों में कुछ विशेष अन्तर देखने मे नही आया। अन्तर केवल इतना था कि नियन्त्रित समूह के प्रयोज्यों ने उस समस्या समाधान मे प्रयोगात्मक समूह की अपेक्षा कुछ अधिक समय लिया। दोनो समूहो के लगभग २९ प्र० श० प्रयोज्यों ने दूसरी समस्या का समाधान किया। परन्तु, इसमें भी नियन्त्रित समूह के प्रयोज्यों ने बहुत अधिक समय लिया जिसके फलस्वरूप तीसरी समस्या के समाधान के लिये उनके पास समय न रहा। इसी कारण तीसरी समस्या का समाधान नियन्त्रित समूह के केवल ४७ प्र० श० प्रयोज्यो ने किया और प्रयोगात्मक समूह के ६८ प्र० श० प्रयोज्यों ने।

उपर्युक्त तीनों प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि समस्या समाधान मे निर्धारक वृत्ति का अत्यधिक महत्त्व है। जब प्रयोज्यों मे एक समुचित निर्धारक वृत्ति का अभाव होता है तब समस्या समाधान विकट हो जाता है।

हमने पहले कहा है कि निर्धारक वृत्ति का चिंतन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसे प्रयोज्य के गत अनुभव के सहारे भी अध्ययन किया जाता है। गत अनुभव के कारण व्यक्ति मे एक निर्धारक वृत्ति का निर्माण हो जाता है कि अमुक परिस्थिति में अमुक प्रकार से किसी समस्या को हल किया जा सकता है। कभी-कभी ऐसी वृत्ति के कारण हल्की समस्याएँ कठिन और कठिन समस्याएँ हल्की प्रतीत होती है। लुचिन्स (Luchins) ने अपने प्रयोगों मे पाया कि कई कठिन समस्याओं को हल करने के बाद उसके प्रयोज्य सबसे सरल और सीधी अन्तिम समस्या को हल नही कर सके। इसका कारण यह था कि कठिन समस्याओं को हल करते-करते उनके अन्दर कठिन समस्या हल करने की ही एक निर्धारक वृत्ति

बन गयी थी। उनकी चिंतन-प्रक्रिया उसी दिशा में निर्देशित थी। परिणामत वे सरल और सीधी समस्या को हल नहीं कर सके, क्योंकि पूर्व निर्धारित वृत्ति एक बाधा बन गई।

इसी तरह, सियोल, प्रभृति ने भी निधारक वृत्ति के चिंतनसबधी महत्त्व को प्रयोग द्वारा स्पष्ट किया है। उन प्रयोगो के आधार पर हम कह सकते है कि चिंतन को सफल और सरल बनाने के लिये सही दिशा निर्देश की आवश्यकता होती है। व्यक्ति गलत निर्धारक वृत्ति से गलत निष्कर्ष पर पहुँचता है। समुचित निर्धारक वृत्ति के अभाव में कोई भी व्यक्ति किसी समस्या का निश्चित समाधान नहीं पा सकता। यह बात दूसरी है कि सयोगवश कभी समस्या का हल मिल जाय, परन्तु हम इसे निश्चित समाधान नहीं कहेंगे। निश्चित समाधान के लिये चिंतन मे समुचित दिशा निर्देश का होना आवश्यक है।

सामान्य प्रत्यय-निर्माण का प्रयोगात्मक अध्ययन

(Experimental study of concept formation)

चिन्तन के अध्ययन के लिये प्रयोगशालाओं मे सामान्य प्रत्ययों की रचना को एक सामान्य समस्या माना जाता है। यह वह चयनात्मक मानसिक सगठन है जो व्यक्ति की गत अनुभूति और वर्त्तमान घटनाओं को उत्तेजक वस्तुओं से मिलाता है। दूसरे शब्दों में, विभिन्न वस्तु, परिस्थिति तथा घटनाओं की भिन्नता की उपेक्षा कर उनकी समानता पर आधारित उनका सामान्य चित्र बनाने की प्रक्रिया को सामान्य प्रत्यय कहते है। एक अर्थ में सामान्य प्रत्यय गत अनुभूतियों का घनीकरण (Condensation) होता है। इसकी उत्पत्ति एक प्रकार के आगमनात्मक (Inductive) तर्क के द्वारा होती है। एक परिकल्पना (Hypothesis) बना कर उसे जाँचा जाता है। यदि ठीक हुआ तो सामान्य प्रत्यय बन जाता है। प्रयोगात्मक विधियों के द्वारा विभिन्न प्राणियों में सामान्य प्रत्यय उत्पन्न करने की चेष्टा की गयी है जो निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट होगा।

यदि कुछ अक्षर और कुछ अक एक साथ उपस्थित किये जायँ तो उनके आधार पर एक सामान्य प्रत्यय बनाया जा सकता है।

क	ख	ग	६३९
क	ढ	स	४२३
य	र	ल	११७
न	प	क	८३०

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि जब कभी अक्षरों में क आया है, तब उसके साथ अकों मे ३ अवश्य आया है। अत हम क के प्रति यह सामान्य प्रत्यय बना सकते है कि इससे ३ का बोध होता है। इस में यह प्रयास किया गया है कि एक ऐसा सामान्य प्रत्यय बनाएँ जिसमें किसी प्राचीन वस्तु का नया नाम दिया जाय। यहाँ क प्राचीन है और ३ उसका नया नाम है। इस प्रकार की एक दूसरी समस्या भी हो सकती है। यदि प्रयोक्ता प्रयोज्य से कहे कि अभी हम बहुत से अक्षर आपके समक्ष रखेंगे। उनमें से कोई एक ही अक्षर ऐसा है जो शुद्ध है। आप अनुमान द्वारा बताएँ कि वह शुद्ध अक्षर कौन सा है। पहली बार 'क ख य र ब' दिया गया। प्रयोज्य ने अनुमान किया कि शुद्ध अक्षर

य है। यह अशुद्ध हो गया। तब उसने र का अनुमान किया, जो ठीक था। तब उसने यह निष्कर्ष निकाला कि जो अक्षर बीच वाले अक्षर की दाहिनी ओर होता है, वही शुद्ध होता है। दूसरी बार प्रयोक्ता ने 'द प ल ज ट' उपस्थित किया। प्रयोज्य ने पहली अनुभूति के आधार पर ज को शुद्ध माना। प्रयोक्ता उससे सहमत हुआ। इससे उसका पहला अनुमान और प्रबल हो गया। तीसरी बार उसे 'र ठ उ ग' दिया गया। चार अक्षर होने के कारण इसका केन्द्रीय अक्षर कोई नहीं था। फलतः पहला अनुमान टूट गया। प्रयोक्ता ने बतलाया कि शुद्ध उ है। प्रयोज्य ने दूसरा अनुमान लगाया जिसके बाद उसने हमेशा ठीक बतलाया। पूछने पर उसने कहा कि दूसरे अनुमान के आधार पर उसने उस अक्षर को शुद्ध माना था जो अन्तिम के पहले था। इस प्रयोग से भी सिद्ध है कि सामान्य प्रत्ययो की रचना मे आगमन तर्क की आवश्यकता होती है।

साधारण प्रयोगों मे सामान्य प्रत्ययो के निर्माण के लिये दो विधियो का प्रयोग किया गया है—चयन-विधि (Sorting method) तथा स्मरण-विधि (Memory method)। चयन विधि के द्वारा हण्टर कॉलेज के ७२ से ८३ महीनों तक के बच्चों पर प्रयोग किया गया। विभिन्न प्रकार के गोलाकार, वर्गाकार आदि काष्ठखण्डो (Wooden blocks) को प्रयोज्यों को दिखलाया गया। प्रत्येक काष्ठखण्ड के साथ उसका एक निरर्थक नाम उच्चारित किया गया। अन्त मे सभी काष्ठखण्डो को मिलाकर प्रयोज्यों को उनके नाम के अनुसार छाटने के लिये दिया गया। तब देखा गया कि अधिकांश बच्चे इस कार्य को करने मे असमर्थ रहे। परन्तु, जब प्रयोक्ता ने नाम व्यक्त किया तब प्रयोज्यो को काष्ठखण्डो के छाटने मे कठिनाई नहीं हुई। इससे यह स्पष्ट है कि बच्चे मूर्त्त वस्तुओं से अमूर्त्त सामान्य प्रत्यय बनाने मे कठिनाई अनुभव करते है। लेकिन, अमूर्त्त सामान्य प्रत्ययो से ज्यादा आसानी से मूर्त्त सामान्य प्रत्ययो का निर्माण कर लेते है।

सामान्य प्रत्ययो के निर्माण पर हेडब्रीडर (Heidbreder) ने भी कई प्रयोग किये। परन्तु, उसने स्मरण विधि का ही आश्रय लिया है। उसने बहुत से रेखाकों (Drawings) को स्मृति ड्रम (Memory drum) के सहारे प्रयोज्य के समक्ष एक निश्चित समय के लिये क्रमश उपस्थित किया। जब एक चित्र सामने आता तब प्रयोक्ता उसका एक नाम कह देता और प्रयोज्य उस नाम की पुनरावृत्ति करता। प्रयोज्यो का प्रारम्भिक झुकाव (Initial set) उन रेखाचित्रो के नाम याद करने का था। चित्रो की सख्या नौ थी और उनके नाम नौ सामान्य प्रत्ययों के प्रतिरूपक थे। उनमें से तीन मूर्त्त पदार्थो के, तीन स्थानीय रूप (Spatial form) के और तीन सख्यात्मक (Numerical) थे। क्रमश सभी चीजों को कई बार दिखलाया गया। अन्त मे यह देखा गया कि मूर्त्त वस्तुओं से सम्बन्ध रखने वाले नाम शीघ्र याद हो गये। वे नाम जिनका सम्बन्ध स्थानीय रूप से था, कुछ देर मे याद हुए, और वे नाम जो सख्या से सम्बद्ध थे, बहुत देर मे याद हुए। इस प्रयोग से यह स्पष्ट है कि वह सामान्य प्रत्यय जिसका सम्बन्ध मूर्त्त वस्तुओं से रहता है, अमूर्त्त सामान्य प्रत्ययो की अपेक्षा शीघ्रता से याद होता है।

सामान्य प्रत्ययों के निर्माण मे दो तरह की प्रक्रियाएँ कार्य करती है—प्रत्याहार (Abstraction) तथा सामान्यीकरण (Generalization)। सामान्य प्रत्यय के निर्माण मे ये दोनो प्रक्रियाएँ इस प्रकार सन्निहित रहती है कि इन्हे एक दूसरे से पूर्णत अलग करना

बहुत कठिन है। हम जानते है, कोई भी दो वस्तुएँ या जीव बिल्कुल एक तरह के नहीं होते, बल्कि उनमे कुछ अन्तर होता है। यहाँ तक कि दो आदमी भी एक समान नहीं होते। लेकिन, व्यक्ति की यह खूबी है कि वह असमानता मे समानता को ढूढता है। यही कारण है कि दो आदमियो की शक्ल सूरत, रूप रग एक दूसरे से भिन्न होने पर भी हम दोनो को आदमी ही कहते है। इससे लगता है कि 'आदमी' का सामान्य प्रत्यय विभिन्न आदमियो की समानताओ को चुनकर बना है। तरह तरह के जीवो मे समान गुणो को चुनकर श्रेणी बनाने की प्रक्रिया का प्रत्याहार कहते है। लेकिन, केवल समान गुणो और अगो को चुनने से ही सामान्य प्रत्यय का निर्माण नही होता, बल्कि ऐसा कर लेने के बाद उन समानताओं की श्रेणी को एक नाम दिया जाता है और तब कहा जाता है कि जिन जीव को ऐसे ऐसे तथा इतने हाथ, पैर, आँख, कान तथा ललाट होगे उन्हे हम आदमी कहेगे। समानताओ को सामान्यरूप और नाम देने की प्रक्रिया को सामान्यीकरण कहते है। किसी भी सामान्य प्रत्यय के निर्माण मे ये दोनो प्रक्रियाएँ ज्ञात या अज्ञात रूप से कार्य करती है। कभी कभी ये प्रक्रियाएँ जानबूझकर चेतनतया चलायी जाती है, परन्तु अधिकाश हमे ज्ञान नही रहता। बचपन से मृत्युपर्यन्त प्रत्येक व्यक्ति न जाने कितनी वस्तुओ के सम्पर्क मे आता और उनका अनुभव करता है तथा इस तरह उन सभी का सामान्य प्रत्यय अपने मन म चेतन या अचेतन रूप से बनाते जाता है। प्रत्याहार की प्रक्रिया प्रधान है। इसमे समर्थ होने पर भी किसी व्यक्ति का सामान्यीकरण मे असमर्थ रहजाना सम्भव है। लेकिन, प्रत्याहार की अनुपस्थिति मे सामान्यीकरण असम्भव है।

सामान्य प्रत्ययों के निर्माण के सम्बन्ध मे पी ई फील्ड (P E Field) ने बच्चो तथा जानवरो पर कई प्रयोग किये है। एक बच्चे को प्रशिक्षित किया गया कि वह त्रिभुज की ओर जाय और वर्ग अथवा वृत्त की उपेक्षा करे। जब त्रिभुज वर्ग के साथ उपस्थित किया गया, तब बच्चा त्रिभुज की ओर गया। जब त्रिभुज वृत्त के साथ उपस्थित किया गया तब भी बच्चा त्रिभुज की ही ओर गया। किन्तु, जब त्रिभुज एक उल्टे त्रिभुज के साथ उपस्थित किया गया, तब बच्चा अपने शुद्ध चुनाव मे असमर्थ रहा। इससे यह स्पष्ट है कि वह विभिन्न त्रिभुजाकार रूपों मे भिन्नता न देख सका। अर्थात्, वह सीधे त्रिभुज के लिये तथा उल्टे त्रिभुज के लिये विभिन्न सामान्य प्रत्ययो के निर्माण मे असमर्थ रहा।

सामान्य प्रत्ययों के निर्माण के सबन्ध मे गोल्डस्टाईन (Goldstein) ने भी प्रयोग किया है। उसने अपने प्रयोज्यों को बहुत-सी वस्तुओ को देकर उन्हे समानता के आधार पर विभाजित करने को कहा। इसके परिणामो से उसने यह निष्कर्ष निकाला कि निम्न बुद्धि के व्यक्तियो ने वस्तुओं का विभाजन मूर्त स्तर (Concrete level) पर किया, जैसे, लाह को लाल के साथ, दियासलाई को मोमबत्ती के साथ, आदि। किन्तु, सामान्य व्यक्तियों ने अमूर्त सम्बन्ध के आधार पर भी उनका विभाजन किया, यथा, उन सभी वस्तुओं को एक वर्ग में रखा जो हमे प्रसन्नता प्रदान करती है। इसी प्रकार और भी कई प्रयोग इस दिशा मे किये गए है।

अब सामान्य प्रत्ययों के निर्माण के सम्बन्ध में इतना व्यक्त कर देने के बाद हम निष्कर्ष स्वरूप यह कह सकते है कि सामान्य प्रत्ययो मे क्रमिक श्रृङ्खला होती है जो हमारी परिपक्वता की विवृद्धि के साथ अमूर्त्तता की ओर अग्रसर होती है।

चिन्तन की अशुद्धियाँ
(Errors of thinking)

कभी कभी किसी समस्या का समाधान करने मे चिन्तन-प्रक्रिया असफल होती है। इस असफलता का ज्ञान चिन्तनकत्ता को भी होता है। इसलिए कोई तो निराश होकर चुप बैठ जाता है और कोई पुन चिन्तन प्रारम्भ करता है। लेकिन, कभी-कभी ऐसा होता है कि चिन्तनकर्त्ता की चिन्तन प्रक्रिया अशुद्ध होती है और वह दोषपूर्ण निष्कर्ष को ही उचित समझ लेता है। इस प्रकार का चिन्तन-व्यक्ति के लिये घातक सिद्ध होता है। अत उन अशुद्धियों और उनके कारणों का उल्लेख कर देना आवश्यक है।

चिन्तन के समय प्रयास की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि किसी समस्या को पूर्णरूपेण समझने के लिये उसका विश्लेषणात्मक अध्ययन जरूरी है। यह अध्ययन तभी सभव है जबकि चिन्तनकर्त्ता मे प्रेरणा हो। इसके अभाव में, समस्या को अच्छी तरह समझे बिना ही किसी निष्कर्ष पर वह झट से पहुँच जाता है। जहाँ कहीं भी उसे कठिनाई होती है वह शीघ्र ही उस समस्या से पिण्ड छुड़ा लेता है। प्रेरणा के अभाव में इस प्रकार का चिन्तन दोष हमे राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आदि मामलों मे बहुत मिलता है, क्योंकि इनसे सबन्ध रखने वाले व्यक्ति उन समस्याओ के विश्लेषणात्मक अध्ययन के फन्दे मे नही पड़ना चाहते और झट से किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाते है।

मनुष्य की इच्छा और आवश्यकता के कारण भी चिन्तन-प्रक्रिया मे अशुद्धियाँ पायी गयी है। जब वह किसी समस्या पर चिन्तन करता है तो उसका चिन्तन उसकी इच्छाओं के ही अनुरूप होता है, क्योंकि चिन्तन प्रक्रिया मन और मनोवृत्ति से अत्यधिक प्रभावित होती है। इस प्रकार का चिन्तन पूर्णत पक्षपातयुक्त होता है, क्योकि व्यक्ति सदा अपनी इच्छा और आवश्यकता को पूरा करने का ही प्रयास करता है। इस प्रकार के चिन्तन दोष जीवन के सभी क्षेत्रों, यथा, राजनीति, धर्म, विधान, विज्ञान, आदि में देखने मे आते है। जब दो राजनीतिज्ञ किसी विरोधी समस्या पर विचार करते है तब वे उसकी सत्यता को ढूँढने की कोशिश नहीं करते, बल्कि अपने सिद्धान्त को ही प्रतिपन्न प्रमाणित करने का प्रयास करते है।

कई प्रकार के हेत्वाभास (Fallacy) के कारण चिन्तन प्रक्रिया पूर्णत दोषयुक्त हो जाती है, यथा, एक ही कारण के आधार पर किसी निष्कर्ष का सामान्य मान लेना। यदि बाहर सोने पर कोई ज्वरग्रस्त हो जाय तो बाहर सोने को ही ज्वर होने का एकमात्र कारण मान लेना, इस प्रकार के हेत्वाभास का एक उदाहरण है। बाहर सोने के अतिरिक्त और भी कई कारण हो सकते है, जिससे मनुष्य ज्वरग्रस्त हो जाय। अत एक ही आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाना चिन्तन प्रक्रिया को दोषपूर्ण बना देता है।

शाब्दिक हेत्वाभास (Word fallacy) भी चिन्तन प्रक्रिया को दूषित कर देता है। किसी भी भाषा में किसी शब्द के अर्थ में प्रसगवश परिवर्त्तन होता रहता है। इसलिये शब्दों के अर्थों को समझे बिना किसी निष्कर्ष पर पहुँचना अधिकांशत दोषपूर्ण

होता है। इस प्रकार के हेत्वाभास के कारण जो चिन्तन दोष होते हैं उनके अनेक उदाहरणों मे से एक यहाँ दे देना अप्रासगिक नही होगा।

कुछ नही से लुगाई का जूठा भला,
स्वर्ग से कुछ नही भला,
अत स्वर्ग से लुगाई का जूठा भला।

शाब्दिक हेत्वाभास के कारण चिन्तन मे जो दोष आते हैं उनके उदाहरणों की कमी व्यावहारिक जीवन मे नही है।

किसी समस्या को अभ्यस्त विधि (Practiced method) से हल करने के कारण भी चिन्तन-प्रक्रिया सदोष हो जाती है। जब कोई समस्या उपस्थित होती है तब कोई व्यक्ति उसे हल करने के लिये अपनी अभ्यस्त विधि का व्यवहार करता है और परिणामत उसका चिन्तन कई स्थलों पर दोषयुक्त प्रमाणित होता है। जैसा कि हम जानते हैं, विभिन्न समस्याओ के समाधान के लिये विभिन्न विधियाँ है। अत यदि हम एक ही विधि का व्यवहार सदा करते रहे तो सभी स्थलो पर समुचित रूपण चिन्तन नही कर सकते और न तो समुचित निष्कर्ष पर ही पहुँच सकते हैं। इसलिये इस दोष से बचने के लिये यह आवश्यक है कि समस्या के अनुरूप विधि का ही व्यवहार, उसे हल करने मे करें। अभ्यस्त विधि चिन्तन प्रक्रिया को क्योंकर दूषित कर देती है, इस सम्बन्ध मे मैक्स वर्दीमर (M Wertheimer) के प्रयोग विशेषरूपण प्रख्यात हैं। जो मनुष्य सभी प्रश्नों को एक ही विधि से सुलझाने का प्रयास करता है, वह निरन्तर इस प्रकार की दूषित चिन्तन-प्रक्रिया का भागी बनता है, क्योंकि न तो वह अपनी विधि की अनुपादेयता पर ही विचार करता है और न अन्य सार्थक विधियों को जानने और समझने की कोशिश करता है।

मानसिक झुकाव या मनोवृत्ति के कारण मनुष्यो मे कुछ मूक धारणाओं (Tacit assumptions) का आविर्भाव होता है। अत ये मूक धारणाएँ मनुष्य के चिन्तन में बाधक होती हैं। मनुष्य अपनी इसी धारणाओं से आगाह भी नही रहता। इस दिशा में मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रयोग करके यह प्रमाणित कर दिया कि प्रयोज्य अपनी मूक धारणा के कारण दी हुई समस्या को हल करने के लिये उचित विधि पर विचार नही कर सके। कारण, उनमे पहले ही से यह धारणा बन गयी थी कि समस्या को हल करना सम्भव नहीं। इसलिये उन्होंने उसके समाधान की भी विशेष कोशिश नही की।

व्यक्तिविशेष को कोई तथ्य उचित जँचता है और वह उसे उचित मान बैठता है। फिर वह कभी अपने इस विचार की सार्थकता और सत्यता को प्रमाणित नही करता। कसौटी पर प्रमाणित किये बिना किसी तथ्य को सत्य मान लेना चिन्तन को अशुद्ध बना देता है। अपने को उचित जँचना, किसी तथ्य के प्रामाणिक होने का प्रमाण नहीं है। अत अपने किसी भी विचार के निष्कर्ष को प्रमाणित कर लेना आवश्यक है। यह एक प्रकार की अधूरी समझ कही जा सकती है। जब मनुष्यों में यह मनोवृत्ति बहुत प्रबल हो जाती है, तब इसे अन्धविश्वास कहते हैं। अत शुद्ध चिन्तन के लिये इस दोष से बचना आवश्यक है।

मनुष्य के सामने जब किसी प्रकार की समस्या उपस्थित हो जाती है तब वह उस समस्या के प्रमुख पहलुओं पर विचार नही करता, वरन् हल करने के लिये आँख मूँदकर अपनी उस विधि का इस्तेमाल करता है जिसके द्वारा वह पहले किसी समस्याविशेष को सुलझाने में

समर्थ हुआ था। इस प्रकार विधि का दोषपूर्ण स्थानान्तरण चिन्तन दोष का कारण होता है। पाठशालीय विद्यार्थियो मे यह चिन्तन दोष अत्यधिक मात्रा मे पाया जाता है। इस सबन्ध मे भी वर्दीमर ने प्रयोग करके यह प्रदर्शित कर दिया है कि किसी विधि का दोषपूर्ण स्थानान्तरण चिन्तन को क्योंकर अशुद्ध बना देता है। इसी प्रकार और भी कई कारणो से चिन्तन प्रक्रिया मे अशुद्धिया देखी जाती है। लेकिन, हमे यह नही भूलना होगा कि सभी व्यक्तियो मे ये दोष नही पाये जाते, और न एक ही दोष के सभी शिकार होते है। बहुत मनुष्यो मे इन दोषो का नामोनिशान भी नही मिलता। इसलिये इसमे भी वैयक्तिक भिन्नता को स्थान देना आवश्यक है।

चिन्तन व्यतिक्रम

(Disorder of thinking)

चिन्तन अशुद्धियों का उल्लेख करते समय हम यह व्यक्त कर चुके है कि किस तरह हम अपनी इच्छाओ को सतृप्त करने के लिये जो सोचते वही उचित समझते है। यह चिन्तन प्रक्रिया का सबसे बडा दोष है। इस व्यतिक्रम का आविर्भाव अतृप्त इच्छाओ की तृप्ति के लिये ही होता है। इसे हम इच्छा सतृप्ति चिन्तन (Wishful thinking) के नाम से व्यक्त कर सकते है। चिन्तन का यह व्यतिक्रम बडे बड़े राजनीतिज्ञो और धर्मोपदशको, आदि में देखने में आता है। इतिहास मे एसे उदाहरणों की कमी नही जिनमे हम इस दोष का अध्ययन करने का काफी मसाला मिलता है। इस दोष के अध्ययन से मनुष्य के मानस जीवन की काफी जानकारी होती है। किन्तु, यह दोष इतने लोगो मे पाया जाता है कि मनोवैज्ञानिक इसे एक सामान्य व्यापार समझते है।

मनोविकृतियो (Psychoses) से पीडित व्यक्तियो की चिन्तन प्रक्रिया मे अत्यधिक व्यतिक्रम देखने मे आता है। परिणामत वे विभ्रम (Delusion) के शिकार हो जाते है और दूसरों को सन्देह की दृष्टि से देखते तथा सोचते है कि उनका ऐसा सोचना पूर्णत उचित है। अभिप्राय यह कि वे अपने विचार को ही प्रधानता देते है। उसमे क्या तथ्य है, इस पर विचार नही करते। वस्तुत उनका चिन्तन पूर्णत भ्रान्तिपूर्ण होता है।

चिन्तन-विधि

हम ऊपर चिन्तन की अशुद्धियां और उसके कारणो का उल्लेख कर चुके है, इसलिये यहाँ यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि हम चिन्तन कैसे करे? चिन्तन करने की विधियों और नियमों को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। लेकिन, यहाँ हम "बोरिंग और लॉंगफील्ड" (Boring and Longfield), प्रभृति विद्वानो के अनुसार कुछ प्रमुख विधियां पर प्रकाश डालना पर्याप्त समझते है।

चिन्तन प्रक्रिया प्रेरणा, समस्या में अभिरुचि, चिन्तनकर्ता की चौकसी (Alertness of thinker), विधियों के व्यवहार की क्षमता तथा बुद्धि पर निर्भर करती है। लेकिन, शुद्ध चिन्तन के लिये यह आवश्यक है कि किसी समस्या को हल करने के लिये समय को निर्धारित नहीं करें। समय निर्धारित कर देने से चिन्तन के लिये पर्याप्त समय नहीं मिलता, किन्तु उचित चिन्तन के लिये अधिक समय का होना आवश्यक है। हाँ, सूखी

समस्या को हल करते समय, समय की पाबन्दी लाभदायक सिद्ध होती है, क्योंकि मनुष्य समय के अन्दर उसे हल करने के लिये अत्यधिक प्रेरित होता है।

शुद्ध चिन्तन के लिये गर्भीकरण (Incubation) भी आवश्यक है। जब किसी समस्या को हल करते-करते कोई परेशान हो जाय और फिर भी उसे सफलता न मिले तो उसके लिये यह जरूरी है कि वह उस समस्या को कुछ देर के लिये स्थगित कर दे। जब कुछ देर बाद वह पुन समस्या को सुलझाना प्रारम्भ करेगा तब चिन्तन प्रक्रिया स्वत समुचित दिशा मे प्रवाहित होगी और उसकी वह समस्या सुलझ जायगी। परन्तु, गर्भीकरण कुछ प्रयत्न के बाद ही सफल होता है। यदि बिना परिश्रम किये हुए कोई मनुष्य किसी काम को स्थगित कर दे तो उसकी सार्थकता भी देखने मे नही आयगी। समस्या को प्रयास करने के बाद, कुछ देर के लिये छोड देना आवश्यक, इसलिये, हो जाता है कि इस व्यवधान मे कई दोषपूर्ण धारणाएँ नष्ट हो जाती है, और उचित निष्कर्ष पर पहुँचने मे विशेष बाधा नही पडती है।

किसी समस्या के उपस्थित होने पर शुद्ध चिन्तन के लिये यह आवश्यक है कि हम उस समस्या के प्रत्येक अग और उसके उपयुक्त सभव निष्कर्षो को अकित करे। तत्पश्चात् सभी अगो और सुझावो का आलोचनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है, क्योकि इससे बहिष्कृत अगों और सुझावो का ज्ञान आसानी से हो जाने के कारण चिन्तन मे किसी प्रकार का दोष नही आता।

चिन्तन करते समय उसे प्रामाणिक मान बैठना बुद्धिमानी नही है। इसलिये चिन्तन-प्रक्रिया की प्रतिपन्नता को तार्किक आधारों पर जाँचना आवश्यक है, क्योकि इससे चिन्तन की शुद्धता का ज्ञान तुरत हो जाता है। यदि तार्किक ज्ञान का अभाव हो तो उस ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। अपने चिन्तन की शुद्धता की परीक्षा उसके समान स्वरूप की अन्य चिन्तन-प्रक्रियाओं की तुलना मे करना हितकर होता है। यदि दूसरी चिन्तन प्रक्रिया शुद्ध है तो अपनी चिन्तन-प्रक्रिया को शुद्ध माना जा सकता है।

लेकिन, इन नियमों को ध्यान मे रखते हुए भी हमे यह नही भूलना होगा कि चिन्तन का मुख्य आधार प्रेरणा है, जिसके अभाव मे शुद्ध चिन्तन असम्भव है। अतएव जब कोई समस्या उपस्थित हो तब उसको हल करने के लिये यह आवश्यक है कि हममे चिन्तन की प्रेरणा अत्यधिक बलवती हो जाय। तभी हम चिन्तन करने मे समर्थ हो सकते है।

चिन्तन-अध्ययन की विधियाँ

चिन्तन प्रक्रिया तथा इसके अन्य पहलुओ के अध्ययन करने की एकमात्र विधि अन्तर्निरीक्षणा है। जब कोई प्रयोक्ता चिन्ता का अध्ययन करता है, तब वह प्राय निर्धारक वृत्ति (Determining tendency), चेतन मनोवृत्ति, प्रतिमा, चिन्तन-प्रक्रिया के अन्य पहलुओं (प्रयत्न और भूल तथा अन्तर्दृष्टि), का ही अध्ययन करता है। किसी व्यक्ति ने किसी समस्या को हल करने मे प्रयत्न और भूल विधि का अनुसरण किया या अन्तर्दृष्टि का, इसको जानने के लिये उसे विभिन्न प्रकार के प्रश्न दिये जाते है। प्रयोज्य उन प्रश्नों को अपने मन मे हल करता है और जिन-जिन

प्रक्रियाओं का वह आश्रय लेता है उन्हे प्रयोक्ता को सूचित करता है। प्रयोक्ता भी उन सूचनाओं को बहुत सावधानी के साथ अंकित करता है, और साथ-साथ उसके बाह्य व्यवहारों का भी निरीक्षण करता है। बाद मे प्रयोग परिणाम तालिका के आधार पर वह यह जानने मे समर्थ होता है कि प्रयोज्य किस विधि से समस्या को हल करने मे समर्थ हो सका। समस्या किसी भी प्रकार की हो सकती है। उसके लिए कोई प्रतिबन्ध नही है कि वह गणित का प्रश्न ही हो और कुछ नही। कभी समय निर्धारित रहता है और कभी समय की विवशता नही रहती। इनमे चिन्तन प्रक्रियाओं पर जितना ध्यान दिया जाता है उतना समस्या की प्रतिपादता या समय की पाबन्दी पर नही दिया जाता। कुशल प्रयोज्य की सूचनाओं से चिन्तन प्रक्रिया पर काफी प्रकाश पड़ता है।

इसी प्रकार चिन्तन मे प्रतिमाओं की सार्थकता का अध्ययन करने के लिए भी प्रयोज्य से तरह तरह के सरल और जटिल प्रश्नो को पूछा जाता है, और वह उनके उत्तर देता है। फिर उससे पूछकर यह अंकित किया जाता है कि उसने चिन्तन के समय किस प्रकार की प्रतिमाओं का अनुभव किया और प्रश्न हल करने मे उनकी उपादेयता क्या थी। इस विधि से चिन्तन मे प्रतिमाओं की सार्थकता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। समस्याएँ कई प्रकार की होती है, किन्तु यहा हम कुछ समस्याओं को उदाहरणार्थ दे देना जरूरी समझते है।

(१) कोई व्यक्ति सवेरे, कही जा रहा है और सूर्य उसकी दाहिनी ओर है तो वह किस दिशा मे जा रहा है?

(२) दो संख्याओं मे से एक संख्या दूसरी से ७ अधिक है। यदि बड़ी संख्या मे से तीन लेकर छोटी मे मिला देते है तो दोनो का योग बराबर होता है। यदि दोनो संख्याओं को जोड़ देते है तो उनका योगफल ३० आता है तो वह संख्या बताओ।

(३) एक कुएँ मे १० हाथ पानी है तब १५ हाथ की रस्सी लगती है। जब उसमे १२ हाथ पानी होगा तो कितनी लम्बी रस्सी की जरूरत पड़ेगी?

(४) एक मनुष्य, बाघ, बकरी और पान के साथ नदी पार करना चाहता है, लेकिन एक बार मे एक ही चीज साथ ले जा सकता है। वह बकरी और बाघ या बकरी और पान को एक साथ नही छोड़ सकता। बताओ वह कैसे पार करेगा?

(५) तीन अक्षरों का एक ऐसा शब्द है जिसे विद्वान बहुत चाहते है। यदि उसका मध्य अक्षर हटा देते है तो उससे जो शब्द बनता है वह न्यूनता का द्योतक है। यदि अन्तिम अक्षर को पहले और दूसरे के बीच मे रख देते है, तो वह एक पुष्प बन जाता है। बताओ वह शब्द कौन सा है?

चिन्तन प्रक्रियाओं और उसमे सन्निहित प्रतिमाओं का अध्ययन करने के लिये इसी प्रकार अनेक प्रश्न बनाये जा सकते है।

चिंतन मे उर्ज़बर्ग मनोवैज्ञानिको की सबसे महत्त्वपूर्ण देन इसी अर्थ मे है कि उन्होने सर्वप्रथम चिंतन का प्रयोगात्मक अध्ययन किया। उसके पहले लोगों की धारणा थी कि चिन्तन का प्रयोगात्मक अध्ययन सम्भव नही है। परन्तु उन मनोवैज्ञानिकों ने अन्तर्निरीक्षण विधि के सहारे चिंतन का अध्ययन कर इस धारणा को असत्य सिद्ध किया। चिंतन के अध्ययन मे अन्तर्निरीक्षण विधि आज भी काफी महत्त्वपूर्ण है।

लेकिन, अन्तर्निरीक्षण-विधि की सहज कमजोरियो से हम अपरिचित नहीं है। यही कारण है कि सबसे कम और निष्कर्षपूर्ण प्रयोग चिंतन से ही सबन्धित है। यह विधि केवल सामान्य वयस्को पर ही लागू हो सकती है। परन्तु, आज हम जानते हैं कि बच्चे और जानवर भी चिंतन करते है, जिनकी चिंतन प्रक्रिया का अध्ययन अन्तर्निरीक्षण के सहारे सभव नही है। चिंतन पर अचेतन पहलुओं का भी प्रभाव पडता हे, लेकिन वे अग चेतना से अस्वीकृत रहते है, इसलिए प्रयोज्य उन्हे अपने अन्तर्निरीक्षण मे अभिव्यक्त नही कर पाता। इस तरह, कई महत्त्वपूर्ण सार्थक अग तिरस्कृत रह जाते है। साथ ही, जो कुछ प्रदत्त इस विधि से प्राप्त होते है उनकी सत्यता की जाँच नही की जा सकती, लेकिन वैज्ञानिक परिणाम के लिए प्रदत्तों की जाँच आवश्यक है। अतिरिक्त इसके, भाषा और चिंतन पर विचार करते समय हम देख चुके है कि भाषा को हम चिंतन का प्रतिरूपक नहीं मान सकते। दूसरे शब्दो मे, हम जो चिंतन करे, उसे ही भाषा द्वारा व्यक्त करे, यह जरूरी नही है। ऐसी स्थिति मे अन्तर्निरीक्षण द्वारा चिंतन का अध्ययन करना काम चलाऊ ही कहा जायगा। अब बाह्य निरीक्षण तथा विद्युत विधि, आदि के सहारे भी चिंतन का अध्ययन होने लगा है। फलस्वरूप जानवरों तथा बच्चो पर भी चिंतन के कई प्रयोग हुए है। पीछे प्रयोगों की चर्चा करते समय उन विभिन्न विधियों का यथास्थान उल्लेख किया गया है। फिर भी, अभीतक कोई ऐसी सतोषप्रद चिंतन अध्ययन की विधि प्रकाश मे नही आ पाई है जो चिंतन मे आन्तरिक और बाह्य पहलुओं का समन्वित चित्र उपस्थित कर सके। लेकिन, ऐसी आशा है कि मनोवैज्ञानिको का लगनपूर्ण प्रयत्न कोई ऐसी विधि ढूँढ निकालेगा।

चिन्तन-सिद्धान्त

शारीरिक दृष्टिकोण के आधार पर चिन्तन के दो सिद्धान्त हे। पहला सिद्धान्त प्राचीन है और केन्द्रीय सिद्धान्त (Central theory) के नाम से प्रसिद्ध है। इस सिद्धान्त के अनुसार चिन्तन, कल्पना, आदि मस्तिष्क की प्रक्रियाओं पर पूर्णत निर्भर करती है, क्योकि इनमे अन्य प्रकार की शारीरिक क्रियाओं का पूर्णत अभाव रहता है। अत चिन्तन के समय मस्तिष्क की ही क्रियाएँ होती है, अन्य शारीरिक क्रियाएँ नही। किन्तु, इस केन्द्रीय सिद्धान्त के पक्ष मे प्रयोगात्मक प्रमाणो का अभाव है।

चिन्तन का दूसरा सिद्धान्त बाह्यांश या क्रियात्मक सिद्धान्त (Peripheral or motor theory) है, जिसके अनुसार चिन्तन के समय मस्तिष्क की क्रियाओं के अतिरिक्त अन्य शारीरिक क्रियाएँ भी होती है। अत चिंतन को मस्तिष्क की क्रियाओं का उतना ही श्रेय प्राप्त है जितना अन्य शारीरिक क्रियाओं का। यह चिन्तन का नवीन सिद्धान्त है, जिसका जन्मदाता व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक वाटसन है। इसके पक्ष में अनेक प्रयोगात्मक प्रमाण उपस्थित किये गये है। किन्तु, इस सिद्धान्त की भी दो उपशाखाएँ है। एक के अनुसार, जिसका प्रतिपादक वाटसन है, चिंतन के समय स्वरयत्र (Larynx) में ही क्रियाएँ होती है। इसीलिये उसने चिंतन को मन्द सभाषण (Silent speech) कहा है। उसने इसी पक्ष को पुष्ट करने के लिये भाषा और चिंतन को अभिन्न माना है। दूसरे उपसिद्धात के अनुसार, चिंतन के समय मात्र स्वरयत्र मे ही क्रियाएँ नही होतीं, बल्कि अन्य शारीरिक क्रियाएँ भी होती है, यथा, गला, वक्षस्थल, आदि की क्रियाएँ। क्रियात्मक

सिद्धात मे यही सिद्धात विशेषरूपेण प्रशस्त है। इस पक्ष को पुष्ट करने के लिये प्रारम्भ मे जो प्रयोग किये गये उनके परिणामो मे एकरूपता नही है, क्योकि कोई प्रयोग अन्य शारीरिक क्रियाओं को प्रमाणित करता तो कोई ऐसा करने मे पूर्णत असमर्थ है। सभवत प्रयोग-परिणामो की इस भिन्नता का कारण सूक्ष्म यत्रो की कमी और प्रयोगावस्था मे एकरूपता का अभाव है, अन्यथा परिणाम मे यह भिन्नता परिलक्षित नही होती।

एक प्रयोग मे एक रबर बल्ब को मुह के अग्रभाग मे दाँत और जीभ के मध्य इस प्रकार व्यवस्थित किया गया कि जीभ की किसी प्रकार की गति भी ग्राफ के रूप मे अकित हो सके। चितन करने और न करने की अवस्थाओ के ग्राफचित्र तैयार किये गये, जिनके आधार पर प्रयोक्ताओं का यह निष्कर्ष हुआ कि चिन्तन के समय जीभ मे अव्यक्त गति (Implicit movement) होती है। किन्तु, यह निष्कर्ष पूर्णत मान्य नही है, क्योकि यत्र इस प्रकार व्यवस्थित किया गया था कि वह श्वासगति और निगलने की क्रियाओं से भी प्रभावित होता था। अत इस प्रयोग के सम्बन्ध मे यह कहना असम्भव है कि वह जीभ की गति का ग्राफचित्र था या अन्य क्रियाओ का।

दूसरे प्रयोग मे, जिसमे कि चिन्तन और भाषण के समय जीभ और ओठ की गति को धूम्र पत्र (Smoked paper) पर ग्राफरूप मे अकित करने की व्यवस्था थी, दोनों अवस्थाओं मे (अर्थात् चिन्तन और बोलने के समय) ओठ और जीभ की गतियो को अकित किया गया। उन ग्राफ चित्रो के अध्ययन से यह स्पष्ट था कि जब प्रयोज्य कुछ सोच रहा था और उसी को बोल रहा था, तब इन दोनो अवस्थाओ के ग्राफ चित्रो मे अन्तर था। परन्तु, इसके अतिरिक्त कई अवसरो पर चिन्तन के समय जीभ और ओठ मे किसी प्रकार की गति का कोई प्रमाण नही मिला। इससे प्रयोक्ताओ ने यह निष्कर्ष निकाला कि चिन्तन के लिये जीभ और ओठ की क्रियाएँ आवश्यक नही है। किन्तु, इस निष्कर्ष के सम्बन्ध मे आलोचनास्वरूप यह कहा जा सकता है कि गति को अकित करनेवाले यत्र इतने सूक्ष्म नही थे कि जीभ और ओठ की अव्यक्त गति को भी अकित कर सके। अतएव यत्रो के इस दोष के रहते हुए उपर्युक्त निष्कर्ष पूर्णत मान्य नही हो सकता।

वर्त्तमान मे अन्वेषको ने अव्यक्त स्नायविक गतियो को अकित करने के लिये वैद्युतिक विधि (Electrical method) का व्यवहार किया है जिसके द्वारा चिन्तन की सहभावी प्रक्रियाओ पर काफी प्रकाश पड़ा है। चिन्तन के क्रियात्मक सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिये जेकबसन (Jacobson) ने सन् १९३२ ई० मे बीस प्रयोज्यो पर प्रयोग किया। उसके प्रयोग का एकमात्र ध्येय यह जानना था कि चिन्तन के समय नाड़ी पशी मडल (Neuro muscular system) मे किसी प्रकार की क्रिया होती है कि नही। सभी प्रयोज्यों की दाहिनी बाहु मे विद्युन्मार्ग या इलेक्ट्रोड (Electrode) को रख कर उन्हे दाहिनी बाहु को झुकाने की कल्पना करने को कहा गया। कल्पना के समय यत्र द्वारा सभी प्रयोज्यो में पेशी सकोचन (Muscle contraction) का व्यापार पाया गया। धारामापक यत्र (Galvanometer) मे भी विक्षेपगमन (Deflection) या 'नीचे के झुकाव' का व्यापार देखा गया। किन्तु, जब उन्ही प्रयोज्यो को बायी बाहु को झुकाने की कल्पना करने को कहा गया तब यत्र मे विक्षेपगमन का व्यापार नही देखा गया। इससे यह विदित होता है कि कल्पना के समय अव्यक्त पशी-क्रियाएँ अवश्य मौजूद रहती हैं।

किन्तु, उपर्युक्त प्रयोग-परिणाम इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये विवश नही करता कि कल्पना पेशी क्रिया के बिना नही हो सकती। शाब्दिक चिन्तन (Verbal thinking) के समय जब विद्युन्मार्ग का सबन्ध ओठ और जीभ से स्थापित किया गया तब भी यन्त्र मे विमार्गगमन (Deflection) का व्यापार मौजूद था। अत अपने उपर्युक्त प्रयोगों के आधार पर जैकबसन (Jacobson) का कहना है कि कल्पना और चिन्तन के समय अव्यक्त पेशी-क्रियाएँ होती है और उनका होना भी नितान्त आवश्यक है, क्योंकि स्नायविक क्रियाएँ उपर्युक्त मानसिक प्रक्रियाओ के आवश्यक अग है। उसने प्रयोगों के आधार पर दृष्टि-कल्पना के समय आँखों की अव्यक्त गति को भी प्रमाणित किया है।

इस दिशा मे दूसरा प्रयोग मैक्स (Max) ने सन् १९३९ ई० मे गूँगे और सामान्य प्रयोज्यों पर किया। उसका कहना है कि चिन्तन और कल्पना के समय स्नायुओं मे उत्तेजना प्रदायक धारा (Action current) विद्यमान रहने पर चिंतन का क्रियात्मक सिद्धात (Peripheral theory) सत्य प्रमाणित होता है। इसके अतिरिक्त, सुप्तावस्था में इस धारा के अभाव और स्वप्नावस्था म उपस्थिति से भी उपर्युक्त सिद्धात सत्य प्रमाणित होगा। कारण, स्वप्न भी कल्पना का ही एक प्रकार है जिसमे मनुष्य कुछ अशों मे चेतनावस्था मे रहता है। अत उसने उत्तेजना प्रदायक धारा का विवरण जाग्रत और सुप्तावस्था तथा स्वप्नावस्था और स्वप्नहीनावस्था मे अकित किया। उसके एक प्रयोग मे जब प्रयोज्यों को सोने के लिये कहा गया तब कुछ समय तक उनमे विद्युतधारा क्रिया को अकित किया जा सका, किन्तु जब वे पूर्णत शिथिल हो गये तब इस धारा मे बहुत ही कमी पड गयी, या इसकी क्रिया एकदम लुप्त हो गयी। गम्भीर निद्रावस्था मे कुछ प्रयोज्यों मे यह क्रिया नही देखी गयी, किन्तु कुछ मे यह थोडे अशों मे स्वप्न रहने पर भी विद्यमान थी।

जिस समय प्रयोज्य गम्भीर निद्रा मे थे, उस समय उनमे विद्युतधारा क्रिया का पूर्णत अभाव था। किन्तु, जिनमे यह क्रिया पायी गयी, उनसे पूछने पर मालूम हुआ कि वे स्वप्न देख रहे थे। नियन्त्रित सामान्य प्रयोज्यों मे हाथ और पैर मे विद्युतधारा की क्रिया नही पायी गयी। इसका अभिप्राय यह है कि बहरे और गूँगे व्यक्ति हाथ और पैर से अपनी भाषा को व्यक्त करते है। इसीलिये उनके इन हिस्सों मे स्वप्न के समय उत्तेजना-प्रदायक धारा (Action current) देखी जाती है, किन्तु सामान्य व्यक्तियो के इन हिस्सों मे यह क्रिया नही पायी जाती।

उपर्युक्त दोनों प्रयोक्ताओं के प्रयोगों पर विचार करने से मालूम होगा कि अपने प्रयोगों के आधार पर जैकबसन का यह निष्कर्ष है कि स्नायविक क्रियाएँ चिन्तन के आवश्यक अग है। मैक्स (Max) का प्रयोग प्रमाणित करता है कि स्वप्नरहित निद्रावस्था मे विद्युतधारा का अभाव या उसमे बहुत कमी रहती है। किन्तु, स्वप्न के समय उस क्रिया मे अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। जब गूँगे बहरे व्यक्ति स्वप्न देख रहे थे, तब उनके बाहु मे ही धारा-क्रिया देखी गयी, अन्य अगों मे नही। किन्तु, सामान्य व्यक्तियों मे शरीर के इस भाग के स्नायुओं मे यह क्रिया नही पायी गयी। चिन्तन के क्रियात्मक सिद्धान्त के अनुसार चिन्तन के समय बहरे गूँगे व्यक्तियों की उँगलियों में क्रिया का होना उसी प्रकार अनिवार्य है, जिस प्रकार सामान्य व्यक्तियों के चिंतन के समय उनके

स्वरयन्त्र (Larynx) की क्रिया का होना आवश्यक है। अत जैकब्सन और मैक्स के प्रयोग परिणाम क्रियात्मक सिद्धान्त के पूर्णत अनुकूल है। किन्तु, इससे यह समझना पक्षपात रहित नही है कि उपर्युक्त अन्वेषको के प्रयोग क्रियात्मक सिद्धान्त को सर्वाशत प्रतिपादित करते है। यद्यपि उन प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि चिन्तन के समय शरीर के अन्य अगों के स्नायुओं मे भी क्रियाएँ होती है, तथापि अभी तक यह प्रमाणित करना बाकी है कि स्नायविक क्रियाएँ सभी चिन्तन के लिये आवश्यक है। यह सिद्ध किये बिना क्रियात्मक सिद्धान्त को सर्वागसुन्दर नही माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यद्यपि उपर्युक्त अन्वेषकों ने अपने प्रयोगों द्वारा चिन्तन के समय विभिन्न शारीरिक क्रियाओ को प्रमाणित कर चिन्तन के क्रियात्मक सिद्धान्त को पुष्ट करने का प्रयास किया है, तथापि वे केन्द्रीय सिद्धान्त (Central theory) को खण्डित करने मे असमर्थ रहे है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, केन्द्रीय सिद्धान्त के अनुसार चिन्तन के समय मस्तिष्क क्रियाएँ ही पाई जाती है, अन्य शारीरिक क्रियाएँ नही। इसलिये इस सिद्धान्त के पक्ष या विपक्ष मे कुछ कहना यदि असभव नही तो अभी कठिन अवश्य है, क्योंकि मस्तिष्क की क्रियाओं का भी ज्ञान किसी अन्य शारीरिक क्रिया के ही द्वारा हो सकता है। ऐसी अवस्था मे इस सिद्धान्त को पूर्णत खण्डित करना असभव है।

बारहवाँ अध्याय

बुद्धि (Intelligence)

बुद्धि का स्वरूप

मनोविज्ञान को ख्याति प्राप्त कराने मे सबसे अधिक योगदान 'बुद्धि' का ही है। बुद्धि मापन मे लोगों की रुचि काफी रहती है। परन्तु, आश्चर्य की बात है कि बुद्धि-मापन उस समय प्रारम्भ हुआ जब मनोवैज्ञानिको को यह भी मालूम न था कि बुद्धि क्या है, इसका स्वरूप क्या है, या इसका निर्माण किन-किन तत्त्वों से होता है? बाद मे बुद्धि के विभिन्न पहलुओं पर जब अनेकों प्रयोग तथा अनुसधान हो रहे थे तब उस समय किसी ने एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक से पूछा 'बुद्धि से आप क्या समझते है?' उसका समुचित उत्तर देने मे असमर्थ होते हुए उसने कहा' बुद्धि वह है जिसे हम बुद्धि परीक्षणों के द्वारा मापते है'।[1] लेकिन, सवाल है, आखिर बुद्धि-परीक्षण द्वारा मापन किसका होता है? इस सम्बन्ध मे यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि बुद्धि कोई वस्तु या पदार्थ नहीं है। बुद्धि परीक्षणों के द्वारा हम बौद्धिक व्यवहारों (Intelligent behaviours) का मापन करते है। बौद्धिक व्यवहार एक मानसिक प्रक्रिया (Process) के द्योतक है। उन व्यवहारों की अपनी कुछ विशेषताएँ होती है। यहाँ उन मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कर देना अपेक्षित है।

बौद्धिक व्यवहारो की विशेषताएँ

सावधानी सावधानी बुद्धिमान व्यक्तियो की एक प्रमुख विशेषता है। जो व्यक्ति जितना ही बुद्धिमान होता है, वह उतना ही सतर्क भी रहता है। बुद्धिमान व्यक्तियों में ज्ञानात्मक क्षमता (Sensory capacity) अधिक होती है। वे ऐसी उत्तेजनाओं से प्रभावित होते है जो निम्नकोटि के मनुष्यों मे किसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न करने में असमर्थ रहती है। यही कारण है कि शुरू मे बनाए गए बुद्धि परीक्षणों को मानसिक सतर्कता-परीक्षण (Mental alertness test) कहा जाता था।

समन्वय और धारणा (Assimilation & retention) प्रत्येक व्यक्ति को तरह तरह के अनुभव होते रहते है। लेकिन, सभी किसी खास समय में व्यक्तिगत अनुभव का उपयोग समान मात्रा मे नही कर पाते। जो व्यक्ति जितना ही अधिक बुद्धिमान होता है वह अपने अनुभव से उतना ही लाभ उठाता है। अनुभवों के समन्वय से वह नई-नई तरह की वस्तु और विचारों की रचना करता है। साथ ही, किसी अनुभव की याद भी उसे अधिक समय तक रहती है। दूसरे शब्दों मे, किसी अनुभव को वह अपेक्षाकृत अधिक समय तक धारण करता है। ब्रॉन्टेमार्क (Brontemarke) के अध्ययन से सिद्ध है कि स्मरण विस्तार (Memory span) सामान्य बुद्धि का द्योतक है। लूट्टि (Louttit) तथा बकिंघम (Buckingham) ने भी अपने प्रयोगों द्वारा यह बतलाया है कि बुद्धि तथा

1 'Intelligence is that which we measure by the intelligence test"

धारणा के बीच पर्याप्त धनात्मक अनुबन्ध (Positive correlation) है। सामान्य दैनिक जीवन मे भी हम किसी परिस्थिति मे शीघ्र अभियोजित होने वाले व्यक्ति को बुद्धिमान कहते है। उसके अभियोजन का कारण उसके गत अनुभवों की धारणा और समन्वय है।

(ग) विचारो की सक्रिय कुशलता (Active manipulation of ideas) बौद्धिक व्यवहार की एक निशानी विचारक्षमता भी है। जो व्यक्ति किसी घटना या व्यक्ति के सम्बन्ध मे जितना ही अधिक सोचता है, वह उतना ही बुद्धिमान समझा जाता है। किसी विषय या वस्तु पर सोचने के लिए यह जरूरी नही कि वह उसके सामने हो। तरह तरह के अनुसधान कार्य मे इसी तरह के प्रतीकात्मक चिंतन का हाथ रहता है। इस तरह से सोचने पर किसी समस्या की सूझ भी आसानी से मिलती है।

(घ) आत्म आलोचना (Self criticism) आत्म आलोचना का अर्थ है, अपने गुण-दोषों का विवेचन करना। जो व्यक्ति अपने गुण-दोष, आवश्यकता और शक्ति को जितना अधिक समझता है, वह उतना ही बुद्धिमान समझा जाता है। वह अपनी त्रुटियों को समझता है, इसलिये उनसे असतुष्ट हो उन्हे परिमार्जित और सशोधित करने की चेष्टा करता है। दूसरी ओर, दुर्बल बुद्धि का व्यक्ति अच्छा या बुरा जो भी करता है उसी से पूर्णत सतुष्ट हो जाता है।

(ङ) आत्मविश्वास (Self confidence) बुद्धिमान व्यक्ति मे भरपूर आत्म विश्वास रहता है। वह अपनी योग्यता को जानता है और उसमे विश्वास कर निर्भीकता के साथ किसी कठिनाई का सामना करता है। वह द्विविधा मे पड़कर कमजोरी का अनुभव नही करता। अत आत्मविश्वास के आधार पर भी किसी व्यक्ति की बुद्धि के सम्बन्ध म भविष्यवाणी की जाती है।

(च) प्रबल प्रेरणा (Strong motivation) किसी काम को शुरू करने के पीछे बुद्धिमान व्यक्ति मे प्रबल प्रेरणा रहती है। जब वह कोई काम शुरू करता है, तो इसी प्रेरणा के कारण तन्मय होकर उसे पूरा करता है। साथ ही, किसी परिस्थिति मे समस्या को ठीक से शीघ्र समझने के कारण, अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा बुद्धिमान व्यक्ति अधिक प्रेरित होता है।

परिभाषाओं की विवेचना

बुद्धि की इन उपर्युक्त विशेषताओं को ध्यान म रखते हुए इसकी विभिन्न प्रतिपादित परिभाषाओं की विवेचना आसानी स की जा सकती है। बुद्धि की विभिन्न परिभाषाओं को, फ्रीमेन (Freeman) के अनुसार, चार समूहों मे बाँटा जा सकता है। वे परिभाषाएँ, (१) जो अभियोजन (Adjustment) पर जोर देती है, (२) जो शिक्षण (Learning) पर जोर देती है, (३) जो अमूर्त्त चिन्तन (Abstract thinking) पर जोर देती है, और (४) जो विस्तृत और व्यापक (Comprehensive & global) है।

पहली श्रेणी की परिभाषाएँ विलियम स्टर्न (W Stern) के अनुसार "नई परिस्थिति में अभियोजित करने की योग्यता ही बुद्धि है।"[1] वेल्स (Wells) के

---

१ 'Intelligence is the ability to adjust oneself to a new situation '

अनुसार "बुद्धि वह शक्ति है जिसके द्वारा हम अभिनव परिस्थिति मे अपने को सुचारु रूप से अभियोजित करने के लिये अपने व्यवहार सघात का पुनर्निर्माण करते हैं।"[१] बर्ट (Burt) भी अप्रत्यक्षतया बुद्धि को अभियोजन-योग्यता ही स्वीकार करता है। किन्तु, वस्तुत इन परिभाषाओ से बुद्धि के पूरे स्वरूप पर प्रकाश नही पडता। सभी मे केवल इतना ही व्यक्त किया गया है कि बुद्धि की उपादेयता क्या है। इसके अतिरिक्त, हम यह जानते हैं कि अभियोजनक्षमता शिक्षण के द्वारा बढाई जा सकती है। किन्तु, बुद्धि पर शिक्षण का प्रभाव नही पडता, क्योंकि बुद्धि का सम्बन्ध अर्जित (acquired) गुणों से नही, अपितु जन्मजात (inborn) विशेषताओ से है। साथ ही, हम यह भी जानते है कि अभियोजन करने मे पूरी बुद्धि प्रदर्शित नही होती। अत बुद्धि तथा अभियोजनशीलता को अभिन्न (Identical) मानना गलत है।

दूसरी श्रेणी की परिभाषाएँ दूसरे समूह की परिभाषाओं मे हम इबिंगहाँस थार्नडाइक, आदि की परिभाषाओं को रख सकते है। इन विद्वानों ने "गत अनुभव से लाभान्वित होने या शिक्षण योग्यता को ही बुद्धि माना है।"[२] किन्तु, ऐसी परिभाषाएँ भी मान्य नही हो सकती। बुद्धि ही एक ऐसा अग नही है जिस पर शिक्षण निर्भर करता है। शिक्षण को प्रभावित करने वाले और भी कई अग हैं, अतएव शिक्षण और बुद्धि को एक नही माना जा सकता। थॉनडाइक ने साहचर्य तथा अन्य मानसिक योग्यताओं पर प्रयोग करके साहचर्य अथवा सम्बन्ध स्थापन की योग्यता को ही बुद्धि माना। ऐसा कह कर उसने बुद्धि और शिक्षण को एक ही माना है। लेकिन, सम्बन्ध स्थापन की योग्यता मानसिक दुर्बल (mentally deficient) व्यक्तियों मे भी पायी जाती है। अगर बुद्धि ही साहचर्य स्थापन की योग्यता होती तो मानसिक दुर्बल व्यक्तियो मे इसका सर्वथा अभाव होता।

तीसरी श्रेणी की परिभाषाएँ सन् १९२१ ई० मे टरमन (Terman) ने बुद्धि की परिभाषा देते हुए कहा कि "अमूर्त्त चिन्तन की योग्यता ही बुद्धि है[३]।" इस सम्बन्ध मे उसका कहना है कि जो मनुष्य जितना अधिक अमूर्त्त चिन्तन करता है, वह उतना ही बुद्धिमान होता है। अर्थात्, बुद्धि और अमूर्त्त चिन्तन मे सीधा सम्बन्ध है। लेकिन, इस परिभाषा की त्रुटियाँ स्पष्ट है। अमूर्त्त चिन्तन बुद्धि का एक अग हो सकता है, सर्वस्व नही।

चौथी श्रेणी की परिभाषाएँ चौथे समूह की परिभाषाओं को भुवीय (Global) कहते हैं, क्योंकि इन परिभाषाओं ने बुद्धि के विभिन्न अगो को अपने अन्तर्गत समेटने की चेष्टा की है। अर्थात्, ये परिभाषाएँ बुद्धि के किसी एक अग पर नही, बल्कि उसके विभिन्न अगों के समन्वय पर जोर देती है। वेश्लर (Wechsler), स्टोडार्ट (Stodart), आदि की परिभाषाएँ इसी समूह मे आती है। सन् १९४४ ई० मे वेश्लर ने बुद्धि की परिभाषा देते हुए लिखा "बुद्धि व्यक्ति की शक्तियों का वह समुच्चय है जो उसके ध्येयात्मक क्रिया, विवेकशील

१ "Intelligence is the property of recombining our behaviour pattern as to act better in novel situation"

२ Intelligence is the ability to learn or to profit by past experiences

३ 'Intelligence is ability to think abstractly'

चिन्तन और वातावरण मे प्रभावपूर्ण अभियोजन करने म सहायक सिद्ध होता है।"[1] बुद्धि ध्रुवीय इसलिए है कि इसका प्रभाव मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार पर पडता है। यह समुच्चय, इसलिय है चूँकि बुद्धि को लोग बहुत सी छोटी छोटी क्षमताओ का योगफल मानते है। वे क्षमताएँ एक दूसरे से पूर्णतया स्वतन्त्र नही, वरन् परस्पर सम्बन्धित (Inter related) है। फिर भी, अनेक विधियो द्वारा इन क्षमताओं को एक दूसरे से अलग किया जा सकता है। इस स्थान पर यह स्पष्ट कर देना उचित है कि बुद्धि की रचना नि सन्देह बहुत छोटी छोटी क्षमताओं से हुई है। किन्तु, बुद्धि उनका योगफल नही है, बल्कि उनके योग से भिन्न और विशिष्ट है।

इन चारा समूह की परिभाषाओ के अतिरिक्त, कुछ अन्य परिभाषाएँ भी है, जिनमे स्पीयरमैन (Spearman) और मन (Munn) की परिभाषाएँ उल्लेखनीय है। बुद्धि के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए स्पीयरमेन ने इसकी तीन विशेषताओ को व्यक्त किया है। उसका कहना है कि जो व्यक्ति बुद्धिमान होता है (क) वह अपनी मानसिक प्रक्रियाओ का अन्तर्निरीक्षण करने मे समर्थ होता है। (ख) उसमे अपने मनोतत्त्वो (Mental fundaments) के पारस्परिक सम्बन्धो को जानने की योग्यता होती है और (ग) वह उन सम्बन्धो को जानकर मनोतत्त्व के पारस्परिक सम्बन्धो को अन्य प्रकार के सम्बन्धो से भी अलग करने मे समर्थ होता है। उसके अनुसार, "बुद्धि वह योग्यता है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी मानसिक प्रक्रियाओ का अन्तर्निरीक्षण करके मनोतत्त्वो के पारस्परिक सम्बन्धो को जानने मे समर्थ होता है और उन सम्बन्धो को जानकर पुन उनमे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करता है।" यद्यपि इस परिभाषा की पुष्टि लेशले (Lashley) तथा जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिको ने की है, लेकिन इसमे कुछ ऐसी त्रुटियाँ है जिनके कारण यह अधिक व्यक्तिगत मालूम होती है। बुद्धि जैसे संख्यात्मक व्यापार (Quantitative phenomenon) की एसी आत्मगत व्याख्या समुचित नही प्रतीत होती।

मन (Munn) ने इसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए एक बहुत ही अस्पष्ट परिभाषा का आश्रय लिया है। उसने सन् १९४६ ई० म लिखा, "बुद्धि प्रतीकात्मक प्रक्रियाओं के व्यवहार मे लोचकता अथवा बहुरूपता है।"[2] मन की इस परिभाषा मे भड़कीले शब्दों के अतिरिक्त और कुछ नही है। अत इसस बुद्धि क स्वरूप पर स्पष्ट प्रकाश नही पड़ता।

परिभाषा सम्बन्धी इतनी बातो पर विचार करने के पश्चात् हम आसानी स कह सकते है कि बुद्धि की अधिकाश परिभाषाएँ आंशिक है। वेश्लर की परिभाषा द्वारा बुद्धि के काफी अगों पर प्रकाश पडता है। अत वेश्लर की परिभाषा अपेक्षाकृत अधिक मान्य है।

बुद्धि के सिद्धान्त

बुद्धि के स्वरूप को स्पष्ट करने के सिलसिले म मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के चार प्रकार के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। यहाँ उन्ही सिद्धान्तो का संक्षेप मे विवेचनात्मक उल्लेख किया जायगा।

---

१ 'Intelligence is the aggregate or global capacity of an individual to act purposefully, to think rationally and to deal effectively with his environment.'

२ 'Intelligence is the flexibility or versatility in the use of symobolic processes."

(१) एक शक्ति-सिद्धान्त (Monarchic theory) एक शक्ति-सिद्धान्त का मुख्य साराश यह है कि बुद्धि एक एसी शक्ति या योग्यता है जो व्यक्ति के सभी प्रकार के मानसिक अथवा बौद्धिक कार्यो को प्रभावित करती है। इसके अनुसार, जो मनुष्य बुद्धिमान होता है, वह जीवन के सभी क्षेत्रों मे अपनी कुशलता का परिचय देता है। यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति विज्ञान मे निपुण हो, तो राजनीति, साहित्य, दर्शन, कला, आदि विषयों मे भी कुशल हो सकता है। इस सिद्धान्त के पक्ष मे मनोवैज्ञानिकों ने प्रतिभाशाली (Versatile genius) और मन्दबुद्धि व्यक्तियो का उदाहरण उपस्थित किया है। उनका कहना है कि यदि बुद्धि एकमात्र शक्ति न होती तो प्रतिभाशाली व्यक्ति सभी कार्यो मे समान रूप मे योग्य कैसे सिद्ध होता ? इसी प्रकार, जो मन्दबुद्धि का होता है वह सिर्फ किसी कार्य विशेष मे ही अपनी अपटुता वा असमर्थता प्रदर्शित नही करता, बल्कि सभी कार्यों मे वह अपटु बना रहता है। जिस प्रकार वह गणित के प्रश्नो को हल करने मे असमर्थ रहता है उसी प्रकार साहित्य, इतिहास या भूगोल के प्रश्नो को भी हल करने मे असमर्थ रहता है। अतएव प्रतिभाशाली और मन्दबुद्धि व्यक्तियो के कार्य इस बात के साक्षी है कि बुद्धि एक ही है जो सभी मानसिक कार्यो मे सन्निहित रहती है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादको मे विक्टोरिया हजलिट (Victoria Hazlitt) का नाम विशेपरूपण उल्लेखनीय है। उसका कहना है कि बुद्धि एक ऐसी सामान्य (General) योग्यता है जो सभी विशिष्ट (Specific) कुशलताओ को निर्धारित करती है। इसलिए किसी व्यक्ति की किसी खास विषय की निपुणता, इस सामान्य बुद्धि तथा उस दिशा की ट्रेनिंग पर निर्भर करती है। साहित्य या गणित की निपुणता, इस सिद्धान्त के अनुसार, इसी बुद्धि और प्रशिक्षण (Training) पर निर्भर करती है, अन्य किसी प्रकार की योग्यता पर नही।

यद्यपि इस सिद्धान्त के अनुयायियों ने इसके पक्ष मे कई प्रमाण देने की चेष्टा की है, तथापि यह सिद्धान्त मान्य नही है। यदि विचार करे तो मालूम होगा कि विश्व म ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों की कमी नही जो वस्तुत जीवन के कई क्षेत्रो मे अपनी योग्यता का परिचय देते है, किन्तु वे ही एकाध दिशा मे बहुत प्रशिक्षण के बाद भी अपनी प्रतिभा का परिचय नही दे पाते। डार्विन अवश्य ही एक प्रतिभाशाली व्यक्ति था, परन्तु उसकी लिखावट बहुत ही खराब थी। इसी प्रकार, कई एसे व्यक्ति होते है जो किसी खास पहलू मे बिना विशेष शिक्षण या ट्रेनिग के भी बहुत सफल हो जाते है। यदि बुद्धि का यह सिद्धान्त सही होता तो उसे सभी पहलुओ में समान रूप से सफल होना चाहिए था, किन्तु ऐसा नही होता। अत यह बुद्धि की व्याख्या नही कर पाता।

(२) सीमित शक्ति सिद्धान्त (Oligarchic theory) बिने का कहना है कि बुद्धि मे कई शक्तियाँ सम्मिलित है। उसके अनुसार बुद्धि विभिन्न असम्बद्ध योग्यताओं का समुच्चय मात्र है। इस समुच्चय मे सन्निहित योग्यताओं मे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है। वे एक दूसरे से पूर्णत भिन्न है। इस तरह जितनी भी निश्चित शक्तियाँ या योग्यताएँ (स्मरण, कल्पना, ध्यान, आदि) इसमे सन्निहित है, वे एक दूसरे से पूर्णत स्वतन्त्र है। उसने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन विभिन्न मानसिक परीक्षण-प्राप्तांकों (Mental test scores) के आधार पर किया है।

किंतु, उसे अपने इस सिद्धात मे सफलता नही मिल सकी है। मानसिक शक्तियो पर किये गये प्रयोगों से पता चलता है कि मानसिक शक्तियाँ एक दूसरे से पूर्णत भिन्न नही, अपितु अन्योन्याश्रयी (Interdependent) है। इसके अतिरिक्त भी, इस सिद्धात मे और कई त्रुटियाँ है जिनके कारण यह सिद्धात मान्य नही है।

(३) बहुशक्ति सिद्धान्त (Multifactor or Anarchic theory) बहुशक्ति सिद्धात के प्रतिपादको मे थार्नडाइक का नाम सर्व प्रमुख है। थार्नडाइक के अनुसार बहुत से अनिश्चित स्वतत्र बीजतत्त्वा के सम्मिश्रण से विभिन्न मानसिक शक्तियो का आविर्भाव होता है। उन सम्मिश्रित बीजतत्त्वो मे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है, बल्कि वे एक दूसरे से स्वतन्त्र है और उन्ही का मध्यमान (Mean) बुद्धि को जन्म देता है। उसका कहना है कि न तो शक्ति एक योग्यता है और न यह कुछ निश्चित योग्यताओं का सम्मिश्रण है, बल्कि यह बहुसख्यक बीजतत्त्वा के समुच्चय का मध्यमान (Mean) है। सभी शक्तियाँ अपने अपने कार्यो का प्रदर्शन अपने अनुसार करती है। इस तरह, थार्नडाइक उतनी शक्तियो को मानता है जितनी कि क्रियाए है। चूंकि कोई भी योग्यता विभिन्न बीजतत्त्वों का मध्यमान होती है, इसलिए उनमे एक निश्चित इकाई उभयनिष्ठ रहती है। उभयनिष्ठ निश्चित इकाई के कारण कई तरह की योग्यताओ का परीक्षण करने पर विभिन्न योग्यताओं मे पारस्परिक सबध या अनुबन्ध दृष्टिगोचर होता है। इसके अनुसार, कोई भी परीक्षण किसी निश्चित योग्यता का नही मापता है बल्कि व्यक्ति के मध्यमान अथवा सामान्य योग्यता को ही व्यक्त करता है। कई मनोवैज्ञानिको ने इस सिद्धात का समर्थन किया है, किंतु स्पीयरमैन (Spearman) इस मे सहमत नही है। उसका कहना है कि सभी बीजतत्त्वों का मध्यमान किसी व्यक्तिविशेष की किसी योग्यताविशेष का परिचायक कदापि नही हो सकता। अतएव यह सिद्धात भी मान्य नही है।

(४) द्वय शक्ति सिद्धान्त (Eclectic or two factor theory) स्पीयरमैन (Spearman) ने द्वयशक्ति-सिद्धात का प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार बुद्धि मे दो अग (Factors) या शक्तियाँ होती है। वह एक को सामान्य बुद्धि (General or G intelligence) और दूसरी को विशिष्ट बुद्धि (Specific intelligence) कहता है। व्यक्ति के सभी कार्य सामान्य बुद्धि से प्रभावित होते है। किसी भी कार्य को करने की सामान्य बुद्धि सभी को रहती है, इसलिये किसी भी कार्य को कोई भी व्यक्ति कुछ हद तक सीख या कर सकता है। लेकिन, किसी भी कार्य में अच्छी कुशलता प्राप्त करने के लिए विशिष्ट बुद्धि की जरूरत होती है। प्रत्येक कार्य मे सभी व्यक्ति समान रूप में दक्ष नहीं होते, क्योकि सभी व्यक्ति मे हर कार्य की विशिष्ट योग्यता (बुद्धि) नही होती। अत स्पीयरमेन का सिद्धात एकशक्ति सिद्धान्त और बहुशक्ति सिद्धात दोनो को आशिक रूप से सही मानता है। एक शक्ति के अनुसार, सामान्य बुद्धि, सभी व्यक्तियों मे पाई जाती है। दूसरी ओर, विशिष्ट बुद्धि प्रत्येक कार्य के लिए अलग-अलग होती है।

कई तरह के परीक्षणों (Tests) का प्रयोग कर स्पीयरमेन ने अनुबन्धों (Correlations) के सहारे सामान्य बुद्धि (General intelligence) की व्याख्या की है। विभिन्न योग्यताओ को मापने के कई परीक्षणों का प्रयोग करने पर उसने देखा कि विभिन्न

परीक्षणों के प्राप्तांकों (Scores) के बीच धनात्मक अनुबन्ध (Positive Correlation) था। दूसरे शब्दों मे, विभिन्न योग्यता एक दूसरे से सबन्धित है। यह सबध सामान्य बुद्धि का परिचायक है। सामान्य बुद्धि (G) हर व्यक्ति मे पाई जाती है। हाँ, इसकी मात्रा किसी मे कम और किसी में अधिक हो सकती है। बुद्धि के परीक्षण सामान्य बुद्धि को ही मापते है। स्पीयरमैन के अनुसार, जिस व्यक्ति म जितनी ही अधिक सामान्य बुद्धि या योग्यता होती है, वह उतना ही बुद्धिमान होता है।

लेकिन, विशिष्ट बुद्धि (S factor) की सख्या अनेक है और प्रत्येक एक दूसरे से स्वतत्र है। जितने तरह के कार्य है उतनी ही तरह की विशिष्ट बुद्धियाँ होती हैं। अत किसी व्यक्ति मे सामान्य बुद्धि तो एक ही होती है, परन्तु उसमे विशिष्ट बुद्धियाँ अधिक होती है। वह जितने क्षेत्र या विषयो में निपुण होता है उसमे उतनी ही विशिष्ट बुद्धियाँ होती है। इन विशिष्ट बुद्धियो में किसी प्रकार का पारस्परिक सबध नही होता। इसीलिए किसी परिस्थिति विशेष मे एक ही विशिष्ट बुद्धि काम करती है, अन्य बुद्धियाँ नही। इस प्रकार, स्पीयरमैन सामान्य बुद्धि एव विशिष्ट बुद्धियों का प्रतिपादन करता है।

स्पीयरमैन के इस द्वय शक्ति सिद्धान्त से बुद्धि की वास्तविकता का ज्ञान बहुत कुछ हो जाता है। किन्तु, इतना होते हुये भी यह सिद्धान्त विद्वानों की आलोचना से मुक्त नही हो सका है। सर्व प्रथम गाडफ्रे थाम्सन (G thomson) ने बतलाया कि धनात्मक अनुबन्धो की सतोषप्रद व्याख्या के लिये विशिष्ट और सामान्य बुद्धियों को स्वीकार करना आवश्यक नही है, क्योंकि इस प्रकार के अनुबन्धों की व्याख्या बौद्धिक योग्यताओं मे सन्निहित बहुसख्यक अगो के आधार पर भी की जा सकती है। इसलिये धनात्मक अनुबन्धो की व्याख्या सामान्य बुद्धि के माध्यम से न कर सामूहिक अगों (Group factors) के आधार पर करना ही श्रेयस्कर है। दूसरे शब्दों मे, सभी विशिष्ट अग (Special factors) एक दूसरे से पूर्णत स्वतत्र नही होते, बल्कि वे कुछ समूह मे होते है। केली (Kelley) ने ऐसे चार समूहों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार, थर्स्टन (Thurstone) का कहना है कि धनात्मक अनुबन्धो (Positive correlations) की व्याख्या सामान्य और विशिष्ट बुद्धियो के आधार पर करना आवश्यक नहीं है, उनकी व्याख्या कुछ निश्चित योग्यताओं के आधार पर अच्छी तरह की जा सकती है, जिसमें सामान्य बुद्धि का सर्व प्रथम स्थान होगा। पीयर्सन (Pearson) भी स्पीयरमैन के सिद्धात का खण्डन करते हुए व्यक्त करता है कि यह सिद्धात बहुत ही कम प्रयोगात्मक प्रमाणों के आधार पर प्रतिपादित किया गया है और इसमे बहुत ही कम योग्यताएँ सन्निहित है, इसलिए यह पूर्णरूपेण सतोषप्रद नही है। किन्तु, स्टेफेन्स (Staffens) तथा ब्राउन (Brown) ने तीन सौ बालको पर प्रयोग कर के यह प्रदर्शित किया कि द्वयशक्ति-सिद्धान्त निराधार नही, अपितु ठोस आधारों पर प्रतिपादित है और धनात्मक अनुबन्ध का एक मात्र कारण सामान्य बुद्धि ही है। इस तरह इस सिद्धात की और भी कई आलोचनाएँ की गयी है जिनमे कुछ को तो महत्त्व नही दिया जा सकता, परन्तु कुछ की सत्यता को इन्कार करना भी कठिन है। अत हम स्पीयरमैन के सिद्धान्त को भी सर्वमान्य और बुद्धि की समुचित व्याख्या करनेवाला सिद्धात नही मान सकते। अधिक स्पष्टीकरण के लिए सभी सिद्धान्तो का सक्षिप्त विवेचनात्मक उल्लेख करना आवश्यक है।

बुद्धि-सिद्धान्तों की विवेचना

बुद्धि के सभी सिद्धान्तों के बीच विवाद इसी बात पर है कि कोई व्यक्ति विभिन्न कार्यों मे साधारणत बुरा या अच्छा अथवा उसके विभिन्न कार्यों में धनात्मक अनुबन्ध क्यों होता है ? स्पीयरमैन इस धनात्मक अनुबन्ध की व्याख्या सामान्य बुद्धि के आधार पर करता है। उसके अनुसार, व्यक्तिविशेष के सभी कार्यों मे एक ही शक्ति क्रियाशील रहती है, जिसे वह सामान्य बुद्धि की सज्ञा देता है।

थार्नडाइक थार्नडाइक व्यक्ति-विशेष के विभिन्न कार्यों के बीच धनात्मक अनुबन्ध की व्याख्या अपने ही ढग से करता है। उसके अनुसार सामान्य बुद्धि नाम की कोई चीज नही है। बुद्धि एक समुच्चय है जिसके अन्तर्गत इसके छोटे छोटे बीजतत्त्व होते है। ये बीजतत्त्व एक दूसरे से पूर्णत स्वतन्त्र होते है, किन्तु किसी कार्यसपादन मे बहुत से बौद्धिक बीजतत्त्वों की सहायता लेनी पडती है। मान ले, कोई कार्य ऐसा है जिसके सम्पादन मे क, ख, और ग तत्त्वों का उपयोग होता है तथा किसी दूसरे कार्य म उसी व्यक्ति द्वारा क, च और छ बीजतत्त्वो का उपयोग होता है। अत 'क' एक ऐसा बीजतत्त्व है जो दोनो कार्यों के सम्पादन मे उभयनिष्ठ है। यही कारण है कि दोनो कार्यो के बीच कुछ धनात्मक अनुबन्ध रहता है। मनुष्य के प्रत्येक कार्य मे किसी बौद्धिक बीजतत्त्व का उभयनिष्ठ होना जरूरी है, जिसके कारण उसके सभी कार्यों मे कुछ धनात्मक अनुबन्ध होता है।

थर्स्टन का समूह-सिद्धान्त थर्स्टन (Thurstone) ने समूह सिद्धान्त (Group factors) नामक अपना एक दूसरा ही सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। वह स्पीयरमैन की तरह यह मानता है कि बुद्धि की सामान्य योग्यता होती है जिसका विभाजन नही हो सकता। वह थार्नडाइक की तरह यह भी मानता है कि बुद्धि के विभिन्न बीजतत्त्व पूर्णत स्वतन्त्र होते है। उसके अनुसार यह सही है कि बुद्धि की रचना विभिन्न बौद्धिक बीजतत्त्वों के योग (Aggregate) से होती है। परन्तु, ये सभी बीजतत्त्व एक दूसरे से पूर्णत स्वतन्त्र नही है। उसका विचार है कि बौद्धिक बीजतत्त्वो के सात प्रकार के समूह होते है जिन्हे मौलिक मानसिक योग्यताओ (Primary mental abilities) की सज्ञा दी जाती है। इन सात समूहों मे कुछ विशेष सम्बध नही है, फिर भी, वे पूर्णत स्वतन्त्र नही होते। प्रत्येक समूह के अन्तर्गत विभिन्न बीजतत्त्व होते है। किसी एक समूह के विभिन्न बीजतत्त्वों के बीच धनात्मक-अनुबन्ध अधिक है। उसके अनुसार, बुद्धि परीक्षणो म ऐसे विषयों को रखना चाहिए जिनके बीच धनात्मक अनुबन्ध कम हो, तभी हम कह सकते है कि बुद्धि परीक्षण बुद्धि के विभिन्न अगो को मापता है।

इस तरह, थर्स्टन का समूह सिद्धात स्पीयरमैन और थॉर्नडाइक के सिद्धान्तों के बीच अपना स्थान रखता है। एक मापदड (Scale) के तीन क्रमिक बिन्दुओ पर इन सिद्धातों को निम्नाकित प्रकार से रख सकते है।

स्पीयरमैन	थर्स्टन	थार्नडाइक
(सामान्य बुद्धि अखड है)	(बुद्धि के विभिन्न समूह होते है)	(बुद्धि के विभिन्न स्वतन्त्र बीजतत्त्व होते है)

कुछ लोगो ने किसी प्रकार इन सभी विचारों के बीच सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। सन् १९२६ ई० मे गरेट (Garrett) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि बच्चो म सामान्य बुद्धि की मात्रा अधिक होती है, किन्तु आयु वृद्धि के साथ साथ सामान्य बुद्धि का महत्त्व घटता जाता है। सामान्य बुद्धि क्रमश विशिष्ट बुद्धि का रूप धारण करते जाती है और प्रौढावस्था मे पहुचते पहुँचते सामान्य बुद्धि ('G' factor) समाप्त हो जाती है। परन्तु, सामञ्जस्य का यह प्रयास तर्कसगत नही है। वस्तुत बुद्धि सिद्धातों का विवाद अभी तक मिट नहीं पाया है। इन सभी सिद्धान्तों का एक बहुत बडा दोष यह है कि इन्होने अपने अध्ययन में निष्पक्ष जनन्यादर्श (Impartial population sample) का इस्तेमाल नहीं किया है। अत एक ही परीक्षण या अध्ययन से विभिन्न परिणामों का आना स्वाभाविक है। बुद्धि सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे अभी और अन्वेषणो की आवश्यकता है, जिनके आधार पर उपर्युक्त विवाद का समाप्त कर एक ऐसे सिद्धात का प्रतिपादन हो जो वर्त्तमान सिद्धान्तो के दोषो से पूर्णत निर्मुक्त हो कर बुद्धि के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन करा सके।

बुद्धि-अध्ययन की विधियाँ

बुद्धि के अध्ययन के लिए आज कई प्रकार के परीक्षण (Tests) मौजूद है जिन्हे हम तीन विधियो के अन्तर्गत रख सकते है। हम उन्हे (१) बिने परीक्षण-विधि (Binet testing method), (२) निर्माण परीक्षण विधि (Performance testing method) और (३) सामूहिक परीक्षण विधि (Group testing method) कह सकते है।

बिने-परीक्षण विधि (Binet testing method) बिने के पहले कुछ विद्वानों ने व्यक्ति के आहार-व्यवहार के निरीक्षण द्वारा उसकी बुद्धि के अध्ययन करने की परिपाटी चलाई, किन्तु यह विधि सतोषप्रद प्रमाणित नहीं हो सकी। इसी प्रकार उण्ट ने सवेदना की प्रबलता के आधार पर बुद्धि का अध्ययन करने का प्रयास किया। किन्तु, बाद में देखा गया कि सवेदना के आधार पर बुद्धि को निर्धारित करना गलत है, क्योंकि कितने ही बुद्धिमान व्यक्तियों में बहुत कम सवेदना की शक्ति पाई जाती है और मन्दबुद्धि व्यक्तियों मे इसकी शक्ति बहुत प्रबल होती है। इसी प्रकार बिने के पहले बुद्धि मापने की अन्य विधिया भी दोषपूर्ण एव अप्रामाणिक सिद्ध हुईं।

फ्रास के शिक्षाधिकारियो ने अपने देश के मन्दबुद्धि बालकों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था करने के लिये बिने की अध्यक्षता मे उनकी बुद्धि की परीक्षा के वास्ते बुद्धि-परीक्षणो के निर्माण के लिये एक समिति बनाई। बिने ने सीमन (Simon) की सहायता से विभिन्न आयु के बालकों की बुद्धि मापने के लिये बालकों पर प्रयोग करके ३० प्रश्नो का निर्माण किया। बिने का दृष्टिकोण था कि उच्च मानसिक प्रक्रियाओं के ज्ञान से ही वास्तविक बुद्धि का ज्ञान हो सकता है। उसने उन प्रश्नो को कठिनाई के क्रम में रक्खा। सरल स्वरूप के प्रश्नों को पहले रखा गया और ज्यो ज्यो वे कठिन होते गये त्यों त्यों वे बाद मे रक्खे गये। उन प्रश्नो का निर्माण करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया कि उन

बुद्धि-सिद्धान्तों की विवेचना

बुद्धि के सभी सिद्धान्तो के बीच विवाद इसी बात पर है कि कोई व्यक्ति विभिन्न कार्यों मे साधारणत बुरा या अच्छा अथवा उसके विभिन्न कार्यों में धनात्मक अनुबन्ध क्यों होता है ? स्पीयरमैन इस धनात्मक अनुबन्ध की व्याख्या सामान्य बुद्धि के आधार पर करता है। उसके अनुसार, व्यक्ति-विशेष के सभी कार्यों म एक ही शक्ति क्रियाशील रहती है, जिसे वह सामान्य बुद्धि की सज्ञा देता है।

थार्नडाइक थार्नडाइक व्यक्ति-विशेष के विभिन्न कार्यों के बीच धनात्मक अनुबन्ध की व्याख्या अपने ही ढग से करता है। उसके अनुसार सामान्य बुद्धि नाम की कोई चीज नही है। बुद्धि एक समुच्चय है जिसके अन्तर्गत इसके छोटे छोटे बीजतत्त्व होते है। ये बीजतत्त्व एक दूसरे से पूर्णत स्वतत्र होते है, किन्तु किसी कार्यसपादन मे बहुत से बौद्धिक बीजतत्त्वो की सहायता लेनी पडती है। मान्ल, कोई कार्य ऐसा है जिसके सम्पादन मे क, ख, और ग तत्त्वों का उपयोग होता है तथा किसी दूसरे कार्य म उसी व्यक्ति द्वारा क, च और छ बीजतत्त्वो का उपयोग होता है। अत 'क' एक ऐसा बीजतत्त्व है जो दोनो कार्यों के सम्पादन मे उभयनिष्ठ है। यही कारण है कि दोनो कार्यो के बीच कुछ धनात्मक अनुबन्ध रहता है। मनुष्य के प्रत्येक कार्य मे किसी बौद्धिक बीजतत्त्व का उभयनिष्ठ होना जरूरी है, जिसके कारण उसके सभी कार्यों मे कुछ धनात्मक अनुबन्ध होता है।

थर्स्टन का समूह-सिद्धान्त थर्स्टन (Thurstone) ने समूह सिद्धान्त (Group factors) नामक अपना एक दूसरा ही सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। वह स्पीयरमैन की तरह यह मानता है कि बुद्धि की सामान्य योग्यता होती है जिसका विभाजन नही हो सकता। वह थार्नडाइक की तरह यह भी मानता है कि बुद्धि के विभिन्न बीजतत्त्व पूर्णत स्वतन्त्र होते है। उसके अनुसार यह सही है कि बुद्धि की रचना विभिन्न बौद्धिक बीजतत्त्वों के योग (Aggregate) से होती है। परन्तु, ये सभी बीजतत्त्व एक दूसरे से पूर्णत स्वतत्र नही है। उसका विचार है कि बौद्धिक बीजतत्त्वो के सात प्रकार के समूह होते है जिन्हे मौलिक मानसिक योग्यताओ (Primary mental abilities) की सज्ञा दी जाती है। इन सात समूहों मे कुछ विशेष सम्बन्ध नही है, फिर भी, वे पूर्णत स्वतत्र नही होते। प्रत्येक समूह के अन्तर्गत विभिन्न बीजतत्त्व होते है। किसी एक समूह के विभिन्न बीजतत्त्वों के बीच धनात्मक-अनुबन्ध अधिक है। उसके अनुसार, बुद्धि परीक्षणो म ऐसे विषयों को रखना चाहिए जिनके बीच धनात्मक अनुबन्ध कम हो, तभी हम कह सकते है कि बुद्धि परीक्षण बुद्धि के विभिन्न अगो को मापता है।

इस तरह, थर्स्टन का समूह सिद्धात स्पीयरमैन और थॉर्नडाइक के सिद्धान्तों के बीच अपना स्थान रखता है। एक मापदड (Scale) के तीन क्रमिक बिन्दुओ पर इन सिद्धातों को निम्नाकित प्रकार से रख सकते है।

स्पीयरमैन	थर्स्टन	थार्नडाइक
(सामान्य बुद्धि अखड है)	(बुद्धि के विभिन्न समूह होते है)	(बुद्धि के विभिन्न स्वतत्र बीजतत्त्व होते है)

कुछ लोगो ने किसी प्रकार इन सभी विचारों के बीच सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। सन् १९४६ ई० में गरेट (Garrett) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि बच्चों मे सामान्य बुद्धि की मात्रा अधिक होती है, किन्तु आयु वृद्धि के साथ साथ सामान्य बुद्धि का महत्त्व घटता जाता है। सामान्य बुद्धि क्रमश विशिष्ट बुद्धि का रूप धारण करते जाती है और प्रौढावस्था मे पहुँचते पहुँचते सामान्य बुद्धि ('G' factor) समाप्त हो जाती है। परन्तु, सामञ्जस्य का यह प्रयास तर्कसगत नही है। वस्तुत बुद्धि सिद्धान्तों का विवाद अभी तक मिट नहीं पाया है। इन सभी सिद्धांतो का एक बहुत बडा दोष यह है कि इन्होने अपने अध्ययन में निष्पक्ष जन-प्रदर्श (Impartial population sample) का इस्तेमाल नहीं किया है। अत एक ही परीक्षण का अध्ययन से विभिन्न परिणामों का आना स्वाभाविक है। बुद्धि सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे अभी और अन्वेषण की आवश्यकता है, जिनके आधार पर उपर्युक्त विवाद को समाप्त कर एक ऐसे सिद्धांत का प्रतिपादन हो जो वर्त्तमान सिद्धान्तो के दोषो से पूर्णत निर्मुक्त हो कर बुद्धि के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन करा सके।

बुद्धि-अध्ययन की विधियाँ

बुद्धि के अध्ययन के लिए आज कई प्रकार के परीक्षण (Tests) मौजूद है जिन्हे हम तीन विधियो के अन्तर्गत रख सकते है। हम उन्हे (१) बिने परीक्षण विधि (Binet testing method), (२) निर्माण परीक्षण विधि (Performance testing method) और (३) सामूहिक परीक्षण विधि (Group testing method) कह सकते है।

बिने-परीक्षण विधि (Binet testing method) बिने के पहले कुछ विद्वानो ने व्यक्ति के आहार व्यवहार के निरीक्षण द्वारा उसकी बुद्धि के अध्ययन करने की परिपाटी चलाई, किन्तु यह विधि सन्तोषप्रद प्रमाणित नहीं हो सकी। इसी प्रकार वुण्ट ने सवेदना की प्रबलता के आधार पर बुद्धि का अध्ययन करने का प्रयास किया। किन्तु, बाद में देखा गया कि सवेदना के आधार पर बुद्धि को निर्धारित करना गलत है, क्योंकि कितने ही बुद्धिमान व्यक्तियों में बहुत कम सवेदना की शक्ति पाई जाती है और मन्दबुद्धि व्यक्तियों मे इसकी शक्ति बहुत प्रबल होती है। इसी प्रकार बिने के पहले बुद्धि मापने की अन्य विधियाँ भी दोषपूर्ण एव अप्रामाणिक सिद्ध हुई।

फ्रास के शिक्षाधिकारियो ने अपने देश के मन्दबुद्धि बालकों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था करने के लिये बिने की अध्यक्षता मे उनकी बुद्धि की परीक्षा के वास्ते बुद्धि-परीक्षणो के निर्माण के लिये एक समिति बनाई। बिने ने सीमन (Simon) की सहायता से विभिन्न आयु के बालकों की बुद्धि मापने के लिये बालकों पर प्रयोग करके ३० प्रश्नो का निर्माण किया। बिने का दृष्टिकोण था कि उच्च मानसिक प्रक्रियाओं के ज्ञान से ही वास्तविक बुद्धि का ज्ञान हो सकता है। उसने उन प्रश्नो को कठिनाई के क्रम मे रक्खा। सरल स्वरूप के प्रश्नो को पहले रक्खा गया और ज्यों-ज्यो वे कठिन होते गये त्यों त्यो वे बाद मे रक्खे गये। उन प्रश्नो का निर्माण करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया कि उन

प्रश्नों के उत्तर से किसी बालक विशेष की मानसिक योग्यता का ही ज्ञान हो, उसके अर्जित ज्ञान पर प्रकाश न पड़े। इस प्रकार, सन् १९०५ ई० मे उसने अपने प्रथम बुद्धि परीक्षण को प्रकाशित किया। उस प्रथम परीक्षण के विभिन्न प्रश्नो के उत्तर पर किसी बालक के मानसिक विकास को निर्धारित करके उसकी बुद्धि व्यक्त की जाती थी। पुन उसने सन् १९०८ ई० और सन् १९११ ई० मे अपने उन परीक्षणो का सशाधन किया। बिने के सन् १९०५ ई० के सस्करण के परीक्षणों से किसी बालक की बुद्धि का निश्चित ज्ञान नही होता था, क्योंकि कोई निश्चित व्यवस्था के अभाव मे बुद्धि का निश्चयन उसके शुद्ध दिये गये उत्तरों के आधार पर किया जाता था। सन् १९०८ ई० के सस्करण में बिने ने मानसिक आयु (Mental Age) के आधार पर बुद्धि को निधारित करने की व्यवस्था की। इस सस्करण के सभी प्रश्न आयु-क्रम मे व्यवस्थित किये गये। इसलिये जिस आयु तक के सभी प्रश्नो का उत्तर बालक सफलतापूर्वक दे देता था, उसकी वही मानसिक आयु समझी जाती थी। मानसिक आयु, वास्तविक आयु (Chronological Age) से पूर्णत स्वतन्त्र है। यदि कोई बालक, जिसकी आयु सात वर्ष की है, आठ वर्ष के बच्चे के सभी प्रश्नो का ठीक ठीक उत्तर दे देता है तो उसकी मानसिक आयु आठ वर्ष समझी जाती है और वह औसत से अधिक बुद्धिमान भी समझा जाता है। यदि वह सिर्फ सात वर्ष के ही सभी प्रश्नो का उत्तर शुद्धतया दे देता है तो उसे सामान्य समझा जाता है और यदि वह अपनी आयु से नीचे वाली आयु के प्रश्नों का ही उत्तर ठीक ठीक देने म सफल होता है ता उसे कम बुद्धिमान वा मन्दबुद्धि (Dull) समझा जाता है। यह सशोधन बुद्धि जानने म काफी सहायक हुआ।

बिने परीक्षण का अन्तिम परिवर्द्धित एव सशोधित सस्करण सन् १९११ ई० मे हुआ। इस बार बिने ने पहले सस्करण के उन प्रश्नो को बहिष्कृत कर दिया जिनका उत्तर पूर्णत पाठशालीय शिक्षा या विशिष्ट ज्ञान पर निर्भर करता था। दूसरे, बहुत ही सरल अथवा कठिन परीक्षणो को या तो इस सस्करण म स्थान नही दिया गया या उनको उचित क्रम मे रक्खा गया। प्रश्नो की सख्या भी ३० से बढा कर ५४ कर दी गई। ३ वर्ष से लेकर १५ वर्ष तक की प्रत्येक आयु के लिये विभिन्न प्रकार के परीक्षण निर्धारित किए गए। इस सशोधित परीक्षण मे प्रत्येक आयु के लिए पाच पाच प्रश्न निश्चित है, केवल चार वर्ष की आयु के परीक्षणा की सख्या चार है। तेरह और चौदह वर्ष की आयु के लिये अलग परीक्षण नही है। एक परीक्षण-श्रृखला (Series of tests) प्रौढ व्यक्तियों की बुद्धि मापने के लिये भी निश्चित है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बिने परीक्षणों के सहारे बालकों या वयस्क व्यक्तियों की बुद्धि का ज्ञान उनकी मानसिक आयु के आधार पर प्राप्त किया जाता है। इसका व्यवहार करना भी आसान है। यही कारण है कि इसका अनुवाद विश्व की सभी भाषाओं में हो चुका है। गोडार्ड (Goddard) ने अमेरिका में अग्रेजी भाषा में इन परीक्षणों का अनुवाद अमेरिकावासियों के लिए किया। जर्मनी, इङ्गलैड, जापान, भारतवर्ष, आदि विभिन्न देशों मे इस दिशा में पयास कार्य किये गये है। स्टेडफोर्ड-विश्वविद्यालय में टरमन ने इस बिने परीक्षण के सन् १९११ ई० के सस्करण मे भी महत्त्वपूर्ण सशोधन और परिवर्द्धन किया है। इसलिये यहाँ उसका उल्लेख कर देना आवश्यक है।

टरमन का सशोधन टरमन द्वारा सशोधित सस्करण को प्राय स्टेंडफोर्ड-सशोधन अथवा स्टैंडफोर्ड बिने-परीक्षण (Standford Binet test) कहते है। टरमन को बिने के परीक्षणों मे कई प्रकार की त्रुटियाँ दृष्टिगोचर हुई। इसीलिये उसने सन् १९१६ ई० मे बिने के अन्तिम परीक्षणों मे सशोधन करके परीक्षणों की सख्या ६४ से ८० कर दी। उसने उन परीक्षणों का निर्माण लगभग एक हजार बालकों पर व्यवहार करके किया। मनोवैज्ञानिक जगत को इस सशोधन की सबसे महत्त्वपूर्ण देन बुद्धि-उपलब्धि (Intelligence quotient or I Q) की है, क्योंकि इसके पहले किसी की बुद्धि को मानसिक आयु के आधार पर निर्धारित किया जाता था। किन्तु, टरमन ने बुद्धि-उपलब्धि का व्यवहार करके मनोवैज्ञानिको के कार्य को सरल और अत्यधिक प्रतिपन्न बना दिया है। मानसिक आयु और वास्तविक आयु के अनुपात (Ratio) मे १०० का गुणा कर देने से बुद्धि-उपलब्धि प्राप्त होती है। इसे सूत्र द्वारा इस तरह व्यक्त किया जाता है, $\text{बु०उ०} = \frac{\text{मा आ}}{\text{वा आ}} \times १०० \left(I\ Q = \frac{M\ A\ \text{(Mental Age)}}{C\ A\ \text{(Chronological Age)}} \times (100)\right)$। यदि किसी की वास्तविक आयु १० वर्ष और मानसिक आयु १२ वर्ष है तो उसकी बुद्धि-उपलब्धि (I Q), $(\frac{१२}{१०}) \times १००$ अर्थात् १२० हुई। इसी प्रकार दोनों बराबर होने पर उसकी बुद्धि-उपलब्धि १०० होगी, और वास्तविक आयु, मानसिक आयु से अधिक होने पर उसकी बुद्धि उपलब्धि १०० से कम होगी। १०० बुद्धि उपलब्धि प्राप्त होने पर बालक औसत, १०० से अधिक आने पर श्रेष्ठ और १०० से कम आने पर निकृष्ट या मन्दबुद्धि का माना जाता है। इस सशोधन के अनुसार मानसिक आयु (M A) को अधिक से अधिक १९ वर्ष का माना जाता है। इसीसे बुद्धि उपलब्धि निकालने मे १९ या अधिक आयुवाले की वास्तविक आयु (C A) भी हमेशा १९ वर्ष की ही मानी जाती है।

स्टैण्डफोर्ड बिने सशोधन मे टरमन को कई प्रकार की त्रुटियाँ ज्ञात हुई, इसलिये उसने पुन अपने सहयोगियों के साथ उसका सशोधन सन् १९३७ ई० मे किया। इस बार उसने तीन हजार बालकों पर अपने परीक्षणों का व्यवहार करके उन्हें प्रामाणिक बनाया और दो वर्ष से लेकर प्रौढ व्यक्तियों तक के लिये विभिन्न परीक्षणो का निर्माण किया। दो, तीन, चार वर्षों के ही लिये परीक्षण निर्धारित नही है, बल्कि २½, ३½, ४½ वर्ष की आयु के लिये भी परीक्षणों का निर्माण किया गया है। पाँच वर्ष तक के बच्चों के परीक्षणो में उनकी इस आयु की अभिरुचियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। यही कारण है कि उनके परीक्षणो मे छोटे खिलौने, रगीन चित्रों, आदि का व्यवहार किया गया है। चौदह वर्ष के बाद एक सामान्य बुद्धि के लिये परीक्षण शृखला निर्धारित है तथा श्रेष्ठ बुद्धि वालों के लिए तीन परीक्षण-शृखलाओं की व्यवस्था की गई है। इस सस्करण को दो भागों मे विभक्त कर दिया गया है और दोनों मे ही १२९ परीक्षण अलग-अलग है। अभी तक उस परीक्षण का पूर्ण प्रचार नही हो सका है, किन्तु उसकी सर्वप्रियता अवश्यम्भावी है। उन परीक्षणो का समुचित प्रयोग करने के लिये दक्ष मनोवैज्ञानिक का होना आवश्यक है, अन्यथा कई प्रकार के दोषो की सम्भावना है। वस्तुत देखने में वे परीक्षण जितने सरल प्रतीत होते है, उनकी सरलता उनके व्यवहार एव प्राप्तांकों की व्याख्या में नहीं है।

बिने विधि की आलोचना हम बिने परीक्षण विधि की विशेषताओं का ऊपर उल्लेख करते हुए यह व्यक्त कर चुके है कि बुद्धि माप के लिये इस विधि का व्यवहार सभी देशों मे हो रहा है और इतना पुराना होने पर भी [illegible] मे इसका अपना विशेष स्थान है। वस्तुत विभिन्न प्रकार के परीक्षणों के कारण विभिन्न आयु के बालकों के लिये यह विधि बहुत उपयोगी है और [illegible] करती है। इसके अतिरिक्त, मानसिक आयु (Mental Age) की [illegible] परीक्षणों का जो उपकार हुआ है, उसे कोई भी नहीं [illegible] सकता। किन्तु, [illegible] के होते हुए भी इस विधि की जो त्रुटियाँ है उनकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। [illegible] कि बिने परीक्षण अंग्रेजी मे है, इसलिये उनका व्यवहार [illegible] बालकों पर नहीं हो सकता। यदि दूसरी भाषाओं मे वे अनूदित भी है तो वे उतने उपयोगी नहीं है। इसके अतिरिक्त, इन परीक्षणों का व्यवहार उन [illegible] पर नहीं किया जा सकता जो कि बहरे या किसी प्रकार के भाषा दोष के शिकार है। इस विधि [illegible] किसी बालक विशेष के सम्बन्ध मे यह भी नही मालूम होता कि किस दिशा मे वह पटु या अपटु है। इसके अतिरिक्त, प्राय ऐसा देखने मे आता है कि बालकों के प्राप्तांक, सांस्कृतिक (Cultural) एवं सामाजिक वातावरण से अधिक प्रभावित होते है। यही कारण है कि समृद्ध वातावरण के व्यक्तियों का प्राप्तांक बर्बर वातावरण मे रहने वाले [illegible] अधिक होता है। इसलिए एक ही वातावरण मे रहने वाले [illegible] बौद्धिक योग्यता की ही तुलना की जा सकती है, विभिन्न वातावरण मे [illegible] नहीं। इतना ही नही, इस विधि से बालकों या सयानों के अन्य [illegible] पर भी प्रकाश नहीं पडता है। इसके अतिरिक्त, इससे उसकी किसी विशेष योग्यता का [illegible] प्राप्त नहीं होता है। परन्तु, इस सबध मे यह स्मरणीय है कि बिने का [illegible] एकमात्र [illegible] योग्यता का ही अध्ययन करना था, अन्य प्रकार की योग्यताओं या [illegible] नहीं। अतएव इस विधि की उपर्युक्त त्रुटियों से बचने के लिए अन्य परीक्षणों का आश्रय लेना आवश्यक है।

निर्माण-परीक्षण-विधि (Performance method) हम ऊपर देख चुके है कि बिने की परीक्षण विधि का व्यवहार अंग्रेजी भाषाभाषी बालकों और प्रौढ़ों तक ही सीमित है। इसकी उपादेयता बहरे, भाषा दोष से पीड़ित तथा अंग्रेजी न जानने वाले बालकों के लिए नहीं है। इसलिये इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रकार के निर्माण परीक्षणों को बनाया है। उन परीक्षणों मे किसी भाषा का प्रयोग नहीं होता। [illegible] कार्य या समस्या दी जाती है, जिसको प्रयोज्य कुछ करके सुलझाता है, उसे [illegible] की जरूरत नहीं होती। वे निर्माण परीक्षण शारीरिक निपुणता और [illegible] (Manual Dexterity and Mechanical Ability) के परीक्षणों से भिन्न है।

आज से बहुत दिन पहले इटार्ड (Itard) ने [illegible]-परीक्षण (Form Board tests) का निर्माण मन्दबुद्धि बालकों की शिक्षा का [illegible] करने के लिये किया। उसके बाद उसके शिष्य सेग्विन (Seguin) ने कई प्रकार के [illegible] परीक्षणों को जन्म दिया। तब से आज तक कई मनोवैज्ञानिकों ने नई प्रकार के [illegible] परीक्षणों

की रचना की है, किन्तु उनके आकार प्रकार मे अन्तर होते हुए भी उनके सिद्धान्त मे किसी तरह की भिन्नता नही है। आकार-फलक परीक्षणो मे काठ के बोर्ड मे चतुर्भुज, त्रिकोण, वृत्त, आदि के विभिन्न आकार खुदे रहते है और उन्ही खुदे हुए स्थानो को उसी रूप के अन्य काष्ठ खण्डो से भरना पडता है। भरने मे लगे समय को मालूम कर लिया जाता है। समय और अशुद्धि के ही प्राप्तांक होते है, जिनके सहारे बुद्धि-उपलब्धि मालूम की जाती है।

पिण्टर-पैटर्सन (Pinter patterson) के निर्माण मापदण्ड (Performance scale) मे पन्द्रह प्रकार के परीक्षण है। उसमे सात आकार-फलक, दो उसी स्वरूप के, किन्तु उनसे कुछ भिन्न तथा अन्य छ परीक्षण चित्रपूर्त्ति (Picture completion), स्मरण विस्तार (Memory span), आदि के है। उन परीक्षणो मे भी प्राप्तांक समय और अशुद्धि के माध्यम से ही मालूम करके बुद्धि उपलब्धि (I Q) अथवा सफल व्यक्तियों का प्रतिशत मालूम किया जाता है।

औद्योगिक परिश्रान्ति अन्वेषण समिति (Industrial Fatigue Research Board) के तत्त्वावधान मे गा (Gaw) नामक विद्वान ने चौदह निर्माण परीक्षणो की रचना की है। उस परीक्षण शृखला (Series of tests) की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमे आकार फलक-परीक्षणो (Form board tests) की उतनी विशेष प्रधानता नही है, जितनी कि उपर्युक्त परीक्षणो मे। उनका प्रमाणीकरण (Standardization) अग्रेजी बालको पर किया गया है। भूल भुलैया-परीक्षणो को भी उसमे स्थान दिया गया है। इसी प्रकार, ड्रेवर एव कोलिन्स (Drever and Collins) ने भी बारह निर्माण परीक्षणों की रचना की है। वे परीक्षण अन्य परीक्षणों की अपेक्षा आसानी के साथ व्यवहृत होते है। आर्थर (Arthur) ने भी दो परीक्षण कुलको का निर्माण किया है और दोनों ही कुलक प्रामाणिक एव विश्वसनीय है।

यदि यहाँ हम केण्ट (Kent) के ज्यामिति भ्रान्ति परीक्षणों (Geometrical puzzle tests) का उल्लेख न करे तो हमारा वर्णन अधूरा रह जायगा। केण्ट ने उन परीक्षणो का निर्माण बालक और वयस्क दोनों आयुओ के लिये किया है। पोर्टियस (Porteus) के भूलभुलैया परीक्षणों से किसी व्यक्ति की बुद्धि पर ही प्रकाश नही पडता, वरन् उसके स्वभाव (Temperament) पर भी प्रकाश पडता है।

कोह (Koh) का काष्ठ अनुकृति परीक्षण (Block design test) बुद्धि पर काफी प्रकाश डालता है। उस परीक्षण मे सोलह लकडी के घन (Cubes) होते है। प्रत्येक घन एक वर्ग इञ्च का होता है जिसके एक ओर लाल दूसरी ओर पीला, तीसरी ओर नीला और चौथी ओर सफेद धरातल रहता है। इसके अतिरिक्त, पाँचवी ओर कर्णात्मक रूप (Diagonally) मे लाल सफेद तथा छठी ओर नीला पीला रहता है। कार्ड पर इन्ही रंगों मे कुछ खास आकृति (Designs) बनी रहती है और प्रयोज्य को उन घनो की सहायता से वैसी ही आकृति बनानी पडती है। एक एक कर आकृति उपस्थित की जाती है और प्रयोज्य वैसा बनाते जाता है। वे दस आकृति-चित्र क्रमिक कठिनाई मे रहते है। इस प्रकार प्रयोज्य किसी आकृति को बनाने मे जितना समय लेता है, उसी के आधार पर उसका प्राप्तांक निकाला जाता है। घन रचना-परीक्षण (Cube construc

tion tests) मे तीन भाग होते है और उसमे भी घना की सहायता से विभिन्न प्रकार की रचनाओं को करना पडता है। बुद्धि का माप समय के माध्यम से ही होती है। पुरस्सरण परीक्षण (Pass-along tests) मे चार छोटे बक्से म तेरह आयताकार और वर्ग लाल और नीले काष्ठ खण्डो से आवश्यकतानुसार कुछ खण्डो का प्रयोग करके (घुमा कर) आकृतियो का निर्माण करना पडता है। यह परीक्षण क्रमश कठिन होता जाता है। इस तरह और भी कई निर्माण-परीक्षण है, किन्तु उन सब पर प्रकाश डालना आवश्यक नही है।

इस विधि के गुण दोषो पर विचार करे तो मालूम होगा कि इस विधि का व्यवहार किसी देश के व्यक्तियो पर भी किया जा सकता है, क्योकि इसका सम्बन्ध भाषा से नही है। जिन व्यक्तियो मे भाषा दोष है या जो बहरे है, उनकी बुद्धि का अध्ययन करने मे इस विधि से किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है। मानसिक दुर्बलता (Mental deficiency) का पता लगाने के लिये यह विधि अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हुई है। किन्तु, इन गुणों के होते हुये भी हम इतना मानना पडेगा कि इसके द्वारा बुद्धि मापने के लिये अधिक समय और धैर्य की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, इसका व्यवहार भी सभी लोग नहीं कर सकते, क्योकि इसके लिये पर्याप्त ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) अपेक्षित है।

सामूहिक परीक्षण विधि (Group tests) ऊपर जितने परीक्षण और विधियो का उल्लेख किया गया, वे सब व्यक्तिगत परीक्षण है। अत उनके प्रयोग करने मे समय अधिक लगता है और कुशल प्रयोक्ता की भी जरूरत होती है। कम समय मे ही बुद्धि की जाँच करने के लिए सामूहिक परीक्षण की आवश्यकता हुई। प्रथम विश्व युद्ध मे सैनिको की समुचित व्यवस्था करने के लिये अमेरिका ने पहली बार सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया। उसका नाम दिया गया सैनिक साक्षर-परीक्षण (Army Alpha test) और उसका प्रयोग केवल पढे लिखे सैनिको पर ही किया जाता था, क्योंकि यह परीक्षण अग्रेजी भाषा मे था। उस परीक्षण के द्वारा सैनिको की बुद्धि की जाँच करके उनकी योग्यतानुसार उन्हे कार्यभार दिया गया। उस परीक्षण-शृंखला में आठ प्रकार के परीक्षण कठिनाई के क्रम मे है। सभी परीक्षणो के व्यवहार करने के निर्देशन अकित है। उनमे कई प्रश्न है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर कम से कम समय मे देना होता है। हर प्रश्न के कुछ उत्तर लिखे रहते है। प्रयोज्य को उनम से एक सही उत्तर चुनना पड़ता है। ऐसे उत्तरों के आधार पर व्यक्ति की मानसिक योग्यता निर्धारित की जाती है।

उपर्युक्त परीक्षण की उपादेयता भी साक्षर वर्ग के लिये थी, अत अनपढ या अन्य भाषाओ को जानने वाले सैनिको की बुद्धि का अध्ययन करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने सैनिक निरक्षर परीक्षण (Army Beta tests) का निर्माण किया। यह परीक्षण विशेष भी उपर्युक्त परीक्षण के ही समान महत्त्व का है, क्योकि जो कुछ पहले परीक्षण मे भाषा द्वारा व्यक्त किया गया है वही चीज इसमे आकृति (Figure), आकार (Form), चित्र (Picture), आदि के द्वारा व्यक्त की गयी है। उस परीक्षण का निर्देशन भाव भगी और श्यामपट (Black board) के द्वारा दिया जाता है। वे ऐसे परीक्षण है जो बुद्धि उपलब्धि नहीं व्यक्त करते, वरन् किसी व्यक्तिविशेष के प्राप्तांक पर प्रकाश डालते है। उसी प्राप्तांक के द्वारा सांख्यिक विधि (Statistical method) की सहायता से उसकी

बुद्धि-उपलब्धि का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त, कभी कभी प्रतिशत के माध्यम से भी उसकी बुद्धि निश्चित की जाती है।

प्रथम महायुद्ध के बाद मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रकार के सामूहिक (Group) परीक्षणों का निर्माण किया है। कुछ परीक्षण तो ऐसे हैं कि उनके प्रत्येक अंश या प्रश्न के लिए समय निर्धारित किए गए हैं और कुछ ऐसे भी हैं जिनके लिए सामूहिक रूप से समय निश्चित है। समय इस प्रकार निश्चित किया गया है कि किसी भी समूह के पाँच प्रतिशत के ही लगभग व्यक्ति पूरे प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ होते हैं। अन्य सामूहिक परीक्षणों में ऑटिस-स्वकृत मानसिक योग्यता परीक्षण (Otis self administering tests) विशेष उल्लेखनीय है। उस परीक्षण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका व्यवहार करने के लिए प्रयोक्ता को बहुत ही कम परिश्रम करना पड़ता है। सभी आवश्यक निर्देशन उसी प्रश्न पत्र पर अंकित रहते हैं, इसलिए उसका एकमात्र कार्य प्रयोग की नियन्त्रित अवस्था पर ध्यान देना तथा 'प्रारम्भ' और 'विराम' कहना रहता है।

द्वितीय महायुद्ध मे मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न कार्यों के लिए सैनिको का, उनकी योग्यता के आधार पर, वर्गीकरण करने के लिए सैनिकी सामान्य वर्गीकरण परीक्षण (Army general classification tests) की रचना की, जो बहुत ही उपादेय प्रमाणित हुआ है। रीचार्डसन (Richardson), थाम्सन (Thomson), प्रभृति मनोवैज्ञानिकों ने भी सामूहिक परीक्षणो की रचना की है। वाक्यपूर्ति परीक्षण को भी हम इसी कोटि मे रख सकते हैं। आज भी मनोवैज्ञानिक इबिंगहास द्वारा निर्मित इस परीक्षण का व्यवहार कई अवसरों पर करते है।

सामूहिक बुद्धि परीक्षण की विवेचना अब इस विधि के विवेचनास्वरूप हम कह सकते है कि इस विधि के व्यवहार से थोड़े ही समय मे बहुसख्यक व्यक्तियों की बुद्धि की जाँच हो जाती है। इसका व्यवहार करने के लिये परीक्षक को अधिक ट्रेनिंग की आवश्यकता नही पड़ती और थोड़ी सी सावधानी रखने पर भी काफी सफलता मिलती है। उत्तरो की शुद्धियों और अशुद्धियो को देखने में बहुत ही कम समय लगता है और कार्य स्थलो पर यह काम यत्रतत्र भी होता रहता है। लेकिन, इन गुणों के होते हुये भी इनमें जो दोष है उनसे बचना कठिन है। पहली बात यह है कि एक ही साथ इतने व्यक्तियों की बुद्धि का अध्ययन किया जाता है कि उन सबकी शारीरिक एव मानसिक अवस्थों को एक एक करके जानना असभव है। दूसरी कठिनाई यह है कि परीक्षक और परिक्षार्थी का पारस्परिक सहयोग मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के लिये आवश्यक है, किन्तु ऐसी अवस्था में इसका पता लगाना बहुत ही कठिन काम है कि कौन परीक्षार्थी सहयोग दे रहा है और कौन नही। किन्तु, इस विधि की इतनी अधिक उपादेयता है कि ये त्रुटियाँ नगण्य है।

निष्कर्ष उपर्युक्त प्रकार की विभिन्न बुद्धि परीक्षण-विधियों की व्याख्या करने से स्पष्ट है कि कुछ परीक्षण भाषिक (Verbal) है और कुछ निर्भाषिक (Non-verbal)। निर्भाषिक परीक्षणों मे सभी निर्माण परीक्षण और कई सामूहिक परीक्षण सम्मिलित है। लेकिन, प्रत्येक प्रकार के परीक्षण मे कुछ गुण दोष है और किसी एक से पूरी बुद्धि का

मापन सभव नही है। इस बात को ध्यान मे रखते हुए पिछले कुछ वर्षो मे कई ऐसे परीक्षण समूहों (Battery of tests) का निर्माण किया गया है जिनमे भाषिक और निर्भाषिक सभी तरह के परीक्षण रखे गए है। उनसे बुद्धि के बहुत अश का मापन हो जाता है। इस तरह के परीक्षण समूहो मे, वेश्लर बेलेव्यु (Wechsler-Bellevue), कारनेल आक्स, तथा कोलिन्स ड्रेवर के परीक्षण समूह प्रमुख है। कुछ भारतीय मनोवैज्ञानिको के द्वारा भी ऐसे परीक्षण-समूह तयार किए गए है।

भारतीय बुद्धि परीक्षण

अभी तक हमने उन बुद्धि परीक्षणों का उल्लेख किया है जिनकी उपयोगिता विदेशो मे ही है। उन परीक्षणों का व्यवहार हम भारतीय बच्चों या वयस्को पर अच्छी तरह नही कर सकते, क्योकि उनका निमाण भारतीय जनसख्या पर प्रयोग करके नही किया गया है। उन परीक्षणों मे जिस तरह के प्रश्न या समस्याए दी गई है, वे पाश्चत्य देशो के वातावरण के अनुकूल है। अत हमारे वातावरण के लिए वे परीक्षण ठीक नही है। इगलेण्ड, अमेरीका तथा अन्य पाश्चात्य देशों के छोटे छोटे बच्चे भी वायुयान, मोटर, घडी, आदि के सम्बन्ध मे बहुत कुछ जानते है, लेकिन भारतवर्ष म सकड़ो गावो मे घूमने पर भी मोटर या वायुयान का दर्शन नही होता, तब यहाँ के बच्चे भला उन चीजो के सम्बन्ध मे क्या सीख सकते है। अतएव ऐसे बुद्धि परीक्षण, जिनम उन विषयो की जानकारी अपेक्षित है, भारतीय बच्चो के लिये कदापि उपयुक्त नही है। पश्चिमी देशो की शिक्षा और सस्कृति भी हमसे भिन्न है। अत बहुत से परीक्षणो को हमारे यहाँ के बच्चे या सयाने नही समझ पाते।

उपर्युक्त कठिनाइयो को ही ध्यान म रख कर सन् १९२२ ई० मे सबसे पहले डाक्टर सी हर्बर्ट राइस (Dr C Herbert Rice) ने बीने मापदण्ड (Binet-Scale) का प्रमाणीकरण किया। उसने अन्य परीक्षणो के विभिन्न प्रकरण (Item) पर भी प्रयोग करके उन्हे अपने मापदण्ड म स्थान दिया। अन्त मे इस विधि स जो मापदण्ड तैयार हुआ वह स्टेनफाड बीने मापदण्ड (Standford Binet Scale) स पूर्णत भिन्न है। ये परीक्षण उर्दू और पजाबी भाषा मे निर्मित किये गये। बाद म अन्य परीक्षणो का भी इसम समावेश हुआ। इस मापदण्ड का विभाजन सुविधा के लिए ६५ प्रकरण (Item) के एक मापदण्ड और दूसरा ३९ प्रकरण के मापदण्ड म किया गया है। छोटा मापदण्ड सतोषप्रद है, किन्तु बड़े मापदण्ड के अनुसार विश्वसनीय नहीं है।

वी वी कामत (V V Kamat) ने मराठी और कनाडी भाषाओं मे बीने मापदण्ड को विकसित किया है जो कई अशो म राइस परीक्षण स भिन्न है। उसने अपने बुद्धि-परीक्षणो क आधार पर बौद्धिक योग्यता म लड़कियो स लड़को को अधिक माना है। वह इसे भी स्वीकार करता है कि अमरीकी बच्चो की बुद्धि उपलब्धि का विस्तार (Range of I Q) अधिक होता है। इसी प्रकार ढाका ट्रेनिग कालेज, पटना ट्रेनिग कालेज, शिकारपुर, मद्रास, खजुआ (यू पी), कलकत्ता विश्वविद्यालय, आदि मे भी विभिन्न विद्वानों ने स्थानीय भाषाओं म बीने मापदण्ड का प्रमाणीकरण किया है।

डाक्टर जे मन्री (Dr J Manry of Christian college) ने भाषिक समूह परीक्षणों (Verbal group tests) का निर्माण सन् १९२७ ई० में उर्दू, हिन्दी और अंग्रेजी मे किया। यह विद्यार्थियों के वर्गीकरण के लिये अत्यधिक लाभप्रद है। इस परीक्षण मे सब मिलाकर सौ प्रश्न है।

श्री लज्जाशंकर झा ने भी सन् १९३३ ई० मे पाश्चात्य बुद्धि परीक्षणों का ही आधार लेकर दस वर्ष से लेकर अट्ठारह वर्ष तक के बच्चों के लिये सामूहिक परीक्षणों का निर्माण किया। उन्होंने टरमन के सामूहिक परीक्षण को भी परिमार्जित एवं संशोधित रूप में अपनाया है। इन परीक्षणों मे सफलता प्राप्त करने के लिये पर्याप्त योग्यता अपेक्षित है।

डी ए वी (D A V College) कालेज, लाहौर के एस जलोटा ने हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी मे एक सामूहिक परीक्षण का निर्माण विद्यालीय छात्रों के लिये किया है जो बहुत ही उपयोगी प्रमाणित हुआ है। जिज्ञासु पाठक उसका अध्ययन स्वतन्त्र रूप से कर सकते है। वर्त्तमान मे वे हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष पद पर रहते हुए बुद्धि-परीक्षणों के निर्माण मे प्रयत्नशील है।

इसके अतिरिक्त, आर आर कुमारिया, ट्रेनिंग कालेज लाहौर, कालेज विद्यार्थियों के लिये, डाक्टर ललित कुमार साह, लखनऊ ट्रेनिंग कालेज, गवर्नमेण्ट कोलम्बो ट्रेनिंग कालेज सी टी फिलिप, मद्रास, डाक्टर एस एम मुहसिन, (निर्देशक शिक्षा और व्यावसायिक निर्देशन, बिहार) एच सी बनर्जी, डी एन राय, टी पी भौमिक तथा स्वर्गीय एच पी मैती, आदि विद्वानों के सामूहिक परीक्षण भी इस दिशा मे प्रशसनीय है।

भारत सरकार की ओर से सन् १९५४ ई० मे शिक्षा और व्यावसायिक निर्देशन सस्थान (Educational and vocational guidance Bureau) की स्थापना होने के बाद दिल्ली तथा विभिन्न प्रान्तों के केन्द्रों मे कई बुद्धि-परीक्षणों का निर्माण होना शुरू हो गया है। ये परीक्षण भारतीय सभ्यता, सस्कृति और शिक्षा-विधि को ध्यान में रखकर बनाए गए है और इनके सहारे स्कूली विद्यार्थियों को पढाई सबन्धी निर्देशन दिए जाते है। डा० एस० एम० मुहसिन के निदेशन मे बिहार के निर्देशन केन्द्र से सामान्य-बुद्धि-मापन के सामूहिक परीक्षण (Group test) के अतिरिक्त कई बौद्धिक योग्यताओं को मापने वाले परीक्षण समूहों (Battery) का निर्माण और प्रमाणीकरण कई भारतीय भाषाओं में हो रहा है। अन्य प्रान्तीय निर्देशन केन्द्रों मे भी कई तरह की योग्यता परीक्षणों का निर्माण कार्य चल रहा है। इनमे शिक्षा और व्यवसाय सबन्धी निर्देशन में पर्याप्त सहायता मिलेगा।

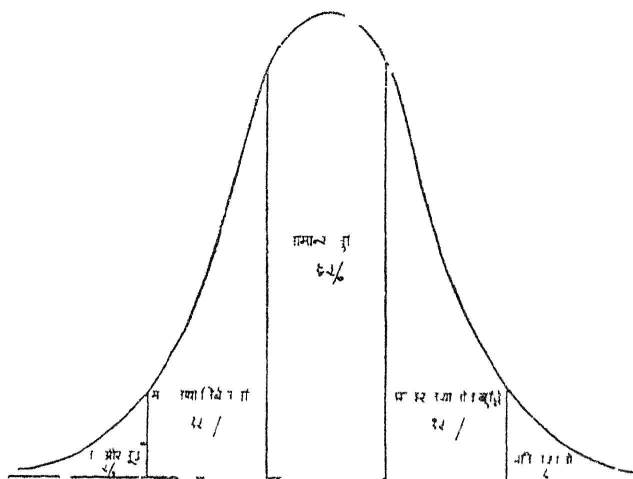
मेजेल ने निर्भाषिक सामूहिक परीक्षणों (Non-verbal group tests) का भी निर्माण भारतीय बच्चों के लिये किया है जो चित्रकारी की योग्यता पर आधारित है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमे भाषा की योग्यता की आवश्यकता नही पडती। प्राप्तांक आसानी से मालूम होते है और पांच वर्ष के ऊपर अधिक से अधिक बच्चों का परीक्षण एक साथ सम्भव है। लेकिन, इस परीक्षण का उपयोग करने के लिये परीक्षक में चित्रकारी के मूल्याकन की योग्यता होनी आवश्यक है। फिर भी, प्राप्तांक में आत्मगत बीजतत्त्वों का अधिक हाथ रहता है। लेकिन, सावधानी से व्यवहार करने पर इससे बुद्धि की काफी जानकारी हासिल होती है।

इन उपर्युक्त परीक्षणों का परिचय देने के बाद यह स्मरणीय है कि भारतवर्ष के विभिन्न अचलों में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती है। इसलिए अभी ऐसे निर्भाषिक सामूहिक बुद्धि परीक्षणों के निर्माण की आवश्यकता है जिनका उपयोग भारत के किसी भाग मे भी सफलता पूर्वक हो सके। आशा है विद्वानों के प्रयास से इस कमी की शीघ्र पूर्त्ति होगी।

बुद्धि-विभाजन

वैयक्तिक भिन्नता की व्याख्या के सिलसिले मे शीलगुणो के विभाजन पर प्रकाश डाला जा चुका है और बुद्धि विभाजन की भी चर्चा की गई है। अत यहाँ हम सक्षेप मे केवल इसका उल्लेख करेगे। विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने सशोधित एव परिवर्द्धित स्टैफोर्ड बिने परीक्षण के द्वारा बुद्धि-विभाजन का जो प्रयोग किया है उसके अध्ययन से यह पता चलता है कि किसी जन सख्या मे लगभग ६९ प्रतिशत व्यक्ति सामान्य बुद्धि (या उसके सन्निकट) के रहते है। इससे कुछ कम या कुछ अधिक बुद्धि उपलब्धि वालो की सख्या १९-१६ प्रतिशत है। जो व्यक्ति बहुत ही प्रतिभाशाली (Genius) या मन्दबुद्धि के होते है, उनकी सख्या १ २ और २ ३ प्रतिशत क्रमश होती है। इसे निम्नाकित विभाजन-वक्र के रूप मे उपस्थित कर सकते है।

चित्र सख्या ६९



बुद्धि विभाजक वक्र

जड़ (Idiot) से लेकर प्रतिभाशाली तक के लोगो को विभिन्न वर्गों मे बुद्धि-उपलब्धि के आधार पर बाँटा गया है। कितनी बुद्धि उपलब्धि के व्यक्ति को किस श्रेणी में रखा जाता है, यह निम्नाकित तालिका से मालूम होगा।

बुद्धि-उपलब्धि	बुद्धि-विभाजन की श्रेणी
० से २९ तक	जड़ (Idiot)
२९ से ५० तक	मूढ (Imbecile)

६० से ७० तक	मूर्ख (Moron)
७० से ८० तक	निर्बल बुद्धि
८० से ९० तक	मन्दबुद्धि (Dull)
९० से ११० तक	सामान्य बुद्धि (Normal)
११० से १२० तक	तीव्र बुद्धि (Superior)
१२० से १४० तक	प्रखर बुद्धि (Very superior)
१४० से ऊपर	प्रतिभाशाली (Genius)

इस दिशा मे जितने प्रयोग हुये है, उन सबका अध्ययन करने से पता चलता है कि जिनकी बुद्धि उपलब्धि ० से ७० तक होती है उनकी सख्या २ ४ प्रतिशत से अधिक नही है। ७० से ९० बुद्धि-उपलब्धि वालों की सख्या १९ प्रतिशत के लगभग और ९० से १२० तक बुद्धि उपलब्धि वालों की सख्या ६६ या ६९ प्रतिशत के लगभग है। इसी प्रकार जिन व्यक्तियों की उपलब्धि १२० से १४० तक या १४० से ऊपर है वे किसी जनसख्या के १२ ९ प्रतिशत मे ही पाये जाते है। जड (Idiot) की बुद्धि उपलब्धि (I Q) जिस प्रकार कम होती है, उसी प्रकार उसकी मानसिक आयु भी तीन वर्ष से अधिक नही होती है। ऐसा व्यक्ति अपनी जीवन समस्या सुलझाने मे पूर्णत असमर्थ होता है। मूढ (Imbecile) की मानसिक आयु तीन से सात वर्ष तक होती है और निर्देशन देने पर वह अपनी जीवन समस्याओं को कुछ अशों मे सुलझाने मे समर्थ होता है। मूर्ख व्यक्ति (Moron) दोना प्रकार के व्यक्तिया से श्रेष्ठ होता है और उसकी मानसिक आयु आठ से दस वर्ष तक होती है। ऐसे व्यक्ति पर सावधानी रखने की आवश्यकता है, क्योंकि वह इतना ससूचनशील (Suggestible) होता है कि दूसरे के बहकावे मे आकर बडा से बड़ा अपराध कर बैठता है।

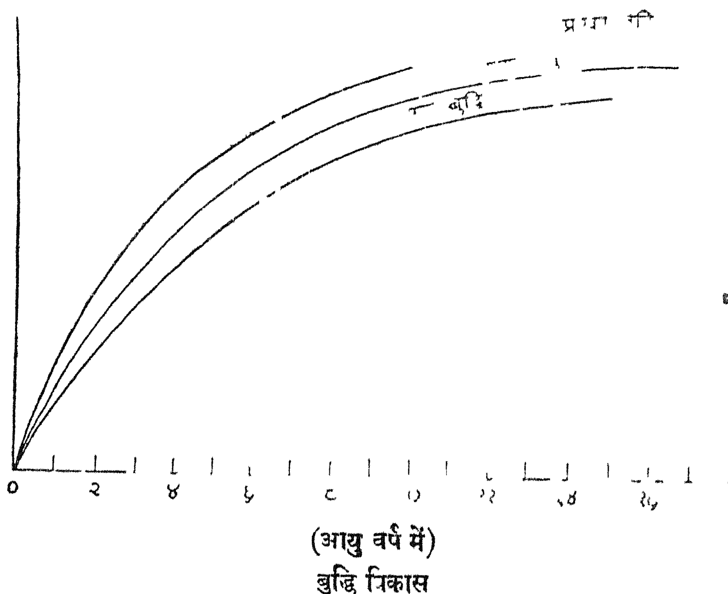
बुद्धि-विकास

बुद्धि विकास के सम्बन्ध मे सामान्य विचारधारा यह है कि मनुष्य की आयु की वृद्धि के साथ साथ उसकी बुद्धि का विकास होता है। इसलिए बचपन या किशोरावस्था में जो बुद्धि रहती है वह आगे चलकर पूर्ण विकसित होती है। ऐसा समझने का कारण यह है कि साधारणत हम बुद्धि तथा अनुभव या ज्ञान मे कोई अन्तर नही मानते। वस्तुत बुद्धि एक जन्मजात (Inborn) मानसिक योग्यता है। दूसरी ओर, अनुभव या ज्ञान अर्जित योग्यता है। इसलिये आयु वृद्धि के साथ साथ बराबर अनुभव या ज्ञान मे वृद्धि होती रहती है, किन्तु बुद्धि हमेशा नही बढ़ती। जन्म से लेकर एक निश्चित आयु तक बुद्धि विकसित होती है। फिर उसके बाद बुद्धि का विकास नही होता, बल्कि उम्र अधिक होने पर बुद्धि मे कमी होने लगती है।

बुद्धि में विकास होना किस आयु के बाद रुक जाता है, इस सिलसिले में कई प्रयोग हुए है। यर्क्स (Yerkes) ने बहुत अधिक सैनिको पर प्रयोग करके बतलाया कि बुद्धि १३-१४ वर्ष के अन्तर्गत पूर्ण विकसित हो जाती है, किन्तु थार्नडाइक इससे सहमत नहीं है। उसके अनुसार, बुद्धि का विकास १८ वर्ष के पहले अवरुद्ध नहीं

होता। उसका यह निर्णय दो प्रकार के परीक्षणों के आधार पर है, किन्तु सभी मनोवैज्ञानिक उससे सहमत नहीं हैं। उसने जिन व्यक्तियों की बुद्धि की जाँच की, वस्तुतः वे जनसंख्या के सही प्रतिरूपक (Representative) नहीं थे। इसके अतिरिक्त, उसका प्रयोग परिणाम अन्य अंगों के प्रभाव से भी पूर्णतः निर्मुक्त नहीं था। विकस्टर्थ ने इस समस्या को हल करने के लिये कई प्रकार के परीक्षणों का उपयोग किया, लेकिन उसके प्रयोग परिणाम में समरसता नहीं है। उसके कुछ परीक्षणों से यह स्पष्ट है कि बुद्धि-विकास की गति १६.९ वर्ष तक नहीं रुकती, लेकिन दूसरे परीक्षणों के अनुसार यह विकास क्रम १२.९ वर्ष के ही बाद रुक जाता है। इस प्रकार उसके अन्वेषण से थार्नडाइक के निर्णय की पुष्टि भी होती है और खण्डन भी। लेकिन, ऐसे प्रयोगों की भी कमी नहीं है जो थार्नडाइक के दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते हैं। जब इस दिशा में हम दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि ब्रुक्स (Brooks) ने जिन दो समुदायों पर प्रयोग किया उसमें उसे एक समुदाय में सोलह वर्ष के विकास क्रम के रुकने का कोई प्रमाण नहीं मिला और दूसरे में अट्ठारह वर्ष तक विकास-क्रम के जारी रहने का प्रमाण पर्याप्त रूप में मिला। लेकिन, इस सम्बन्ध में उसका कहना है कि सोलह के बाद वह विकास क्रम बहुत ही मन्द गति में लक्षित हुआ। इसी तरह, फ्रीमैन, डाल तथा स्पीयरमैन, आदि विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग करके विभिन्न परिणाम पाया है। उनकी व्याख्या न कर यहाँ हम स्टफार्ड बिने (संशोधित एवं परिवर्द्धित) परीक्षण के प्राप्तांकों से जो प्रमाणित हो सका है, उसके आधार पर यही कहना उचित समझते हैं कि सामान्य व्यक्ति की बुद्धि का विकास पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। लेकिन, जो मानसिक दुर्बल होते हैं उनका बुद्धि विकास केवल तेरह चौदह वर्ष की आयु में ही पूर्ण हो जाता है।

चित्र संख्या ६६



(आयु वर्ष में)

बुद्धि विकास

जो लोग सामान्य व्यक्तियों से बुद्धि मे श्रेष्ठ होते है, उनमे अठारह वर्ष या उसके एक दो वर्ष बाद तक भी विकास गति अवरुद्ध नही होती है। इस तरह श्रेष्ठ, सामान्य तथा मन्दबुद्धि व्यक्तियों का बुद्धिविकास, एक समान नही होता, जैसा कि पृष्ठ ४२० के चित्र से स्पष्ट है।

चित्र मे ऊपर की रेखा श्रेष्ठ व्यक्तियों के विकास की है, बीच की रेखा सामान्य व्यक्तिया की और निचली रेखा मन्दबुद्धि व्यक्तियो की है। जैसा कि चित्र से भी विदित होता है, सामान्य व्यक्तियों का बुद्धि विकास ४-९ वर्ष तक तीव्र गति से होता है। उसके बाद १०-११ वर्ष तक यह क्रम मन्द गति से चलता है। इसके बाद उसमें क्रमश रुकावट आ जाती है और अन्त मे १९ वर्ष के लगभग यह क्रम समाप्त हो जाता है। मन्दबुद्धि व्यक्तियों के विकास क्रम मे प्रारम्भ से अन्त तक मन्दता बनी रहती है और सामान्य तथा श्रेष्ठ बुद्धि वाले की अपेक्षा पहले ही वह गति क्रम समाप्त हो जाता है। जहाँ तक श्रेष्ठ बुद्धि वाले व्यक्तियों के बुद्धि विकास क्रम का प्रश्न है, वह उपर्युक्त क्रमा से भिन्न है। चूकि उनकी विकास गति बहुत ही तीव्र होती है और वह १३-१४ या १९ वर्ष की आयु मे समाप्त न होकर १८ वर्ष से आगे जाती है, इसीलिये किसी-किसी विद्वान ने इक्कीस वर्ष तक बुद्धि विकास की चरम सीमा माना है। इस सीमा के बाद बुद्धि मे किसी तरह की उन्नति नहीं देखी जाती। इस सम्बन्ध में यह भी स्मरणीय है कि २० वर्ष से ४०-४९ वर्ष तक बुद्धि मे प्राय किसी तरह की कमी नही देखी जाती, किन्तु इसके बाद उसमे ह्रास होने लगता है।

बुद्धि तथा आयु

हम बुद्धि विकास पर प्रकाश डालते हुये यह देख चुके है कि सामान्य व्यक्ति की बुद्धि पन्द्रह वर्ष के लगभग पूर्णत परिपक्व हो जाती है और उसके बाद कुछ दिनों तक उसमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन दिखलाई नहीं देता। किन्तु, ज्यों-ज्यों उसकी आयु अधिक होती जाती है त्यो-त्यों उसकी बुद्धि मे ह्रास होने लगता है। इस तरह, स्पष्ट है कि आयु का प्रभाव बुद्धि पर पडता है। इस दिशा मे भी पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। सैनिक साक्षर-परीक्षण (Army Alpha test) के द्वारा सैनिको की जो बुद्धि-उपलब्धि प्राप्त हुई है उससे यह मालूम होता है कि २० वर्ष के बाद क्रमश बुद्धि में ह्रास होने लगता है। किन्तु, यह ह्रास क्रम बहुत ही धीमा रहता है। चालीस वर्ष के बाद इसमें तीव्रता आ जाती है। एक सैनिक समूह के विभिन्न आयु के सैनिकों की बुद्धि मापी गई। विभिन्न आयु-समूह के सैनिकों की औसत बुद्धि निम्नांकित प्रकार की थी। ऐसा ही परिणाम आटिस आत्म-परीक्षण (Otis self-administering test) के प्रयोग से प्राप्त हुआ।

आयु	बुद्धि प्राप्तांक (Score)
२१—३० वर्ष	१४९
३१—४० „	१३३
४१—५० „	१२९
५१—६० „	१२०

मनोवैज्ञानिकों ने इस ह्रास का कारण दो प्रकार का व्यक्त किया है। उनका कहना है कि अधिक आयु होने पर मनुष्यों की ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल पड जाती है और अन्य दृष्टिकोणों से भी उनका शरीर परीक्षणों के योग्य नहीं रहता, इसलिए वे कम उम्र वालों की अपेक्षा कम बुद्धि प्राप्तांक पाते हैं। इसके अतिरिक्त, वे अनुशासन से इतने अधिक स्वतन्त्र होते हैं कि उन परीक्षणों में वे अच्छा नहीं करते जिनमें कि उन्हें समय का प्रतिबन्ध रहता है। यह देखने में आता है कि बुद्धि के वैसे परीक्षण में, जिसमें चौकसी और शीघ्रता की आवश्यकता पड़ती है, अधिक आयु के व्यक्ति कम बुद्धि प्राप्तांक पाते हैं। किन्तु, जिस परीक्षण का सम्बन्ध अनुभव और ज्ञान से रहता, उसमें इस प्रकार की बहुत ही कम क्षति देखने में आती है। फिर भी, ऐसे विद्वानों की कमी नहीं है जिन्होंने जीवन का विशिष्टपूर्ण कार्य अन्तिम दिनों में ही किया। ग्लैडस्टोन (Gladstone), एडीसन (Addison), प्रभृति विद्वानों के नाम इसी कोटि में आते हैं। विभिन्न प्रयोगात्मक प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो जितना अधिक शिक्षित होता है उसमें बुद्धि का ह्रास उतना ही कम होता है। दूसरी ओर, जिसकी शिक्षा अधूरी रहती है उसमें बुद्धि की अधिक क्षति दृष्टिगोचर होती है। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों का ऐसा दृष्टिकोण है कि शिक्षित मनुष्य जीवन के सभी पहलुओं में अपनी अभिरुचि रखता है, इसलिये मानसिक परीक्षणों में वह अच्छा करता है, किन्तु अशिक्षित मनुष्य की अभिरुचि सीमित रहती है जिसके फलस्वरूप वह बुद्धि-परीक्षणों में अच्छा नहीं करता है।

थार्नडाइक तथा लोर्ज (Lorge) ने भी विभिन्न आयु के प्रयोज्यों पर शिक्षण-योग्यता का प्रयोग करके यह प्रदर्शित कर दिया है कि आयु वृद्धि के साथ २० वर्ष के बाद बुद्धि में ह्रास होता है। उन्हीं के प्रयोगों से यह भी स्पष्ट है कि जिसमें समय का प्रतिबन्ध रहता है उसमें किसी प्रकार का ह्रास बुद्धि में नहीं दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त, कई प्रयोगों का अध्ययन करने से यह भी विदित होता है कि वैसे बुद्धि-परीक्षणों में, जिनका सम्बन्ध उच्च मानसिक प्रक्रियाओं से रहता है, यह क्षति नगण्य दीख पड़ती है। किन्तु, स्नायविक (Muscular) क्रियाओं से आबद्ध परीक्षणों में इसकी मात्रा अत्यधिक रहती है। अतएव हमलोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आयुवृद्धि के साथ साथ बुद्धि-उपलब्धि में कमी आती है। किन्तु, इस कमी की मात्रा व्यक्ति और परीक्षण विशेष पर निर्भर करती है।

बुद्धि-उपलब्धि की नित्यता
(Constancy of I. Q.)

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि यदि बुद्धि-उपलब्धि जन्मजात मानसिक योग्यता का द्योतक है तो इसका अभिप्राय यह है कि यह हमेशा एक ही तरह रहती है, इसमें कमी या वृद्धि नहीं होती। अभिप्राय यह कि यदि किसी पाँच वर्ष के बच्चे की उपलब्धि स्टैनफोर्ड-बिने-परीक्षण के द्वारा १०० प्राप्त होती है तो इसी अनुपात में वह एक वर्ष बाद भी रहती है। विद्वानों का कहना है कि जिस आयु तक बुद्धि विकास क्रम जारी रहता है, उस आयु तक बुद्धि-नित्यता में किसी प्रकार का अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। उन लोगों

ने यह भी व्यक्त किया है कि दो तीन मात्रा की कमी या बेशी उसकी नित्यता (Constancy) की सत्ता को निर्बल नही बनाती, क्योंकि कई अगो के परिवर्त्तन के कारण इतनी कमी बेशी नगण्य है। इस प्रकार, बहुसख्यक मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि-उपलब्धि की नित्यता को स्वीकार किया है। इस तरह यद्यपि बुद्धि-उपलब्धि की नित्यता को कोई अस्वीकार नही करता, तथापि कुछ स्थलों पर इसमे अत्यधिक परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होता है।

मन (Munn) ने अपनी पुस्तक मे दो ऐसे उदाहरणों को उद्धृत किया है जो बुद्धि उपलब्धि के परिवर्त्तन के द्योतक है। किन्तु, इस सम्बन्ध मे यह याद रखना होगा कि वैसा परिवर्त्तन स्वाभाविक है, जैसा कि हम वैयक्तिक भिन्नता मे देख चुके है। बुद्धि परीक्षण से जो बुद्धि उपलब्धि (I Q) प्राप्त होती है उस पर वातावरण का प्रभाव पडता है। यदि कोई बालक आज अच्छे वातावरण मे सामान्य बुद्धि का प्रमाणित होता है तो जगली वातावरण में रख दिये जाने पर एक वर्ष बाद उसकी बुद्धि उपलब्धि मे कमी दृष्टिगोचर होगी। इसी प्रकार अगर किसी साधारण वातावरण मे किसी की बुद्धि उपलब्धि आज १०० है तो शिक्षित एव सास्कृतिक वातावरण मे पडने पर एक वष बाद उसकी बुद्धि-उपलब्धि कुछ बढ जायगी।

बुद्धि उपलब्धि के परिवर्त्तन में शारीरिक अवस्था का बहुत हाथ रहता है। यदि आज कोई बालक स्वस्थ है और पुष्टिकर भोजन करता है और बाद मे उसे ऐसा अवसर नहीं मिलता तो उसकी बुद्धि-उपलब्धि मे परिवर्त्तन दिखाई देगा। इसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य भी इसे प्रभावित करता है। जो बालक किसी कारणवश भयभीत, क्रोधित या लज्जित है, उसकी बुद्धि का वास्तविक ज्ञान नही हो सकता। प्रयोगावस्था भी बुद्धि-उपलब्धि को कम मात्रा मे प्रभावित नही करती। प्रयोगशाला के सकीर्ण रहने या उसमें किसी प्रकार की विचित्रता रहने पर परीक्षार्थी की मानसिक अवस्था ऐसी विचलित हो जाती है कि उसकी बुद्धि का वास्तविक ज्ञान नही होता है। इतना ही नही, प्रयोक्ता की शारीरिक और मानसिक अवस्था भी परीक्षार्थी की बुद्धि-उपलब्धि को प्रभावित करती है। यदि प्रयोक्ता की शारीरिक गठन विचित्र होती है या वह अपटु होता है तो परीक्षार्थी की वास्तविक बुद्धि का ज्ञान नही होता। प्रयोग के समय प्रयोज्य एव प्रयोक्ता का पारस्परिक सहयोग अपेक्षित है। इसलिये, यदि प्रयोक्ता के व्यवहार में किसी प्रकार की कटुता रहती है तो उसे प्रयोज्य का सहयोग प्राप्त नही होता जिसके फलस्वरूप प्रयोज्य की वास्तविक बुद्धि उपलब्धि मालूम नहीं होती। इसलिये, उपर्युक्त प्रभावित करने वाले अगों के उल्लेख के बाद हम यही कहना उचित समझते है कि यदि किसी बालक और उसके वातावरण मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन न हो और अन्य अगो को सुव्यवस्थित रक्खा जाय तो बुद्धि उपलब्धि की नित्यता मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन नही हो सकता।

बुद्धि तथा जीविका

(Intelligence & Occupation)

कई प्रयोगात्मक आधारों पर विद्वानों ने बुद्धि और जीविका में सबन्ध प्रदर्शित किया है। उनका कहना है कि बुद्धि और जीविका मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। सैनिक साक्षर-परीक्षण के प्राप्ताकों का अध्ययन करने से पता लगता है कि जो सैनिक सेना में भर्त्ती होने के पहले

मनोवैज्ञानिकों ने इस ह्रास का कारण दो प्रकार का व्यक्त किया है। उनका कहना है कि अधिक आयु होने पर मनुष्यों की ज्ञानेन्द्रिया शिथिल पड़ जाती है और अन्य दृष्टिकोणों से भी उनका शरीर परीक्षणों के योग्य नही रहता, इसलिए वे कम उम्र वालों की अपेक्षा कम बुद्धि प्राप्तांक पाते है। इसके अतिरिक्त, वे अनुशासन से इतने अधिक स्वतन्त्र होते है कि उन परीक्षणो में वे अच्छा नही करते जिनमे कि उन्हे समय का प्रतिबन्ध रहता है। यह देखने मे आता है कि बुद्धि के वैसे परीक्षण मे, जिसमे चौकसी और शीघ्रता की आवश्यकता पड़ती है, अधिक आयु के व्यक्ति कम बुद्धि प्राप्तांक पाते है। किन्तु, जिस परीक्षण का सम्बन्ध अनुभव और ज्ञान से रहता, उसमें इस प्रकार की बहुत ही कम क्षति देखने मे आती है। फिर भी, एसे विद्वानों की कमी नही है जिन्होंने जीवन का विद्वत्तापूर्ण कार्य अन्तिम दिनो मे ही किया। ग्लैडस्टोन (Gladstone), एडीसन (Addison), प्रभृति विद्वानो के नाम इसी कोटि मे आते है। विभिन्न प्रयोगात्मक प्रमाणो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो जितना अधिक शिक्षित होता है उसमे बुद्धि का ह्रास उतना ही कम होता है। दूसरी ओर, जिसकी शिक्षा अधूरी रहती है उसमे बुद्धि की अधिक क्षति दृष्टिगोचर होती है। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों का ऐसा दृष्टिकोण है कि शिक्षित मनुष्य जीवन के सभी पहलुओं मे अपनी अभिरुचि रखता है, इसलिये मानसिक परीक्षणो मे वह अच्छा करता है, किन्तु अशिक्षित मनुष्य की अभिरुचि सीमित रहती है जिसके फलस्वरूप वह बुद्धि-परीक्षणों मे अच्छा नही करता है।

थार्नडाइक तथा लोर्ज (Lorge) ने भी विभिन्न आयु के प्रयोज्यो पर शिक्षण योग्यता का प्रयोग करके यह प्रदर्शित कर दिया है कि आयु वृद्धि के साथ २० वर्ष के बाद बुद्धि मे ह्रास होता है। उन्ही के प्रयोगो से यह भी स्पष्ट है कि जिसमें समय का प्रतिबन्ध रहता है उसमे किसी प्रकार का ह्रास बुद्धि मे नहीं दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त, कई प्रयोगो का अध्ययन करने से यह भी विदित होता है कि वैसे बुद्धि-परीक्षणों मे, जिनका सम्बन्ध उच्च मानसिक प्रक्रियाओं से रहता है, यह क्षति नगण्य दीख पड़ती है। किन्तु, स्नायविक (Muscular) क्रियाओं से आबद्ध परीक्षणो मे इसकी मात्रा अत्यधिक रहती है। अतएव हमलोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आयुवृद्धि के साथ साथ बुद्धि-उपलब्धि मे कमी आती है। किन्तु, इस कमी की मात्रा व्यक्ति और परीक्षण विशेष पर निर्भर करती है।

बुद्धि-उपलब्धि की नित्यता
(Constancy of I. Q.)

मनोवैज्ञानिको का कहना है कि यदि बुद्धि-उपलब्धि जन्मजात मानसिक योग्यता का द्योतक है तो इसका अभिप्राय यह है कि यह हमेशा एक ही तरह रहती है, इसमें कमी या वृद्धि नहीं होती। अभिप्राय यह कि यदि किसी पाच वर्ष के बच्चे की उपलब्धि स्टैनफोर्ड बिने-परीक्षण के द्वारा १०० प्राप्त होती है तो इसी अनुपात में वह एक वर्ष बाद भी रहती है। विद्वानों का कहना है कि जिस आयु तक बुद्धि विकास क्रम जारी रहता है, उस आयु तक बुद्धि-नित्यता में किसी प्रकार का अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। उन लोगों

ने यह भी व्यक्त किया है कि दो-तीन मात्रा की कमी या बेशी उसकी नित्यता (Constancy) की सत्ता को निर्बल नही बनाती, क्योकि कई अगो के परिवर्त्तन के कारण इतनी कमी बेशी नगण्य है। इस प्रकार, बहुसख्यक मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि-उपलब्धि की नित्यता को स्वीकार किया है। इस तरह यद्यपि बुद्धि-उपलब्धि की नित्यता को कोई अस्वीकार नही करता, तथापि कुछ स्थलों पर इसमे अत्यधिक परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होता है।

मन (Munn) ने अपनी पुस्तक मे दो ऐसे उदाहरणों को उद्धृत किया है जो बुद्धि उपलब्धि के परिवर्त्तन के द्योतक है। किन्तु, इस सम्बन्ध मे यह याद रखना होगा कि वैसा परिवर्त्तन स्वाभाविक है, जैसा कि हम वैयक्तिक भिन्नता मे देख चुके है। बुद्धि परीक्षण से जो बुद्धि उपलब्धि (I Q) प्राप्त होती है उस पर वातावरण का प्रभाव पडता है। यदि कोई बालक आज अच्छे वातावरण मे सामान्य बुद्धि का प्रमाणित होता है तो जगली वातावरण मे रख दिये जाने पर एक वर्ष बाद उसकी बुद्धि उपलब्धि मे कमी दृष्टिगोचर होगी। इसी प्रकार अगर किसी साधारण वातावरण मे किसी की बुद्धि उपलब्धि आज १०० है तो शिक्षित एव सास्कृतिक वातावरण मे पडने पर एक वर्ष बाद उसकी बुद्धि उपलब्धि कुछ बढ जायगी।

बुद्धि उपलब्धि के परिवर्त्तन में शारीरिक अवस्था का बहुत हाथ रहता है। यदि आज कोई बालक स्वस्थ है और पुष्टिकर भोजन करता है और बाद मे उसे ऐसा अवसर नहीं मिलता तो उसकी बुद्धि-उपलब्धि मे परिवर्त्तन दिखाई देगा। इसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य भी इसे प्रभावित करता है। जो बालक किसी कारणवश भयभीत, क्रोधित या लज्जित है, उसकी बुद्धि का वास्तविक ज्ञान नही हो सकता। प्रयोगावस्था भी बुद्धि उपलब्धि को कम मात्रा मे प्रभावित नही करती। प्रयोगशाला के सकीर्ण रहने या उसमें किसी प्रकार की विचित्रता रहने पर परीक्षार्थी की मानसिक अवस्था ऐसी विचलित हो जाती है कि उसकी बुद्धि का वास्तविक ज्ञान नहीं होता है। इतना ही नही, प्रयोक्ता की शारीरिक और मानसिक अवस्था भी परीक्षार्थी की बुद्धि-उपलब्धि को प्रभावित करती है। यदि प्रयोक्ता की शारीरिक गठन विचित्र होती है या वह अपटु होता है तो परीक्षार्थी की वास्तविक बुद्धि का ज्ञान नही होता। प्रयोग के समय प्रयोज्य एव प्रयोक्ता का पारस्परिक सहयोग अपेक्षित है। इसलिये, यदि प्रयोक्ता के व्यवहार में किसी प्रकार की कटुता रहती है तो उसे प्रयोज्य का सहयोग प्राप्त नही होता जिसके फलस्वरूप प्रयोज्य की वास्तविक बुद्धि उपलब्धि मालूम नहीं होती। इसलिये, उपर्युक्त प्रभावित करने वाले अगो के उल्लेख के बाद हम यही कहना उचित समझते है कि यदि किसी बालक और उसके वातावरण मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन न हो और अन्य अगों को सुव्यवस्थित रक्खा जाय तो बुद्धि उपलब्धि की नित्यता मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन नही हो सकता।

बुद्धि तथा जीविका

(Intelligence & Occupation)

कई प्रयोगात्मक आधारों पर विद्वानों ने बुद्धि और जीविका में सबन्ध प्रदर्शित किया है। उनका कहना है कि बुद्धि और जीविका मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। सैनिक साक्षर-परीक्षण के प्राप्तांकों का अध्ययन करने से पता लगता है कि जो सैनिक सेना मे भर्त्ती होने के पहले

श्रेष्ठ सामाजिक कार्यों से अपना जीविकोपार्जन करते थे उनकी बुद्धि चित्रकारी, क्लर्की, आदि कार्यों को करनेवालों से अधिक थी। जिनकी बुद्धि उपर्युक्त दो वर्गों से भिन्न और कम थी, वे वस्तुतः गृहस्थ, बढ़ई, दर्जी, नाई, श्रमिक (Labourer), आदि के कार्यों के द्वारा अपना जीवनयापन करते थे। श्रेष्ठ सामाजिक कार्यों से जीविकोपार्जन करने वालों में शिक्षक, वकील, चिकित्सक, इन्जीनियर, आदि थे।

केटिल (Cattell) ने इङ्गलेण्ड में विभिन्न जीविका में संलग्न व्यक्तियों की बुद्धि का जो अध्ययन किया उससे भी जीविका और बुद्धि के सम्बन्ध का पर्याप्त प्रमाण मिला। उसकी प्रयोग परिणाम तालिका का अध्ययन करने से मालूम होता है कि जो श्रमिक थे उनकी बुद्धि उपलब्धि ५० से ६० के बीच में थी, किन्तु जो उच्च व्यवसायी थे, उनकी बुद्धि उपलब्धि १५० के ऊपर थी। इसी प्रकार, अन्य प्रकार की जीविका में संलग्न व्यक्तियों की बुद्धि उपलब्धि में भी भिन्नता परिलक्षित हुई है।

इतना ही नहीं, बल्कि विभिन्न प्रकार की जीविका-संलग्न पिता की सन्तानों की बुद्धि भी पिता के ही अनुरूप होती है। इस कथन की पुष्टि कई प्रयोगों के द्वारा हुई है। उन प्रयोगों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यवसायी (Professional) व्यक्तियों की संतानों की बुद्धि उपलब्धि अन्य प्रकार की जिविका में लगे व्यक्तियों की संतानों से अधिक होती है। निम्नाङ्कित तालिका से उपर्युक्त कथन और भी स्पष्ट हो जायगा।

पिता का व्यवसाय	संतान की बुद्धि-उपलब्धि
ग्रामीण तथा नागरिक श्रमिक	९६ बु० उ०
अर्द्ध निपुण	९९ ”
साधारण क्लर्क, दूकानदार	१०४ ”
क्लर्क, खुदरा व्यापरी	१०७ ”
अर्द्धव्यवसायी, मैनेजर	१११ ”
व्यवसायी	११६ ”

इस तरह, प्रयोगों से स्पष्ट है कि बुद्धि और जीविकोपार्जन में संबंध है। लेकिन, इससे यह नहीं समझना चाहिये कि बुद्धि जीविकोपार्जन पर निर्भर करती है। जीविका में परिवर्त्तन कर लेने से बुद्धि में परिवर्त्तन नहीं होता। बात यह है कि हर व्यक्ति अपनी बुद्धि के अनुरूप ही जीविका का साधन भी चुनता है। जिसमें यह योग्यता कम होती है, वह ऐसे ही कामों को करता है जिसमें उसमें अधिक बुद्धि की आवश्यकता नहीं पड़े। चिकित्सक, आचार्य, अभियोगनियोक्ता (Pleader), आदि के कामों के लिये वस्तुतः अधिक बुद्धिमान होने की आवश्यकता है। इसलिये ऐसे कामों को वे ही अपनाते हैं जिनमें उसके अनुरूप अधिक बुद्धि होती है। जब व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुकूल पेशा नहीं मिलता तो उसकी बुद्धि और व्यवसाय में भी कोई संबंध नहीं रहता।

बुद्धि में जातीय और यौन-भिन्नताएँ
(Racial and sex differences in intelligence)

बुद्धि एक जन्मजात शक्ति है। जिस तरह व्यक्ति के हाथ पाँव, आदि शारीरिक अंग जन्म के ही समय वर्त्तमान रहते हैं उसी तरह उसमें बुद्धि भी जन्म के ही

समय रहती है। परिपक्वता (Maturation) के कारण जिस तरह शारीरिक अग प्रौढ और विकसित होते है उसी तरह, बुद्धि भी विकसित होती है। बुद्धि की इस व्याख्या के अनुसार, इस पर धर्म, सस्कृति और शिक्षा का कोई असर नहीं पडना चाहिए। लेकिन, इस सिलसिले मे जो प्रयोग हुए है उनसे बुद्धि मे जातीय भिन्नता का प्रमाण मिलता है। अमेरिका के सैनिकों पर सैनिक शाक्षर परीक्षण (Army Alpha test) का जो प्रयोग किया गया है उसका अध्ययन करने से यह प्रमाणित होता है कि अग्रेज सैनिकों के बुद्धि-प्राप्ताकों का मध्यगा (Median) ५९, उत्तरी अमेरिका के हब्शियों का ३९ और दक्षिणी अमेरिका के हब्शियों का १२ था। लेकिन, इस जातीय भिन्नता के सम्बन्ध में कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अग्रेज सैनिकों की शिक्षा की सुविधा के कारण उनका प्राप्ताक अधिक होना स्वाभाविक था। जिन उत्तरी अमेरिका के हब्शियों को दक्षिणी हब्शियों की अपेक्षा शिक्षा का अधिक अवसर मिला उनके प्राप्ताक दक्षिणी हब्शियों की अपेक्षा अधिक थे। अतएव यह भिन्नता जातीय भिन्नता के कारण नहीं, अपितु शिक्षा (वातावरण) की भिन्नता के कारण है। इसीलिए जातीय भिन्नता को पुष्ट करने के लिए पुन सेनिक निरक्षर परीक्षणों (Army Beta tests) का प्रयोग सैनिकों पर किया गया। लेकिन, उसमें भी अग्रेज सैनिकों के प्राप्ताक उत्तरी और दक्षिणी हब्शियों की अपेक्षा अधिक दीख पडे। फिर भी, इस अन्तर को जातीय भिन्नता के कारण मानना कठिन है। इन परीक्षणों मे कुशल होने मे भी शिक्षा और वातावरण का काफी हाथ रहता है। साथ ही, यह भी पता चला कि जो हब्शी बुद्धिमान और महत्त्वाकाक्षी होते थे वे अपना जीवन सुखमय बनाने के लिये दक्षिण से उत्तर अमेरिका की ओर चले जाते थे, इसलिये भी यह भिन्नता जातीय नही है।

गुडएनफ (Good Enough) ने इस दिशा मे जो प्रयोग पाठशालीय विद्यार्थियों पर किया है, उसका अध्ययन करने से भी बुद्धि मे जातीय भिन्नता प्रमाणित होती है। निर्माण परीक्षणों मे भारतीय बालकों की अपेक्षा अग्रेज बालक श्रेष्ठ प्रमाणित हुये। लेकिन, अशुद्धियो के दृष्टिकोण से उनमे किसी प्रकार की भिन्नता नही पाई गई। इतना ही नही, प्रयोग करने पर यह भी देखा गया है कि भारतीय, जापानी चीनी और अमेरिका वासियों की अपेक्षा मौखिक (Verbal) परीक्षणों मे हीन (Inferior) होते है, किन्तु निर्माण परीक्षणों मे वे चीन वासियों की अपेक्षा श्रेष्ठ होते है। वे कुछ पहलुओ मे अमेरिका वासियों से भी श्रेष्ठ प्रमाणित होते है।

इस सम्बन्ध मे डाक्टर सोहनलाल ने उत्तर प्रदेश के विभिन्न जाति और धर्म के पाठशालीय विद्यार्थियों की बुद्धि उपलब्धि की जो तालिका दी है, उसका अध्ययन करने से मालूम पडता है कि ब्राह्मण और शूद्र के बालकों की बुद्धि मे सबसे अधिक अन्तर है। इतना अन्तर अन्य जातियों के बीच नही है। इस भिन्नता का कारण वातावरण, शिक्षा, प्रभृति अगों को ही है, जाति विशेष को नही। शूद्रो के लालन पालन और शिक्षा की सुविधाएँ उतनी नही है जितनी कि ब्राह्मण जाति को।

इस तरह, बुद्धि मे जातीय भिन्नता का प्रमाण तोअवश्य मिला है, परन्तु इसे पूरी मान्यता देना युक्तिसगत नही है। पहली बात तो यह है कि अभी तक ऐसे बुद्धि परीक्षणों का निर्माण नही हो सका है जो व्यक्ति की मौलिक योग्यता को माप सके। प्रत्येक परीक्षण के

श्रेष्ठ सामाजिक कार्यों से अपना जीविकोपार्जन करते थे उनकी बुद्धि चित्रकारी, क्लर्की, आदि कार्यों को करनेवालों से अधिक थी। जिनकी बुद्धि उपर्युक्त दो वर्गों से भिन्न और कम थी वे वस्तुत गृहस्थ, बढ़ई, दर्जी, नाई, श्रमिक (Labourer), आदि के कार्यों के द्वारा अपना जीवनयापन करते थे। श्रेष्ठ सामाजिक कार्यों से जीविकोपार्जन करने वालों में शिक्षक, वकील, चिकित्सक, इन्जीनियर, आदि थे।

केटिल (Cattell) ने इङ्गलैण्ड में विभिन्न जीविका में सलग्न व्यक्तियों की बुद्धि का जो अध्ययन किया उससे भी जीविका और बुद्धि के सम्बन्ध का पर्याप्त प्रमाण मिला। उसके प्रयोग परिणाम तालिका का अध्ययन करने से मालूम होता है कि जो श्रमिक थे उनकी बुद्धि उपलब्धि ९० से ६० के बीच मे थी, किन्तु जो उच्च व्यवसायी थे, उनकी बुद्धि उपलब्धि १९० के ऊपर थी। इसी प्रकार, अन्य प्रकार की जीविका मे सलग्न व्यक्तियों की बुद्धि उपलब्धि में भी भिन्नता परिलक्षित हुई है।

इतना ही नही, बल्कि विभिन्न प्रकार की जीविका-सलग्न पिता की सन्तानों की बुद्धि भी पिता के ही अनुरूप होती है। इस कथन की पुष्टि कई प्रयोगों के द्वारा हुई है उन प्रयोगों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यवसायी (Professional) व्यक्तियों की सतानों की बुद्धि-उपलब्धि अन्य प्रकार की जीविका में लगे व्यक्तियों की सतानों से अधिक होती है। निम्नांकित तालिका से उपर्युक्त कथन और भी स्पष्ट हो जायगा।

पिता का व्यवसाय	सतान की बुद्धि-उपलब्धि
ग्रामीण तथा नागरिक श्रमिक	९६ बु० उ०
अर्द्ध निपुण	९९ "
साधारण क्लर्क, दूकानदार	१०४ "
क्लर्क, खुदरा व्यापरी	१०७ "
अर्द्धव्यवसायी, मेनेजर	१११ "
व्यवसायी	११६ "

इस तरह, प्रयोगों से स्पष्ट है कि बुद्धि और जीविकोपार्जन में सबध है। लेकिन, इससे यह नही समझना चाहिये कि बुद्धि जीविकोपार्जन पर निर्भर करती है। जीविका में परिवर्त्तन कर लेने से बुद्धि में परिवर्त्तन नहीं होता। बात यह है कि हर व्यक्ति अपनी बुद्धि के अनुरूप ही जीविका का साधन भी चुनता है। जिसमे यह योग्यता कम होती है, वह एसे ही कामों को करता है जिसमें उसमे अधिक बुद्धि की आवश्यकता नही पड़े। चिकित्सक, आचार्य, अभियोगनियोक्ता (Pleader), आदि के कामों के लिये वस्तुत अधिक बुद्धिमान होने की आवश्यकता है। इसलिए एसे कामों को वे ही अपनाते है जिनमे उसके अनुरूप अधिक बुद्धि होती है। जब व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुकूल पेशा नही मिलता तो उसकी बुद्धि और व्यवसाय में भी कोई सबध नहीं रहता।

बुद्धि में जातीय और योन-भिन्नताएँ

(Racial and sex differences in intelligence)

बुद्धि एक जन्मजात शक्ति है। जिस तरह व्यक्ति के हाथ-पांव, आदि शारीरिक अग जन्म के ही समय वर्त्तमान रहते हैं उसी तरह उसमें बुद्धि भी जन्म के ही

समय रहती है। परिपक्वता (Maturation) के कारण जिस तरह शारीरिक अग प्रौढ और विकसित होते है उसी तरह, बुद्धि भी विकसित होती है। बुद्धि की इस व्याख्या के अनुसार, इस पर धर्म, सस्कृति और शिक्षा का कोई असर नहीं पडना चाहिए। लेकिन, इस सिलसिले मे जो प्रयोग हुए है उनसे बुद्धि मे जातीय भिन्नता का प्रमाण मिलता है। अमेरिका के सैनिकों पर सैनिक शाक्षर परीक्षण (Army Alpha test) का जो प्रयोग किया गया है उसका अध्ययन करने से यह प्रमाणित होता है कि अग्रेज सैनिकों के बुद्धि प्राप्ताकों का मध्यगा (Median) ९९, उत्तरी अमेरिका के हब्शियों का ३९ और दक्षिणी अमेरिका के हब्शियो का १२ था। लेकिन, इस जातीय भिन्नता के सम्बन्ध में कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अग्रेज सैनिकों की शिक्षा की सुविधा के कारण उनका प्राप्ताक अधिक होना स्वाभाविक था। जिन उत्तरी अमेरिका के हब्शियों को दक्षिणी हब्शियों की अपेक्षा शिक्षा का अधिक अवसर मिला उनके प्राप्ताक दक्षिणी हब्शियों की अपेक्षा अधिक थे। अतएव यह भिन्नता जातीय भिन्नता के कारण नहीं, अपितु शिक्षा (वातावरण) की भिन्नता के कारण है। इसीलिए जातीय भिन्नता को पुष्ट करने के लिए पुन सैनिक निरक्षर परीक्षणों (Army Beta tests) का प्रयोग सैनिकों पर किया गया। लेकिन, उसमें भी अग्रेज सैनिकों के प्राप्ताक उत्तरी और दक्षिणी हब्शियों की अपेक्षा अधिक दीख पडे। फिर भी, इस अन्तर को जातीय भिन्नता के कारण मानना कठिन है। इन परीक्षणा मे कुशल होने मे भी शिक्षा और वातावरण का काफी हाथ रहता है। साथ ही, यह भी पता चला कि जो हब्शी बुद्धिमान और महत्त्वाकाक्षी होते थे वे अपना जीवन सुखमय बनाने के लिये दक्षिण से उत्तर अमेरिका की ओर चले जाते थे, इसलिये भी यह भिन्नता जातीय नही है।

गुडएनफ (Good Enough) ने इस दिशा मे जो प्रयोग पाठशालीय विद्यार्थियों पर किया है, उसका अध्ययन करने से भी बुद्धि मे जातीय भिन्नता प्रमाणित होती है। निर्माण परीक्षणो मे भारतीय बालकों की अपेक्षा अग्रेज बालक श्रेष्ठ प्रमाणित हुये। लेकिन, अशुद्धियो के दृष्टिकोण से उनमे किसी प्रकार की भिन्नता नही पाई गई। इतना ही नही, प्रयोग करने पर यह भी देखा गया है कि भारतीय, जापानी चीनी और अमेरिका वासियों की अपेक्षा मौखिक (Verbal) परीक्षणों मे हीन (Inferior) होते है, किन्तु निर्माण परीक्षणों में वे चीन वासियों की अपेक्षा श्रेष्ठ होते है। वे कुछ पहलुओ मे अमेरिका-वासियों से भी श्रेष्ठ प्रमाणित होते है।

इस सम्बन्ध मे डाक्टर सोहनलाल ने उत्तर प्रदेश के विभिन्न जाति और धर्म के पाठशालीय विद्यार्थियों की बुद्धि उपलब्धि की जो तालिका दी है, उसका अध्ययन करने से मालूम पडता है कि ब्राह्मण और शूद्र के बालकों की बुद्धि मे सबसे अधिक अन्तर है। इतना अन्तर अन्य जातियों के बीच नही है। इस भिन्नता का कारण वातावरण, शिक्षा, प्रभृति अगों को ही है, जाति विशेष को नही। शूद्रो के लालन पालन और शिक्षा की सुविधाएँ उतनी नही है जितनी कि ब्राह्मण जाति को।

इस तरह, बुद्धि मे जातीय भिन्नता का प्रमाण तो अवश्य मिला है, परन्तु इसे पूरी मान्यता देना युक्तिसगत नही है। पहली बात तो यह है कि अभी तक ऐसे बुद्धि परीक्षणों का निर्माण नही हो सका है जो व्यक्ति की मौलिक योग्यता को माप सके। प्रत्येक परीक्षण के

प्राणाक मे शिक्षा, सस्कृति, आदि वातावरण सम्बन्धी अगो का प्रभाव पड़ता है। दूसरी बात यह कि प्रत्येक बुद्धि परीक्षण का निर्माण और प्रमाणीकरण किसी खास सस्कृति के लोगो पर हुआ है। इसलिए, उस परीक्षण पर दूसरी सस्कृति के लोगो का अच्छा नही करना, स्वाभाविक है। इससे बुद्धि की कमी का अनुमान करना सही न होगा। तीसरी बात यह कि यद्यपि बुद्धि जन्मजात योग्यता है, तथापि इसके विकास और प्रस्फुटन के लिए समुचित शिक्षा और वातावरण का होना जरूरी है। जब तक बुद्धि के प्रस्फुटन का अवसर नही मिलता, तब तक कहा जा सकता कौन बुद्धिमान है। यही कारण है कि लोग ऐसा मानते है कि देहात से शहर और असभ्य से सभ्य वातावरण मे आने पर लोगो की बुद्धि कुछ बढ जाती है। वस्तुत वातावरण मे परिवर्त्तन से बुद्धि नही बढती, वह तो पहले से ही उतनी ही रहती है, लेकिन उसके प्रकट होने का अवसर यहाँ मिल जाता है। अत किसी सस्कृति मुक्त बुद्धि-परीक्षण के अभाव मे निश्चित रूप से कहना मुश्किल है कि सच ही दो जातियो की बुद्धि मे मौलिक भिन्नता होती है या नही।

बुद्धि मे यौन-भिन्नता क्योकर परिलक्षित होती है, इस पर 'वैयक्तिक भिन्नता' मे प्रकाश डाला जा चुका है, इसलिये इस स्थल पर हम इतना ही कहना पर्याप्त समझते है कि विभिन्न प्रयोगो का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि किसी परीक्षण मे लड़के तो किसी मे लड़कियाँ श्रेष्ठ प्रमाणित होती है। टरमन ने स्टफोर्ड-बिने परीक्षण का प्रयोग करके बतलाया कि १४ वर्ष की आयु तक लड़कियो की बुद्धि लडकों की अपेक्षा अधिक होती है। उसके बाद उनमे बौद्धिक अन्तर दृष्टिगोचर नही होता है। सामूहिक परीक्षणो मे किसी प्रकार की भिन्नता विषम लिंगियो की बौद्धिक योग्यता मे नही पाई गई है। बर्ट (Burt) ने भी जो प्रयोग ५००० बच्चों पर किया है उससे यही प्रमाणित होता है कि १४ वर्ष तक लड़कियां निस्सदेह लडकों की अपेक्षा बुद्धि मे श्रेष्ठ होती है, किन्तु बाद मे यह श्रेष्ठता नही रहती। इस भिन्नता के कारण को व्यक्त करते हुये उसका कहना है कि इस आयु तक लडकियों का शारीरिक और मानसिक विकास लड़को की अपेक्षा तीव्र गति से होता है इसलिये यह भिन्नता दिखलाई पडती है। जब दोनो विकास क्रम मे बराबर हो जाते है तो यह भिन्नता नष्ट हो जाती है। अन्य विद्वानो का भी यही कहना है।

बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता

इन दिनों बुद्धि परीक्षणों का काफी प्रचार हो गया है और शिक्षा तथा व्यवसाय के विभिन्न क्षेत्रों मे इसका काफी उपयोग हो रहा है। भारत मे पिछले कुछ वर्षो से ही इसका उपयोग विशेष रूप से होना शुरू हुआ है। इसका आधार पाश्चात्य देशो के अनुसधान और उपयोगिता-परीक्षण है।

जब बुद्धि-परीक्षणों की व्यवस्था नही थी तब विद्यालय मे छोटे छोटे विद्यार्थियो को उनकी बुद्धि के आधार पर विभिन्न श्रेणियों मे बाँटने का कोई साधन नहीं था। इसलिये सभी प्रकार के बालको की शिक्षा एक ही साथ और एक ही माध्यम से होती थी। इसका परिणाम यह होता था कि सामान्य बुद्धि के विद्यार्थी तो उस शिक्षा से लाभान्वित होते थे, लेकिन औसत से कम या अधिक बुद्धि के बालकों को किसी प्रकार का लाभ नहीं

ोता था। लेकिन, आज बुद्धि-परीक्षणों के परिणामस्वरूप कई पाश्चात्य देशों मे बालकों को नकी बुद्धि के आधार पर तीन श्रेणियों—अ, ब, स, मे विभक्त करके उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है। इस व्यवस्था से विद्यार्थियों का जितना उपकार हुआ है, वह शिक्षित माज से छिपा हुआ नही है। विभिन्न बुद्धि उपलब्धि के बालको को विभिन्न ाधनो और विभिन्न विधियों से शिक्षा दी जाती है और सभी विद्याथी अपने विषय से चि रखते है। निश्चित समय व्यवधानो पर बुद्धि परीक्षणो का व्यवहार उन विद्यार्थियों र होता रहता है और जो विद्याथा जिस श्रेणी के अनुरूप अपने को प्रमाणित करता , वह पुन उसी श्रेणी मे रख दिया जाता है। इस प्रकार विदेशों मे बौद्धिक विकास अनुरूप शिक्षा देने की व्यवस्था बुद्धि परीक्षणों के ही कारण हो सकी है।

जैसा कि हम पहले ही व्यक्त कर चुके है, हम लोगो मे विभिन्न प्रकार की बौद्धिक ोग्यताएँ होती है जिनका ज्ञान बुद्धि परीक्षणों के ही द्वारा होता है। इसलिये, कई देशो १ ११ वर्ष के बाद वाले विद्यार्थियों के लिये तीन प्रकार की पाठशालाओं का प्रबन्ध किया गया है और जो विद्यार्थी जिस योग्य रहता है उसे उसमे अध्ययन करने की पूरी वतत्रता रहती है। उन पाठशालाओ मे प्रवेश करने के पहले उनकी बौद्धिक योग्यताओं ी परीक्षा कर ली जाती है।

इन परीक्षणों के अभाव मे बुद्धिमान और मन्दबुद्धि के बालकों का ज्ञान प्राप्त करना सभव था, इसलिये मन्दबुद्धि बालकों की शिक्षा का कोई विशेष प्रबन्ध नही था। सका परिणाम इतना बुरा था कि मन्दबुद्धि बालक सामान्य बुद्धि के बालकों के बीच मे ीनभाव (Inferiority feeling) से पीड़ित रहता था और उसे उस शिक्षा से किसी कार का लाभ नही होता था। किन्तु, आज बुद्धि परीक्षणो का व्यवहार कर विदेशों ं मानसिक दुर्बल बच्चों की जानकारी आसानी से हो जाती है और उनकी शिक्षा का से ही बालको के साथ प्रबन्ध किया जाता है। पाश्चात्य देशों मे मानसिक दुर्बल च्चों के लिये विशेष प्रकार की पाठशालाओं का आयोजन किया गया है, जहाँ उनकी बुद्धि के अनुरूप ही साधना के द्वारा उन्हे शिक्षा दी जाती है। इस सम्बन्ध मे ह स्मरणीय है कि ऐसे बालकों का विभाजन भी तीन प्रकार की श्रेणियों मे हता है। जिनमें यह दोष अत्यधिक मात्रा मे रहता है उन्हे साधारणतम प्रकार के ामों को करने की शिक्षा दी जाती है और जिनमे यह दोष कम मात्रा मे रहता है, उन्हे लिखने पढने तथा अन्य व्यावहारिक कार्यों की शिक्षा दी जाती है जिससे वे सफल प्राणी न सके और इसमें सफलता भी मिलती है। दर्जी, बढई, चटाई बुनने, आदि के कार्यों की शिक्षा ऐसी सस्थाओ की अपनी विशेषता है।

जैसा कि हमलोग जानते है, पाठशालीय कार्यों मे विद्यार्थी दो कारणों से अपने अन्य साथियों से पिछड जाता है। उसमे ऐसी कमजोरी बुद्धि के अभाव के कारण भी देखने मे आती है और ऐसा गृह अथवा पाठशाला के प्रतिकूल वातावरण के कारण भी देखने मे आता है। इसलिये विदेशा मे जब कोई बालक अपने वर्ग मे पिछड़ता हुआ दिखलाई देता है तो शीघ्र ही उसकी बुद्धि की जाँच की जाती है और उसके पिछड़ने के कारण को जानकर उसके विशेष अध्यापन का प्रबन्ध किया जाता है। ऐसे विद्यार्थियों का एक विशिष्ट वर्ग होता है जिनके अध्यापन का प्रबन्ध भी विशिष्ट प्रकार का होता है।

शिक्षा क्षेत्र के अतिरिक्त, जीवन के अन्य क्षेत्रों मे भी बुद्धि परीक्षणों से लाभ हो रहा है। विभिन्न कार्यों के लिये विभिन्न प्रकार की मानसिक योग्यताओं की आवश्यकता पड़ती है। कुछ कार्यों मे अधिक बुद्धि की ओर कुछ कार्यों के लिये कम बुद्धि की जरूरत होती है। इसलिये अब किसी व्यक्ति की बुद्धि को जानकर तो उसे किसी कार्य या दिशा विशेष की ओर अग्रसर होने की सलाह दी जाती है। यही कारण है कि भारतीय सरकार ने भी कई स्थानों पर व्यक्ति विशेष की योग्यता के अनुसार ही कार्य देने की व्यवस्था की है। पद नियुक्ति (Appointment) के लिये साक्षात्कार (Interview) की व्यवस्था इसी दृष्टिकोण से की गई है। इण्डियन पुलिस सर्विस की प्रतियोगिता-परीक्षा मे जो सफल होते है, उनके लिये बुद्धि परीक्षण मे उत्तीर्ण होना जरूरी होता है। औपचारिक (Clinical) दृष्टिकोण से भी बुद्धि परीक्षणों का महत्त्व कम नहीं है। जब किसी बालक मे किसी प्रकार का अभियोजन दोष दिखलाई पडता है तो उस अभियोजन विकृति (Maladjustment) के कारण को जानने के पहले उसकी बुद्धि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, क्योंकि बुद्धि और अभियोजन दोष मे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जब बुद्धि का ज्ञान परीक्षणों द्वारा प्राप्त कर लिया जाता है तो उसकी समस्या सरल हो जाती है। क्योंकि, मनोवैज्ञानिक चिकित्सक को उसकी विकृति के वास्तविक कारणों का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। तब वह उस बालक के अभियोजन के लिये मानसिक चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध करता है। अपने देश मे बुद्धि मापन के सहारे शिक्षा और व्यावसायिक निर्देशन (Educational & vocational guindance) मे काफी सहायता ली जा रही है। प्रत्येक प्रान्त मे इस तरह के निर्देशन संस्थान तरह तरह के बुद्धि परीक्षणों का निर्माण कर रहे है। बुद्धि की जांच कर आठवें वर्ग के बाद यह निर्देशन दिया जाता है कि वह कौन सा विषय पढे। इसी तरह, बुद्धि के अनुकूल व्यवसाय और जीविका सम्बन्धी निर्देशन स्कूल छोड़ने वाले को दिया जाता है। आशा है, बुद्धि-परीक्षण के अन्य उपयोग भी किए जायेंगे।

तेरहवाँ अध्याय

भाव (Feeling)

भाव का स्वरूप

प्राचीन विद्वानों ने भाव का प्रयोग स्पर्श (Touch) और अन्तरावयव (organic) सवेदनाओं के अर्थ मे किया है। इसी तरह और लोगों ने इसका व्यवहार अन्य अस्पष्ट एव अनिश्चित मानसिक चेतना को व्यक्त करने के लिए किया है। 'मुझमे पुस्तक लिखने का भाव उत्पन्न हुआ', 'मेरा भाव आपके प्रति पूर्ववत बना रहेगा', 'मै अपने भाव को व्यक्त करने मे असमर्थ हूँ', 'मै इस समय सुखद (Pleasant) भाव का अनुभव कर रहा हूँ', आदि विभिन्न वाक्यों से पाठकों को यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस पद का व्यवहार विभिन्न अर्थो मे कैसे होता आया है। यद्यपि जितने वाक्यों मे भाव पद का प्रयोग ऊपर किया गया है, उनसे किसी प्रकार की मानसिक चेतना का ही बोध होता है, लेकिन इस पद का ऐसा दोषपूर्ण व्यवहार मनोविज्ञान के लिए मान्य नही है।

वस्तुत कूटस्थ तथा सरल भावात्मक (Affective) मानसिक प्रक्रिया को ही भाव कहते है। विद्वानों ने विश्लेषणात्मक अध्ययन करके यह व्यक्त किया है कि इसके दो पहलू होते है—सुखद (Pleasant) और दु खद (Unpleasant)। अत इसकी परिभाषा देते हुए हम कह सकते है कि भाव वह कूटस्थ तथा सरल भावात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिससे हमे सुखद या दु खद अनुभूति होती है। इस प्रकार, सुखद दु खद, रुचिकर अरुचिकर और इन्ही के समकक्ष अन्य मानसिक अनुभूतियों को भाव कहते है। मन की यह अवस्था ज्ञानात्मक और इच्छात्मक (conative) अवस्थाओं से पूर्णत भिन्न है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने विरक्ति (Indifference) को भी एक प्रकार का भाव माना है, लेकिन हम उनके विचार से सहमत नहीं है। सुखद और दु खद एक दूसरे के विरोधी हैं, लेकिन विरक्ति का विरोधी भाव कोई नही होता, अत इसे एक भाव मानना युक्ति सगत नही है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अन्य मानसिक प्रक्रियाओं से अलग करते हुए इसे एक आत्मगत अनुभव कहा है। लेकिन, आत्मगत मात्र कह देने से हम इसे अन्य मानसिक प्रक्रियाओं से अलग नहीं कर सकते। कल्पना, दिवास्वप्न, स्वप्न, विभ्रम (Hallucination), आदि भी हमारे आत्मगत अनुभव है। अतएव इस पद का ऐसा व्यवहार उचित नही है।

इसी प्रकार, जिन मनोवैज्ञानिकों ने इसे एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया कह कर अन्य मानसिक प्रक्रियाओं से अलग करने की कोशिश की है, उन्हे भी अपने प्रयत्न मे सफलता नहीं मिल सकी है। सवेदना, स्वप्न, आदि की मानसिक प्रक्रियाएँ भी अन्य मानसिक प्रक्रियाओं से तुलनात्मक दृष्टि से निष्क्रिय कही जाती है। अतएव इस आधार पर भाव को अन्य मानसिक प्रक्रियाओं से अलग करना सभव नही है। इसके अतिरिक्त भी, यह प्रक्रिया स्वतः निष्क्रिय नही कही जा सकती, क्योंकि इसको अनुभव करनेवाला ही निष्क्रिय रहता है, यह प्रक्रिया नहीं।

इन उपर्युक्त तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए इसके स्वरूप को और भी स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते है कि यह ज्ञानात्मक एव इच्छात्मक मानसिक प्रक्रियाओं से भिन्न तथा स्वतन्त्र मानसिक प्रक्रिया है जो पूर्णत स्वतन्त्र और सरल है। इसलिये इसका विश्लेषण करना सभव नही है। यह अत्यत चचल और क्षणिक स्वरूप की होती है। अन्तनिरीक्षण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हममे सुखद या दु खद भाव उत्पन्न होकर तत्क्षण विलीन हो जाता है, अत इसका स्वरूप अत्यन्त चचल और क्षणिक है। इसी कारण इसका नियन्त्रण करना भी सम्भव नही हो पाता।

इससे हमारा अग विशेष प्रभावित नही होता, बल्कि इसका असर हमारे सम्पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक पहलू पर पडता है। हम इसे शरीर के किसी अग विशेष मे स्थापित भी नही कर सकते है। इस प्रकार, भाव सम्पूर्ण जीव (Organism) को ही प्रभावित करता है।

दो विरोधी भावों का अनुभव करना सर्वथा असभव है। जिस समय हम सुखद भाव का अनुभव करते है, उस समय हममे दुखद भाव नही रहता, इसी तरह दुखद भाव के समय हममे सुखद भाव भी नही रहता है। यहाँ स्मरणीय है कि कुछ विद्वानो ने दो विरोधी भावों के एक साथ अनुभव करने के प्रमाण को उपस्थित करने का प्रयास किया है, लेकिन उनका विचार अभी तक विवाद ग्रस्त ही है। अतएव हम यही कहना उचित समझते है कि वस्तुत कोई व्यक्ति दो विरोधी भावों का अनुभव एक साथ नही कर सकता।

हमारे भावो की उत्पत्ति विभिन्न सवेदनाओं से होती है। रुचिकर सवेदना से सुखद और अरुचिकर सवेदनाओं से दु खद भाव उत्पन्न होता है। मधुर ध्वनि सवेदना या दृष्टि-सवेदना से हम सुखद भाव का अनुभव करते है, लेकिन कटु स्वाद सवेदना, दुर्गन्ध घ्राण सवेदना या दुखद अन्तरावयव या त्वक सवेदना से हम दु खद भाव का अनुभव करते है।

हमारी इच्छाओ की सतुष्टि और क्रियाओ की सफलता से भी हमे सुखद भाव की अनुभूति होती है। इसके विपरीत, इच्छाओ की असतुष्टि और क्रियाओ के विघ्न से हमें दुखद भाव की अनुभूति होती है। हम परीक्षा म पास करने के लिए अपने विषय को पढना चाहते है, किंतु विभिन्न लोगो के आने से उसमे बाधा पड़ती है। हम झल्ला उठते है और दु खद भाव का अनुभव करते है। हमारी इच्छा परीक्षा मे सर्व प्रथम होने की है, हमने प्रयास भी उचित दिशा म किया है। लेकिन, परीक्षा फल निकलने पर हम दूसरा स्थान मिलता है। हमारी इच्छा असतुष्ट हो जाती है और इस असतुष्टि के फलस्वरूप हममे दुखद भाव उत्पन्न होता है। इससे यह स्पष्ट है कि हमारे भावो के मनोवैज्ञानिक आधार हमारी सवेदनाएँ और क्रियाएँ ही है। इसीलिये कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भ्रमवश इसे एक अन्तरावयव, पीडा या रुचिकर सवेदना माना है। किन्तु, वास्तव भाव न तो कोई सवेदना विशेष है और न किसी सवेदना का गुण (Attribute) विशेष ही। हा, इतना अवश्य है कि सभी प्रकार की सवेदनाओ के साथ-साथ किसी न किसी प्रकार के भाव का अनुभव अधिकाश अवसरो पर होता है। अतएव एसे दोषों से बचने तथा इसके स्वरूप के स्पष्ट एव निश्चित ज्ञान के लिये इसे संवेदना से भिन्न कर देना आवश्यक है।

भाव तथा संवेदना में अन्तर

अधिकांश सवेदनाओं के साथ हमलोग सुखद या दुःखद भाव का अनुभव करते है, इसलिये कुछ मनोवैज्ञानिको ने भाव और सवेदना को एक ही माना है। किंतु, वस्तुत इन दोनो मे इतनी भिन्नता है कि इन्हे एक समझना कदापि उचित नही है। अतएव इन दोनों के अन्तरों का यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक है।

जैसा कि हमलोग जानते है, सवेदना के लिए एक विशेष इन्द्रिय की जरूरत पडती है, किंतु भाव के लिये किसी इन्द्रिय विशेष की आवश्यकता नही होती। आँख, कान, नाक, आदि इन्द्रियों से क्रमश दृष्टि, ध्वनि या घ्राण सवेदना का अनुभव होता है, लेकिन सुख या दुःख के भाव के लिये कोई भी इन्द्रिय निश्चित नही है। सुखद या दुःखद भाव किसी भी उत्तेजना से उत्पन्न हो सकता है, लेकिन ध्वनि सवेदना कान या घ्राण सवेदना नाक के ही द्वारा हो सकती है, अन्य किसी इन्द्रिय से नही। कुछ विद्वानों का विचार है कि पीडा सवेदना और दुःखद भाव एक ही है, लेकिन उनका यह दृष्टिकोण पूर्णत दोष पूर्ण है। पीडा की सवेदना के लिये त्वचा में विशिष्ट प्रकार के पीडाग्राहक या विन्दु होते है जिनको उत्तेजित करने से पीडा सवेदना होती है। लेकिन, दुःखद भाव के लिये त्वचा या शरीर के और किसी अग मे कोई इन्द्रिय ऐसी निश्चित नहीं है जिसके द्वारा उसका अनुभव किया जा सके। इसके अतिरिक्त भी, यह आवश्यक नहीं कि पीडा सवेदना दुःखद या अरुचिकर ही हो। सामान्यत ऐसे उदाहरणों की कमी नही है जिसमे कम प्रबलता की पीड़ा सवेदना सुखद या रुचिकर मालूम होती है।

किसी सवेदना पर ध्यान लगाने से वह बहुत ही स्पष्ट हो जाती है, लेकिन भाव के लिये यह सत्य नही है। सुख या दुःख के भाव पर ध्यान देने से ही वह विलीन हो जाता है। इस कथन को अच्छी तरह समझने के लिए यह स्मरणीय है कि जब कोई व्यक्ति पेट या मस्तक दर्द पर विचार करता है तो निस्सन्देह वह दर्द बढ जाती है। लेकिन, वह ज्यो ही अन्तर्निरीक्षण द्वारा यह देखने का प्रयास करता है कि यह सवेदना क्यों और क्योकर दुखद है त्यों ही उसका दुखद भाव विलीन हो जाता है। यही दूसरे भाव के लिये भी सत्य है। अन्तर्निरीक्षण द्वारा इस कथन की सत्यता की परीक्षा आसानी से की जा सकती है।

किसी भी सवेदना का स्थानीयकरण आसानी से होता है, लेकिन भाव का स्थानीय करण नही होता। दूसरे शब्दों मे हम कह सकते है कि सवेदना का असर हमारे शरीर के भाग विशेष पर, किंतु भाव का असर सम्पूर्ण शरीर पर पडता है। अन्तरावयव सवेदना का भी स्थानीयकरण होता है, लेकिन भाव का स्थानीयकरण किसी भी हालत मे होना सभव नही है।

सवेदना की प्रतिक्रियाएँ विधेयात्मक होती है, क्योंकि ये किसी बाह्य उत्तेजना के सम्बन्ध में कुछ व्यक्त करती है, लेकिन भाव आत्मगत होता है। इस तरह सवेदना वाह्य विश्व का ज्ञान देती है, लेकिन भाव जीव के आन्तरिक जगत की अवस्था को व्यक्त करता है। इसके अतिरिक्त भी, सवेदना विधेयात्मक इसलिए है कि एक उत्तेजना से उत्पन्न सवेदना का अनुभव सभी सामान्य व्यक्तियों को समान ही होता है। लेकिन, भाव

के सम्बन्ध मे ऐसा कहना उचित नही है, क्योंकि एक ही सवेदना किसी के लिए सुखद, किसी के लिये दुखद या विरक्त (Indifferent) सिद्ध हो सकती है। किन्तु, बाह्य तथा आन्तरिक का भेद अन्तरावयव सवेदना के लिये सत्य नही है।

सवेदना के विवेयात्मक और भाव के आत्मगत स्वरूपों को ध्यान म रखते हुए हम यह भी कह सकते है कि भाव का प्रत्यावाहन नही होता, लेकिन सवेदना का प्रत्यावाहन होता है। जब हम किसी परिस्थिति विशेष म किसी भाव का अनुभव करते है तब उस भाव का प्रत्यावाहन बाद मे करने मे पूर्णत असमर्थ होते है। किसी उत्तेजना से किस प्रकार का भाव उत्पन्न होगा, यह परिस्थिति पर निर्भर करता है। इसलिये जब हम अतीत भाव का वर्त्तमान मे स्मरण करते है तब वह मौलिक भाव नही रहता, बल्कि वह एक नया ही भाव रहता है। सवेदना के सम्बध म ऐसा नही होता, क्योंकि हम किसी प्रकार की सवेदना का भी प्रत्यावाहन करने म समर्थ होते है। इसी को दूसरे शब्दो में कह सकते है कि भाव की स्मरण प्रतिमा नही होती, लेकिन सवेदना की स्मरण प्रतिमा होती है। इस प्रकार, इन दोनो म उपर्युक्त अन्तर इतने स्पष्ट रूप से विद्यमान है कि हम भाव को सवेदना कहना उचित नही समझते।

भाव संवेदना की अनिवार्य विशेषता नही

कुछ मनोवैज्ञानिको का यह दृष्टिकोण कि भाव सवेदना का एक अनिवार्य विशेषता (Attribute) है, पूर्णत दोषपूर्ण है। क्योकि, किसी सवेदना की विशेषताओं से अलग उस सवेदना का अनुभव करना असभव है। सवेदना की विशेषताओं को उससे अलग करने का प्रयास करते ही वह सवेदना विलीन हो जाती है। अभिप्राय यह कि विशेषताहीन सवेदना नही होती। लेकिन, ऐसी सवेदनाओ की कमी नहीं, जिनमे भावात्मक पहलू (Affective aspect) का सर्वथा अभाव रहता है। अपने जीवन मे कई स्थलो पर हम लोग ऐसी सवेदनाओं का अनुभव करते है जिनमे सुखद या दुखद भाव नही रहता है। इस प्रकार, विरक्त सवेदना सभव है, लेकिन विशेषताहीन सवेदना नही। भाव यदि वस्तुत सवेदना की विशेषता होता तो भावहीन सवेदना का अनुभव करना भी असभव होता। अत भाव सवेदना की विशेषता नही है। कुल्प (Kulpe) ने भी इस तरह से इस कथन की पुष्टि की है। उसका कहना है कि गुण तथा प्रबलताहीन सवेदना असभव है, लेकिन भावहीन सवेदनाओ की कमी नही है। यद्यपि यह सर्वथा मान्य है कि सवेदनाओं से ही हमे सुखद या दुखद भाव की अनुभूति होती है, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि भाव सवेदना की एक विशेषता है। यह भी मान्य है कि कुछ अशो मे भाव सवेदना पर निर्भर करता है, लेकिन इससे यह मान लेना कि वह सवेदना की एक विशेषता है, सर्वथा अनुचित है। इस निर्भरता के रहते हुए भी इसकी अपनी एक ऐसी स्वतत्र सत्ता है कि हम इसे सवेदना की विशेषता नही कह सकते।

इतना ही नहीं, बल्कि जिस तरह सवेदना की कई विशेषताएँ, यथा, प्रबलता सत्ताकाल, गुण, आदि होती है उसी प्रकार इसमें भी प्रबलता, सत्ताकाल, गुण, आदि की विशेषताएँ विद्यमान है। हाँ, स्थानीयता (Local sign) और प्रसरण (Extensity) की विशेषताए इसमे नहीं

होती। यदि भाव सवेदना की विशेषता मात्र होता तो उसमे विभिन्न विशेषताएँ कैसे पायी जाती? हम यह अच्छी तरह जानते है कि विशेषता किसी स्वतन्त्र वस्तु या प्रक्रिया में पायी जाती है। अतएव भाव एक स्वतत्र मानसिक प्रक्रिया है।

भाव और सवेदना के अन्तरों का उल्लेख करते समय यह कहा गया है कि भाव आत्मगत तथा सवेदना विषयात्मक होती है। इसलिये, इस स्थल पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि अपने इस आत्मगत स्वरूप के कारण एक ही सवेदना वर्त्तमान रहने पर भी भाव परिवर्त्तित होता रहता है। जो सवेदना कुछ क्षण के लिए सुखद भाव उत्पन्न करती है, वही दूसरे क्षण मे दुखद भाव का कारण होती है। लेकिन, सवेदना के सबध मे ऐसा नहीं होता। जब तक उसकी उत्तेजना मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन नही होता तब तक वह एक समान बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, रचनात्मक दृष्टिकोण से भी भाव सवेदना से सर्वथा भिन्न है। अतएव हम भाव को सवेदना की विशेषता कदापि नही कह सकते।

भाव-प्रकार

भाव प्रकार के सम्बन्ध मे प्राचीन काल से ही मतभेद चला आ रहा है। भाव की व्याख्या करते समय हम व्यक्त कर चुके है कि भाव के सिर्फ दो गुण होते है—सुखद दुखद (Pleasant-unpleasant) या रुचिकर अरुचिकर। इस तरह, कोई भी भाव सुखद अथवा रुचिकर होता है या दुखद अथवा अरुचिकर। हम सामान्य जीवन मे भी नित्यप्रति ऐसा अनुभव करते है कि रुचिकर ही सुखद और अरुचिकर ही दुखद होता है। इस प्रकार भाव के सुखद और दुखद दो ही गुण होते है। एक अवस्था विरक्ति (Indifference) की भी होती है जिसे कुछ मनोवैज्ञानिकों ने विरक्त भाव (Feeling of Indifference) के नाम से अभिव्यक्त किया है। लेकिन, इसकी विपरीत अवस्था नही होती जिससे इसे भाव का प्रकार या गुण कहना उचित नही है। उण्ट ने इन दोनो गुणो के अतिरिक्त, भाव के अन्य गुणो को भी माना है। उसका यह दृष्टिकोण भाव का त्रिधारा सिद्धान्त (Three dimentional theory of feeling) के नाम से प्रख्यात है। उसके अनुसार, सुखद दुखद, कर्ष (Strain) शिथिलता, (Relaxation) उद्दीपन शात, भाव के गुण है। वह इन्हे गति या अन्तरावयव सवेदनाओं का गुण नही मानता। उसका कहना है कि जिस प्रकार सुखद दुखद अथवा रुचिकर-अरुचिकर भाव होते है, उसी प्रकार कर्ष-शिथिलता, उद्दीपन शात (Excitation quiet) के भाव भी। इन्ही तीन विस्तारा के अन्तर्गत किसी प्रकार के भाव को रक्खा जा सकता है। उसने उपर्युक्त विभिन्न तरह के भावो के सहभावी रक्त सचार तथा साँस गति को प्रदर्शित करने का प्रयास भी किया, लेकिन उसे अपने इस प्रयत्न मे पूर्ण सफलता नही मिल सकी।

टिचनर, उण्ट के उपर्युक्त दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सका और परिणामत इस सम्बन्ध मे उसने प्रयोगात्मक आधार पर दो प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया। क्या ये त्रिधारा वस्तुत एक दूसरे से पूर्ण स्वतत्र है और क्या कर्ष, (Strain) उद्दीपन, आदि वस्तुत भाव है, सवेदनाओं के सम्मिश्रण नहीं? अपने प्रयोज्यो को विभिन्न रगों और मेट्रोनोम-ध्वनियों को उपस्थित कर उनसे सुखद दुखद या कर्ष शिथिलता, आदि गुणों को व्यक्त करने का निर्देशन दिया। यद्यपि उसके प्रयोज्यों ने उण्ट के भाव विभाजनो का व्यवहार किया,

किंतु उसका वास्तविक तात्पर्य क्या था, इसे वे व्यक्त करने मे समर्थ नही हो सके। जब अवसाद (Depression) का प्रयोग गिरता के अर्थ मे किया गया तब वह दुखद भाव का द्योतक था, किंतु शान्त के अर्थ मे व्यवहार करने पर वह सुखद भाव का परिचायक था। अपने प्रयोज्यो की अन्तर्निरीक्षणात्मक सूचनाओ के आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वस्तुत उण्ट के त्रिधारा भाव एक दूसरे से स्वतत्र हो, लेकिन सुखद दुखद भाव ही एक दूसरे से पूर्ण स्वतत्र और वास्तविक है। उसके द्वारा व्यक्त किये गये अन्य भाव विस्तार, भाव नहीं, बल्कि गति या स्नायविक (Muscular) तथा अन्तरावयव संवेदना के मिश्रण है। इस प्रकार, टिचनर ने उण्ट के त्रिधारा-भाव सिद्धान्त को खण्डित करते हुए सुखद दुखद भावो का ही प्रतिपादन किया।

योकोयामा (Yokoyama), जान्स्टन (Johnston), लिण्डवस्की (Lindwosky), आदि विद्वानो के प्रयोगात्मक परिणामो से भी प्रमाणित होता है कि भाव सुखद तथा दुखद दो ही प्रकार का होता है। इस दिशा मे नेफ (Nafe) ने जो प्रयोग किया उसके आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सुखद-दुखद भाव स्पर्श संवेदना के गुण के समान है। उसके प्रयोज्यों के अन्तानरीक्षण या विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उन्होने स्पर्श के समय अन्तरावयव संवेदनाओ का अनुभव भी किया। नेफ के प्रयोज्य तो अपने स्पर्श अनुभवो का स्थानीकरण करने मे समर्थ नही हो सके, लेकिन हायसिंगटन (Hoisington) का कहना है कि नेफ के प्रयोज्य आवश्यक अभ्यस्त और कुशल होने पर स्पर्श की सुख दुखानुभूति को शरीर के निश्चित भागो मे व्यक्त करने मे भी समर्थ हो सके। यग (Young) के प्रयोग परिणाम भी नेफ के कथन की सत्यता का प्रतिपादन करते है और हण्ट (Hunt) का भी यही दृष्टिकोण है। किंतु, कनवर्स (Converse) का कथन है कि स्पर्श-गुण को सुखद दुखद भाव के समरूप मानना पूर्णत प्रयोज्य की ससूचन शीलता पर निर्भर करता है। इसलिए जो स्पर्श गुण का भाव गुण व्यक्त करते है, वे ऐसा ससूचित होने के परिणाम स्वरूप ही करते है।

फेल्न (Phelan) के प्रयोग भी नेफ के दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते है, किंतु उसने भाव को विधेयात्मक और आत्मगत दो वर्गो मे विभक्त किया है। उसका कथन है कि कोई पदार्थ स्वय सुखद या दुखद होता है और कोई पदार्थ जीव की अवस्था के कारण सुखद या दुखद होता है। इसलिए कोई भाव स्वत आत्मगत या विधेयात्मक नही होता, बल्कि उसका सम्बन्ध किसी पदार्थ या जीव से रहता है। एक स्थल पर पदार्थ सुखद होता है और दूसरे स्थल पर जीव की अवस्था सुखद होती है। अभिप्राय यह कि इस दिशा मे जितने प्रयोग हुए है वे उण्ट के त्रिधारा भाव सिद्धान्त (Three dimensional theory of feeling) का पूर्णत खण्डन करते हुए भाव के सुखद दुखद गुणों का प्रतिपादन करते है। अतएव निष्कर्ष रूप मे हम यही कहना उचित समझते है कि भाव के सुखद दुखद दो ही गुण है।

मिश्रित भाव (Mixed feeling)

मिश्रित भाव के सम्बन्ध मे भी प्रारभ से विवाद चला आ रहा है। अल्प सख्यक मनोवैज्ञानिको का दृष्टिकोण है कि सुखद दुखद भावो का अनुभव मनुष्य एक समय में एक साथ

कर सकता है। किन्तु, अधिकांश मनोवैज्ञानिकों के अनुसार उपर्युक्त दोनों भावों का एक साथ अनुभव करना कठिन ही नहीं, बल्कि असभव भी है। उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों के पक्ष में किसी तरह के विधेयात्मक प्रमाणों को देना असभव है। इसलिये यहाँ हम दोनों पक्षों के सम्बन्ध में जो अन्तर्निरीक्षणात्मक प्रमाण उपलब्ध हैं, उनमें से कुछ प्रमाणों का सक्षेपत उल्लेख करते हुए अपना निष्कर्ष अन्त में व्यक्त करेंगे।

इस सम्बन्ध में जान्स्टन (Johnston) ने अपने प्रयोज्यों की दो ज्ञानेन्द्रियों को क्रमश रुचिकर और अरुचिकर उत्तेजनाओं से उत्तेजित कर उनका अन्तर्निरीक्षण अकित किया। उनके अन्तर्निरीक्षण का अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि उसके कुछ प्रयोज्यों में एक ही समय सुखद तथा दुखद भाव विद्यमान थे, लेकिन अधिकांश प्रयोज्यों में उन दोनों अनुभवों का इस प्रकार गालन (Fusion) हो गया कि उनको अलग अलग करना कठिन था।

जब अलशीफ (Alechsieff) ने अपने कई प्रयोज्यों को दो प्रकार की उत्तेजनाओं से उत्तेजित करके उनके अन्तर्निरीक्षण को अकित किया तब उसे उनके अन्तर्निरीक्षण में कोई अश ऐसा नहीं मिला जो मिश्रित भाव को व्यक्त करने में समर्थ था। अत अपने प्रयोगों के आधार पर उसका कहना है कि मिश्रित भाव असभव है। यग (Young) ने भी कई विधियों का व्यवहार मिश्रित भाव का अध्ययन करने के लिए किया। प्रारम्भ में तो उसके प्रयोज्यों ने मिश्रित भाव को व्यक्त किया, किंतु जब उन भावों के सम्बन्ध में उसने उनसे भिन्न भिन्न प्रकार के प्रश्नों को पूछा तो मालूम हुआ कि उन्होंने अर्थदोष के कारण मिश्रित भाव को व्यक्त किया। अत एव यग (Young) का भी दृष्टिकोण है कि मिश्रित भाव नहीं होता।

केलाग (Kellogg) को क्रमिक विधि (Ranking method) से दो प्रकार की उत्तेजनाओं के उपस्थित करने पर अपने प्रयोज्यों द्वारा मिश्रित भाव की सूचना मिली। लेकिन, इस प्रकार की सूचना देनेवाले प्रयोज्यों की सख्या अत्यल्प थी। उसी विधि का आश्रय लेकर ओल्गेसथ ने भी अपने प्रयोज्यों के अन्तर्निरीक्षण का अध्ययन किया। उसका अध्ययन भी इस बात का साक्षी है कि उसके प्रयोज्यों ने समय-समय पर दोनों प्रकार के भावों का अनुभव साथ साथ किया। इतना ही नहीं, बल्कि उनके अन्तर्निरीक्षण का अध्ययन करने से यह भी मालूम होता है कि उनमें दो पदार्थों से आबद्ध सुखद भाव एक साथ विद्यमान थे। इसी प्रकार इस दिशा में और भी जितने प्रयोग हुए हैं उन सबके परिणामों में समानता नहीं है, क्योंकि कुछ मिश्रित भाव का प्रतिपादन करते हैं तो कुछ उसका पूर्णत खण्डन करते हैं। इस सम्बन्ध में बीब सेण्टर (Beebe center) का निष्कर्ष रूप में कहना है कि वस्तुत मिश्रित भाव का अनुभव करना असभव है, लेकिन अनुकूल परिस्थिति में सुखद तथा दुखद पदार्थों का अनुभव साथ साथ करना सर्वथा साध्य एव सभव है। यह स्मरणीय है कि दो पदार्थों का एक साथ अनुभव करना प्रयोज्य के विभक्त ध्यान (Division of attention) की योग्यता पर निर्भर करता है। यदि वह दोनों पदार्थों का अनुभव एक साथ एक सघात (Pattern) के रूप में करता है तब उनसे समुत्पन्न भावों का अनुभव भी एक साथ उसी रूप में कर सकता है। किंतु, यदि वह दोनों पदार्थों को एक सघात के रूप में अनुभव न कर क्रमश अलग अलग अनुभव करता है और अपने ध्यान को एक से दूसरे पर परिवर्तित करता है तब ऐसी अवस्था में दो प्रकार के भावों को एक साथ अनुभव करना पूर्णत असभव है। अत निष्कर्ष में हम

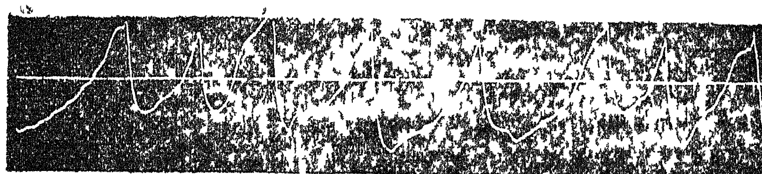
यह कह सकते है कि यो तो मिश्रित भाव का एक साथ अनुभव करना असंभव है, किन्तु ध्यान प्रक्रिया मे निपुण व्यक्ति दो पदार्थो का एक साथ अपने ध्यान का विषय बनाकर उनसे समुत्पन्न भावो का अनुभव साथ-साथ कर पाता है। नौसिखिया (Novice) एवं अपटु व्यक्तियो के जीवन मे ऐसा अनुभव सर्वथा अगम्य और असम्भव है।

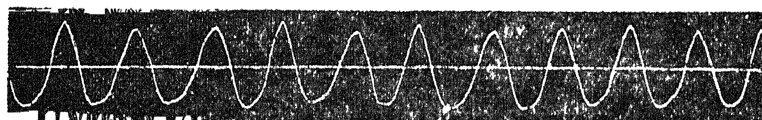
भाव की अभिव्यंजना (Expression)

भाव के समय आन्तरिक एवं बाह्य दोनो प्रकार के परिवर्त्तन होते हैं। कुछ परिवर्त्तनों का ज्ञान तो साधारण निरीक्षण से होता है, किन्तु अधिकतर परिवर्त्तनों के लिये विभिन्न प्रकार के यन्त्रो एवं विधियो का आश्रय लेना पड़ता है। यहाँ उन प्रयोगो द्वारा प्राप्त परिवर्त्तनों का सक्षेपतः उल्लेख करेगे।

भाव के समय साँस गति मापक यन्त्र (Pneumograph) तथा नाडी गति लेखक यन्त्र (Sphygmograph), आदि की सहायता से साँस और हृदय गति का अध्ययन किया गया है। उसके आधार पर लेहमान (Lehmann) का कहना है कि सुखद भाव मे साँस गति धीमी और गभीर हो जाती है तथा दुखद भाव मे इसकी गति तीव्र हो जाती है। नाडी गति रुचिकर भाव के समय स्वस्थ तथा धीमी और अरुचिकर के समय तीव्र तथा कमजोर (Weak) हो जाती है। रक्तनलिका (Blood vessel) भी सुखद भाव मे फैलती है और दुखद भाव मे सकुचित होती है। लेकिन, बाद के अन्वेषकों का, जिनमे कोर्टियर, शेपार्ड (Shepard), आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है, कहना है कि नाड़ी या साँस गति पर प्रभाव पड़ना उत्तेजना की तीव्रता पर निर्भर करता है, भाव के गुण पर नही। सभी उत्तेजनाओ से साँस और नाड़ी की गतियाँ तीव्र होती है। इतना ही नही, बल्कि रक्त नलिका मे भी सकुचन आ जाता है। वुण्ट तथा उसके अनुयायियों ने अपने अन्य भावो के साथ भी कई प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तनो को प्रदर्शित करने का प्रयास किया, लेकिन उन्हे अपने प्रयास मे सफलता नहीं मिल सकी। शान्त और कोलाहलपूर्ण वातावरण मे साँस गति की क्या हालत होती है, इसे नीचे के चित्र मे देखा जा सकता है।

चित्र संख्या ६७





शात और कोलाहल की साँस गति का चित्र

पैवलाव तथा अन्य मनोवैज्ञानिको ने कुत्तो पर प्रयोग करके यह प्रदर्शित कर दिया है कि सुखद भाव मे लार ग्रन्थि का (Salivary gland) स्राव सुचारु रूप से होता

है, किंतु दुखद भाव मे वह स्राव नही होता। प्रबल दुखद भाव मे अश्रुपात होना स्वाभाविक है और सुखद भाव के समय भी आँख मे जो किंचित आभा दीख पडती है, उसका भी कारण अश्रुग्रन्थि स्राव ही होता है। जीवन मे ऐसे अनुभवो की कमी नही जब कि अत्यधिक सुखद भाव से गद्गद होने पर आँखो से आँसू गिरने लगता है। लेकिन, यह नही भूलना होगा कि यद्यपि सुखद और दुखद दोनो भावो मे अश्रुपात होता है, परन्तु उन दोनो मे गुणात्मक भेद होता है। सुखद भाव मे मस्तक सीधा अथवा पीठ को झुका हुआ, कमर सीधी और बाहु फैली हुई रहती है, लेकिन दुखद भाव मे शरीर की ऐसी आसनात्मक (Postural) अवस्था नही रहती। इस प्रकार, भाव के समय शरीर मे आन्तरिक और बाह्य कई प्रकार के परिवर्त्तन होते है। लेकिन, यह निश्चयात्मक रूप से कहना बहुत कठिन है कि सुखद भाव मे किस प्रकार का निश्चित परिवर्त्तन होता है और दुखद भाव में किस प्रकार का। क्योकि, प्रयोगो के करने पर भाव और उसकी अभिव्यजना (Expression) मे किसी प्रकार की अनुरूपता (Correspondence) नही पायी गयी है।

भाव की अध्ययन-विधियाँ

भाव के अध्ययन की जितनी विधियाँ है उन सबको हम दो श्रेणियो मे रख सकते है—सस्कार विधि (Method of Impression) तथा आविष्करण विधि। हम यहाँ इन्ही दो श्रेणियों के अन्तर्गत भाव अध्ययन की प्रमुख विधियो पर प्रकाश डालेगे।

सस्कार विधि

(अ) मूल्याकन विधि (Rating method) कोई पदार्थ सुखद, दुखद या विरक्त है, इसको जानने के लिये प्रयोक्ता उतने मापदण्डो को रेखा रूप मे तैयार करता है जितनी चीजे रहती है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ के लिये एक ऐसी मापदण्ड की रेखा रहती है जिसमे विभिन्न भावो का स्थान निश्चित रहता है या उनकी मात्रा अकित रहती है। यदि उन्ही पदार्थों का मूल्याकन कई प्रयोज्य करते है तब तो उनके मूल्याकन का मध्यमान निकाल कर उनका भावाकन किया जाता है। और यदि प्रयोज्य एक ही रहता है तो उसी के मूल्याकन पर पूर्णत निर्भर करना पडता है। लेकिन, इस सम्बन्ध मे यह स्मरणीय है कि किसी पदार्थ के भावात्मक महत्त्व को जानने के लिये एक प्रयोज्य के अकन पर निर्भर न कर कई प्रयोज्यों के मूल्याकन का मध्यमान लेना श्रेयस्कर होता है।

(ब) अभिरुचि-विधि (Method of choice) भाव का अध्ययन अभिरुचि विधि से करने के लिये सभी पदार्थों (उत्तेजनाओं) को प्रयोज्य के सामने उपस्थित किया जाता है और उनमे से उसे अत्यधिक सुखद या दुखद उत्तेजनाओ को व्यक्त करने या चुनने को कहा जाता है। यद्यपि इस विधि से किसी पदार्थ के भावात्मक पहलू पर कुछ प्रकाश पड़ता है, तथापि यह विधि बहुत ही असतोषपूर्ण है। इसके द्वारा न तो भाव के कूटस्थ व्यापारों का ही विश्लेषण होता है और न अभिरुचि के निर्धारित करने वाले अगो का ही। इसलिये भाव निर्धारण की जटिलता ज्यो की त्यो बनी रह जाती है।

(स) शृङ्खला-विधि (Serial method) शृङ्खला विधि से भाव का अन्तर्निरीक्षणात्मक अध्ययन करने के लिये प्रयोज्य को क्रमश एक एक पदार्थ उपस्थित करके उसके भावात्मक पहलू को व्यक्त करने का निर्देशन दिया जाता है। इस विधि मे उसका

निर्णय सापेक्ष (Relative) न [illegible] उसी पदार्थ के सम्बन्ध में होता है। वस्तुत यह विधि भावात्मक प [illegible] लाभप्रद सिद्ध हुई है। भाव का अध्ययन करने के लिये [illegible] ने इसका व्यवहार किया है। यह मूल्यांकन-विधि से ही मिलती जुलती [illegible]।

(द) युगल तुलनात्मक विधि (Method of paired comparison) कई पदार्थों के भावात्मक [illegible] रुचि का निर्धारित करने वाले अंगों का अध्ययन करने [illegible] विधि का व्यवहार किया जाता है। दो पदार्थों को [illegible] अधिक रुचिकर या अरुचिकर पदार्थ को [illegible] करने का [illegible] जाता है। [illegible], इस विधि में स्थान तथा काल दोष (Place and time errors) [illegible] सम्भावना रहती है। इसलिये दोनो प्रकार के दोष [illegible] दूसरे के साथ नीचे ऊपर या दाएँ बाएँ के क्रम में [illegible]। इस प्रकार यदि छ पदार्थ रहते है तो उनको [illegible] उपस्थित किये जाते है। इस विधि में यह [illegible] पदार्थ को लगातार उपस्थित करने पर उसके भावात्मक [illegible] है। इसलिये इस दोष से बचने के लिये उनको अनिश्चित [illegible] जाता है। जब सभी पदार्थ समाप्त हो जाते है तब उनके भावात्मक [illegible] करके देखा जाता है कि उनमे से कौन किस मात्रा में सुखद या दुखद है।

भावात्मक पहलू को निर्धारित करने [illegible] करने के लिये प्रत्येक निर्णय के बाद प्रयोज्य से पूछ [illegible] कि उसे कोई पदार्थ क्यों सुखद या दुखद मालूम होता है। [illegible] प्रयोग हुए है उन सब का अध्ययन करने से यह [illegible] पदार्थ रुचिकर या अरुचिकर चार कारणों से मालूम होता है। लेखक ने [illegible] भाव को निर्धारित करने वाले अंगों का अध्ययन किया है। [illegible] से यह स्पष्ट है कि कोई पदार्थ रुचिकर या अरुचिकर [illegible] (Association) के कारण मालूम होता है। उपस्थित पदार्थ का [illegible] स्थापित होता है तो वह सुखद और दुखद अनुभव से स्थापित होने पर [illegible] मालूम होता है। कुछ पदार्थों का प्रभाव शरीर पर [illegible] और इस प्रकार से दैहिक अवस्था (Physiological condition) को प्रभावित करते [illegible]। इसलिये इस दैहिक अवस्था के कारण भी कोई पदार्थ रुचिकर या अरुचिकर [illegible] है। इसे हम दैहिक अंग कह सकते है। कुछ पदार्थों का [illegible] (Objective) गुणों के कारण चाहते या नही चाहते [illegible] रुचि के भाव विद्यमान रहते है और इसीलिये वे हम सुखद या दुखद [illegible]। उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त, एक चौथा पहलू भी होता है जिसके [illegible] कोई पदार्थ अच्छा या बुरा मालूम होता है। इसे हम उस पदार्थ का प्रतीकात्मक [illegible] (Symbolic aspect) कह सकते है। हमारे जीवन में ऐसे उदाहरणों की कमी [illegible] किसी पदार्थ को शुभ या किसी को अशुभ मानते है। हिन्दू जाति पीतवर्ण (Yellow colour) को शुभ मानती है या

भारतवासी तिरगा झण्डा को अपने गौरव का प्रतीक मानते है। यही कारण है कि हिन्दू पीतवर्ण और भारतवासी झण्डा को सुखद मानते है। इस प्रकार, किसी पदार्थ का भावात्मक महत्त्व इन्ही चार अगो के द्वारा निर्धारित होता है। यो तो एक ही अग किसी पदार्थ के सुखद या दु खद होने के लिये पर्याप्त होता है, लेकिन कभी कभी एक से अधिक अग भी एक साथ उसके भावात्मक पहलू को प्रभावित करते है।

आविष्करण-विधि

उपर्युक्त विधियों से प्रयोज्य के अन्तर्निरीक्षण के आधार पर उसकी भावात्मकता या किसी पदार्थ के भावात्मक महत्त्व का अध्ययन किया जाता है। परन्तु, आविष्करण विधि से भाव के समय किस प्रकार के आन्तरिक परिवर्त्तन होते है, इसका अध्ययन किया जाता है। उपर्युक्त विधि पूर्णत आत्मगत और यह विषयात्मक है। भाव के समय साँस-गति का अध्ययन करने के लिये श्वासगति मापक यन्त्र (Pnumograph) का व्यवहार करके विभिन्न अवस्थाओ मे साँसगति की जानकारी प्राप्त की जाती है। नाड़ीगति की जानकारी के लिये नाडीगति लेखक यन्त्र (Sphygmograph) का व्यवहार किया जाता है। इसी प्रकार, अन्य प्रकार के परिवर्त्तनो की जानकारी प्राप्त करने के लिये विभिन्न प्रकार के यन्त्रो का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार के आन्तरिक परिवर्त्तनो के अध्ययन का पहले कुछ उल्लेख किया जा चुका है और आगे भी स्थलविशेष पर इस पर प्रकाश डाला जायगा। इसलिये यहाँ इतना कह देना पर्याप्त है कि विभिन्न यन्त्रों का आश्रय लेकर भाव के समय के आन्तरिक परिवर्त्तनो का अध्ययन आविष्करण-विधि से किया जाता है। यहाँ लेखक द्वारा किये गये साँस गति के अध्ययन का प्रयोग-चित्र दे देना अनुचित नही होगा।

चित्र-सख्या ६८



साँस गति रेखाकन का प्रयोग चित्र

भाव-सिद्धान्त

मनोवैज्ञानिकों ने भाव के स्वरूप को सन्तोषप्रद ढंग से स्पष्ट करने के लिये कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, लेकिन उनमें से कोई भी सिद्धान्त स्वतः सन्तोषप्रद नहीं है। इसके कई कारण हैं। पहला कारण यह है कि जिस प्रकार अन्य मानसिक प्रक्रियाओं का आधार नाडीमण्डल का कोई निश्चित भाग है, उस प्रकार भाव का आधार उसका कोई एक अंग नहीं है। इस कठिनाई का दूसरा कारण यह है कि अन्य प्रक्रियाओं की भाँति अन्य पहलुओं के साथ भाव भी सम्बद्ध रहता है। इसलिये एक भी सिद्धान्त स्वतः सन्तोषप्रद नहीं है। किन्तु, सभी में कुछ ऐसी विशेषताएँ मौजूद हैं कि उन सबका ज्ञान भाव को अच्छी तरह समझने में सहायक होगा। इसलिये यहाँ प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख कर देना आवश्यक है।

(१) दैहिक सिद्धान्त (Physiological theory) मनोवैज्ञानिकों ने दैहिक सिद्धान्त को कई प्रकार से व्यक्त किया है। इसका मुख्य सारांश यह है कि जो शरीर के लिये लाभप्रद होता है वह सुखद भाव उत्पन्न करता है और जो हानिकर होता है उससे दुःखद भाव की उत्पत्ति होती है। इसी तरह, जब किसी शारीरिक क्रिया में जीवन शक्ति (Energy) समुचित मात्रा में खर्च होती है तब सुख और जब अधिक खर्च होती है तब दुःख होता है। इसी को दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सबल, स्वस्थ और प्रहृष्ट नाडीमण्डल की क्रियाओं से सुखद तथा निर्बल, अस्वस्थ नाडीमण्डल की क्रियाओं से दुःखद भाव होता है।

यद्यपि यह सिद्धान्त नाडीमण्डल की समुचित कार्यवाहियों पर जोर देता है, लेकिन यह कार्यवाही के ध्येय और उसकी प्राप्ति की उपेक्षा करने के कारण पूर्णतः सन्तोषप्रद नहीं है। हम लोग अपने जीवन में यह अच्छी तरह अनुभव करते हैं कि निर्बल और कमजोर नाडीमण्डल की अवस्था में भी किसी प्रकार की क्रिया करने में हमें सन्तोष होता है और सबल तथा स्वस्थ नाडीमण्डल की क्रियाओं में असन्तोष होता है। इसके अतिरिक्त, किसी अवस्था में हम कोई शारीरिक क्रिया क्यों न करें, लेकिन जिस ध्येय से करते हैं उस ध्येय को प्राप्त हो जाने पर आनन्द और न प्राप्त होने पर दुःख होता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि सबल या अस्वस्थ नाडीमण्डल की क्रियाओं या अधिक और कम मात्रा में जीवनशक्ति के व्यय पर भाव निर्भर नहीं करती, बल्कि वह ध्येय और उसकी प्राप्ति पर निर्भर करती है। हम अपने मित्र के लिए सभी शक्ति खर्च कर काम करने पर भी आनन्द का अनुभव करते हैं, किन्तु थोड़ी शक्ति लगाकर भी शत्रु का काम करने में दुःख होता है। इसलिये दैहिक आधार पर भाव की व्याख्या युक्तिसंगत नहीं है।

(२) अनुकूलन प्रतिकूलन सिद्धान्त (Furtherance-hindrance theory) भाव का दूसरा सिद्धान्त अनुकूलन प्रतिकूलन का सिद्धान्त कहा जा सकता है। इस के कई रूप हैं, किंतु सबका सारांश एक ही है। एक सिद्धान्त के अनुसार जब शारीरिक क्रियाएँ निर्विघ्न होती हैं तो हम सुखानुभूति, किंतु उन क्रियाओं में जब किसी प्रकार का विघ्न पड़ता है तब दुःखानुभूति होती है। इस प्रकार, जिस पदार्थ को देखने, चखने या स्पर्श करने, आदि में जब किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती तब उस क्रिया से हमें सुख

मिलता है, लेकिन जब वैसा करने में किसी प्रकार की कठिनाई महसूस होती है तब दु:खद भाव का अनुभव होता है।

इसका दूसरा रूप क्रियाओं की विभिन्नता या भिन्नता के आधार पर सुख दु:खानुभूति की व्याख्या नहीं करता, बल्कि उसके अनुसार मनुष्य किसी परिस्थिति या पदार्थ के साथ सहानुभूति के कारण तादात्म्य (Identify) कर लेता है। इसके परिणामस्वरूप वह अपने को उसी परिस्थिति में रख देता है। अगर वह परिस्थिति अनुकूल रहती है तब वह सुखद भाव का अनुभव करता है, लेकिन किसी प्रकार की प्रतिकूलता के रहने पर वह दु:खद भाव का अनुभव करता है।

इसके तीसरे रूप के फलस्वरूप हम स्ट्राउड (Stroud) का सिद्धान्त पाते हैं, जिसके अनुसार मानसिक प्रक्रियाओं की स्फूर्तित प्रतिक्रिया सुखद और उनका अवरोध दु:खद होता है। इसके अनुसार, मानसिक प्रक्रियाओं की सफलता सुखद और उनकी विफलता दु:खद भावों का कारण होती है। इस प्रकार, यदि किसी शारीरिक अवस्था से मानसिक प्रक्रियाओं में सहायता मिलती है तो वह अवस्था सुखद होती है। यदि किसी अवस्था से उन प्रक्रियाओं में बाधा पड़ती है तो वह अवस्था दु:खद प्रतीत होती है।

इस सिद्धान्त के गुण दोषों पर विचार करने से मालूम होगा कि सामान्यत: यह सिद्धान्त उचित जँचता है, लेकिन अवस्था या परिस्थिति विशेषों के लिये यह संतोषप्रद नहीं है।

(३) विकासात्मक सिद्धान्त (Evolutionary theory) भाव के विकासात्मक सिद्धान्त का मुख्य सारांश यह है कि मनुष्य आज जिस अवस्था में है वह उसके विकास के फलस्वरूप है। प्रारम्भ में उसे भले बुरे, सुखद दु:खद, आदि का कुछ ज्ञान नहीं था। किन्तु, ज्यों ज्यों उसका विकास होता गया वह सभी चीजों के गुण दोषों से अवगत होने लगा और वह सुख दु:ख का भी अनुभव करने लगा। इसलिये वह लाभप्रद या हानिप्रद को भी जान सका। इसके परिणामस्वरूप अब उसे जो चीज, परिस्थिति या क्रिया उसकी जाति या स्वयं उसके लिए लाभप्रद मालूम होती है वह सुखद होती है और जो उसे या उसकी जाति के लिये घातक मालूम होती है, वह दु:खद प्रतीत होती है। इस सिद्धान्त में कुछ सत्यता होने पर भी इसमें कई त्रुटियाँ हैं। बहुत सी चीजें जाति या व्यक्ति के लिये लाभप्रद होती हैं, लेकिन वे सुखद नहीं होतीं। इसी तरह, बहुत सी चीजें हानिप्रद होती हैं। हमें हानि लाभ का ज्ञान अनुभव से होता है, सहसा नहीं। तब भला अनुभव के अभाव में कोई पदार्थ हमारे या हमारी जाति के लिये हानिप्रद है या लाभप्रद, यह कैसे जान सकते हैं? इस तरह कुछ सत्यता होते हुए भी यह सिद्धान्त भाव की व्याख्या के लिये पूर्णत: संतोषप्रद नहीं है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों की सार्थकता का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हमें मालूम होगा कि वस्तुत: कोई भी सिद्धान्त सर्वांग सुन्दर नहीं है। क्योंकि, एक भी सिद्धान्त ऐसा नहीं है जो सभी अवसरों पर किसी भाव की व्याख्या संतोषप्रद कर सके। एक ही पदार्थ कभी रुचिकर और सुखद और कभी अरुचिकर और दु:खद क्यों प्रतीत होता है या इसमें कभी कभी वैयक्तिक भिन्नता क्यों पड़ती है, इसकी व्याख्या कोई भी सिद्धान्त नहीं कर पाता।

इसलिये, उपर्युक्त सिद्धान्तों को एक दूसरे से भि और स्वत मान कर उन्हें एक दूसरे का पूरक मानना श्रेयस्कर है। भाव के आविर्भाव और उसके स्वरूप की व्याख्या के लिये उपर्युक्त सिद्धान्त कहाँ तक सा क हैं, आगे ात हागा।

प्रयोगात्मक सौन्दर्य भाव (Experimental Esthetic)

कला के ध्यान या चिंतन से जो भाव उत् ता है उसी को सौन्दर्य भाव कहते हैं। यह सामान्य भाव से पूर्णत भि ता   ि से हम इसे कला विश्लेषण कह सकते हैं। ि क प्र , सौन्दर्य, , (Sublime), दुखान्तक (Tragic) त (Comic) के प्रति प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करना ही प्रयोगात्मक सौन्दर्य ता है। सौन्दर्य भाव का अध्ययन करने के लिये सत्कार विधि (Method of impression) का व्यवहार किया जाता है और उसी प्रकार पूछा जाता है कि   ुन्दर है   ', 'दो में से कौन अधिक सुन्दर या असुन्दर है' 'कौन ि रीहै', आदि। सर्व प्रथम सौन्दर्य भाव का अध्ययन भी फेकनर ने ही कि ा । तब   कई मनोवैज्ञानिकों ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

सौन्दर्यभाव की अ विधि

मनोदैहिक तथा सौन्दर्य भाव के अध्ययन-विधियों में बहुत समानता है, लेकिन सौन्दर्य भाव के अध्ययन की विधि ि क विधि की अपेक्षा सरल है।

(१) उत्पादन या व्यवस्थापन विधि   उत्पादन या व्यवस्थापन-विधि सौन्दर्य भाव अध्ययन की एक प्रमुख विधि है। इसमें भाव का अध्ययन करने के लिये प्रयोज्य को किसी ज्यामिति या अन्य चित्र को उस प्रकार   दिया जाता है जो उसे अत्यधिक सुन्दर और मनोहारी लगे। कभी-कभी विभिन्न उपकरणों में व्यवस्थापन (Adjustible) चित्र भी रहते हैं, जो मनोनुकूल जा सकते है। ऐसे चित्र को प्रयोज्य को इस प्रकार व्यवस्थित करना पड़ता है जो उसे अत्यधिक लुभावना मालूम होता है। यदि एक ही प्रयोज्य पर प्रयोग करते हैं तब तो उसे काफी चित्रों को बनाने या व्यवस्थित करने हैं। त में उसके विभिन्न उत्पादनों या व्यवस्थापनों के आधार पर उसका सौन्दर्य भाव जाते हैं। यदि यह प्रयोग अधिक प्रयोज्यों पर किया जाता है तो मालूम होता है कि किस प्रकार का चित्र किसी समुदाय विशेष के लिये अधिक लुभावना या सुन्दर म होता है। मध्यमान तथा प्रमाण विचलन के आधार पर उन निर्णयों की प्रतिप ता और विश्वसनीयता की परीक्षा की जाती है।

(२) मूल्यांकन विधि मूल्यांकन विधि के सम्बन्ध में बहुत कुछ पहले व्यक्त किया जा चुका है, इसलिये उसकी पुनरावृत्ति यहाँ आवश्यक नहीं। जहाँ तक इसके दोष गुणों का सम्बन्ध है, उसके विषय में पाठक व्यक्तित्व (Personality) की पन-विधियों का अध्ययन करके जान सकते हैं। इसलिये यहाँ हम इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि अधिक पदार्थों पर प्रयोग करने के लिये यह विधि बहुत ही उपयोगी और सरल

प्रमाणित हुई है। इस विधि का व्यवहार करने मे प्रयोज्य को किसी प्रकार की कठिनाई नही होती है। लेकिन, मूल्यांकन इतना आत्मगत होता है कि विभिन्न प्रयोज्यो मे एक ही पदार्थ के मूल्यांकन मे काफी अन्तर पडता है। इसलिये मध्यमान, प्रमाण विचलन, आदि सांख्यिक (Statistical) विधियो से मूल्यांकन की प्रतिपन्नता का परीक्षण करना आवश्यक है।

(३) क्रमिक विधि क्रमिक विधि से सौन्दर्यवृत्ति का अध्ययन करने के लिये सभी पदार्थों को एक बार प्रयोज्य के सामने रख कर उन्हे उनकी खूबसूरती के आधार पर क्रमश रखने का निर्देशन दिया जाता है। प्रयोज्य अगर एक रहता है तब उससे विभिन्न अवसरों पर उन्ही पदार्थों को उनकी सुन्दरता के क्रम मे रखवा कर यह देखा जाता है कि पदार्थों के प्रति उसकी सौन्दर्यवृत्ति विभिन्न अवसरो पर कैसे परिवर्त्तित होती है। यदि प्रयोज्य बहुसंख्यक रहते है तो उनके क्रमों का तुलनात्मक अध्ययन करके प्रत्येक पदार्थ के क्रम का मध्यमान, मध्यमान विचलन तथा प्रमाण विचलन मालूम करके समाज अभिरुचि का पता लगाया जाता है। यह विधि किसी पदार्थ के सामाजिक महत्त्व को जानने के लिये बहुत लाभप्रद है।

(४) अभिरुचि विधि अभिरुचि विधि का भी पहले उल्लेख किया जा चुका है। इसलिये हम इतना ही कहना उचित समझते है कि इस विधि का उपयोग फेक्नर ने बहुसंख्यक प्रयोज्यों पर करके विभिन्न आकार प्रकार के चतुर्भुजों के भावात्मक महत्त्व का निर्णय किया था। उसके दृष्टिकोण से यह बहुत ही उपयुक्त और प्रतिपन्न विधि है। लेकिन, अन्य मनोवैज्ञानिक उसके इस विचार से सहमत नहीं है। क्योकि, इससे पूर्णत विश्वसनीय निष्कर्ष प्राप्त करना कठिन है। इस पर भी आज बहुसंख्यक मनोवैज्ञानिक इसका व्यवहार सतोष और विश्वास के साथ करते हैं।

(५) युगल तुलनात्मक विधि इस विधि पर भी प्रकाश डाला जा चुका है, इसलिये पुन कुछ कहना उचित नही प्रतीत होता। इसकी विशेष जानकारी के लिये पाठक इसी अध्याय मे भाव के अध्ययन विधियों के अन्तर्गत देख सकते है। पृष्ठ ४४४ के प्रयोग-चित्र से इस विधि की गति विधि की झाँकी मिलती है।

सौन्दर्य भाव का प्रयोगात्मक अध्ययन

रग अभिरुचि की दिशा मे जेस्ट्रा (Jastrow) ने जो प्रयोग रगीन कागजों के साथ किया, उसमें पुरुषों ने नीले और स्त्रियो ने पीले को अधिक सुन्दर और सुखद व्यक्त किया। सन् १९०४ ई० मे उडवर्थ तथा ब्रुनर (Bruner) ने अपने प्रयोग मे यह प्रदर्शित किया कि अधिकाश प्रयोज्यों ने गुलाबी रग (Pink) को पसद किया, उसके बाद पीले नीले रग (Yellowish-blue) का स्थान था। लेकिन, सभी रगों को रग बोर्ड (Colour Board) में सुसज्जित करने पर गुलाबी तथा लाल रग ही प्रधान थे। प्रयोज्यो ने मन्द तथा मनहूस (Dull) रगों को बहुत ही कम पसन्द किया। ऐसे कुछ प्रयोज्यो ने चमकीले रग, जैसे, नारगी (Orange), बैगनी (Purple), आदि को भी बहुत कम रुचिकर कहा, लेकिन कुछ प्रयोज्यों ने इन्हे भी कभी कभी बहुत रुचिकर कहा। हरा रग बहुत कम अवसरो पर अत्यधिक रुचिकर अथवा अरुचिकर व्यक्त किया गया। विंच (Winch), वाशबर्न (Washburn), काट्ज (Katz), गार्थ (Garth), प्रभृति विद्वानों ने भी रग-

इसलिये, उपर्युक्त सिद्धान्तों को एक दूसरे से भि [illegible] और स्वतन्त्र मान कर उन्हें एक दूसरे का पूरक मानना श्रेयस्कर है। भाव के आविर्भाव [illegible] उसके स्वरूप की व्याख्या के लिये उपर्युक्त सिद्धान्त कहाँ तक सार्थक है, आगे [illegible] ।

प्रयोगात्मक सौन्दर्य भाव (Experimental Esthetic)

कला के [illegible] या चिंतन से जो भाव [illegible] उसी को सौन्दर्य भाव कहते हैं। यह सामान्य भाव से पूर्णतः भि[illegible] है। [illegible] से हम इसे कला विश्लेषण कह सकते हैं। [illegible] सौन्दर्य, [illegible], भ[illegible] (Sublime), दुखान्तक (Tragic) तथा [illegible] (Comic) के प्रति [illegible] प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करना ही प्रयोगात्मक सौन्दर्य [illegible] । सौन्दर्य भाव का अध्ययन करने के लिये सस्कार विधि (Method of impression) का व्यवहार किया जाता है और उसी प्रकार पूछा जाता है कि [illegible] ', 'दो में से कौन अधिक सुन्दर या असुन्दर है' 'को[illegible] संगीत [illegible] ', आदि। सर्व प्रथम सौन्दर्य भाव का अध्ययन भी फेक्नर ने ही किया [illegible] । [illegible] कई मनोवैज्ञानिकों ने इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

सौन्दर्यभाव की अध्ययन विधियाँ

मनोदैहिक तथा सौन्दर्य भाव के अ[illegible] बहुत समानता है, लेकिन सौन्दर्य भाव के अध्ययन की विधियाँ [illegible] विधियों की [illegible] सरल है।

(१) उत्पादन या व्यवस्थापन विधि [illegible] उत्पादन [illegible] व्यवस्थापन-विधि सौन्दर्य भाव अध्ययन की एक प्रमुख विधि है। [illegible] भाव का [illegible] करने के लिए प्रयोज्य को किसी ज्यामिति या अन्य चित्र को उस प्रकार [illegible] दिया जाता है जो उसे अत्यधिक सुन्दर और मनोहारी लगे। कभी कभी विभिन्न उपकरणों से व्यवस्थापन (Adjustible) चित्र भी [illegible] सकते हैं, जो मनोनुकूल घटाए बढ़ाए जा सकते हैं। ऐसे चित्र को प्रयोज्य को इस प्रकार [illegible] करना पड़ता है जो उसे अत्यधिक लुभावना मालूम होता है। यदि एक ही [illegible] पर प्रयोग करते हैं तब तो उसे काफी चित्रों को बनाने या [illegible] करने [illegible] पड़ते हैं। [illegible] मे उसके विभिन्न उत्पादनों या व्यवस्थापना के आधार पर [illegible] सौन्दर्यभाव जानते हैं। यदि यह प्रयोग अधिक प्रयोज्यों पर किया जाता है तो [illegible] मालूम होता है कि किस प्रकार का चित्र किसी समुदाय विशेष के लिये अधिक लुभावना या सुन्दर [illegible] जाता है। मध्यमान तथा प्रमाण विचलन के आधार पर उन निर्णयों की प्रतिप[illegible] और विश्वसनीयता की परीक्षा की जाती है।

(२) मूल्यांकन विधि [illegible] मूल्यांकन विधि के सम्बन्ध मे बहुत कुछ पहले व्यक्त किया जा चुका है, इसलिये उसकी पुनरावृत्ति यहाँ आवश्यक नहीं। जहाँ तक इसके दोष गुणों का सम्बन्ध है, उसके विषय मे पाठक व्यक्तित्व (Personality) की [illegible]-विधियों का अध्ययन करके जान सकते हैं। इसलिये यहाँ हम इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि अधिक पदार्थों पर प्रयोग करने के लिये यह विधि बहुत ही उपयोगी और सरल

प्रमाणित हुई है। इस विधि का व्यवहार करने मे प्रयोज्य को किसी प्रकार की कठिनाई नही होती है। लेकिन, मूल्याकन इतना आत्मगत होता है कि विभिन्न प्रयोज्यो मे एक ही पदार्थ के मूल्याकन मे काफी अन्तर पडता है। इसलिये मध्यमान, प्रमाण विचलन, आदि साख्यिक (Statistical) विधियों से मूल्याकन की प्रतिपन्नता का परीक्षण करना आवश्यक है।

(३) क्रमिक विधि क्रमिक विधि से सौन्दर्यवृत्ति का अध्ययन करने के लिये सभी पदार्थों को एक बार प्रयोज्य के सामने रख कर उन्हे उनकी खूबसूरती के आधार पर क्रमश रखने का निर्देशन दिया जाता है। प्रयोज्य अगर एक रहता है तब उसमे विभिन्न अवसरो पर उन्ही पदार्थों को उनकी सुन्दरता के क्रम मे रखवा कर यह देखा जाता है कि पदार्थों के प्रति उसकी सौन्दर्यवृत्ति विभिन्न अवसरों पर कैसे परिवर्त्तित होती है। यदि प्रयोज्य बहुसख्यक रहते है तो उनके क्रमों का तुलनात्मक अध्ययन करके प्रत्येक पदार्थ के क्रम का मध्यमान, मध्यमान विचलन तथा प्रमाण विचलन मालूम करके समाज अभिरुचि का पता लगाया जाता है। यह विधि किसी पदार्थ के सामाजिक महत्त्व को जानने के लिये बहुत लाभप्रद है।

(४) अभिरुचि विधि अभिरुचि विधि का भी पहले उल्लेख किया जा चुका है। इसलिये हम इतना ही कहना उचित समझते है कि इस विधि का उपयोग फेक्नर ने बहुसख्यक प्रयोज्यों पर करके विभिन्न आकार प्रकार के चतुर्भुजों के भावात्मक महत्त्व का निर्णय किया था। उसके दृष्टिकोण से यह बहुत ही उपयुक्त और प्रतिपन्न विधि है। लेकिन, अन्य मनोवैज्ञानिक उसके इस विचार से सहमत नही है। क्योंकि, इससे पूर्णत विश्वसनीय निष्कर्ष प्राप्त करना कठिन है। इस पर भी आज बहुसख्यक मनोवैज्ञानिक इसका व्यवहार सतोष और विश्वास के साथ करते हैं।

(५) युगल तुलनात्मक विधि इस विधि पर भी प्रकाश डाला जा चुका है, इसलिये पुन कुछ कहना उचित नही प्रतीत होता। इसकी विशेष जानकारी के लिये पाठक इसी अध्याय मे भाव के अध्ययन विधियों के अन्तर्गत देख सकते हैं। पृष्ठ ४२४ के प्रयोग-चित्र से इस विधि की गति विधि की झाँकी मिलती है।

सौन्दर्य भाव का प्रयोगात्मक अध्ययन

रग अभिरुचि की दिशा मे जेस्ट्रा (Jastrow) ने जो प्रयोग रगीन कागजों के साथ किया, उसमें पुरुषों ने नीले और स्त्रियो ने पीले को अधिक सुन्दर और सुखद व्यक्त किया। सन् १९०४ ई० मे उडवर्थ तथा ब्रुनर (Bruner) ने अपने प्रयोग में यह प्रदर्शित किया कि अधिकाश प्रयोज्यों ने गुलाबी रग (Pink) को पसद किया, उसके बाद पीले नीले रग (Yellowish-blue) का स्थान था। लेकिन, सभी रगों को रग बोर्ड (Colour Board) मे सुसज्जित करने पर गुलाबी तथा लाल रग ही प्रधान थे। प्रयोज्यो ने मन्द तथा मनहूस (Dull) रगो को बहुत ही कम पसन्द किया। ऐसे कुछ प्रयोज्यों ने चमकीले रग, जैसे, नारगी (Orange), बैगनी (Purple), आदि को भी बहुत कम रुचिकर कहा, लेकिन कुछ प्रयोज्यों ने इन्हे भी कभी-कभी बहुत रुचिकर कहा। हरा रग बहुत कम अवसरो पर अत्यधिक रुचिकर अथवा अरुचिकर व्यक्त किया गया। विच (Winch), वाशबर्न (Washburn), काट्ज (Katz), गार्थ (Garth), प्रभृति विद्वानों ने भी रग-

चित्र [illegible]

रंग अभिरुचि [illegible]

अभिरुचि का प्रयोग बच्चों और [illegible] पर [illegible] की अपेक्षा लाल तथा नीले रंग अधिक पसन्द किए जाते [illegible] निर्विवाद है कि रंग के अतिरिक्त [illegible] आदि अंग भी सौन्दर्य भाव (रंग अभिरुचि) [illegible] होते हैं। वान आलिश (Von Allesch) को अपने प्रयोग में [illegible] प्रकार के [illegible] मिले। प्रयोज्यों ने बहुत से रंगों को एक अवसर पर [illegible] लेकिन दूसरे अवसर पर उन्हीं रंगों को मनहूस और [illegible] प्रयोगों के आधार पर उसका कहना है कि कोई भी रंग [illegible] होता, अत कोई भी रंग किसी भी स्थान [illegible] सकता है। चैण्डलर (Chandler) [illegible] जब दो रुचिकर रंगों का जोड़ा प्रदर्शित किया गया तो [illegible] जब दो अरुचिकर रंगों को एक साथ दिखाया गया तो प्रयोज्यों ने [illegible] किया। इस प्रकार रंग अभिरुचि के प्रयोग-परिणाम अनिश्चित ही [illegible] हैं।

जब फकनर ने सौन्दर्य भाव [illegible] किया तो देखने में आया कि यद्यपि प्रयोज्यों [illegible] बहुत झुंझलाहट और विलम्ब हुआ, किन्तु सभी ने [illegible] पसन्द किया। उसके प्रयोगों से मालूम होता है कि [illegible] थी, उसे अधिकांश प्रयोज्यों ने सुन्दरतम [illegible] प्रयोज्यों ने सबसे कम चुना। इसके बाद [illegible] प्रकट की। लालो (Lalo) के प्रयोज्यों में से पन्द्रह प्रतिशत प्रयोज्यों ने [illegible] पतले और संकीर्ण (Narrow) चतुर्भुज को सुन्दरतम व्यक्त किया, किन्तु अधिकांश प्रयोज्यों ने वर्ग को ही सबसे अधिक रुचिकर

कहा। अन्य प्रयोग प्रमाण भी ऊपर के समान है। हाँ, उक्त अमरीकी विद्यार्थियों ने अपनी अभिरुचि औसत पतले चतुर्भुज के प्रति प्रदर्शित की। वेबर, हाउज (Haines), डेवीज (Davies), आदि विद्वानों ने भी विभिन्न आकार प्रकार के चतुर्भुजों का प्रयोग किया जिससे मालूम होता है कि चतुर्भुज का उन्नत समान प्रयोग अनुपात (Ratio) को नहीं, बल्कि आकार को ही ध्यान में रखते है। उनकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर भी प्रयोज्य चतुर्भुज का रुचिकर व्यक्त करते। इस प्रकार, रंग की ही तरह कोई भी चतुर्भुज स्वत रुचिकर नहीं होता। अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी विभिन्न वृत्त, अण्ड वृत्ति, (Ellipse) समबाहु त्रिभुज, रेखा, आदि ज्यामितिक चित्रों के साथ प्रयोग किया। उन प्रयोगों का अध्ययन करने से मालूम होता है कि जिन आकृतियों में किसी प्रकार का सतुलन या नियम था उनके प्रति प्रयोज्यों की अभिरुचि अधिक थी। आकृतियों की प्रतिसाम्यता (Symmetry) उनकी रुचिकरता को बढाने में सहायक थी।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि सौन्दर्य भाव को कई अंग प्रभावित करते है। हम पहले ही यह देख चुके है कि कोई पदार्थ साहचर्य, प्रतीकता, रुचिर, विरामात्मक, आदि अंगो के कारण रुचिकर या अरुचिकर कैसे प्रतीत होता है। किंतु, उन अंगो के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे अंग है जो निर्मित पदार्थ के सौन्दर्य के महत्त्व को बढा घटा देते है। किसी पदार्थ के साथ जाति का तारतम्य भाव भी उसके सौन्दर्य को बढाने घटाने मे सहायक होता है। व्यक्ति अपने को उसी परिस्थिति मे रखकर उसके सौन्दर्य का निर्णय करता है। प्रयोग करने पर देखा गया है कि किसी पदार्थ के कर्त्ता का महत्त्व भी उसके सौन्दर्य भाव को बढाता है। लोग महान व्यक्तियों के साधारण लेखो की भी प्रशसा करते है, किन्तु साधारण व्यक्ति के उत्तम से उत्तम लेख को भी साधारण कहते है। उपर्युक्त अंग किसी भी प्रकार के सौन्दर्यांकन को प्रभावित करते है। अत सगीत, काव्य, चित्रकारी, आदि कोई भी कला उनके प्रभाव से निर्मुक्त नही कही जा सकती।

भाव तथा सौन्दर्य भाव के अध्ययन की उपयोगिता

यदि हम भाव और उस पर किये गए प्रयोगो की उपयोगिता का विचार करे तो हमें मालूम होगा कि यह हमारे जीवन मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हम लोगों का यह सामान्य अनुभव है कि जो मनुष्य निरतर सुखद भावों का अनुभव करता है वह स्वस्थ, सुखी और सतुष्ट रहता है, लेकिन दुखद भाव का अनुभव करने वाला व्यक्ति बराबर अस्वस्थ दुखी और असतुष्ट रहता है। हम यह अच्छी तरह जानते है कि जो विषय रुचिकर और मनोहारी प्रतीत होता है वह आसानी से सीख लिया जाता है, किंतु अरुचिकर विषय लाख कोशिश करने पर भी सीखा नही जाता। हम यह देख चुके है कि दुखद भाव के चलते हम लोग आवश्यक घटनाओं और अनुभवों को भी भूल जाते है, जिसके चलते हम लोगो को भारी क्षति पहुँचती है। स्मरण और शिक्षण मे भाव का क्या महत्त्व है, यह उन अध्यायो में व्यक्त किया जा चुका है, अत उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नही है।

हम लोग अच्छी तरह जानते है कि जो रंग, गंध, लय, आदि हम सुखद मालूम होते है, उन्हे हम पसन्द करते है और जो दुखद मालूम होते है, उन्हे नापसन्द करते है।

वर्त्तमान युग मे विभिन्न प्रयोगों के द्वारा यह निश्चित कर लिया गया है कि किसी वर्ग विशेष के व्यक्तियो को कौन सा रग, स्वाद या गध रुचिकर प्रतीत होता है। इसलिये विज्ञापन व्यापार, और उद्योग धधो मे अत्यधिक उन्नति हो रही है। व्यापारी उन्ही रग और रूप के कपडो को अपनी दुकानो मे रखते है जिनकी जनता अधिक मांग करती है। विज्ञापन की सार्थकता के लिये उन रगो का प्रयोग किया जाता है जिससे कि लोगो का ध्यान शीघ्र आकर्षित हो कर प्रभावित हो जाता है। मकानो की दिवालो को उन्ही रगो से रजित किया जाता है जो उनमे सुखद भाव उत्पन्न करते है। आज कल कार्यालयो मे ऐसे ही तेल या इत्रो का प्रयोग किया जाता है जिन्हे कि अधिकाश व्यक्ति पसद करते है। होटलो मे भोजन तैयार करते वक्त ग्राहको की स्वाद अभिरुचि का पूरा ध्यान रक्खा जाता है। अब होटलो के रसोई इससे अच्छी तरह परिचित हो गए है कि मनुष्य को कैसा स्वाद अच्छा लगता है। सगीतकार ऐसे ही सगीत का निर्माण करता है जो मनुष्य के दिल पर घर कर सके। इसके लिए वह उसकी योग्यता, रुचि, आदि का पूरा ध्यान रखता है।

कवि, लेखक, उपन्यासकार अपनी रचनाओ मे जनता की अभिरुचि और उसकी परिस्थिति का पूरा ध्यान रखते है। चित्रकार, मूर्ति निर्माता, आदि जब किसी प्रकार की कला का प्रदर्शन करते है तो वे अपनी कला मे आतिसामान्यता, क्रम, सतुलन, आदि अगो का पूरा ध्यान रखते है, क्योकि वे यह अच्छी तरह जानते है कि उपर्युक्त अग सौन्दर्य भाव को प्रभावित करते है। गृह निर्माण मे भी कारीगर अपनी रचना की सुन्दरता के लिये उपर्युक्त अगो का ध्यान मे रखता है। कमरे या मकान मे चित्रो को सजाने या कुर्सी, मेज, आदि को सजाने मे भी इन अगो की उपेक्षा नही की जाती है। इसलिये सजावट लोगों को भली और रुचिकर मालूम होती है।

अब विभिन्न प्रयोगो से यह मालूम हो गया है कि किसी कला के मूल्याकन को कलाकार की प्रतिष्ठा अत्यधिक मात्रा मे प्रभावित करती है। इसलिए साधारण कलाकारो की कृतियो को महान कलाकारो की कृतियाँ बता कर व्यवसायी अत्यधिक लाभान्वित हो रहे है। इसी सिद्धान्त को ध्यान मे रखकर प्रतिभाशाली और कार्यकुशल प्रकाशक आज साधारण विद्वानो से अच्छी-अच्छी चीज लिखवाकर प्रख्यात विद्वानो के नाम से प्रकाशित कर आर्थिक दृष्टिकोण से आशातीत लाभान्वित हो रहे है।

सौन्दर्य भाव के अध्ययन से यह अच्छी तरह ज्ञात हो गया है कि किस प्रकार का व्यवहार और आदत लोगो को सन्तुष्ट या असन्तुष्ट करती है। इसलिये वर्त्तमान युग के नेता, व्यवसायी, अध्यापक, आदि अरुचिकर व्यवहारो और आदतो का तिलाजलि देकर जनता को प्रभावित करने का प्रयास करते है। सबको प्रभावित करने और मित्र बनाने के लिये अरुचिकर आदतो और व्यवहारो को छोड़ना आवश्यक हो गया है। जो लोग अपने व्यवहारो के सुधार की परवाह नही करते, उनके मित्रो और सहायको का सर्वदा अभाव रहता है। अत भाव और सौन्दर्य भाव के अध्ययन से हम जीवन को सुखी और सफल बनाना आसान हो गया है। इसी तरह, हमारे जीवन के अन्य क्षेत्रो मे भी इनके अध्ययन की उपयोगिता है।

चौदहवाँ ~ ६८ ~६

संवेग (Emotion)

सवेग का स्वरूप

क्रोध, भय, घृणा, प्रेम जैसे अनुभवों को सवेग कहते है। इसका सबध हमारे जीवन के भावात्मक पहलू (Affective aspect) से है। इसीलिए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भ्रमवश भाव (Feeling) और सवेग (Emotion) को एक ही माना है, लेकिन उनका यह दृष्टिकोण दोषपूर्ण है। यद्यपि इन दोनो मानसिक अवस्थाओ म गुणभेद नही होता, तथापि इन दोनो मे इतनी भिन्नता है कि इन्हे एक समझना गलत है। भाव सवेग की अपेक्षा निर्बल और सरल होता है। जो जटिलता और सक्रियता सवेग म होती है भाव मे उसका अभाव रहता है। भाव इतना आत्मगत होता है कि उससे बाह्य परिस्थिति पर किसी तरह का प्रकाश नही पडता है, लेकिन सवेग से बाह्य परिस्थिति पर भी प्रकाश पडता है। इसके अतिरिक्त, भाव से व्यवहार मे सहूलियत आती है, लेकिन आतिक सवेग की हालत मे व्यवहार मे बाधा पड जाती है।

इसकी व्याख्या करने के सिलसिले मे यह स्मरणीय है कि प्रत्येक सवेग मे कुछ चेतन अनुभव और कुछ शारीरिक परिवर्त्तन होते है। इसकी परिभाषा देने के क्रम मे कुछ मनोवैज्ञानिकों ने सवेग के एक पहलू पर जोर दिया है और किसी ने दूसरे पहलू पर। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सवेग एक विशेष प्रकार की चेतन अनुभूति या मानसिक अवस्था है, जिसका अध्ययन अन्तर्निरीक्षण के द्वारा सभव है। लेकिन, सवेग जैसी जटिल अवस्था का समुचित अध्ययन अन्तर्निरीक्षण से असम्भव है। साथ ही, इस एकागी परिभाषा से इसका स्वरूप भी स्पष्ट नही होता।

व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक सवेग मे सन्निहित शारीरिक प्रतिक्रियाओं (Bodily reactions) पर ही जोर देते है। उनके अनुसार सवेग मे मानसिक प्रक्रियाओं का कोई स्थान नही है। प्रत्येक सवेग मे कुछ खास शारीरिक परिवर्त्तन होते है जिनके परीक्षण से ही सवेग का अध्ययन हो जाता है। लेकिन, स्पष्ट कारणो मे सवेग-सबधी यह धारणा भी गलत है।

तीसरा पक्ष शारीरिक एव अन्तरावयव (Organic) परिवर्त्तनो की चेतना को ही सवेग मानता है। इस तरह, यह पक्ष अन्तरावयव सवेदना (Organic sensation) और सवेग को अभिन्न मानता है, लेकिन यह भी सवेग के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन नही कराता। सवेग के समय विभिन्न प्रकार के दैहिक परिवर्त्तन होते है, किंतु उन परिवर्त्तनों का ज्ञान सवेग नही है।

चौथे पक्ष के विद्वान, जिनमें कैनन (Canron), और उडवर्थ के नाम प्रमुख है, सवेग के दैहिक उपद्रवों और परिवर्त्तनों पर जहाँ एक ओर जोर देते है वहा सवेग की मानसिक अवस्था को भी कम महत्त्व नही देते। वे न तो किसी पक्ष की उपेक्षा करते है

और न किसी पर विशेष जोर देते हैं। उनके अनुसार संवेग जीव की वह उत्तेजित अवस्था है जिसमें किसी प्रकार की निश्चित क्रियात्मक वृत्ति (conative tendency) मौजूद रहती है। इसके अनुसार पहले कोई परिस्थिति उपस्थित होती है तब क्रियात्मक वृत्ति का आविर्भाव होता है जिसके पश्चात विभिन्न प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तन होते हैं। इस प्रकार, उपर्युक्त दृष्टिकोण पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि संवेग के समय जीव में शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के उपद्रव (Disturbances) होते हैं। इस सिलसिले में पी० टी० यंग (P. T. Young) द्वारा दी गई परिभाषा सर्वाधिक मान्य है। उसके शब्दों में, संवेग सम्पूर्ण जीव का तीव्र उपद्रव है जिसकी उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है तथा जिसके अन्तर्गत व्यवहार, चेतन अनुभूति और जाठरिक (Visceral) क्रियाएँ सम्मिलित रहती हैं।[1] यदि इस परिभाषा की व्याख्या करें तो संवेग का पूरा स्वरूप काफी स्पष्ट हो जायगा।

इस परिभाषा के अनुसार पहली बात तो यह है कि संवेग में व्यक्ति उद्वेग (Disturbance) की अवस्था में रहता है। तात्पर्य यह कि जब भी व्यक्ति क्रोध, भय या प्रेम का अनुभव करता है उसके सारे व्यवहार और अनुभवों में एक तरह की रुकावट आ जाती है और वह उद्वेगशील होकर असामान्य व्यवहार करने लगता है। उदाहरणार्थ मान लें, कोई व्यक्ति पढ़ रहा है। उसी समय एक साँप ऊपर से अचानक गिर पड़ता है। उसमें तत्क्षण भय का संवेग हो जायगा। भयभीत होते ही उसका पढ़ना, सोचना, आदि सभी क्रियाएँ तुरत बन्द हो जायगी और सम्भवत वह उठ कर चिल्ला पड़ेगा। इस तरह, व्यक्ति उद्वेग की अवस्था में आ जाता है। स्पष्टतः यह बात। और उद्वेग धीरे धीरे नहीं होता, बल्कि बहुत ही तीव्र स्वरूप का होता है। दूसरी बात, सभी तरह के उद्वेग या परिवर्तनों को संवेग के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। जो परिवर्तन किसी मनोवैज्ञानिक कारण से होते हैं वे ही संवेग के अन्दर गिने जाते हैं। मनोवैज्ञानिक कारण का अर्थ उत्तेजना प्रतिक्रिया सम्बन्ध से है। जब किसी उत्तेजना के फलस्वरूप शारीरिक और मानसिक परिवर्त्तन होते हैं तभी संवेग का परिचय मिलता है। एड्रेनिन की सूई से भी तरह तरह के आन्तरिक परिवर्त्तन होते हैं, परन्तु संवेग नहीं होता। संवेग की उत्तेजना बाह्य या आन्तरिक किसी भी तरह की हो सकती है। हम साँप को देख कर (बाह्य उत्तेजना) भी भयभीत होते हैं और साँप की कल्पना (आन्तरिक उत्तेजना) करके भी भयभीत हो जाते हैं। तीसरी बात, संवेग के परिवर्तन किसी अंग-विशेष में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जीव में होते हैं। पूरे 'जीव' की व्याख्या करते हुए यंग ने परिभाषा के अन्त में कहा है इसके 'अन्तर्गत व्यवहार, चेतन अनुभूति तथा अन्तराशय क्रियाएँ सम्मिलित रहती हैं।' इस तरह, इस परिभाषा के अनुसार संवेग में चेतन अनुभूति और शारीरिक परिवर्त्तन दोनों होते हैं। यह परिभाषा, इस तरह, संवेगसम्बन्धी विभिन्न विचारों में एक समन्वय उपस्थित करने का प्रयास करती है। इसी से यंग की इस परिभाषा को इक्लेक्टिक (Eclectic) या ग्राहीय कहते हैं।

फिर भी, कुछ विद्वानों ने इस इक्लेक्टिक परिभाषा की भी आलोचना की है। कुछ

[1] Emotion is an acute disturbance of the individual as a whole, psychological in origin, involving behaviour, conscious experience and visceral functioning.

लोगों ने इसे संकीर्ण परिभाषा होने का दोषारोपण किया है। ऐसे लोगों का कहना है कि संवेग को तीव्र उद्वेग (Acute disturbance) मान कर यंग ने मन्द संवेगों (Mild emotions) को संवेग-क्षेत्र से निकाल दिया है। यद्यपि मन्द संवेग में तीव्रता कम होती है, किंतु वह भी संवेग ही है, जैसे, संगीत से प्रसन्न होना, किसी बच्चे के प्रति प्रेम प्रकट करना, आदि।

इसके अतिरिक्त, यंग (Young) की परिभाषा को दोषपूर्ण सिद्ध करने के लिए कुछ लोगों ने बतलाया है कि संवेग हमेशा अव्यवस्थित (Disorganizing) ही नहीं हुआ करता है। संवेगात्मक अवस्था में लोगों ने ऐसा ऐसा कठिन कार्य संपादित किया है जो साधारण अवस्था में नहीं हो सकता था। यदि यंग की परिभाषा से सहमत हो संवेग को अव्यवस्थित मान लिया जाए तो इसका समुचित चित्र हमारे समक्ष नहीं आ सकता।

परन्तु, ये ऐसी आलोचनाएँ नहीं हैं जिनके कारण यह परिभाषा अमान्य हो जाय। इससे संवेग का स्वरूप काफी अंशों में स्पष्ट हो जाता है।

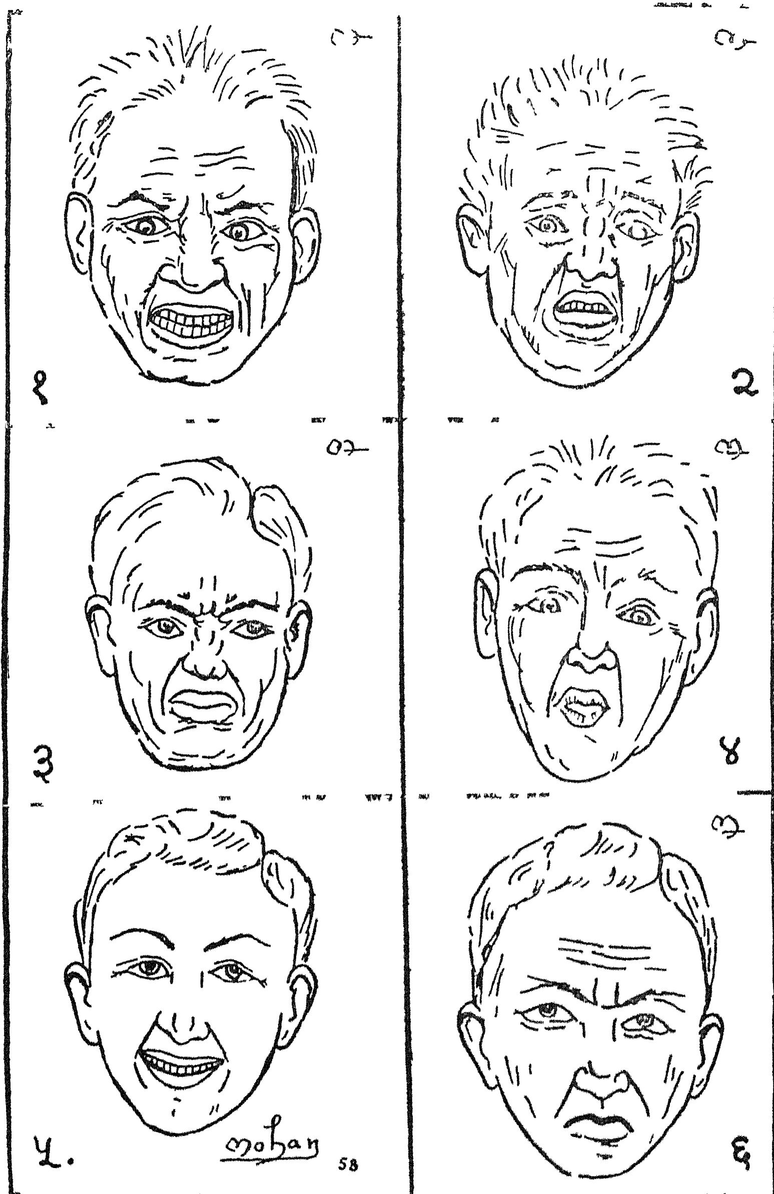
संवेग की अभिव्यक्ति (Expressions of emotion)

संवेग की हालत में कुछ ऐसे लक्षण प्रकट हो जाते हैं जिन्हें देख कर हम कह देते हैं कि अमुक व्यक्ति क्रोध, प्रेम, घृणा, भय या अमुक संवेग की हालत में है। संवेग जिन लक्षणों के द्वारा प्रकट होता है, उन्हें संवेग की अभिव्यक्ति की संज्ञा दी गई है। इन बाह्य अभिव्यक्तियों को प्रधानतः तीन भागों में रखा जा सकता है—(१) मौखिक अभिव्यक्ति (Facial expression), (२) स्वर अभिव्यक्ति (Vocal expression) और (३) आसनिक अभिव्यक्ति (Postural expression)।

(१) मौखिक अभिव्यक्ति (Facial expression) मनुष्य के मुखमंडल के विभिन्न भागों में इतनी स्नायुओं का साम्राज्य है कि मनुष्य अपने संवेगों का प्रकाशन अपने मौखिक हाव भाव के द्वारा सरलतया कर देता है। चेहरे पर छोटी छोटी मांसपेशियाँ (Muscles) होती हैं। जब हम किसी संवेग का अनुभव करते हैं तो उस समय ये मांसपेशियाँ सिकुड या फैल कर चेहरे को एक भिन्न रूप का बना देती हैं। उदाहरणार्थ, भौंहें सिकुड जाती हैं, आँखें बढ जाती हैं, ललाट पर शिकन आ जाती है, चेहरा कभी लाल हो जाता है, और नाक फडकने लगती है। इन लक्षणों को देख कर ही कोई व्यक्ति कह देता है कि व्यक्ति संवेग की हालत में है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग करके यह बतलाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार की मौखिक अभिव्यक्ति से क्या अर्थ निकलता है, अथवा किस संवेग का प्रकाशन किस तरह की मौखिक अभिव्यक्ति से होता है। पिडरिट (Piderit) ने अपने प्रयोग में पाया कि किसी परिस्थिति के स्मरण मात्र से भी मुखडे पर वे ही हाव भाव परिलक्षित होते हैं जो उसकी उपस्थिति के समय में होते हैं। उसका कहना है कि अवांछित दृश्य को देखते और वैसे ही गंध को सूँघते समय जो अवस्था मुँह, आँख और नाक की होती है वही अवस्था दुःखद एवं अवांछित संवेगों में भी होती है। उन भावभंगियों को देखने से पता चलता है कि मनुष्य वर्त्तमान परिस्थिति से निर्मुक्त होना चाहता है। वांछित संवेगों के समय मुख, नाक, आँख, आदि से ऐसे भाव परिलक्षित होते हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति उस परिस्थिति का स्वागत करता है। हम अपने अनुभव से जानते हैं कि क्रोध, भय, सुख, दुःख, आदि संवेगों में चेहरे पर निम्नांकित तरह के परिवर्त्तन होते हैं। भौंहों का तनना, सिकुडना, ललाट पर धारियाँ पडना, ललाट फैलना, आँखों का नीचे ऊपर या छोटा बड़ा

होना। इनके अतिरिक्त, नथुने के फड़कने या सिकुड़ने, मुँह बंद होने या खुलने, होठों के फड़कने, होठ चाटने, दाँतों से दबाने, मुस्कुराने, आदि के सहारे भी तरह तरह के संवेगों की अभिव्यक्ति होती है। नीचे विभिन्न तरह के संवेगों (क्रोध, भय, घृणा, आश्चर्य, प्रसन्नता, तथा अप्रसन्नता) की मौखिक अभिव्यक्तियों के चित्र दिये गये जिनसे स्पष्ट है कि चेहरे के हाव भाव तथा सिकुड़न और फैलाव से संवेगात्मक स्थिति का पता चल जाता है।

चित्र-संख्या ७०



१ क्रोध, २ भय, ३ घृणा, ४ आश्चर्य, ५ प्रसन्नता, ६ अप्रसन्नता

विभिन्न संवेगों की मौखिक अभिव्यक्ति का चित्र

प्रयोग यह देखने के लिए कि केवल चेहरे को देखकर ही यह बतलाया जा सकता है या नही कि अमुक व्यक्ति किस तरह के सवेग का अनुभव कर रहा है, कई प्रयोग किए गए है। उनका उद्देश्य यह है कि यदि चेहरे को देख कर सवेग-विशेष का सही ज्ञान हो सकता है तो इसका अर्थ है कि प्रत्येक स वेग की अलग-अलग तरह से अभि-यक्ति होती है। यानी, क्रोध की हालत मे एक तरह का मौखिक रूप रहता है, भय के समय दूसरे तरह का तथा घृणा या अन्य सवेग की अवस्था मे तीसरे और चौथे तरह का मौखिक रूप हो जाता है। इस सम्बन्ध मे सभी प्रयोग सवेगात्मक चित्रों के साथ हुए है। ऐसे प्रत्येक चित्र मे किसी खास सवेग की हालत मे चहरे का फोटो रहता है। प्रयोज्य को वह चित्र देकर यह बतलाने को कहा जाता है कि वह किस सवेगात्मक अवस्था का चित्र है। कभी कभी किसी खास सवेगात्मक परिस्थिति मे कई व्यक्तियों को रख कर सभी का फोटो लिया जाता है और देखा जाता है कि उस सवेग का अनुभव करते समय सभी के चेहरे पर एक ही तरह के परिवर्त्तन होते है या अलग अलग तरह के।

डार्विन (Darwin) ने बीस प्रयोज्यों पर कई सवेगात्मक चित्रो के साथ प्रयोग किया। अधिकाश चित्रों के सम्बन्ध मे प्राय सभी प्रयोज्यों ने सही सवेगों को व्यक्त किया। लेकिन, कुछ चित्र एसे भी थे जिनके सबध में प्रत्येक प्रयोज्य ने विभिन्न प्रकार के सवेगो की सूचना दी। डार्विन के अनुसार, प्रयोज्यो के उत्तर मे अन्तर का कारण चित्रो का अपूर्ण रहना था, अन्यथा वे सभी सवेगो का ठीक अदाज चित्रो से लगा सके। अत उसके अनुसार, सवेग विशेष की जानकारी केवल चहरे के भाव और परिवर्तन से ही हो जाती है।

फर्नबर्गर (Feinberger) ने इसी तरह के प्रयोग के आधार पर बतलाया कि किसी दूसरे व्यक्ति के मौखिक हाव भाव तथा परिवर्त्तना को देखकर इतना ही बतलाया जा सकता है कि वह सवेग की हालत मे है, लेकिन निश्चित रूप से यह नही बतलाया जा सकता कि वह किस तरह के सवेग का अनुभव कर रहा है। इसका अनुभव तभी हो सकता है जब उसके सवेग उत्पन्न करनेवाली परिस्थिति को जानते रहे। एलपोर्ट ने भी पाया है कि मौखिक अभिव्यक्ति से सवेग को समझने मे शिक्षण और अनुभव से सहायता मिलती है, मात्र चेहरे को देख कर सवेग की जानकारी नही हो पाती।

फिर भी, चेहरे की भाव भगिमा से सवेग विशेष का अदाज काफी हद तक लग जाता है। फेलेकी (Felcky) ने एक प्रयोग ८६ सवेगात्मक चित्रों के साथ १०० प्रयोज्यों पर किया। उन्हे विभिन्न सवेगो के नाम लिखकर दिए गए और कहा गया कि जिस चित्र से जो सवेग अभिव्यक्त होता हो, उसे वे उसके सामने लिख दे। उस प्रयोग से पता चला कि उसके प्रयोज्यों को सवेग पहचान करने मे ७१% से ९३% तक सफलता मिली। केनर (Kanner) ने फेलेकी के ही कुछ चित्रों के साथ ४०९ व्यक्तियों पर प्रयोग किया। उसके प्रयोज्य ७७% आश्चर्य, ६०% भय (Fear), ९३% लज्जा (Shame) और ९०% क्रोध को पहचानने मे सफल हुए।

लैण्डिस (Landis) ने पचीस प्रयोज्यों को, जिसमे बारह पुरुष, बारह स्त्रियाँ और एक बच्चा था, सोलह-सत्रह सवेगोत्पादक परिस्थितियों में रखकर उनका चित्र लिया। तत्पश्चात् उसने उन चित्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया। उस अध्ययन के आधार पर

उसका कहना है कि उसके प्रयोग में मौखिक अभिव्यक्ति में प्रयोज्य की ही विशेषता व्यक्त हुई, किसी संवेगात्मक परिस्थिति की नहीं। [illegible] संवेगात्मक परिस्थिति का अनुभव करनेवाले विभिन्न [illegible] विभिन्न तरह की थी। इस प्रकार, लेण्डिस को अपने प्रयोग में [illegible] तरह का कोई हाव भाव दृष्टिगोचर नहीं हो सका।

उपर्युक्त प्रयोगात्मक परिणामों की [illegible] समस्या नहीं है। कुछ प्रयोग तो इस बात [illegible] विभिन्न [illegible] विभिन्न मौखिक हाव भावों से होती है। [illegible] प्रयोगात्मक परिणाम [illegible] जो [illegible] का खण्डन करते हैं। लेकिन, [illegible] चित्रों के साथ हुए हैं। [illegible] चित्र और [illegible] में अंतर का होना सम्भव ही है। क्रोध के समय जिस तरह की मौखिक [illegible] होती है, ठीक उसी तरह की अभिव्यक्ति क्रोध का [illegible] पाती। हम अपने अनुभव से जानते हैं कि शोक, विषाद, क्रोध, प्रसन्नता, प्रेम, आदि [illegible] की मौखिक अभिव्यक्ति में व्यक्तिगत और सांस्कृतिक भिन्नताएँ भले ही परिलक्षित हों, [illegible] अपने विभिन्न संवेगों को विभिन्न मौखिक-हावभावों में व्यक्त करता है। संवेग [illegible] करनेवाली इस मूक भाषा को समझना व्यक्ति विशेष के अनुभव, बुद्धि, [illegible] पर निर्भर करता है। संवेगसम्बन्धी निर्णय करने में [illegible] कि सभ्यता और संस्कृति का काफी [illegible] संवेग की मौखिक अभिव्यक्ति पर पड़ता है। [illegible] सारी बातों को समझना कठिन है, [illegible] मौखिक अभिव्यक्ति [illegible] संवेगसम्बन्धी निर्णय करना मुश्किल है।

(२) स्वर-अभिव्यक्ति (Vocal expression) स्वर के सहारे भी संवेग की अभिव्यक्ति होती है। [illegible] प्रेम, क्रोध, भय तथा [illegible] में विभिन्न तरह से बोलते या चिल्लाते हैं। किसी की आवाज [illegible] हम कह दिया करते हैं कि वह दुःख, क्रोध या भय में है। हम हँसने की आवाज में प्रसन्नता और रोने की आवाज से दुःख का ज्ञान प्राप्त कर जाता है। इसी तरह, क्रोध की अवस्था में आवाज भारी और कर्कश हो जाती है तथा प्रसन्नता [illegible] (Rhythmical) और मधुर होता है। इसी तरह विभिन्न [illegible] की उच्चता (Pitch), नाद (loudness), आदि में अन्तर पड़ने लग जाता है।

स्वतंत्र शब्द साहचर्य परीक्षण (Free word association test) से यह स्पष्ट है कि [illegible] में किस प्रकार स्वर में परिवर्त्तन होता है। इस प्रकार के परीक्षणों से यह स्पष्ट है कि विलम्बित प्रतिक्रिया काल (Delayed Reaction Time), प्रतिक्रिया की [illegible], पूर्व प्रतिक्रिया शब्द की पुनरावृत्ति, [illegible] प्रतिक्रिया शब्द, किसी व्यक्ति की संवेगात्मक अवस्था [illegible] हैं। फिर, मात्र [illegible] को ही संवेग-विशेष का परिचायक [illegible] भाषा और शिक्षण के फलस्वरूप विभिन्न व्यक्ति एक ही संवेग का प्रकाशन [illegible] करते हैं। इसके अतिरिक्त, संस्कृति का प्रभाव भी संवेग की स्वर अभिव्यक्ति पर पड़ता है।

(३) आसनिक-अभिव्यक्ति (Postural expression) सवेग की हालत मे जो आसनिक परिवर्त्तन होते है, वे निर्विवाद हैं। क्रोध मे तनकर खडा होना, भुजाओ को इधर उधर फेकने, भय मे दुबक कर बैठने या छिपने, आदि की जो क्रियाएँ होती है, वे सभी को ज्ञात है। हाथों का मलना, या मुट्ठी बाँध लेना, आदि भी खास खास सवेगों के परिचायक होते है। शारीरिक आसनो और सवेगो को देखने के लिए हण्ट (Hunt) तथा लैण्डिस (Landis) ने जो प्रयोग किया उसमे उन्हे केवल चकित सवेग (Startle emotion) और शारीरिक आसन मे ही सम्बन्ध परिलक्षित हुआ, अन्य सवेगों मे नही। यद्यपि व्यक्ति अपने विभिन्न सवेगों का प्रकाशन शारीरिक आसनों द्वारा करता है, लेकिन किस सवेग का प्रकाशन किस तरह के शारीरिक आसन से होगा, यह उस व्यक्ति पर ही निर्भर करता है। जब किसी परिस्थिति के प्रति किसी सवेग विशेष मे जैसी प्रतिक्रिया करना चाहता है, वैसा ही शारीरिक आसन भी प्रकाशित करता है। इसलिए कुछ ही आसन ऐसे है जिन्हे देखकर हमलोग किसी के सवेग विशेष को जान सकते हैं, सभी आसनो को देखकर नही। लेकिन, इतना सत्य है कि मनुष्य अपने विभिन्न सवेगों का प्रकाशन अपने विभिन्न शारीरिक आसनों द्वारा करता है। इस कथन की सत्यता बन्दर, कुत्ते, बिल्ली, आदि जानवरो पर हुए सवेगसम्बन्धी विभिन्न प्रयोगों से भी सिद्ध होती है।

संवेग मे आन्तरिक परिवर्त्तन

सवेग की अवस्था मे शरीर के अन्दर कई तरह के परिवर्त्तन होते है। इन परिवर्त्तनों का ठीक ठीक ज्ञान विशेष प्रकार के यन्त्रों की सहायता से होता है। यहाँ हम कुछ खास परिवर्त्तनों की चर्चा करेंगे।

(१) साँस-गति (Rate of respiration) सवेग की हालत मे साँस मे दो तरह के परिवर्त्तन होते है—एक साँस की गति मे परिवर्त्तन और दूसरा साँस की तीव्रता मे परिवर्त्तन। गति मे परिवर्त्तन होने के कारण दुख के अतिरिक्त अन्य सवेगावस्था मे सास जल्दी-जल्दी चलने लगती है। सामान्य अवस्था मे सास लेने और छोड़ने मे १ ४ का अनुपात रहता है, लेकिन सवेगशील होने पर यह अनुपात १ २ का और कभी कभी १ ० का भी हो जाता है। सास की गति को नीमोग्राफ (Pneumograph) नामक यन्त्र से मापा जाता है। पृष्ठ ४३९ के चित्र मे नीमोग्राफ की प्रयोगावस्था दिखलाई गई है।

आश्चर्य या भय के सवेग मे क्षणभर के लिए सास अवरुद्ध होकर पुन बढ जाती है। शोक, अवसाद, आदि अवस्थाओ मे सास की गति धीमी पड जाती है। रेहवोल्ट (Rehwoldt) ने एक प्रयोग मे अपने प्रयोज्य को अभिनय के एक सवेगात्मक दृश्य की कल्पना करने को कहा, कल्पना करने के फलस्वरूप उस समय प्रयोज्य की सास गति बढ़ गई। प्राय सभी अन्वेषकों का मत है कि उत्तेजित अवस्था मे सांस-गति तेज और गम्भीर हो जाती है। सुखद और दुखद दोनों प्रकार की परिस्थितियाँ मनुष्य को उत्तेजित कर देती है। इसलिए इस अवस्था मे सास गति मे वृद्धि या कमी देखने में आती है, किन्तु अधिकाशत. सास गति बढ ही जाती है। स्कैग्स (Skaggs) ने जो प्रयोग

इस दिशा मे किया उससे मालूम होता है कि प्रत्याशा (Expectation) की अवस्था मे उसके प्रयोज्यो की सास गति म वृद्धि हुई।

ब्लाज (Blatz) ने अपने २० प्रयोज्यो पर, जिनम स्त्री और पुरुष दोनो ही थे, भय के समय सास गति मे परिवर्त्तन को जानने के लिए प्रयोग किया। सभी प्रयोज्यों से यह व्यक्त कर दिया गया कि प्रयोग का एकमात्र ध्येय हृदय गति (Heart beat) को जानना था। प्रयोज्यो को एक एक करके कुर्सी पर बिठा कर उनकी आँखे बन्द कर दी गईं और उन्हे कुर्सी से इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया गया कि वे उससे गिर न सके। कुर्सी भी इस प्रकार से बनी हुई थी कि उसका सहारा हटा देने से वह पीछे ६०° का कोण बनाती हुई झुक जाती थी, किंतु न तो उस पर का बैठने वाला गिर सकता था और न कुर्सी ही उससे अधिक झुक कर जमीन का स्पर्श कर सकती थी। कुर्सी की ऐसी व्यवस्था करने का एकमात्र ध्येय भी प्रयोज्यो मे भय सवेग उत्पन्न करना था। जब प्रयोज्य सर्वप्रथम प्रयोगावस्था मे रक्खे गये तो स्थान और परिस्थिति की विचित्रता के कारण उनमे आश्चर्य, भय, व्याकुलता, आदि के भावो का आविर्भाव हुआ। सास मापक यत्र (Pneumograph) की सहायता से उनकी सास गति का ग्राफ चित्रित हुआ। इस प्रकार तीन बार उन्हे उस परिस्थिति मे रखकर उनकी सास गति का ग्राफ चित्र तैयार किया गया। जब वे प्रयोज्य उस परिस्थिति से पूर्ण परिचित हो गए और सामान्य गति से सास लेने लगे तब बिना किसी सावधान सकेत के उनकी कुर्सियो का सहारा हटा दिया गया। सहारा हटाते ही कुर्सियो के पीछे झुकने से सभी प्रयोज्यो को गिर जाने का भय हुआ, सास-गति का ग्राफ चित्र इस अवस्था मे भी तैयार हुआ। इससे पता चलता है कि पीछे गिरते वक्त सभी प्रयोज्यो की सास गति कुछ काल के लिए रुक गई तब वे धीरे धीरे सास लेने लगे। अभिप्राय यह कि उनकी सास लेने म सास छोड़ने की अपेक्षा अधिक समय लगने लगा।

इस तरह, विभिन्न प्रयोगो से यह स्पष्ट है कि सवेग के समय सास की गति मे परिस्थिति और व्यक्ति के अनुसार विभिन्न परिवर्त्तन होते है। सास का रुकना, तेज या मन्द होना, आदि क्रोध, भय, क्षोभ, प्रेम, आदि सवेगो म हमलोगो का नित्यप्रति का सामान्य अनुभव है।

(२) हृदय-गति (Heart beat) सवेग की अवस्था मे व्यक्ति की हृदय की गति और तीव्रता दोनो म वृद्धि हो जाती है। दूसरे शब्दो मे, सवेग मे हृदय तेजी से जोर जोर धड़कने लगता है, हृदय या नाड़ी की गति रक्त सचार पर निर्भर करती है। अत कह सकते है कि सवेग के समय रक्त सचार मे परिवर्त्तन होता है। जब मनुष्य सवेगशील होता है तब रक्तनलिकाओ (Blood vessels) मे सकुचन (Contraction) और प्रसरण (Expansion) होता है। इसके कारण शरीर के किसी अग-विशेष का रक्त परिमाण कम या अधिक होता है।

स्कॉट (Scott) ने अपने प्रयोज्यो को क्रमश तीन प्रकार के ऐसे चित्रों को दिखलाया जो उनमे भय, क्रोध और यौन सवेगो को उत्पन्न करने म समर्थशील थे। उसका ध्येय इन सवेगों की अवस्था में रक्त चाप (Blood pressure) के परिवर्त्तनो का अध्ययन करना था। प्रत्येक प्रयोज्य के साथ यन्त्रो की ऐसी व्यवस्था की गई थी कि वे रक्त-चाप को निर्विघ्न व्यक्त करने में समर्थ थे। इस प्रयोग परिणाम का अध्ययन करने से विदित होता है कि कामोत्तेजक परिस्थिति को उपस्थित करने पर भी सभी प्रयोज्यों के रक्त-चाप

मे उत्कर्ष दृष्टिगोचर हुआ। लेकिन, अन्य दो परिस्थितियों के रक्त चाप परिवर्त्तनों मे किसी प्रकार की समरसता परिलक्षित नही हुई। एक ही परिस्थिति मे कुछ प्रयोज्यों का रक्त चाप बढ गया और कुछ मे घट गया। अतएव स्काट का कहना है कि भय या क्रोध के सवेग मे रक्त चाप सम्बन्धी कोई विशिष्ट परिवर्त्तन नही होता।

(३) रक्त-चाप (Blood pressure) सवेगात्मक अवस्था मे रक्तचाप अधिक हो जाता है। इसी से मनोवैज्ञानिको ने इसे सवेग का सबसे अच्छा सूचक माना है। दूसरे शब्दो मे, मात्र रक्त चाप को मापकर यह बतलाया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति सवेगावस्था मे है अथवा नही। रक्त चाप का माप प्लेथिस्मोग्राफ (Plethysmograph) नामक यन्त्र के द्वारा होता है। लेण्डिस (Landis) ने अपने एक प्रयोग म तीन प्रयोज्यों को वैद्युतिक आघात (Electric shock) दिया जिसके परिणामस्वरूप उसम भय और दुख का सवेग उत्पन्न हुआ। उस सवेग के उत्पन्न होते ही उसके सभी प्रयोज्यो का रक्तचाप बढ गया। मार्स्टन (Marston) तथा लार्सन (Larson) ने प्रयोगो के आधार पर यह बतलाया कि रक्त-चाप को मापकर ८०% मिथ्या भाषण का पता (Lie detection) लग जाता है।[१]

(४) रक्त-रसायन (Blood chemical) सवेग मे रासायनिक परिवर्त्तन होते है। कैनन तथा अन्य विद्वानों ने कुत्ते, बिल्ली, आदि जानवरो पर प्रयोग करके तथा मनुष्यों पर एक्स रे (X-Ray) यन्त्र का उपयोग करके यह प्रदर्शित कर दिया कि सवेग की उत्तेजित अवस्था मे सफेद और लाल रुधिर कणा (Blood corpuscles) और उनकी सख्या मे अत्यधिक परिवर्त्तन होता है। इन रुधिर-कणों के परिवर्त्तन मे प्लीहा (Spleen) का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। रक्त का यह रासायनिक परिवर्त्तन जीव को सवेगावस्था मे परिस्थिति के प्रति अभियोजित करने मे सहायक सिद्ध होता है। साथ ही, सवेगावस्था मे खून मे चीनी की मात्रा भी अधिक हो जाती है।

(४) रसपाक परिवर्त्तन (Metabolic changes) सवेग के समय रसपाक प्रक्रिया मे भी परिवर्त्तन होता है। लेकिन, रसपाक परिवर्त्तन विभिन्न सवेगों मे विभिन्न प्रकार का होता है या नही, यह विवादग्रस्त है। इस सबध में किए गए प्रयोगों से विदित होता है कि कुछ सवेगो मे रसपाक परिवर्त्तन अवश्य ही विशिष्ट प्रकार के होते है, लेकिन अन्य सवेगों के सम्बन्ध मे निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है। कैनन ने इस सम्बन्ध मे बिल्ली पर जो प्रयोग किया उसका अध्ययन करने से यह स्पष्ट है कि जब बिल्ली मे भोजन के बाद रसपाक प्रक्रिया नियमित और सुचारु रूप से हो रही थी, उसी समय उसके सामने एक कुत्ता उपस्थित किया गया। कुत्ते को देखते ही बिल्ली भयभीत हो गई। भयभीत होते ही, उसकी पाचन-क्रिया अवरुद्ध हो गई और उससे आबद्ध स्नायुयों की कार्यवाही भी समाप्त हो गई।

बर्न्सविक (Burnswick) ने मनुष्यों पर प्रयोग करके बतलाया कि जिस प्रकार सवेगात्मक परिस्थिति में जानवरों के पेट और जठर (Viscera) सम्बन्धी क्रियाओं मे परिवर्त्तन होता है उसी प्रकार वैसी अवस्था मे मनुष्य के इन अगों की क्रियाओं मे परिवर्त्तन

१—मिथ्या निर्णायक परीक्षण (Lie detection test) की प्रयोग-विधि के लिए 'मनोवैज्ञानिक प्रयोग' देखें।

होता है। उससे यह भी स्पष्ट है कि सभी प्रकार की परिस्थितियों में एक ही प्रकार का परिवर्त्तन नहीं होता, बल्कि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनमें विशिष्ट प्रकार का परिवर्त्तन होता है। क्योंकि, जब उनके प्रयोज्यों में भय, क्रोध, आदि संवेग विद्यमान थे तो उस समय उनकी क्रियाओं में स्थिरता थी। किन्तु, आश्चर्य और चकित संवेगों में उनमें वृद्धि पाई गई। मनोविनोद (Entertainment), प्रसन्नता, आदि ऐसे संवेगों में किसी प्रकार का परिवर्त्तन दृष्टिगोचर नहीं हो सका।

(६) वैद्युतिक त्वक् प्रतिक्रिया (Galvanic skin response) हण्ट (Hunt), लेण्डिस (Landis), आदि ने साइकोगैल्वेनोमीटर (Psychogalvanometer) द्वारा कई प्रयोज्यों पर विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग करके यह प्रदर्शित कर दिया कि संवेगावस्था में वैद्युतिक त्वक् प्रतिक्रिया में भी परिवर्त्तन होता है। लेकिन, उनके प्रयोग का अध्ययन करने से विभिन्न संवेगों और वैद्युतिक त्वक् प्रतिक्रियाओं में किसी प्रकार का अनुबन्ध नहीं मालूम होता। स्मरणीय है कि वैद्युतिक त्वक् प्रतिक्रिया पसीना ग्रन्थि (Sweat gland) के स्राव पर निर्भर करती है और यह परिवर्त्तन जीव को वातावरण में सफलतापूर्वक अभियोजित होने में सहायक होता है।

(७) मस्तिष्क तरंग (Brain waves) विद्वानों ने संवेगावस्था में कई प्रयोज्यों पर मस्तिष्क तरंग के परिवर्त्तन का भी अध्ययन किया है। उन प्रयोज्यों से ऐसे-ऐसे प्रश्न किए गए जिनमें कुछ प्रश्न संवेगोत्पादक और कुछ सामान्य थे और जिनसे प्रयोज्यों को किसी प्रकार के संवेग का अनुभव नहीं हुआ। सभी अवस्थाओं में मस्तिष्क तरंग (Brain waves) को खास तरह के सूक्ष्म यन्त्र से मापा गया जिससे यह स्पष्ट है कि संवेगात्मक अवस्थाओं में मस्तिष्क तरंग की बारम्बारता में परिवर्त्तन होता है।

(८) मूत्रस्राव तथा शौच उपर्युक्त परिवर्त्तनों के अतिरिक्त मूत्रस्राव तथा शौच की प्रवृत्तियों में भी संवेग के समय परिवर्त्तन देखा जाता है। हम लोगों का यह सामान्य अनुभव है कि अधिक भयभीत होने पर मनुष्य मूत्रस्राव या शौचक्रिया कर देता है। यह प्रवृत्ति (Tendency) जानवरों में भी देखी जाती है।

संवेग की विभिन्न अभिव्यक्तियों और परिवर्त्तनों के अध्ययन से स्पष्ट है कि बहुत से संवेगों की अभिव्यक्ति तथा परिवर्त्तन विशिष्ट प्रकार के होते हैं। किंतु, बहुत संवेगों की अभिव्यक्ति तथा परिवर्त्तनों में किसी प्रकार का अनुबन्ध (Correlation) नहीं है। इसलिए हम यही कहना उचित समझते हैं कि संवेग में दैहिक (Physiological) आन्तरिक एवं बाह्य परिवर्त्तनों का होना अनिवार्य है, किन्तु प्रत्येक संवेग में भिन्न प्रकार का परिवर्त्तन होना आवश्यक नहीं है।

संवेग की अध्ययन-विधियाँ

संवेगों का अध्ययन कई दृष्टिकोणों से किया जाता है, इसलिए उनके अध्ययन की विधियाँ भी विभिन्न हैं। यहाँ हम कुछ प्रमुख विधियों पर प्रकाश डालेंगे।

(१) अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि (Introspective method) विभिन्न संवेगों की मानसिक अवस्थाओं (चेतनाओं) का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने

अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि का व्यव्ह ... । विभिन्न सवेगोत्पादक परिस्थितियों को उपस्थित करके व्यक्तिविशे ... का अनुभव व्यक्त करने का निर्देशन दिया जाता है और इस प्रका ... को ... हासिल की जाती है। लेकिन, सवेग की अवस्था मे सवेग पर ... न हो जाता है। इसलिए वास्तविक सवेगावस्था का अन्तर्निरीक्षण पूर्णत ... अतएव सवेग विलीन हो जाने पर ही कोई व्यक्ति उस समय की वास्तविक ... को स्मरण के आधार पर व्यक्त करने में समर्थ होता है। इस प्रकार यह अन्तर्निरीक्षण न होकर पुनर्निरीक्षण (Retrospection) हो जाता है। अत इसे अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि न कह कर पुनर्निरीक्षणात्मक विधि ही कहना विशेष उचित प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त, इस विधि का आश्रय लेने पर व्यक्ति को उन सभी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जो अन्य मानसिक प्रक्रियायों के अध्ययन मे करना पडता है। लेकिन, उन कठिनाइयों का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नही, क्योकि पाठक पहले अध्याय मे इसकी कठिनाइयो से पूर्ण अवगत हो चुके है।

(२) साहचर्य-विधि (Association method) किसी व्यक्ति की सवेगात्मक कठिनाइयों को जानने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने शब्द साहचर्य-विधि का प्रयोग किया है। सवेगात्मक कठिनाइयों को मालूम करने के लिए जीवन के विभिन्न पहलुओं से आबद्ध कुछ ऐसे शब्दों को चुन लिया जाता है जो उसके मन मे दबे हुए (Repressed) सवेगात्मक भाव को स्पर्श कर सके। उन शब्दों को अन्य सामान्य (तटस्थ) शब्दों के साथ मिला दिया जाता है। तब व्यक्ति को आराम से बिठाकर उसे प्रत्येक उत्तेजक शब्द की प्रतिक्रिया एक शब्द के सहारे करने का निर्देशन दिया जाता है। व्यक्ति के प्रतिक्रिया शब्द, प्रतिक्रिया काल (Reaction time) और मौखिक हाव-भाव को अकित किया जाता है। जहा प्रतिक्रिया करने मे विलम्ब होता है वहाँ उस उत्तेजक शब्द को क्षण मात्र के लिए छोडकर उसके आगे का शब्द दिया जाता है और पुन बाद में उस शब्द का प्रतिक्रिया शब्द, प्रतिक्रिया काल, वगैरह अंकित किया जाता है। जहाँ प्रतिक्रिया काल अधिक होता है वहाँ व्यक्ति से पूछकर उसका अन्तर्निरीक्षण भी अकित किया जाता है। इस विधि से किन-किन आधारों पर किसी व्यक्ति की सवेगात्मक कठिनाइयों को जाना जाता है तथा इसमे क्या दोष है, इसका उल्लेख स्थलविशेष पर पहले ही किया जा चुका है, इसलिये यहाँ इसका सविस्तार वर्णन आवश्यक नहीं है। युग (Jung), केट (Kent) तथा रोसनाफ (Rosanoff) ने इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

(३) चित्र प्रदर्शन-विधि (Picture method) विभिन्न सवेगों और उनकी शारीरिक अभिव्यक्तियों में अनुबन्ध है कि नहीं, इसको जानने के लिए विभिन्न सवेगात्मक अवस्थाओं के चित्रों को लिया गया है। इसके अलावे, मौखिक हाव भाव और शारीरिक आसन के आधार पर सवग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने इस विधि का व्यवहार किया है। इस विधि मे विभिन्न व्यक्तियों को कई सवेगात्मक अवस्थाओं के चित्रों को दिखलाकर सवेग को व्यक्त करने का निर्देशन दिया जाता है। चित्रों के आधार पर सवेगों को समझने मे कुछ सफलता अवश्य मिलती है किंतु इस प्रयास में अभी तक पूरी सफलता नही मिली है, क्योंकि एक ही चित्र को विभिन्न प्रयोज्य विभिन्न सवेगों का द्योतक मानते है। मौखिक हाव-भाव पर प्रकाश डालते हुए यह व्यक्त किया जा चुका है

अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि का व्यवहार किया है। विभिन्न संवेगोत्पादक परिस्थितियों को उपस्थित करके व्यक्तिविशेष को विभिन्न संवेगों का अनुभव व्यक्त करने का निर्देशन दिया जाता है और इस प्रकार संवेग चेतना की जानकारी हासिल की जाती है। लेकिन, संवेग की अवस्था मे संवेग पर ध्यान लगाने से वह विलीन हो जाता है। इसलिए वास्तविक संवेगावस्था का अन्तर्निरीक्षण पूर्णत असम्भव है। अतएव संवेग विलीन हो जाने पर ही कोई व्यक्ति उस समय की वास्तविक अवस्था को स्मरण के आधार पर व्यक्त करने में समर्थ होता है। इस प्रकार यह अन्तर्निरीक्षण न होकर पुनर्निरीक्षण (Retrospection) हो जाता है। अत इसे अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि न कह कर पुनर्निरीक्षणात्मक विधि ही कहना विशेष उचित प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त, इस विधि का आश्रय लेने पर व्यक्ति को उन सभी कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है जो अन्य मानसिक प्रक्रियायों के अध्ययन मे करना पडता है। लेकिन, उन कठिनाइयों का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नही, क्योंकि पाठक पहले अध्याय मे इसकी कठिनाइयो से पूर्ण अवगत हो चुके है।

(२) साहचर्य-विधि (Association method) किसी व्यक्ति की संवेगात्मक कठिनाइयों को जानने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने शब्द साहचर्य-विधि का प्रयोग किया है। संवेगात्मक कठिनाइयों को मालूम करने के लिए जीवन के विभिन्न पहलुओ से आबद्ध कुछ ऐसे शब्दों को चुन लिया जाता है जो उसके मन मे दबे हुए (Repressed) संवेगात्मक भाव को स्पर्श कर सके। उन शब्दों को अन्य सामान्य (तटस्थ) शब्दों के साथ मिला दिया जाता है। तब व्यक्ति को आराम से बिठाकर उसे प्रत्येक उत्तेजक शब्द की प्रतिक्रिया एक शब्द के सहारे करने का निर्देशन दिया जाता है। व्यक्ति के प्रतिक्रिया शब्द, प्रतिक्रिया काल (Reaction time) और मौखिक हाव-भाव को अंकित किया जाता है। जहाँ प्रतिक्रिया करने मे विलम्ब होता है वहाँ उस उत्तेजक शब्द को क्षण मात्र के लिए छोडकर उसके आगे का शब्द दिया जाता है और पुन बाद मे उस शब्द का प्रतिक्रिया शब्द, प्रतिक्रिया काल, वगैरह अंकित किया जाता है। जहाँ प्रतिक्रिया काल अधिक होता है वहाँ व्यक्ति से पूछकर उसका अन्तर्निरीक्षण भी अंकित किया जाता है। इस विधि से किन-किन आधारों पर किसी व्यक्ति की संवेगात्मक कठिनाइयों को जाना जाता है तथा इसमे क्या दोष है, इसका उल्लेख स्थलविशेष पर पहले ही किया जा चुका है, इसलिये यहाँ इसका सविस्तार वर्णन आवश्यक नहीं है। युग (Jung), केंट (Kent) तथा रोसनाफ (Rosanoff) ने इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

(३) चित्र प्रदर्शन विधि (Picture method) विभिन्न संवेगों और उनकी शारीरिक अभिव्यक्तियों में अनुबन्ध है कि नहीं, इसको जानने के लिए विभिन्न संवेगात्मक अवस्थाओं के चित्रों को लिया गया है। इसके अलावे, मौखिक हाव भाव और शारीरिक आसन के आधार पर संवेग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने इस विधि का व्यवहार किया है। इस विधि में विभिन्न व्यक्तियों को कई संवेगात्मक अवस्थाओं के चित्रों को दिखलाकर संवेग को व्यक्त करने का निर्देशन दिया जाता है। चित्रों के आधार पर संवेगों को समझने मे कुछ सफलता अवश्य मिलती है किंतु इस प्रयास में अभी तक पूरी सफलता नही मिली है, क्योंकि एक ही चित्र को विभिन्न प्रयोज्य विभिन्न संवेगों का द्योतक मानते है। मौखिक हाव-भाव पर प्रकाश डालते हुए यह व्यक्त किया जा चुका है

होता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि सभी प्रकार की परिस्थितियों में एक ही प्रकार का परिवर्त्तन नहीं होता, बल्कि ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनमें विशिष्ट प्रकार का परिवर्त्तन होता है। क्योंकि, जब उनके प्रयोज्यों में भय, ... आदि संवेग विद्यमान थे तब उस समय उनकी क्रियाओं में जड़ता थी। किन्तु, ... और चकित संवेगों में उनमें वृद्धि पाई गई। मनोविनोद (Entertainment), प्रसन्नता, आदि अन्य संवेगों में किसी प्रकार का परिवर्त्तन दृष्टिगोचर नहीं हो सका।

(६) वैद्युतिक त्वक् प्रतिक्रिया (Galvanic Skin Response) हण्ट (Hunt), लैण्डिस (Landis), आदि ने ... (Psychogalvanometer) द्वारा कई प्रयोज्यों पर विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग करके यह प्रदर्शित कर दिया कि संवेगावस्था में वैद्युतिक त्वक् प्रतिक्रिया में भी परिवर्त्तन होता है। लेकिन, उनके प्रयोग का अध्ययन करने से विभिन्न संवेगों और वैद्युतिक त्वक् प्रतिक्रियाओं में किसी प्रकार का अनुबन्ध नहीं मालूम होता। स्मरणीय है कि वैद्युतिक त्वक् प्रतिक्रिया पसीना ग्रन्थि (Sweat gland) के स्राव पर निर्भर करती है और यह परिवर्त्तन जीव को वातावरण में सफलतापूर्वक अभियोजित होने में सहायक होता है।

(७) मस्तिष्क-तरंग (Brain waves) विद्वानों ने संवेगावस्था में कई प्रयोज्यों पर मस्तिष्क तरंग के परिवर्त्तन का भी अध्ययन किया है। उन प्रयोज्यों से ऐसे ऐसे प्रश्न किए गए जिनमें कुछ प्रश्न संवेगोत्पादक और कुछ सामान्य थे और जिनसे प्रयोज्यों को किसी प्रकार के संवेग का अनुभव नहीं हुआ। सभी अवस्थाओं में मस्तिष्क तरंग (Brain waves) को खास तरह के सूक्ष्म यन्त्र से मापा गया जिससे यह स्पष्ट है कि संवेगात्मक अवस्थाओं में मस्तिष्क तरंग की ... में परिवर्त्तन होता है।

(८) मूत्रस्राव तथा शौच उपर्युक्त परिवर्त्तनों के अतिरिक्त मूत्रस्राव तथा शौच की प्रवृत्तियों में भी संवेग के समय परिवर्त्तन देखा जाता है। हम लोगों का यह सामान्य अनुभव है कि अधिक भयभीत होने पर मनुष्य मूत्रस्राव या शौचक्रिया कर देता है। यह प्रवृत्ति (Tendency) जानवरों में भी देखी जाती है।

संवेग की विभिन्न अभिव्यक्तियों और परिवर्त्तनों के अध्ययन से स्पष्ट है कि बहुत से संवेगों की अभिव्यक्ति तथा परिवर्त्तन विशिष्ट प्रकार के होते हैं। किंतु, बहुत संवेगों की अभिव्यक्ति तथा परिवर्त्तनों में किसी प्रकार का अनुबन्ध (Correlation) नहीं है। इसलिए हम यही कहना उचित समझते हैं कि संवेग में दैहिक (Physiological) आन्तरिक एवं बाह्य परिवर्त्तनों का होना अनिवार्य है, किन्तु प्रत्येक संवेग में भिन्न प्रकार का परिवर्त्तन होना आवश्यक नहीं है।

संवेग की अध्ययन-विधियाँ

संवेगों का अध्ययन कई दृष्टिकोणों से किया जाता है, इसलिए उनके अध्ययन की विधियाँ भी विभिन्न हैं। यहाँ हम कुछ प्रमुख विधियों पर प्रकाश डालेंगे।

(१) अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि (Introspective method) विभिन्न संवेगों की मानसिक अवस्थाओं (चेतनाओं) का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने

अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि का व्यवहार किया है। विभिन्न सवेगोत्पादक परिस्थितियों को उपस्थित करके व्यक्तिविशेष को विभिन्न सवेगों का अनुभव व्यक्त करने का निर्देशन दिया जाता है और इस प्रकार सवेग-चेतना की जानकारी हासिल की जाती है। लेकिन, सवेग की अवस्था मे सवेग पर ध्यान लगाने से वह विलीन हो जाता है। इसलिए वास्तविक सवेगावस्था का अन्तर्निरीक्षण पूर्णत असम्भव है। अतएव सवेग विलीन हो जाने पर ही कोई व्यक्ति उस समय की वास्तविक अवस्था को स्मरण के आधार पर व्यक्त करने में समर्थ होता है। इस प्रकार यह अन्तर्निरीक्षण न होकर पुनर्निरीक्षण (Retrospection) हो जाता है। अत इसे अन्तर्निरीक्षणात्मक विधि न कह कर पुनर्निरीक्षणात्मक विधि ही कहना विशेष उचित प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त, इस विधि का आश्रय लेने पर व्यक्ति को उन सभी कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है जो अन्य मानसिक प्रक्रियायों के अध्ययन मे करना पडता है। लेकिन, उन कठिनाइयों का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नही, क्योकि पाठक पहले अध्याय मे इसकी कठिनाइयों से पूर्ण अवगत हो चुके है।

(२) साहचर्य-विधि (Association method) किसी व्यक्ति की सवेगात्मक कठिनाइयों को जानने के लिए मनोवैज्ञानिको ने शब्द साहचर्य-विधि का प्रयोग किया है। सवेगात्मक कठिनाइयों को मालूम करने के लिए जीवन के विभिन्न पहलुओं से आबद्ध कुछ ऐसे शब्दों को चुन लिया जाता है जो उसके मन मे दबे हुए (Repressed) सवेगात्मक भाव को स्पर्श कर सके। उन शब्दों को अन्य सामान्य (तटस्थ) शब्दों के साथ मिला दिया जाता है। तब व्यक्ति को आराम से बिठाकर उसे प्रत्येक उत्तेजक शब्द की प्रतिक्रिया एक शब्द के सहारे करने का निर्देशन दिया जाता है। व्यक्ति के प्रतिक्रिया शब्द, प्रतिक्रिया काल (Reaction time) और मौखिक हाव-भाव को अकित किया जाता है। जहाँ प्रतिक्रिया करने मे विलम्ब होता है वहाँ उस उत्तेजक शब्द को क्षण मात्र के लिए छोडकर उसके आगे का शब्द दिया जाता है और पुन बाद मे उस शब्द का प्रतिक्रिया शब्द, प्रतिक्रिया काल, वगैरह अकित किया जाता है। जहाँ प्रतिक्रिया काल अधिक होता है वहाँ व्यक्ति से पूछकर उसका अन्तर्निरीक्षण भी अकित किया जाता है। इस विधि से किन किन आधारों पर किसी व्यक्ति की सवेगात्मक कठिनाइयों को जाना जाता है तथा इसमे क्या दोष है, इसका उल्लेख स्थलविशेष पर पहले ही किया जा चुका है, इसलिये यहाँ इसका सविस्तार वर्णन आवश्यक नहीं है। युग (Jung), केट (Kent) तथा रोसनाफ (Rosanoff) ने इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

(३) चित्र प्रदर्शन-विधि (Picture method) विभिन्न सवेगों और उनकी शारीरिक अभिव्यक्तियों मे अनुबन्ध है कि नहीं, इसको जानने के लिए विभिन्न सवेगात्मक अवस्थाओं के चित्रों को लिया गया है। इसके अलावे, मौखिक हाव भाव और शारीरिक आसन के आधार पर सवेग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने इस विधि का व्यवहार किया है। इस विधि मे विभिन्न व्यक्तियों को कई सवेगात्मक अवस्थाओं के चित्रों को दिखलाकर सवेग को व्यक्त करने का निर्देशन दिया जाता है। चित्रों के आधार पर सवेगों को समझने मे कुछ सफलता अवश्य मिलती है किंतु इस प्रयास मे अभी तक पूरी सफलता नही मिली है, क्योंकि एक ही चित्र को विभिन्न प्रयोज्य विभिन्न सवेगों का द्योतक मानते है। मौखिक हाव-भाव पर प्रकाश डालते हुए यह व्यक्त किया जा चुका है

कि सवेग की स्वाभाविक अवस्था मे चित्र प्राय नही लिए गए है। बल्कि, विभिन्न अभिनेताओं और अभिनेत्रियो को सवेगविशेष का अभिनय करने को कहकर ये चित्र लिए गए है। सवेग के इस कृत्रिम हाव भाव और स्वाभाविक हाव भाव मे अधिक अन्तर पड़ता है, इसीलिए चित्रो को देखकर सवेगविशेष का ... करने मे कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त, सवेगों के प्रकाशन मे वैयक्तिक भिन्नता और सांस्कृतिक भिन्नता के अग भी काम करते है। अतएव इस विधि के सम्बन्ध मे ... कहा जा सकता है कि यदि सवेग कि स्वाभाविक अवस्था मे चित्र लिए जाएं और ... भिन्नताओं के प्रभाव को कम किया जाए तो चित्रो के आधार पर ... और ... सवेगो को जानने मे पर्याप्त सहायता मिल सकती है तथा सवेग और उनके मौलिक हावभावों मे कुछ अश तक अनुबन्ध प्रस्थापित करने मे भी सहायता मिल सकती है।

(४) निरीक्षण विधि (Observational method) कौन-सी परिस्थिति मनुष्य मे सवेग उत्पन्न करती है और किस तरह की प्रतिक्रिया किस सवेग मे होती है, इनका पता लगाने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने निरीक्षण विधि का आश्रय लिया है। किसी सवेग की समुचित प्रतिक्रिया और परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए महीनों विभिन्न व्यक्तियों की प्रतिक्रियाओं और उनकी परिस्थितियों का निरीक्षण करना पड़ता है। निरीक्षक सभी प्रतिक्रियाओं और परिस्थितियों को अंकित करता जाता है और अन्त मे अपना निर्णय देता है। यद्यपि पहले पहल इस विधि का व्यवहार बालकों के सवेगात्मक विकास का अध्ययन करने के लिए किया गया था, लेकिन अब इसका उपयोग कुछ मनोवैज्ञानिक उपर्युक्त तथ्यो को जानने के लिये प्रौढ व्यक्तियों के सम्बन्ध मे भी करते है। वस्तुत यह विधि सवेगात्मक प्रतिक्रियाओं और परिस्थितियों के जानने के लिए लाभप्रद प्रमाणित हुई है, किंतु इसमें जो कठिनाइयां है वे नगण्य नहीं है। पहली बात तो यह है कि लगातार व्यक्तिविशेष की प्रतिक्रियाओं का विभिन्न परिस्थितियों मे निरीक्षण करना आसान नहीं है। इसलिए इसकी सार्थकता के लिए अत्यधिक ... की आवश्यकता पड़ती है, जो सभी मनुष्यों के लिए सम्भव नहीं है। इस कारण इसका व्यवहार सभी लोग नहीं कर सकते है। इस विधि मे दूसरी कठिनाई यह है कि एक ही परिस्थिति सभी व्यक्तियों मे एक ही सवेग नही उत्पन्न करती और न तो वही व्यक्ति उस परिस्थिति मे विभिन्न समयो में एक ही प्रकार प्रभावित होता है। अतएव सभी अवसरों पर इस विधि से सवेगात्मक प्रतिक्रियाओं और परिस्थितियों का ... निर्णय देना सम्भव नहीं है। अत सवेग के सम्यक् ज्ञान के लिए एकमात्र इसी पर निर्भर रहना ... है।

(५) मूल्याकन-विधि (Rating method) किसी व्यक्तिविशेष की सवेगात्मक अभिव्यक्ति या उसके सवेगात्मक जीवन की जानकारी के लिए उसके मित्र, अन्य सम्बन्धी तथा परिचित व्यक्तियों से पूछकर उसकी अभिव्यक्ति का मूल्याकन किया जाता है। वस्तुत इस विधि से सवेगों और उनके प्रकाशनों के सम्बन्ध मे अनेक महत्त्वपूर्ण बाते मालूम होती है। किन्तु, हम लोग मूल्याकन विधि की त्रुटियों और गुणों को पहले ही देख चुके है और आगे भी चलकर इसके सम्बन्ध मे बहुत कुछ मालूम होगा। इसलिए इस स्थल पर हम इतना ही कहना पर्याप्त समझते है कि किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में

ध्यान मे रखकर मूल्यांकन करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भी, एक दो व्यक्तियो की सूचनाओं पर ही मूल्यांकन करना श्रेयस्कर नही है, बल्कि काफी से काफी व्यक्तियो से, जो उसे अच्छी तरह जानते हो, उसके सवेगात्मक जीवन के सम्बन्ध मे पूछताछ करके मूल्यांकन करना जरूरी है। ऐसा करने से बहुत अशो मे हम इसकी त्रुटियों से निर्मुक्त हो सकते है। जिस प्रकार बहुसख्यक सम्बन्धियो से किसी के सवेगात्मक जीवन और उसके आविष्करण की सूचना एकत्र करना आवश्यक है उसी प्रकार कई व्यक्तियों से मूल्यांकन करवाना भी उचित है। ऐसी सूचनाओ और मूल्यांकनो को पुन सांख्यिक विधियो की कसौटी पर कस कर किसी के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का निर्णय देना सराहनीय है, अन्यथा इस विधि से प्राप्त ज्ञान की वास्तविकता मे सन्देह होना स्वाभाविक है।

(६) प्रश्नावलि-विधि (Questionnaire method) व्यक्ति विशेष के सवेगों का अध्ययन कई प्रकार की प्रश्नावलियो से भी होता है। इस सम्बन्ध मे प्रेसी विधि (Pressy method) विशेषत उल्लेखनीय है। इस विधि से सवेगात्मक जीवन का पता लगाने के लिए तीन शब्द-सूचियाँ बनी हुई है। जिस व्यक्ति के सवेगात्मक पहलू का अध्ययन करना होता है उसे तीनो शब्द सूचियाँ दे दी जाती है। तब पहली शब्द सूची मे उन सभी शब्दो पर अशुद्धि चिन्ह (×) लगाने का निर्देश दिया जाता है जो कि उसे अशुद्ध मालूम होते है। दूसरी शब्द सूची मे उन शब्दो पर अशुद्ध चिन्ह लगाने को कहा जाता है जिनके सम्बन्ध मे उस व्यक्ति को कभी चिन्तित होना या सोचना पडा हो। तीसरी शब्द सूची मे उन शब्दों पर अशुद्धि-चिन्ह लगाने का निर्देशन दिया जाता है जिनमें उसकी अत्यधिक अभिरुचि रहती है या जिन्हे वह सबसे अधिक चाहता है। जब वह व्यक्ति उन तीनों सूचियो पर चिन्ह लगाना समाप्त कर लेता है तब उसे क्रमश उन शब्दो को वृत्त (o) से घेर देने का आदेश दिया जाता है जो उसे क्रमश अत्यधिक गलत मालूम होते है, जिनके सम्बन्ध में उसे अधिक चिंता करनी पडती है या जिनको वह सब से अधिक पसन्द कर लेता है। तब उसके अशुद्ध चिन्ह युक्त शब्दो की गणना करके उसके सवेगात्मक प्राप्तांक (Emotional scoring) को मालूम करते हुए उसके सवेगो का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। फिर एक प्रामाणिक सूची से तुलना करके वृत्त लगे हुए शब्दो के आधार पर उसकी प्रकृति विशेषता (Idiosyncrecy) की जानकारी हासिल की जाती है। जो शब्द प्रामाणिक सूची में नही रहते, किन्तु उस व्यक्ति की सूची म रहते है वैसे शब्द उसकी प्रकृति विशेषता (Idiosyncrecy) के द्योतक होते है। वस्तुत यह विधि सवेग अध्ययन मे बहुत ही अधिक लाभप्रद मालूम होती है। प्राय ऐसा देखने मे आता है कि जो व्यक्ति अधिक चीजों मे अपनी अभिरुचि दिखलाता है या अधिक विषयों से चिन्तित रहता है, वह उतना ही अधिक सवेगशील (Emotional) भी होता है। जो व्यक्ति अधिक सवेगों से प्रभावित नहीं होता उसकी पसन्द, नापसन्द या चिन्ता उतनी ही अधिक सीमित रहती है।

(७) यन्त्र व्यवहार विधि (Apparatus method) यन्त्रों की सहायता से सवेग का अध्ययन कई दृष्टिकोणो से किया जाता है। विभिन्न सवेगों में दैहिक परिवर्त्तनों, उनके पारस्परिक अनुबन्धो, आदि को जानने के लिए यन्त्र विधि को काम में लाया जाता है। यहाँ पर हम प्रमुख यन्त्रों और उनकी उपयोगिताओ का उल्लेख सक्षेप मे करगे।

सवेगों के समय सास गति मे क्या परिवर्त्तन होता है या सास-गति और सवेग मे क्या सम्बन्ध है, आदि का जानने के लिए सास गति मापक यत्र (P[illegible]) का व्यवहार किया जाता है। विभिन्न सवेगो मे इसम जो परिवर्त्तन होते हैं उनकी जानकारी सास गति के ग्राफ चित्र के आधार पर की जाती है। लेकिन, इस यत्र से अभी तक सवेग के प्रकार और प्रबलता का समुचित ज्ञान नही हो सका है।

सवेग की अवस्था मे हृदय गति (Heart beats) को जानने के लिए हृदय गति निणायक यत्र (Electro-cardiograph) का व्यवहार किया जाता है। इस विधि से यह ज्ञात हो सका है कि सवेग की हालत मे हृदय की धडकन, तीव्र, शक्तिशाली और अव्यवस्थित हो जाती है।

सवेग मे नाडी गति के अध्ययन के लिये नाडी गति लेखक यत्र का उपयोग किया जाता है। यद्यपि इस यन्त्र के व्यवहार से नाडी गति (Pulse rate) का सम्यक् ज्ञान हो जाता है, किंतु इसके आधार पर मनोवैज्ञानिक सवेग-प्रकार को निश्चित रूप से व्यक्त करने मे समर्थ नही हो सके है।

असत्य निर्णायक यत्र (Lie-detector) या अन्य यत्रो की सहायता से रक्त चाप का अध्ययन किया जाता है। यद्यपि कुछ सवेगो म रक्त चाप म उत्कर्ष और कुछ मे अपकर्ष (Fall) देखने मे आता है, लेकिन इस आधार पर सवेग और रक्तचाप मे किसी तरह का निश्चित सम्बन्ध स्थापित करना ठीक नही है। क्योकि, विभिन्न अन्वेषणो से यह प्रमाणित हो चुका है कि अन्य कई अगो के कारण भी रक्तचाप मे परिवर्त्तन होता है। लेकिन, इतना निर्विवाद है कि कई स्थलों पर सवेग का जानने मे इससे मदद मिलती है।

सवेग मे उपस्थित वैद्युतिक धारा (Electric current) को मापने के लिए धारामापक यत्र (Psychogalvanometer) को काम मे लाया जाता है। मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि त्वक्धारा परिवर्त्तन के आधार पर सवेग-प्रकार और उसकी प्रबलता का ज्ञान समुचित रूप से प्राप्त हो सकता है। इस यत्र की सार्थकता मे भी कोई सन्देह नहीं है, लेकिन इसके आधार पर भी सवेग अध्ययन मे मनोवैज्ञानिको को पूरी सफलता नहीं मिल सकी है। प्राय ऐसा देखने मे आता है कि अन्य अग भी त्वक्धारा परिवर्त्तन को प्रभावित करते है।

इसी प्रकार, रसपाक तथा जाठरिक (Visceral) क्रियाओं या परिवर्त्तनों का अध्ययन करने के लिए बेलन एक्स-रे, आदि का व्यवहार किया जाता है। यद्यपि यत्रों की सहायता से सवेगावस्था के आन्तरिक दैहिक परिवर्त्तनो का ज्ञान अच्छी तरह हो जाता है, किंतु उन परिवर्त्तनो और सवेगो म सभी स्थलो पर अनुबन्ध दृष्टिगोचर नही होता और न तो सवेग प्रबलता पर ही प्रकाश पड़ता है। परन्तु इस विधि से आन्तरिक परिवर्तनो पर जो प्रकाश पड़ता है उसका महत्त्व मनोवैज्ञानिक जगत म अपना एक विशेष स्थान रखता है। हम इसका भी उल्लेख कर देना आवश्यक समझते है कि मनोवैज्ञानिकों ने प्राय सवेग की अध्ययन विधियो का विभाजन दो प्रशस्त श्रेणियो म किया है जिन्हें सस्कार-विधि और अभिव्यक्ति विधि कहते हैं। लेकिन, हमने यहाँ सुविधा के लिए सभी विधियों का

संवेग में परिपक्वता और शिक्षण

बाल मनोविज्ञान इसका साक्षी है कि जिस समय मनुष्य जन्म लेता है उसी समय उसमे सभी प्रकार के सवेगा का आविर्भाव नही होता। विभिन्न खोजों से यह भी प्रमाणित हो चुका है कि प्रारभ मे बच्चे में किसी प्रकार का सवेग नही पाया जाता और यदि कोई मानसिक अवस्था ऐसी रहती है जिसे कि हम सवेग कह सके तो वह सक्षुब्धता (Excitement) की ही अवस्था रहती है। किंतु, उसी बालक मे क्रमश आयु और अनुभव वृद्धि के साथ साथ क्रोध, भय, प्रेम, आदि के सवेग आविर्भूत होने लगते हैं और एक समय ऐसा आता है जब वह परिस्थिति के अनुकूल सभी प्रकार के सवेगों का अनुभव करने लगता है। लेकिन, अब प्रश्न यह है कि सवेगों के आविर्भाव में परिपक्वता का हाथ रहता है या शिक्षण का ? इस प्रश्न के उत्तर के सम्बन्ध मे दो विचारधाराएँ हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि परिपक्वता के परिणामस्वरूप व्यक्ति मे विभिन्न सवेगों का आविर्भाव होता है। दूसरी ओर, ऐसे मनोवैज्ञानिक भी हैं जो परिपक्वता के महत्त्व को स्वीकार नही करते हुए शिक्षण को ही सवेग का एकमात्र कारण मानते हैं।

परिपक्वता में विश्वास रखनेवाले मनोवैज्ञानिको का कहना है कि सवेग के आविर्भाव और विकास का श्रेय एकमात्र परिपक्वता को ही है, दूसरे अग को नही। इस कथन की पुष्टि के लिए एक दस साल की लड़की पर, जो जन्माध और बहरी थी और जिसे विश्व का ध्वनि तथा दृश्य ज्ञान असम्भव था, प्रयोग किया गया। हाँ, उस बालिका की स्पर्शशक्ति सामान्य थी। सवेगात्मक परिस्थितियो को उपस्थित करने पर उसमे प्रसन्नता, भय, क्रोध, आदि के सवेग देखे गए। इतना ही नही, बल्कि उस बालिका ने अपने सवेगो का प्रकाशन भी उसी रूप से किया जिस प्रकार कि अन्य सामान्य व्यक्ति। अब प्रश्न यह है कि सवेग का विकास और आविर्भाव शिक्षण के फलस्वरूप होता तो बालिका मे सवेग का अनुभव और प्रकाशन क्योंकर सभव था ? वह अपनी आँखों से देख न सकने के कारण विभिन्न सवेगों का प्रकाशन क्योंकर सीख सकी या न सुनने की अवस्था मे भाषा और ध्वनियों द्वारा सवेगों को क्योंकर व्यक्त कर सकी ? जब उसे सीखने या अनुभव करने का अवसर नहीं मिला तब वह विभिन्न सवेगो का अनुभव और प्रकाशन कैसे कर सकी ? अतएव, यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य मे विभिन्न सवेगो का आविर्भाव और विकास परिपक्वता के फलस्वरूप होता है।

जोन्स (Jones) तथा वैलेन्टाइन (Valentine) ने परिपक्वता के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए छोटे बच्चों से लेकर सयानों तक पर साँप के साथ प्रयोग किया है। बच्चों के सामने साँप रखकर उन्हे साँप को पकडने का निर्देशन दिया गया। दो वर्ष तक के बच्चों में साँप से किसी तरह का डर नही देखा गया, किन्तु तीन वर्ष के बच्चे साँप से बहुत सावधान दिखलाई पड़े। चार वर्ष के बच्चे तो साँप को देखते ही भयभीत हो गए। इसलिए उन विद्वानों का कहना है कि सवेगों का आविर्भाव शारीरिक और मानसिक परिपक्वता के फलस्वरूप होता है। मानसिक विकास के कारण बच्चे परिस्थिति की सार्थकता को समझने लगते है और उसी के अनुरूप प्रतिक्रिया भी करते है। मिलिशैम्प, ब्लाट्ज (Blatz), प्रभृति विद्वान भी उपर्युक्त मत का प्रतिपादन करते है। लेकिन, जोन्स

तथा वैलेण्टाइन के ही प्रयोग उनके मत का खण्डन भी करते हैं। उनका उपर्युक्त प्रयोग निश्चयात्मक रूप से कदापि यह व्यक्त नहीं करता है कि बच्चों में भय संवेग का आविर्भाव परिपक्वता के कारण हुआ। ज्यों ज्यों बच्चों का विकास होता जाता है त्यों त्यों शिक्षण और अनुभव के कारण वे विभिन्न परिस्थितियों के अर्थ को समझने जाते हैं। वे अपने माता पिता और अन्य बड़े बूढ़ों से साँप, बिच्छू, आदि के घातक परिणामों के सम्बन्ध में तरह तरह की बातें सुनते हैं और फलतः उनसे डरने लगते हैं। अतः उपर्युक्त प्रयोग परिपक्वता के ही महत्त्व को व्यक्त करता है, शिक्षण के महत्त्व को नहीं, यह विवादग्रस्त है।

हमें संवेग विकास में शिक्षण का महत्त्व उसी समय मालूम हो जाता है जब हम विभिन्न राष्ट्रों और संस्कृतियों के व्यक्तियों के एक ही संवेग के प्रकाशन में अन्तर पाते हैं। एक देश का मनुष्य किसी संवेग विशेष का प्रकाशन अपने अन्य साथियों के साथ करता है तो दूसरे देश का व्यक्ति उसी संवेग विशेष का प्रकाशन अपने देशवासियों और संस्कृति के अनुसार करता है। संस्कृति भिन्नता के कारण संवेग-प्रकाशन की भिन्नता इसे प्रमाणित करती है कि संवेग विकास में शिक्षण का हाथ रहता है। इतना ही क्यों, बल्कि एक ही समाज के दो व्यक्तियों के संवेग आविष्करण का अन्तर भी शिक्षण के फलस्वरूप देखा जाता है। प्रायः ऐसा देखने में आता है कि किसी किसी बच्चे के माता पिता किसी परिस्थिति में भयभीत या प्रसन्न होते हैं तो बच्चे भी उस परिस्थिति में माता पिता के ही अनुरूप संवेग का प्रकाशन करते हैं।

वाटसन (Watson) का कहना है कि बच्चों का संवेग विकास सम्बद्धता (शिक्षण) के ही फलस्वरूप होता है। उसने प्रयोग द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि नौ महीने का जो बच्चा सफेद चूहे से नहीं डरता था उस चूहे का सम्बन्ध उच्च आवाज के साथ कर देने पर वही उस चूहे से डरने लगा। बाद में वह सभी सफेद वस्तुओं और जानवरों से डरने लगा। इस दिशा में उसने कई प्रयोगों के आधार पर अपने पक्ष को पुष्ट किया है जिनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नहीं है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि मनोवैज्ञानिकों ने परिपक्वता और शिक्षण दोनों के पक्ष में पर्याप्त प्रयोगात्मक प्रमाणों को उपस्थित किया है। लेकिन, यदि हम उन प्रमाणों पर गभीरतया विचार करें तो मालूम होगा कि हम किसी एक पक्ष के प्रमाण का स्वीकार और दूसरे पक्ष के प्रमाणों को अस्वीकार नहीं कर सकते। आंशिक सत्यता दोनों में ही है। सच्ची बात तो यह है कि संवेग-विकास में दोनों का समान हाथ रहता है। यदि हममें परिपक्वता न हो तो विभिन्न संवेगों की शारीरिक प्रतिक्रियाएँ नहीं कर सकते और यदि शिक्षण और अनुभव का अभाव हो तो उनका हम समुचित प्रकाशन भी नहीं कर सकते हैं। बात तो यह है कि संवेग विकास के लिए परिपक्वता और शिक्षण दोनों ही समान महत्त्व के हैं। यदि दोनों में से एक का अभाव हो तो समुचित रूप से संवेग का विकास होना असम्भव है।

इस स्थल पर यह भी व्यक्त कर देना अप्रासंगिक न होगा कि जिस प्रकार शिक्षण संवेग विकास को प्रभावित करता है उसी प्रकार संवेग शिक्षण को प्रभावित करता है। यह सामान्य अनुभव है कि संवेगात्मक उत्तेजना के समय हम किसी गम्भीर समस्या को सुलझाने में सफल नहीं होते हैं। संवेग के समय हम कई प्रतिक्रियाओं या अन्य विषयों को सीखने में

भी समर्थ नहीं होते हैं। यह विभिन्न प्रयोगों से प्रमाणित हो चुका है कि संवेगावस्था में चिन्तन और शिक्षण की प्रक्रियाओं में बाधा पड़ती है। अतएव शिक्षण के समय शान्त मन रहना आवश्यक है।

संवेग में स्वचालित नाड़ीमंडल (Autonomic nervous System) का महत्त्व

स्वचालित नाडीमंडल में तीन भाग होते हैं। ऊपरी भाग को कपालीय (Cranial) या शीर्षणी, निम्नतम भाग को अनुत्रिका (Sacral) और बीच के हिस्से को मध्यमा कहते हैं। ऊपरी और निचले भाग मिलकर परा सहानुभूतिक नाडीमंडल (Para sympathetic nervous system) के नाम से पुकारते हैं। मध्यमा को सहानुभूतिक नाडीमण्डल या अनैच्छिक नाडीमण्डल (Sympathetic nervous system) कहते हैं। परा सहानुभूतिक नाडीमण्डल की क्रियाएँ अनैच्छिक नाडीमण्डल के विपरीत होती हैं। अनैच्छिक नाडीमण्डल की क्रियाओं की प्रधानता की अवस्था में लालाग्रन्थि-स्राव अवरुद्ध हो जाता है। हृदय कार्य में तीव्रता आ जाती है, मूत्रस्थ ग्रन्थियाँ (Adrenal glands) प्रवेगशील हो जाती हैं, और लघु रक्त नलिकाएँ संकुचित हो जाती हैं। किंतु, जब परा सहानुभूतिक नाडीमण्डल की प्रधानता होती है तब उस समय लालाग्रन्थि स्राव में वृद्धि, हृदय कार्य और मूत्रस्थ ग्रन्थियों की क्रियाओं में मन्दता आ जाती है और लघु रक्त नालिकाओं में प्रसरण आ जाता है।

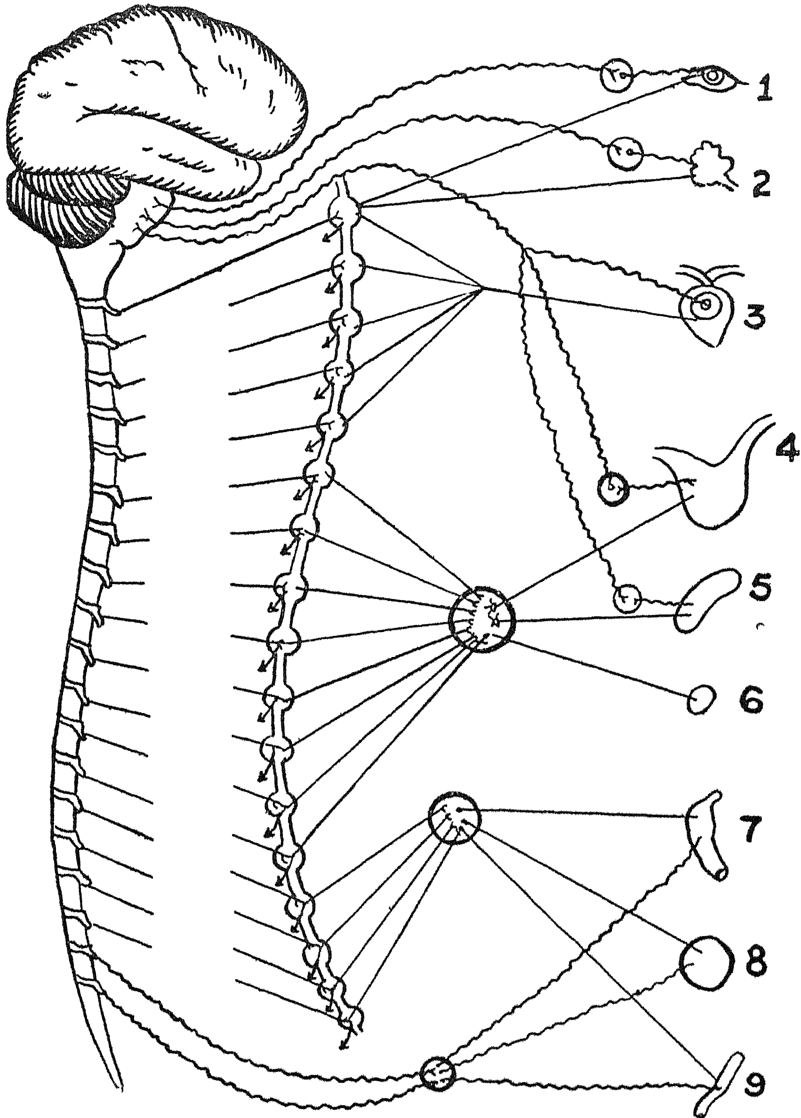
जब सहानुभूतिक नाड़ीमंडल (Sympathetic nervous system) को किसी प्रकार की उत्तेजना मिलती है तो उसका प्रभाव इसी मंडल तक सीमित नहीं रह जाता, बल्कि इस मण्डल से आबद्ध अन्य रचना-मंडल भी प्रभावित होते हैं जिसके फलस्वरूप उनकी क्रियाओं में अवरुद्धता या प्रवेगमयता दृष्टिगोचर होती है। इस प्रभाव की व्यापकता का श्रेय कुछ अंशों में मूत्रस्थग्रन्थि को है। अभिप्राय यह कि यह नाडीमंडल मूत्रस्थग्रन्थि को क्रियाशील बनाता है जिसके फलस्वरूप उससे अधिक परिमाण में एड्रीनिन (Adrenine) नामक अन्त रस स्राव होकर रक्त-धारा में मिलकर सम्पूर्ण शरीर में प्रतिध्वनि (Reverberation) उत्पन्न करता है।

कुछ दिन पहले तक विद्वानों का ऐसा विश्वास था कि संवेग में परा सहानुभूतिक नाड़ीमण्डल पूर्णत निष्क्रिय रहता है। इसलिये संवेग में उसका कुछ हाथ नहीं रहता। लेकिन, इस दिशा में जानवरों पर जो प्रयोग विद्वानों ने किया है उससे प्रमाणित हो चुका है कि संवेग की अवस्था में भी कुछ भागों में परा सहानुभूतिक नाडीमण्डल का ही प्राधान्य रहता है। अतएव यही कहना उचित मालूम होता है कि संवेग की हालत में जाठरिक क्रियाओं (Visceral functions) में अनैच्छिक नाडीमण्डल का प्राधान्य रहता है। लेकिन, संवेग का पूर्ण श्रेय एकमात्र इसी भाग को न होकर सम्पूर्ण स्वचालित नाड़ी-मण्डल को है। थोड़े शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि संवेग में केवल अनैच्छिक नाडीमण्डल ही सक्रिय नहीं रहता, बल्कि स्वचालित नाडीमण्डल के अन्य भाग भी क्रियाशील रहते हैं।

जानवरों पर प्रयोग करने से जो कुछ मालूम हो सका है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि संवेग के लिए यद्यपि अग्रिम मस्तिष्क प्रदेश (Hypothalamus) ही

केवल आवश्यक अग नही है, तथापि सवेगात्मक प्रतिक्रियाओं मे इसका महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। प्रयोगात्मक विधि या किसी आकस्मिक घटना से मस्तिष्क प्रदेश (Thalamus) में क्षति पहुँचने से जीव के सवेगात्मक जीवन मे अत्यधिक परिवर्त्तन होता है। अग्रिम मस्तिष्क-प्रदेश (Hypothalamus) की क्षति के कारण जीव मे उदासीनता आ जाती है, लेकिन इसके सुरक्षित रहने पर भी यदि इसका सम्बन्ध बृहन्मस्तिष्क (Cerebral cortex) से अलग कर दिया जाता है तो उस समय जीव मे अत्यधिक उत्तेजनशीलता (Excitability)

चित्र सख्या ७१



स्वय सचालित नाड़ी मडल का चित्र

१ आँख की पुतली २. लार ग्रन्थि ३ स्वचालित नाड़ी पुज ४ हृदय ५. पेट ६. प्लीहा

परिलक्षित होती है। जो विद्वान अग्रिम मस्तिष्क-प्रदेश को ही सवेग के लियेप्र भावशाली मानते है वे इस बात पर जोर देते है कि अग्रिम मस्तिष्क प्रदेश को किसी साधन से उत्तेजित करने पर कुत्ते, बिल्ली, आदि जानवरों मे विभिन्न सवेगात्मक व्यापार परिलक्षित होते है। इस भाग को निकाल देने से जानवरों की सवेग-प्रदर्शन शक्ति नष्ट हो जाती है। किंतु, दूसरे भाग को निकाल देने से यह शक्ति नष्ट नही होती है। इसके अतिरिक्त भी, कुछ रक्षक द्रव्यों के उपयोग से, जिनका प्रभाव विशिष्ट अग्रिम मस्तिष्क-प्रदेश पर ही पडता है, जानवरों और मनुष्यों के सवेगात्मक जीवन मे अत्यधिक परिवर्त्तन देखने मे आता है। अतएव सवेग के नियन्त्रण मे इसी अग्रिम मस्तिष्क प्रदेश का प्रमुख हाथ रहता है। लेकिन, इसकी प्रमुखता को स्वीकार करते हुये भी मस्तिष्क के अन्य भागों के महत्त्व को हम अस्वीकार नही कर सकते।

बृहन्मस्तिष्क की जो प्रधानता सवेग मे है वह इसी से अच्छी तरह जानी जा सकती है कि यह सवेगात्मक परिस्थिति मे अभियोजित करने के लिये जीव को सहायक प्रमाणित होता है। प्राय ऐसा देखा गया है कि जिस जानवर का यह भाग क्षतिग्रस्त रहता है या उसे निकाल दिया जाता है तो वह भयावह परिस्थिति से निर्मुक्त होने मे सफल नही होता है और न तो सवेग प्रकाशन ही समुचित रूप से करता है। इस भाग से रहित जीव परिस्थिति की सवेगात्मक सार्थकता को समझने मे पूर्णत असमर्थ होता है। इसके अतिरिक्त भी, ऐसा देखा जाता है कि जिसका यह अश सुरक्षित रहता है परिस्थिति के हट जाने पर भी उसका सवेग कुछ काल तक बना रहता है। किंतु, जिसमे इसका अभाव रहता है वह उस परिस्थिति के हटते ही सवेगात्मक व्यवहार का प्रदर्शन भी बन्द कर देता है। लेकिन, ऐसा सामान्य जीव मे नही देखा जाता है। इतना ही नही, बल्कि जीव से इसको निकाल देने पर उसके सवेगात्मक आविष्करण में प्रबलता देखी जाती है। उपर्युक्त तथ्यो को ध्यान में रखते हुए हम निश्चित रूप से कह सकते है कि इस भाग का प्रभाव भी जीव के सवेगात्मक पहलू पर कम नही पडता है। इस प्रकार, हम देखते है कि सवेग पर नाडीमण्डल के सम्पूर्ण अगों का प्रभाव पडता है, लेकिन स्वचालित नाडीमण्डल, हाइपोथैलेमस और बृहन्मस्तिष्क (Cerebral cortex) का स्थान विशेष रूपेण महत्त्वपूर्ण है। इसके विभिन्न भागों को पृष्ठ सख्या ४६४ के चित्र मे देखा जा सकता है।

संवेग-सिद्धान्त

हम सवेग के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए यह व्यक्त कर चुके है कि किस प्रकार विभिन्न मनोवैज्ञानिकों या अन्य विद्वानों ने सवेग स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसी प्रयास के सिलसिले मे सवेग के कई सिद्धान्त है, लेकिन उन सभी सिद्धान्तों पर प्रकाश डालना सभव नही है। इसलिए हम जेम्स लाज-सिद्धान्त (James-Lange theory), कैनन-सिद्धान्त (Cannon theory) तथा कुछ अन्य प्रमुख सिद्धान्तों पर ही, सक्षेप में विवेचनात्मक प्रकाश डालेगे।

(१) जेम्स-लांज-सिद्धान्त (James-Lange theory)

सवेग के सबध मे सामान्य दृष्टिकोण यह है कि हम लोग किसी परिस्थिति का सामना, स्मरण या कल्पना करते है और हमलोगों मे उसके अनुरूप सवेग का आविर्भाव

होता है। तब उस सवेग का प्रकाशन शारीरिक प्रतिक्रियाओ द्वारा होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, अपने प्रेमपात्र को देखने पर हम प्रेम के सवेग का अनुभव करते है और तब उसका आलिंगन करते, पुचकारते या उस पर हाथ फेरते है। घातक जानवर को देखने से ही भय उत्पन्न होता है तब उस भय का प्रकाशन छिपने, भगने तथा आन्तरिक शारीरिक प्रतिक्रियाओ द्वारा होता है। अभिप्राय यह कि हम किसी परिस्थिति के अनुरूप भय, प्रेम या क्रोध का अनुभव करते है तब भागते, छिपते, चुम्बन और आलिंगन करते या मारते पीटते है।

जेम्स लाज का सवेग सिद्धान्त इस दृष्टिकोण के ठीक उल्टा है। उसके अनुसार हमे पहले परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण होता है जिसके परिणाम स्वरूप हमारे शरीर में कई प्रकार के आन्तरिक परिवर्त्तन होते है। उन आन्तरिक परिवर्त्तनो या अन्तरावयव सवेदनाओं (Organic sensations) की सूचना ज्ञानग्राही नाडियो के द्वारा मस्तिष्क को मिलती है। यही अन्तरावयव सवेदनाओ की चेतना सवेग है। इसके अनुसार, किसी परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण मात्र से हमारे शरीर मे आन्तरिक परिवर्त्तन होते है और उन्हीं परिवर्त्तनों के ज्ञान से हम सवेग का अनुभव करते है। दूसरे शब्दों मे, अन्तरावयव सवेदना-सघात (Pattern of organic sensations) ही सवेग है। जेम्स का कहना है कि सवेग के सम्बन्ध मे सामान्य दृष्टिकोण यह है कि हम भयावह जानवर को देखकर भयभीत होते है, तब रोते है। मित्र को देखकर खुश होते है, तब मधुर मुस्कान और उसका आलिंगन करते है। शत्रु को देखकर क्रोध होता है, तब उसे मारते पीटते या अपशब्द कहते है। लेकिन, मेरा सिद्धान्त है कि हम लोग काँपते और भागते है तब डरते है, रोते है, तब दुखी होते है या मित्र को पुचकारते है, तब खुशी का अनुभव करते है।"

जेम्स (James) एक बहुत बडा अमेरिकन मनोवैज्ञानिक था जिसको प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के पिता होने का श्रेय प्राप्त है। उसने सन् १८८४ ई० म सवेग के प्रति अपना विचार प्रकाशित किया। लाज (Lange) डेनमार्क का रहनेवाला दैहिक वैज्ञानिक था। उसने अपने विचारो को सन् १८८५ ई० म प्रस्तुत किया। दोनों एक दूसरे से स्वतत्र काम करते रहे। दोनो के विचारों को एकरूप तो नही माना जा सकता, परन्तु एक समान अवश्य कह सकते है।

जेम्स के अनुसार सवेगात्मक अनुभूति जिस प्रकार होती है उसका वर्णन निम्नलिखित है—कोई उत्तेजना हमारे एक या एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियो को उत्तेजित करती है, ज्ञानात्मक स्नायुप्रवाह (Sensory nerve impulse) हमारे बृहन्मस्तिष्क (Cerebral Cortex or cerebrum) के ज्ञानात्मक क्षेत्र (Sensory field) में पहुँचते है। इसके फलस्वरूप हमें उस उत्तेजना विशेष का ज्ञान होता है। तब स्नायुप्रवाह हमारी मासपेशियाँ तथा जठर (Viscera) मे आ जाता है और उसकी क्रियाओं को विषम रूप से परिवर्त्तित कर देता है। ये मासपेशियाँ तथा जठर जब उत्तेजित हो जाते है तो उनके अन्दर से ज्ञानात्मक स्नायुप्रवाह उत्पन्न हो हमारे बृहन्मस्तिष्क मे आ जाता है। जब उन स्नायुप्रवाहों के द्वारा मासपेशियों तथा जठर के अन्दर सक्षोभ (Excitement) के वर्त्तमान होने का ज्ञान होता है तो वह वस्तु जो सर्वप्रथम साधारण प्रतीत हुई थी, सवेगात्मक प्रतीत होने

लगती है। इसे दूसरे शब्दो मे हम यों व्यक्त कर सकते है कि शारीरिक परिवर्त्तनों का ज्ञान ही सवेग है।

लाज का विचार इससे कुछ भिन्न है। उसके अनुसार हमारे जाठरिक क्रियात्मक मण्डल (Vaso-motor system) का उत्तेजित होना ही सवेग का आधार है। उसका कहना है कि हमारे मानसिक जीवन का सवेगात्मक अग जाठरिक क्रियात्मक मण्डल द्वारा नियन्त्रित होता है। जब उत्तेजना हमारे ज्ञानेन्द्रिय को उत्तेजित करती है तब वस्तु विशेष का ज्ञान होता है। उसके फलस्वरूप जाठरिक क्रियात्मक मण्डल उत्तेजित हो जाता है जिससे हमे सवेगात्मक अनुभूति होती है। लाज के अनुसार यह कहना भी कठिन है कि सवेग की उत्पत्ति केन्द्रीय स्थानों से होती है या बाह्य स्थानों (Peripheral) से। परन्तु, इतना सत्य है कि बाह्य उत्तेजनाएँ, जैसे मादक द्रव्य, शराब, भाग, अफीम, आदि हमारे शारीरिक स्थिति मे परिवर्त्तन लाते है। इसके फलस्वरूप हमारी भावात्मक स्थिति (Feeling state) भी परिवर्त्तित हो जाती है। इन परिवर्त्तनों को हटा देने पर सवेग वर्त्तमान नही रहेगा।

इससे यह स्पष्ट है कि जेम्स तथा लाज दोनों के विचारों मे पर्याप्त समानता है, यद्यपि लोगों का विचार कुछ सकीर्ण है। चूँकि उसके अनुसार सवेग की उत्पत्ति केवल रक्त सचालन-सस्थान (Blood circulatory system) की कार्यवाही मे परिवर्त्तन के कारण ही होता है।

अपने सिद्धान्त के पक्ष मे जेम्स का कहना है कि हम ऐसे भय, क्रोध, आदि की कल्पना भी नही कर सकते जिनमे उनके अनुरूप शारीरिक परिवर्त्तन न हो। क्या ऐसे क्रोध का अनुभव करना भी सभव है जिसमे मुखमण्डल लाल न हो, भुजाएँ फडकती न हों, दातों से होठों को दबाया न जाता हो? उसका कथन है कि किसी सवेग विशेष का अनुभव करने के लिए उसके अनुरूप शारीरिक आसन (Bodily posture) का ग्रहण करना आवश्यक है, क्योंकि बिना शारीरिक आसन के सवेग असभव है। उसके अनुसार, अगर भय की परिस्थिति उपस्थित होने पर भय के शारीरिक आसन को मनुष्य ग्रहण न करे तो वह कदापि भय सवेग का अनुभव नही कर सकता। नाटक और सिनेमा के पात्रों का उदाहरण देते हुए वह यह व्यक्त करता है कि जब वे पात्र अभिनय के समय विभिन्न सवेगों के अनुरूप हाव-भाव प्रदर्शित करते है तो वे उस समय उन सवेगों का भी अनुभव करते है। हमारी यह साधारण अनुभूति है कि जब कोई व्यक्ति दुखी होता है तो रोता है। हमलोग उसके दुख के सवेग को घटाना चाहते है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हम राय देते है कि रोना छोड कर हँसना-बोलना प्रारभ करे। इससे यह स्पष्ट है कि साधारणत हम विश्वास करते है कि किसी व्यक्ति के रोना छोड देने पर दुख का सवेग भी लुप्त हो जाएगा। यह तथ्य भी उसके सिद्धान्त की पुष्टि करता है। इसी प्रकार, वह अन्धेरे मे किसी पदार्थ को देखकर भयभीत होने का उदाहरण देते हुए कहता है कि जब अन्धेरी रात मे हम कोई पदार्थ सहसा देखते है तो उसे देखते ही हमारी सांस और हृदय की गति अवरुद्ध हो जाती है तब उसके बाद हम भयभीत होते है। इसके अतिरिक्त भी, अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए वह कई प्रकार के ऐसे शारीरिक उपद्रवों का प्रमाण उपस्थित करता है जो सवेग के कारण होते है। वह मादक द्रव्यों के

सेवन तथा अन्य शारीरिक उपद्रवों के कारण उत्पन्न कई प्रकार के सवेगो को प्रमाण स्वरूप उपस्थित करता है। लेकिन, उसके द्वारा उपस्थित किए गए प्रमाण इतने अकाट्य नही है जिनके आधार पर उसके प्रतिपादित सिद्धान्त पर पूर्णत विश्वास किया जा सके।

इस सिद्धान्त की सत्यता का सबसे प्रबल प्रमाण वस्तुहीन सवेग (Objectless emotion) से प्राप्त होता है। हम अपने जीवनकाल मे किसी वस्तु को देखकर डरना सीखते है। इसलिए बहुत सी ऐसी वस्तुएँ भी हो सकती है जिनके प्रति गत अनुभूति के अभाव के कारण सवेग की उत्पत्ति नही हो। जैसे, किसी व्यक्ति विशेष के समक्ष रक्त से भरी हुई हाँडी रख दी जाए। उसने पहले कभी खून नही देखा है, इसलिए खून के प्रत्यक्षीकरण से उसके अन्दर किसी प्रकार का सवेग उत्पन्न नही होगा। यदि वह देर तक रक्त को देखता रहे तो वह स्वत चक्करा कर गिर जाएगा। इसी प्रकार के सवेग को वस्तुहीन सवेग कहते है। इससे यह स्पष्ट है कि रक्त के प्रत्यक्षीकरण से प्रत्यक्षतया उसके अन्दर सवेग का आविर्भाव नही हुआ। अर्थात्, रक्त के दृश्य ने उसे पहले सवेगात्मक अनुभूति नही दी, बल्कि उसके आन्तरिक भागों को पहले प्रभावित कर दिया तब उसमे डर से बेहोश होने का सवेग देखने मे आया।

जेम्स लाज-सिद्धान्त की आलोचना—जेम्स-लाज के उपर्युक्त सिद्धान्त की प्रतिपन्नता की परीक्षा के लिए दैहिकविज्ञानवेत्ताओ ने जानवरो पर कई प्रकार का प्रयोग किया है जिनका उल्लेख कर देना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। लेकिन, उन प्रयोगो को अच्छी तरह समझने के लिए पाठकों को यह नही भूलना होगा कि जेम्स-लाज सिद्धान्त के अनुसार अन्तरावयव सवेदना (Organic sensation) की चेतना ही सवेग है। यह सिद्धान्त दोनो को अभिन्न (Identical) मानता है।

शेरिंगटन (Sherrington) ने गर्दन के निकट कई कुत्तो की सुषुम्ना नाड़ियो का (Spinal cord) आपरेशन करके मस्तिष्क और शरीर के अन्य निचले अगो का सम्बध-विच्छेद कर दिया। इस प्रकार जठर और त्वचा सम्बन्धी सवेदनाओ को अनुभव करने की कोई सभावना नही रह गई। हाँ, ऊपरी अश, जो कि सुरक्षित थे, यथा, मुखमण्डल, मस्तिष्क, मस्तक, गर्दन, आदि की सवेदनाओं का ज्ञान सभव था। लेकिन, इतना कर देने पर भी उन कुत्तो के सवेग मे किसी तरह की कमी या परिवर्त्तन दृष्टिगोचर नही हुआ। वे कुत्ते पूर्ववत अन्य सामान्य कुत्तो की तरह क्रोध, भय या प्रेम राग का प्रदर्शन करते रहे। उनमे सबसे विचित्रता तो यह देखने मे आई कि जिस प्रकार किसी रूप मे देने पर भी कोई सामान्य कुत्ता कुत्ते का मास भक्षण नही करता है उसी प्रकार वे कुत्ते भी छद्म रूप मे कुत्ते का मास देने पर भी उससे अपना मुँह फेर लिए। यद्यपि इस प्रयोग के आधार पर यह निश्चयात्मक रूप से कहना कठिन है कि वे कुत्ते वस्तुत विभिन्न सवेगो का अनुभव करते थे कि नही, लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उस आपरेशन से उनकी सवेगात्मक प्रतिक्रियाओ मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन दृष्टिगोचर नही हुआ। इस प्रयोग से यह भी प्रमाणित होता है कि जाठरिक (Visceral) परिवर्त्तनो के अभाव मे भी सवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का होना पूर्णत सभव है।

कैन (Cannon) तथा उसके सहकारियों ने सवेग मे सहानुभूतिक नाड़ीमडल (Sympathetic nervous system) के महत्त्व को देखने के लिए कई बिल्लियों के इस

भाग को स्वचालित नाडीमडल से अलग कर दिया। ऐसा करने से जाठरिक सवेदनाओं की सभावना नही रह गई थी। किंतु, इस अवस्था मे भी उन बिल्लियो ने कुत्त। को देखने पर क्रोध (सवेग) की विभिन्न प्रतिक्रियाओ का प्रदर्शन किया। इस प्रयोग से भी प्रमाणित होता है कि सवेग के लिए शारीरिक सवेदनाएँ आवश्यक नही हैं।

और भी कई ऐसे प्रयोगो मे मादक द्रव्यों का व्यवहार करके नई प्रकार के शारीरिक उपद्रव (Disturbances) उत्पन्न किए गए हैं, किंतु उन उपद्रवो की अवस्था मे किसी ने किसी प्रकार के सवेगात्मक अनुभव को नही व्यक्त किया। यदि शारीरिक उपद्रवों से ही सवेगों का अनुभव होता तो उपर्युक्त शारीरिक उपद्रवों म भी उनका आविर्भाव आवश्यक था। किंतु, ऐसी अवस्था मे किसी प्रकार के सवेग का सर्वथा अभाव था। अत यह निर्विवाद है कि शारीरिक उपद्रवो से ही सवेगों का आविर्भाव नहीं होता।

कैनन तथा उसके कुछ अनुयायियों ने सामान्य व्यक्तियो म मूत्रस्थ ग्रन्थि स्राव (Adrenal gland secretion) की सुई देकर तरह तरह के जाठरिक और आन्तरिक परिवर्त्तनों तथा उपद्रवों को उत्पन्न किया, लेकिन उन परिवर्त्तनो के होने पर भी किसी व्यक्ति ने किसी प्रकार के सवेग को व्यक्त नही किया। मैरेनन को भी अपने प्रयोज्यों मे सुई देने पर किसी सवेग का प्रमाण नही मिला। कैण्ट्रिल (Cantril) तथा हण्ट (Hunt) के १४ प्रयोज्यो मे ऐसी व्यवस्था करने पर ज्ञात हुआ कि तीन प्रयोज्यों मे दु खद और एक मे सुखद अनुभव का आविर्भाव हुआ, लेकिन दस प्रयोज्यो में किसी प्रकार का सवेगात्मक अनुभव नही था। प्रयोग-परिणामों से स्पष्ट है कि सवेग का अनुभव शारीरिक परिवर्त्तनो पर निर्भर नही करता। यदि ऐसा होता तो उपर्युक्त प्रयोगो मे प्रयोज्य सवेग का अनुभव करते। किसी सवेग का अभाव जेम्स लाज सिद्धान्त को असत्य सिद्ध करता है।

इन उपर्युक्त प्रमाणों के अतिरिक्त, इस सिद्धान्त के विपक्ष मे कुछ ऐसे अन्य प्रमाण उपस्थित हैं जो इसका खण्डन करते हैं। जेम्स ने जठर-प्रतिक्रियाओ के साथ-साथ शारीरिक मुद्रा को भी सवेग का कारण माना है। लेकिन, विलसन (Wilson) ने ऐसे असामान्य व्यक्तियो का प्रमाण उपस्थित किया है जो दु ख के समय हँसते या रोते हुए भी विषाद-निर्मुक्त पाए गए हैं।

डॉक्टर डाना (Dr Dana) ने एक ४० वर्ष की महिला का प्रमाण उपस्थित किया है। उसकी गर्दन मे इस प्रकार का आघात पहुँचा कि उसका निचला भाग इतना सज्ञाशून्य हो गया कि उसे निम्नाश से किसी प्रकार की सवेदना नही मिलती थी। इस प्रकार उसे सहानुभूतिक नाडीमण्डल से सवेदना प्राप्त नही होती थी, सिर्फ त्रिधारा नाडी (Vagus nerves) सुरक्षित थी। ऐसी अवस्था मे वह महिला कई महीनो तक जीवित रही और अवसरानुकूल वह शोक, हर्ष, भय, आदि सवेगों का भी अनुभव करती थी। इससे भी प्रमाणित होता है कि सवेग के लिए जठर मे परिवर्त्तन होना आवश्यक नहीं है।

यद्यपि जेम्स ने नाटक के पात्रों का उदाहरण देकर अपने सिद्धान्त की सत्यता को प्रमाणित करने की चेष्टा की है, फिर भी इसी क्षेत्र म उसके विचारों के विरुद्ध भी

सेवन तथा अन्य शारीरिक उपद्रवों के कारण उत्पन्न कई प्रकार के संवेगों को प्रमाण स्वरूप उपस्थित करता है। लेकिन, उसके द्वारा उपस्थित किए गए प्रमाण इतने अकाट्य नहीं है जिनके आधार पर उसके प्रतिपादित सिद्धान्त पर पूर्णतः विश्वास किया जा सके।

इस सिद्धान्त की सत्यता का सबसे प्रबल प्रमाण वस्तुहीन संवेग (Objectless emotion) से प्राप्त होता है। हम अपने जीवनकाल में किसी वस्तु को देखकर डरना सीखते हैं। इसलिए बहुत सी ऐसी वस्तुएँ भी हो सकती है जिनके प्रति गत अनुभूति के अभाव के कारण संवेग की उत्पत्ति न हो, जैसे, किसी व्यक्ति विशेष के समक्ष रक्त से भरी हुई हाँडी रख दी जाए। उसने पहले कभी खून नहीं देखा है, इसलिए खून के प्रत्यक्षीकरण से उसके अन्दर किसी प्रकार का संवेग उत्पन्न नहीं होगा। यदि वह देर तक रक्त को देखता रहे तो वह स्वतः चक्कर खा कर गिर जाएगा। इसी प्रकार के संवेग को वस्तुहीन संवेग कहते है। इससे यह स्पष्ट है कि रक्त के प्रत्यक्षीकरण से प्रत्यक्षतया उसके अन्दर संवेग का आविर्भाव नहीं हुआ। अर्थात्, रक्त के दृश्य ने उसे पहले संवेगात्मक अनुभूति नहीं दी, बल्कि उसके आन्तरिक भागों को पहले प्रभावित कर दिया तब उसमे डर से बेहोश होने का संवेग देखने में आया।

जेम्स लाज-सिद्धान्त की आलोचना—जेम्स-लाज के उपर्युक्त सिद्धान्त की प्रतिपन्नता की परीक्षा के लिए दैहिकविज्ञानवेत्ताओं ने जानवरों पर कई प्रकार का प्रयोग किया है जिनका उल्लेख कर देना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। लेकिन, उन प्रयोगों को अच्छी तरह समझने के लिए पाठकों को यह नहीं भूलना होगा कि जेम्स-लाज सिद्धान्त के अनुसार अन्तरावयव संवेदना (Organic sensation) की चेतना ही संवेग है। यह सिद्धान्त दोनों को अभिन्न (Identical) मानता है।

शेरिंगटन (Sherrington) ने गर्दन के निकट कई कुत्तों की सुषुम्ना नाड़ियों का (Spinal cord) आपरेशन करके मस्तिष्क और शरीर के अन्य निचले अंगों का संबध-विच्छेद कर दिया। इस प्रकार जठर और त्वचा सम्बन्धी संवेदनाओं के अनुभव करने की कोई संभावना नहीं रह गई। हाँ, ऊपरी अंश, जो कि सुरक्षित थे, यथा, मुखमण्डल, मस्तिष्क, मस्तक, गर्दन, आदि की संवेदनाओं का ज्ञान संभव था। लेकिन, इतना कर देने पर भी उन कुत्तों के संवेग में किसी तरह की कमी या परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ। वे कुत्ते पूर्ववत अन्य सामान्य कुत्तों की तरह क्रोध, भय या प्रेम संवेग का प्रदर्शन करते रहे। उनमें सबसे विचित्रता तो यह देखने में आई कि जिस प्रकार किसी रूप में देने पर भी कोई सामान्य कुत्ता कुत्ते का मांस भक्षण नहीं करता है उसी प्रकार वे कुत्ते भी छद्म रूप में कुत्ते का मांस देने पर भी उससे अपना मुँह फेर लिए। यद्यपि इस प्रयोग के आधार पर यह निश्चयात्मक रूप से कहना कठिन है कि वे कुत्ते वस्तुतः विभिन्न संवेगों का अनुभव करते थे कि नहीं, लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उस आपरेशन से उनकी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं में किसी प्रकार का परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इस प्रयोग से यह भी प्रमाणित होता है कि जाठरिक (Visceral) परिवर्तनों के अभाव में भी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का होना पूर्णतः संभव है।

कैनन (Cannon) तथा उसके सहकारियों ने संवेग में सहानुभूतिक नाड़ीमंडल (Sympathetic nervous system) के महत्त्व को देखने के लिए कई बिल्लियों के इस

भाग को स्वचालित नाडीमडल से अलग कर दिया। एसा करने से जाठरिक सवेदनाओं की सभावना नही रह गई थी। किंतु, इस अवस्था मे भी उन बिल्लियों ने कुत्ता को देखने पर क्रोध (सवेग) की विभिन्न प्रतिक्रियाओं का प्रदर्शन किया। इस प्रयोग से भी प्रमाणित होता है कि सवेग के लिए शारीरिक सवेदनाएँ आवश्यक नही हैं।

और भी कई ऐसे प्रयोगो मे मादक द्रव्यों का व्यवहार करके कई प्रकार के शारीरिक उपद्रव (Disturbances) उत्पन्न किए गए हैं, किंतु उन उपद्रवा की अवस्था मे किसी ने किसी प्रकार के सवेगात्मक अनुभव को नही व्यक्त किया। यदि शारीरिक उपद्रवों से ही सवेगों का अनुभव होता तो उपर्युक्त शारीरिक उपद्रवों मे भी उनका आविर्भाव आवश्यक था। किंतु, ऐसी अवस्था मे किसी प्रकार के सवेग का सर्वथा अभाव था। अत यह निर्विवाद है कि शारीरिक उपद्रवों से ही सवेगों का आविर्भाव नहीं होता।

कैनन तथा उसके कुछ अनुयायियों ने सामान्य व्यक्तियों मे मूत्रस्थ ग्रन्थि स्राव (Adrenal gland secretion) की सुई देकर तरह तरह के जाठरिक और आन्तरिक परिवर्त्तनो तथा उपद्रवो को उत्पन्न किया, लेकिन उन परिवर्त्तनो के होने पर भी किसी व्यक्ति ने किसी प्रकार के सवेग को व्यक्त नही किया। मैरेनन को भी अपने प्रयोज्यों मे सुई देने पर किसी सवेग का प्रमाण नही मिला। कैण्ट्रिल (Cantril) तथा हण्ट (Hunt) के १४ प्रयोज्यों मे एसी व्यवस्था करने पर ज्ञात हुआ कि तीन प्रयोज्यो मे दुखद और एक मे सुखद अनुभव का आविर्भाव हुआ, लेकिन दस प्रयोज्यो मे किसी प्रकार का सवेगात्मक अनुभव नही था। प्रयोग-परिणामों से स्पष्ट है कि सवेग का अनुभव शारीरिक परिवर्त्तनो पर निर्भर नही करता। यदि एसा होता तो उपर्युक्त प्रयोगो मे प्रयोज्य सवेग का अनुभव करते। किसी सवेग का अभाव जेम्स लाज सिद्धान्त को असत्य सिद्ध करता है।

इन उपर्युक्त प्रमाणों के अतिरिक्त, इस सिद्धान्त के विपक्ष मे कुछ ऐसे अन्य प्रमाण उपस्थित हैं जो इसका खण्डन करते हैं। जेम्स ने जठर-प्रतिक्रियाओं के साथ साथ शारीरिक मुद्रा को भी सवेग का कारण माना है। लेकिन, विलसन (Wilson) ने ऐसे असामान्य व्यक्तियों का प्रमाण उपस्थित किया है जो दुख के समय हँसते या रोते हुए भी विषाद-निर्मुक्त पाए गए हैं।

डॉक्टर डाना (Dr Dana) ने एक ४० वर्ष की महिला का प्रमाण उपस्थित किया है। उसकी गर्दन मे इस प्रकार का आघात पहुँचा कि उसका निचला भाग इतना सज्ञाशून्य हो गया कि उसे निम्नाश से किसी प्रकार की सवेदना नही मिलती थी। इस प्रकार उसे सहानुभूतिक नाडीमण्डल से सवेदना प्राप्त नही होती थी, सिर्फ त्रिधारा नाडी (Vagus nerves) सुरक्षित थी। ऐसी अवस्था मे वह महिला कई महीनो तक जीवित रही और अवसरानुकूल वह शोक, हर्ष, भय, आदि सवेगों का भी अनुभव करती थी। इससे भी प्रमाणित होता है कि सवेग के लिए जठर मे परिवर्त्तन होना आवश्यक नही है।

यद्यपि जेम्स ने नाटक के पात्रो का उदाहरण देकर अपने सिद्धान्त की सत्यता को प्रमाणित करने की चेष्टा की है, फिर भी इसी क्षेत्र मे उसके विचारों के विरुद्ध भी

कुछ प्रमाण मिलते है। आर्चर (Archer) ने जब बहुत से पात्रो से पूछा कि क्या उन्हे अभिनय करने के समय वास्तविक सवेगात्मक अनुभूति होती है तब अधिकाश लोगो ने यही कहा कि उन्हे तनिक भी सवेगात्मक अनुभूति नही होती। वस्तुत उनका हँसना या रोना यन्त्रवत हुआ करता है।

डॉक्टर स्ट्रम्पल (Dr Strumpell) को एक ऐसा लडके से भेट हुई जो पूर्णत सज्ञाहीन (Anesthetic) था, फिर भी जब वह अपने बिछावन पर पेशाब कर देता तो उसे लज्जा का सवेग होता था। इसी प्रकार की एक सूचना मेकर्डी (MacCurdy) ने भी दी है। सज्ञाहीनता के कारण किसी व्यक्ति को अपने शरीर का ज्ञान नही रहा। उसे अस्पताल मे भर्ती कर दिया गया। उस स्थिति मे भी वह नर्सो के प्रति अभिरुचि व्यक्त करता था। ऐसे कुछ और भी प्रमाण मिलते है जिनमे योनिग्रन्थियां (Gonads) की अनुपस्थिति मे भी कुछ लोग यौन सम्बन्धी बातो मे अभिरुचि व्यक्त करते है। इन सभी प्रमाणो से यह स्पष्ट है कि शरीर के आन्तरिक अगो के परिवर्त्तन के बिना भी सवेगात्मक अनुभूति सभव है।

यदि जेम्स के विचारो से सहमत हो हम यह मान ले कि पहले हमारे जठर की क्रियाओं मे परिवर्त्तन होता है तब सवेगात्मक अनुभूति होती है तो एक बहुत बडी कठिनाई उपस्थित हो जाती है। वह कठिनाई यह है कि इसके अनुसार सवेग की तात्कालिक उत्पत्ति असभव हो जायगी। कारण यह है कि हमारे जठर मे चिकनी मासपेशियाँ (Smooth muscles) होती है जिनमे ग्राहको (Receptors) की सख्या बहुत कम होती है। जठर प्रधानत एक क्रियात्मक अङ्ग (Motor organ) है, इसमे ग्राहक अल्पसख्यक है। इसलिए उत्तेजना से यह जल्दी प्रभावित नही होता। दैहिक प्रयोगो द्वारा यह सिद्ध है कि चिकनी मासपेशियाँ धारीदार मासपेशियो (Stripped muscles) की अपेक्षा बहुत देर मे क्रियाशील होती है। किन्तु, हमारा यह अनुभव है कि किसी वस्तु के उपस्थित होने पर हमारे अन्दर सवेग तत्काल उपस्थित हो जाता है। यदि सवेग चिकनी मासपेशियो की क्रियाशीलता पर निर्भर करता तो उसके आविर्भाव मे काफी समय लगता, परतु बात ऐसी नही है। इस प्रमाण से भी जेम्स-लाज के सिद्धान्त का महत्त्व घट जाता है। एक बात और ध्यान देने की है कि यदि सवेग शारीरिक परिवर्त्तनो पर निर्भर करता तो प्रत्येक प्रकार के सवेग के लिए अलग तरह का परिवर्त्तन होता। लेकिन, दैहिक परिवर्तनों की चर्चा करते समय हम देख चुके कि क्रोध, भय, प्रेम, आदि विभिन्न सवेगों मे अलग-अलग तरह के शारीरिक परिवर्त्तन नही होते।

इस प्रकार हम देखते है कि ऊपर जितने भी प्रयोगात्मक या अन्य प्रकार के प्रमाण उपस्थित किए गए है वे सभी जेम्स-लाज के सिद्धान्त का खण्डन करते है। यही कारण है कि आज यह सिद्धान्त पुराना माना जाता है।

(२) कैनन-सिद्धान्त (Cannon theory)

कैनन तथा बार्ड (Bard) ने जेम्स-लाज-सिद्धान्त के प्रति की गई सभी आपत्तियों को ध्यान मे रखते हुए एक नए सवेग-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है

जिसे हम कैनन-सिद्धान्त के नाम से व्यक्त कर सकते है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे कई नामों से पुकारा है, यथा, आकस्मिक सिद्धान्त (Emergency theory), हाइपोथलेमिक या अग्रिम मस्तिष्क प्रदेशीय सिद्धान्त (Hypothalamic theory), कैनन बार्ड सिद्धान्त, आदि।

कैनन-सिद्धान्त सवेगात्मक अनुभव और प्रतिक्रियाओ के आविर्भाव मे हाइपोथैलेमस को ही प्रमुख मानता है। इसके अनुसार, सवेगो मे इसी भाग का एकमात्र हाथ रहता है। हम जेम्स लाज सिद्धान्त मे देख चुके है कि जेम्स अन्तरावयव सवेदनाओ को ही सवेग मानकर सवेगात्मक अनुभव को उन्ही व्यापारों पर आधारित कर देता है। किन्तु, यह सिद्धान्त सवेगात्मक अनुभव और सवेगात्मक व्यवहार को एक दूसरे से स्वतन्त्र मानता है। इसके अनुसार, हाइपोथैलेमस से प्रवाह (स्राव) निष्कासित होने से सवेगात्मक अनुभव और सवेगात्मक प्रतिक्रियाओ का आविर्भाव एक साथ होता है। इसलिए ये दोनो एक दूसरे से स्वतन्त्र है।

इसको और भी स्पष्ट करने के लिए दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है कि दोनों ही सिद्धान्त यह स्वीकार करते है कि बृहन्मस्तिष्क (Cerebral cortex) सवेगात्मक क्रियाओं को नियन्त्रित करता है। कैनन-सिद्धान्त भी सवेगो मे जाठरिक तथा स्केलिटल (Visceral and skeletol) के महत्त्व को कुछ अंश म स्वीकार करता ह। लेकिन, जहाँ पहला सिद्धान्त शारीरिक परिवर्त्तनो की चेतना को ही सवेग मानता है वहाँ यह सिद्धान्त हाइपोथैलेमस के प्रवाह (स्राव) से एक साथ उत्पन्न सवेगात्मक अनुभव और प्रतिक्रियाओं में विश्वास करता हुआ एक दूसरे की स्वतन्त्रता को व्यक्त करता है।

कैनन तथा बार्ड के अनुसार सवेगात्मक अनुभूति का केन्द्र बृहन्मस्तिष्क (Cerebral cortex) है और सवेगात्मक प्रदर्शन का केन्द्र अन्तरमस्तिष्क (Diencephalon) है, जिसके थैलेमस (Thalamus) और हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) दो प्रमुख भाग है। उनके अनुसार कोई उत्तेजना विशेष हमारे ग्राहकों को प्रभावित करती है जिसके फलस्वरूप स्नायु-प्रवाह उत्पन्न हो ज्ञानवाही नाड़ियों से होता हुआ थैलेमस मे पहुँचता है। तत्पश्चात् थैलेमस उस स्नायुप्रवाह को बृहन्मस्तिष्क मे भेज देता है। स्नायुप्रवाह को बृहन्मस्तिष्क मे भेजने के पहले थैलेमस उस स्नायुप्रवाह मे सवेगात्मक गुण (Emotional quality) जोड देता है। इसी कारण वह उत्तेजना व्यक्ति विशेष को सवेगात्मक प्रतीत होती है। जब थैलेमस स्नायुप्रवाह को बृहन्मस्तिष्क मे भेजता है उसी समय उसके कुछ भाग को जठर तथा स्केलिटल मांसपेशियों की ओर मोड देता है। इसके परिणाम-स्वरूप जिस समय हमे वस्तु विशेष का सवेगात्मक प्रत्यक्षीकरण होता है उसके साथ-साथ हमारे जठर तथा स्केलिटल मासपेशियाँ की क्रियाओ मे परिवर्त्तन हो जाते है।

कैनन-सिद्धान्त का मूल्याकन —कैनन सिद्धान्त की विवेचना करने पर इसमें कई गुण मालूम होते है। जिस प्रकार जेम्स लाज सिद्धान्त के प्रति विद्वानों को आपत्ति है कि सुषुम्ना नाडी को काट देने पर भी गर्दन के निकट जीवों मे सवेगात्मक अनुभव पाया गया उस प्रकार इस सिद्धान्त के सबध मे नहीं कहा जा सकता। कैनन-सिद्धान्त हाइपोथैलेमस को ही सवेग केन्द्र मानता है। इसलिए वैसा कर देने पर भी बृहन्-

मस्तिष्क और इसके सबंध मे कोई क्षति नही पहुचती है। इसलिए ऐसी अवस्था मे भी कोई जीव सवेग का अनुभव कर सकता है। सूत्रसम्बन्धि स्राव की सुई देने से शारीरिक उपद्रव हो सकते है। किंतु, इन उपद्रवो से हाइपोथैलेमस मे स्राव न होने से सवेगात्मक अनुभव उत्पन्न नही हो सकता है। जठराचल की मन्द एव विलम्बित प्रतिक्रिया का भी कोई असर सवेग पर नही पडता, क्योकि सवेग उसकी प्रतिक्रियाओ से पूर्णत स्वतत्र है। आकस्मिक सिद्धान्त के नाम की प्रतिपादकता का व्यक्त करते हुए उसका सकेत है कि सवेगात्मक अभिव्यक्तियो मे व्यक्ति या कोई जीव अधिक शक्ति अनुभव करता है जिसके परिणामस्वरूप वह विकट से विकट परिस्थिति मे भी अभियोजित कर लेता है। इसी तरह इस सिद्धान्त के कुछ और भी गुण व्यक्त किए जा सकते है, परन्तु इससे यह समझ लेना कि यह सिद्धान्त सर्वागपूर्ण है, अनुचित होगा।

इसकी त्रुटियो पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि यह सिद्धान्त भी दोषपूर्ण है। यह सिद्धान्त हाइपोथैलेमस को ही सवेग का एकमात्र कारण मानता है, किंतु इसका ऐसा मानना समुचित नही है। हम कई स्थलो पर कह चुके है कि इस भाग के अतिरिक्त, सवेग मे नाडीमडल के अन्य भागो का भी हाथ कम नही रहता है। इतना ही नही, जब हाइपोथैलेमस को उत्तेजित करके सवेगात्मक व्यवहारो को प्रदर्शित किया जाता है तो वे व्यवहार स्वाभाविक सवेग-व्यवहारो की अपेक्षा सीमित, क्षणिक और दुरूह होते है। उत्तेजना द्वारा सवेगात्मक व्यवहारो मे किसी तरह का परिवर्त्तन नही पाया जाता, क्योकि वे निरतर एक ही प्रकार के होते है। ऐसे व्यवहार अभियोजन के लिए कुछ भी लाभप्रद सिद्ध नही होते है। अभियोजनशीलता (Adjustibility) के दृष्टिकोण से हाइपोथैलेमस की अपेक्षा बृहन्मस्तिष्क अधिक महत्व का है। उपर्युक्त तथ्य इसके द्योतक है कि हाइपोथैलेमस ही नही, बल्कि नाडीमडल के अन्य भाग भी सवेग के लिए आवश्यक है। हाइपोथैलेमस ही सवेग के लिए सर्वस्व है, इसके पक्ष मे अभी तक प्रमाण उपस्थित नही हो सके है।

केनन, बार्ड, प्रभृति विद्वानो ने जानवरो पर प्रयोग करके सभी प्रमाणो को उपस्थित किया है जिनके आधार पर यह कहना मुश्किल है कि यह मनुष्य के लिए भी पूर्णत सत्य है। अपने प्रयोगो के आधार पर लेशले का भी यही कहना है कि यद्यपि केनन सिद्धान्त सवेग के कुछ पहलुओं की व्याख्या सतोषप्रद कर सकता है, लेकिन इसके द्वारा सभी पहलुओ की सतोषपूर्ण व्याख्या असम्भव है।

इस पक्ष मे जो औपचारिक प्रमाण उपस्थित किए गए है, वे भी सतोषप्रद नही है। इसलिए इस सिद्धान्त के सम्बन्ध मे यही कहना उचित जँचता है कि निस्सन्देह सवेगों के नियन्त्रण मे हाइपोथैलेमस का हाथ रहता है। लेकिन, इसके अतिरिक्त भी, नाडी-मडल के अन्य भागो का हाथ उनके नियन्त्रण मे कम नहीं रहता।

(३) प्रेरणात्मक सिद्धान्त (Motivational theory)

लीपर के पहले सभी विद्वानो का ऐसा दृष्टिकोण था कि सवेग के समय जो शारीरिक परिवर्त्तन और प्रकाशन होते है वे जीव को अव्यवस्थित हालत में कर देते है। वस्तुत,

जीवन में उनका कोई विशेष महत्त्व नही होता। कैनन ने अपने सिद्धान्त को आकस्मिक सिद्धात (Emergency theory) कहते हुए सवेग के अभियोजनात्मक महत्त्व का सकेत मात्र किया है। किन्तु, लीपर (Leeper) ने विभिन्न प्रयोगात्मक प्रमाणों को उपस्थित करते हुए सवेग को पूर्णत प्रेरणात्मक कहा है। इस सिद्धात के प्रतिपादकों का कहना है कि जिस प्रकार प्रेरणात्मक क्रियाओ का कोई ध्येयविशेष होता है, उसी प्रकार सवेगात्मक क्रियाओं का भी एक निश्चित ध्येय होता है। इसलिये किसी प्रकार की सवेगात्मक क्रिया किसी प्रेरणाविशेष से ही सचालित और निर्देशित होती है। दूसरे शब्दों मे, प्रेरणात्मक और सवेगात्मक क्रियाओ मे ध्येय के दृष्टिकोण से किसी प्रकार का अन्तर नही होता। अत सवेग और प्रेरणा अभिन्न स्वरूप के ही है।

अपने प्रेरणात्मक सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लीपर का कहना है कि सहानुभूतिक नाडीमडल से जो स्राव निकलता है वह सामान्यत शरीर को कठिन परिश्रम करने के लिए प्रेरित करता है और पराहानुभूतिक क्रियाये (Para sympathetic activities) शरीर के साधनो को सुरक्षित रखती है। जिस समय कोई भी वर्त्तमान परिस्थिति जीवन के लिए भयावह या सकटापन्न मालूम होती है, उस समय सहानुभूतिक मडल से अतिरिक्त जीवन-शक्ति (Extra energy) के स्राव से जो शारीरिक परिवर्त्तन होता है वह स्नायविक-परिश्रम को शीघ्रता से करने मे सहायक होता है। हृदय की गति तेज और तीव्र हो जाती है। रक्त क्रियाशील मांसपेशियों मे भेजे जाते है और यकृत (Lever) से चीनी (Glycogen) निकल कर रक्त मे मिल कर पशी कार्य (Muscular exertion) के लिए सुलभ हो जाती है। इस प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तन जीव को परिस्थिति से सामना करने या छुटकारा पाने के लिए अधिक रूप मे तत्पर कर देते है।

आकस्मिक परिस्थिति (Emergent situation) मे पडने पर जीव मे जो एड्रेनिन (Adrenine) नामक स्राव होता है वह रक्त-प्रवाह से मिल कर कई प्रकार का रासायनिक एव कार्य सबधी परिवर्त्तन ला देता है। जीव अपने को पहले से अधिक शक्तिशाली अनुभव करता है। इसलिए वह आकस्मिक परिस्थिति का सामना करने के लिए पूर्णत तैयार हो जाता है। इसके चलते मनुष्य सवेग के समय आशातीत साहस कर बैठता है जिसे देख सभी लोग आश्चर्यचकित हो जाते है। इसी प्रकार, सवेग के समय और भी जितने शारीरिक परिवर्त्तन होते है, वे सभी जीव के अभियोजन मे अत्यधिक सहायक सिद्ध होते है।

साँस गति का प्रधानत दो कार्य है। साँस गति फेफड़ों को (Lungs) खोल देती है जिससे रक्त और वायु के बीच विषैले तत्त्वों का विनिमय (Exchange) होता है। अर्थात्, रक्त के विषैले तत्त्व निकल जाते है और शुद्ध वायु फेफडों के द्वारा रक्त में प्रवेश करती है। इसका कार्य स्वरयत्र को कार्य करने के लिए वायु प्रदान करना है। जब जीव को आत्मरक्षा के लिए बहुत देर तक क्रिया करनी पडती है तो उस क्रिया भार के कारण वह थक जाता है। इस थकावट के प्रभाव को दूर करने के लिए अत्यधिक और जल्दी जल्दी ऑक्सीजन (Oxygen) की आवश्यकता पडती है। इस का सम्पादन अधिक अशों मे द्रुत (Rapid) एव गम्भीर (Deeper) साँस गति से होता है।

जो रक्त बड़ी नसो (Large veins) से हृदय में प्रवेश करते हैं उसी पर हृदय का कार्य (उत्पादन) निर्भर करता है। सवेग की हालत में बडी नसे हृदय में

बहुत तीव्र गति से रक्त को भेजती है जिससे इसका उत्पादन (Output) बढ़ जाता है और इस प्रकार, आकस्मिक परिस्थिति का सामना करने में जीव समर्थ होता है। रक्त प्रवाह की वृद्धि से ऑक्सीजन शरीर के सक्रिय भागों में शीघ्रता से पहुँच कर व्यर्थ उत्पादनों (Waste products) को निकाल फेंकते हैं।

संवेग के समय रक्त-चाप में जो परिवर्तन होते हैं उनका अभियोजनात्मक महत्त्व अधिक है। इसी प्रकार, रक्त के रासायनिक परिवर्तन भी अभियोजन में सहायक सिद्ध होते हैं जिनका विशद वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है।

विभिन्न प्रयोगात्मक प्रमाण इसके साक्षी हैं कि संवेग के समय पाचन क्रिया के अवरुद्ध होने से जीव आकस्मिक परिस्थिति का सामना अपनी पूरी शक्ति के साथ करता है। अतएव इस क्रिया की अवरुद्धता का भी अभियोजनात्मक महत्त्व है।

इसी प्रकार, संवेग के समय पसीने का निकलना भी [illegible] अभियोजन करने में मदद करता है। पसीने के द्वारा जल के साथ शरीर के [illegible] पदार्थ बाहर निकल जाते हैं और इस प्रकार पसीने का निकलना जीव का शरीर का तापमान (Temperature) सतुलित बनाए रखने में सहायक होता है। इस प्रकार, हम पाते हैं कि संवेग के समय जो जाठरिक (Visceral) परिवर्तन होते हैं उनका अभियोजनात्मक महत्त्व अत्यधिक है।

इसी तरह, विभिन्न परिवर्तनों और अभिव्यक्तियों का उल्लेख करते हुए लीपर ने उनके अभियोजनात्मक महत्त्व का व्यक्त करके संवेग का प्रेरणात्मक स्वरूप का कहा है। लेकिन, उसके सिद्धान्त की सार्थकता की विवेचना करने पर मालूम होगा कि इसमें कुछ अंशों में ही सत्यता है। साँप को देखकर भयभीत होने पर हम भाग जाते हैं और वह हमें नहीं काट पाता। कोई बच्चा शरारत करता है और हम क्रुद्ध होते हैं। वह क्रोध से डर कर शरारत करना बन्द कर देता है। दुःखी होकर रोने से दुःख का भार हल्का हो जाता है। इन दैनिक जीवन के उदाहरणों से स्पष्ट है कि संवेगात्मक क्रियाएँ ध्येय-युक्त होती हैं, अतः उनका अभियोजनात्मक महत्त्व है। लेकिन, किसी भी संवेगात्मक क्रिया से किसी ध्येय की पूर्ति उसी समय तक होती है जबतक कि संवेग सामान्य अवस्था में रहता है। प्रबल संवेग की हालत में व्यक्ति पूर्णतः पंगु हो जाता है, इसलिए वह कोई भी ऐसी क्रिया नहीं कर पाता जो उसके अभियोजन में सहायक सिद्ध हो सके। इस कथन की पुष्टि वर्त्तमान में किये गए कई अध्ययनों से भी होती है। प्रेरणात्मक सिद्धान्त को खण्डित करने के लिये इ० मीरा (E. Mira) ने मनुष्यों के भय संवेग का गंभीर अध्ययन करके भय की छः विकासात्मक अवस्थाओं को व्यक्त किया है। उसी अध्ययन में उसने यह भी स्पष्ट किया है कि भय ज्यों-ज्यों विभिन्न अवस्थाओं से होकर विकसित होता है किस तरह उच्च नाड़ीकेन्द्रों का विलियन (Dissolution) हो जाता है। इन विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं का निरीक्षण करना सभी व्यक्तियों में असम्भव है, क्योंकि इस पर शरीर-रचना और सामाजिक अंगों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। लेकिन, सूक्ष्म अध्ययन के फलस्वरूप मीरा (Mira) ने निम्नांकित छः अवस्थाओं का बहुत ही अच्छाई के साथ व्यक्त किया है।

(क) दूरदर्शिता और आत्म-संयम (Prudence and self restraint)
दूरदर्शिता और आत्म नियन्त्रण भय के निरोधात्मक प्रभाव (Inhibitory effect) की

प्रारम्भिक अवस्था की अभिव्यक्ति है। व्यक्ति शायद ही कभी इनके महत्त्व और सार्थकता को जानने मे समर्थ होता है, लेकिन कुशल निरीक्षक इसके स्वरूप का अनुमान आसानी से कर लेता है।

(ख) ध्यानावस्था और चौकसी (Concentration and caution) ध्यानावस्था और चौकसी भय की दूसरी अवस्था है जो पहली से कुछ विकसित है। इस अवस्था मे व्यक्ति मे की हुई क्रियाओं की पुनरावृत्ति करने या मानसिक चिंतन करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। ऐसे व्यक्ति का अन्तर्निरीक्षण लेने पर मालूम होता है कि इस अवस्था मे व्यक्ति के मन मे कुछ पहले के विचार काम करते है और इसमे निराधार चिंता का भी साम्राज्य रहता है। उसे जो कार्य करने के लिए पहले से निश्चित रहता है उसे भी सफलतापूर्वक करने मे वह अपनी शक्ति मे कभी कभी कमी का अनुभव करता है। इसलिए वह उस कार्य को करने मे भी डरता है।

(ग) आशंका और शंका (Apprehension and alarm) भय विकास की आशंका शंकावस्था मे व्यक्ति की भावात्मक स्थिति के स्वरूप के संबंध मे किसी प्रकार का सन्देह नही रह जाता। उसका चेतना-क्षेत्र सीमित हो जाता है। देखने में वह अनावस्थित (Absent minded) और असावधान प्रतीत होता है। उसकी क्रियाएँ कुछ अंशो मे अव्यवस्थित हो जाती है। गौण क्रियाएँ अतिरंजित और कुशल गति संघातो (Patterns of skilled movement) मे कुछ अंशो मे विच्छिन्नता (Disruption) आ जाती है। कभी कभी व्यक्तिविशेष मे इस अवस्था मे प्रकम्पन (Tremors) भी दृष्टिगोचर होता है। बृहन्मस्तिष्क क्रिया (Cortical functions) की क्षति के फलस्वरूप उच्च कोटि के मानसिक कौशल, जिनके लिए क्रियात्मक नियन्त्रण (Motor control) और सूक्ष्म निर्णय की आवश्यकता होती है, विनष्ट होने लगते है।

(घ) चिंता या आकुलता (Anxiety or Anguish) —चिंता अथवा आकुलता विकास क्रम के दृष्टिकोण से भय विकास की चौथी अवस्था है। व्यक्ति भय से इस प्रकार स्तंभित हो जाता है कि उसके व्यवहार की क्रियात्मक और प्रयोजनात्मक इकाई ही विनष्ट हो जाती है। उसमे काँपने (Trembling), अंग संकोचन (Spasm), अव्यवस्थित गति (Dissociated movements) तथा स्थिर हाव भाव (Stereotyped gestures) परिलक्षित होते है। अत्यधिक सहानुभूतिक नाडी मंडलीय स्राव के कारण जाठरिक परिवर्त्तन इतने शक्तिशाली होते है कि व्यक्ति का हृदय तेजी से धडकने लगता है, शरीर से अधिक पसीना छूटने लगता है और पेट मे उपद्रव होने लगता है। ऐसी अवस्था मे व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसकी आत्म-नियन्त्रण-शक्ति नष्ट हो गई है।

(च) आतंक (Panic) —आतंक भय विकास की वह अवस्था है जिसमे व्यक्ति का व्यवहार अन्तरमस्तिष्क-केन्द्रों (Diencephalic centres) से संचालित होता है। इस अवस्था मे व्यक्ति मे अनियन्त्रित क्रियाएँ होती है। वह किसी भी उत्तेजना की प्रतिक्रिया हिंसात्मक वृत्ति से कर सकता है। आत्मगत दृष्टिकोण से इस अवस्था का अनुभव रात्रि अश्वा (Nightmare) के समान होता है। जब मनुष्य पुनः सामान्य होता है तो उस समय इस अवस्था के अनुभवों को या तो पूर्णतः भूल जाता है या यदा-कदा कुछ अंशों को स्वप्न की घटनाओं के समान याद करने मे भी समर्थ होता है।

(६) त्रास या खौफ (Terror) —त्रास या खौफ भय विकास की अन्तिम अवस्था है जिसमे सवेग का निरोधात्मक प्रभाव (Inhibitory effect) पूर्णरूपेण परिलक्षित होता है। व्यक्ति पूर्णत श्रात (Exhausted) और गति-हीन हो जाता है। जडता (Stuporous) की यह अवस्था कुछ समय तक बनी रह सकती है। कुछ व्यक्तियो मे यह अवस्था सप्ताह या महीनो तक भी देखी गई है।

इस उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भय विकास मे निरोध (Inhibition) क्रमश इतना बढ जाता है कि उच्च नाडी केन्द्र की क्रियाएँ अवरुद्ध हो जाती है और सामान्य अवस्था में अवरुद्ध निम्न स्तर की क्रियाएँ आविर्भूत हो जाती है। यों तो इस अतिम अवस्था में व्यक्ति जीवित रहता है, किन्तु वह पूर्णत क्रियाशून्य या निष्क्रिय रहता है।

अब प्रश्न यह है कि यह निरोध सभी सवेगो मे पाया जाता है या भय मे ही? इसके उत्तर-स्वरूप हम यही कहना पर्याप्त समझते है कि यद्यपि उपर्युक्त सभी अवस्थाएँ क्रमश सभी सवेगों मे देखना कुछ कठिन है, लेकिन क्रोध मे इसका विश्लेषणात्मक अध्ययन आसानी से किया जा सकता है।

इस प्रकार, हम देखते है कि सवेग के प्रकाशनों और परिवर्त्तनो का अभियोजनात्मक महत्त्व अवश्य है, लेकिन यह महत्त्व उसी समय तक रहता है जबतक कि सवेग सामान्य अवस्था मे रहता है। चाहे कोई भी सवेग क्यो न हो, अतिम अवस्था मे वह जीव को पगु बना देता है और वह आकस्मिक परिस्थिति मे अभियोजन करने में पूर्णत असमर्थ होता है। इस तरह, प्रेरणात्मक सिद्धान्त भी आंशिक सत्य का ही प्रतिपादन करता है, पूर्ण सत्य का नही। इसीलिए किसी विदेशी मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि "सवेग से आबद्ध जठरिक परिवर्त्तन जैव महत्त्व के होते है। लेकिन, सवेग की आन्तिक अवस्था मे व्यक्ति मे जो प्रतिक्रियाएँ होती है उन्हे हम किसी भी परिस्थिति मे अभियोजनात्मक (Adaptive) नहीं कह सकते[1]।"

(४) सक्रियकरण-सिद्धान्त (Activation theory)

उपर्युक्त तथा अन्य सवेग-सिद्धान्तो मे जितने तथ्यो का उद्घाटन किया गया है उन सबको मस्तिष्क तरगो के अध्ययन से प्राप्त तथ्यो को समन्वित करते हुए सक्रिय करण सिद्धात का प्रतिपादन हुआ है। यह सवेग का नवीनतम सिद्धात इस तथ्य को स्वीकार करता है कि सवेग मे सहानुभूतिक नाड़ी-मण्डल अथवा हाइपोथैलेमस का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। यह सवेग के लिये जेम्स लाज द्वारा प्रतिपादित शारीरिक प्रकाशन और परिवर्त्तनों को भी आवश्यक मानता है, किन्तु इन तथ्यो को स्वीकार करते हुए भी यह सवेग में कारटेक्स (Cortex) की सक्रियता पर अत्यधिक जोर देता है। इसका प्रतिपादन, विभिन्न अवस्थाओं मे मस्तिष्क तरग के अध्ययनो तथा शरीरविज्ञान के अनुसधानो के आधार पर, किया गया है। यह सामान्य तथा सवेगात्मक अवस्थाओ मे मस्तिष्क तरगों की

१ Primary Visceral changes associated with emotion are of biological service But the recent studies of emotional expression in men have shown that more extreme state of emotion leads to responses which under no circumstances can be called adaptive "

भिन्नता को प्रदर्शित करते हुए सवेग मे मस्तिष्क तरग की क्रियाओं के महत्त्व को स्वीकार करता है।

इस सिद्धात के साराश को थोड़े शब्दों मे कहा जा सकता है कि इसके अनुसार सवेग मे जीव का कोई अगविशेष ही सक्रिय नही रहता, बल्कि सम्पूर्ण जीव सक्रिय रहता है। दूसरे शब्दों मे, यह मस्तिष्क के किसी एक भाग के महत्त्व को स्वीकार करते हुए दूसरे भागों को महत्त्वहीन व्यक्त नही करता। बल्कि, इसके अनुसार सवेगात्मक व्यवहारों की व्याख्या मस्तिष्क के विभिन्न भागों की क्रियाओं के समन्वय से ही हो सकती है। मस्तिष्क के विभिन्न भागो की अन्तर्प्रतिक्रियाओं (Interactions) को समझे बिना किसी प्रकार के सवेगात्मक व्यवहार को समझना सभव नही है।

इस सिद्धान्त के गुण दोषों का विवेचन करने से मालूम होगा कि इसमे अब तक प्राप्त सभी तथ्यों का समन्वय तो किया ही गया है, साथ साथ सवेग मे मस्तिष्क के सभी भागो की क्रियाओ के महत्त्व को स्वीकार करते हुए नये आधार पर सवेगात्मक व्यवहारों की व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। इस तरह, यह सिद्धान्त सवेग के सभी पहलुओं की व्याख्या सतोषप्रद करने की कोशिश करता है। लेकिन, चूँकि इसका आधार पूर्णत दैहिक है और अभी नित्य प्रति इस दिशा मे अध्ययन हो रहे हैं, इसलिये नये तथ्यों के प्रकाश मे आने पर एक ऐसे नये सवेग सिद्धान्त के प्रतिपादन की आवश्यकता है जिसमें सवेग के दैहिक और मनोवैज्ञानिक दोनों पहलुओं का समन्वय अच्छी तरह हो सके। ऐसे सिद्धान्त के प्रकाश में आने पर निश्चय ही सवेगसबन्धी विवाद समाप्त होगा और सभी लोग वास्तविकता को जान सकेंगे।

संवेग की असामान्यताएँ

असामान्य सवेगात्मक अवस्थाएँ दो प्रकार की होती है। कुछ अवस्थाएँ तो उन शारीरिक अगों की खराबियो के कारण होती है जिनका सवेग-नियन्त्रण मे हाथ रहता है। किंतु, कुछ अवस्थाओं के कारण शारीरिक नही होते। ऐसे सवेगात्मक व्यतिक्रम मनुष्य मे असतुलन के कारण उत्पन्न होते है। प्राय ये दोनों कारण सवेगात्मक व्यतिक्रम मे साथ साथ परिलक्षित होता है।

सवेग सबधी ऐसे व्यतिक्रम, जिनमे शारीरिक कारण का अभाव रहता है, क्रियात्मक व्यतिक्रम (Functional disorders) के नाम से प्रख्यात है। विकृत भय (Phobia) अथवा आतक इसी वर्ग का व्यतिक्रम है। जो मनुष्य इस दोष से युक्त रहता है वह अकारण भयात्मक प्रतिक्रियाओं का प्रदर्शन करता रहता है। इस दोष के कारण वह अपने सभी कार्यों को निर्भीकतापूर्वक करने मे असफल होता है। कुछ भय तो ऐसे होते है जिनका कारण भी नहीं ज्ञात होता। लेखक एक महाविद्यालय के एक ऐसे शिक्षक को जानता है जिनमें यह सवेगात्मक दोष विद्यमान है। उन्हें अपने इस भय का कारण अभी तक मालूम नही हो सका है, किंतु वे एकान्त सवारी या ऊँचे स्थानों पर बैठने मे भयभीत होते है। उनमें यह दोष बहुत हाल में ही आविर्भूत हुआ है।

"चिंता" (Anxiety) की गणना भी इसी कोटि मे है। जिसमें यह दोष पाया जाता है वह बराबर इस प्रकार से चिंतित रहता है कि अपनी वर्त्तमान परिस्थिति में

अभियोजित होने मे भी वह असफल रहता है। ऐसे ही दोष के कारण बहुत से विद्यार्थी अपनी परीक्षा की तैयारी करने मे असमर्थ होने के कारण परीक्षा देने से हाथ धो बैठते है। वस्तुत यह दोष मनुष्य को जीवन-यात्रा मे असफल बना देता है। इसका घातक परिणाम मनुष्य की अनेक दैहिक क्रियाओ पर देखा जाता है। किंतु, इसके प्रभाव मे मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं मे भी उपद्रव देखने मे आते है। ऐसे मनुष्य को इतना कुछ भी ज्ञान नही रहता कि किस परिस्थिति मे अभियोजन की कौन सी प्रतिक्रिया सफल होगी। अभियोजनार्थ अपनी शक्ति का समुचित उपयोग न करने के कारण उसका अभियोजन पूर्णत अनुपयुक्त होता है।

शारीरिक रचनासबन्धी दोषो (Structural disorders) से उत्पन्न सवेगात्मक असामान्यताओ का अध्ययन करने से विदित होता है कि नाडी मे किसी प्रकार की क्षति होने से सवेगात्मक उपद्रव उत्पन्न होते है। आन्तरिक मस्तिष्क अचल अथवा हाइपोथैलेमस मे किसी प्रकार की सूजन, रोने और हँसने का व्यवहार उत्पन्न करता है। ग्रन्थियो की अनुचित कार्यवाहियों के कारण सवेगात्मक असतुलन देखने मे आता है। किसी प्रकार वृहन्मस्तिष्क के अचल के कार्यो को कम कर देने पर मनुष्य ऐसे व्यवहारो का प्रदर्शन करने लगता है जिनका प्रदर्शन उस अचल की कार्यवाही की उपस्थिति मे कदापि नही करता।

नाडीमडल की खराबियो के ही कारण मनुष्य मे अनावश्यक और निराधार प्रसन्नता, विश्वास, आदि देखने में आते है। इसी गडबडी के कारण कुछ ऐसे मानसिक रोगी भी देखने मे आते है जिन पर किसी प्रकार का सवेगात्मक प्रभाव नही पडता। ऐसे लोग किसी प्रकार के सुख दु ख से उदासीन रहते है और बिना किसी हिचक के हत्या ऐसा अपराध भी कर देते है। अभिप्राय यह कि सवेगात्मक दोष कई प्रकार मे देखे जाते है। जैसा कि हमलोग जानते है, सवेग मे सारा शरीर सन्निहित रहता है। इसलिए ऐसी असामान्य अवस्थाओं का असर अन्य शारीरिक क्रियाओ पर भी अधिक मात्रा मे पडता है जिससे मनुष्य का स्वास्थ्य दयनीय हो जाता है। अत ऐसी असामान्यताओ से बचने के लिए मानसिक और शारीरिक जीवन को सुरक्षित रखना आवश्यक है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

प्रतिक्रिया-काल (Reaction Time)

व्याख्या

किसी उत्तेजना के प्रति हमलोग जो क्रिया करते है उसे मनोवैज्ञानिक भाषा मे प्रतिक्रिया कहते है। उत्तेजना के उपस्थित होने और प्रतिक्रिया करने के बीच मे जितना समय लगता है उसे प्रतिक्रिया काल कहते है। प्रतिक्रिया काल का सामान्य जीवन के उदाहरण से अच्छी तरह समझा जा सकता है। आप एक बच्चे को पुचकारते है और वह हँस देता है। यहाँ पुचकारना उत्तेजना हुआ और बच्चे का हँसना प्रतिक्रिया। आप के पुचकारने और बच्चे के हँसने के बीच जो समय व्यतीत हुआ उसे प्रतिक्रिया काल कहेगे। प्रतिक्रिया काल का अध्ययन मानव-जीवन मे बडा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। इसमे वैयक्तिक भिन्नता होती है और फलत कर्मचारी निर्वाचन मे कभी कभी इसका बडा ध्यान रक्खा जाता है। किसी काम मे शीघ्र प्रतिक्रिया करनी होती है और किसी मे सावधानी से धीरे धीरे प्रतिक्रिया करना आवश्यक होता है। दोनो ही स्थितियों मे तदनुकूल प्रतिक्रिया करनेवाले व्यक्तियो के अभाव में कार्य और व्यक्ति की हानि होती है और कभी कभी दुर्घटनाएँ भी हो जाया करती है। प्रतिक्रिया काल के अध्ययन के फलस्वरूप व्यक्ति की यह योग्यता निर्वाचन के समय माप ली जाती है और फलत समुचित व्यक्ति का निर्वाचन सभव हो पाता है। इस तरह, अन्य दृष्टिकोणों से भी यह अध्ययन बडा महत्त्वपूर्ण है जिसके सबन्ध मे हम आगे उपादेयता की चर्चा करते समय विचार करेंगे।

प्रतिक्रिया काल के अन्तर्गत प्रयोज्य जो कुछ सोचता है उसे प्रतिक्रिया-चेतना (Reaction Consciousness) कहते है। प्रतिक्रिया काल का अध्ययन मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की सुव्यवस्थित अवस्था मे विभिन्न यन्त्रों की सहायता से होता है। प्रयोक्ता प्रयोज्य को निश्चित निर्देशनों द्वारा यह व्यक्त कर देता है कि उसे अमुक प्रकार की उत्तेजना की अमुक प्रकार की प्रतिक्रिया करनी होगी। प्रयोग की सरलता या जटिलता उत्तेजना और प्रतिक्रिया के स्वरूप और प्रकार पर निर्भर करती है। आगे इन पर विशेष प्रकाश डाला जायेगा।

प्रतिक्रिया-काल के प्रारम्भिक अध्ययन

आज से सैकडों वर्ष पूर्व यह ज्योतिषशास्त्रियों (Astronomers) और दैहिक वैज्ञानिकों के अध्ययन का विषय था। फिर इसे भौतिकविज्ञान का एक आवश्यक पहलू माना गया। तत्पश्चात् इसे मनोवैज्ञानिकों का आश्रय प्राप्त हुआ और मनोवैज्ञानिकों ने इसके विभिन्न पहलुओं पर अन्वेषण किया।

ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत प्रतिक्रिया-काल की खोज सर्वप्रथम ज्योतिष के पण्डितों ने की। ग्रीनविच (Greenwitch) की वेधशाला (Observatory) के प्रधान ने अपने एक सहायक निरीक्षक को सन् १७९६ ई० में उसके पद से इसलिए हटा दिया कि वह देर से प्रतिक्रिया किया करता था। लेकिन, इस देर से प्रतिक्रिया करने का अर्थ यह नही कि उस समय कोई मापदड या प्रमाण (Norm) था जिससे तुलना करके उसकी प्रतिक्रिया धीमी कही गयी थी। उसने सहायक की प्रतिक्रिया की तुलना अपनी प्रतिक्रिया से की थी और उसने अपने प्रतिक्रिया काल को ही प्रामाणिक (Standard) माना था। उस समय प्रतिक्रिया-काल न कह कर इसे व्यक्तिगत समीकरण (Personal equation) कहा जाता था। इस घटना के बहुत दिनो के बाद जर्मनी के प्रख्यात ज्योतिषशास्त्र के विद्वान बेसेल (Bessel) ने सन् १८२२ ई० मे अनेक निरीक्षकों के सक्रमण काल (Transit time) का अध्ययन करके यह व्यक्त किया कि सभी व्यक्तियों के सक्रमण काल में अन्तर होता है। बाद मे यह भी स्पष्ट हो गया कि नक्षत्रों के सक्रमण काल को अकित करने मे भिन्नता, नक्षत्र (Star), व्यक्तिविशेष, आदि कई अगों के फलस्वरूप होती है। अपने प्रदत्तों की यथार्थता के लिए ज्योतिषियों ने प्रतिक्रिया-काल मापन-विध, जिसे क्रोनोग्राफिक विधि (Chronographic method) भी कहते है, का व्यवहार किया है। मिचेल (Mitchel) नामक अमरीकी ज्योतिषी ने सन् १८५८ ई० मे सक्रमण काल को अकित करने के लिए एक यत्र विशेष का निर्माण किया। इसके अतिरिक्त भी ज्योतिषशास्त्र के पण्डितो ने कई विधियो का व्यवहार किया जिनका उपयोग मनोवैज्ञानिक जगत मे हो रहा है। प्रतिक्रिया काल के अध्ययन के लिए स्विटजरलैण्डनिवासी हिर्श (Hirsch) नामक ज्योतिषी का नाम चिरस्मरणीय है जिसने हिप (Hipp) नामक इजीनियर की सहायता कर उसे हिपकाल मापक यत्र (Hipp chronoscope) का निर्माण करने को प्रोत्साहित किया। उसने स्वय भी प्रतिक्रिया काल का अध्ययन करने मे इस यत्र का व्यवहार विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओ के साथ किया। तब से आज तक प्रतिक्रिया काल निकालने का यह एक प्रामाणिक यत्र माना जाता है।

दैहिकविज्ञान के अन्तर्गत दैहिक वैज्ञानिकों में सर्वप्रथम हेल्महोल्ट्ज का कार्य उल्लेखनीय है। उसने मेढक के ऊपर नाड़ी प्रवहन गति (Speed of nerve Conduction) का अध्ययन सन् १८५० ई० मे प्रतिक्रिया काल-विधि (Reaction time method) के द्वारा किया। बाद मे उसने इस विधि का व्यवहार मनुष्यों के नाड़ी प्रवहन (Nerve conduction) के अध्ययन मे भी किया। उसे अपने प्रयोगो से यह मालूम हुआ कि मेढक की नाड़ी प्रवहन गति से मनुष्य की नाड़ी प्रवहन गति दूनी होती है। किन्तु, बाद मे वह इस निश्चय पर पहुँचा कि प्रतिक्रिया काल विधि द्वारा नाड़ी-प्रवहन गति का अध्ययन समुचित रूप से नही किया जा सकता। केटिल (Cattell) तथा डॉली (Dolley) ने भी अपने प्रयोगों के आधार पर यही व्यक्त किया कि इस विधि से मनुष्य की नाड़ी-प्रवहन-गति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना असभव है। किन्तु, बाद में दैहिकविज्ञान वेत्ताओं ने अन्य विधियों से मनुष्य की नाड़ी प्रवहन गति का अध्ययन करके अपना निश्चयात्मक निष्कर्ष देते हुए उसकी गति भी प्रति सेकण्ड व्यक्त की।

मनोविज्ञान के अन्तर्गत सबसे पहले डोण्डर्स (Donders) तथा डे जेगर ने मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिये सरल (Simple) तथा जटिल (Complex)

प्रतिक्रिया-विधियों का व्यवहार किया। मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन द्वारा उनका एक मात्र ध्येय उपर्युक्त दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक अंगों को जानना था। डोण्डर्स ने सरल तथा जटिल दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया। सरल प्रतिक्रिया का अध्ययन करने के लिय उसने प्रयोज्य के समक्ष एक ही उत्तेजना (शब्द या प्रकाश) उपस्थित की और उसकी प्रतिक्रिया करने का ढग भी एक ही था। जटिल प्रतिक्रिया-काल (Complex reaction time) में दो या दो से अधिक उत्तेजनाओं का व्यवहार किया गया और प्रयोज्य को एक ही उत्तेजना की प्रतिक्रिया करने का निर्देशन दिया गया या दोनों उत्तेजनाओं के प्रति विभिन्न प्रतिक्रियाओं को करने का निर्देशन था। जटिल प्रतिक्रिया को भी उसने दो श्रेणियों मे बाँटा—निर्णय प्रतिक्रिया (Discrimination reaction) और रुचि प्रतिक्रिया (Choice reaction)। सरल प्रतिक्रिया को उसने 'अ प्रतिक्रिया' (a-Reaction) के नाम से व्यक्त किया। निर्णय-प्रतिक्रिया और रुचि प्रतिक्रिया को उसने 'ब प्रतिक्रिया' (b Reaction) का नाम दिया। दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करने के बाद वह इस निर्णय पर पहुँचा कि 'ब प्रतिक्रिया' मे 'अ प्रतिक्रिया' की अपेक्षा ६६ मिली सेकण्ड अधिक समय लगता है।

उसके अनुसार, यह ६६ मि से अधिक समय जटिल प्रतिक्रिया में रुचि (Choice) और निर्णय (Discrimination) मे व्यय होता है। बाद मे उसने निर्णय और रुचि प्रतिक्रिया की प्रक्रियाओं को अलग अलग करने के लिए रुचि प्रतिक्रया काल को विलुप्त (Eliminate) करने का प्रयास किया। इसके लिए वह कई उत्तेजनाओं को उपस्थित करता था, किन्तु प्रयोज्य को प्रतिक्रिया सिर्फ एक ही उत्तेजना की एक निश्चित रूप मे करनी होती थी। इस प्रकार की प्रतिक्रिया को उसने 'स प्रतिक्रिया' (c Reaction) का नाम दिया। इस प्रतिक्रिया और सरल प्रतिक्रिया मे सिर्फ इतना ही अन्तर दृष्टिगोचर होता है कि स प्रतिक्रिया मे कुछ उत्तेजनाओं मे से किसी एक की ही प्रतिक्रिया किसी विशेष ढग से करनी होती है, जबकि सरल प्रतिक्रिया मे एक ही उत्तेजना निरतर उपस्थित की जाती है और उसकी प्रतिक्रिया किसी एक ढग से ही होती है। विधि की सार्थकता को देखने के लिए डोण्डर्स ने का (Ka), के (Ke), की (Ki), को (Ko) और कु (Ku) ध्वनियों के साथ अ, ब तथा स प्रतिक्रिया कालों का अध्ययन किया। अ प्रतिक्रिया काल मे उत्तेजना बराबर 'की' (Ki) की और प्रतिक्रिया भी उसी ध्वनि से करनी होती थी। ब प्रतिक्रिया-काल निकालने के लिए उपर्युक्त पाँचों शब्दों मे से जिस किसी का भी उच्चारण उत्तेजना रूप मे होता था उसी से प्रतिक्रिया भी करनी होती थी। स-प्रतिक्रिया काल को निकालने के लिए भी कोई उत्तेजना दे दी जाती थी, किन्तु प्रतिक्रिया 'की' की करनी होती थी। यहाँ उस प्रयोग के प्रतिक्रिया-कालों का उल्लेख कर देना अप्रसागिक नही होगा। उसके प्रयोग मे अ-प्रतिक्रिया-काल १९६७ मि से, ब प्रतिक्रिया काल २८९७ मि से और स प्रतिक्रिया काल २८३७ मि. से था। स प्रतिक्रिया-काल मे से अ प्रतिक्रिया-काल को निकाल देने पर जो समय बचता है, वह उसके अनुसार 'निर्णय' मे लगता है और ब प्रतिक्रिया काल मे से स प्रतिक्रिया को निकालने पर जो समय अवशेष रहता है, वह रुचि प्रतिक्रिया काल या क्रियात्मक चयन (Motor Selection) काल होता है। डोण्डर्स की उपर्युक्त प्रयोग विधि दो तथ्यों पर आधारित है। पहला दृष्टिकोण यह है कि स-प्रतिक्रिया मे रुचि या क्रियात्मक चयन-प्रक्रिया सम्मिलित

ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत प्रतिक्रिया-काल की खोज सर्वप्रथम ज्योतिष के पण्डितों ने की। ग्रीनविच (Greenwitch) की वेधशाला (Observatory) के प्रधान ने अपने एक सहायक निरीक्षक को सन् १७९६ ई० में उसके पद से इसलिए हटा दिया कि वह देर से प्रतिक्रिया किया करता था। लेकिन, इस देर से प्रतिक्रिया करने का अर्थ यह नहीं कि उस समय कोई मापदण्ड या प्रमाण (Norm) था जिससे तुलना करके उसकी प्रतिक्रिया धीमी कही गयी थी। उसने सहायक की प्रतिक्रिया की तुलना अपनी प्रतिक्रिया से की थी और उसने अपने प्रतिक्रिया काल को ही प्रामाणिक (Standard) माना था। उस समय प्रतिक्रिया-काल न कह कर इसे व्यक्तिगत समीकरण (Personal equation) कहा जाता था। इस घटना के बहुत दिनों के बाद जर्मनी के प्रख्यात ज्योतिषशास्त्र के विद्वान बेसेल (Bessel) ने सन् १८२२ ई० में अनेक निरीक्षकों के संक्रमण-काल (Transit time) का अध्ययन करके यह व्यक्त किया कि सभी व्यक्तियों के संक्रमण काल में अन्तर होता है। बाद में यह भी स्पष्ट हो गया कि नक्षत्रों के संक्रमण काल को अंकित करने में भिन्नता, नक्षत्र (Star), व्यक्तिविशेष, आदि कई अंगों के फलस्वरूप होती है। अपने प्रदत्तों की यथार्थता के लिए ज्योतिषियों ने प्रतिक्रिया-काल मापन विधि, जिसे क्रोनोग्राफिक विधि (Chronographic method) भी कहते हैं, का व्यवहार किया है। मिचेल (Mitchel) नामक अमरीकी ज्योतिषी ने सन् १८५८ ई० में संक्रमण काल को अंकित करने के लिए एक यन्त्र विशेष का निर्माण किया। इसके अतिरिक्त भी ज्योतिषशास्त्र के पण्डितों ने कई विधियों का व्यवहार किया जिनका उपयोग मनोवैज्ञानिक जगत में हो रहा है। प्रतिक्रिया काल के अध्ययन के लिए स्विटजरलैण्डनिवासी हिर्श (Hirsch) नामक ज्योतिषी का नाम चिरस्मरणीय है जिसने हिप (Hipp) नामक इंजीनियर की सहायता कर उसे हिपकाल मापक यन्त्र (Hipp chronoscope) का निर्माण करने को प्रोत्साहित किया। उसने स्वयं भी प्रतिक्रिया काल का अध्ययन करने में इस यन्त्र का व्यवहार विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं के साथ किया। तब से आज तक प्रतिक्रिया-काल निकालने का यह एक प्रामाणिक यन्त्र माना जाता है।

दैहिकविज्ञान के अन्तर्गत दैहिक वैज्ञानिकों में सर्वप्रथम हेल्महोल्ट्ज का कार्य उल्लेखनीय है। उसने मेढक के ऊपर नाड़ी प्रवहन गति (Speed of nerve Conduction) का अध्ययन सन् १८५० ई० में प्रतिक्रिया काल-विधि (Reaction time method) के द्वारा किया। बाद में उसने इस विधि का व्यवहार मनुष्यों के नाड़ी प्रवहन (Nerve conduction) के अध्ययन में भी किया। उस अपने प्रयोगों से यह मालूम हुआ कि मेढक की नाड़ी प्रवहन गति से मनुष्य की नाड़ी प्रवहन गति दूनी होती है। किन्तु, बाद में वह इस निश्चय पर पहुँचा कि प्रतिक्रिया काल विधि द्वारा नाड़ी प्रवहन गति का अध्ययन समुचित रूप से नहीं किया जा सकता। केटिल (Cattell) तथा डॉली (Dolley) ने भी अपने प्रयोगों के आधार पर यही व्यक्त किया कि इस विधि से मनुष्य की नाड़ी प्रवहन गति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है। किन्तु, बाद में दैहिकविज्ञान-वेत्ताओं ने अन्य विधियों से मनुष्य की नाड़ी प्रवहन गति का अध्ययन करके अपना निश्चयात्मक निष्कर्ष देते हुए उसकी गति भी प्रति सेकण्ड व्यक्त की।

मनोविज्ञान के अन्तर्गत सबसे पहले डोण्डर्स (Donders) तथा दे जेगर ने मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिये सरल (Simple) तथा जटिल (Complex)

प्रतिक्रिया विधियों का व्यवहार किया। मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन द्वारा उनका एक मात्र ध्येय उपर्युक्त दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक अंगों को जानना था। डोण्डर्स ने सरल तथा जटिल दोनो प्रकार की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया। सरल प्रतिक्रिया का अध्ययन करने के लिय उसने प्रयोज्य के समक्ष एक ही उत्तेजना (शब्द या प्रकाश) उपस्थित की और उसकी प्रतिक्रिया करने का ढग भी एक ही था। जटिल प्रतिक्रिया-काल (Complex reaction time) में दो या दो से अधिक उत्तेजनाओं का व्यवहार किया गया और प्रयोज्य को एक ही उत्तेजना की प्रतिक्रिया करने का निर्देशन दिया गया या दोनों उत्तेजनाओं के प्रति विभिन्न प्रतिक्रियाओं को करने का निर्देशन था। जटिल प्रतिक्रिया को भी उसने दो श्रेणियों मे बाँटा—निर्णय प्रतिक्रिया (Discrimination reaction) और रुचि प्रतिक्रिया (Choice reaction)। सरल प्रतिक्रिया को उसने 'अ प्रतिक्रिया' (a-Reaction) के नाम से व्यक्त किया। निर्णय-प्रतिक्रिया और रुचि प्रतिक्रिया को उसने 'ब प्रतिक्रिया' (b Reaction) का नाम दिया। दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करने के बाद वह इस निर्णय पर पहुँचा कि 'ब प्रतिक्रिया' मे 'अ प्रतिक्रिया' की अपेक्षा ६६ मिली सेकण्ड अधिक समय लगता है।

उसके अनुसार, यह ६६ मि से अधिक समय जटिल प्रतिक्रिया में रुचि (Choice) और निर्णय (Discrimination) मे व्यय होता है। बाद मे उसने निर्णय और रुचि प्रतिक्रिया की प्रक्रियाओं को अलग अलग करने के लिये रुचि प्रतिक्रिया काल को विलुप्त (Eliminate) करने का प्रयास किया। इसके लिए वह कई उत्तेजनाओं को उपस्थित करता था, किन्तु प्रयोज्य को प्रतिक्रिया सिर्फ एक ही उत्तेजना की एक निश्चित रूप मे करनी होती थी। इस प्रकार की प्रतिक्रिया को उसने 'स प्रतिक्रिया' (c Reaction) का नाम दिया। इस प्रतिक्रिया और सरल प्रतिक्रिया मे सिर्फ इतना ही अन्तर दृष्टिगोचर होता है कि स-प्रतिक्रिया मे कुछ उत्तेजनाओं मे से किसी एक की ही प्रतिक्रिया किसी विशेष ढग से करनी होती है, जबकि सरल प्रतिक्रिया मे एक ही उत्तेजना निरतर उपस्थित की जाती है और उसकी प्रतिक्रिया किसी एक ढग से ही होती है। विधि की सार्थकता को देखने के लिए डोण्डर्स ने का (Ka), के (Ke), की (Ki), को (Ko) और कू (Ku) ध्वनियों के साथ अ, ब तथा स प्रतिक्रिया-कालों का अध्ययन किया। अ प्रतिक्रिया काल मे उत्तेजना बराबर 'की' (Ki) की और प्रतिक्रिया भी उसी ध्वनि से करनी होती थी। ब प्रतिक्रिया-काल निकालने के लिए उपर्युक्त पाँचों शब्दों मे से जिस किसी का भी उच्चारण उत्तेजना रूप मे होता था उसी से प्रतिक्रिया भी करनी होती थी। स-प्रतिक्रिया काल को निकालने के लिए भी कोई उत्तेजना दे दी जाती थी, किन्तु प्रतिक्रिया 'की' की करनी होती थी। यहाँ उस प्रयोग के प्रतिक्रिया-कालों का उल्लेख कर देना अप्रसागिक नही होगा। उसके प्रयोग मे अ-प्रतिक्रिया-काल १९६७ मि से, ब प्रतिक्रिया काल २८९७ मि से और स प्रतिक्रिया काल २८३७ मि से था। स प्रतिक्रिया काल मे से अ प्रतिक्रिया-काल को निकाल देने पर जो समय बचता है, वह उसके अनुसार 'निर्णय' मे लगता है और ब प्रतिक्रिया काल मे से स प्रतिक्रिया को निकालने पर जो समय अवशेष रहता है, वह रुचि प्रतिक्रिया काल या क्रियात्मक चयन (Motor Selection)-काल होता है। डोण्डर्स की उपर्युक्त प्रयोग विधि दो तथ्यों पर आधारित है। पहला दृष्टिकोण यह है कि स-प्रतिक्रिया मे रुचि या क्रियात्मक चयन-प्रक्रिया सम्मिलित

नही रहती। जटिल प्रतिक्रिया मे साधारण प्रतिक्रिया मे ही कुछ अन्य प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती है जिसके समय का ज्ञान जटिल प्रतिक्रिया काल मे से सरल प्रतिक्रिया काल निकालने से होता है।

उण्ट ने मानसिक प्रक्रियाओं की परीक्षा करने के लिए डोण्डर्स की प्रतिक्रिया विधि को अपनाकर इस निष्कर्ष का प्रतिपादन किया कि डोण्डर्स ने स-प्रतिक्रिया मे रुचि (Choice) को स्थान न देकर बहुत बडी भूल की। उसके (उण्ट) अनुसार जिस तरह ब प्रतिक्रिया मे दो गतियो (Movement) मे रुचि रहती है उसी तरह स प्रतिक्रिया मे भी गति करने और न करने मे रुचि रहती है। उसने ज्ञानात्मक प्रतिक्रिया (Cognitive reaction) को जन्म दिया जिसे द प्रतिक्रिया भी कहते है। यह सरल प्रतिक्रिया से भिन्न है। सरल प्रतिक्रिया मे उत्तेजना की तरह सामने प्रयोज्य प्रतिक्रिया करता है, किन्तु इसमे वह उस समय प्रतिक्रिया करता है जब कि वह उत्तेजना विशेष को अच्छी तरह पहचान जाता है। यहाँ दो या दो से अधिक उत्तेजनाएँ उपस्थित की जाती है, लेकिन सब की सदा एक ही प्रतिक्रिया करनी पडती है, वह भी उत्तेजना विशेष को पहचानने के बाद। इस तरह, उसने द प्रतिक्रिया का प्रतिपादन करते हुए स-प्रतिक्रिया से उसकी भिन्नता प्रदर्शित की। प्रयोज्य का स प्रतिक्रिया म दो या दो से अधिक उत्तेजनाएँ अव्यवस्थित रूप मे उपस्थित की जाती थी, लेकिन प्रतिक्रिया किसी एक ही उत्तेजना की एक ही प्रकार से बराबर करनी पड़ती थी। दूसरे शब्दों मे, स प्रतिक्रिया म विभिन्न अव्यवस्थित रूप मे उपस्थित उत्तेजनाओ मे से प्रयोज्य को अन्य उत्तेजनाओं की उपेक्षा करके किसी एक ही उत्तेजना की प्रतिक्रिया सदा एक ही प्रकार से करनी होती है। लेकिन, द-प्रतिक्रिया म दो या दो से अधिक उत्तेजनाएँ उपस्थित की जाती है जिन्हे प्रयोज्य को पहचानना होता है जिसके बाद उसे सबके प्रति एक ही तरह से प्रतिक्रिया करनी होती है। प्रयोज्य को इस पहचानने की सूचना प्रत्येक बार किसी संकेत विशेष द्वारा देनी पड़ती है।

उण्ट ने लेपजिग की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला म प्रयोगात प्रतिक्रिया काल मे लगी हुई विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं तथा उसके लिए आवश्यक समय का अध्ययन किया। उसने प्रयोगावस्था की तीन मानसिक प्रक्रियाओ और अवस्थाओ का पता दिया—सर्व प्रथम उत्तेजना का प्रत्यक्षीकरण तब उत्तेजना की जानकारी (Apperception) और अन्त म व्यवसाय (Volition) अथवा प्रतिक्रिया। किन्तु, कैटेल (Cattell) ने उण्ट के उस विश्लेपण का खण्डन किया है। उसका कहना कि उत्तेजना का ज्ञान प्रतिक्रिया करने के पूर्व नही, बल्कि बाद मे होता है तथा व्यवसाय (Volition) प्रतिक्रिया करने की तत्परता (Readiness) मे ही सन्निहित रहती है और ज्यो ज्यो प्रतिक्रिया स्वत बार बार आवृत्त होती जाती है त्यो त्यो उसमे निर्बलता आने लगती है। लेकिन, इस सम्बन्ध मे यह स्मरणीय है कि यद्यपि प्रयोगावस्था मे उण्ट का मानसिक प्रक्रिया विश्लेषण भले ही सन्तोषपूर्ण हो, किन्तु सामान्य जीवन की प्रतिक्रियाओ के लिए पूर्णत सत्य है। प्रयोग म अभ्यास के कारण प्रतिक्रिया स्वत हो जाती है जिससे इसका विश्लेपण करना कठिन हो जाता है। किन्तु, सामान्य-जीवन में हमलोग प्रयोगावस्था की तरह प्रतिक्रिया नही करते, इसलिए इन प्रतिक्रियाओं मे सन्निहित मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेपण उण्ट के अनुरूप हो सकता है। उण्ट ने विभिन्न प्रतिक्रिया कालों का जानने की विधियों को भी व्यक्त किया है।

फ्रेडरिक (Friederick) ने ज्ञानात्मक काल (Cognitive time) में उत्तेजनाओं की जटिलता के कारण वृद्धि पाई, किन्तु फिशर (Fischer) को यह काल प्रयोग करने पर बहुत छोटा मिला। क्रेपलिन (Kraeplin) ने प्रतिक्रिया काल पर मादक द्रव्यों के असर का अध्ययन किया। बर्गर (Berger) ने भी प्रतिक्रिया-काल का अध्ययन किया। लेकिन, उन सभी से केटिल का अध्ययन अधिक महत्व रखता है। उसने इस बात का खंडन किया कि निर्णय काल का विश्लेषण साधारण प्रतिक्रिया काल और व्यवसाय काल मे किया जा सकता है। एक (Ach) का भी कथन है कि साधारण और निर्णय प्रतिक्रियाओं मे प्रयोज्य की मनोवृत्तियाँ (Attitudes) भिन्न होती हैं। निर्णय प्रतिक्रिया मे कई उत्तेजनाएँ रहती है और साधारण प्रतिक्रिया मे सिर्फ एक ही उत्तेजना रहती है। इन विभिन्न अवस्थाओं के कारण मानसिक अवस्थाओं मे भिन्नता होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि एक अवस्था की मानसिक प्रक्रिया दूसरे से भिन्न होती है। केटिल ने विभिन्न प्रयोज्यों पर प्रयोग करके यह भिन्नता भी प्रदर्शित कर दी है कि साधारण प्रतिक्रिया के समय प्रयोज्य मे तत्परता (Readiness) की वृत्ति रहती है। निर्णय-प्रतिक्रिया मे इस तत्परता-वृत्ति का अभाव रहता है।

प्रतिक्रिया-काल-प्रकार

(Kinds of reaction time)

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के कार्यों का उल्लेख करते समय विभिन्न प्रतिक्रियाओं पर भी प्रकाश डाला गया है, लेकिन यहाँ विषय को बोधगम्य बनाने के लिए उनकी व्याख्या आवश्यक प्रतीत होती है। प्रतिक्रिया मुख्यत दो प्रकार की होती है सरल और जटिल।

सरल प्रतिक्रिया-काल (Simple reaction time)

ऊपर व्यक्त किया जा चुका है कि सरल प्रतिक्रिया काल निकालने के लिए हमेशा एक ही उत्तेजना का व्यवहार किया जाता है, वह चाहे किसी स्वरूप की भी हो (ध्वनि, स्पर्श, दृश्य, आदि)। उस उत्तेजना की प्रतिक्रिया भी सदैव एक ही तरह से करनी होती है। प्रयोज्य जिस उत्तेजना की प्रतिक्रिया करता है, उसे वह पहले से जानता है। अतएव वह निरन्तर प्रतिक्रिया करने के लिए तत्पर रहता है। सरल प्रतिक्रिया की अवस्था मे प्रयोज्य के मन मे कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ चलती रहती है जिनका वर्णन करना कठिन है, किन्तु उसके मन की वह अवस्था उसे शीघ्रतम प्रतिक्रिया करने मे सहायक होती है। चूँकि प्रयोज्य प्रतिक्रिया करने के लिए पहले से तैयार रहता है, इसलिए उसकी प्रतिक्रिया अनैच्छिक (Involuntary) स्वरूप की होती है और उसमे व्यवसाय (Volition) की आवश्यकता नही पडती। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए हम दूसरे शब्दों मे कह सकते है कि प्रतिक्रिया करने की तत्परता मे ही व्यवसाय परिलक्षित होती है, प्रतिक्रिया करने मे नही।

एक्सनर (Exner) तथा केटिल (Cattell) भी अपने प्रयोगों द्वारा उपर्युक्त कथन की पुष्टि करते है, क्योंकि उन्हे अपने प्रयोगों मे व्यवसाय अथवा प्रत्यक्षीकरण-प्रक्रिया का कोई अकाट्य प्रमाण नही मिल सका।

लडविग-लाज (Ludwig-Lange) ने सरल प्रतिक्रिया काल को प्रयोज्य की ध्यान-दिशा (Direction of attention) के आधार पर तीन प्रकारों में बांटा है—सावेदनिक

(Sensory) प्रतिक्रिया काल, क्रियात्मक (Muscular or motor) प्रतिक्रिया काल तथा स्वाभाविक (Natural) प्रतिक्रिया काल।

सावेदनिक प्रतिक्रिया-काल (Sensory R. T.) निकालने के लिए प्रयोज्य को अपना ध्यान उत्तेजना पर लगाने का निदेशन दिया जाता है। यानी, उसमे इस बात पर जोर दिया जाता है कि प्रयोज्य उत्तेजना को अच्छी तरह से प्रत्यक्ष करके या उसका ज्ञान प्राप्त करले। स्नायविक या क्रियात्मक प्रतिक्रिया काल निकालने के लिए प्रयोज्य को उत्तेजना पर ध्यान लगाने के लिए न कह कर प्रतिक्रिया करने पर ही ध्यान लगाने को कहा जाता है। दूसरे शब्दो मे, उसे निदेशन दिया जाता है कि वह जैसे ही किसी उत्तेजना का अनुभव करे उसकी प्रतिक्रिया कर दे। फलत क्रियात्मक प्रतिक्रिया काल, सावेदनिक प्रतिक्रिया काल से कम या छोटा होता है। पहली अवस्था मे अभ्यास से प्रतिक्रिया सहजक्रिया (Reflex-action) के रूप मे होने लगती है जब कि दूसरी अवस्था मे उत्तेजना के स्वरूप की पहचान करने के बाद प्रतिक्रिया होती है। स्वाभाविक प्रतिक्रिया काल निकालने के लिए किसी प्रकार का विशेष निदेशन नही दिया जाता है, बल्कि उत्तेजना उपस्थित होने पर प्रतिक्रिया करने को कहा जाता है। इसलिए प्रयोज्य का ध्यान कभी प्रतिक्रिया और कभी उत्तेजना पर रहता है। कुछ अभ्यास करने के बाद स्वाभाविक प्रतिक्रिया समाप्त हो जाती है और प्रयोज्य क्रियात्मक प्रतिक्रिया (Muscular reaction) या सावेदनिक प्रतिक्रिया (Sensory reaction) करने लगता है। किन्तु, इन दोनो मे क्रियात्मक प्रतिक्रिया करनेवालों की ही सख्या अधिक रहती है। प्राय ऐसा भी देखा जाता है कि क्रियात्मक प्रतिक्रिया निकालते समय प्रयोज्य उत्तेजना उपस्थित होने के पहले ही प्रतिक्रिया कर देता है। इसे पूर्वोत्तेजना या अपरिपक्व प्रतिक्रिया (Prematured reaction) कहते है। इसके अतिरिक्त, इसमे कुछ और अशुद्ध प्रतिक्रियाएँ भी होती है। किन्तु, सावेदनिक प्रतिक्रिया मे ऐसा नही होता। इस अशुद्धि का कारण प्रयोज्य का प्रतिक्रिया करने के लिए सदा तैयार रहना है। यानी, क्रियात्मक प्रतिक्रिया करने मे प्रयोज्य मे प्रतिक्रिया करने का एक मानसिक तनाव (Tension) पैदा हो जाता है जिसके फलस्वरूप वह पूर्वोत्तेजना प्रतिक्रिया कर देता है। सावेदनिक प्रतिक्रिया मे इस तनाव का अभाव रहता है। इस सबध मे कुछ प्रामाणिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगो का उल्लेख कर देना अप्रासगिक नही होगा। इन दोनो प्रकार की प्रतिक्रियाओ के अन्तर को जानने के लिए लाँज (Lange) ने अपने प्रयोज्यो पर जो प्रयोग किया उससे यह स्पष्ट है कि उसके कुछ प्रयोज्य अभ्यास के कारण क्रियात्मक और कुछ सावेदनिक प्रतिक्रिया कर सके। किन्तु, अधिकाश प्रयोज्य सफलतापूर्वक क्रियात्मक प्रतिक्रिया ही कर सके। ध्वनि उत्तेजना के साथ उसने तीन प्रयोज्यों के सावेदनिक और क्रियात्मक प्रतिक्रिया कालो का अध्ययन किया। इसमे उसे क्रियात्मक प्रतिक्रिया-काल से सावेदनिक प्रतिक्रिया काल १००० सिग्मा अधिक मिला। अपने प्रयोग के आधार पर उसने क्रियात्मक प्रतिक्रिया को तत्पर सहजक्रिया (Ready reflex) माना और सावेदनिक प्रतिक्रिया मे उसे उण्ट के प्रत्यक्षीकरण तथा सकल्प की सत्यता मिली। लाज का यह विचार उण्ट को भी समुचित प्रतीत हुआ। अतएव वह इस निर्णय पर पहुँचा कि सावेदनिक प्रतिक्रिया पूर्ण और स्नायविक प्रतिक्रिया अपूर्ण स्वरूप की होती है।

अन्य मनोवैज्ञानिक भी इस दिशा मे प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित हुए। टिचनर ने जब ऊपर की दोनो प्रतिक्रियाओ का अध्ययन करने के लिए अपने प्रयोज्यों

पर प्रयोग किया तब उसे बहुत ही कम ऐसे प्रयोज्य मिले जो सावेदनिक प्रतिक्रिया को अच्छी तरह समझ सके या जिनकी प्रतिक्रिया सतोषप्रद हो सकी। विभिन्न प्रयोज्यो की सावेदनिक प्रतिक्रियाओं मे जो अन्तर दिखाई पडा उससे यह निर्विवाद था कि उनकी मनोवृत्तियों मे अत्यधिक भिन्नता थी। प्राय प्रयोज्यों मे दो प्रकार के व्यक्ति पाए गए। कुछ तो ऐसे मिले जो उत्तेजना मिलने पर शीघ्र प्रतिक्रिया कर सके, परन्तु कुछ प्रयोज्य ऐसे भी थे जो उत्तेजना को समझने के बाद ही प्रतिक्रिया करते थे। सावेदनिक प्रतिक्रिया की इन दो विशेषताओं मे से एक विशेषता सभी प्रयोज्यो मे मौजूद थी। प्रयोग से यह भी प्रमाणित हुआ कि अभ्यास करने पर अधिकाश लोगों मे क्रियात्मक प्रतिक्रिया की ही प्रवृत्ति (Tendency) रहती है। कुल्प ने अपने प्रयोगों द्वारा यह भी प्रदर्शित कर दिया कि सावेदनिक और क्रियात्मक प्रतिक्रियाओ को एक दूसरे से पूर्णत अलग नही किया जा सकता, क्योंकि प्रयोज्य उत्तेजना और प्रतिक्रिया दोनों के लिए तत्पर रहता है। अतएव विशुद्ध क्रियात्मक अथवा सावेदनिक प्रतिक्रिया असभव है।

अमरीका मे केटिल ने भी दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाओ का अध्ययन तीन प्रशिक्षित प्रयोज्यों पर किया। दो प्रयोज्यों पर ध्यान दिशा का असर कुछ भी नही दिखलाई दिया, क्योंकि दोनों के प्रतिक्रिया काल समान ही थ। अभिप्राय यह कि क्रियात्मक अथवा सावेदनिक प्रतिक्रिया तत्पर सहज क्रिया के स्वरूप की थी। तीसरे प्रयोज्य की प्रतिक्रिया मे ध्यान दिशा का असर अवश्य दिखलाई दिया, क्योकि जब उसका ध्यान उत्तेजना पर था तो उसकी प्रतिक्रिया कुछ विलम्ब से हुई। इसलिए केटिल ने लाज के परिणाम को सन्देहात्मक व्यक्त किया। बाल्डविन (Baldwin) ने जब उपर्युक्त दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाओ का अध्ययन दो प्रयोज्यों पर किया तो उसका एक प्रयोज्य सावेदनिक प्रतिक्रिया ही शीघ्रता से करता था। इसलिए वह इस निर्णय पर पहुँचा कि जिन प्रयोज्यों मे दृश्य और ध्वनि-प्रतिमाओं का बाहुल्य रहता है उनमे सावेदनिक प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति रहती है और जिनमे क्रियात्मक (Motor) प्रतिमाओं की सजीवता रहती है वे क्रियात्मक प्रतिक्रिया प्रवृत्ति के होते है। टिचनर ने भी क्रियात्मक तथा सावेदनिक प्रतिक्रियाओ के अन्तरों को स्वीकार किया। ऐंजिल (Angell) ने दो प्रयोज्यों पर जब प्रयोग किया तब उसका एक प्रयोज्य सावेदनिक प्रतिक्रिया और दूसरा स्नायविक प्रतिक्रिया करने मे तेज (Quick) देखा गया। इस वैयक्तिक भिन्नता की व्याख्या भी उसने भिन्न तरह से की। उसका कहना ह कि प्रतिक्रिया पर ध्यान लगाने के कारण जो शीघ्र प्रतिक्रिया करने मे समर्थ नही होता वस्तुत वह व्यक्ति मन्द गति (Slow movement) करनेवाला होता है। किन्तु, जो हस्त कुशल होता है वह उत्तेजना पर ध्यान लगाकर भी शीघ्र प्रतिक्रिया करने मे समर्थ होता है।

उसके बाद इस दिशा मे जितने भी प्रयोग हुए है उन सबसे यह निर्विवाद है कि क्रियात्मक प्रतिक्रिया-काल, सावेदनिक प्रतिक्रिया काल की अपेक्षा कम होता है, परन्तु उन दोनों का अन्तर पहले जैसा १०० मि से दृष्टिगोचर न होकर १० मि से से ९० मि से तक ही मिला है। यहाँ यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि क्रियात्मक प्रतिक्रिया काल सावेदनिक प्रतिक्रिया काल की अपेक्षा कम क्यों होता है? इस पर विचार करने से मालूम होगा कि सावेदनिक प्रतिक्रिया मे प्रयोज्य प्रतिक्रिया करने के लिए पूर्णत तत्पर नही रहता, किंतु क्रियात्मक मे वह पूर्णरूपेण तैयार रहता है जिससे उसकी प्रतिक्रिया शीघ्रतया

होती है। इसीलिए क्रियात्मक प्रतिक्रिया काल सावेदनिक प्रतिक्रिया काल की अपेक्षा कम होता है। इसे दूसरे शब्दों में स्पष्टत कहा जा सकता है कि क्रियात्मक प्रतिक्रिया मे सहजक्रिया-धनु (Reflex Arc) प्रतिक्रिया करने के लिए तैयार रहता है, इसलिए उत्तेजना मिलते ही अविलम्ब प्रतिक्रिया होती है। सावेदनिक प्रतिक्रिया मे उत्तेजना मिलने के पहले सहजक्रिया धनु (Reflex Arc) प्रतिक्रिया के लिए तत्पर नही रहता, इसलिए इसकी प्रतिक्रिया विलम्ब से होती है।

इस सम्बन्ध मे वर्थ (Wirth) का कहना है कि निर्देश मात्र से ही सावेदनिक और क्रियात्मक प्रतिक्रियाओं को अलग नही किया जा सकता। अत कभी-कभी निरोध परीक्षण (Check test) का देना आवश्यक है, अर्थात् सावधान सकेत दे, किन्तु उत्तेजना न दे। लेकिन, याद रहे कि ये निरोध-परीक्षण अधिक न हो, अन्यथा सरल प्रतिक्रिया ही जटिल प्रतिक्रिया बन जाएगी।

जटिल प्रतिक्रिया-काल (Complex reaction time)

जटिल प्रतिक्रिया-काल को हम दो भागो मे बाँट सकते है—रुचि-प्रतिक्रिया काल (Choice reaction time) और निर्णय प्रतिक्रिया काल (Discrimination reaction time)।

रुचि प्रतिक्रिया काल रुचि-प्रतिक्रिया काल निकालने के लिए प्रयोज्य के समक्ष दो या दो से अधिक उत्तेजनाएँ उपस्थित की जाती है और उन उत्तेजनाओ की प्रतिक्रिया विभिन्न प्रकार से करने का निर्देशन दिया जाता है। उदाहरणार्थ, उसे लाल और नीला दो प्रकार का प्रकाश दिखाया जा सकता है और लाल प्रकाश की प्रतिक्रिया दाएँ हाथ की उँगली से करने को कहा जा सकता है और नीले की प्रतिक्रिया बाएँ हाथ की उँगली से। अभिप्राय यह कि रुचि प्रतिक्रिया मे प्रयोज्य को जितनी भी उत्तेजनाएँ उपस्थित की जाती है उन सब की प्रतिक्रिया किसी न किसी ढग से करनी पड़ती है। इच्छानुसार उत्तेजनाओं की सख्या को बढाकर प्रयोग की जटिलता बढाई जा सकती है। इसी को डोण्डर्स (Donders) ने ब प्रतिक्रिया काल कहा है। प्रयोग करने पर देखा गया है कि रुचि प्रतिक्रिया काल निर्णय (Discrimination) प्रतिक्रिया काल से कुछ अधिक होता है।

निर्णय-प्रतिक्रिया काल (Discrimination reaction time) निर्णय प्रतिक्रिया काल निकालने के लिए प्रयोज्य को कई उत्तेजनाओ मे से किसी एक की ही प्रतिक्रिया करने का निर्देशन दिया जाता है। यदि लाल, नीले, पीले और हरे प्रकाश उत्तेजना के रूप मे दिए जाएँ तो प्रयोज्य को केवल एक ही प्रकाश की प्रतिक्रिया करने को कहा जायगा, चाहे वह लाल हो या हरा या और कोई। इस तरह, इसमे सभी उत्तेजनाओ की प्रतिक्रिया न करके किसी उत्तेजनाविशेष की ही प्रतिक्रिया की जाती है। इसमे प्रयोज्य की मनोवृत्ति सावेदनिक प्रतिक्रिया के ही समान रहती है। जटिल प्रतिक्रिया काल सरल प्रतिक्रिया काल की अपेक्षा अधिक होता है जो १०० मि से से ४०० मि से तक होता है। निर्णय प्रतिक्रिया डोण्डर्स की स-प्रतिक्रिया ही है।

इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि प्रारम्भ में जटिल प्रतिक्रिया काल अधिक होता है, किन्तु प्रयोग करने पर देखा गया है कि अभ्यास से इसमे बहुत कमी आ जाती है और

अन्त मे इसमे और सरल प्रतिक्रिया काल मे बहुत थोड़े का ही अन्तर रह जाता है। उत्तेजनाओ की सख्या मे वृद्धि करने से जटिल प्रतिक्रिया-काल मे भी वृद्धि होती ह। इस दिशा में मर्केल (Merkel) का प्रयोग विशेषरूपेण विख्यात हे। हेनमन (Henmon), लेमन (Lemmon), आदि विद्वानों ने अपने प्रयोगो द्वारा यह भी प्रमाणित कर दिया हे कि उत्तेजनाओं मे जितनी अधिक समानता रहती है उतना ही अधिक प्रतिक्रिया-काल होता है। इस तरह और भी कुछ अग ऐसे है जो जटिल प्रतिक्रिया काल को प्रभावित करते है, जिन पर यहाँ प्रकाश डालना आवश्यक नही है।

प्रतिक्रिया काल को प्रभावित करनेवाले अंग

प्रतिक्रिया काल निकालते समय प्रयोज्य, उत्तेजना, प्रयोक्ता और यन्त्र (Apparatus) इन चारों की आवश्यकता होती है। अत इन चारों मे से किसी मे भी किसी प्रकार का परिवर्त्तन प्रतिक्रिया काल को प्रभावित करता है। परिणाम की प्रतिपन्नता के लिए प्रयोज्य को प्रशिक्षित तथा शारीरिक और मानसिक रूप के सामान्य होना चाहिए। उत्तेजना का प्रकार, तीव्रता और प्रसरण (Extensity), आदि भी सर्वैव समान रहना चाहिए। प्रयोक्ता को भी प्रशिक्षित और प्रतिक्रिया काल का पूर्ण ज्ञानी तथा यन्त्र को बिल्कुल ठीक और समान होना आवश्यक है। यहाँ एक एक कर कुछ मुख्य अगों की सक्षिप्त व्याख्या प्रयोग की पृष्ठभूमि मे की जाएगी।

उत्तेजना　विभिन्न प्रयोगो मे देखा गया है कि उत्तेजना की तीव्रता, आकार और प्रसरण (Extensity) का असर सरल प्रतिक्रिया पर पडता है। बर्गर ने अपने प्रयोगात्मक परिणामों के आधार पर व्यक्त किया कि उत्तेजना की तीव्रता कम रहने पर सरल प्रतिक्रिया काल अधिक और सामान्य तीव्रता रहने पर कम होता है। फ्रोबर्ग ने भी उत्तेजना की तीव्रता और प्रतिक्रिया काल के सम्बन्ध का अध्ययन किया। उसे भी अपने प्रयोग मे यही मिला कि ज्यों ज्यों उत्तेजना की तीव्रता कम होती गई त्यों-त्यो प्रतिक्रिया काल मे वृद्धि होती गई। किन्तु, यहाँ स्मरणीय हे कि उत्तेजना और प्रतिक्रिया-काल मे समानुपातिक (Proportional ratio) सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि प्रयोगों से यह प्रमाणित हो चुका है कि अत्यधिक तीव्र उत्तेजना अत्यल्प प्रतिक्रिया काल नहीं दे सकती। अपने प्रारभिक प्रयोगा के आधार पर उण्ट का एसा विश्वास था कि उत्तेजना की तीव्रता मे अत्यधिक वृद्धि होने से प्रतिक्रिया-काल अधिक होता है, किन्तु इसकी सत्यता अभी तक परीक्षणों द्वारा प्रमाणित नही हो सकी है। वेल्स (Wells), फ्रोबर्ग, पियरन, आदि मनोवैज्ञानिको ने प्रयोगो द्वारा उत्तेजना के सत्ताकाल (Duration) और प्रतिक्रिया काल मे सम्बन्ध को प्रदर्शित किया है। इसी तरह, प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित किया गया है कि प्रतिक्रिया-काल पर उत्तेजना के आकार का भी असर कम नही पडता है।

अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से यह निर्विवाद हे कि उत्तेजना के प्रकार भी प्रतिक्रिया काल को प्रभावित करते हे। इस दिशा मे विभिन्न ज्ञानेन्द्रियाँ के साथ प्रयोग किए गए है। उन सबका उल्लेख न कर यहाँ दो एक प्रयोगों की चर्चा पर्याप्त होगी। केटिल ने प्रकाश और ध्वनि के साथ प्रतिक्रिया-काल का अध्ययन किया। उसके अध्ययन से यह स्पष्ट है कि ध्वनि का प्रतिक्रिया काल १२० मि सेकण्ड और प्रकाश का प्रतिक्रिया काल १९० मि० से० के लगभग होता है। पोफेन बर्गर (Poffen Berger) के

प्रयोगो से यह भी प्रमाणित है कि यदि एक ही उत्तेजना से किसी ज्ञानेन्द्रिय के विभिन्न भाग उत्तेजित किए जायें तब विभिन्न अचलों के प्रतिक्रिया काल में अन्तर पडता है। जितने भी प्रयोग इस दिशा मे हुए है उनसे स्पष्ट है कि ध्वनि-उत्तेजना का प्रतिक्रिया काल १२० मि० से० से १६० मि० से०, दृष्टि उत्तेजना का १५० मि० से० से २०० मि० से०, स्पर्श का ११० मि० से० से १९० मि० से०, घ्राण (Olfactory) का २०० मि० से० से ८०० मि० से० तथा रस (Gustatory) का ३०० मि० से० से १००० मि० से० होता है। इस तालिका को देखने से स्पष्ट है कि दृश्य उत्तेजना का प्रतिक्रिया-काल ध्वनि-उत्तेजना के प्रतिक्रिया काल से अधिक होता है।

दृश्य उत्तेजना का प्रतिक्रिया काल ध्वनि उत्तेजना के प्रतिक्रिया-काल से अधिक इसलिए होता है, क्योंकि ध्वनि का प्रत्यक्षीकरण प्रकाश की अपेक्षा शीघ्रतर होता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि ध्वनि, प्रकाश और स्पर्श का ही असर प्रयोज्य की ज्ञानेन्द्रियों पर प्रत्यक्षतया पड़ता है, अन्य उत्तेजनाओं का नही। घ्राण और रस उत्तेजनाओं की प्रतिक्रिया देर से होने का कारण आबद्ध ज्ञानेन्द्रियों की रासायनिक क्रिया है।

उत्तेजना-समूह पोफेन बर्गर (Poffen Berger) जैसे विद्वानों ने अपने प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि यदि कई उत्तेजनाओं को मिला कर एक साथ उपस्थित किया जाए तो उस सम्पूर्ण उत्तेजना का प्रतिक्रिया-काल, किसी एक उत्तेजना के प्रति किये गये प्रतिक्रिया काल से कम होगा। कई उत्तेजनाएँ एक साथ देने से किसी ज्ञानेन्द्रिय के ग्राहक अत्यधिक उत्तेजित होते हैं, इसलिए प्रतिक्रिया भी शीघ्रतर होती है। एक उत्तेजना सभी ग्राहकों का उस मात्रा मे प्रभावित नहीं कर सकती, इसलिए प्रतिक्रिया देर से होती है। उत्तेजना की व्यापकता या तीव्रता के सम्बन्ध मे भी यही लागू होता है। पोफेन बर्गर ने प्रकाश को उत्तेजना बना कर कभी एक आँख को उत्तेजित किया और कभी दोनों आँखों को और तब उसे एक आँख को उत्तेजित करने की अपेक्षा दोनों आँखों को उत्तेजित करने पर प्रतिक्रिया काल कम मिला। बिल्स (Bills) ने ध्वनि-उत्तेजना के साथ एक कान और दोनों कानों के साथ जो प्रयोग किया उसमे उसे भी उपर्युक्त परिणाम की ही प्राप्ति हुई। इस दिशा में हुए कुछ अन्य मनोवैज्ञानिक प्रयोग भी इस तथ्य का समर्थन करते है।

पूर्व काल (Fore Period) मनोवैज्ञानिकों ने सावधान संकेत (Ready signal) और उत्तेजना देने के बीच के समय का पूर्व काल (Fore period) कहा है। प्रतिक्रिया काल पर पूर्व काल का निश्चित असर पड़ता है। जब यह पूर्व काल एक सेकण्ड से कम रहता है तब प्रतिक्रिया करने मे दिक्कत होती है और फलत प्रतिक्रिया काल अधिक होता है। सावधान संकेत के बाद ही प्रयोज्य प्रतिक्रिया करने की तैयारी करता है और इस एक सेकण्ड के समय मे वह तैयार नहीं हो पाता। पूर्व-काल अधिक रहने पर भी प्रतिक्रिया-काल अधिक ही होता है। केटिल का कहना है कि एक सेकण्ड का व्यवधान काल प्रतिक्रिया करने के लिए पूर्णत उपयुक्त है। प्रयोग करने पर देखा गया है कि पन्द्रह सेकण्ड तक का व्यवधान काल प्रतिक्रिया को मन्द (Slow) कर देता है। कुछ विद्वानो के विचार से दो-तीन सेकण्ड का व्यवधान ही प्रतिक्रिया करने के लिए वाछनीय है। ब्रीट वीजर (Breitwizer) के अनुसार यह समय दो सेकण्ड से चार सेकण्ड तक

ही ठीक है। किन्तु, उड्रो (Woodrow) के प्रयोगों से स्पष्ट है कि सावधान संकेत और उत्तेजना के बीच दो सेकण्ड का व्यवधान अधिक उपयुक्त है। प्रतिक्रिया प्रकार में अन्तर पड़ने से ही प्रतिक्रिया काल मे अन्तर पड़ता है जिसकी सत्यता येल प्रयोगशाला (Yale laboratory) मे मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए प्रयोगों से प्रमाणित हो चुकी है।

प्रलोभन (Incentive) प्रतिक्रिया काल पर प्रशंसा, भर्त्सना या दण्ड का भी असर पड़ता है। यदि प्रतिक्रिया करने पर प्रयोज्य को प्रोत्साहित किया जाय अथवा उसकी प्रशंसा की जाय तो वह प्रतिक्रिया शीघ्रतर करने लगता है। दूसरी ओर, यदि प्रतिक्रिया करने की असफलता पर उसे भला बुरा कहा जाए अथवा किसी तरह का अन्य दण्ड दिया जाए तो उसकी प्रतिक्रिया गति मन्द पड जाती है और फलत प्रतिक्रिया काल अधिक समय का हो जाता है। इस कथन की सत्यता मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से प्रमाणित हो चुकी है जिनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नही।

प्रयोज्य (Subject) प्रयोज्य की उम्र का जो असर प्रतिक्रिया पर पड़ता है वह कम महत्त्व का नही है। प्रयोग करने से देखा जाता है कि प्रौढ व्यक्तियों की अपेक्षा बच्चों और वृद्ध व्यक्तियों का प्रतिक्रिया काल अधिक होता है। यहाँ यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि बच्चों और वृद्ध व्यक्तियों का प्रतिक्रिया काल अधिक क्यों होता है? इसके उत्तर मे यह कहना समुचित प्रतीत होता है कि उपर्युक्त दोनों प्रकार के प्रयोज्यों मे ध्यान को नियन्त्रित करने की शक्ति कम या शिथिल रहती है, इसलिए उनमे प्रतिक्रिया की तत्परता का भी अभाव रहता है। परिणामत सयानों की अपेक्षा इन दोनों का प्रतिक्रिया-काल अधिक होता है। कई मनोवैज्ञानिक कारणों से जातीय भिन्नता भी प्रयोज्य के प्रतिक्रिया काल को प्रभावित करती है।

शारीरिक अवस्था का भी निश्चित असर प्रतिक्रिया काल पर पड़ता है। शारीरिक तापमान का असर बहुत ही कम परिलक्षित होता है। मादक द्रव्यों का साधारण सेवन प्रतिक्रिया-काल को बहुत कम प्रभावित करता है, लेकिन उनकी अधिक मात्रा का असर अत्यधिक पड़ता है। कॉफी और चाय का सेवन प्रतिक्रिया काल को कम करता है, किन्तु शराब प्रतिक्रिया काल को अधिक कर देता है। दूसरे शब्दों में, विभिन्न मादक द्रव्यों का असर प्रतिक्रिया काल पर विभिन्न प्रकार का पड़ता है और इसी से कुछ के कारण प्रतिक्रिया काल कम और कुछ द्रव्यों के सेवन से प्रतिक्रिया काल अधिक हो जाता है। मानसिक विकृतियाँ व्यक्ति की शारीरिक अवस्था को प्रभावित करती है। इसलिए कुछ विकृतियों मे प्रयोज्य का प्रतिक्रिया काल अधिक और कुछ मे कम होता है। थकावट (Fatigue) का असर भी प्रतिक्रिया काल पर पड़ता है। किन्तु, केटिल ने जो प्रयोग अपने प्रयोज्यों पर किया उसके आधार पर उसका कहना है कि यद्यपि थकावट का असर प्रतिक्रिया पर पड़ता है और प्रतिक्रिया-काल अधिक होता है, फिर भी इसकी मात्रा बहुत कम होती है।

प्रयोग करने पर देखा गया है कि नये प्रयोज्य का प्रतिक्रिया काल अभ्यस्त प्रयोज्य की अपेक्षा अधिक होता है। किन्तु, केटिल का कहना है कि अभ्यास का असर कुछ ही प्रयासों तक पड़ता है, बाद में प्रतिक्रिया काल मे बहुत कमी-बेशी देखने मे आती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि केटिल को अपने प्रयोग मे जो कुछ भी मिला हो, किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि अभ्यास के कारण प्रयोज्य प्रयोगावस्था मे अपने आप को अभियोजित

कर लेता है, इसलिए पहले की अपेक्षा उसका प्रतिक्रिया काल कम होना स्वाभाविक है। केसेले (Cassel), डेलनेबाक (Dallenbach), वुड्रो (Woodrow), आदि विद्वानों ने प्रयोगों के द्वारा यह भी प्रमाणित कर दिया है कि ध्यानभग के कारण प्रतिक्रिया काल मे वृद्धि और ध्यानावसाद के कारण उसमे कमी पडती है। किन्तु, यहाँ भी केटिल का कहना है कि ध्यानभग का असर प्रतिक्रिया पर बहुत ही कम पड़ता है। केटिल का कथन जैसे ध्यानभग के साथ ठीक प्रतीत होता है जिसके लयात्मक स्वरूप के कारण प्रयोज्य उससे अनियोजित कर जाता है और फलत उसे प्रतिक्रिया करने मे बाधा नही होती।

मनोवृत्ति मनोवृत्ति का प्रभाव प्रतिक्रिया काल पर क्या पडता है, इसकी विशेष चर्चा की कोई आवश्यकता नही है, क्योंकि हम पहले ही देख चुके है कि क्रियात्मक और सवेदनिक प्रतिक्रिया काल मे प्रयोज्य के मानसिक झुकाव के कारण अन्तर पड़ता है। इसके अतिरिक्त, इसका प्रभाव पूर्वकाल को परिवर्तित करके भी जाना जा सकता है। देखा गया है कि जब कई प्रयासो तक एक निश्चित (Fixed) या नित्य (Constant) पूर्वकाल दिया जाता है तब प्रयोज्य मे उतने समय मे प्रतिक्रिया करने के लिए तैयार होने का मानसिक झुकाव बन जाता है जिससे उसका प्रतिक्रिया काल कम हो जाता है।

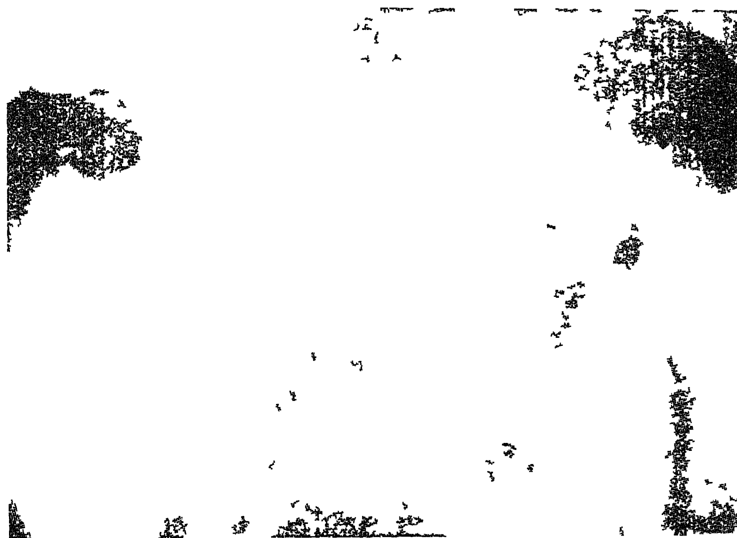
प्रतिक्रिया-काल मे व्यवहृत यत्र

प्रतिक्रिया काल निकालने के लिए कई यत्रो तथा विधियो का व्यवहार किया जाता है। साहचर्यात्मक प्रतिक्रिया-काल (Associative R. T.) के लिए विराम घड़ी (Stop watch) की आवश्यकता पडती है जो प्रयोज्य के प्रतिक्रिया काल को अकित करती है। इस विधि के सम्बन्ध में 'साहचर्य' के अध्याय मे लिखा जा चुका है, इसलिए यहाँ इसका पुन उल्लेख करना आवश्यक नही है।

प्रतिक्रिया-काल मापन की दूसरी विधि यह है जिसमे कीमोग्राफ ड्रम (Kymograph drum) पर प्रतिक्रिया-काल को अकित किया जाता है। किंतु, यह विधि बहुत कठिन है। हिप क्रोनोस्कोप (प्रतिक्रिया काल मापक यत्र) प्रतिक्रिया-काल को बहुत ही अच्छी तरह मापता है। इससे एक सेकण्ड के हजारवे भाग तक का ज्ञान होता है। वर्नियर क्रोनोस्कोप (Vernier chronoscope) का उल्लेख भी यहाँ आवश्यक है। क्योंकि, वर्त्तमान मे अधिकाश लोग इसी यत्र का व्यवहार प्रतिक्रिया काल निकालने के लिये करते है। इसमे दो दोलक (Pendulums) होते है जिनमे एक का सम्बन्ध प्रयोक्ता की उत्तेजना देने से होता है और दूसरे दोलक का सम्बन्ध प्रयोज्य की प्रतिक्रिया से हुआ करता है। उत्तेजना के उपस्थित होते ही एक (बड़ा) दोलक चलने लगता है। इसी तरह, जैसे ही प्रयोज्य प्रतिक्रिया करता है, दूसरा दोलक चक्कर लगाने लगता है। कुछ देर तक इसी तरह चक्कर लगाते रहने पर दोनो दोलक समानान्तर हो जाते हैं। जितने हिन्दोल (Swings) मे दोनों दोलक समानान्तर होते है उतने मे ०.०२ का गुणा करने से प्रतिक्रिया-काल सेकण्ड में मालूम हो जाता है। नीचे इस यत्र का प्रयोग-चित्र दिया गया है। किन्तु, इन दोनो दोलकों को अभियोजित करने मे अत्यधिक सावधानी रखने की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त, गाल्वेनामीटर (Galvanometer) का भी,

जिसे धारा मापक यन्त्र भी कहते है, प्रयोग कुछ मनोवैज्ञानिको ने किया है। इसके अलावे और कई प्रकार के यन्त्रो और विधियो से समय समय पर प्रतिक्रिया काल का अध्ययन किया गया है। वर्त्तमान मे मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओ मे वर्नियर क्रोनोस्कोप के ही द्वारा अधिकाश लोग प्रतिक्रिया काल मापते है।

चित्र सख्या—८२



वर्नियर क्रोनोस्कोप का प्रयोग चित्र

प्रतिक्रिया काल की उपयोगिता

केटिल के समय से सामान्य जीवन मे प्रतिक्रिया काल की उपादेयता देखने में आती है। इसके पहले लोगो का ध्यान इसकी उपयोगिता पर नही था, किन्तु आज जहाँ कही भी चालक (Driver) या यन्त्र चालक की नियुक्ति होती है वहाँ लोग प्रतिक्रिया-काल जानने की कोशिश करते है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि जिसकी प्रतिक्रिया अत्यल्प या अत्यधिक होती है वह चालक के योग्य नहीं होता। जिसकी प्रतिक्रिया अत्यल्प होती है, उसमे आवश्यकता से अधिक आत्म-विश्वास (Self Confidence) रहने के कारण दुर्घटना (Accident) की अधिक सभावना रहती है। सुस्त प्रतिक्रिया करनेवाला व्यक्ति अपनी सुस्ती के कारण दुर्घटनओं का कारण बनता है। अत चालक के लिए सामान्य प्रतिक्रिया ही अपक्षित है। वैयक्तिक भिन्नता जानने के लिए भी प्रतिक्रिया काल का व्यवहार किया जाता है। इस विधि द्वारा सरलता से दो व्यक्तियों की भिन्नता का ज्ञान हो जाता है।

प्रतिक्रिया के आधार पर लोगो ने व्यक्तियो की बौद्धिक योग्यतायों को जानने की कोशिश की है, क्योंकि ऐसा विश्वास है कि बुद्धिमान् व्यक्ति की प्रतिक्रिया शीघ्रता से होती है। इसकी सत्यता कई प्रयोगों द्वारा प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

युङ्ग, केण्ट (Kent), रोसानाफ प्रभृति विद्वानों ने प्रतिक्रिया के आधार पर व्यक्तियों की भावग्रंथियों (Complexes) और अपराधों का पता लगाने की विधि भी व्यक्त की है जिसका प्रयोग प्रायः सभी राष्ट्रों में हो रहा है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि विलम्बित प्रतिक्रिया काल व्यक्ति की भावग्रंथि और अपराध का सूचक होता है। वस्तुतः इसके आधार पर कितने असामान्य व्यक्तियों को स्वाभाविक बनाया जाता है और उनके अपराधों का पता लगाकर उनके कारणों को हटाया जाता है। किन्तु, कई कारणों से कुछ स्थलों पर प्रतिक्रिया काल का आधार सन्तोषप्रद प्रमाणित नहीं होता।

जीवन के अन्य पहलुओं खेल-कूद में भी प्रतिक्रिया का महत्त्व देखने में आता है। जो खिलाड़ी शीघ्र प्रतिक्रिया करनेवाला होता है, वह दौड़ने में बाजी मार लेता है, किन्तु मन्द प्रतिक्रियावाला व्यक्ति दौड़ के मैदान में हार जाता है। सचमुच प्रतिक्रिया काल के ज्ञान से व्यक्ति को विभिन्न व्यवसाय के क्षेत्र के सफल कार्य संपादन में काफी सहायता मिली है।

सोलहवाँ अध्याय

कार्य और थकावट

कार्य का स्वरूप

मनुष्य को ससार मे अपना जीवन सुखमय व्यतीत करने के लिये कुछ कार्य करना आवश्यक है। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी एक सीमा के अन्दर कार्य करना अच्छा है। कर्मशील रहने से स्वास्थ्य उसी स्थिति मे खराब होता है जब व्यक्ति मानसिक शक्ति सीमा का उल्लघन करता अथवा अन्य घातक अगा (Harmful factors) के चपेट में पड जाता है। सच पूछा जाय तो खेल और कार्य मे कोई बाह्य अतर नही है, और अतर केवल मानसिक है जिसमे किसी क्रिया को हम खेल समझते है और किसी को कार्य। खेल समझी जानेवाली एक ही क्रिया मनोवृत्ति मे परिवर्तन के कारण कार्य बन जाती है। उदाहरणार्थ, कहानी कहने सुनने मे आनन्द आता है, परन्तु जब वही कहानी परीक्षा मे पूछी जाती है तो सुनाते या लिखते समय उसका आनन्द समाप्त हो जाता है। इसी तरह, मनोवृत्ति मे परिवर्त्तन आने से कार्य भी खेल बन जाता है। अत कार्य की परिभाषा के सबन्ध मे कह सकते है कि जब कोई क्रिया किसी ध्येय, पदार्थ या आदर्श को प्राप्त करने के लिये व्यवस्थित (Systematic) रूप से किसी निश्चित दिशा मे की जाती है तब उसे कार्य कहते है। इस तरह, कार्य के अन्तर्गत जो क्रिया की जाती है उसके पीछे अवश्य ही कुछ निश्चित ध्येय रहता है। लेकिन, खेल या विनोद का कोई निश्चित ध्येय नही रहता और यदि उससे किसी ध्येय की प्राप्ति हो जाय तो उसे गौण (Secondary) ही समझना श्रेयस्कर है। कुछ लोग खेल को ध्येय हीन नही मानते। उनका कहना है कि इसका ध्येय प्रसन्नता पाना है। किन्तु, यदि आप इसका विश्लेषण करे तो देखेंगे कि वस्तुत खेल खेलने के पहले खिलाड़ी अपना यह ध्येय नही बनाता कि उसे इससे खुशी होगी, यों उसे खुशी मिल जाय, यह बात दूसरी है। फिर खेल के बाद सभी को खुशी ही मिले, यह आवश्यक नही। बालकों का घर बनाना, कुआँ खोदना, आदि क्रियाये खेल की श्रेणी मे आती है, क्योकि वे घर बनाने या कुआँ खोदने का उपक्रम खेलने के लिए ही करते है, रहने या पानी पीने के लिए नहीं। किन्तु, मजदूर का घर बनाना या कुआँ खोदना कार्य है, क्योकि इन क्रियाओं से उसे मजदूरी मिलती है और उसका जीवन-निर्वाह होता है। इस तरह, खेल मे यदि कोई उद्देश्य रहता भी है तो उसकी प्राप्ति खेलने के क्रम मे हो जाती है। कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि कार्य नीरस और खेल रुचिकर होता है, किन्तु यह कथन सर्वदा सत्य नही कहा जा सकता। कार्य भी रुचिकर होते है और उन्हे करने मे कम आनन्द नही मिलता। कितने मनुष्यों को हमलोग काम के पीछे दिवाना पाते है। कार्य मे किसी ध्येयविशेष को प्राप्त करने का प्रलोभन (Incentive) रहता है जब कि खेल मे इस प्रकार के प्रलोभन का अभाव रहता है। इस प्रकार, हम देखते है कि कार्य और खेल में मनोवृत्ति मात्र का ही अन्तर रहता है, क्रिया का नही।

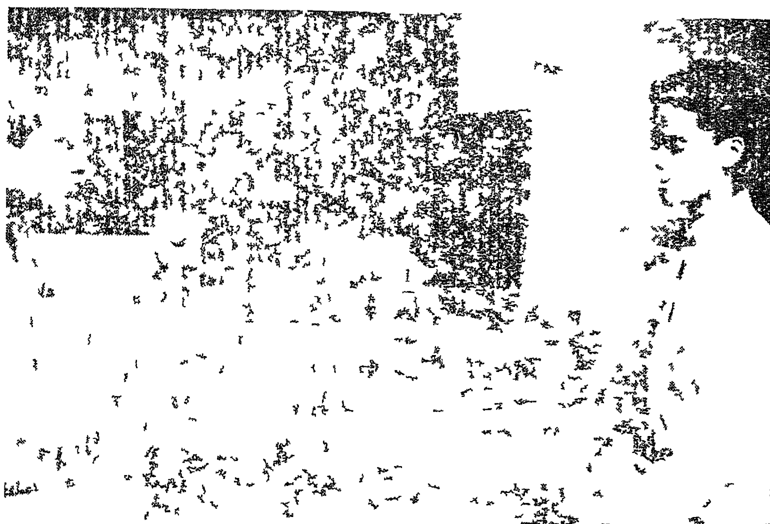
कार्य दो प्रकार के होते हैं—शारीरिक और मानसिक। हम दो प्रकार के कार्यों को एक दूसरे से पूर्णत अलग नहीं कर सकते, क्योंकि इन दोनों में बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस प्रकार स्नायविक (Muscular) कार्य मानसिक कार्य को प्रभावित करता है, उसी प्रकार मानसिक कार्य भी स्नायविक कार्य को प्रभावित करता है। सच तो यह है कि हर शारीरिक कार्य में मानसिक शक्ति की आवश्यकता है और प्रत्येक मानसिक कार्य मे कुछ स्नायविक शक्ति जरूरी होती है। दूसरे शब्दों में, ये दोनो कार्य एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं। इसलिए यहां हम इन्हीं दो प्रकार के कार्यों का उल्लेख करेंगे और इसके बाद अन्य पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे।

स्नायविक कार्य (Muscular Work)

यों तो सामान्य जीवन में हम अनेक प्रकार के शारीरिक या स्नायविक कार्य करते हैं। किंतु, प्रयोगात्मक विधि से स्नायविक कार्य का अध्ययन अर्गोग्राफ (Ergograph) की सहायता से किया जाता है। यह यंत्र कई प्रकार का होता है, यद्यपि सबका आधार एक ही है। आजकल अधिकांश मोसो (Mosso) और क्रेप्लिन (Kraepelin) के यंत्रों का व्यवहार होता है। यह यंत्र इस प्रकार बना हुआ है कि इसमें लयात्मक स्नायविक संकोचन (Rhythmical muscular contraction) का अध्ययन सरलतया होता है। इस यंत्र से प्रयोग करते समय प्रयोज्य की दाहिनी या बाईं बाहु को इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया जाता है कि बीचवाली उंगली के अतिरिक्त उस बाहु का कोई भाग हिल डुल न सके। तब मेट्रोनोम (Metronome) को ०' पर व्यवस्थित कर दिया जाता है। प्रयोज्य की मध्य उंगली को एक तागे में फँसा दिया जाता है जिसके सहारे कुछ निश्चित वजन टँगा रहता है और उसे निर्देश दिया जाता है कि वह मेट्रोनोम की प्रत्येक आवाज पर अपनी मध्य उंगली के सहारे तागा को खींचे और दूसरी ध्वनि पर छोड़े। मध्य उंगली के संकोचन (Contraction) और प्रसरण (Extension) को अंकित करने के लिये धूम्रमय कागज (Smoked Paper) को कीमोग्राफ के बेलन पर इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया जाता है कि चिह्नक (Marker) के सहारे उस पर संकोचन और प्रसरण का ग्राफ चित्र बनता जाता है। इस ग्राफ चित्र को अर्गोग्राम (Ergogram) कहा जाता है। पृष्ठ ४९९ के दिये गये चित्र से पाठक इसको अंकित करने और स्नायविक कार्य के अध्ययन करने का ढंग अच्छी तरह समझ सकते हैं।

उंगली से वजन खींचने और छोड़ने का काम लगातार काफी देर तक होते रहने से एक समय ऐसा आता है कि प्रयोज्य वजन खींचने में असमर्थ हो जाता है और पुन ऐसा करने के लिए उसे कुछ आराम देना या वजन को कम करना आवश्यक हो जाता है। वजन कम करने से भी अधिक देर तक उंगली का सचालन नहीं हो पाता, तुरत ही थकावट आने लगती है और व्यक्ति उंगली को संकुचित करने और फैलाने में असमर्थ हो जाता है। जब प्रयोज्य थकने लगता है तब वह वजन को पूरी तरह खींच नहीं पाता है, फलत अर्गोग्राफ मे चिह्नित रेखा की ऊंचाई कम होने लगती है और अन्तिम अवस्था में जब प्रयोज्य बिल्कुल ही थक जाता है तब वह थोड़ा भी वजन खींचने में असमर्थ हो जाता है। ऐसी अवस्था में प्राप्त ग्राफ केवल एक सरल रेखा के रूप में रह जाता है।

चित्र संख्या-७३



आर्गोग्राफ के प्रयोग का चित्र

निरंतर वजन उठाने से थकावट आ जाने के कारण कुछ समय के बाद वजन कुछ भी नहीं उठता है। लेकिन, यदि प्रत्येक मध्यांगुलि संकोचन के बाद कुछ समुचित आराम की व्यवस्था कर दी जाती है तो थकावट का आविर्भाव बिल्कुल ही नहीं होता या बहुत देर के बाद होता है। स्नायविक कार्य पर विश्राम (Rest) का प्रभाव देखने के लिये कई प्रयोग किए गये है और उन सब प्रयोगो मे उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। एक प्रयोग में जिसमें एक प्रयोज्य को ६ कीलोग्राम (Kilogramme) का भार उठाना था, प्रत्येक संकोचन के बाद १० सेकण्ड आराम की व्यवस्था करने पर देखा गया कि वह अनिश्चित काल तक उस कार्य को बिना किसी प्रकार की थकावट के करता रहा। लेकिन, जब वही विश्राम-काल दो सेकण्ड का कर दिया गया तो वह एक मिनट के बाद ही थक गया और आगे भार उठाने मे असमर्थ हो गया। इसके बाद थकावट से पूर्णत निर्मुक्त होने के लिये उसे दो घण्टे विश्राम की आवश्यकता पड़ी। इससे स्पष्ट है कि शारीरिक कार्य मे थकावट के प्रभाव को हटाने के लिये न केवल विश्राम का होना आवश्यक है, बल्कि कार्य के स्वरूप के अनुसार निश्चित समय का समुचित विश्राम काल अपेक्षित है।

यह स्मरणीय है कि इस प्रकार के स्नायविक कार्य मे कर्त्ता की मानसिक स्थिति का भी काफी असर पडता है। जब कार्य मे उसकी अत्यधिक अभिरुचि रहती है या कार्य करने के लिये उसे अत्यधिक उत्तेजना मिलती है तो उसके कार्य का उत्पादन (Output) बहुत अधिक हो जाता है। किन्तु, व्यवस्था में किसी प्रकार की गड़बड़ी अथवा मध्यांगुलि, या हाथ के किसी अंग मे पीडा के कारण उस उत्पादन में कमी पड़ती है। यो तो मानसिक थकावट (Mental fatigue) के कारण भी स्नायविक कार्य के उत्पादन मे कमी पडती है, लेकिन कभी कभी ऐसा देखने मे आता है कि अत्यधिक मानसिक कार्य करने के बाद भी प्रयोज्य स्नायविक कार्य बहुत ही निपुणता के साथ

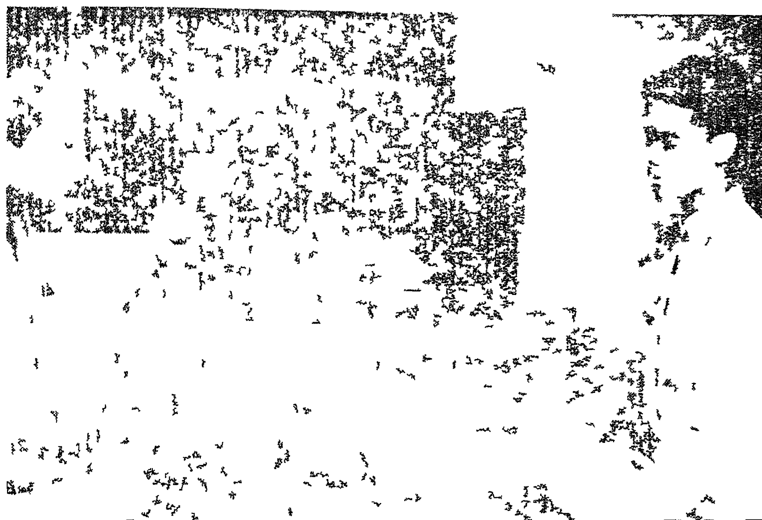
कार्य दो प्रकार के होते है—शारीरिक और मानसिक। हम दो प्रकार के कार्यों को एक दूसरे से पूर्णत अलग नही कर सकते, क्योंकि इन दोनो मे बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस प्रकार स्नायविक (Muscular) कार्य मानसिक कार्य को प्रभावित करता है, उसी प्रकार मानसिक कार्य भी स्नायविक कार्य को प्रभावित करता है। सच तो यह है कि हर शारीरिक कार्य में मानसिक शक्ति की आवश्यकता है और प्रत्येक मानसिक कार्य में कुछ स्नायविक शक्ति जरूरी होती है। दूसरे शब्दो मे, ये दोनो कार्य एक दूसरे से स्वतन्त्र नही है। इसलिए यहा हम उन्ही दो प्रकार के कार्यो का उल्लेख करेगे और इसके बाद अन्य पहलुओ पर प्रकाश डालेगे।

स्नायविक कार्य (Muscular Work)

यों तो सामान्य जीवन मे हम अनेक प्रकार के शारीरिक या स्नायविक कार्य करते है। किंतु, प्रयोगात्मक विधि से स्नायविक कार्य का अध्ययन अर्गोग्राफ (Ergograph) की सहायता से किया जाता है। यह यन्त्र कई प्रकार का होता है, यद्यपि सबका आधार एक ही है। आजकल अधिकाश मासो (Mosso) और क्रैपलिन (Kraeplin) के यन्त्रों का व्यवहार होता है। यह यन्त्र इस प्रकार बना हुआ है कि इससे लयात्मक स्नायविक सकोचन (Rhythmical muscular contraction) का अध्ययन सरलतया होता है। इस यन्त्र से प्रयोग करते समय प्रयोज्य की दाहिनी या बाई बाहु को इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया जाता है कि बीचवाली उगली के अतिरिक्त उस बाहु का कोई भाग हिल डुल न सके। तब मेट्रोनोम (Metronome) को ६०° पर व्यवस्थित कर दिया जाता है। प्रयोज्य की मध्य उगली को एक ताग मे फसा दिया जाता है जिसके सहारे कुछ निश्चित वजन टॅगा रहता है और उसे निर्देशन दिया जाता है कि वह मेट्रोनोम की प्रत्येक आवाज पर अपनी मध्य उगली के सहारे तागा को खीच और दूसरी ध्वनि पर छोड़े। मध्य उगली के सकोचन (Contraction) और प्रसरण (Extension) को अंकित करने के लिये धूम्रमय कागज (Smoked Paper) को सीमाग्राफ के बेलन पर इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया जाता है कि चिह्नक (Marker) के सहारे उस पर सकोचन और प्रसरण का ग्राफ-चित्र बनता जाता है। इस ग्राफ चित्र को अर्गोग्राम (Ergogram) कहा जाता है। पृष्ठ ४९९ के दिये गये चित्र से पाठक यन्त्र को व्यवस्थित करने और स्नायविक कार्य को अध्ययन करने का ढग अच्छी तरह समझ सकते है।

उगली से वजन खीचने और छोड़ने का काम लगातार काफी देर तक होते रहने से एक समय ऐसा आता है कि प्रयोज्य वजन खीचने मे असमर्थ हो जाता है और पुन ऐसा करने के लिए उसे कुछ आराम देना या वजन को कम करना आवश्यक हो जाता है। वजन कम करने से भी अधिक देर तक उगली का सचालन नही हो पाता, तुरत ही थकावट आने लगती है और व्यक्ति उगली को सकुचित करने और फैलाने मे असमर्थ हो जाता है। जब प्रयोज्य थकने लगता है तब वह वजन को पूरी तरह खीच नही पाता है, फलत अर्गोग्राफ मे चिह्नित रेखा की ऊचाई कम होने लगती है और अन्तिम अवस्था मे जब प्रयोज्य बिल्कुल ही थक जाता है तब वह थोड़ा भी वजन खीचने मे असमर्थ हो जाता है। ऐसी अवस्था में प्राप्त ग्राफ केवल एक सरल रेखा के रूप मे रह जाता है।

चित्र सख्या-७३



आर्गोग्राफ के प्रयोग का चित्र

निरतर वजन उठाने से थकावट आ जाने के कारण कुछ समय के बाद वजन कुछ भी नहीं उठता है। लेकिन, यदि प्रत्येक मध्यांगुलि सकोचन के बाद कुछ समुचित आराम की व्यवस्था कर दी जाती है तो थकावट का आविर्भाव बिल्कुल ही नहीं होता या बहुत देर के बाद होता है। स्नायविक कार्य पर विश्राम (Rest) का प्रभाव देखने के लिये कई प्रयोग किए गये है और उन सब प्रयोगो से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। एक प्रयोग में जिसमें एक प्रयोज्य को ६ कीलोग्राम (Kilogramme) का भार उठाना था, प्रत्येक सकोचन के बाद १० सेकण्ड आराम की व्यवस्था करने पर देखा गया कि वह अनिश्चित काल तक उस कार्य को बिना किसी प्रकार की थकावट के करता रहा। लेकिन, जब वही विश्राम-काल दो सेकण्ड का कर दिया गया तो वह एक मिनट के बाद ही थक गया और आगे भार उठाने मे असमर्थ हो गया। इसके बाद थकावट से पूर्णत निर्मुक्त होने के लिये उसे दो घण्टे विश्राम की आवश्यकता पड़ी। इससे स्पष्ट है कि शारीरिक कार्य मे थकावट के प्रभाव को हटाने के लिये न केवल विश्राम का होना आवश्यक है, बल्कि कार्य के स्वरूप के अनुसार निश्चित समय का समुचित विश्राम काल अपेक्षित है।

यह स्मरणीय है कि इस प्रकार के स्नायविक कार्य मे कर्त्ता की मानसिक स्थिति का भी काफी असर पडता है। जब कार्य मे उसकी अत्यधिक अभिरुचि रहती है या कार्य करने के लिये उसे अत्यधिक उत्तेजना मिलती है तो उसके कार्य का उत्पादन (Output) बहुत अधिक हो जाता है। किन्तु, व्यवस्था मे किसी प्रकार की गड़बड़ी अथवा मध्यांगुलि, या हाथ के किसी अग मे पीडा के कारण उस उत्पादन मे कमी पडती है। यों तो मानसिक थकावट (Mental fatigue) के कारण भी स्नायविक कार्य के उत्पादन में कमी पडती है, लेकिन कभी कभी ऐसा देखने मे आता है कि अत्यधिक मानसिक कार्य करने के बाद भी प्रयोज्य स्नायविक कार्य बहुत ही निपुणता के साथ

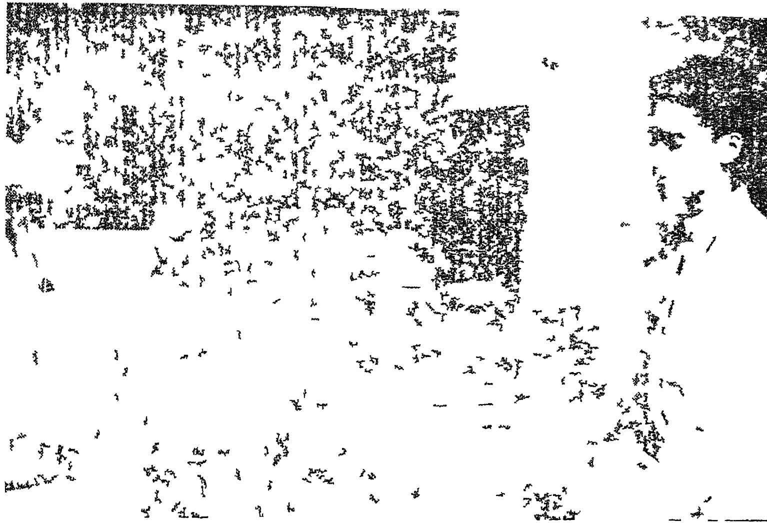
कार्य दो प्रकार के होते है—शारीरिक और मानसिक। हम दो प्रकार के कार्यों को एक दूसरे से पूर्णत अलग नहीं कर सकते, क्योंकि इन दोनों मे बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है। जिस प्रकार स्नायविक (Muscular) कार्य मानसिक कार्य को प्रभावित करता है, उसी प्रकार मानसिक कार्य भी स्नायविक कार्य को प्रभावित करता है। सच तो यह है कि हर शारीरिक कार्य में मानसिक शक्ति की आवश्यकता है और प्रत्येक मानसिक कार्य मे कुछ स्नायविक शक्ति जरूरी होती है। दूसरे शब्दों मे, ये दोनों कार्य एक दूसरे से स्वतन्त्र नही है। इसलिए यहां हम इन्हीं दो प्रकार के कार्यों का उल्लेख करेंगे और इसके बाद अन्य पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे।

स्नायविक कार्य (Muscular Work)

यो तो सामान्य जीवन मे हम अनेक प्रकार के शारीरिक या स्नायविक कार्य करते है। किंतु, प्रयोगात्मक विधि से स्नायविक कार्य का अध्ययन अर्गोग्राफ (Frograph) की सहायता से किया जाता है। यह यन्त्र कई प्रकार का होता है, यद्यपि सबका आधार एक ही है। आजकल अधिकांश मोसो (Mosso) और क्रेप्लिन (Kraepelin) के यन्त्रों का व्यवहार होता है। यह यन्त्र इस प्रकार बना हुआ है कि इससे लयात्मक स्नायविक सकोचन (Rhythmical muscular contraction) का अध्ययन सरलतया होता है। इस यन्त्र मे प्रयोग करते समय प्रयोज्य की दाहिनी या बाईं बाहु को इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया जाता है कि बीचवाली उंगली के अतिरिक्त उस बाहु का कोई भाग हिल डुल न सके। तब मेट्रोनोम (Metronome) को ६०° पर व्यवस्थित कर दिया जाता है। प्रयोज्य की मध्य उगली को एक ताग मे फसा दिया जाता है जिसके सहारे कुछ निश्चित वजन टॅगा रहता है और उसे निर्देश दिया जाता है कि वह मेट्रोनोम की प्रत्येक आवाज पर अपनी मध्य उगली के सहारे तागा को खीचे और दूसरी ध्वनि पर छोड़े। मध्य उगली के सकोचन (Contraction) और प्रसरण (Relaxation) को अंकित करने के लिये धूम्रमय कागज (Smoked Paper) को कीमोग्राफ के बेलन पर इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया जाता है कि चिह्नक (Marker) के सहारे उस पर सकोचन और प्रसरण का ग्राफ चित्र बनता जाता है। इस ग्राफ चित्र को अर्गोग्राम (Ergogram) कहा जाता है। पृष्ठ ४९९ के दिये गये चित्र से पाठक यन्त्र का निरीक्षण करके और स्नायविक कार्य को अध्ययन करने का ढग अच्छी तरह समझ सकते है।

उगली से वजन खीचने और छोड़ने का काम लगातार काफी देर तक होते रहने से एक समय ऐसा आता है कि प्रयोज्य वजन खीचने मे असमर्थ हो जाता है और पुन ऐसा करने के लिए उसे कुछ आराम देना या वजन को कम करना आवश्यक हो जाता है। वजन कम करने से भी अधिक देर तक उगली का सचालन नहीं हो पाता, तुरत ही थकावट आने लगती है और व्यक्ति उगली को सकुचित करने और फैलाने मे असमर्थ हो जाता है। जब प्रयोज्य थकने लगता है तब वह वजन को पूरी तरह खींच नहीं पाता है, फलत अर्गोग्राफ मे चिह्नित रेखा की ऊचाई कम होने लगती है और अन्तिम अवस्था मे जब प्रयोज्य बिल्कुल ही थक जाता है तब वह थोड़ा भी वजन खीचने में असमर्थ हो जाता है। ऐसी अवस्था में प्राप्त ग्राफ केवल एक सरल रेखा के रूप मे रह जाता है।

चित्र सख्या-७३



अार्गोग्राफ के प्रयोग का चित्र

निरतर वजन उठाने से थकावट आ जाने के कारण कुछ समय के बाद वजन कुछ भी नहीं उठता है। लेकिन, यदि प्रत्येक मध्यागुलि सकोचन के बाद कुछ समुचित आराम की व्यवस्था कर दी जाती है तो थकावट का आविर्भाव बिल्कुल ही नहीं होता या बहुत देर के बाद होता है। स्नायविक कार्य पर विश्राम (Rest) का प्रभाव देखने के लिये कई प्रयोग किए गये है और उन सब प्रयोगो से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। एक प्रयोग में जिसमें एक प्रयोज्य को ६ कीलोग्राम (Kilogramme) का भार उठाना था, प्रत्येक सकोचन के बाद १० सेकण्ड आराम की व्यवस्था करने पर देखा गया कि वह अनिश्चित काल तक उस कार्य को बिना किसी प्रकार की थकावट के करता रहा। लेकिन, जब वही विश्राम-काल दो सेकण्ड का कर दिया गया तो वह एक मिनट के बाद ही थक गया और आगे भार उठाने मे असमर्थ हो गया। इसके बाद थकावट से पूर्णत निर्मुक्त होने के लिये उसे दो घण्टे विश्राम की आवश्यकता पडी। इससे स्पष्ट है कि शारीरिक कार्य मे थकावट के प्रभाव को हटाने के लिये न केवल विश्राम का होना आवश्यक है, बल्कि कार्य के स्वरूप के अनुसार निश्चित समय का समुचित विश्राम काल अपेक्षित है।

यह स्मरणीय है कि इस प्रकार के स्नायविक कार्य मे कर्त्ता की मानसिक स्थिति का भी काफी असर पडता है। जब कार्य मे उसकी अत्यधिक अभिरुचि रहती है या कार्य करने के लिये उसे अत्यधिक उत्तेजना मिलती है तो उसके कार्य का उत्पादन (Output) बहुत अधिक हो जाता है। किन्तु, व्यवस्था मे किसी प्रकार की गड़बड़ी अथवा मध्यागुलि, या हाथ के किसी अग मे पीडा के कारण उस उत्पादन में कमी पड़ती है। या तो मानसिक थकावट (Mental fatigue) के कारण भी स्नायविक कार्य के उत्पादन मे कमी पडती है, लेकिन कभी कभी ऐसा देखने मे आता है कि अत्यधिक मानसिक कार्य करने के बाद भी प्रयोज्य स्नायविक कार्य बहुत ही निपुणता के साथ

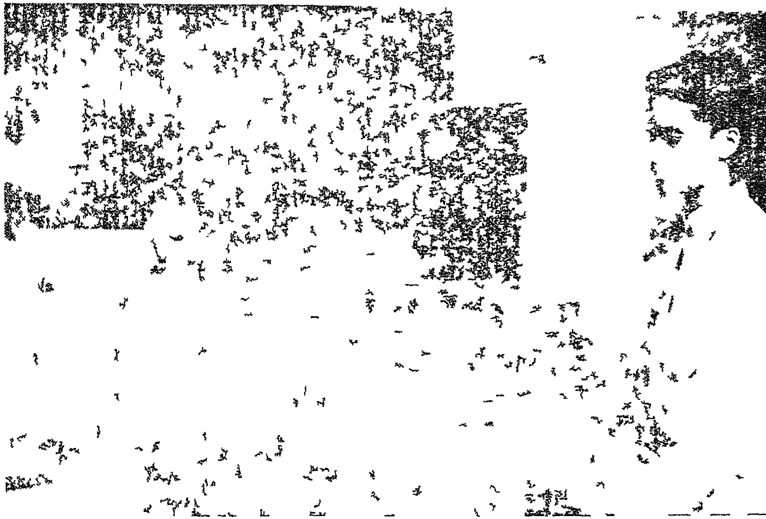
कार्य दो प्रकार के होते हैं—शारीरिक और मानसिक। हम दो प्रकार के कार्यों को एक दूसरे से पूर्णतः अलग नहीं कर सकते, क्योंकि इन दोनों में बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस प्रकार स्नायविक (Muscular) कार्य मानसिक कार्य को प्रभावित करता है, उसी प्रकार मानसिक कार्य भी स्नायविक कार्य को प्रभावित करता है। सच तो यह है कि हर शारीरिक कार्य में मानसिक शक्ति की आवश्यकता है और प्रत्येक मानसिक कार्य में कुछ स्नायविक शक्ति जरूरी होती है। दूसरे शब्दों में, ये दोनों कार्य एक दूसरे से स्वतन्त्र नहीं हैं। इसलिए यहाँ हम इन्हीं दो प्रकार के कार्यों का उल्लेख करेंगे और इसके बाद अन्य पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे।

स्नायविक कार्य (Muscular Work)

यों तो सामान्य जीवन में हम अनेक प्रकार के शारीरिक या स्नायविक कार्य करते हैं। किंतु, प्रयोगात्मक विधि से स्नायविक कार्य का अध्ययन अर्गोग्राफ (Ergograph) की सहायता से किया जाता है। यह यन्त्र कई प्रकार का होता है, यद्यपि सबका आधार एक ही है। आजकल अधिकांश मोसो (Mosso) और क्रेपलिन (Kraepelin) के यन्त्रों का व्यवहार होता है। यह यन्त्र इस प्रकार बना हुआ है कि इससे लयात्मक स्नायविक सकोचन (Rhythmical muscular contraction) का अध्ययन सरलतया होता है। इस यन्त्र से प्रयोग करते समय प्रयोज्य की दाहिनी या बाईं बाहु को इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया जाता है कि बीचवाली उंगली के अतिरिक्त उस बाहु का कोई भाग हिल डुल न सके। तब मेट्रोनोम (Metronome) को ६०° पर व्यवस्थित कर दिया जाता है। प्रयोज्य की मध्य उंगली को एक ताग में फंसा दिया जाता है जिसके सहारे कुछ निश्चित वजन टँगा रहता है और उसे निर्देश दिया जाता है कि वह मेट्रोनोम की प्रत्येक आवाज पर अपनी मध्य उंगली के सहारे तागा को खींचे और दूसरी ध्वनि पर छोड़े। मध्य उंगली के सकोचन (Contraction) और प्रसरण (Extension) को अंकित करने के लिये धूम्रमय कागज (Smoked Paper) को कीमोग्राफ के ड्रम पर इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया जाता है कि चिह्नक (Marker) के सहारे उस पर सकोचन और प्रसरण का ग्राफ-चित्र बनता जाता है। इस ग्राफ चित्र को अर्गोग्राम (Ergogram) कहा जाता है। पृष्ठ ४९९ के दिये गये चित्र से पाठक यन्त्र को व्यवस्थित करने और स्नायविक कार्य को अध्ययन करने का ढंग अच्छी तरह समझ सकते हैं।

उंगली से वजन खींचने और छोड़ने का काम लगातार काफी देर तक होते रहने से एक समय ऐसा आता है कि प्रयोज्य वजन खींचने में असमर्थ हो जाता है और पुनः ऐसा करने के लिए उसे कुछ आराम देना या वजन को कम करना आवश्यक हो जाता है। वजन कम करने से भी अधिक देर तक उंगली का संचालन नहीं हो पाता, तुरत ही थकावट आने लगती है और व्यक्ति उंगली को संकुचित करने और फैलाने में असमर्थ हो जाता है। जब प्रयोज्य थकने लगता है तब वह वजन को पूरी तरह खींच नहीं पाता है, फलतः अर्गोग्राफ में चिह्नित रेखा की ऊंचाई कम होने लगती है और अन्तिम अवस्था में जब प्रयोज्य बिलकुल ही थक जाता है तब वह थोड़ा भी वजन खींचने में असमर्थ हो जाता है। ऐसी अवस्था में प्राप्त ग्राफ केवल एक सरल रेखा के रूप में रह जाता है।

चित्र संख्या-७३



आर्गोग्राफ के प्रयोग का चित्र

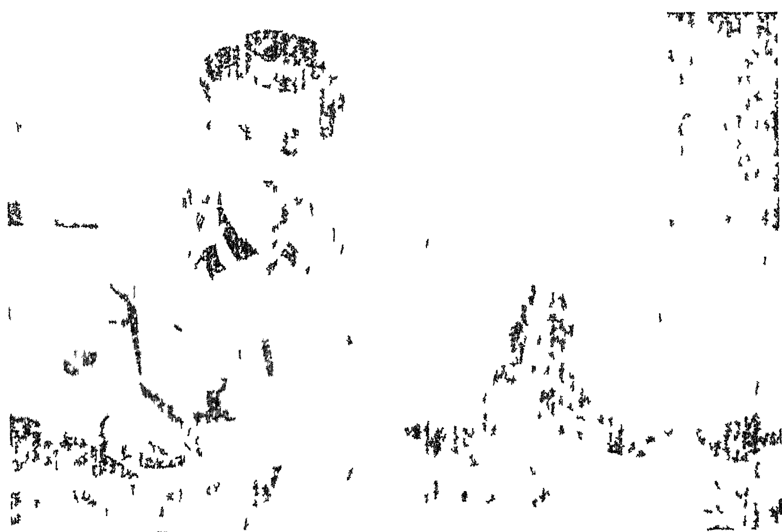
निरंतर वजन उठाने से थकावट आ जाने के कारण कुछ समय के बाद वजन कुछ भी नहीं उठता है। लेकिन, यदि प्रत्येक मध्यांगुलि संकोचन के बाद कुछ समुचित आराम की व्यवस्था कर दी जाती है तो थकावट का आविर्भाव बिल्कुल ही नही होता या बहुत देर के बाद होता है। स्नायविक कार्य पर विश्राम (Rest) का प्रभाव देखने के लिये कई प्रयोग किए गये है और उन सब प्रयोगो से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। एक प्रयोग में जिसमें एक प्रयोज्य को ६ कीलोग्राम (Kilogramme) का भार उठाना था, प्रत्येक संकोचन के बाद १० सेकण्ड आराम की व्यवस्था करने पर देखा गया कि वह अनिश्चित काल तक उस कार्य को बिना किसी प्रकार की थकावट के करता रहा। लेकिन, जब वही विश्राम-काल दो सेकण्ड का कर दिया गया तो वह एक मिनट के बाद ही थक गया और आगे भार उठाने मे असमर्थ हो गया। इसके बाद थकावट से पूर्णत निर्मुक्त होने के लिये उसे दो घण्टे विश्राम की आवश्यकता पड़ी। इससे स्पष्ट है कि शारीरिक कार्य मे थकावट के प्रभाव को हटाने के लिये न केवल विश्राम का होना आवश्यक है, बल्कि कार्य के स्वरूप के अनुसार निश्चित समय का समुचित विश्राम-काल अपेक्षित है।

यह स्मरणीय है कि इस प्रकार के स्नायविक कार्य मे कर्त्ता की मानसिक स्थिति का भी काफी असर पडता है। जब कार्य मे उसकी अत्यधिक अभिरुचि रहती है या कार्य करने के लिये उसे अत्यधिक उत्तेजना मिलती है तो उसके कार्य का उत्पादन (Output) बहुत अधिक हो जाता है। किन्तु, व्यवस्था मे किसी प्रकार की गड़बड़ी अथवा मध्यांगुलि, या हाथ के किसी अंग मे पीडा के कारण उस उत्पादन मे कमी पड़ती है। या तो मानसिक थकावट (Mental fatigue) के कारण भी स्नायविक कार्य के उत्पादन मे कमी पडती है, लेकिन कभी कभी ऐसा देखने मे आता है कि अत्यधिक मानसिक कार्य करने के बाद भी प्रयोज्य स्नायविक कार्य बहुत ही निपुणता के साथ

करता है। संक्षेप में, स्नायविक कार्य में अभ्यास और थकावट, प्रयोज्य की मानसिक अवस्था तथा अन्य अंगों पर निर्भर करती है।

स्नायविक कार्य का अध्ययन कितने मनोवैज्ञानिकों ने हस्तशक्ति मापक यंत्र (Hand dynamometer) से भी किया है। इसके द्वारा कार्य का अध्ययन करने के लिये प्रयोज्य के किसी हाथ में यंत्र को व्यवस्थित कर दिया जाता है और अपनी शक्ति भर उसे खींचने का निर्देशन दिया जाता है। मेट्रोनाम (जो ६० पर व्यवस्थित रहता है) की सहायता से बार बार सेकण्ड पर लगातार वह यंत्र को खींचता और छोड़ता है। यह कार्य सामान्यतः एक मिनट तक कराया जाता है और प्रत्येक बार यंत्र खींचने में प्रयोज्य ने कितनी शक्ति का उपयोग किया इसको कीलोग्राम में लिख लिया जाता है। बार बार यंत्र खींचते रहने से प्रयोज्य थक जाता है और फलतः बाद के प्रयासों में वह क्रमशः कम शक्ति का परिचय देने लगता है। ऐसा बिना विश्राम के या निरंतर-विधि (Continuous method) में ही होता है। लेकिन, अर्गोग्राफ की तरह, विश्राम देने से इस यंत्र द्वारा भी देखा जा सकता है कि किस प्रकार कार्योत्पादन या व्यक्ति की हस्तशक्ति में कमी नहीं आती। नीचे के चित्र में हस्तशक्ति मापक यंत्र की प्रयोग-स्थिति को स्पष्ट किया गया

चित्र संख्या ७४



हैण्ड-डाइनामामीटर का प्रयोग चित्र

है। प्रसंगवश यह व्यक्त कर देना भी आवश्यक है कि लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में इस प्रकार की कार्य-शक्ति अधिक होती है। दोनों के कार्यों में उनकी विशेषताओं में अत्यधिक अन्तर दृष्टिगोचर होता है। अपने अध्ययनों के आधार पर लम्बार्ड (Lombard) का कहना है कि अभ्यास, विश्राम, भोजन, शराब, आदि से स्नायविक कार्य-शक्ति में वृद्धि होती है, किन्तु सामान्य तथा स्थानीय थकावट (Local fatigue) में भूख, उच्च तापमान (High temperature), तम्बाकू, आदि के कारण कमी आती है। हार्ले (Harley) का कहना है कि तम्बाकू पीना कुछ अंशों में स्नायविक कार्य-शक्ति को

कम कर देता है। यद्यपि इससे सवेरे कार्य मे कुछ वृद्धि होती है तथापि सन्ध्या तक कमी आवश्यक रूप से हो जाती है। इसी प्रकार, अन्य कई प्रकार के यन्त्रो के द्वारा शरीर के विभिन्न अगो के स्नायु कार्यो का अध्ययन किया जाता है। आजकल इस प्रकार के कार्य के अध्ययन का महत्त्व कार्यालयो मे बहुत बढ गया है और स्नायविक कार्य मे लगे कर्मचारियों के समुचित कार्योत्पादन (Output) का सुन्दर प्रबन्ध किया जा रहा है।

मानसिक कार्य (Mental Work)

साधारणत हम मानसिक कार्य उसे कहते है जिसे सपादित करने मे मानसिक शक्ति की अधिक जरूरत होती है, उदाहरणार्थ, किरानी, प्रोफेसर, आदि के कार्य मानसिक है। मानसिक कार्य को करने की क्षमता और योग्यता हर किसी मे नहीं होती। इस कार्य का कुछ विशेष स्वरूप और आवश्यकताएँ होती है जिन्हे कार्य के सफल सपादन के लिये ध्यान मे रखना आवश्यक है। इसीसे मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानसिक कार्य का अध्ययन कई प्रकार के उपकरणो के साथ किया गया है। अक्षर निराकरण (Letter concellation), गुणा, या जोडने का काम अधिकतर व्यवहार मे लाया जाता है। प्रयोज्य को आराम से बैठा कर उसे अक्षर निराकरण पत्र और पेंसिल या कलम देकर उस पत्र के निश्चित अक्षरों को देने पर काटने को कहा जाता है। सुविधानुसार यह कार्य आधा घटा, एक घटा या किसी निश्चित समय तक कराया जाता है। प्रत्येक एक या दो मिनट के बाद उसे किये हुए काम पर चिह्न लगाने का भी निर्देशन प्रारभ मे ही दे दिया जाता है। काम करने के निश्चित समय मे जब एक या दो मिनट बाकी रह जाता है तब उसकी सूचना प्रयोज्य को दे दी जाती है। समयोपरात काम स्थगित कर दिया जाता है और प्रयोज्य से आवश्यक अन्तर्निरीक्षण अकित कर लिया जाता है। बाद मे काटे हुए अक्षरों की सख्या, अशुद्ध काटे हुए अक्षरों की सख्या और छोडे हुए अक्षरों की सख्या जानकर कार्योत्पादन का आँकडा तैयार कर लिया जाता है। गुणा या जोडने के काम में प्रयोज्य से विभिन्न अकों को गुणा करने या जोडने का आदेश दिया जाता है। यहाँ पर मानसिक कार्य के लिये लेखक द्वारा तैयार किया हुआ अक्षर-निराकरण पत्र दे देना अप्रासगिक नहीं होगा। जैसा की पृष्ठ ४९८ पर है।

कार्य-वक्र और उसकी विशेषताएँ

हम ऊपर यह व्यक्त कर चुके है कि स्नायविक (Muscular) या मानसिक (Mental) कार्य का अध्ययन प्रयोगशालाओं मे क्योकर और किन उपकरणों के साथ किया जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यदि हम किसी कार्य को ग्राफ चित्र द्वारा व्यक्त करना चाहे तो आधार रेखा को विभिन्न समय-विभागों मे विभाजित कर खडी रेखा पर कार्य परिमाण को व्यक्त कर सकते है। अक्षर निराकरण या गुणाकार्य-वक्र को अक्षर काटने के परिमाण (amount) या गुणा करने के परिमाण अथवा अशुद्धियों के आधार पर प्रदर्शित किया जा सकता है। इसी प्रकार, किसी स्नायविक कार्य का भी कार्य वक्र तैयार किया जा सकता है। पृष्ठ ४९९ पर एक प्रयोग मे प्राप्त दो प्रकार के कार्यों के कार्य-वक्र सुविधा के लिये दिए गये है। उनसे पाठक समझ जाएगे कि कार्य-वक्र कैसे तैयार किया जाता है।

अक्षर निराकरण पत्र

('क' से 'म' तक के सभी अक्षर)

क झ भ च ड त ग न म ञ द भ ख म ठ क ढ ज घ ब

ख ज क प ढ ड ड प भ घ फ म च ट ध म क ध फ ट

झ ब त म ण ज य ठ ग ठ झ ट ढ प ख ध ङ न घ ध

य ख ड च ढ ड ङ ण त्र न ज ध फ भ क म ज ज ट त

ज थ ड ध ट प क त ञ ड क ण च ब घ भ ड न ङ ग

घ ब य छ म ख ड च द ञ त्र ट ज ख ण झ ढ फ प ण

त न ण क च ग ज क थ भ ब ट ज ब ट भ फ घ ड न

ध ङ द त ड ख ढ ङ प ग ङ घ म क ण ट ङ न ब द

ठ य घ ब झ ण ध ट ट क ट क ग त ठ घ भ छ ध ठ

घ ज ढ ड भ क फ घ य घ च ख ण ट न झ ब य ख ब

ड फ ङ न ग ट ड द ज घ ब ठ भ ण क ट भ ज द थ

ञ ब त क झ य ढ घ न ज ण न ख ध ग फ ड न त क

च न ञ ठ फ ख न ग च क ज ढ य ङ म ढ द ब ङ थ

ग ठ ज न थ ढ द ज भ च ब ट ट द ग प फ ध थ ट

प ब ड त घ ड ड ध ग ङ द ज य ड ख न ठ झ ण ग

ड म झ ट ण य च ढ झ ख भ ट ग ग म ज म ड द भ

च त य ध म ख छ ट न ज ज ण ट फ ठ प द न थ त

भ म ञ ढ क ब ड झ त ग फ ढ म च प झ ख ध ञ प

ठ प ग त फ ढ भ ट ट ध ङ ब ढ क म झ त ठ द घ

म फ ड क प च द झ ध क द म ट ट ग म ढ ञ भ छ

झ द ड प ठ भ ङ थ ज प ज ध ख प छ ब ज ड ध ट

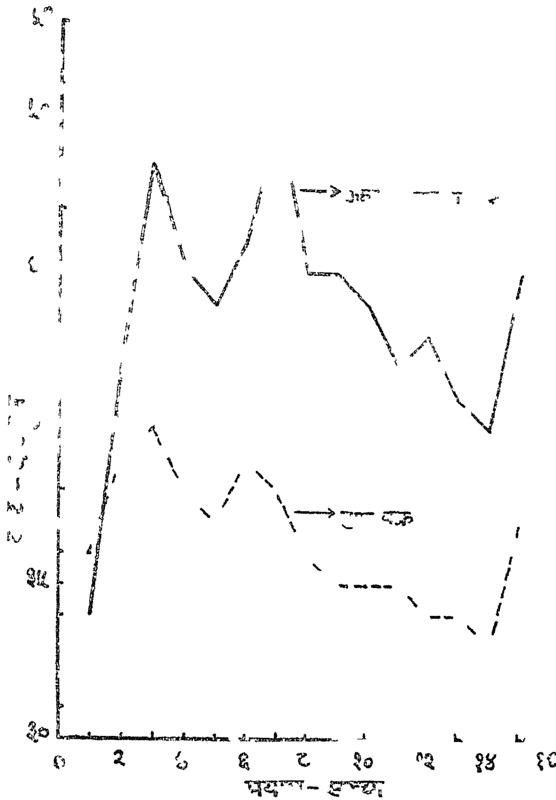
ज ढ ध ड ब ख ड ज द ड न च ध ठ घ द ण फ ज छ

ठ भ च प त झ ठ भ ड फ ण च प ण झ ट भ ग ढ त

प च ण ड म ग ढ त ब ख न ज ण क च फ ट द ज ड

ख छ द ड ण प झ ग ढ च य ञ न ध त ठ झ फ छ ख

चित्र संख्या—७९



गुणा और अक्षर निराकरण के कार्य-वक्र

कार्य-वक्र की विशेषतायें कार्य वक्रों का विश्लेषण करके मनोवैज्ञानिकों ने कई महत्त्वपूर्ण अंगो को व्यक्त किया है जिन पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। लेकिन, एक बात सदैव याद रखने की है कि ये सभी अंग या विशेषताएँ सभी कार्य वक्रो मे परिलक्षित नही होती, क्योंकि वे कर्त्ता और कार्य करने के वातावरण पर निर्भर करती है। किसी भी कार्य के करने मे अभ्यास और थकावट का प्रभाव पड़ता है। अभ्यास से कार्य-उत्पादन बढता है और थकावट से उत्पादन मे कमी होती है। उत्पादन बढने से उत्पादन-वक्र में उत्कर्ष (Rise) और उत्पादन घटने से वक्र मे अपकर्ष (Fall) होता है। लेकिन, जब भी व्यक्ति प्रयत्न करता है उससे कार्य-योग्यता जितनी भी आये, वह किंचित मात्रा मे भी थकता अवश्य है। इस तरह, अभ्यास और थकावट दोनों का प्रभाव कार्य पर प्रारंभ से अंत तक पडता है, लेकिन कार्य के प्रारंभ मे अभ्यास का असर और बाद मे थकावट का असर अधिक मात्रा में देखने मे आता है। अत कार्य के प्रारंभ मे उत्पादन बढ़ता जाता है, किन्तु कुछ समय के बाद जब अभ्यास का प्रभाव थकावट से कम हो जाता है तब उत्पादन कम होने लगता है, फलत कार्य-वक्र में भी अपकर्ष होने लगता है। अन्त में एक ऐसा समय आता है जब काम करने वाला थकावट के कारण कुछ भी करने में असमर्थ होता है, जैसा कि स्नायविक कार्य के संबंध में व्यक्त किया जा चुका है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि थकावट के समय अभ्यास के

कारण कार्य में परिमाण की वृद्धि भले ही हो, किन्तु गुणात्मक ह्रास (Qualitative fall) का होना अनिवार्य है ।

उपर्युक्त दो अंगों के अतिरिक्त, प्रोत्साहन (Spurt) का असर भी कार्य पर देखने में आता है जिसके कारण कार्य वक्र में उत्कर्ष और अपकर्ष परिलक्षित होता है। यों तो मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रकार के प्रोत्साहनों का उल्लेख किया है, किन्तु उनमें प्रारम्भिक और अंतिम प्रोत्साहन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जब कर्त्ता को किसी कार्य में लगाया जाता है तो प्रारम्भ में वह अपने को ताजा (Fresh) महसूस करता है, क्योंकि वह पूरे उत्साह के साथ कार्य को करना शुरू करता है जिसके फलस्वरूप प्रारंभ में उसका कार्योत्पादन अत्यधिक परिमाण में होता है। कार्योत्पादन का गुणात्मक स्वरूप भी काफी उन्नत होता है। इसे प्रयोज्य का प्रारंभिक प्रोत्साहन (Initial Spurt) कहते हैं। किन्तु, कर्त्ता की यह ताजगी और उत्साह अधिक समय तक नहीं रह पाती। कुछ समय के बाद वह थक और ऊब जाता है जिसके कारण कार्य वक्र में अपकर्ष होने लगता है। अंतिम प्रोत्साहन (Final Spurt) उस समय दृष्टिगोचर होता है जब कर्त्ता को यह मालूम हो जाता है कि अब कार्य काल (Work time) समाप्त हो रहा है अथवा उसे इस कार्य से छुट्टी मिलनेवाली है। ऐसा जानने पर वह पुनः एक बार प्रोत्साहित होकर कार्य करने लगता है जिसके फलस्वरूप कार्य वक्र में पुनः उत्कर्ष देखने में आता है। इस अंतिम प्रोत्साहन से यह स्पष्ट है कि निश्चित अवस्थाओं में अत्यधिक प्रेरित होने पर कर्मचारी अपनी सुरक्षित शक्ति का व्यय करता है। यही कारण है कि थके रहने पर भी वह अधिक कार्य कर सकता है। इस तथ्य का उद्घाटन बहुत पहले विलियम जेम्स (William James) ने किया था। इस स्थल पर यह स्मरणीय है कि अन्य कई कारणों से कार्य के प्रारम्भ और अन्त के बीच भी प्रोत्साहन व्याप्त रहने में आते हैं। यहाँ पर यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि किसी प्रकार से भी प्रारंभिक प्रोत्साहन को हटाना असंभव है, किन्तु कर्त्ता को यदि कार्यकाल की समाप्ति की सूचना न दी जाय तो अंतिम प्रोत्साहन का निराकरण हो सकता है।

कार्योत्पादन को प्रभावित करनेवाले अंग

कार्य के उत्पादन को प्रभावित करनेवाले अंगों का अर्थ उन कारणों से है जिनसे उत्पादन घटता और बढ़ता है या कर्मचारी के कार्य में विघ्न या बाधा पड़ती है। ऐसे अंगों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं मनोवैज्ञानिक, शारीरिक और वातावरण सम्बन्धी। अब हम इस क्रम से प्रमुख अंगों का उल्लेख करेंगे।

मनोवैज्ञानिक अंग — कार्योत्पादन की निपुणता के लिए प्रेरणा का होना आवश्यक है, क्योंकि जब तक कार्य में किसी प्रकार की विशेष रुचि नहीं रहती तबतक काम करनेवाला लगन से कार्य नहीं करता। इस कथन की पुष्टि कई मनोवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा हो चुकी है। पुरस्कार पाने का प्रलोभन या अपने को निपुण सिद्ध करने की भावना कार्य में काफी सहायक होती है। पुरस्कार केवल रुपये पैसे के ही रूप में नहीं दिया जाता, प्रशंसा या शाबासी जैसे शाब्दिक पुरस्कार भी उत्पादन को काफी बढ़ाते हैं। दूसरी ओर, किसी तरह का दण्ड या निन्दा कार्य की लगन को प्रायः कम कर देता है। इनके प्रभावों की चर्चा पीछे हम विस्तार से कर चुके हैं। अतः यहाँ अधिक लिख कर पुनरावृत्ति करना ठीक नहीं होगा।

अन्य कर्मचारी और कार्य करनेवाले के बीच विश्वास का जमना भी कार्य की निपुणता मे सहायक होता है। यदि कार्य करनेवाले का सबध अन्य कर्मचारियों से कटु और रूखा रहता है तो उसके मन मे तरह तरह के अवांछित भाव आविर्भूत होते रहते है जिसके फलस्वरूप वह कार्य अच्छी तरह नही करता। किन्तु, मैत्री और विश्वास का सम्बन्ध रहने से उसमे किसी प्रकार की उत्तेजना नही रहती और वह सामान्यगति से कार्य करता है, जिसके परिणामस्वरूप कार्य अधिक परिमाण मे और अच्छा होता है। इस कथन की पुष्टि भी कई प्रयोगो द्वारा की जा चुकी है।

हम स्थलविशेष पर यह देख चुके है कि जिस कार्य को करने से सतोष होता है वह किस उत्तमता के साथ किया जाता है। अत कार्य मे सतुष्टि का होना या नही होना भी कार्य के उत्पादन को प्रभावित करनेवाला एक प्रमुख अग है।

उत्तेजना (Incitement) की जितनी अच्छी जानकारी कर्मचारी के निरीक्षण से होती है उतनी विवेचनात्मक परिमाण से नही और यह अग सभी कर्मचारियों मे पाया भी नही जाता। इसलिए कुछ विद्वानो ने इसे अभ्यास के कारण निपुणता-वृद्धि कहा है। लेकिन, प्रयोगात्मक परिणामों के प्रकाश मे उनका ऐसा कथन उचित प्रतीत नही होता। यदि हम इसे कार्य के उपयुक्त क्षणिक मनोवृत्ति और अभिरुचि के अर्थ मे समझे तो अनुचित नही होगा। यह निर्विवादत कार्योत्पादन को प्रभावित करती है। कार्य के प्रारभ मे या विश्राम के बाद कार्य करने के पश्चात् इसका प्रभाव कार्योत्पादन पर देखने मे आता है। कार्य-कुशलता पर पहुँचने के लिये उत्तेजना का होना आवश्यक है, अन्यथा कर्मचारी कार्य-निपुणता की सीमा तक नही पहुँच सकता। राबिन्सन (Robinson) तथा हरन के प्रयोगो से ऐसा प्रतीत होता है कि जब कार्य लगातार न होकर रुक रुक कर होता है तब उसके प्रारभ मे उत्तेजना का असर देखने मे आता है। लेकिन, निरतर कार्य मे इसका प्रभाव दृष्टिगोचर नही होता। सभी व्यावसायिक कार्यों मे यह तथ्य स्पष्टत परिलक्षित होता है और जिस कार्य मे यह दिखलाई नही पडता उसका तात्पर्य यह है कि कर्मचारी तैयार होने या यत्र को व्यवस्थित करने मे व्यस्त था।

यो तो अभियोजन (Adaptation) और उत्तेजना (Incitement) को अलग करना कठिन है। लेकिन, अभियोजन का अग भी कार्य वक्र के स्वरूप को प्रभावित करता है अभियोजन के द्वारा कर्मचारी अपने को कार्य मे इस प्रकार लगा लेता है कि उसपर अन्य प्रकार के ध्यानभग का असर नही पडता। क्रेपलिन (Kraeplin) ने इन दोनों के अन्तरों को व्यक्त करने का प्रयास किया है। उसके अनुसार जबतक कर्मचारी अपने कार्य में अभियोजित नही कर लेता तबतक अन्य उत्तेजनाओं के कारण उसका ध्यान कार्य से हटता रहता है। नये कर्मचारियो मे ऐसा अधिक देखने मे आता है, लेकिन अभियोजन हो जाने पर वह किसी प्रकार के ध्यानभग से मुक्त हो जाता है।

बिल्स (Bills) ने अवरोधन (Blocking) के अग को व्यक्त किया है। इस सबध मे उसका कहना है कि मनुष्य बिना किसी रुकावट के किसी भी प्रकार का मानसिक कार्य नही करता। एक मिनट मे कम से कम चार पाँच बार ऐसा समय आता है कि अवरोधन के कारण उसके काम मे बाधा पडती है, क्योकि उस समय मस्तिष्क की क्रिया उस कार्य के लिये अवरुद्ध हो जाती है। यह कार्य और व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है। कभी-कभी यह लगभग एक मिनट तक बना रहता है जिसके कारण कर्मचारी अपने

काम को नही कर पाता। अभी तक उपकी व्याख्या सतोषप्रद नही हो सकी है। इसलिये इसके सम्बध मे निश्चयात्मक रूप से कुछ कहना कठिन है। फिर भी, ऐसी आशा है कि निकट भविष्य मे इस पर काफी प्रकाश पड़ेगा और हम इसके प्रभाव से कर्मचारियों और कार्य को निर्मुक्त रख सकेंगे।

शारीरिक अग (Physiological factor) शारीरिक अगो मे शारीरिक अक्षमता, जिससे व्यक्ति शीघ्र थक जाता है, प्रमुख है। कमजोर शरीर, कमजोर आख, ऊँचा सुनना या अन्य किसी शारीरिक अग की गड़बड़ी भी व्यक्ति की कार्य क्षमता को प्रभावित करती है। कुछ बाहरी वस्तुएँ ऐसी भी होती है जिनसे व्यक्ति की शारीरिक अवस्था प्रभावित हो जाती है और फलत वह ठीक से काम नही कर पाता। कुछ ऐसे अगो का उल्लेख नीचे किया जाता है।

निद्रा के अभाव (Want of sleep) का असर कार्य पर क्या पड़ता है, इसके सम्बन्ध के निश्चयात्मक प्रयोगात्मक निर्णय उपलब्ध नहीं है, किन्तु इतना अवश्य है कि जो मनुष्य अच्छी तरह सोता है और जिसमे निद्रा का अभाव नही रहता, वह निद्रा के अभाववाले व्यक्ति की अपेक्षा अधिक और अच्छा कार्य कर सकता है।

आसव पान (Drug addiction) का प्रभाव कार्य पर देखने के लिये जितने भी प्रयोग किये गये है उन सबसे यह स्पष्ट है कि आसव पान कार्य के लिये घातक सिद्ध होता है। हालिंगवर्थ (Hollingworth) ने अपने कुछ प्रयोज्यो पर विभिन्न प्रयोगो के साथ आसव पान के असर का अध्ययन किया जिसके प्रयोग परिणाम भी उपयुक्त कथन की ही पुष्टि करते है।

तम्बाकू का असर देखने के लिये जो प्रयोग किये गये है उनके परिणाम मे समरसता (Uniformity) नही है, किन्तु जो प्रमाण उपस्थित है उनके आधार पर कहा जा सकता है कि अभ्यस्त प्रौढ व्यक्ति के काम मे तम्बाकू घातक सिद्ध न होकर लाभप्रद सिद्ध होता है। सामान्य जीवन मे भी ऐसा देखने मे आता है कि जो सिगरेट, जर्दा, आदि के अभ्यस्त होते है वे उनका उपयोग करते हुए अधिक और अच्छी तरह काम करते है। किन्तु, जो किसी कारणवश पहले पहल तम्बाकू का व्यवहार करते है, उनकी मानसिक और शारीरिक अवस्था असामान्य हो जाती है और वे अपने कार्य को अच्छी तरह करने मे असफल होते है।

ग्लेज (Glaze) ने तीन प्रयोज्यो पर प्रयोग करके यह प्रदर्शित किया कि एक दिन के उपवास का असर कार्य पर परिलक्षित नही होता, लेकिन एक दिन से अधिक उपवास कार्य के लिये घातक सिद्ध होता है। उपवास के कारण उसके सभी प्रयोज्यो के कार्यो में अत्यधिक कमी दृष्टिगोचर हुई। किन्तु, उपवास खण्डित कर देने पर वे अपनी पूर्ण कार्य कुशलता को पुनः प्राप्त करने मे समर्थ हो गये।

वातावरणसम्बन्धी अग औद्योगिक (Industrial) क्षेत्र मे प्रकाश के सबंध मे जितने प्रयोग हुए है उनसे यह निर्विवाद है कि सूर्य का प्रकाश अन्य प्रकार के प्रकाशों की अपेक्षा कार्य के लिये विशेष लाभप्रद होता है, क्योकि स्वाभाविक प्रकाश का विभाजन समुचित रूप से होने के कारण किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होती। कृत्रिम प्रकाश (Artificial light) अधिक प्रबल या मन्द होने से कार्य के लिये घातक सिद्ध होती है, लेकिन मध्यम कोटि का प्रकाश उपयुक्त प्रतीत होता है।

काम को नही कर पाता। अभी तक इसकी व्याख्या सतोषप्रद नही हो सकी है। इसलिये इसके सम्बध मे निश्चयात्मक रूप से कुछ कहना कठिन है। फिर भी, ऐसी आशा है कि निकट भविष्य मे इस पर काफी प्रकाश पडेगा और हम इसके प्रभाव से कर्मचारियो और कार्य को निर्मुक्त रख सकेगे।

शारीरिक अग (Physiological factors) शारीरिक अगो मे शारीरिक अक्षमता, जिससे व्यक्ति शीघ्र थक जाता है, प्रमुख है। कमजोर शरीर, कमजोर आँख, ऊँचा सुनना या अन्य विकार शारीरिक अग की गडबडी भी व्यक्ति की कार्यक्षमता को प्रभावित करती है। कुछ बाहरी वस्तुएँ या अग भी ऐसे होते है जिनसे व्यक्ति की शारीरिक अवस्था प्रभावित हो जाती है और फलत वह ठीक से काम नही कर पाता। कुछ ऐसे अगो का उल्लेख नीचे किया जाता है।

निद्रा के अभाव (Want of sleep) का असर कार्य पर क्या पडता है, इसके सम्बन्ध के लिये कोई प्रयोगात्मक निर्णय उपलब्ध नही है, किन्तु इतना अवश्य है कि जो मनुष्य अच्छी तरह सोता है और जिनमे निद्रा का अभाव नही रहता, वह निद्रा के अभाववाले व्यक्ति की अपेक्षा अधिक और अच्छा कार्य कर सकता है।

आसव पान (Drug addiction) का प्रभाव कार्य पर देखने के लिये जितने भी प्रयोग किये गये है उन सबसे यह स्पष्ट है कि आसव पान कार्य के लिये घातक सिद्ध होता है। होलिगवर्थ (Hollingworth) ने अपने कुछ प्रयोज्यो पर विभिन्न प्रयोगो के साथ आसव पान के असर का अध्ययन किया जिसके प्रयोग परिणाम भी उपर्युक्त कथन की ही पुष्टि करते है।

तम्बाकू का असर देखने के लिये जो प्रयोग किये गये है उनके परिणाम मे समरसता (Uniformity) नही है, किन्तु जो प्रमाण उपस्थित है उनके आधार पर कहा जा सकता है कि अभ्यस्त प्रौढ व्यक्ति के काम मे तम्बाकू घातक सिद्ध न होकर लाभप्रद सिद्ध होता है। सामान्य जीवन मे भी ऐसा देखने मे आता है कि जो सिगरेट, पान, आदि के अभ्यस्त होते है वे उनका उपयोग करते हुए अधिक और अच्छी तरह काम करते है। किन्तु, जो किसी कारणवश पहले पहल तम्बाकू का व्यवहार करते है, उनकी मानसिक और शारीरिक अवस्था असामान्य हो जाती है और वे अपने कार्य को अच्छी तरह करने मे असफल होते है।

ग्लेज (Glaze) ने तीन प्रयोज्यो पर प्रयोग करके यह प्रदर्शित किया कि एक दिन के उपवास का असर कार्य पर परिलक्षित नही होता, लेकिन एक दिन से अधिक उपवास कार्य के लिये घातक सिद्ध होता है। उपवास के कारण उसके सभी प्रयोज्यो के कार्यो में अत्यधिक कमी दृष्टिगोचर हुई। किन्तु, उपवास खण्डित कर देने पर वे अपनी पूर्ण कार्य कुशलता को पुन प्राप्त करने मे समर्थ हो गये।

वातावरणसम्बन्धी अग औद्योगिक (Industrial) क्षेत्र मे प्रकाश के सबध मे जितने प्रयोग हुए है उनसे यह निर्विवाद है कि सूर्य का प्रकाश अन्य प्रकार के प्रकाशों की अपेक्षा कार्य के लिये अधिक लाभप्रद होता है, क्योंकि स्वाभाविक प्रकाश का विभाजन समुचित रूप से होने के कारण किसी प्रकार की गडबडी नहीं होती। कृत्रिम प्रकाश (Artificial light) अधिक प्रबल या मन्द होने से कार्य के लिये घातक सिद्ध होती है, लेकिन मध्यम कोटि का प्रकाश उपयुक्त प्रतीत होता है।

वातायन (Ventilation) का भी महत्त्व कार्य-कुशलता मे कम नही है। यदि सास लेने के लिये स्वच्छ वायु निरतर मिला करती है तो काम अच्छी तरह होता है, लेकिन स्वच्छ वायु का अभाव कार्योत्पादन को कम कर देता है। इस दिशा मे जितने प्रयोग हुए है वे सभी स्वच्छ वायु के महत्त्व को व्यक्त करते है।

विभिन्न प्रयोगों से यह निर्विवाद है कि साधारणत शीतल वायुमण्डल (Cool atmosphere) कार्य मे सहायक और उष्ण वायुमण्डल हानिकारक सिद्ध होता है। किन्तु, सभी प्रकार के कार्यों के लिये इसे आवश्यक रूप से सत्य नही माना जा सकता। अतएव यह कहना युक्तिसगत होगा कि अनुकूल वातावरण सहायक और प्रतिकूल वातावरण हानिकारक होता है। दूसरे शब्दों में, कार्य के सुन्दर उत्पादन के लिये वातावरण का समुचित रहना आवश्यक है।

शोर (Noise) या अन्य प्रकार के ध्यान भगो का असर कार्य निपुणता को कैसे प्रभावित करता है, इसका उल्लेख ध्यानभग के सम्बन्ध मे किया जा चुका है। इसी प्रकार और भी कई अग कार्य निपुणता को प्रभावित करते है। इन अगो के अतिरिक्त, कार्योत्पादन पर विश्राम और समूह, आदि अगो का भी असर पडता है जिनका उल्लेख आगे स्थल विशेष पर किया जायगा।

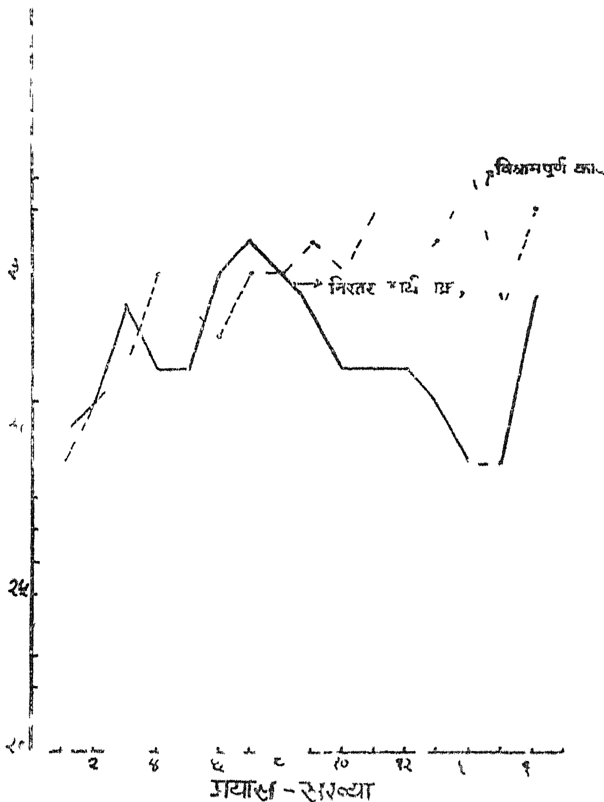
कार्योत्पादन पर विश्राम का प्रभाव (Effect of rest pause on output)

इस बात पर सभी मनोवैज्ञानिक एक मत है कि विश्राम कार्योत्पादन की वृद्धि मे सहायक होता है। वर्नन (Vernon) तथा बेडफार्ड (Bedford) ने अपने एक प्रयोग मे सत्रह बालिकाओ को प्रत्येक घटा काम करने पर दस मिनट का विश्राम दिया। प्रयोग-परिणामो की तुलना करने पर उन्होने पाया कि विश्राम देने से उनके कार्योत्पादन मे बीस प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। एक दूसरे प्रयोग मे साइकिल के बाल को इकट्ठा करने मे नियुक्त सात बालिकाओं के कार्य मे पाँच मिनट प्रति घटा विश्राम देने से १३ प्र० श० की वृद्धि हुई। एरमास्की ने जब अपने प्रयोज्यो को प्रत्येक घटे के अन्त मे ५ मिनट और प्रत्येक सवा घटा के अन्त मे १५ मिनट का विश्राम दिया तो उसे उनके कार्योत्पादन मे २५ प्रतिशत की वृद्धि मिली। इसी तरह, अन्य मनोवैज्ञानिको के प्रयोग परिणाम भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि करते है।

स्मरणीय है कि अनियमित रूप से अनिश्चित काल का विश्राम देना कभी-कभी फायदा न पहुँचा कर उल्टे हानि करता है और कार्योत्पादन बढने की अपेक्षा घट जाता है। उदाहरणार्थ, प्रारभ में जब व्यक्ति अपनी ताजगी और उत्ताप मे काफी काम कर रहा हो और उसे काफी समय का विश्राम दे दिया जाय तो उसका उत्ताप ही समाप्त हो जायगा। विश्राम के बाद वह कार्य को फिर से नये सिरे से प्रारभ करेगा और फलत उसका उत्पादन घट जायेगा। इस तरह के अवाछित विश्राम से प्रयोज्य मे अरोचकता और कार्य के प्रति उपेक्षा का भाव भी आ जाता है और फलत उसके हक मे इसका प्रभाव बुरा पडता है। अत यह महत्त्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न है कि विश्राम कब और कितने समय तक देना लाभप्रद होता है। इन प्रश्नों का उत्तर देने के क्रम मे मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयोग किया है। ग्रैफ (Graff) ने अपने प्रयोगो के आधार पर चालीस मिनट के मानसिक कार्य के लिए दो मिनट और अस्सी मिनट के कार्य के लिए पाच मिनटों का विश्राम देना

कार्योत्पादन के लिए सहायक माना है। एम्बर्ग (Amberg) को अपने प्रयोग में एक घंटे कार्य के मध्य में पाँच मिनट का विश्राम कार्योत्पादन के लिये सहायक और पन्द्रह मिनट का विश्राम घातक प्रमाणित हुआ। इसके अतिरिक्त, अन्य प्रयोगों द्वारा मालूम होता है कि प्रौढ़ व्यक्तियों के लिये दो घण्टा के कार्य में ५ से १० मिनट का विश्राम कार्योत्पादन के लिये लाभप्रद होता है। एक प्रयोग में प्राप्त निम्नलिखित ग्राफ चित्र से कार्योत्पादन पर विश्राम का प्रभाव स्पष्ट हो जायगा।

चित्र संख्या—८६



कार्य-वक्र पर विश्राम का प्रभाव

उपर्युक्त प्रयोगों से स्पष्ट है कि विभिन्न परीक्षणकर्ताओं ने विश्राम काल के संबंध में विभिन्न परिणाम पाया है। प्रयोग परिणामों की भिन्नता के आधार पर यह मानना स्वाभाविक हो जाता है कि सभी प्रकार के कार्य के लिए एक निश्चित विश्राम काल या विश्राम-स्थान नहीं बताया जा सकता। वस्तुतः विश्राम-काल कार्य के स्वरूप और कर्मचारी के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। इसलिए प्रत्येक कार्य के लिए विश्राम-व्यवधान (Rest pause) भिन्न होता है जिसे निर्धारित करना आवश्यक है। प्रायः यह देखा गया है कि अच्छे कर्मचारियों को विश्राम से उतना लाभ नहीं होता जितना कि साधारण कर्मचारियों को होता है। इसके अतिरिक्त, यन्त्रवत कार्यों में विश्राम उतना लाभप्रद प्रमाणित नहीं होता जितना ध्यानावस्थित होनेवाले कार्यों में। विभिन्न प्रयोगों से यह भी स्पष्ट है कि बहुत कम या बहुत

अधिक समय का विश्राम कार्योत्पादन के लिए लाभप्रद नही होता, क्योंकि यदि विश्राम काल बहुत कम समय का रहा तो कर्मचारी उतनी देर में अपने को पूर्ण‌त अभियोजित करने में असमर्थ होता है। अधिक देर के विश्राम के कारण कुछ अशो मे अभ्यास का असर गायब हो जाता है और कार्योत्पादन मे कुशलता नही आती।

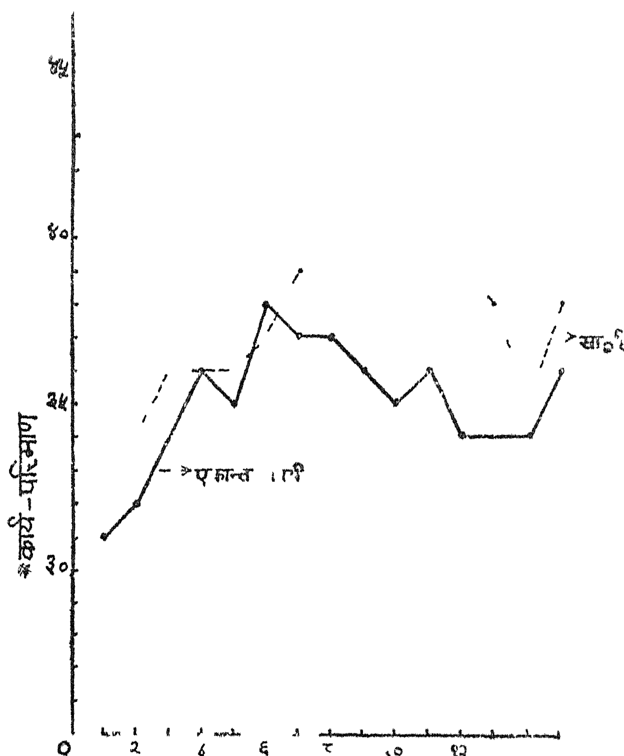
अब दूसरा प्रश्न यह है कि विश्राम कितनी देर तक कार्य करने के बाद दना चाहिए? इसके उत्तर के सबध मे विभिन्न प्रयोगों के आधार पर निस्सकोच कहा जा सकता हे कि जब कार्योत्पादन निपुणता की चोटी पर हो तो उस समय या ठीक उसके बाद विश्राम देना श्रेयस्कर होता है। इस कुशलता को प्राप्त करने के बाद ही कार्योत्पादन में ह्रास दृष्टिगोचर होता है। इसलिए इस समय का विश्राम उन सभी अगों को नष्ट कर देता हे जो कार्योत्पादन के ह्रास में सहायक होते है।

कार्योत्पादन पर सामूहिक वातावरण का प्रभाव

मनुष्य एक सामाजिक जीव है और फलत वह एकान्तकी अपेक्षा समूहमें जीवन यापन करना विशेष पसन्द करता है। इस बात को ध्यान में रखने पर मनोवैज्ञानिकों के लिए यह जानना आवश्यक हो गया कि किसी व्यक्ति के कार्योत्पादन और मानसिक स्थिति मे क्या वस्तुत कोई निश्चित अन्तर पड़ता है, जब वह एकान्त वातावरण से सामूहिक वातावरण मे कार्य करने लगता हे? पहले लोगों का ख्याल था कि अकेले की अपेक्षा समूह मे कार्य करने पर व्यक्ति की प्रसन्नता में जितनी भी वृद्धि हो, परन्तु उसका उत्पादन कम जाता है। लेकिन, अधिकाश मनोवैज्ञानिक प्रयोग-परिणाम इस धारणा के विपरीत आए। उदाहरणार्थ, यहाँ पर कुछ मनोवैज्ञानिक प्रयोगों का उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा। मोदी (Modi) ने कई बालकों से हस्तशक्ति मापक यत्र (Hand dynamometer) से स्नायविक कार्य कराया और फिर उन्हे अपने एक-एक साथी के साथ उसी कार्य को करने को कहा। सामूहिक कार्य का अध्ययन करने पर उसे अकेले की अपेक्षा ग्यारह प्रतिशत कार्य परिमाण मे वृद्धि मिली। ह्विटमोर (Whitmore) ने इस दिशा मे जो प्रयोग कालेज विद्यार्थियों पर किया उसका भी अध्ययन करने से यही पता चलता है कि सामूहिक कार्योत्पादन मे अकेले की अपक्षा २६ प्र० श० वृद्धि हुई थी। एकान्त में काम करते समय कर्मचारी में स्पर्द्धा (Competition) और बढने की भावना नहीं रहती, इसलिए वह किसी भी कार्य को स्थिर गति से आराम के साथ करता है। किन्तु, जब उसे अन्य साथियों के साथ कार्य करना पड़ता है तब उस समय वह अपने अन्य साथियों को, अधिक कार्य करके नीचा दिखाना चाहता है। स्पर्द्धा का यह भाव स्वाभाविक रूप से चाहे या अनचाहे कार्य करता रहता है। इसलिये वह अपनी पूरी शक्ति के साथ काम करता है जिसके फलस्वरूप कार्योत्पादन अधिक परिमाण मे होता हे। लेकिन, इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि कभी कभी ऐसे कर्मचारी भी देखने मे आते है जो समूह की अपेक्षा एकान्त में ही अधिक और सुन्दर कार्य कर सकते है। यदि हम ध्यानपूर्वक देखे तो हमें अपने जीवन साथियों मे बहुत एसे व्यक्ति मिल जायँगे। प्रयोगों से स्पष्ट है कि जो अकेले बहुत कार्य करते है वे समूह मे भी अत्यधिक कार्य करते है। लेकिन, एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सामूहिक कार्य करने मे जो कार्य कुशल होते है वे कार्य तो अधिक कर लेते है, किन्तु कार्य की अच्छाई मे कमी आ जाती है। ऐसा प्राय दो कारणों से होता है। समूह मे व्यक्ति बहुत ही तीव्र गति से काम करता है। इसलिये उसका ध्यान कार्य परिमाण पर ही अधिक रहता है, कार्य की अच्छाई पर नही। दूसरा कारण यह है कि उसका ध्यान

अन्य साथियों के कार्य पर भी जाता रहता है, इसलिए उस कार्य की अच्छाई में कमी का होना स्वाभाविक है। निम्नांकित ग्राफ चित्र में कार्योत्पादन पर सामूहिक वातावरण का प्रभाव स्पष्ट है।

चित्र संख्या ७७



कार्योत्पादन पर सामूहिक वातावरण के प्रभाव का ग्राफ चित्र

थकावट का स्वरूप (Nature of fatigue)

थकावट की व्याख्या मनोवैज्ञानिकों ने तीन दृष्टिकोणों से की है—विषयात्मक (Objective), दैहिक (Physiological), और मानसिक। थकावट के स्वरूप के सम्यक ज्ञान के लिए तीनों दृष्टिकोणों से थकावट की व्याख्या को ध्यान में रखना आवश्यक होगा। सर्वप्रथम विषयात्मक दृष्टिकोण (Objective view) को लें। इस दृष्टिकोण से यह कार्य करने की क्षमता की कमी का परिचायक है। जब जीव किसी कार्य को लगातार करता है तब उसे निरन्तर करने के कारण उसके करने की शक्ति कम हो जाती है। शक्ति या क्षमता की यह कमी थकावट का द्योतक है। निरंतर कार्य करने से उस कार्य की क्षमता में किस तरह कमी आती है, इसे प्रयोगशाला में शारीरिक या मानसिक किसी तरह का कार्य करवा कर देखा जा सकता है। साधारणतः शारीरिक कार्य में थकावट का असर देखने के लिए अर्गोग्राफ (Ergograph) या हैण्डडाइनामोमीटर (Hand dynamometer) का प्रयोग होता है और मानसिक कार्य में थकावट के प्रभाव का पता लगाने के लिए अक्षर निराकरण पत्र (Letter cancellation sheet) या गुणा-पत्र (Multiplication sheet) का इस्तेमाल किया जाता है।

जिस प्रकार थकावट से स्नायविक कार्य मे ह्रास होता है, उसी प्रकार उससे अन्य कार्यो के उत्पादन मे भी कमी पडती है। थकावट से कार्योत्पादन की कमी के साथ-साथ अशुद्धियों की सख्या मे वृद्धि भी होती है। कई कार्यालयों म टाइप करने और हिसाब किताब करने के सबध मे प्रयोग करने पर देखा गया है कि थकावट से मात्र कार्योत्पादन ही नहीं कमता, बल्कि कार्य की अच्छाई मे भी कमी आ जाती है, क्योकि इससे अशुद्धियो की सख्या मे वृद्धि होती जाती है। थकावट के इस दृष्टिकोण को हम औद्योगिक या विषयात्मक थकावट (Industrial or objective fatigue) के नाम से व्यक्त कर सकते है।

दैहिक दृष्टिकोण (Physiological view) से थकावट वह अवस्था है जिसमे कई प्रकार के शारीरिक परिवर्तन होते है। विभिन्न प्रयोगों का करने से यह मालूम हुआ है कि थकावट की अवस्था मे शक्तिदायी उपकरण मे कमी आ जाती है और विषाक्त (Poisonous) पदार्थ रक्त और स्नायुओं मे एक हो जाते है। इसके अतिरिक्त, सास गति, रक्त सचार तथा रक्त-चाप बढ जाते है। इसी तरह, थकावट के समय अन्य रासायनिक परिवर्त्तन भी होते है जिन पर यहाँ पूर्णत प्रकाश डालना कठिन है।

थकावट का तीसरा पहलू मनोवैज्ञानिक या मानसिक है। यह थकावट का आत्मगत रूप है। इसका अनुभव कई कारणो से होता है, यथा, सवेगात्मक प्रवृत्ति, श्रान्ति, (Exhaustion), कार्य करने की अनिच्छा, कार्य पर ध्यानावस्थित होने का अभाव, आलस्य, आदि। थकावट के समय विश्राम करने की इच्छा होती है। इस अवस्था में एक प्रकार का अरुचिकर भाव रहता है जो दैहिक अवस्था के फलस्वरूप होता है। इसमे मात्रा-भेद भी होता है, क्योकि जीव कभी तो कार्य करने म अपनी अन्यमनस्कता व्यक्त करता है और कभी पूर्ण श्रान्ति को भी। लेकिन, थकावट का यह दृष्टिकोण सर्वांग सुन्दर नहीं कहा जा सकता। कई मनोवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया गया है कि प्रयोज्य की आत्मगत थकावट के रहने पर भी कार्य मे किसी प्रकार की सख्यात्मक या गुणात्मक कमी दृष्टिगोचर नही होती। पोफेनबर्गर (Poffenberger) ने बारह कॉलेज के विद्यार्थियों पर वाक्य रचना का प्रयोग करके यह प्रदर्शित किया कि थकावट की अनुभूति में वृद्धि होने पर भी प्रयोगा के साढे पाँच घण्टे निरतर कार्य मे किसी प्रकार की कमी नही पड़ी। रोबर्स ने अपने प्रयोगों द्वारा यह प्रदर्शित किया है कि थकावट की अनुभूति के अभाव में भी प्रयोगों के कार्यो मे कमी दीख पडती है। अतएव इस आत्मगत आधार पर थकावट का निर्णय करना आपत्ति जनक है। इस तरह, यदि ध्यान से देख तो पायेगे कि मानसिक, शारीरिक या विषयात्मक कोई भी दृष्टिकोण थकावट के पूर्ण स्वरूप का सम्यक चित्र प्रस्तुत नहीं करता। इसलिए यही कहना उचित होगा कि थकावट वह मनोशारीरिक अवस्था है जिससे कार्य क्षमता में कमी पडती है। यह परिभाषा विशेष उचित जँचती है, क्योंकि इसमे किसी पहलू की उपेक्षा नही होती और थकावट की विशेषताओं पर भी पूर्णत प्रकाश पडता है।

अब प्रश्न है कि क्या स्नायविक (Muscular) और मानसिक थकावट एक दूसरे से पूर्णत भिन्न और अलग है? उपर्युक्त परिभाषा पर ध्यान देकर इस प्रश्न का उत्तर दे तो कह सकते है कि मानसिक और स्नायविक थकावट एक दूसरे से पूर्णत अलग नही है। मानसिक थकावट के साथ स्नायविक थकावट और स्नायविक थकावट के साथ मानसिक थकावट विद्यमान रहती है। दोनों प्रकार की थकावट मे शारीरिक अवस्था मे परिवर्त्तन होता है।

उच्चाचल (Higher region) में स्थित नाड़ी कोषों (Nerve cells) के कार्य में क्षति पड़ने के कारण मानसिक थकावट का आविर्भाव होता है जिसके फलस्वरूप कार्य में कमी और श्रान्ति का अनुभव होता है। वाटसन ने व्यक्त किया है कि मानसिक थकावट मासपेशीस्वर (Vocal muscle) के सकोचन स्वरूप होती है। इसके अतिरिक्त, अन्य स्नायुओ के सकोचन के परिणाम स्वरूप, जिनका सबध मानसिक कार्य से रहता है मानसिक थकावट का आविर्भाव होता है। इसलिए स्नायविक थकावट और मानसिक थकावट में कोई विशेष अतर नही है। जिस प्रकार हाथ या पैर से देर तक लगातार कार्य करने से उनका नियत्रण करना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार लगातार मानसिक कार्य करने से भी उसमे सन्निहित मासपेशियो का नियत्रण करना कठिन हो जाता है। इस तरह, स्पष्ट है कि थकावट को उपर्युक्त दो प्रकारो मे बाँटने से दोनो की पूर्ण स्वतत्रता का प्रमाण मिले, ऐसी बात नही। वस्तुत सुविधा के लिये मनोवैज्ञानिको ने इनका अध्ययन अलग अलग किया है। इसके स्वरूप के पूर्ण ज्ञान के लिये यह भी व्यक्त कर देना आवश्यक है कि थकावट आवश्यक तथा अनावश्यक दो तरह की होती है। अनावश्यक थकावट तो कार्य-विधि (Method of work) या अन्य सुधारों से पूर्णत विनष्ट की जा सकती है, लेकिन आवश्यक थकावट को पूर्णत दूर नही किया जा सकता। विश्राम, कार्य-विधि, आदि की समुचित व्यवस्था करने पर उसमे कमी लाई जा सकती है।

थकावट की अध्ययन-विधियाँ

हम ऊपर देख चुके है कि थकावट की व्याख्या तीन दृष्टिकोणो से की गई है—दैहिक, मानसिक और क्रियात्मक। लेकिन, कार्य के स्वरूप के आधार पर थकावट दो तरह की होती है। इसलिये पहले विभाजन के अनुसार हम थकावट की अध्ययन विधियों को तीन श्रेणियों मे रख सकते है—दैहिक विधि, मानसिक या मनोवैज्ञानिक विधि तथा उत्पादन (Production) या कर्मशाला-अभिलेख विधि (Workshop record)। कार्य के स्वरूप के आधार पर केवल दो विधियो का उल्लेख हो सकता है—शारीरिक थकावट अध्ययन-विधि और मानसिक थकावट-अध्ययन विधि। इन दोनो विधियो का उल्लेख कार्य के स्वरूप के सिलसिले मे कुछ अशों में किया गया है। अत यहाँ उपर्युक्त तीनो प्रकार की थकावटों का अध्ययन करने के लिये तीनो विधियों का उल्लेख सक्षेपत करना अपेक्षित है।[1]

थकावट की दैहिक अध्ययन विधि के अन्तर्गत हम प्राणवायु (Oxygen) के अन्दर लेने, नाड़ी गति (Pulse rate), रक्त चाप (Blood pressure), मूत्र (Urine), लार (Saliva) और अन्य प्रकार के रक्त तथा शारीरिक स्राव (Bodily Secretion) के रासायनिक विश्लेषण करने वाले परीक्षणो की चर्चा कर सकते है। इन परीक्षणों के जरिये यह जानने की कोशिश की जाती है कि थकावट के समय नाड़ी गति कितनी रहती है, मूत्र और लार मे किस प्रकार के रासायनिक परिवर्त्तन होते है, आदि।

मानसिक या मनोवैज्ञानिक विधि के दायरे मे साम्वेदनिक निर्णय (Sensorry discrimination), ध्यान, स्मरण, कल्पना, बौद्धिक निर्णय (Intellectual Judgment) और तर्क (Reasoning) के परीक्षण आते है।

विभिन्न आकुचन दर्शी या अर्गोग्राफ (Ergographs), हस्तशक्ति दर्शी (Hand

१ इन विधियो की पूर्ण जानकारी के लिए लेखक का 'मनोवैज्ञानिक प्रयोग' देखें।

dynamometers), मार्टिन स्प्रिग तुला (Martin spring balance), आदि के परीक्षणों से विभिन्न स्नायु-समूहो के शक्ति उत्पादन का ज्ञान होता है। अक्षर निराकरण (Letter cancellation), गुणा, योग, आदि के परीक्षणा से मानसिक कार्य के उत्पादन की जानकारी होती है। ये परीक्षण उत्पादन या कर्मशाला-अभिलेख विधि की श्रेणी मे रखे जा सकते है।

विद्वानों ने उपर्युक्त विधियों के अन्तर्गत आये हुए विभिन्न परीक्षणो के गुण दोषों का विवेचन विशद रूप से किया है। लेकिन, हम उनका उल्लेख करना यहा आवश्यक नही समझते। वस्तुत किसी भी परीक्षण की प्रामाणिकता और उपयुक्तता के सम्बन्ध मे विद्वानों मे मतैक्य नही है। प्राय सभी परीक्षणो को व्यवहृत करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ है। दैहिक, मनोवैज्ञानिक या मानसिक परीक्षणों के परिणाम को प्रयोज्य की मनोवृत्ति, इच्छा, आदि प्रभावित करते है। इसके अतिरिक्त, इनमे और भी कई प्रकार के दोष पाये जाते है। इसलिय किसी भी परीक्षण के परिणाम के सम्बन्ध मे यह निश्चयात्मक रूप से नही कहा जा सकता कि वह मात्र थकावट से प्रभावित हुआ है या अन्य अगो से भी। यद्यपि सामान्यत यह मान्य है कि थकावट के कारण उत्पादन मे कमी और सवेगात्मक जीवन म गडबडी आती है, किन्तु ऐसा कथन वैज्ञानिक नही कहा जा सकता। प्रलोभन (Incentive), अभ्यास, उत्ताप, उत्साह, अस्वस्थता, आदि के अगों या चलराशियों (Variables) का असर उत्पादन पर आवश्यक रूप से पड़ता है। इसी कठिनाई को ध्यान मे रखते हुए धर्स (Dhers) ने कहा है कि न तो वैज्ञानिक रूप से थकावट को अलग किया जा सकता है और न मापा ही जा सकता है।[1] विचार करने पर उसकी यह उक्ति पूर्णत ठीक मालूम होती है।

उत्पादन वक्र (Production curve) को सामान्यत थकावट को मापने का बहुत सतोषप्रद माध्यम माना गया है, लेकिन इसमे भी वे त्रुटियाँ मौजूद है जो अन्य विधियों या परीक्षणों मे है। इसका प्रधान कारण यह है कि कार्य-वक्र मात्र थकावट से प्रभावित न हो कर अन्य अगों से भी होता है। अभी तक किसी ऐसे परीक्षण का निर्माण नही हो सका है जिससे यह मालूम हो कि मनोवृत्ति, उत्ताप, अभिरुचि तथा अन्य सवेगात्मक अगों का असर कार्य-वक्र पर किस अश तक पडता है। वर्तमान परिस्थिति मे एसे परीक्षण के निर्माण की आशा करना भी युक्तिसगत नही है। इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुए म्युसिओ (Muscio) ने थकावट को वैज्ञानिक अध्ययन के क्षेत्र से अलग रखने की सलाह दी है। किन्तु, मोसो (Mosso), ग्रैफ, क्रेपलिन, प्रभृति विद्वानों के अध्ययन से जिन तथ्यों का उद्घाटन हुआ है वे सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण से कम महत्त्व के नही है। कार्य-वक्रो की सामान्य एकरूपता को ध्यान मे रखते हुए भी परिस्थिति को पूर्णत निराशाजनक नही कहा जा सकता। इसीलिये इन कठिनाइयों के रहते हुए भी मनोवैज्ञानिक थकावट को अपने अध्ययन से तिरस्कृत करने के इच्छुक नहीं है। थकावट और अन्य मानसिक अवस्थाओं मे जो अन्तर है, वह निर्विवादत सत्य है। अत विभिन्न कठिनाइयों के रहते हुए भी मनोवैज्ञानिक ऐसे परिक्षणों के निमाण मे सतत प्रयत्नशील है जो थकावट के असर को निश्चयात्मक रूप से व्यक्त कर सके। आशा है वे अपने प्रयास मे शीघ्र ही सफल होंगे और इसका अध्ययन वैज्ञानिक ढग से हो सकेगा।

1 Fatigue can neither be scientifically isolated nor measured(Dhers)

सत्रहवाँ अध्याय

व्यक्तित्व (Personality)

व्यक्तित्व का स्वरूप

व्यक्तित्व आधुनिक मनोविज्ञान का एक [illegible] महत्त्वपूर्ण और प्रमुख विषय है। व्यक्तित्व का अध्ययन उन्नीसवीं सदी के अन्त में प्रारम्भ हुआ जब गाल्टन ने अपनी पुस्तक 'हेरिडीटरी जिनीयस' ('Hereditary Genius') में व्यक्तिक भिन्नता की पहली बार घोषणा की। गाल्टन ने बताया कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती है जो दूसरे मे नही होती और फलत प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न हुआ करता है, अथवा प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अपने ढंग का अनोखा होता है। किन्तु, व्यक्ति की उन विशेषताओं का स्वरूप जिससे उसका व्यक्तित्व निर्धारित होता है, विवाद का विषय है।

व्यक्तित्व को अंग्रेजी में 'पर्सनालिटी' (Personality) कहते है। 'पर्सनालिटी' शब्द की उत्पत्ति लेटिन के 'परसोना' (Persona) शब्द से बताया जाता है। आज से बहुत पहले यूनानी अभिनेता तरह तरह के रूप बनाने के लिए 'परसोना' पहना करते थे। इस तरह, बहुत शुरू मे व्यक्तित्व का [illegible] रूप-रंग और रग रूप से लगाते थे। आज भी हम अपने साधारण [illegible] जीवन में व्यक्तित्व का अर्थ कुछ इसी अर्थ मे लगाते है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने भी व्यक्तित्व का अर्थ मनुष्य के शरीर-सगठन, वेश भूषा, रहन सहन, आदि [illegible]। किन्तु, व्यक्तित्व की यह व्याख्या बहुत ही [illegible] और निस्सार प्रतीत होती है। अतीत और वर्त्तमान का इतिहास इस बात का साक्षी है कि कितने [illegible] जिनका न तो सुन्दर शारीरिक सगठन है और न देखने मे सुन्दर है और न [illegible], फिर भी उनका व्यक्तित्व काफी महान् है, उदाहरण-स्वरूप [illegible]। अत शरीर रचना, वेश भूषा, आदि व्यक्तित्व के बोधक नही है। किन्तु, उनकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती, क्योंकि व्यक्तित्व मे इन अगों का भी योगदान रहा करता है। अत हम इन्हें व्यक्तित्व का एक अंश मान सकते है। [illegible] मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे एक बात बहुत ही महत्त्व की कही है जिसे आज भी माना जाता है और वह केम्फ (Kempf) के शब्दों में "व्यक्तित्व [illegible] का समन्वय है जो किसी वातावरण मे व्यक्ति के विशेष अभियोजन को प्रस्तुत करता है।"[1] किसी भी वातावरण में प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न रूप से अपने को अभियोजित करता है। अभियोजन की यह भिन्नता उनके व्यक्तित्व की भिन्नता के कारण होती है। इस परिभाषा में एक बात और भी ध्यान देने की है और वह है समन्वय (Integration) जिस पर आगे प्रकाश डाला जाएगा।

बहुत से मनोवैज्ञानिक (प्रिन्स, प्रभृति) ने व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के ज्ञान, योग्यता, बुद्धि, चिन्तन, आदि मानसिक गुणों के योग से लिया है। किन्तु, वस्तुत व्यक्तित्व

1 Personality is 'the integration of those systems of habits that represent one individual's characteristic adjustments to his environment."

केवल इन मानसिक गुणों का योगमात्र ही नहीं है। यह दृष्टिकोण किसी प्रकार आंशिक सत्य को प्रतिपादित करता है। कोई कितना भी ज्ञानी और चिन्तनशील क्यों न हो, परन्तु यदि वह व्यवहार-कुशल नहीं है तो उसका व्यक्तित्व अपूर्ण ही रह जाता है।

अमेरिका के कई मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व का व्यवहार सामाजिकता के अर्थ में किया है। इसीलिये मे (May) का कहना है कि व्यक्तित्व वही है जिसका प्रभाव समाज पर पडता है। किसी व्यक्ति की उपस्थिति या अनुपस्थिति का अनुभव हमलोग उसके व्यक्तित्व के ही कारण करते हैं। इसी प्रकार, एक मनोवैज्ञानिक का कहना है कि व्यक्तित्व के ही कारण कोई व्यक्ति अन्य लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। किन्तु, व्यक्ति की सामाजिकता ही उसका व्यक्तित्व नहीं है, व्यक्तित्व का एक अंग भले ही हो। व्यक्तित्व उसमे भी रहता है जो किसी भी समाज मे नहीं रहता। कभी-कभी तो जो लोग समाज से अलग रहते हैं उनका व्यक्तित्व समाज मे रहनेवालों की अपेक्षा बढ़ा चढ़ा रहता है।

मनोविज्ञान के इतिहास मे सबसे पहली बार जी० डब्लू० ऑलपोर्ट (G W Allport) ने व्यक्तित्व पर एक पुस्तक प्रयोगों सहित सन १९ ९ ई० मे प्रकाशित की। उसने तबतक की दी गई सभी परिभाषाओं और व्याख्याओं का अध्ययन कर के पाया कि व्यक्तित्व का इस्तेमाल पचास विभिन्न अर्थों मे हुआ है, जिनमे से कुछ तो इसके ऊपरी स्वरूप को व्यक्त करते हैं तथा कुछ मानसिक और आन्तरिक स्वरूप को। उसने इन सब मतान्तरों को सहेजकर रख कर अपनी परिभाषा इन शब्दों मे दी 'व्यक्तित्व, व्यक्ति के मनोदैहिक मण्डल (Psychophysical system) का वह गत्यात्मक संगठन (Dynamic organisation) है जो उसके वातावरण के अपूर्व अभियोजन (Unique adjustment) को निर्धारित करता है।'[1] इस परिभाषा के विभिन्न अंगों पर यदि समुचित ध्यान दिया जाए तो व्यक्तित्व का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। पहली बात जो ऑलपोर्ट ने कही वह यह कि व्यक्तित्व के लिए न तो केवल मानसिक स्तर महत्त्वपूर्ण है और न शारीरिक अथवा बाह्य। वह दोनों की समन्वय पर जोर देता है। दूसरे शब्दों में, व्यक्तित्व केवल विभिन्न शीलगुणो का जोड़ मात्र नहीं है, बल्कि उसमे विभिन्न शीलगुण (Traits) आपस में एक दूसरे से सम्बद्ध रहते हैं। दूसरी बात, व्यक्तित्व कुछ दैवी देन नहीं है जो सदा एक तरह का रहे। यह गत्यात्मक स्वरूप का है, फलत वातावरण, सभ्यता, संस्कृति, आदि के प्रभाव से बदला भी करता है। यहाँ पर, व्यक्तित्व के गत्यात्मक स्वरूप से यह न समझना चाहिए कि हर व्यक्ति का व्यक्तित्व सदा परिवर्त्तित होते रहता है। व्यक्तित्व की विशेषता है (जैसा इस परिभाषा मे भी है) विभिन्न वातावरण मे सफलता पूर्वक अपने को अभियोजित करना। अतएव इसमे गत्यात्मकता के साथ साथ नित्यता (Constancy) रहती है, क्योंकि व्यक्तित्व की सार वस्तु मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं होता है। आजकल सभी मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व का अध्ययन करते समय दो बातों पर ध्यान देते हैं—(अ) व्यक्ति अपने आप को अभियोजित किस प्रकार करता है, यानी, वह अपनी आवश्यकताओं और अपनी इच्छाओं को कैसे व्यक्त करता है, तथा (ब) अपने को दूसरों के बीच कैसे अभियोजित करता है, यानी, दूसरो के साथ उसका व्यवहार किस

१ Personality is the dynamic organisation within the individual of those psychophysical systems that determine his unique adjustment to his environment " Allport

प्रकार का होता है। इस तरह, इन दिनो व्यक्तित्व के सिलसिले मे अभियोजन का बहुत ही अधिक महत्त्व है, जो व्यक्ति की वैयक्तिकता को बनाए रखता है।

यद्यपि विद्वानों ने ऑलपोर्ट की उपर्युक्त परिभाषा को भी अधूरा कहा है तथापि हम इसकी विशेषताओ की उपेक्षा नही कर सकते। यह परिभाषा विभिन्न शीलगुणो के समन्वित संघात (Integrated pattern) या सतुलित एकत्व एव अभियोजनशीलता दोनों ही पर जोर देती है। यह कुछ अशो मे भारतीय दृष्टिकोण का भी प्रतिपादन करती है। अत ऑलपोर्ट की परिभाषा मान्य है।

व्यक्तित्व के स्वरूप को और भी स्पष्ट करने के लिए इसे चरित्र तथा स्वभाव जैसे मिलते-जुलते पदों से अलग करना अच्छा होगा। बहुत लोग व्यक्तित्व का व्यवहार चरित्र के अर्थ में कर दिया करते है। परन्तु, वस्तुत चरित्र तो व्यक्तित्व का एक अश मात्र है। साथ ही, चरित्र पद का सम्बन्ध बहुत कुछ नैतिकता से है और विद्वान् लोग इसका मूल्याकन भी उसी कसौटी पर करते है। किन्तु व्यक्तित्व का सम्बन्ध नैतिकता से नही है और न इसका मूल्याकन ही इस कसौटी पर हो सकता है। हम सत्यता, ईमानदारी, निर्दयता, आदि चारित्रिक बीजतत्त्वो को उचितानुचित की कसौटी पर कस सकते है। लेकिन, सामाजिकता, आक्रामकता (Aggressiveness), आदि व्यक्तित्व के बीजतत्त्वों को नैतिकता की कसौटी पर कदापि नही कस सकते।

यद्यपि व्यक्तित्व और स्वभाव दोनो का सम्बन्ध व्यवहार से है, लेकिन इनमे अन्तर है। स्वभाव से व्यक्ति के कुछ व्यवहार के रूप-संघातो का बोध होता है जिनका सम्बन्ध सवेगों से रहता है। स्वभाव का आधार सवेग है। यह सदा अन्त स्रावी ग्रन्थियों (Endocrine glands) की क्रियाशीलता पर निर्भर करता है। दूसरी ओर, व्यक्तित्व का आधार सवेग नही है और न केवल इसके लिए अन्त-स्रावी ग्रन्थियों की क्रियाशीलता ही महत्त्वपूर्ण है। यह तो एक अग मात्र है। इस तरह, हम कह सकते है कि स्वभाव व्यक्तित्व नहीं, बल्कि व्यक्तित्व का एक अश है जो इसके शीलगुणों को प्रभावित करता है।

व्यक्तित्व के अंग (Factors of personality)

व्यक्तित्व को निर्धारित करने म जिन अगों का हाथ रहता है उन्हे हम दो भागों मे बाँट सकते है—(१) जैव अग (Biological factor) तथा (२) सामाजिक और आर्थिक अग। कभी कभी मनोवैज्ञानिको ने इन्हे आनुवशिकता और वातावरण के नामों से भी व्यक्त किया है। किन्तु, इन्हे जैव और सामाजिक तथा आर्थिक अग का ही नाम देना हम समुचित समझते है। या तो व्यक्तित्व निर्धारण में कुछ विद्वानों ने जैव और कुछ विद्वानो ने सामाजिक अग के महत्त्व को प्रदर्शित किया है, लेकिन यहाँ हम दोनों पर क्रमश प्रकाश डालेगे और यह देखेगे कि व्यक्तित्व में किसका कितना हाथ है।

(१) जैव अंग (Biological factor)

जैव अग के अन्तर्गत मुख्यत तीन अगों का नाम आता है। ये तीनों हैं —(क) शरीर-रसायन और अन्त स्रावी ग्रन्थियाँ (Body Chemistry & Endocrine glands), (ख) शरीर रचना और स्वास्थ्य (Pyhsique & health) तथा (ग) नाड़ीमंडल (Nervous system)

(क) शरीर रसायन और अन्त स्रावी ग्रन्थियाँ (Body chemistry and endocrine glands) मनुष्यो के स्वभाव और शारीरिक अवस्था में भिन्नता होने के कारण उनकी प्रकृति और व्यवहार मे भी अन्तर पडता है। स्वभाव और शारीरिक अवस्था मनुष्य के शरीर-रसायन (Body chemistry) पर अवलम्बित है। हमारे सम्पूर्ण शरीर मे रक्त सचार के साथ ही तरह तरह के रसायनो का सचार भी होता है और इन्ही रसायनों के अनुकूल हमारी शारीरिक अवस्था बदलती रहती है। शरीर रसायन अत स्रावी ग्रन्थियो की क्रियाशीलता पर निर्भर करता है। य ग्रन्थियाँ एसी है जिनका स्राव शरीर के अन्दर होकर खून मे मिल जाया करता है। जिस तरह का और जितनी मात्रा मे यह स्राव खून मे मिलता है उसक अनुरूप ही खून के रासायनिक तत्त्व म भी परिवर्त्तन होता है। सामान्यत इन ग्रन्थियो का प्रभाव शारीरिक विकास और पाचन-क्रिया पर प्रत्यक्ष रूप से पडता है। किन्तु, हमारे व्यवहार पर भी इनका कम प्रभाव नही पडता। बाह्य विश्व के प्रति प्रतिक्रिया करने मे जो सुविधा या असुविधा होती है उसका पूर्ण उत्तरदायित्व अन्त स्रावी ग्रन्थियों को है। प्रमुख अन्त स्रावी ग्रन्थियों मे कठ ग्रन्थि (Thyroid gland), उपकठ ग्रन्थि (Parathyroid gland), पीयूष-ग्रन्थि (Pituitary gland), वृक्कस्थ ग्रन्थि (Adrenal gland) एव यौन ग्रन्थि (Sex gland) के नाम आते है। इनकी क्रियाशीलता के फलस्वरूप हमारे व्यवहार मे परिवर्त्तन होता है। यहाँ उपर्युक्त प्रत्येक ग्रन्थि के कार्यों का उल्लेख सक्षेप मे कर देने से हमारे व्यवहार पर उनका जो असर पडता है, वह और भी बोधगम्य हो जाएगा।

कठ-ग्रन्थि (Thyroid gland) कठ ग्रन्थि से एक आभ्यन्तर रस (Harmones) निकलता है जिसका असर व्यक्ति के व्यवहार पर अत्यधिक पडता है। जब यह ग्रन्थि औसत से कम क्रियाशील रहती है तो मनुष्य का शारीरिक और मानसिक विकास पूर्ण रूपेण नही होता और उसकी चिन्तन और स्मरण प्रक्रियाएँ मन्द पड जाती है, क्योंकि ऐसा व्यक्ति मानसिक दुर्बल (Mentally deficient) होता है। उसमे थकावट और शिथिलता के लक्षण दिखलाई पडते है। इस ग्रन्थि के अत्यधिक क्रियाशील होने पर मनुष्य चिन्तित और आकुल रहता है। उसे अच्छी तरह नीद भी नहीं आती। अत व्यवहार की समरसता के लिए इसकी मध्यम क्रियाशीलता अपेक्षित है।

उपकठ ग्रन्थि (Parathyroid gland) उपकठ ग्रन्थि का मुख्य कार्य कठ-ग्रन्थि की क्रियाशीलता को सतुलित बनाए रखना है। उपकठ ग्रन्थि के अधिक क्रियाशील रहने पर मनुष्य शिथिल और शात रहता है और कम क्रियाशील होने पर उत्तेजित हो जाता है। जब इससे अधिक आभ्यतर रस निकलता है तब शरीर के चूना की मात्रा में भी वृद्धि हो जाती है और इसलिए मनुष्य अधिक मात्रा मे उत्तेजनशील हो जाता है। अधिक चूना के कारण स्नायु और मासपेशियों की उत्तेजनशीलता बढ जाती है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति उत्तेजित हो जाता है। इस तरह, इसी ग्रन्थि की क्रियाशीलता के कारण व्यवहार मे शिथिलता या उत्तेजनशीलता देखने मे आती है।

पीयूष-ग्रन्थि (Pituitary gland) पीयूष ग्रन्थि का असर व्यक्ति के शरीर-विकास पर पडता है। इसकी क्रिया मे कमी आ जाने से मनुष्य का शारीरिक और यौन (Sexual) विकास सुचारु रूप से नही होता। एसा मनुष्य कठिन कार्यों में हाथ नहीं बँटाता और न तो उसमे आक्रामकता ही रहती है। वह कापुरुष स्वभाव का होता

है और मामूली घटनाओं से भी घबड़ा कर रोने लगता है। किन्तु, जब यह ग्रन्थि अधिक क्रियाशील हो जाती है तब मनुष्य लम्बा कद का होता है और समय के पहले ही उसमे यौन शक्ति विकसित हो जाती है। ऐसी अवस्था मे मनुष्य झगड़ालू और आक्रामक बन जाता है।

मूत्रस्थ ग्रन्थि (Adrenal gland) मूत्रस्थ ग्रन्थि के बाह्य एवं आन्तरिक दो हिस्से होते है। जब इसका बाह्य भाग कम क्रियाशील होता है तब मनुष्य कमजोर होता है और उसकी अभिरुचि यौन आनन्द की ओर कुछ भी नहीं रहती। ऐसा मनुष्य खिन्न और चिड़चिड़ा स्वभाव का होता है तथा उसमे कई प्रकार की अभियोजन विकृतियाँ पाई जाती है। ऐसा व्यक्ति दूसरो को सहयोग देने मे भी असमर्थ होता है। इस ग्रंथि के अधिक क्रियाशील होने पर मनुष्य मे सावधानी की मात्रा विशेष होती है और उसका व्यवहार भी सतुलित होता है।

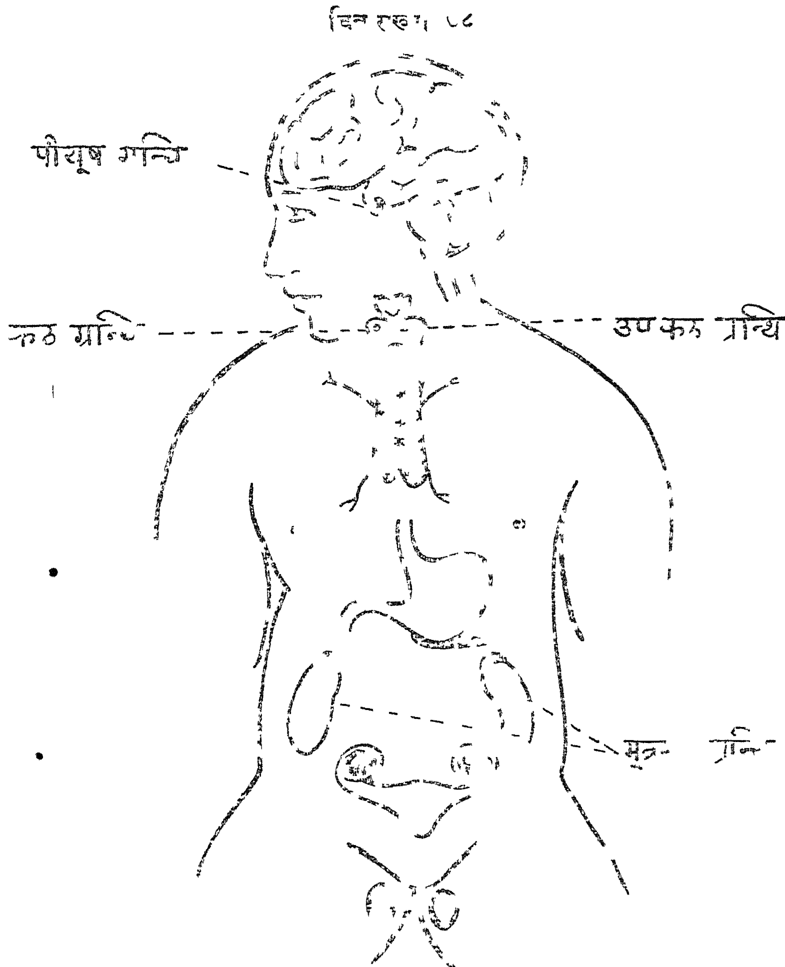
मूत्रस्थ ग्रन्थि के आन्तरिक भाग की क्रिया मे कमी आने पर मनुष्य अपने को सवेगात्मक स्थिति मे अभियोजित करने में असमर्थ पाता है। इसलिए वह अपने जीवन मे भी असफल रहता है। जिन व्यक्तियो मे इस ग्रन्थि का आन्तरिक भाग अत्यधिक क्रियाशील रहता है वे शीघ्र ही उत्तेजित हो जाते है। ऐसे लोगो मे सक्रियता, चचलता और सुखवादिता के व्यापार देखने मे आते है।

यौन ग्रन्थि (Sex gland) यौन ग्रन्थियो से तीन तरह के आभ्यान्तर रस (Harmones) निकलते है जो व्यक्ति के स्त्रैण और पौरुष स्वरूप का निधारित करते है। सम यौन और विपरीत यौन मे रुचि अथवा विरक्ति इन्ही ग्रन्थियो के कारण होती है। इसी प्रकार, अन्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ भी मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करती है। इन सभी ग्रन्थियो का असर व्यवहार पर अप्रत्यक्ष रूप से ही पड़ता है, क्योकि प्रत्यक्ष रूप से तो ये पाचन क्रिया (Metabolic process) को ही प्रभावित करती है। पाचन-क्रिया अपना असर शारीरिक अवस्था पर डालती है जो कि मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करती है।

ग्रन्थियो की कार्य-विधि यहाँ उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ एक दूसरे के प्रभाव से स्वतत्र होकर क्रियाशील नहीं रहती। बल्कि, प्रत्येक की क्रियाशीलता का असर दूसरे पर पड़ता है। कुछ ग्रन्थियाँ ऐसी है जो अन्य ग्रन्थियों की क्रिया को अवरुद्ध कर देती है और कुछ ऐसी है जो अन्य ग्रन्थियो को क्रियाशील बनाए रखने में सहायक सिद्ध होती है। किसी ग्रन्थि विशेष के शिथिल पड़ जाने पर कुछ ग्रन्थियाँ अत्यधिक क्रियाशील बन कर उसकी कमी को पूरा कर देती है। व्यक्ति के सतुलित व्यवहार के लिए किसी ग्रन्थि विशेष की क्रियाशीलता ही आवश्यक नहीं है, बल्कि सभी ग्रन्थियो का सतुलित कार्य अपेक्षित है। किन्तु, इससे यह नहीं समझना चाहिए कि ग्रन्थियों का ही असर मनुष्य के व्यवहार पर पड़ता है और मनुष्य का व्यवहार इन ग्रन्थियों को किसी प्रकार प्रभावित नहीं करता। मादक द्रव्य, रोग, आघात, आदि का जो असर ग्रन्थि की क्रियाओ पर पड़ता है, वह शरीरविज्ञान के विद्वानों से छिपा नहीं है। मनुष्य के सवेगात्मक जीवन का असर अन्तःस्रावी ग्रन्थियो की क्रियाओ पर इतना अधिक पड़ता है कि उससे व्यक्तित्व मे बहुत अन्तर पड़ जाता है। ग्रन्थियों की कार्यवाही में

किसी प्रकार का उपद्रव (Disturbance) मनुष्य के व्यवहार को कैसे प्रभावित करता है, यह हम इसी से जान सकते हैं कि एक अध्ययन में, कैदियों की ग्रन्थियों के सन्तुलन मे सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा दुगुना या तीन गुना मात्रा में गड़बड़ी पाई गई। एक हजार असंतुलित (Maladjusted) बच्चों का अध्ययन करने पर देखा गया कि २० प्र श॰ बच्चों की ग्रन्थियों की कार्यशीलता में गड़बड़ी थी और उनमें अन्य बच्चों के व्यवहार और ग्रन्थियों की क्रिया में स्पष्ट सम्बन्ध था। पीयूष और उपकंठ ग्रन्थियों का हाथ व्यवहार-विकृतियों में अधिक था। अब ग्रन्थियों के उपचार से व्यवहार, सुधार में लोगों को काफी अंशों में सफलता मिल रही है। ग्रन्थियों का स्थान-ज्ञान निम्नांकित चित्र से और भी स्पष्ट हो जायगा।

चित्र संख्या ८८



मानव शरीर की ग्रन्थियाँ

(ख) शरीर-रचना और स्वास्थ्य (Physique and health) शरीर-रचना के अन्तर्गत कद, गठन, वर्ण, केश, बनावट, आदि अंगों की गणना होती है। ये शारीरिक

विशेषताएँ इतनी स्पष्ट होती है कि बहुत से लोग इन्ही से व्यक्तित्व का बोध करते है। लेकिन, उनका यह दृष्टिकोण ठीक नही है। हा, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि यद्यपि ये व्यक्तित्व नही है तथापि ये व्यक्तित्व के द्योतक है। जो मनुष्य शरीर से हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर रहता है उसे देख कर सभी लोग उससे प्रभावित होते है और उसकी शारीरिक रचना की तारीफ भी करते है। प्रशसा का प्रभाव उसके मानसिक पहलू पर ऐसा पड़ता है कि वह अपने को औरो की अपेक्षा श्रेष्ठ समझने लगता है। उसमे आत्म-विश्वास और स्वावलम्बन के भाव विद्यमान रहते है। किसी किसी मे श्रेष्ठता का भाव इतना प्रबल रहता है कि वह कई प्रकार के असामाजिक व्यवहारो का शिकार बन जाता है।

जिस व्यक्ति मे किसी प्रकार का शारीरिक दोष रहता है उसमे हीन भाव (Inferiority feeling) का अकुर इतना प्रबल होता है कि वह अपने को सबसे गया बीता और नीचा समझता है। वह समाज से दूर अकेला जीवन व्यतीत करता है। ऐसे व्यक्ति मे आत्म विश्वास की बहुत कमी रहती है, फलत उसके कार्यों की सफलता सदा संदिग्ध रहती है। अपने अभाव की पूर्ति के लिए अधिकाशत ऐसे व्यक्ति असामाजिक व्यवहारो को अपना लेते है। स्वास्थ्य का भी असर इसी रूप मे व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। जो व्यक्ति स्वस्थ रहता है वह सामाजिक जीवन व्यतीत करता है, जिससे उसमे पूर्णरूपेण सामाजिकता विकसित होती है। परन्तु, अस्वस्थ मनुष्य अपने इस अभाव के कारण पूर्णत असमर्थ रहता है जिसके फलस्वरूप उसका व्यक्तित्व अपूर्ण ही रह जाता है। इस तरह, शारीरिक स्वास्थ्य और रूप के प्रति लोगो की जो प्रतिक्रिया होती है उसका काफी असर व्यक्तित्व पर पड़ता है।

(ग) नाडी-मडल (Nervous system) व्यक्ति की मानसिक योग्यता, क्रियात्मक शक्ति तथा अन्य प्रकार के कौशल उसके नाड़ी मडल पर निर्भर करते है। मनुष्य उन्ही कौशलों और क्रियाओ को सीख सकता है जिसके योग्य उसमे नाड़ी मडल है। नाड़ी-मडल मनुष्य की कई प्रकार की योग्यताओ को इस प्रकार सीमित कर देता है कि लाख प्रयास करने पर भी वह उस सीमा का अतिक्रमण नही कर सकता। मानसिक योग्यता या बुद्धि भी नाड़ी मडल द्वारा निर्धारित होती है। अत उसी के अनुरूप मनुष्य मे विवेक शक्ति भी होती है। हम कितना भी अधिक प्रयास क्यो न करे, किन्तु मन्दबुद्धि व्यक्ति को उच्च कोटि का गणितज्ञ या दार्शनिक नही बना सकते, क्योकि बुद्धिमदता के कारण सूक्ष्म चिन्तन की शक्ति उसमे नही रहती।

केम्फ (Kempf) के अनुसार नाडी मडल के दोनो भाग —स्वचालित नाड़ी मडल (Autonomic nervous system) तथा केन्द्रीय नाड़ी मडल (Central nervous system), व्यक्तित्व को निर्धारित करते है। हमारी तरह-तरह की इच्छाएँ और लालसाएँ स्वचालित नाड़ी मडल की उपज है। लेकिन, हम अपनी सभी इच्छाओं की पूर्ति नही कर पाते। इच्छाओ का सदा वातावरण के साथ सघर्ष होता है। परिणामत वे ही इच्छाएँ अभिव्यक्त होती है जो वातावरण के अनुकूल रहती है। कौन सी इच्छा वातावरण के अनुकूल है, कब किसी इच्छा को प्रकट करना चाहिए, इन सारी बातों का ज्ञान केन्द्रीय नाड़ी मडल के द्वारा होता है। केन्द्रीय नाड़ी मडल से प्राप्त ज्ञान और आदेश के अनुसार ही हम अपने को विभिन्न परिस्थितियो मे समायोजित करते है। इस तरह, स्वचालित नाडी मडल किसी कार्य का व्यवहार करने की प्रेरणा देता है और केन्द्रीय

नाडी-मडल कार्य को पूरा करने मे महायता करता है। इस तरह, हमारे व्यवहार या व्यक्तित्व को निर्धारित करने मे सम्पूर्ण नाडी मडल का महत्त्वपूर्ण हाथ है। अत सब भाग बहुत अशो तक व्यक्तित्व निर्माण मे सहयोग देते है।

(२) सामाजिक और आर्थिक वातावरण (Social & economic environment)

जैसा नाम से स्पष्ट है, व्यक्तित्व के इस अग मे दो अग मिले है--(क) सामाजिक अग और (ख) आर्थिक अग। इन दोनो पर यहा अलग अलग विचार किया जायगा।

(क) सामाजिक वातारण

स्नेह और लालन पालन मनुष्य का व्यक्तित्व विकास उसके जन्मकाल से ही प्रारम्भ होता है। इसलिए उसके व्यक्तित्व पर उसके माता पिता की अमिट छाप पडती है। जिस समय वह उत्पन्न होता है उस समय उसका समाज उसकी माता तक ही सीमित रहता है। उसे अपनी सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माता पर ही निर्भर करना पडता है। इसलिए यदि माता विवेकशील और व्यवहार कुशल रहती है तब तो उसकी सतान का व्यक्तित्व सुचारु रूप से विकसित होता है। ऐसा नही होने मे बच्चों का व्यक्तित्व विकृत हो जाता है। शिवाजी जैसे महापुरुषों के उदाहरणो की कमी नही जिनके व्यक्तित्व विकास का श्रेय उनकी माताओ को है। यदि माता बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्ति समुचित रूप से करती है तो वह बच्चा आगे चलकर कर्मवीर, आशावादी और परोपकारी बनता है, किन्तु जिसे अपने माता पिता का समुचित प्यार नही मिलता वह कर्महीन और निराशावादी बन जाता जाता है। यदि उसका बाल्य-काल तिरस्कृत रहता है तो वह हीन भाव और असुरक्षित भाव से पीडित रहता है और उसमे आत्मविश्वास का भी अभाव रहता है। जिस मनुष्य का बचपन अत्यधिक लाड प्यार मे व्यतीत हुआ रहता है वह मनुष्य परावलम्बी स्वभाव का होता है। अपनी छोटी सी आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए भी वह दूसरों का मुँह जोहता है जिसके फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का विकास आदर्श रूपेण नही होता।

माता पिता का पारस्परिक सम्बन्ध माता पिता के पारस्परिक सम्बन्ध का सीधा असर बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर पडता है। थोडे शब्दो मे यही कहा जा सकता है कि जिस व्यक्ति के माता पिता के पारस्परिक सम्बन्ध मे समरसता और सामञ्जस्य रहता है उसका व्यक्तित्व सुचारु रूप से विकसित होता है जिसके फलस्वरूप उसमे स्वावलम्बन, लगन, सत्यवादिता, आदि अच्छे गुणो का आविर्भाव होता है। किन्तु, जिसके माता पिता का पारस्परिक सम्बन्ध सघर्षमय रहता है उसमे हीनभाव, निराशावाद, आदि के कारण व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नही हो पाता। सघर्ष के कारण न तो बच्चे को मा और बाप दोनो का सतुलित स्नेह मिलता है और न उसे अच्छे आचरण और गुणों के अनुकरण करने का ही अवसर मिलता है।

इकलौती सतान माता पिता की इकलौती सतान को आवश्यकता से अधिक लाड प्यार मिलता है। इसके फलस्वरूप वह जिद्दी और शरारती हो जाता है। बच्चे के लिए शरारती होना एक आवश्यक गुण है, क्योंकि इससे आगे चल कर वह निर्भीक और

साहसी बनता है। किन्तु, आवश्यकता से अधिक दुलारसी होने के कारण वह नियन्त्रण की सीमा प्रारम्भ से ही तोड़ देता है जिससे [illegible] सामाजिक व्यवहारों को सीख कर उसमें अभिरुचि दिखाने लगता है। [illegible], [illegible] उचित रूप से विकसित नहीं हो पाता और वह [illegible] (Introvert) हो जाता है। [illegible] अधिक प्यार मिलने के कारण, [illegible] का भी भाव आ सकता है। यह भी [illegible] सबसे बड़े और सबसे छोटे बच्चों के साथ [illegible]।

परिवार [illegible] वातावरण कुछ और विस्तृत होता है। [illegible] नहीं रखता, बल्कि परिवार के अन्य सदस्यों [illegible] उस परिवार का प्यार मिलने लगता है और [illegible] किसी भी परिवार सदस्य का आसरा लेता है। [illegible] पर उसके परिवार का कम असर नहीं पड़ता है। जिस बच्चे का [illegible] बीच परिवार में बीतता है वह अधिकांशतः [illegible] और [illegible] (Introvert) हो जाता है। बचपन में मनुष्य [illegible] और उसमें अनुकरण करने की एक स्वाभाविक शक्ति रहती है। [illegible] और दोषों का उसके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है [illegible] अनुरूप उसका चरित्र भी मिलता है। हिली (Healy) तथा ब्रानर (Bronner) ने [illegible] करके पाया कि उनमें से २० से २८ प्रतिशत [illegible] चोरी तथा अन्य असामाजिक व्यभिचारों के [illegible]। [illegible] सुन्दर विकास के लिए परिवार के सदस्यों का सम्बन्ध, [illegible]।

पाठशाला और सामूहिक जीवन पारिवारिक [illegible] अतिक्रमण करके जब बच्चा पाठशाला में पहुँचता है तो वहाँ उसे [illegible] और सहपाठी मिलते हैं। वह बहुत कुछ उनसे सीखता है जिससे उसका सामाजिक [illegible] होता है। अधिकारों की रक्षा करना, दूसरों का सहयोग देना, दूसरों [illegible] स्वार्थ की परवाह न करना, आदि गुणों को मनुष्य अपने साथियों से [illegible] है। [illegible] अपने विद्यार्थी जीवन में कई प्रकार के आदर्श गुणों को अपनाने का अवसर मिलता है। उसमें नेतृत्व एवं अन्य शीलगुण इसी अवस्था में विकसित होते हैं। इस तरह, सभी [illegible] का प्रस्फुटन मनुष्य के पाठशालीय तथा अन्य सामाजिक जीवन में होता है। पाठशाला से बाहर होने पर उसका सामूहिक जीवन (Group life) प्रारम्भ होता है जिसका प्रभाव उसके बाद के जीवन पर पड़ता है। जन्म से [illegible] तक मनुष्य के व्यक्तित्व पर सामाजिक वातावरण का [illegible] कि [illegible] में जो भी लिखा जाए वह थोड़ा है। यहाँ इतना ही कहना [illegible] कि मनुष्य के व्यक्तित्व के बनने और बिगड़ने का उत्तरदायित्व [illegible] उसके सामाजिक वातावरण को ही है।

(ग) आर्थिक वातावरण (Economic environment) मनुष्य के व्यक्तित्व पर आर्थिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है कि नहीं, इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में मतैक्य नहीं है। परिवार की आर्थिक स्थिति के प्रभाव को देखने के लिए २१२ बच्चों के व्यक्तित्व-

का अध्ययन किया गया। वे बच्चे ६० से परिवारों से थे व जिनकी आर्थिक अवस्था में भिन्नता थी। इस अध्ययन परिणाम से पता चला कि व्यक्ति के व्यक्तित्व पर आर्थिक अवस्था का असर पड़ता है, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से नहीं अप्रत्यक्ष रूप से। जिनके माता पिता अपनी परिस्थिति से सन्तुष्ट रहते हैं उनके बच्चे में संवेगात्मक अस्थिरता (Emctional instability), आदि दुर्गुण नहीं आते। इस देश में हुए दूसरे अध्ययन से यह पता चलता है कि जिनका जीवन गरीबी में बीतता है उनमें सामाजिकता का अभाव रहता है। ऐसे व्यक्ति आवश्यकता से अधिक संवेगशील, रुक्ष और नकोची होते हैं। उनमे हीन भाव का असर बहुत ही प्रबल रहता है। किन्तु, जिनका जीवन समृद्ध वातावरण मे व्यतीत होता है उनमें इस प्रकार की व्यक्तित्व-विकृतियाँ नहीं रहती। निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि जिन व्यक्तियों का परिवार और समाज दरिद्र रहता है उनका व्यक्तित्व पूर्णत विकसित नही हो पाता। यदि इसका कहीं अपवाद मिलता है तो इसका कारण उस व्यक्ति विशेष की सपुष्ट क्षतिपूर्ति (Over compensation) प्रतिक्रिया और व्यवसाय शक्ति (Volition), आदि है। दूसरे शब्दों में, अपने हीन भाव को छिपाने के लिए वह अपनी शक्ति का सदुपयोग समुचित दिशा मे करता है और परिणामत उसका व्यक्तित्व अच्छी तरह खिल उठता है

व्यक्तित्व को प्रभावित करनेवाले विभिन्न जैव, सामाजिक एव आर्थिक अगो की चर्चा करने के बाद, हम इनके आधार पर आसानी से कह सकते हैं कि यदि शक्तियों को सीमित करना जैव अग का काम है तो उन शक्तियों को उचित दिशा में विकसित करना सामाजिक एव आर्थिक वातावरण का काम है। हमारी तरह तरह की मानसिक और शारीरिक योग्यताएँ जैव अग से प्राप्त होती हैं। हम वातावरण में परिवर्तन करके किसी जड (Idiot) को बुद्धिमान या कुरूप को सुन्दर नही बना सकते। ये गुण जन्मजात अथवा जैव होते हैं। लेकिन, जैव अग से प्राप्त गुणों का समुचित प्रस्फुटन और विकास वातावरण के कारण ही सम्भव है। यदि समुचित वातावरण न मिले तो मनुष्य की कोई भी शक्ति अथवा शीलगुण पूर्णत विकसित न हो। अत व्यक्तित्व के लिए जैव एव सामाजिक आर्थिक अग दोनो ही महत्त्वपूर्ण हैं। एक की अनुपस्थिति में दूसरा व्यक्तित्व को पूर्ण और सफल बनाने मे समर्थ नहीं है।

व्यक्तित्व के शीलगुण
(Traits of personality)

स्वरूप

व्यक्तित्व की परिभाषा के सिलसिले मे कहा गया है कि शीलगुणो का समन्वित सघात (Integrated pattern) ही व्यक्तित्व है। अब प्रश्न है, शीलगुण किसे कहते हैं? यदि हम इसकी व्याख्या करना चाहे तो कह सकते हैं कि जिन बीजतत्त्वों से व्यक्तित्व का निर्माण होता है उन्ही को व्यक्तित्व का शीलगुण कहते हैं। किसी किसी ने इसे व्यक्तित्व-विस्तार (Dimensions of personality) के नाम से भी व्यक्त किया है, क्योंकि व्यक्तित्व मे जितने शीलगुण सन्निहित रहते है उतना ही व्यक्तित्व का विस्तार भी रहता है। उदाहरण स्वरूप, यसक्ति (Persistence), सामाजिकता, विनीतता (Submission), आदि व्यक्तित्व के शीलगुण है। यद्यपि शीलगुण से मनुष्य की

साहसी बनता है। किन्तु, [illegible] अधिक [illegible] के कारण वह [illegible] की सीमा प्रारम्भ में ही तोड़ देता है [illegible] सामाजिक [illegible] को सीख कर उसमें [illegible] उचित रूप में विकसित नहीं हो पाता और वह [illegible] (Altruist) [illegible] जाता है। [illegible] अधिक प्यार मिलने के कारण, [illegible] भी [illegible] जा सकता है। यह भी [illegible] और सबसे छोटे बच्चों के साथ [illegible]।

परिवार [illegible] वातावरण [illegible] और विस्तृत होता है। [illegible] नहीं रखता, बल्कि परिवार के अन्य [illegible] उस परिवार का प्यार मिलने लगता है और अपनी [illegible] किसी भी परिवार सदस्य का आसरा लेता है। [illegible] पर उसके परिवार का कम असर नहीं पड़ता है। जिस बच्चे का [illegible] बीच परिवार में बीतता है वह अधिकतर [illegible] और [illegible] (Introvert) हो जाता है। बचपन में मनुष्य [illegible] और उसमें अनुकरण करने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति रहती है। [illegible] परिवार के गुण और दोषों का उसके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है और उसी के अनुरूप उसका व्यक्तित्व भी [illegible] है। हिली (Healy) तथा ब्रानर (Bronner) ने [illegible] करके पाया कि उनमें से २० से २८ प्रतिशत [illegible] जो शराबखोरी तथा अन्य असामाजिक व्यभिचारों के [illegible]। [illegible] सुन्दर विकास के लिए परिवार के सदस्यों का सम्बन्ध, [illegible]।

पाठशाला और सामूहिक जीवन पारिवारिक [illegible] अतिक्रमण करके जब बच्चा पाठशाला में पहुँचता है तो [illegible] और सहपाठी मिलते हैं। वह बहुत कुछ उनसे सीखता है जिससे उसका सामाजिक विकास [illegible] है। अधिकारों की रक्षा करना, दूसरों का सहयोग [illegible], दूसरों का [illegible] की परवाह न करना, आदि गुणों को मनुष्य अपने साथियों से ही सीखता है। मनुष्य को अपने विद्यार्थी जीवन में कई प्रकार के आदर्श गुणों का [illegible] अवसर मिलता है। उसमें [illegible] एवं अन्य शीलगुण इसी अवसर में विकसित होते हैं। इस [illegible], सभी [illegible] का प्रस्फुटन मनुष्य के [illegible] तथा [illegible] सामाजिक जीवन में होता है। पाठशाला से बाहर होने पर उसका सामूहिक जीवन (Group life) प्रारम्भ होता है जिसका प्रभाव उसके बाद के जीवन पर पड़ता है। जन्म से [illegible] तक मनुष्य के व्यक्तित्व पर सामाजिक वातावरण का [illegible] कि [illegible] सम्बन्ध में जो भी लिखा जाए वह थोड़ा है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के बनने और बिगड़ने का उत्तरदायित्व अधिक मात्रा में उसके सामाजिक वातावरण को ही है।

(ख) आर्थिक वातावरण (Economic environment) मनुष्य के व्यक्तित्व पर आर्थिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है कि नहीं, इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में मतैक्य नहीं है। परिवार की आर्थिक स्थिति के प्रभाव को देखने के लिए [illegible] १२ बच्चों के व्यक्तित्व-

का अध्ययन किया गया। ये बच्चे ६० ऐसे परिवारों से आए थे जिनकी आर्थिक अवस्था मे भिन्नता थी। इस अध्ययन परिणाम से पता चला कि व्यक्ति के व्यक्तित्व पर आर्थिक अवस्था का असर पड़ता है, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से नहीं अप्रत्यक्ष रूप से। जिनके माता पिता अपनी परिस्थिति से सन्तुष्ट रहते है उनके बच्चो मे संवेगात्मक अस्थिरता (Emotional instability), आदि दुर्गुण नही आते। इस दिशा मे हुए दूसरे अध्ययन से यह पता चलता है कि जिनका जीवन गरीबी मे बीतता है उनमे सामाजिकता का अभाव रहता है। ऐसे व्यक्ति आवश्यकता से अधिक संवेगशील, खिन्न और सकोची होते है। उनमे हीन भाव का अंकुर बहुत ही प्रबल रहता है। किन्तु, जिनका जीवन समृद्ध वातावरण मे व्यतीत होता है उनमे इस प्रकार की कोई विकृति नही रहता। निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते है कि जिन व्यक्तियों का परिवार और समाज दरिद्र रहता है उनका व्यक्तित्व पूर्णत विकसित नही हो पाता। यदि इसका कहीं अपवाद मिलता है तो इसका कारण उस व्यक्ति विशेष की समुचित क्षतिपूर्त्ति (Over compensation) प्रतिक्रिया और व्यवसाय-शक्ति (Volition), आदि है। दूसरे शब्दों मे, अपने हीन भाव को छिपाने के लिए वह अपनी शक्ति का सदुपयोग समुचित दिशा मे करता है और परिणामत उसका व्यक्तित्व अच्छी तरह खिल उठता है।

व्यक्तित्व को प्रभावित करनेवाले विभिन्न जैव, सामाजिक एव आर्थिक अगो की चर्चा करने के बाद, हम इनके आधार पर आसानी से कह सकते है कि यदि शक्तियों को सीमित करना जैव अग का काम है तो उन शक्तियों को उचित दिशा मे विकसित करना सामाजिक एव आर्थिक वातावरण का काम है। हमारी तरह तरह की मानसिक और शारीरिक योग्यताएँ जैव अग से प्राप्त होती है। हम वातावरण मे परिवर्त्तन करके किसी जड (Idiot) को बुद्धिमान् या कुरूप को सुन्दर नही बना सकते। ये गुण जन्मजात अथवा जैव होते है। लेकिन, जैव अग से प्राप्त गुणो का समुचित प्रस्फुटन और विकास वातावरण के कारण ही सभव है। यदि समुचित वातावरण न मिले तो मनुष्य की कोई भी शक्ति अथवा शीलगुण पूर्णत विकसित न हो। अत व्यक्तित्व के लिए जैव एव सामाजिक आर्थिक अग दोनो ही महत्त्वपूर्ण है। एक की अनुपस्थिति मे दूसरा व्यक्तित्व को पूर्ण और सफल बनाने मे समर्थ नही है।

व्यक्तित्व के शीलगुण

(Traits of personality)

स्वरूप

व्यक्तित्व की परिभाषा के सिलसिले मे कहा गया है कि शीलगुणो का समन्वित सघात (Integrated pattern) ही व्यक्तित्व है। अब प्रश्न है, शीलगुण किसे कहते है? यदि हम इसकी व्याख्या करना चाहे तो कह सकते है कि जिन बीजतत्त्वों से व्यक्तित्व का निर्माण होता है उन्ही को व्यक्तित्व का शीलगुण कहते है। किसी किसी ने इसे व्यक्तित्व विस्तार (Dimensions of personality) के नाम से भी व्यक्त किया है, क्योंकि व्यक्तित्व मे जितने शीलगुण सन्निहित रहते है उतना ही व्यक्तित्व का विस्तार भी रहता है। उदाहरण स्वरूप, प्रसक्ति (Persistence), सामाजिकता, विनीतता (Submission), आदि व्यक्तित्व के शीलगुण है। यद्यपि शीलगुण से मनुष्य की

व्यवहार-शैली का ही बोध होता है तथापि सभी व्यवहार-शैलियों को हम व्यक्तित्व का शील गुण नहीं कह सकते। जिस व्यवहार शैली में समानता (Uniformity) एवं नित्यता (Constancy) रहती है उसी को शीलगुण कह सकते हैं। इस और भी स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते हैं कि जो व्यवहार [illegible] प्राणिक [illegible] में सभी मनुष्यों में पाई जाती है वही शीलगुण है। इसलिए किसी ऐसी [illegible] को, जो कुछ मनुष्यों में हो और कुछ में न हो, शीलगुण कहना सर्वथा अनुचित है। [illegible] मनुष्य के अन्तस्सार पर निर्भर करता है न कि परिस्थितिविशेष पर। [illegible] परिस्थिति मात्र पर निर्भर करती है, मनुष्य पर नहीं, [illegible] उसके व्यवहार करने का एक ढंग मात्र है, उसका शीलगुण नहीं। यद्यपि इसमें समानता और नित्यता (Constancy) के गुण विद्यमान रहते हैं तथापि इसे स्थिर (Stable) कहना गलत होगा, क्योंकि मनोवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा इसमें [illegible] सापेक्षता (Relativity) प्रमाणित कर दी गई है। 'मे' (May), हार्टशोर्न (Hartshorne), प्रभृति मनोवैज्ञानिकों ने पाठशाला के विद्यार्थियों पर ईमानदारी, सत्यता, आदि शीलगुणों की सापेक्षता को देखने के लिए कई प्रकार का प्रयोग किया है। इन [illegible] पता चलता है कि जिस बालक ने एक परिस्थिति में ईमानदारी का प्रदर्शन किया उसी ने दूसरी परिस्थिति में [illegible] की। इसी प्रकार, बालकों को एक परिस्थिति में चोरी करते पाया गया, किन्तु दूसरी परिस्थिति में नहीं। जिन जिन शीलगुणों पर प्रयोग किया गया उन सभी में सापेक्षता देखी गई।

अब एक प्रश्न यह है कि शीलगुण विशिष्ट होते हैं अथवा सामान्य? ऊपर के प्रयोग-परिणाम में हम देख चुके हैं कि एक स्थिति में जो बच्चा ईमानदारी दिखाता है वह दूसरी स्थिति में भी ईमानदार नहीं रहता। इसी तरह के और भी प्रयोग परिणाम हैं जिनके अनुसार शीलगुण विशिष्ट होते हैं, तभी तो [illegible] एक परिस्थिति में किसी शीलगुण का प्रदर्शन करता है तथा दूसरे में नहीं। मर्फी (Murphy) भी शीलगुणों की विशिष्टता में विश्वास करता है। किन्तु, [illegible] परिस्थिति पर अधिक ध्यान देते हैं तथा जीव पर कम। दूसरी ओर, कुछ ऐसे [illegible] भी हैं जो परिस्थिति की अवहेलना कर केवल व्यक्ति की विशेषताओं पर जोर देते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं जिनके कारण वह अपने किसी शीलगुण का विशेष तौर से किसी भी परिस्थिति में प्रदर्शित करता है। इसी आधार पर ऑलपोर्ट (Allport) शीलगुणों की सामान्यता का ही पृष्ठ-पोषक है। इस तरह, दोनों विचार की त्रुटियाँ स्पष्ट हैं। अतः निष्कर्ष यही है कि कुछ शीलगुण अवश्य ही प्रारम्भ काल से ही विशिष्ट होते हैं, किन्तु मनुष्य में ज्यों ज्यों ज्ञान और अनुभव बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों उनमें सामान्यता आती जाती है। इन शीलगुणों की सामान्यता और विशिष्टता भी परिस्थितिविशेष पर निर्भर करती है। कुछ ऐसे शीलगुण भी हैं जो प्रशिक्षण के फलस्वरूप प्रारम्भ [illegible] सामान्य स्वरूप के हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, जो शीलगुण मनुष्य के मानसिक विकास के अनुरूप होते हैं उनमें सामान्यता रहती है, किन्तु जो उसके मानसिक विकास [illegible] ऊपर होते हैं वे विशिष्ट स्वरूप के होते हैं और कुछ समय बाद मनुष्य की मानसिक [illegible] के साथ साथ वे भी सामान्य बन जाते हैं।

अब एक दूसरा प्रश्न है, व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों में किसी प्रकार का सम्बन्ध है या नहीं? अर्थात्, जिस मनुष्य में सत्यता और [illegible] पाई जाती है उसमें प्रसक्ति (Persistence), बचतो, आदि पाई जाती है या नहीं और यदि पाई जाती है तो किस

मात्रा मे ? इस प्रश्न के उत्तर मे मनोवैज्ञानिकों मे मतैक्य नही है। यदि कोई सत्यवादी है तो यह आवश्यक नही कि वह वीर भी हो। परन्तु, कुछ शीलगुण ऐसे भी है जिनमे धनात्मक सम्बन्ध दीख पडता है। इसी तरह, कुछ शीलगुण एक दूसरे से पूर्णत भिन्न है। किन्तु, व्यक्ति का अनुभव जैसे-जैसे बढता जाता है वैसे वैसे उन स्वतन्त्र शीलगुणो में भी समन्वय आने लगता है।

मनोवैज्ञानिकों ने शीलगुणो की सख्या को भी निश्चित करने का प्रयास किया है। कुछ विद्वानो ने तो अगरेजी के चार हजार ऐसे शब्दों को चुना जो व्यक्तित्त्व के शीलगुण को व्यक्त करते थे। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इनमे काट छाँट कर इनकी सख्या १७१ रक्खी। हर्ष की बात है कि आज शीलगुणों की सख्या को और भी घटा कर ३९ युगल शब्द दिये गये है। इस सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण खोज यह हुई है कि आज से कुछ दिन पहले अन्तर्मुखता (Introversion) तथा बहिर्मुखता (Extroversion) को व्यक्तित्त्व का शीलगुण माना जाता था, परन्तु अब इन्हे कई शीलगुणों का समन्वय माना जाता है। विश्लेषण द्वारा पता चला है कि प्रत्येक मे पाँच प्रकार के अन्य शीलगुण मिले हुए है। यहाँ कुछ प्रमुख शीलगुणों पर प्रकाश डालना अपेक्षित है।

(१) प्रसक्ति (Persistence) प्रसक्ति को दृढाग्रह, इच्छा शक्ति, आदि कई नामो से पुकारा जाता है। जब कोई मनुष्य तरह तरह की बाधाओं और कठिनाइयों का सामना कर के भी प्रारम्भ किए हुए काम को पूरा कर के ही छोडता है तब हम कहते है कि उसमे प्रसक्ति है। ऐसा व्यक्ति उपहास, आलोचना, चिन्ता से दूर अपने अभीष्ट की पूर्त्ति मे पक्का धुनी होता है। अन्त मे सफलता उसे हाथ लगती है। उसमे आत्मबल और आत्मविश्वास काफी प्रबल रूप मे रहता है। इससे ऐसा न सोचना चाहिये कि जिसमें प्रसक्ति होती है वह असफल ही नही होता। असफल भी होता है, किन्तु थोड़े समय के लिए, अन्तिम विजय उसी की होती है।

प्रसक्ति की परीक्षा कई तरह से होती है। कुछ परीक्षण (Tests) भी इस तरह के है जिनसे यह शीलगुण मापा जाता है। साधारणत इसमे प्रयोज्य को किसी कठिन परिस्थिति में रख दिया जाता है अथवा कोई कठिन काम करने को दे दिया जाता है। कभी-कभी प्रयोज्य को कुछ तकलीफ भी दी जाती है, जैसे, हाथ पर धीरे धीरे पिन (Pin) चुभाना। देखा जाता है कि प्रयोज्य कबतक अपने को वैसी कठिन परिस्थिति में रख पाता है, अथवा कबतक तकलीफ सहन कर सकता है। जो कठिनाई से घबडा कर भाग जाता है अथवा तकलीफ सहन नहीं कर पाता उसमे इस शीलगुण का अभाव समझा जाता है तथा ऐसा नहीं होने पर उसमे प्रसक्ति का आरोप किया जाता है। ये परीक्षाये प्रयोज्य की साँस रुकवा कर तथा ऐसे गद्य अवतरण पढा कर, जो प्रारम्भ में आसान और बाद मे कठिन रहते है, भी होती है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मनुष्य में प्रसक्ति का आविर्भाव और विकास माता पिता के प्रशिक्षण (Training) और गृह परिस्थिति पर निर्भर करता है।

(२) अधिकार और विनीत-भाव (Ascendance and Submission) अधिकार और विनीत-भाव का शीलगुण किसी न किसी अश में प्रत्येक मनुष्य में पाया जाता है। जब कई मनुष्य सयोगवश एक साथ हो जाते है तब उनमे से एक व्यक्ति

नेता बन जाता है और शेष अनुयायी। इसका अंकुर बाल्यकाल से ही प्रारम्भ होता है विशेष रूप में पाठशालीय जीवन से। जो व्यक्ति नेता बनता है उसमे मुख्यत अधिकार भाव (Ascendance) रहता है तथा जो उसके अनुयायी रहते हैं उनमे विनीत भाव (Submission)। लेकिन, जो व्यक्ति एक स्थिति मे अधिकार भाव का प्रदर्शन करता है वही दूसरी स्थिति मे विनीत भाव दिखलाता है। किसी भी नेता को लें, प्रत्येक मे यही बात पायेंगे। यों तो इस शीलगुण पर बहुत अधिक अध्ययन हुए हैं, किन्तु, आयोवा (Iowa) विश्वविद्यालय के विद्वानों की खोज विशेष रूप से सराहनीय है। उनकी खोजों से पता चलता है कि जिस व्यक्ति का बचपन उत्तरदायित्वपूर्ण रहता है उसे सामाजिक सम्बन्धों का अनुभव काफी स्पष्ट रूप से रहता है। ऐसे व्यक्तियों मे दूसरों पर प्रभुत्व जमाने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। दूसरी ओर, जिन व्यक्तियों का बचपन अत्यधिक लाड प्यार मे कटता है वे आगे चलकर पराधीन और विनीत स्वभाव के हो जाते हैं। उन्हे किसी भी कार्य मे किसी का अनुकरण मात्र ही करना आता है। विनीत भाव उन व्यक्तियों मे भी देखा जाता है जिनके माता पिता किसी शारीरिक दोष के कारण उनका मजाक उडाते है। पारिवारिक संघर्ष, गरीबी, अनुचित तुलना, आदि हीन भाव को पैदा करनेवाले कारण व्यक्ति को विनीत स्वभाव का बना देता है। इस तरह, अधिकार-भाव के व्यक्तियो मे जहाँ स्वतन्त्र भाव, आत्मविश्वास और स्वावलम्बन, आदि गुण पाए जाते हैं, वहाँ विनीत भाव के व्यक्ति मे घबराहट, परावलम्बन और अनुकरण के गुण पाए जाते है।

यहाँ यह भी कह देना उचित होगा कि दोनो ही शीलगुण अथवा प्रवृत्तियाँ अपने अपने स्थान पर लाभप्रद सिद्ध होती है। अपने से बड़ों के प्रति विनीत-भाव का प्रदर्शन भारतीय शिष्टाचार के अनुकूल और प्रशसनीय है। इसी प्रकार, किसी समुदाय मे जाकर वहाँ अधिकार-प्रवृत्ति का परिचय देना गौरव की बात है। अधिकार और विनीत भाव की जाँच प्रश्नावलि-विधि (Questionnaire method) द्वारा की जाती है। उदाहरण के लिए, प्रयोज्य से निम्नांकित प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

१ आप अपने अधिकार की रक्षा की माँग करते है या नहीं ?

२ आप उत्तरदायित्व लेना पसन्द करते हैं या नहीं ?

३ क्या सभा या सामाजिक बैठकों मे देर से आकर भी आप सबसे आगे बैठने जा सकते हैं ?

४ क्या अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति के सामने हीनता का अनुभव करते हैं ? आदि।

इसी तरह के कुछ प्रश्न पूछ कर प्रयोज्य का उत्तर लिख लिया जाता है। पुन उसके उत्तर के आधार पर ही उसके अधिकार या विनीत भाव का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

(३) संवेगात्मक स्थिरता (Emotional stability) यह व्यक्तित्व का एक प्रधान शीलगुण है। कुछ व्यक्ति साधारण सी बात मे रो पड़ते या हँस देते हैं अथवा क्रुद्ध या भयभीत हो जाते हैं। किसी कठिन परिस्थिति की आशंका मे ही वे घबड़ा जाते हैं। ऐसे व्यक्ति संवेगात्मक अस्थिरता का शिकार रहते हैं। वे शरीर से परिपक्व होते हुए भी संवेगात्मक रूप से परिपक्व नहीं रहते। इसी से उन्हें संवेगात्मक शिशु (Emotional baby) कहा जाता है। दूसरी ओर, जो लोग संवेगात्मक रूप से स्थिर रहते है वे परिस्थिति को समझ कर उसके अनुकूल प्रतिक्रिया करते हैं। वे कठिनाइयों को समझ कर उन्हे दूर करने का उपाय करते हैं, दुखी या चिन्तित हो मात्र घबड़ाते नहीं।

(४) ईमानदारी (Honesty) ईमानदारी सदा से व्यक्तित्व का एक प्रमुख परिचायक रहा है। जिस व्यक्ति मे ईमानदारी का शीलगुण रहता है वह कठिन परिस्थितियो मे भी ईमानदार बना रहता है। ऐसे व्यक्ति लोगों के विश्वासपात्र और प्रिय होते है। ईमानदारी उन्नत व्यक्तित्व की निशानी है। महान् व्यक्तियों ने अपने जीवन मे इसको सदैव बनाए रखने का प्रयत्न किया है। न्याय और अधिकार के नियामक म इस शीलगुण का होना आवश्यक माना गया है।

(५) खिन्नता (Depression) जिस व्यक्ति मे खिन्नता का शीलगुण प्रबल रहता है, वह बहुत ही चिन्ताग्रस्त और दुखी रहा करता है। उसम साहस की कमी रहती है। वह अपनी सही बात को भी प्रकट करने मे डरता है। अपनी इच्छाओं को प्रकट करना उसके लिए मुश्किल रहता है। परिणामत वह अन्दर ही अन्दर असफलता और असमर्थता के प्रभाव से दुखी रहा करता है। दूसरी ओर, कुछ लोग प्रसन्न चित्त हुआ करते है। वे अपने दुखो की भी विशेष परवाह नही करते। सदैव हँसते और मुस्कुराते रहते है, मालूम होता है जैसे कोई परिस्थिति न तो इनके लिए विकट है और न वे कभी कठिनाई मे पडते है। ऐसे व्यक्ति को लोग कहा करते है, 'आपके पास दो घडी बैठने पर जी हल्का हो जाता है'।

व्यक्तित्व-प्रकार (Types of personality)

बहुत पहले से ही भारतीय तथा पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्यो को विभिन्न आधारों पर विभिन्न व्यक्तित्व प्रकारों मे बाँटा है। भारतीय ऋषियो ने सभी मनुष्यो को रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण इन्ही तीन श्रेणियो मे विभक्त किया है। इन श्रेणियो की विभिन्न विशेषताओं पर भारतीय ग्रन्थों मे काफी प्रकाश डाला गया है। वैद्यक के आधार पर वात, पित्त और कफ की प्रधान श्रेणियों मे मनुष्यों का वर्गीकरण और उनकी शारीरिक बनावट और अवस्था का विशद विवेचन किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र व्यक्तित्व के ही प्रकार है। महात्मा तुलसीदास, प्रभृति सन्तो ने भी मनुष्यो का कुछ विभाजन प्रस्तुत किया है। इन विभाजनो म काफी वैज्ञानिक तथ्य छिपा हुआ है।

पाश्चात्य देशो मे सबसे पहले ईसा के कई सौ वर्ष पूर्व यूनान के चिकित्सको ने मनुष्यों को शारीरिक बनावट के आधार पर चार श्रेणियो मे बाँटने का प्रयास किया था। तब से आज तक विभिन्न विद्वानों, चिकित्सकों और मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तित्व का विभिन्न प्रकार देने की चेष्टा की है। परन्तु, यहाँ उन सभी पर प्रकाश डालना असम्भव है। उन्नीसवी सदी के अन्त और बीसवीं सदी के प्रारम्भ में क्रेपलिन और जैने का व्यक्तित्व विभाजन मिलता है। यहाँ हम युङ्ग (Jung) के व्यक्तित्व प्रकार पर सक्षेपत प्रकाश डालेगे और क्रेशमर (Kretschmer) तथा शेल्डन (Sheldon) के व्यक्तित्व प्रकारों का उल्लेख मात्र करेंगे।

युंग का व्यक्तित्व-प्रकार

युङ्ग ने व्यक्तित्व का दो विभाजन किया है। उसका कहना है मनुष्य या तो अन्तर्मुखी (Introvert) होता है या बहिर्मुखी (Extrovert)। विशेष परिचय के लिए इनकी विशेषताओं का उल्लेख कर देना आवश्यक है।

(१) बहिर्मुखी (Extrovert) युङ्ग का कहना है कि जो व्यक्ति बहिर्मुखी व्यक्तित्व का होता है उसके जीवन में बाहरी वस्तुओं और विधेयात्मक (Objective) तत्त्वों की प्रधानता रहती है। फलत वह अपनी मानसिक शक्ति का उपयोग भी विधेयात्मक रूप में करता है। ऐसा व्यक्ति बहुत ही सामाजिक, मधुर और प्रसन्न चित्त हुआ करता है। मित्रों के बीच ही उसका जीवन बीतता है। सामाजिक कार्यों को करने तथा सभा सोसायटी में भाग लेने में उसे आनन्द आता है। किन्तु, वह सामाजिक नियमों का उल्लंघन नहीं करता। स्वार्थपरता से दूर वह बहुत ही प्रशस्त और उदार हृदय का होता है। उसे एकान्त जीवन अत्यन्त अखरता है। उसकी बुद्धि बहुधा रचनात्मक हुआ करती है जिसके फलस्वरूप उसके सामने देश और समाज का नया रूप सदा स्पष्ट रहता है। ऐसा व्यक्ति आत्म विश्वासी, वाकपटु और व्यवहार कुशल होता है। वह अपने भावों को बिना हिचकिचाहट जनता के सामने प्रकट कर देता है। बहिर्मुखी व्यक्ति को अपने से अधिक चिन्ता अपने समाज की रहती है। वह कार्यशील व्यक्ति होता है जो मौका मिलने पर किसी भी काम को करने में नहीं सकुचाता। उसकी अभिरुचि परिवर्त्तनशील होती है, इसलिए वह परिवर्त्तन प्रेमी होता है। अभिनेता, सुधारक, राजनीतिज्ञ, देशसेवक, आदि बहिर्मुखी प्रकार के होते हैं। पुनः युङ्ग ने विचार, संवेदना, भाव और आत्मज्ञान के आधार पर बहिर्मुखी व्यक्तित्व को चार भागों में बाँटा है। जिस बहिर्मुखी व्यक्ति में विचार की प्रधानता रहती है उसने उसे विचार-प्रधान बहिर्मुखी बताया और जिसमें भाव की प्रधानता रहती है उसे भाव प्रधान बहिर्मुखी। इसी प्रकार, अन्य दोनों प्रकारों के भी नाम दिये गये हैं। जिस व्यक्ति में इन चारों में से जिस किसी की भी प्रधानता रहती है, उसके सभी व्यवहार उसी के द्वारा सञ्चालित होते हैं। साथ ही, युङ्ग का विश्वास है कि जिस व्यक्ति का चेतन मन बहिर्मुखी होता है उसका अचेतन मन अन्तर्मुखी होता है।

(२) अन्तर्मुखी (Introvert) अन्तर्मुखी व्यक्तित्व बहिर्मुखी के ठीक प्रतिकूल होता है। ऐसे व्यक्ति की रुचि आत्मगत (Subjective) हुआ करती है। फलत वह अपनी मानसिक शक्तियों का व्यय भी आत्मगत रूप में ही करता है। वह समाज से दूर अपने एकाकी जीवन में ही मग्न रहता है। वह न तो अपने भावों को दूसरों के समक्ष व्यक्त करने में सफल होता है और न दूसरों के प्रति सहानुभूति ही प्रदर्शित करता है। इसलिए उसे स्वार्थी समझ कर लोग उसका परित्याग कर देते हैं जिससे उसके जीवन में मित्रों का अभाव रहता है। वह एकान्त प्रेमी और कम बोलनेवाला होता है। संयोगवश यदि कहीं उसे सामाजिक जीवन यापन करना पड़ा तो वह उस जीवन से ऊब जाता है और बेचैनी भी अनुभव करने लगता है। वास्तविक जगत से निराश और दूर होकर वह अपने काल्पनिक संसार और दिवास्वप्न (Day dreaming) में विचरने का अभ्यस्त होता है। अत उसका व्यावहारिक जीवन प्राय असफल रहता है। वह अपने जीवन और स्थिति में परिवर्त्तन नहीं चाहता। ऐसे व्यक्ति संवेग के शिकार बहुत अधिक होते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि ऐसे व्यक्ति बेकार और काहिल हुआ करते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति दार्शनिक, महात्मा, वैज्ञानिक और कलाकार, आदि भी हो सकते हैं। कुछ मनवैज्ञानिकों ने बताया है कि ऐसे व्यक्तियों में कई प्रकार की मानसिक विकृतियाँ भी वर्त्तमान रहती हैं। अन्तर्मुखी व्यक्तित्व को भी युङ्ग ने पहले की तरह चार भागों में बाँटा है। इस तरह, वह इन आठ उप प्रकारों को मानता है। साथ ही, उसका कहना

है कि जिस मनुष्य का चेतन मन अन्तर्मुखी होता है उसका अचेतन मन बहिर्मुखी होता है। यही कारण है कि ऐसा व्यक्ति ऐसे कार्यों को कर देता है जिससे विश्व का महान कल्याण होता है।

कुछ परीक्षणो के आधार पर पाया गया है कि जो व्यक्ति बहिर्मुखी व्यक्तित्त्व का होता है उसमे प्राय अधिकार भाव होता है तथा जो अन्तर्मुखी व्यक्तित्त्व का होता है उसमे विनीत भाव। अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी तथा विनीत एव अधिकार भाव म १९ से ६१ तक का अनुबन्ध गुणक (Coefficent of corre'ation) पाया गया है।

यदि हम युङ्ग के व्यक्तित्व प्रकार पर विचार करे तो ज्ञात होगा कि उसका यह विभाजन आन्तिकता (Extremity) के दोष से वंचित नही है। ये दोनों कोटियाँ ऐसी हैं जिनमे बहुत कम व्यक्ति रह सकते हैं। अधिक व्यक्ति तो इन दोनों के बीच मे होते हैं जिनमे कुछ अन्तर्मुखी और कुछ बहिर्मुखी विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं। अत कुछ मनोवैज्ञानिको ने एक तीसरा प्रकार (Type) भी जोडा है जिसे उभयमुखी (Ambivert) कहते हैं। ऐसा व्यक्ति दोनो ही प्रकार (अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी) की विशेषताओं से युक्त होता है। यद्यपि युग ने अपने विभाजन मे कही उभयमुखी प्रकार को स्थान नही दिया है, तथापि वह इस विभाजन से सहमत है, क्योकि उसने कही इसका खडन भी नही किया है।

बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी की जाँच कई प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा होती है। इसकी परीक्षा के लिए कई मनोवैज्ञानिको ने प्रामाणिक प्रश्नावलियों का निर्माण किया है जिनके उत्तर के आधार पर व्यक्तित्त्व प्रकार निर्धारित किया जाता है। व्यक्ति की अभिरुचि द्वारा भी उसके व्यक्तित्त्व प्रकार को निश्चित किया जाता है। हेटब्रेडर (Heidbreder) ने अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी को निर्धारित करने के लिए जिन प्रश्नावलियो का निर्माण किया है वे बहुत ही विश्वसनीय हैं। उसने महाविद्यालयों के विद्यार्थियों पर प्रयोग करके पाया कि अधिकाश व्यक्ति उभयमुखी प्रकार के होते हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक अन्तर्मुखी होती हैं। जो विद्यार्थी पढने में तेज होते हैं वे कमजोर विद्यार्थियो की अपेक्षा अधिक अन्तर्मुखी होते हैं। इसकी परीक्षा स्वतन्त्र शब्द साहचर्य (Free word association) द्वारा भी होती है। इस परीक्षण मे जिसके प्रतिक्रिया शब्द, विधेयात्मक स्वरूप के होते हैं वह बहिर्मुखी और जिसके प्रतिक्रिया शब्द आत्मगत स्वरूप के होते हैं वह अन्तर्मुखी होता है।

क्रेशमर का विभाजन

युङ्ग के बाद क्रेशमर (Kreschmer) ने जर्मनी मे मानसिक रोगियों के अध्ययन द्वारा मनुष्य की शारीरिक रचना (Physique) और स्वभाव मे सम्बन्ध दिखलाने का प्रयत्न किया है। जब सन् १९३९ ई० मे उसकी 'फिजीक एण्ड करेक्टर' ('Physique & character') नामक पुस्तक इस विषय पर प्रकाशित हुई तो कुछ लोगो ने उसकी मुक्त कठ से प्रशसा की। साथ ही वह कुछ विद्वानों की आलोचना का विषय बन गयी। इससे कर्मशील विद्वानो को इस दिशा मे अन्वेषण करने में काफी प्रोत्साहन मिला। क्रेशमर ने शरीर-रचना और स्वभाव में सम्बन्ध दिखाते हुए सभी मनुष्यों को दो प्रकारों मे विभक्त किया और साथ ही उनकी विशेषताओं का विशद विवेचन भी किया। उसने सभी मनुष्यों को दो भागों—प्रधान और गौण में बांटा है। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि इसके दोनों विभाजन युग के आन्तिक अन्तर्मुखी और

वहिर्मुखी के अतिरिक्त और कुछ नही है। फलत इस पर अधिक प्रकाश डालना आवश्यक नही है।

शेल्डन का विभाजन

वर्त्तमान मे शेल्डन (Sheldon), टुकर (Tucker) और स्टेवेन्स (Stevens) के अन्वेषण विशेष सराहनीय है। इन विद्वानों ने अन्त स्रावी ग्रन्थियों (Endocrine glands) के प्रभाव को मनुष्य के स्वभाव पर दिखाते हुए सभी व्यक्तियों को स्वभाव के आधार पर तीन भागो मे बाँटा है—एण्डोमारफिक (Endomorphic), मेसोमारफिक (Mesomorphic) तथा एक्टोमारफिक (Ectomorphic)। एण्डोमारफिक प्राय शरीर के बहुत भारी, मोटे, तादवाले और ढीले ढाले शरीर के होते है। वे भोजन प्रिय और आरामतलब तथा घरवाले होते है। मेसोमारफिक का शारीरिक गठन बहुत अच्छा रहता है, वे स्वस्थ और शक्तिशाली होते है। वे साहसी, अधिकार प्रिय और बहिर्मुखी होते है। एक्टोमारफिक बहुत ही दुबले पतले और कमजोर शारीरिक बनावट के होते है। वे स्वभाव से सकोचशील, एकान्तप्रिय और लजालु होते है। अभी तक स्वभाव के आधार पर व्यक्तियो को जितनी श्रेणियो म बाँटा गया है, उन सभी म शेल्डन का ही विभाजन अत्यधिक सतोषप्रद है। उसने इन तीन प्रकारो म भी प्रत्येक को सात उपश्रेणियो मे विभाजित कर उनको भी कई श्रेणियो म विभाजित किया है। अभी तक इस दिशा में अनुसधान प्रचलित है। देखे, आगे इसका ज्ञान कहाँ तक समृद्धशाली होता है।

व्यक्तित्व-अध्ययन-विधियाँ

व्यक्तित्व को मापने का प्रयत्न बहुत ही शुरू से होते आया है। इसके लिए अनेक परीक्षणो और विधियो का निर्माण किया गया है। प्रारम्भ की विधियाँ अवैज्ञानिक और आत्मगत थीं, किन्तु जैसे जैसे मनोविज्ञान विज्ञान बनने का प्रयत्न करने लगा, वैसे वैसे व्यक्तित्व मापक विधियो में भी सुधार आता गया। व्यक्तित्व को मापने के लिए अनेक परीक्षण बन चुके है तथा नित्य ही बन रहे है। मनोवैज्ञानिकों की मुख्य अभिरुचि इन दिनों व्यक्तित्व को मापने अथवा इसके सम्बन्ध म भविष्यवाणी करने मे है। केटिल (Cattell) की परिभाषा इसी अभिरुचि का द्योतक है। उसके अनुसार, व्यक्तित्व हम उसे कहते है जिससे किसी भविष्यवाणी का निर्देश मिलता है कि एक व्यक्ति किसी परिस्थिति विशेष में क्या करेगा। जब हम किसी व्यक्ति के व्यवहार की भविष्य वाणी कर लेते है तो उसे नियन्त्रित करना आसान हो जाता है। अत व्यक्तित्व परीक्षण अथवा व्यक्तित्व मापक विधियों का मनोविज्ञान में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के अन्तर्गत प्रचलित व्यक्तित्व मापक विधियो पर प्रकाश डालने के पूर्व कुछ प्राचीन विधियों की चर्चा करना बुरा न होगा। प्राचीन विधियों में आलेखन-अध्ययन (Graphology), आकृति अध्ययन (Physiognomy), मस्तिष्क-विज्ञान (Phrenology), आदि विधियाँ है।

(१) **आलेखन-अध्ययन-विधि** (Graphological method) कुछ आलेखन-अध्ययन शास्त्रियों (Graphologists) का ऐसा विश्वास था कि किसी व्यक्ति विशेष की लिखावट को देखकर उसके व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु, पाश्चर्म

(Powers), आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोग-परिणामों के आधार पर इसकी सत्यता को खडित कर दिया है। इस विधि मे वैज्ञानिकता का पूर्ण अभाव है।

(२) आकृति-अध्ययन-विधि (Physiognomical method) बहुत लोगा की धारणा है कि किसी व्यक्ति की आकृति देखकर ही उसके चरित्र और व्यक्तित्व की जानकारी हो सकती है। भारत के ऋषि मुनियों की बाते नही करता, परन्तु आज की वैज्ञानिक तुला पर यह बात निरर्थक ही प्रतीत होती है। किसी की आकृति से सभव हे उसके शारीरिक रूप, रग, दोष, गुण, आदि पर कुछ प्रकाश पडता हो, परन्तु पूरे व्यक्तित्व का ज्ञान तो नही ही होता। कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी महान व्यक्तित्ववाला हो सकता है।

(३) मस्तिष्क-विज्ञान-विधि (Phrenological method) मस्तिष्क विज्ञान के विद्वानों का कहना है कि किसी के मस्तक के उभाड या सूजन को देख कर उसके व्यक्तित्व की भविष्यवाणी की जा सकती है। जब तक मस्तिष्क के विभिन्न भागों की बनावट और कार्यवाही का अन्वेषण नही हुआ था तब तक इस विधि का बोलबाला था। किन्तु, मस्तिष्क की कार्यवाहियों को जान जाने के बाद यह विधि एक हँसी की बात हो गयी हे। अभी भी कुछ लोगो का कहना है कि जिस मनुष्य का ललाट काफी चौडा और ऊँचा रहता है, उसका व्यक्तित्व बहुत ही महान होता है। किन्तु, मनोविज्ञान के अन्तर्गत इसकी कुछ भी महत्ता नही है।

(४) साक्षात्कार-विधि (Interview method) साक्षात्कार-विधि भी काफी पुरानी है, किन्तु इसका जन्म मनोवैज्ञानिक युग मे ही हुआ है तथा आज भी इस विधि का इस्तेमाल होता है। व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए, व्यवसाय, नौकरी, आदि मे (खासकर) साक्षात्कार विधि अधिकतर काम मे लाई जाती है। यह विधि वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक दोना प्रकार की होती है। वैज्ञानिक साक्षात्कार में प्रयोज्य से पूछने के लिए कुछ निश्चित प्रश्न पहले ही से चुन लिए जाते है और वे ही प्रश्न सभी व्यक्तियों से पूछे जाते है। प्रश्नोत्तरों के आधार पर मूल्याकन भी होता है जिससे मनुष्य के व्यक्तित्व की जानकारी बहुत अश तक हो पाती है। किन्तु, अवैज्ञानिक साक्षात्कार में प्रयोक्ता या साक्षात्कार कर्त्ता (Interviewer) के सामने न तो कोई माध्यम रहता है और न पहले से कुछ निश्चित प्रश्न ही। फलत इससे प्राप्त निर्णय भी अधिकाशत दोषपूर्ण ही रहता है।

• साक्षात्कार विधि काफी सरल है, किन्तु इसमे दोष भी कम नहीं है। यदि उन दोषों पर ध्यान न दिया जाए तो प्राप्त अध्ययन-परिणाम प्रयोज्य विशेष के व्यक्तित्व का कुछ भी रूप बतलाने मे शायद ही समर्थ हो सके। अत किसी भी साक्षात्कार को अधिक से अधिक सत्य और ठीक बनाने के लिए निम्नाकित बाते आवश्यक है।

(i) साक्षात्कार कर्त्ताओं को साक्षात्कार-कौशल्य का समुचित प्रशिक्षण (Training) दिया जाए। ऐसा नही करने से वैयक्तिक भिन्नता के कारण साक्षात्कार-कर्त्ताओं के निर्णयों में एकरूपता नहीं रहती।

(ii) वैज्ञानिक साक्षात्कार द्वारा ही व्यक्तित्व मापा जाए।

(iii) साक्षात्कार-काल (Interview period) बहुत कम देर का होना उचित नहीं, बल्कि समय पर्याप्त होना चाहिये।

वहिर्मुखी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। फलतः इस पर अधिक प्रकाश डालना आवश्यक नहीं है।

शेल्डन का विभाजन

वर्त्तमान मे शेल्डन (Sheldon), टुकर (Tucker) और स्टीवेन्स (Stevens) के अन्वेषण विशेष सराहनीय है। इन विद्वानो ने ... प्रन्थियो (Endocrine glands) के प्रभाव को मनुष्य के स्वभाव पर दिखलाते हुए सभी व्यक्तियो को स्वभाव के आधार पर तीन भागो मे बाँटा है—एण्डोमारफिक (Endomorphic), मेसोमारफिक (Mesomorphic) तथा एक्टोमारफिक (Ectomorphic)। एण्डोमारफिक प्रायः शरीर के बहुत भारी, मोटे, ... और ... शरीर के होते है। वे भोजनप्रिय और आरामतलब तथा घबड़ाहट होते है। मेसोमारफिक का शारीरिक गठन बहुत अच्छा रहता है, वे स्वस्थ और शक्तिशाली होते है। वे साहसी, अधिकारप्रिय और बहिर्मुखी होते है। एक्टोमारफिक बहुत ही दुबले पतले और कमजोर शारीरिक बनावट के होते है। वे स्वभाव से सकोचशील, एकान्तप्रिय और लजालु होते है। अभी तक स्वभाव के आधार पर व्यक्तियो को जितनी श्रेणियो मे बाँटा गया है, उन सभी मे शेल्डन का ही विभाजन अत्यधिक सतोषप्रद है। उसने इन तीन प्रकारो मे भी प्रत्येक को सात उपश्रेणियो मे विभाजित कर उनको भी कई श्रेणियो मे विभाजित किया है। अभी तक इस दिशा में अनुसधान प्रचलित है। देखे, आगे इसका ज्ञान कहाँ तक समृद्धशाली होता है।

व्यक्तित्व-अध्ययन-विधियाँ

व्यक्तित्व को मापने का प्रयत्न बहुत ही शुरू से होते आया है। इसके लिए अनेक परीक्षणो और विधियो का निर्माण किया गया है। प्रारम्भ की विधियाँ अवैज्ञानिक और आत्मगत थीं, किन्तु जैसे-जैसे मनोविज्ञान विज्ञान बनने का प्रयत्न करने लगा, वैसे वैसे व्यक्तित्व मापक विधियो मे भी सुधार आता गया। व्यक्तित्व को मापने के लिए अनेक परीक्षण बन चुके है तथा ... ही बन रहे है। मनोवैज्ञानिको की मुख्य अभिरुचि इन दिनों व्यक्तित्व को मापने अथवा इसके सम्बन्ध मे भविष्यवाणी करने मे है। केटिल (Cattell) की परिभाषा इसी अभिरुचि का द्योतक है। उसके अनुसार, व्यक्तित्व हम उसे कहते है जिससे किसी भविष्यवाणी का निर्देश मिलता है कि एक व्यक्ति किसी परिस्थिति विशेष मे क्या करेगा। जब हम किसी व्यक्ति के व्यवहार की भविष्यवाणी कर लेते है तो उसे नियत्रित करना आसान हो जाता है। अतः व्यक्तित्व परीक्षण अथवा व्यक्तित्व-मापक विधियो का मनोविज्ञान में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के अन्तर्गत प्रचलित व्यक्तित्व मापक विधियों पर प्रकाश डालने के पूर्व कुछ प्राचीन विधियों की चर्चा करना बुरा न होगा। प्राचीन विधियों में आलेखन अध्ययन (Graphology), आकृति ... (Physiognomy), मस्तिष्क विज्ञान (Phrenology), आदि विधियाँ है।

(१) आलेखन अध्ययन विधि (Graphological method) कुछ आलेखन-अध्ययन शास्त्रियों (Graphologist) का ऐसा विश्वास था कि किसी व्यक्ति-विशेष की लिखावट को देखकर उसके व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु, पाश्चर्मे

(Powers), आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोग-परिणामों के आधार पर इसकी सत्यता को खंडित कर दिया है। इस विधि मे वैज्ञानिकता का पूर्ण अभाव है।

(२) आकृति-अध्ययन-विधि (Physiognomical method) बहुत लोगो की धारणा है कि किसी व्यक्ति की आकृति देखकर ही उसके चरित्र और व्यक्तित्व की जानकारी हो सकती है। भारत के ऋषि-मुनियों की बाते नही करता, परन्तु आज की वैज्ञानिक तुला पर यह बात निरर्थक ही प्रतीत होती है। किसी की आकृति से सभव है उसके शारीरिक रूप, रग, दोष, गुण, आदि पर कुछ प्रकाश पडता हो, परन्तु पूरे व्यक्तित्व का ज्ञान तो नही ही होता। कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी महान व्यक्तित्ववाला हो सकता है।

(३) मस्तिष्क-विज्ञान-विधि (Phrenological method) मस्तिष्क विज्ञान के विद्वानों का कहना है कि किसी के मस्तक के उभाड या सूजन को देख कर उसके व्यक्तित्व की भविष्यवाणी की जा सकती है। जब तक मस्तिष्क के विभिन्न भागों की बनावट और कार्यवाही का अन्वेषण नही हुआ था तब तक इस विधि का बोलबाला था। किन्तु, मस्तिष्क की कार्यवाहियों को जान जाने के बाद यह विधि एक हँसी की बात हो गयी है। अभी भी कुछ लोगो का कहना है कि जिस मनुष्य का ललाट काफी चौडा और ऊँचा रहता है, उसका व्यक्तित्व बहुत ही महान होता है। किन्तु, मनोविज्ञान के अन्तर्गत इसकी कुछ भी महत्ता नही है।

(४) साक्षात्कार-विधि (Interview method) साक्षात्कार-विधि भी काफी पुरानी है, किन्तु इसका जन्म मनोवैज्ञानिक युग मे ही हुआ है तथा आज भी इस विधि का इस्तेमाल होता है। व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए, व्यवसाय, नौकरी, आदि मे (खासकर) साक्षात्कार विधि अधिकतर काम मे लाई जाती है। यह विधि वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक दोना प्रकार की होती है। वैज्ञानिक साक्षात्कार में प्रयोज्य से पूछने के लिए कुछ निश्चित प्रश्न पहले ही से चुन लिए जाते है और वे ही प्रश्न सभी व्यक्तियों से पूछे जाते है। प्रश्नोत्तरों के आधार पर मूल्याकन भी होता है जिससे मनुष्य के व्यक्तित्व की जानकारी बहुत अश तक हो पाती है। किन्तु, अवैज्ञानिक साक्षात्कार में प्रयोक्ता या साक्षात्कार कर्त्ता (Interviewer) के सामने न तो कोई माध्यम रहता है और न पहले से कुछ निश्चित प्रश्न ही। फलत इससे प्राप्त निर्णय भी अधिकाशत दोषपूर्ण ही रहता है।

• साक्षात्कार विधि काफी सरल है, किन्तु इसमे दोष भी कम नहीं है। यदि उन दोषों पर ध्यान न दिया जाए तो प्राप्त अध्ययन-परिणाम प्रयोज्य विशेष के व्यक्तित्व का कुछ भी रूप बतलाने मे शायद ही समर्थ हो सके। अत किसी भी साक्षात्कार को अधिक से अधिक सत्य और ठीक बनाने के लिए निम्नाकित बाते आवश्यक है।

(i) साक्षात्कार कर्त्ताओं को साक्षात्कार-कौशल्य का समुचित प्रशिक्षण (Training) दिया जाए। एसा नही करने से वैयक्तिक भिन्नता के कारण साक्षात्कार-कर्त्ताओ के निर्णयों में एकरूपता नहीं रहती।

(ii) वैज्ञानिक साक्षात्कार द्वारा ही व्यक्तित्व मापा जाए।

(iii) साक्षात्कार-काल (Interview period) बहुत कम देर का होना उचित नहीं, बल्कि समय पर्याप्त होना चाहिये।

(४) [illegible] व्यक्तित्व के गुणों का मूल्यांकन [illegible] न कर सके।

(५) [illegible] ऊपरी तड़क-भड़क प्रभावित होकर [illegible]।

[illegible] का इस्तेमाल किया जाता [illegible] की पूरी [illegible] हो जाते हैं जिस परिणाम [illegible]।

(६) [illegible] बहुत [illegible] विधि भी [illegible] उसके माता पिता आदि [illegible] पारिवारिक परिस्थिति उसकी [illegible] हो जाती है। जानकारियों के आधार पर [illegible]।

[illegible] व्यक्ति के एक पहलू [illegible], दर्शन में [illegible] अंग निरस्त हो जाता है। [illegible] विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है।

(८) [illegible] व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए [illegible]। उससे इसका [illegible]। यदि साक्षात्कार विधि [illegible] पूछे जाते हैं [illegible] जाँच की जाती है। प्रश्नावली विधि में, [illegible] दी जाती है और उनके उत्तर [illegible] है। प्रश्नसूची अथवा प्रश्नावलि के प्रश्न [illegible] है। [illegible] में ही बहुत से व्यक्तियों का [illegible] का पता लगाया जाता है। [illegible] आदि ने कुछ प्रश्नावलियों का भी निर्माण किया है [illegible] की जाँच कर सके। प्रश्नावली विधि में [illegible] का भी पता लगता है। निम्नांकित प्रकार के प्रश्न हैं।

१. क्या आप समाज में [illegible] है?

२. क्या आप अपने [illegible] बहुत [illegible] रहते हैं?

३. क्या आप को [illegible] होता है?

४ क्या आप दिवास्वप्नों मे अत्यधिक विचरण करते है ?

६ क्या आप काम करने मे सावधानी रखते है ?

सभी प्रश्न प्राय उपर्युक्त प्रकार क ही होते है जिनमे प्रत्येक के उत्तर में प्रयोज्य को केवल 'हाँ' या 'नही' लिखना होता हैं।

यह विधि बहुत ही उपयोगी एव विश्वसनीय सिद्ध हुई है, क्योंकि एक ही प्रश्न के अनेक उत्तर रहने से निर्णय तुलनात्मक होता है। साथ ही, इससे प्राप्त निर्णय सख्यात्मक होता है जिससे व्यक्तित्त्व विकृति या शीलगुण निर्धारण मे विशेष सुविधा होती है। इसके अतिरिक्त, अनेक व्यक्तियों का व्यक्तित्त्व परीक्षण एक ही साथ हो जाता है जिससे समय की काफी बचत होती है। लेकिन, इन उपयोगिताओ के साथ इस विधि में कुछ दोष भी है। इस विधि के प्रति मनोवैज्ञानिकों की सबसे पहली आपत्ति यह है कि प्रश्नों का उत्तर देते समय व्यक्ति यह नही लिखता कि वह क्या है, बल्कि यह सोच कर लिखता है कि उसे क्या होना चाहिए, फलत व्यक्तित्त्व का माप ठीक तरह से नही हो पाता। किन्तु, कुछ मनोवैज्ञानिको ने इस आपत्ति को निरर्थक सिद्ध करते हुए बताया है कि एसा केवल निर्देशन की गलती के कारण होता है। दूसरी बात यह कि जिस शीलगुण को किसी प्रश्न द्वारा जांचा जाता है वह कभी कभी इतना जटिल स्वरूप का होता है कि प्रश्न का पूरा घुमाव उस ओर नही हो पाता। फलत शीलगुण विशेष की जाँच नहीं हो पाती। साथ ही, यह भी मानना कठिन है कि प्रयोज्य के उत्तर उसकी मनोवृत्ति एव अन्त प्रवृत्तियों के अनुरूप ही है। सम्भव है, न चाहते हुए भी किसी प्रभाववश वह किसी प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में देता हो।

इस तरह, प्रश्नावलि-विधि मे भी कुछ त्रुटियाँ अवश्य है, किन्तु इससे हम इस विधि की उपेक्षा नही कर सकते और न इसकी उपयोगिता से इन्कार ही।

(७) निर्माण-परीक्षण विधि (Performance method) इस व्यक्तित्त्व-मापक विधि के जन्मदाता मे (May) तथा हार्टशोर्न (Hartshorne) हैं। इस विधि के सहारे व्यक्तित्त्व के किसी शीलगुण विशेष की जानकारी प्राप्त की जाती है। उदाहरणार्थ, ईमान्दारी, सत्यता, आदि शीलगुणो का पता लगाने के लिए अक्सर इस विधि का इस्तेमाल होता है। एक परीक्षण मे कुछ बच्चों की ईमानदारी जाँचनी थी। इसके लिए आठ दस वजनों को, जिनमें बहुत ही कम अन्तर था, एक जगह पर रख दिया गया। उन वजनों में प्रत्येक के नीचे उनकी तौल लिख कर रख दी गई। अब जिनकी ईमान्दारी की परीक्षा लेनी थी उन्हे कहा गया कि वे उन वजनों को क्रम मे रख दे। वस्तुत उन्हे क्रम मे रखना बहुत ही कठिन कार्य था, किन्तु जो लोग उनके नीचे रक्खे लिखित तौल को किसी तरह देख लेते वे बहुत ही आसानी से अपने काम में सफलीभूत हो जाते थे। जो व्यक्ति एसा करता उसे बेईमान कहा जाता और जो बिना कुछ देखे अपने अदाज से ही गलत या सही क्रम में वजनों को रखता उसे ईमानदार कहते। इसी तरह, निर्माण परीक्षण विधि के सहारे व्यक्तित्त्व के अन्य शीलगुणों को भी मापा जाता है। इस विधि को प्रयोग मे लाते समय इस बात की पूरी कोशिश की जाती है कि प्रयोज्य को यह मालूम न हो सके कि अमुक सम्बन्ध में उसकी जांच हो रही है।

इस विधि की उपयोगिता भी अत्यधिक है। विदेशों में यह विधि पाठशालीय छात्रों की विभिन्न प्रवृत्तियों का निरूपण करने में विशेष रूप से काम में लायी जाती है।

(८) मूल्यांकन विधि (Rating method) मूल्यांकन विधि के द्वारा भी किसी व्यक्ति के शीलगुण विशेष का ही निर्णय या परीक्षण किया जाता है। सर्वप्रथम इसके लिए किसी निपुण प्रयोक्ता की आवश्यकता होती है जो शीलगुणों का समुचित विश्लेषण क्रमानुसार कर सके। उस विश्लेषण के अनुसार प्रयोज्य के उत्तर अथवा कार्य को सङ्ख्यात्मक माप दिया जाता है। इस माप के आधार पर ही प्रयोक्ता अपना निर्णय देता है। प्रयोक्ता को प्रयोज्य से पूर्णत परिचित होना आवश्यक है।

मूल्यांकन दो तरह से किया जाता है। एक तो यह कि जिन शीलगुणों की जाँच करनी होती है उनसे सम्बन्धित कुछ प्रश्न दिए रहते हैं। निश्चय ही ये प्रश्न इतने सरल नहीं रहते कि प्रयोज्य यह समझ जाए कि उसके अमुक शीलगुण की जाँच हो रही है। प्रत्येक प्रश्न के कई सम्भावित उत्तर भी दिए रहते हैं तथा प्रयोक्ता द्वारा प्रत्येक उत्तर का कुछ मूल्य (अंक में) दिया रहता है जिसे प्रयोज्य नहीं जानता। प्रयोज्य को यह कहा जाता है कि प्रत्येक प्रश्न का कोई एक उत्तर जिसे वह अपने लिए ठीक समझता हो चुने। प्रयोज्य जिन उत्तरों को चुनता है उनके मूल्यांकन के आधार पर उसके व्यक्तित्व की भविष्यवाणी की जाती है।

मूल्यांकन की दूसरी विधि के अनुसार प्रयोज्य को वास्तविक परिस्थिति में रख कर उसके व्यवहारों एवं प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जैसे, यदि किसी व्यक्ति की सहनशीलता अथवा कार्यशीलता का निर्णय करना है तो उसे किसी कार्य को करने का भार दिया जाता है। कार्य की अवस्था में प्रयोज्य कब कैसे क्या करता है, इसका विधिवत अध्ययन किया जाता है और उसी के आधार पर उसकी सहनशीलता का निर्णय किया जाता है।

यह विधि सुनने और देखने में बहुत ही सरल प्रतीत होती है, किन्तु इसकी कई त्रुटियाँ भी हैं। पहली बात तो यह कि सभी लोग इस विधि का व्यवहार कर मूल्यांकन ठीक तरह से नहीं कर सकते। ऐसा देखने में आता है कि मूल्यांकन में जितनी सफलता अन्तर्मुखी को मिलती है उतनी बहिर्मुखी को नहीं मिलती। दूसरी कठिनाई यह है कि मूल्यांकन में मानव-कमजोरियाँ अत्यधिक दिखने में आती हैं। लोग अपने प्रियजनों के साधारण शीलगुण को भी उच्चतम स्थान देते हैं और जिनसे कुछ वैमनस्य रहता है उनके अच्छे से अच्छे शीलगुणों को भी निम्नतम स्थान देते हैं। इस विधि की तीसरी कठिनाई यह है कि अधिकतर न्यायाधीश यह मानते हैं कि यदि कोई मनुष्य एक शीलगुण में नीच है तो अन्य शीलगुणों में भी नीचा ही है। इसलिए वे उसे विकसित से विकसित शीलगुण में भी नीचा स्थान देते हैं।

इस विधि की चौथी त्रुटि यह है कि प्रयोक्ता मूल्यांकन करने में आवश्यकता से अधिक सतर्क रहते हैं जिसके फलस्वरूप वे किसी प्रकार के भी शीलगुण को मध्यस्थान में रखने की कोशिश करते हैं। अत किसी भी शीलगुण का समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाता।

पाँचवीं त्रुटि यह है कि मूल्यांकन में सभी प्रयोक्ता सफल नहीं होते, क्योंकि इसके लिए बुद्धि अपेक्षित है और हम जानते हैं कि बुद्धि सवर्म पर्याप्त नहीं होती है। इसके अतिरिक्त,

मूल्याकन कर्त्ता या प्रयोक्ता की उम्र भी तीस वर्षा से ऊपर की होनी चाहिए, क्योंकि अनुभव के लिये परिपक्वता का होना जरूरी है। प्रहिष्ठता भी मूल्याकन-कर्त्ता का एक विशेष गुण समझा जाता है। प्राय यह देखने मे आता है कि इस विधि के इस्तेमाल म पुरुषा की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक सफलता मिलती है।

इन दोषों के आधार पर इस विधि का तिरस्कार करना उचित नही। आज भी खास कर सामाजिक मनोविज्ञान और औद्योगिक मनोविज्ञान में इस विधि की उपादेयता काफी अधिक है। इस विधि को सुधारने और परिणाम को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि एक ही शीलगुण का मूल्याकन कई मूल्याकन कर्त्ताओं से कराया जाए तथा उनके मूल्याकन का मध्यमान निकाल कर उसे ठीक माना जाए। साथ ही, मूल्याकन कर्त्ताओं को चाहिए कि पहले वे अपना मूल्याकन स्वय कर ल और जहाँतक हो परीक्षण-काल मे वैज्ञानिक वृत्ति रक्खे। ऐसा करने से मूल्याकन मे दोष की गुञ्जाइश निश्चय ही कम रह जाएगी।

(९) विक्षेप विधि (Projective method) अन्य व्यक्तित्व मापक विधियो की अपेक्षा विक्षेप विधि अधिक महत्त्वपूर्ण है। गत कुछ वर्षों से यह सभी मनोवैज्ञानिकों के ध्यान और अभिरुचि का केन्द्र है। इसके बहुत से तथ्यों को प्रयोगात्मक विधि से प्रामाणित करने का प्रयास भी किया गया है। पूर्व इसके कि इस विधि पर विचार किया जाए हम इसके स्रोत के सम्बन्ध मे सक्षेप मे कुछ कहना ज्यादा आवश्यक समझते है। इस सम्बन्ध मे हम फ्रायड के विचार और प्रयोगशाला सम्प्राप्ति पर विचार करना उचित समझते है।

फ्रायड के विचार और प्रयोग-निष्कर्ष—फ्रायड ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य का प्रत्यक्षीकरण (Perception) प्रेरणाओ से निर्धारित होता है। उसके अनुसार अचेतन मन की बाते हमारे दैनिक जीवन के विभिन्न कार्यों मे प्रदर्शित होती रहती है। उसका यह विचार विक्षेप विधि के विकास का प्रथम महत्त्वपूर्ण आधार है। इस विचार के प्रभाव के फलस्वरूप हम मनुष्य के बाह्य व्यवहारों को महत्त्वपूर्ण नही समझते, बल्कि उनके पीछे छिपी प्रेरणाओं की खोज करते है। विक्षेपण (Projection) शब्द का इस्तेमाल सर्वप्रथम फ्रायड ने ही किया था, परन्तु विक्षेप-विधि मे विक्षेपण का जो अर्थ लिया जाता है वह फ्रायड से भिन्न है। फ्रायड के अनुसार विक्षेपण एक रक्षात्मक मनोरचना (Defence mechanism) है। अर्थात्, मनुष्य उन वस्तुओ के प्रत्यक्षीकरण मे असमर्थ होता है जो उसके बोधात्मा (Ego) के विरुद्ध होती है। विक्षेपण की यह विशेषता विक्षेप परीक्षणों (Projective tests) मे वर्त्तमान है। जब कोई द्व्यर्थक चित्र (Ambiguous picture) किसी व्यक्ति के समक्ष रक्खा जाता है तब वह उन्ही अगों को देखता है जो उसकी बोधात्मा के अनुरूप रहते है। मनोवैज्ञानिका का कहना है कि द्व्यर्थक चित्र का वर्णन करने मे व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ तथा गत अनुभूतियों की सहायता लेता है। अत वह चित्र का वर्णन नही कर अप्रत्यक्षतया अपने व्यक्तित्त्व का वर्णन करता है। एक ही चित्र का वर्णन विभिन्न व्यक्ति विभिन्न तरह से करते है। इसका एकमात्र कारण उनकी वैयक्तिक आवश्यकताए तथा अनुभूतियों की भिन्नता है। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि किसी चित्र के माध्यम से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्त्व की विशेषताओं का

स्पष्टीकरण उसी समय सम्भव है जब चित्र द्वार्थक हों। यही कारण है कि विक्षेप विधियों में द्वयर्थक चित्रों का ही उपयोग होता है।

प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी प्रयोगशाला की कुछ सम प्राप्तियों (Findings) पर विचार करने से मालूम होता है कि कुछ प्रयोग परिणामों के अनुसार, विक्षेपण तथा प्रत्यक्षीकरण में समानता है। एरीक्सन (Erikson) ने सन् १९९१ ई० में प्रयोग किया। उसने प्रयोज्यों के सामने दो प्रकार के वाक्यों को क्षणमात्र के लिए उपस्थित किया। उनमें कुछ वाक्य विरोधी-स्वरूप (Hostile nature) के थे और कुछ ... के। क्षणिक प्रदर्शन के कारण उन वाक्यों का पूर्ण प्रत्यक्षीकरण नहीं हो सका जिसके फलस्वरूप उन वाक्यों के वर्णन में प्रयोज्यों को अपनी गत अनुभूतियों से सहायता लेनी पड़ी। एटकिन्सन (Atkinson) और मेकक्लिलैण्ड (Mcclelland) ने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया है कि भूखे व्यक्ति को द्वयर्थक चित्रों में खाने की सामग्रियाँ प्रतीत होती हैं। ब्रुनर (Brunner) और गुडमैन (Goodman) ने भी इसी प्रकार का निष्कर्ष निकाला है। इस तरह, इन सभी प्रयोगों से सिद्ध है कि द्वयर्थक चित्रों का प्रत्यक्षीकरण हमारी वर्त्तमान आवश्यकताओं तथा गत अनुभूतियों पर आधारित रहता है। हमारे व्यवहार हमारी गत अनुभूतियों तथा वर्त्तमान आवश्यकताओं पर ही निर्भर करते हैं। अतः किसी व्यक्ति द्वारा चित्र का जो वर्णन किया जाता है उससे उसके व्यक्तित्व की झाँकी मिलती है। इस तर्क के आधार पर हम विक्षेप-विधि का उपयोग व्यक्तित्व परीक्षण में करते हैं। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जो चित्र जितना ही अधिक अस्पष्ट होगा उसके वर्णन में उतनी ही स्वतन्त्रता से प्रयोज्य अपने व्यक्तित्व का विक्षेपण (Projection) करेगा।

यों तो इधर अनेक विक्षेप परीक्षणों का अनुसन्धान हुआ है और नित्य ही हो रहा है, किन्तु उनकी सत्यता (Validity) के सम्बन्ध में विवाद है। फिर भी, दो परीक्षणों का महत्त्व काफी अधिक है जिनका उल्लेख करना आवश्यक है। इन दोनों परीक्षणों को क्रमश (क) रोशाक स्याही धब्बा परीक्षण (Rorschach Ink-blot test) तथा (ख) मरे प्रासगिक अन्तर्बोध परीक्षण (Murray Thematic Apperception test) कहते हैं।

(क) रोशाक-स्याही-धब्बा परीक्षण (Rorschach Ink blot test) रोशाक-स्याही-धब्बा परीक्षण का जन्मदाता एक स्विस (Swiss) हरमन रोशाक (Hermann Rorschach) है। इस परीक्षण में दस प्रामाणिक स्याही के धब्बों का उपयोग किया जाता है जिसे रोशाक ने बनाया था। ये धब्बे मात्र धब्बे ही हैं, किसी जीव या वस्तु-विशेष के चित्र नहीं। उन धब्बों में पाँच पूर्णत काले हैं, दो काले और लाल हैं तथा शेष तीन धब्बे कई रंगों से रंजित हैं। जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व को जाँचना रहता है उसके सामने उन दस धब्बों को एक-एक कर प्रामाणिक क्रम और स्थान में दिखलाया जाता है। प्रयोज्य को प्रत्येक कार्ड देने के बाद यह बताने के लिए कहा जाता है कि "यह क्या हो सकता है?" अथवा "आप को इस धब्बे में क्या दीखता है?" प्रयोज्य जो भी उत्तर देता है अथवा जिन-जिन प्रतिक्रियाओं को करता है, प्रयोक्ता उसे अंकित कर लेता है। प्रयोज्य का उत्तर-काल अथवा प्रतिक्रिया काल प्रयोक्ता द्वारा निश्चित किया रहता है। उतने समय तक प्रतिक्रिया कर लेने के बाद पुन प्रयोज्य के सामने दूसरा धब्बा प्रस्तुत किया जाता है। इसी प्रकार, एक एक कर जब दस धब्बे प्रस्तुत कर दिए जाते हैं, तब पुन दूसरी बार

उन धब्बों को प्रयोज्य के समक्ष क्रमश उपस्थित करके यह अंकित किया जाता है कि प्रयोज्य ने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की उसका सदर्भ वह धब्बे मे कहाँ पा सका। जब इस तरह सभी धब्बे दिखा दिए जाते है तब परीक्षक तीन बातो पर ध्यान देते हुए प्रयोज्य की प्रतिक्रियाओ की एक सूची तैयार करता है।

(1) स्थान इसमे यह देखा जाता है कि प्रयोज्य का उत्तर सम्पूर्ण धब्बे के प्रति था या उसके किसी एक भाग के प्रति।

(ii) निर्धारक-गुण (Determining quality) प्रयोज्य की प्रतिक्रिया (Response) का निर्धारण धब्बे की बनावट के कारण हुआ है, अथवा उसके विभिन्न रग अथवा गति के कारण? आदि।

(iii) विषय (Content) इसके अन्तर्गत यह देखा जाता है कि प्रयोज्य ने उन निरर्थक धब्बों मे ही क्या क्या देखा है? कोई प्रयोज्य मनुष्य की आकृति देख सकता है, कोई जानवर की, कोई जगल देख सकता है तो कोई कुछ और। नीचे इस प्रकार के एक स्याही-धब्बा के साथ परीक्षण करने का चित्र दिया गया है।

चित्र सख्या ७९



स्याही-धब्बा-परीक्षण

इतना करने के बाद दस कार्डों के प्रति दिए गए प्रयोज्य के उत्तरों को जोड दिया जाता है। साथ ही, यह भी निकाला जाता है कि प्रत्येक धब्बा के प्रति उत्तर देने में प्रयोज्य को औसत कितना समय लगा है? कुल कितनी प्रतिक्रियाएँ हुई है तथा जो भी प्रतिक्रियाएँ हुई है, वे सामान्य स्वरूप की है या नही?

रोर्शाक-परीक्षण के प्राप्ताक को अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की जा रही है। साथ ही, मनुष्य के व्यक्तित्व का यह एक सुन्दर परीक्षण भी है।

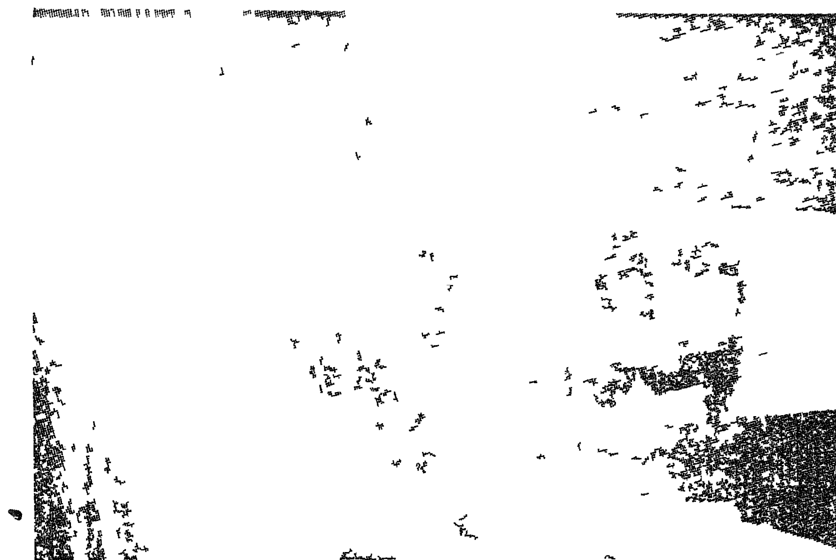
यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि किसी धब्बा की प्रतिक्रिया करते समय प्रयोज्य उसे विभिन्न तरह से घुमा फिरा कर देखता है तथा उसके पूर्ण या किसी भाग से अपने किसी गत अनुभव को साहचर्यित कर लेता है और उसी को अपने उत्तर में व्यक्त करता है। यहाँ साहचर्य से स्पष्ट है कि उत्तर देते समय प्रयोज्य की सक्रिय अचेतन इच्छाएँ भी व्यक्त हो जाती हैं अथवा अचेतन के अनुरूप प्रयोज्य पहलुओं और चीजों को देखता है। इस तरह, इस विधि के द्वारा प्रयोज्य के व्यक्तित्व का गुप्त आन्तरिक भाग प्रयोक्ता के सामने स्पष्ट हो जाता है। इस के द्वारा किसी व्यक्ति की कल्पनाशक्ति की भी जाँच होती है जो उसके व्यक्तित्व पर ही प्रकाश डालती है।

इतना होने पर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इस परीक्षण में दोष नहीं है। स्पष्ट है कि प्रयोज्य जो भी उत्तर देता है उसकी व्याख्या प्रयोक्ता द्वारा ही होती है। हम जानते हैं, एक ही चीज की व्याख्या और विभिन्न विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न रूपों में की जाती है। अत इसकी व्याख्या बहुत ही व्यक्तिगत और जटिल है जिससे प्रयोज्य के व्यक्तित्व की जाँच ठीक तरह से नहीं हो पाती। साधारणत प्रत्येक प्रयोक्ता अथवा परीक्षक यह मान लेता है कि जो व्यक्ति अधिक 'पूर्ण' प्रतिक्रियाएँ देता है वह सैद्धान्तिक है, किन्तु ऐसा कोई प्रयोगात्मक परिणाम नहीं है जिसके आधार पर इस बात को सत्य माना जा सके। सबसे मुख्य बात तो यह है कि यद्यपि रोशा [illegible] के सहारे अनेक अध्ययन होते हैं, परन्तु फिर भी इसकी सत्यता सन्देहास्पद है। अर्थात्, निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इससे व्यक्तित्व का ही मापन होता है। किन्तु, इन दोषों के आधार पर इस परीक्षण को अनुपयोगी नहीं कहा जा सकता। इसमें बहुत कुछ सुधार लाया जा रहा है जिससे सम्भव है, इसकी त्रुटियाँ समाप्त हो जाएँ।

(ख) मरे प्रासंगिक अन्तर्बोध-परीक्षण (Murray Thematic Apperception test) मरे प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण के जन्मदाता मरे (Murray) हैं जिसने व्यक्तित्व मापन के लिए विभिन्न भावभंगी एवं परिस्थितियों के द्योतक व्यक्ति के विभिन्न चित्र बनाये। आज मरे के इन चित्रों को प्रामाणिक माना जाता है। पहले परीक्षण की तरह इसमें भी एक एक चित्र प्रयोज्य के समक्ष उपस्थित किये जाते हैं। प्रत्येक चित्र को दिखाने के बाद कुछ निश्चित काल (जो सभी चित्रों के लिए समान है) के अन्दर प्रयोज्य को उस चित्र से सम्बन्धित एक छोटी कहानी लिखने या व्यक्त करने को कहा जाता है। देखा जाता है कि एक ही चित्र देख कर विभिन्न व्यक्ति विभिन्न तरह की कहानियाँ लिखते अथवा विभिन्न रूपों में एक ही चित्र की व्याख्या करते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि प्रयोज्य कहानी लिखते समय चित्र के किसी मुख्य पात्र से अपना एकीकरण कर लेता है। फलत वह कहानी उसकी आत्मकथा हो जाती है। प्रयोज्य अपनी इच्छा भय, मनोभाव, आदि के अनुसार उन चित्रों की व्याख्या करता है। एकीकरण के कारण प्रयोज्य अपनी अचेतन मन की इच्छाओं को ही व्यक्त कर देता है। मान लें, कोई प्रयोज्य अपने परिवार में तिरस्कृत एवं हीन-भाव से पीड़ित रहता है। ऐसी परिस्थिति में वह चित्रों के वर्णन में इन्हीं बातों का दिग्दर्शन कराता है। ऐसा ही चित्र पृष्ठ ९०९ पर दिखलाया गया है।

प्रयोक्ता बहुत ही सावधानी के साथ प्रयोज्य के वर्णन को अंकित करता तथा उसकी व्याख्या करता है। प्रयोज्य की व्याख्याओं के विश्लेषण के ही आधार पर उसके व्यक्तित्व

चित्र संख्या-८०



प्रासगिक अन्तर्बोध का परीक्षण चित्र

की जाँच होती है। प्रयोज्य की कहानी मे बहुत सी अनजानी छिपी बाते भी निकल आती है जिससे न केवल उसके व्यक्तित्व का ज्ञान होता है, बल्कि इससे उसकी मानसिक विकृति का भी पता चलता है। साइमण्ड्स (Symonds) ने इस तरह के एक परीक्षण का इस्तेमाल किशोर कल्पना (Adolescent fantasies) का पता लगाने के लिए किया था। विदेशों में इस विधि के द्वारा ही मानसिक विकृतियों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है और तत्पश्चात् उनका उपचार भी किया जाता है। भारतीय मनोवैज्ञानिकों की अभिरुचि भी इसमे दिन-प्रति दिन बढती जा रही है और आशा की जाती है कि इस परीक्षण में भारतीय वातारण के अनुकूल चित्रों का उपयोग शीघ्र ही किया जायगा।

यह परीक्षण भी त्रुटियों से मुक्त नहीं है। इस परीक्षण में भी रोशक परीक्षण की तरह व्याख्या मे काफी जटिलता पायी जाती हे। साथ ही, इसके द्वारा व्यक्तित्व परीक्षण करने पर सख्यात्मक परिणाम नही आता, जो भी मिलता है वह गुणात्मक ही। आज के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए सख्यात्मक परिणाम का मिलना अत्यावश्यक है। इन त्रुटियों के बावजूद भी सबसे बडी बात यह है कि प्रयोज्य अपने विचार, इच्छा एव भावनाओं को कहानी अथवा विवरण के आवरण मे व्यक्त कर देता है। इसके सहारे कोई अनुभवी औपचारिक मनोवैज्ञानिक प्रयोज्य के व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे बहुत कुछ भविष्यवाणी कर सकता है।

(१०) मनोविश्लेषणात्मक विधि (Psychoanalytic method) मनोविश्लेषणात्मक विधि भी विक्षेप का ही एक प्रकार है, लेकिन पाठकों की सुविधा के लिये इसका वर्णन अलग करना ही अच्छा है। इसके द्वारा किसी एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का अचेतन

पहले जाना जाता है। हमारी दैनिक अनुभूतियों, विचारों एवं व्यवहारों में हमारे अचेतन मन का कितना बड़ा हाथ रहता है, यह फ्रायड के सिद्धान्त से कुछ भी परिचित रहनेवाले लोग अच्छी तरह जानते हैं। व्यक्तित्व परीक्षण के सिलसिले में स्वतन्त्र साहचर्य (Free association) तथा स्वप्न विश्लेषण (Dream analysis) का महत्त्व बहुत अधिक है। यहाँ संक्षेप में इन दोनों पर प्रकाश डालना उचित होगा।

(क) स्वतन्त्र-साहचर्य — इसमें प्रयोज्य के समक्ष कोई उत्तेजना शब्द के रूप में दी जाती है तथा प्रयोज्य को यह निर्देश दिया जाता है कि उसके मन में उस शब्द के सुनते ही जो पहला शब्द आए उसे अविलम्ब बता दे। यह प्रयोज्य की प्रतिक्रिया हुयी। उत्तेजना और प्रतिक्रिया के बीच के समय को प्रतिक्रिया काल कहा जाता है। इस परीक्षण के अनुसार, मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्णय दो बातों से होता है—प्रतिक्रिया का स्वरूप (सामान्य या व्यक्तिगत) तथा प्रतिक्रिया काल। प्रतिक्रिया-काल अधिक अथवा प्रयोज्य की प्रतिक्रिया व्यक्तिगत स्वरूप की होने पर यह समझा जाता है कि उस उत्तेजना विशेष के प्रति प्रयोज्य में कोई भावग्रन्थि है। इसी तरह, कुछ ग्रन्थियों या भावों के प्रकट होने से प्रयोज्य के व्यक्तित्व का स्वरूप बहुत स्पष्ट हो जाता है। उसके व्यक्तित्व की बहुत सी गूढ़ बातें प्रकाश में आ जाती हैं।

(ख) स्वप्न विश्लेषण — स्वप्न में हमारे दैनिक जीवन की अतृप्त अचेतन इच्छाएँ अपनी अभिव्यक्ति छद्मवेश में पाती हैं। फलतः यदि किसी के स्वप्नों का समुचित अर्थ लगाया जाए तो उस व्यक्ति के व्यक्तित्व की झाँकी मिल सकती है। यह मनोविश्लेषण के द्वारा ही सम्भव है। सबसे पहले व्यक्ति विशेष के गत जीवन का एक इतिहास रखना होता है। पुनः एक ही नहीं, बल्कि कुछ दिनों तक कई स्वप्नों का होना और उनका विश्लेषण करना प्रयोज्य के व्यक्तित्व को बहुत कुछ इंगित करता है। स्वप्न का अर्थ लगाने के लिए स्वप्न मनोरचना (Dream mechanism) का ज्ञान होना भी अपेक्षित है।

इस तरह, मनोविश्लेषणात्मक परीक्षणों के द्वारा व्यक्तित्व की जानकारी बहुत कुछ सम्भव है। किन्तु, यह सुनने में जितना आसान है, वस्तुतः व्यवहार करने में उतना आसान नहीं है। इसके लिए प्रयोक्ता और प्रयोज्य का सम्बन्ध बहुत ही सुन्दर होना चाहिए जिससे प्रयोज्य कुछ भी निस्संकोच रूप से कह सके। साथ ही, यह विधि पूर्णतः आत्मगत है, क्योंकि एक ही स्वप्न अथवा प्रतिक्रिया को विभिन्न मनोवैज्ञानिक विभिन्न रूप से समझने की कोशिश करते हैं। इस परीक्षण में प्रतिपन्नता कुछ भी नहीं है, क्योंकि परिणाम गुणात्मक ही प्रदर्शित किया जाता है, संख्यात्मक नहीं।

निष्कर्ष — ऊपर व्यक्तित्व मापन की जिन आधुनिक विधियों की चर्चा की गई है उन्हें मुख्यतः दो वर्गों में रखा जा सकता है—मनोमापक विधियाँ (Psychometric methods) और विक्षेप विधियाँ (Projective methods)। विक्षेप तथा मनोविश्लेपण विधियों के अतिरिक्त सभी विधियाँ पहले वर्ग की हैं। मनोमापक विधियों में सांख्यिक निरूपण (Statistical treatment) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्हें अधिक से अधिक विश्वसनीय तथा विश्वसनीय (Reliable) कहा जा सकता है। दूसरी ओर, विक्षेप-विधियाँ आत्मगत हैं और निश्चित रूप से यह भी नहीं कहा जा सकता कि इनके सहारे व्यक्तित्व का सही रूप से मापा जाता ही है। सांख्यिक

सत्यता और विश्वसनीयता का भी अभाव है। विवेचना का यदि यही आधार हो तो मनोमापक विधियों की श्रेष्ठता निर्विवाद है। लेकिन, व्यक्तित्व को किसी गैस, द्रव या ठोस पदार्थ की तरह पूर्णत बाह्य और विधेयात्मक रूप से मापा नहीं जा सकता है। व्यक्तित्व का बहुत बडा अश ऐसा है जिसे न तो हम देखते है और न जिसके सम्बन्ध में आसानी से कोई ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। अत मनोमापक विधियो से व्यक्तित्त्व के ऊपरी धरातल का ही परिचय मिलता है। इस दृष्टि से विक्षेप-विधियाँ अधिक उपयोगी है और इसी से मनोचिकित्सक बहुधा इसका उपयोग करते है। इससे न केवल व्यक्तित्त्व के असतुलन का ज्ञान होता है, बल्कि व्यक्ति को असामान्य बनानेवाले कारणा पर भी काफी प्रकाश पडता है। यही कारण है कि वैज्ञानिक प्रतिपन्नता के अभाव में भी तरह-तरह के विक्षेप परीक्षणों (Projective tests) का निर्माण और उपयोग नित्य-प्रति हो रहा है। मनोवैज्ञानिक इसे प्रतिपन्न और विश्वसनीय बनाने का भी प्रयत्न कर रहे हैं। इस तरह, सभी विधियों का अपना विशेष महत्त्व और उपयोग है।

व्यक्तित्व-सिद्धान्त

एक ही परिस्थिति मे विभिन्न व्यक्ति विभिन्न प्रकार से व्यवहार क्यों करते हैं या एक ही उत्तेजना से विभिन्न व्यक्ति विभिन्न रूप मे क्यों प्रभावित होते है? इस भिन्नता की व्याख्या करते हुए मनोवैज्ञानिको ने कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिनमे से कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख करना यहाँ अपेक्षित है।

उत्तेजना प्रतिक्रिया-सिद्धात (Stimulus-response theory)

इस सिद्धात का प्रतिपादन व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों द्वारा हुआ है। व्यवहारवादियों का प्रमुख विषय शिक्षण है। उनके अध्ययन की प्रारम्भिक इकाई (Basic unit) उत्तेजना-प्रतिक्रिया सम्बन्ध (Stimulus-response relation) है। इस सिद्धान्त का मूलतत्त्व साहचर्य के द्वारा शिक्षण है। जहाँ तक व्यक्तित्व का सबन्ध है, व्यहारवादियों का कहना है कि कोई व्यक्ति एक दी हुयी परिस्थिति मे एक विशेष प्रकार से व्यवहार करना सीखता है। प्रत्येक शीलगुण शिक्षण का परिणाम है। अत इन लोगों के अनुसार व्यक्तित्त्व शीलगुणों का एक योगफल है। हल (Hull), मिलर (Miller), डोलार्ड (Dollard), आदि मनोवैज्ञानिको ने साहचर्य शिक्षण सिद्धात का इस्तेमाल व्यवितत्त्व के क्षेत्र में भी किया है। गथरी (Guthrie) ने, जो व्यवहारवादियों मे एक प्रमुख स्थान रखता है, सन् १९४४ ई० मे लिखा कि "सामाजिक महत्त्व की अपरिवर्त्तनशील और स्थिर (Stable) आदत एव आदत सगठन (Habit system) ही व्यक्तित्त्व है।" इस परिभाषा के दो पदों 'आदत' एव 'आदत सगठन' की व्याख्या आवश्यक है। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार किसी प्रेरणात्मक परिस्थित (Motivating situation) में जीव विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया करता है। किसी एक प्रतिक्रिया से उसका शारीरिक असतुलन घट जाता है। तब वह यही प्रयास करता है कि ऐसी परिस्थिति उपस्थित होने पर वह उसी प्रकार की प्रतिक्रिया करे जिससे तनाव कम होता है। इस तरह, प्राणी उस परिस्थिति और उस प्रतिक्रिया के बीच एक साहचर्य स्थापित कर लेता है। इसी साहचर्य के स्थापन को आदत की सज्ञा दी जाती है। जीव, इस तरह, अनेक आदत अपने दैनिक जीवन में सीखते जाता है। किसी

अवसर विशेष पर व्यक्ति के उस समय की आदतों के योग या 'आदत-संगठन' को उसका व्यक्तित्व कहा जाता है। उत्तेजना प्रतिक्रिया सिद्धान्तवादियों ने मानव जीवन के व्यवहारों की जटिलता का विवरण सीखे-साहचय के द्वारा प्रस्तुत किया है। सीखे हुए साहचर्य आगे चलकर सामान्य और जटिल हो जाते हैं।

किन्तु, गत्यात्मक-मनोवैज्ञानिकों (Dynamic Psychologists) ने दो बातों पर इस सिद्धान्त की कटु आलोचना की है।

(१) यह सिद्धान्त एक बाह्य दृष्टिकोण (Mask approach) है जो बाहरी छिछले व्यवहारों का ही अध्ययन करता है।

(२) दूसरी बात यह कि यह सिद्धान्त व्यक्तित्व के शीलगुणों को सामान्य मानता है, विशिष्ट नहीं। और भी स्पष्ट करने के लिए, एक ही व्यवहार अथवा प्रतिक्रिया विभिन्न कारणों से हो सकती है। इसलिए किसी प्रतिक्रिया के समुचित ज्ञान के लिए उसकी प्रेरणा का ज्ञान भी अपेक्षित है। किन्तु, व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक प्रेरणा को महत्त्व नहीं देते। इसकी चर्चा भी की जा चुकी है कि व्यक्तित्व के शीलगुण सापेक्ष हैं, सामान्य या निरपेक्ष नहीं।

व्यक्तित्व-भिन्नता की व्याख्या करने के लिए व्यवहारवादियों ने बताया है कि विभिन्न व्यक्तियों में क्रियात्मक समर्थता (Motor capacity) एवं ज्ञानात्मक समर्थता (Sensory capacity) भिन्न होती है। इसके अतिरिक्त, दो व्यक्ति एक ही उत्तेजना के सम्पर्क में नहीं आते, अतः वे एक तरह की आदत नहीं बना पाते।

दो या अधिक व्यक्तियों के व्यवहार में जो समानता होती है, उसकी व्याख्या करते हुए व्यवहारवादियों ने बताया है कि आदत संघात (Habit patterns) कई जन समूहों में एक ही तरह के हो सकते हैं, क्योंकि व्यक्ति प्रायः एक ही तरह के सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण में रहते हैं।

किन्तु, अब तक व्यवहारवादियों के संबंध में जो विचार प्रस्तुत किए गये हैं, उनकी सत्यता कट्टर व्यवहारवादियों तक ही सीमित है। आधुनिक व्यवहारवादी यह मानते हैं कि हमारी क्रियाओं में प्रेरणा का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

शीलगुण-सिद्धांत (Trait theory)

शीलगुण-सिद्धान्त के अनुसार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण शीलगुणों से होता है, अर्थात, शीलगुण ही व्यक्तित्व की इकाई है। इस सिद्धान्त में भी दो दृष्टिकोण है-(१) बाह्य दृष्टिकोण (Mask approach) एवं (२) तत्त्व दृष्टिकोण (Substance approach)।

बाह्य दृष्टिकोण बाह्य दृष्टिकोण के अन्तर्गत हम जीव के व्यवहारों का ही अध्ययन करते हैं, उनकी सतह तक पहुँचने का प्रयास नहीं करते। दूसरे शब्दों में, इस दृष्टिकोण को माननेवाले इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं कि एक ही व्यवहार के विभिन्न कारण हो सकते हैं या एक ही कारण से विभिन्न व्यवहार हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में आलपोर्ट की एक पंक्ति उल्लेखनीय है "वही आग जो मक्खन को पिघला देती है, अण्डे को जमा देती है।" इस पंक्ति से स्पष्ट है कि केवल व्यवहारों के अध्ययन से हम वैज्ञानिकता प्राप्त नहीं कर सकते। किसी व्यवहार की पूरी रूप-रेखा जानने के लिए हमें उसके पीछे

छिपी प्रेरणाओं (Motives) को भी जानना आवश्यक है। बाह्य दृष्टिकोण की आलोचना करने के फलस्वरूप आलपोर्ट ने अपना तत्त्व दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

तत्त्व-दृष्टिकोण आलपोर्ट इस बात से सहमत है कि हमारे व्यक्तित्व की रचना शीलगुणों से हुयी है। लेकिन, उसके अनुसार एक ही शीलगुण की उत्पत्ति दो व्यक्तियों मे विभिन्न कारणों से हो सकती है। उदाहरणार्थ, लज्जा एक व्यक्ति मे आनुवंशिकता के कारण और दूसरे मे हीन भाव के कारण हो सकती है। अत हमे केवल व्यवहारों का अध्ययन न कर उनके कारणों को भी जानना चाहिए। लेविन (Lewin) की सहायता लेते हुए उसने शीलगुणों का वर्गीकरण दो भागों मे किया है—आनुवंशिक शीलगुण (Genotypical traits) तथा अर्जित शीलगुण (Phenotypical traits)। आलपोर्ट के अनुसार आनुवंशिक गुण, अर्जित गुणो की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वे बाह्य परिस्थिति पर निर्भर नही करते। अत अर्जित गुणो में परिवर्त्तन की सभावना रहती है। किन्तु, किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूरी तरह से समझने के लिए उसके दोनो ही गुणा को ध्यान मे रखना आवश्यक है।

आलपोर्ट की इस विचार धारा को बहुत से मनोवैज्ञानिक सहमत हैं। केटिल (Cattell) ने अपनी पुस्तक 'पर्सनालिटी' (Personality) में आलपोर्ट के विचार के प्रति अपनी सहमति प्रकट की है। केटिल की इस पुस्तक मे तथ्य विश्लेषण (Factor analysis) के आधार पर शीलगुणों की आधुनिकतम व्याख्या दी गई है। उसके अनुसार शीलगुण स्थायी तथा अस्थायी दोनों ही होते है। उसने शीलगुणों को दो भागों में विभाजित किया है—मूल शीलगुण (Source trait) तथा ऊपरी शीलगुण (Surface trait) जो आलपोर्ट के आनुवंशिक (Genotypical) एवं अर्जित (Phenotypical) शीलगुणों के ही समान है। उसके अनुसार ऊपरी शीलगुण की उत्पत्ति मूल शीलगुणों से ही होती है। जैसे, गणितात्मक योग्यता, शाब्दिक योग्यता, आदि ऊपरी शीलगुणो का आविर्भाव मूल शीलगुण बुद्धि से होता है। केटिल ने साधारण और अपूर्व शीलगुणों मे भिन्नता बताई है। इसी के आधार पर उसने विभिन्न व्यक्तियों के बीच समानता और अपूर्वता की व्याख्या भी की है। समान वातावरण और सस्कृति के अनेक व्यक्तियों मे साधारण शीलगुण पाये जाते है जो उनकी समानता के कारण है। अपूर्व शीलगुण पूर्णत वैयक्तिक होते है जो किसी व्यक्ति की अपूर्वता और वैयक्तिकता को निर्धारित करते है। उसने (क) योग्यता शीलगुण (Ability trait), (ख) स्वभाव-शीलगुण, तथा (ग) गत्यात्मक शीलगुण का भी उल्लेख किया है। (क) योग्यता-शीलगुण को व्यक्ति अपने जीवन मे अर्जित करता है तथा इसकी सीमा जन्मजात शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। (ख) अन्त स्रावी ग्रन्थियो के द्वारा व्यक्ति का स्वभाव शीलगुण निर्धारित होता है। (ग) मनोवृत्ति, स्थायीभाव, भावग्रन्थि, आदर्शआत्मा (Super ego), आदि गत्यात्मक शीलगुण के अन्तर्गत आते है जिन्हे व्यक्ति अपने जीवन-काल में अर्जित करता है।

आलपोर्ट और केटिल दोनो ही शीलगुण-सिद्धान्त के प्रतिपादक है, किन्तु इतना निर्विवाद है कि आलपोर्ट ने इस सिद्धान्त के मौलिक विचारों को प्रस्तुत किया है। दूसरी ओर, केटिल, ने इसका पृष्ठ-पोषण करते हुए इसे साख्यिक विधि पर कसने

की कोशिश की है। केटिल ने न केवल सांख्यिक विधि का इस्तेमाल किया है, बल्कि इसे ही मूल लक्ष्य मान लिया है। किन्तु, सांख्यिक विधि को मनोविज्ञान मे उद्देश्य न समझ कर उद्देश्य प्राप्ति का साधन समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त, जिन व्यवहारो को उसने अपने अध्ययन मे सम्मिलित किया है वे व्यवहार न्यादर्श (Sample) व्यवहार नही कहे जा सकते। फलत इसी विधि से अन्य व्यवहारों का अध्ययन करने पर सभव है परिणाम भिन्नता हो। इतना होते हुए भी केटिल ने जिस वैज्ञानिक तथ्य का आश्रय लिया है उसकी उपेक्षा नही की जा सकती, भले ही इससे प्रमुख आलोच्य-विषय का अध्ययन न हो, जैसा कि मरे (Murray) ने कहा है।

प्रकार सिद्धान्त (Type theory)

कुछ विद्वानो ने विभिन्न व्यक्तियो का वर्णन विभिन्न प्रकारो के आधार पर करने का प्रयास किया है। उनमे युङ्ग, क्रेशमर तथा शेल्डन के प्रकार विशेष उल्लेखनीय है। यह प्रकार दृष्टिकोण (Type approach) शीलगुण दृष्टिकोण से अधिक प्रशस्त है। युङ्ग ने सभी व्यक्तियों को बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी प्रकारो म बाँटा है। शेल्डन ने अपनी पुस्तक 'वेराइटिज ऑफ हिउमन फीजिक' (Varieties of Human Physique') म सभी मनुष्यो को शरीर रचना के आधार पर तीन भागो मे बाँटा है। उसका यह विभाजन युङ्ग के विभाजन से पूर्णत भिन्न है। क्रेशमर ने भी शरीर-रचना के आधार पर व्यक्तियों को चार भागों मे बाँटा है जिनके नाम पुष्टकाय (Athletic), निर्बलकाय (Asthenic), स्थूलकाय (Pyknic) और मिश्रितकाय (Displastic) है। यहाँ युङ्ग के व्यक्तित्व प्रकारो एव उनकी विशेषताओ को लिखने की आवश्यकता नही है, क्योकि उन पर स्थल विशेष पर सक्षेपत प्रकाश डाला जा चुका है। अतएव यहाँ यही लिखना पर्याप्त होगा कि युङ्ग ने प्रत्येक प्रकार को चेतन मन की क्रियाओ के आधार पर चार भागो मे बाँटा है, जिन्हे सवेदना, चिन्तन, भाव और आत्मज्ञान (Intuition) की सज्ञा दी गयी है। इस तरह, उसने बहिर्मुखी एव अन्तर्मुखी को आठ प्रकारो म विभक्त किया है।

क्रेशमर के अनुसार, प्रत्येक व्यक्तित्व प्रकार का सम्बन्ध एक विशेष प्रकार की शरीर रचना से है। शेल्डन ने व्यक्तित्व को तीन दैहिक प्रकारो म बाँटा है— १ अन्तर्मूलक (Endomorphic)—ये मोटे होते है और इन्हे तोद होती है। २ मध्य परिवर्त्तक (Mesomorphic)—ये बहुत ही सुन्दर और सुगठित शरीरवाले होते है। ३ निर्बल (Ectomophy)—ये दुबले पतले होते है। शेल्डन ने पुन तीन प्रकारो में प्रत्येक को सात प्रकारो मे बाँटा है। उसने अपनी दूसरी पुस्तक वेराइटिज ऑफ हिउमन टेम्परामेण्ट (Varieties of Human Temperament) में इन प्रकारो के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। शेल्डन या युङ्ग के इस सिद्धान्त की बहुत बड़ी त्रुटि यह है कि किसी व्यक्तिविशेष को युङ्ग के आठ और शेल्डन के इक्कीस प्रकारों की किस श्रेणीमें रक्खा जाय, इसका पता नहीं चलता।

इस सिद्धान्त के दोष गुणो पर विचार करने से हम कह सकते है कि किसी व्यक्तित्व-प्रकार की विशेषताओं को बताना आसान है, किन्तु प्रकार का ही निर्धारित करना कठिन है।

मरे-सिद्धान्त (Murray's theory)

मरे ने सर्वप्रथम अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् १९३८ ई० में अपनी एक पुस्तक

'एक्सप्लोरेशन ऑफ पर्सनालिटी' (Exploration of personality') में किया। उसने व्यक्तित्व का एक गत्यात्मक सिद्धान्त प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वह अपने सिद्धान्त मे व्यक्ति द्वारा किए गए काम को महत्त्व नही देता, बल्कि उस काम को कराने के पीछे जो शक्ति कार्यशील रहती है, उसे महत्त्वपूर्ण मानता है। निश्चय ही अपने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन मे उसने मेकडुगल, फ्रायड तथा युङ्ग के सिद्धान्तो से लाभ उठाया है। उसके सिद्धान्त के आधार आवश्यकताएँ तथा दापक (Press) हैं। उसने आवश्यकताओं का इस्तेमाल प्रेरणा और दापक का उत्तेजना तथा उत्तेजना-परिस्थिति (Stimulus & stimulus situation) के अर्थ मे किया है। उसके अनुसार, यह सिद्धान्त अनुमानात्मक (Hypothetical) है।

मरे का कहना है कि हम जीव की आवश्यकताओ को प्रत्यक्षतया नही देखते, बल्कि उसके व्यवहारों को देख कर उसकी आवश्यकताओ का अनुमान करते है। अत आवश्यकता, शक्ति का काम करती है। मरे ने आवश्यकताओ को दो वर्गों मे बाँटा है—(क) मूल आवश्यकता तथा(ख)गौण (Secondary) आवश्यकता। उसके अनुसार, मूल आवश्यकताओं की सख्या तेरह है तथा गौण आवश्यकताओं की अट्ठाईस। मूल आवश्यकताएँ शरीर जनित (Viscerogenic) है और गौण आवश्यकताएँ मनो जनित (Psychogenic)। उसने यह भी बताया है कि आवश्यकताएँ चेतन या अचेतन, व्यवस्थित या अव्यवस्थित किसी भी प्रकार की हो सकती है।

दापक (Press) दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। दापक से वातावरण का बोध होता है जिसमे उत्तेजनाएँ वर्त्तमान रहती है। ये ही उत्तेजनाएँ आवश्यकताओं की तृप्ति मे बाधक या सहायक सिद्ध होती है।

इस सिद्धान्त मे मरे एक पद का व्यवहार करता है जिसे थीमा (Thema) कहते है। यह थीमा जीव की आवश्यकता और दापक के बीच का सम्बन्ध व्यक्त करता है। उसके अनुसार आवश्यकता और दापक सदा साथ रहते है और उनका यह सम्बन्ध ही थीमा है। इस सिद्धान्त के अनुसार, थीमा ही व्यक्तित्व की इकाई है।

कुछ लोगों ने मरे सिद्धान्त की आलोचना करते हुए यह व्यक्त किया है कि यह सिद्धान्त आत्मगत है। यह आक्षेप सत्य भी है। फिर भी, यह मानना होगा कि व्यवहार मे यह अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। दूसरी सबसे बडी त्रुटि यह है कि यह सिद्धान्त इसे व्यक्त नहीं कर सका है कि आवश्यकताओं की उत्पत्ति किस प्रकार होती है।

क्षेत्र-सिद्धान्त (Field theory)

क्षेत्र सिद्धान्त को लेविन सिद्धान्त (Lewin-theory) भी कहा जाता है, क्योंकि लेविन ने ही इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त की कुछ अपनी विशेषताएँ है जिनका उल्लेख इस की व्याख्या के लिए आवश्यक है। (१) इस सिद्धान्त के अनुसार, व्यक्ति का व्यवहार अनेक सहभावी तथ्यों (Co existing facts) पर निर्भर करता है। (२) इन सहभावी तथ्यों के सयोग से एक गत्यात्मक क्षेत्र (Dynamic field) का आविर्भाव होता है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक तथ्य एक दूसरे पर निर्भर करता है। इसके अनुसार, व्यवहार न तो भूत और न भविष्य, बल्कि वर्त्तमान पर निर्भर करता है। लेकिन, यह

विचार धारा भूत काल की प्रधानता स्वीकार करनेवाले साहचर्यवादियों के प्रतिकूल है। इसी गत्यात्मक क्षेत्र को उसने जीवन क्षेत्र (Life space) की सज्ञा दी है। इस जीवन क्षेत्र का अर्थ प्राणी और उसके मनोवैज्ञानिक वातावरण से है।

लेविन का सम्बन्ध जेस्टाल्टवाद से घनिष्ट है, किन्तु वह जेस्टाल्टवादियो की तरह दैहिक मनोवैज्ञानिक न हो कर सामाजिक मनोवैज्ञानिक है। फलत उसने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि व्यक्तित्व का अध्ययन उत्तेजना और प्रतिक्रिया का ही ध्यान मे रखकर नही, बल्कि परिस्थिति और प्रेरणा का ध्यान मे रखकर करना चाहिए। व्यक्ति का सम्बन्ध वातावरण की केवल उन्ही वस्तुओ से रहता है जिनकी आवश्यकता उस व्यक्ति को रहती है। उन्ही वस्तुओं से उसके मनोवैज्ञानिक वातावरण का निर्माण होता है। वे वस्तुएँ दो स्वरूप की होती है। कुछ तो व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करती है तथा कुछ अपनी ओर से हटाती है। इनमे प्रथम के आकर्षण को धनात्मक आकर्षण (Positive valence) कहते है तथा दूसरे के आकर्षण को निषेधात्मक आकर्षण (Negative valence)।

लेविन ने अपने सिद्धान्त मे 'वेक्टर' (Vector) पद का व्यवहार किया है। वेक्टर का अर्थ उस शक्ति से है जो प्राणी को प्रतिक्रिया के लिये बाध्य करती है। अर्थात्, यह प्रेरणा का दूसरा नाम है। वस्तु के आकर्षण होने पर वेक्टर उस ओर आकृष्ट हो जाता है और अनाकर्षण होने पर उससे दूर हो जाता है। वेक्टर की तीन विशेषताएँ होती है। पहली विशेषता तो यह है कि इसकी एक विशेष शक्ति होती है, दूसरी यह कि किसी निश्चित दिशा मे होता है और तीसरी यह कि इसमे एक उपयोग बिन्दु (Point of application) होता है। इसके फलस्वरूप प्राणी एक दिशा विशेष म क्रियाशील होता है। अर्थात्, शक्ति का व्यवहार वेक्टर की क्रियाशीलता का ही परिणाम होता है।

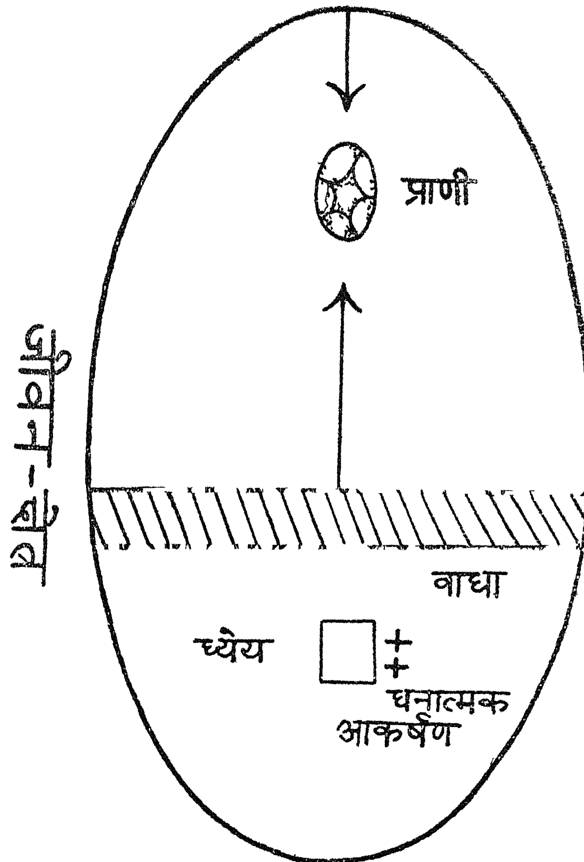
कभी कभी व्यक्ति की क्रिया म बाधाए उपस्थित हो जाती है। ये बाधाएँ एक समान ही प्रबल नही होतीं। फलत प्राणी मे विभिन्न प्रेरणाए दीख पड़ती है। कभी तो व्यक्ति अधिक शक्ति लगाकर क्रिया करता है और कभी अपना ध्येय ही परिवर्त्तित कर देता है। कभी-कभी उसके व्यवहार मे प्रत्यागमन (Regression) भी देखने म आता है। इस तरह, बाधाएँ एक समान ही प्रबल नही होती।

लेविन ने अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिए गणित की एक शाखा 'टोपोलॉजी' (Topology) मे सहायता ली है जिसमें वस्तुओ तथा शक्तियों को चिन्हों के द्वारा व्यक्त किया जाता है। यह पृष्ठ सख्या ६४३ के चित्र से स्पष्ट होगा।

चित्र में गोल और भरी आकृति प्राणी का द्योतक है जिसका ध्येय वर्ग (Square) तक पहुँचना है, चूकि इसमे धनात्मक आकर्षण है और जो धन (+) के द्वारा व्यक्त किया गया है। आकर्षण तथा विकर्षण की मात्रा धन (+) तथा ऋण (−) की सख्याओ के द्वारा क्रमश स्पष्ट किया जाता है। प्राणी तथा उसके ध्येय के बीच एक बाधा उपस्थित है। बाधा शक्ति वाण विस्तार (Length of the arrow) से स्पष्ट किया गया है।

यह सिद्धान्त इतना जटिल है कि साधारणत इसका व्यवहार करना असभव प्रतीत होता है। अत जहाँ तक व्यवहारिक पहलू का सम्बन्ध है, यह निरर्थक है। इस सिद्धान्त ने अभी तक व्यक्तित्व परीक्षण की एक भी विधि उत्पन्न नहीं की है।

चित्र सख्या ८१



फ्रायड-सिद्धान्त (Freud's theory)

फ्रायड ने व्यक्तित्त्व की व्याख्या अपने मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Psycho-analytic theory) के सहारे की है जिसके आधार है—निराशा (Frustration) और दमन *(Repression)। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति मे यौन (Sexual) इच्छाओं का ही बाहुल्य होता है। किन्तु, उसकी ये इच्छाएँ सदा पूरी नहीं होती। इसके फलस्वरूप वह निराशा या कुण्ठा (Frustration) का शिकार हो जाता है। व्यक्ति मे इस कुण्ठा की पीडा को सहने की शक्ति नही होती। अत वह इसे भूल जाना चाहता है। इसके फलस्वरूप कुठित इच्छाएँ दमन के सहारे अचेतन में भेज दी जाती है। वहाँ जाने पर ये इच्छाएँ समाप्त नहीं हो जातीं, बल्कि वास्तविक जगत मे अपनी सतुष्टि के लिये गत्यात्मक (Dynamic) रूप से सदा क्रियाशील रहती है। अवसर मिलने पर अनजाने मे ये इच्छाएँ प्रकट भी होती है। फ्रायड के अनुसार, व्यक्ति का सभी व्यवहार उसके अचेतन द्वारा निर्धारित होता है। साथ ही, निराशा के सहारे व्यक्ति को वास्तविकता का ज्ञान भी होता है, जिससे उसे अभियोजन करने मे सहायता मिलती है और इस प्रकार उसका व्यक्तित्त्व विकसित होता है।

फ्रायड के अनुसार शैशवकाल मे स्तन पान के साथ ही मनुष्य में यौन इच्छाओ का उदय होता है। फलत बाल्यावस्था से ही उसका व्यक्तित्व विकास होने लगता है। प्रारभ में बच्चे को भले-बुरे का कुछ भी ज्ञान नही रहता, इसलिये उसकी सभी क्रियाए सुखेच्छुवृत्ति-नियम (Pleasure Principle) से निर्धारित होती है। यह सुखेच्छुवृत्ति पूर्णत सुषुप्तात्मा (Id) द्वारा सचालित होती है। बच्चे को न तो अपने आपका ही ज्ञान रहता है, न उसकी इच्छाओं और उसके चारों ओर रहनेवाले लोगो की इच्छाओ के बीच सघर्ष का ही। क्योकि, अभी तक उसमे बोधात्मा (Ego) का आविर्भाव नही हुआ रहता है। लेकिन, जब बाद मे विभिन्न बाधाओ (Obstacles) के उपस्थित होने के कारण उसकी इच्छाएँ सतुष्ट नही होती तब उसे निराशा या कष्ट का अनुभव होता है। उसी समय उसे अपने अस्तित्व की भी चेतना होती है, क्योकि उसी समय सुषुप्तात्मा से बोधात्मा का भी आविर्भाव होने लगता है।

माता-पिता के अनुशासन (Discipline) तथा अपने कटु अनुभवों के आधार पर बच्चा यह समझने लगता है कि वह अपनी इच्छाओं के अनुसार सभी कुछ नही कर सकता। बच्चे को प्रशिक्षित करने मे माता पिता ऐसे शब्दो का व्यवहार करते है जो उसे एक सामाजिक प्राणी का विशेषण देते हुए उसे अन्धी प्रवृत्तियों (Blind tendencies) से अलग करते है। इस प्रकार, मौलिक सुषुप्तात्मा (Original Id) दो हिस्सो में विभक्त हो जाती है। एक हिस्सा तो मौलिक रूप में रह जाता है जो आदिम मूल प्रवृत्तियो (Primitive Instincts) द्वारा सचालित और निर्धारित होता है। दूसरा हिस्सा सामाजिक नियमों द्वारा निर्धारित और सचालित होता है जिसे बोधात्मा (Ego) की सज्ञा देते है।

फ्रायड के अनुसार बच्चों की आदिम इच्छाओं (Primitive cravings) का निवेशन (Fixation) माता पिता के प्रति होता है। इसलिये माता-पिता और बच्चे के बीच सवेगात्मक अनुरक्ति (Emotional attachment) का सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। प्रारभ में लड़का और लड़की दोनों की सवेगात्मक अनुरक्ति माता के प्रति रहती है। किंतु, कुछ समय के बाद उम्र और परिस्थिति के अनुसार लड़के की यह अनुरक्ति माता के प्रति हो जाती है और लड़की की पिता के प्रति होती है। फ्रायड ने बच्चों की इस प्रकार की सवेगात्मक अनुरक्ति को ओडिपस काम्प्लेक्स (Oedipus complex) के नाम से पुकारा है। उसने यह भी व्यक्त किया है कि लड़का की अनुरक्ति यद्यपि चेतनतया माता के प्रति रहती है फिर भी, अचेतनतया वह माता से घृणा करता है। इसी प्रकार, लड़कियाँ, अचेतनतया अपने पिता के प्रति अनुरक्त रहती है, किन्तु चेतनतया उनसे घृणा करती है। लेकिन, बच्चे जैसे जैसे बड़े होते जाते है वैसे वैसे प्रेम और घृणा की ये दोनों मनोवृत्तियाँ उन्हें असह्य होने लगती है जिसके फलस्वरूप इन दोनों में से एक का (प्रधानत घृणा को) दमन के द्वारा अचेतन में कर देते है। तत्पश्चात् सात-आठ वर्षों की उम्र से साधारणत लड़का पिता की ओर और लड़की माता की ओर आकृष्ट होती है। दोनों पिता और माता की आज्ञा का क्रमश अक्षरश पालन करते और वैसा ही बनने की कोशिश करते है।

जब फ्रायड सुषुप्तात्मा (Id) और बोधात्मा के आधार पर उचित-अनुचित की चेतना या सामाजिक एव नैतिक व्यवहारों को करने की इच्छा की व्याख्या न कर सका

तब उसने आदर्शात्मा (Super-ego) का नामकरण किया। उसके अनुसार, आदर्शात्मा का भी आविर्भाव उन्हीं अचेतन उपकरणों से होता है जिनसे कि सुषुप्तात्मा आविर्भूत होती है। यही आदर्शात्मा अनुभव में उचित अनुचित या भले बुरे की चेतना उत्पन्न करती है। जब बालक अपने माता पिता में से किसी एक के साथ तादात्म्य (Identification) कर लेता है और उसी के समान होना चाहता है तभी इस आदर्शात्मा की उत्पत्ति बचपन में हो जाती है। इस प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति की क्रियाएँ बचपन से ही सुषुप्तात्मा, बोधात्मा और आदर्शात्मा के द्वारा संचालित होती हैं। या तो बोधात्मा तथा आदर्शात्मा प्राय मिल कर सुषुप्तात्मा की क्रियाओं को नियन्त्रित और परिमार्जित अथवा अवसर विशेष पर अवरुद्ध करती है, किन्तु कभी कभी आदर्शात्मा बोधात्मा से स्वतन्त्र होकर भी यह कार्य करती है। ऐसी स्थिति में उसे दोनों को (सुषुप्तात्मा एवं बोधात्मा) नियन्त्रित करना पड़ता है। यह स्मरणीय है कि बचपन की सभी सम्बद्ध (Conditioned) संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ बच्चे के व्यक्तित्व से इस प्रकार समन्वित हो जाती हैं कि प्रौढ़ावस्था में भी उन्हें विनष्ट करना असम्भव होता है। अतएव वे प्रौढ़ व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक आवश्यक अंग ही बन जाती हैं। वह उन्हीं के आधार पर अपने व्यवहार संघातों का भी प्रदर्शन करता है।

तीनों शक्तियों में बराबर संघर्ष चलता रहता है। कभी तो सुषुप्तात्मा विजयी होता है, कभी बोधात्मा तो कभी आदर्शात्मा।[1] किसी परिस्थितिविशेष में जो विजयी होता है उसी के अनुरूप उस समय व्यक्ति का व्यवहार होता है। एक ही तरह की परिस्थिति में भी व्यक्ति सदा एक ही सा व्यवहार नहीं करता है, जिसका कारण यह संघर्ष है। इसीलिए उसका व्यक्तित्व सिद्धान्त संघर्ष और अचेतन प्रेरणाओं पर आधारित है और वह सम्पूर्ण व्यक्तित्व के समझने पर जोर देता है। इसीलिए फ्रायड ने भी व्यक्तित्व को गत्यात्मक स्वरूप का ही माना है जो परिस्थिति के अनुसार सदा परिवर्तित होता रहता है। लेकिन, उसका भी यह सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं हो सका है। इसके प्रति वे सभी आपत्तियाँ लागू होती हैं जो उसकी विधि और अन्य सिद्धान्तों के प्रति हैं। इस तरह, व्यक्तित्व का प्रत्येक सिद्धान्त किसी न किसी प्रकार के दोष और त्रुटि का शिकार है। अत व्यक्तित्व की पूर्ण और समुचित व्याख्या किसी भी सिद्धान्त से नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में सभी सिद्धान्तों की अच्छाइयों को समन्वित कर एक ऐसे सिद्धान्त को प्रतिपादित करना आवश्यक है जो व्यक्तित्व के सभी पहलुओं की व्याख्या अच्छी तरह कर सके।

---

१ इसके विशद ज्ञान के लिये लेखक का असामान्य मनोविज्ञान (प्रकाशक—ग्रंथमाला कार्यालय, पटना, ४) देखें।

अनुक्रमणिका (INDEX)

ध

न

प

फ

ब

ह

क्ष

ज्ञ